ऋग्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

भाग २

✿ ओ३म् ✿

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य्य-साहित्य-मण्डल, लिमिटेड, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २००० | सं० १९९० वि० | मूल्य ४) रुपये

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद विषय-सूची

अथ द्वितीयोऽष्टकः ।

प्रथमोऽध्यायः

के दृष्टान्त से गुरु का कर्त्तव्य, (४) उषाओं के दृष्टान्त से शिष्यों का गुरु की कीर्त्ति प्रसारित करना, वायु के दृष्टन्न्त से उनको ऐश्वर्य प्राप्त करने का उपदेश । (५) राजा के अधीनस्थ अधिकारियों के कर्त्तव्य । राजा को दुष्टों के नाश का उपदेश । (६) राजा का सर्वोपर पालन और ऐश्वर्य-भोग का अधिकार । (पृ० ९२—९८)

सू० [१३५]—प्रधान पदवीधर के आदर की विधि, (२) उसकी वेष भूषा, और कर्त्तव्य, सेनानायक होने योग्य पुरुष । (३) शतिनी, सहस्रिणी सेनाओं सहित सेनापति की नियुक्ति, राज्यव्यवस्थापक अध्वर्यु जनों का कर्त्तव्य । (४) सेनापति, सभापति आदि का रथों से गमन, उत्तम ऐश्वर्यों में प्रथमाधिकार । (५) प्रधान पुरुष की राष्ट्र में, देह में आत्मा के समान स्थिति, देह में वीर्यों के समान राष्ट्र में बलवान् शासकों की स्थिति । (७) सूर्य, वायु, वृष्टिआदि के दृष्टान्त से शासक के प्रजापालन के कार्यों का वर्णन । (८) पक्षियों के आश्रय-वृक्षवत् शासक प्रधान पुरुष की स्थिति । और राष्ट्र की समृद्धि का वर्णन । (९) मेघवत् पराक्रमी, ऐश्वर्यवान् पुरुषों को प्रजापालन का उपदेश (पृ० ९८—१०७)

सू० [१३६]—अधीन प्रजाओं का उत्तम प्रधान शासकों को प्रति पुत्रवत् कर्त्तव्य । शासकों को न्यायोचित व्यवहार का उपदेश । सूर्यचन्द्रादिवत् व्यवस्थापकों का कर्त्तव्य । राजाप्रजा का प्रेममय व्यवहार । परस्पर पाप से रक्षा करने का कर्त्तव्य । (६) श्रेष्ठ जनों का आदर सत्कार । (७) समृद्ध होकर उत्तम सुख प्राप्त करने का उपदेश । (पृ० १०६—११३)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [१३७]—देह में प्राण-उदानवत् मित्र और वरुण दो अधिकारियों और अन्न-औषधिरसवत् सोम नाम विद्वानों के कर्त्तव्य । वैदिक श्लेषमय

वाक्यों का स्पष्टीकरण। (३) सोम और गोदोहन के दृष्टान्त से भूमि-दोहन।

सू० [१३८]—पूषा, नाम प्रजापोषक अधिकारी राजा, के कर्त्तव्य (४) पूषा के 'अजाश्व' होने का कारण।

सू० [१३९]—विद्वान् आचार्य गुरु के अधीन वेदाभ्यास करने का उपदेश। (२) मित्र वरुण का सत्यासत्य विवेक, न्याय का कर्त्तव्य। (३) उत्तम स्त्री पुरुषों के प्रति अन्य जनों के सद्व्यवहार का उपदेश। (४) रथ में दो अश्वों के समान शासनादि कार्य में उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। (५) ज्ञानी, कर्मिष्ठ पुरुषों को कर्त्तव्य। (६) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य (७) विद्वान् नेता के कर्त्तव्य। (८) व्यापारियों और वीरों का कर्त्तव्य। (९) विद्वानों के कर्त्तव्य। दध्यङ् अङ्गिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु, आदि की व्याख्या। (१०) सूर्य, मेघ दृष्टान्त से, विद्या धनादि देने लेने वाले के कर्त्तव्य। (११) ११, ११, ११, करके ३३ देव, ३३ अधिकारी.

सू० [१४०]—यज्ञाग्निवत् राजा को पोषण करने का उपदेश। (२) द्विजन्मा और त्रिवृत् अग्नि, विद्वान् और राजा। (३) बालक के प्रति माता पिता के समान राजा प्रजावर्ग के कर्त्तव्य। (४—५) अश्वों के तुल्य, मुमुक्षु जनों का वर्णन, वीरों, सूर्य रश्मियों के तुल्य विवेकी मुमुक्षुओं को वासना नाश कर मुक्त होने का वर्णन। (६) सूर्य और अग्नि के दृष्टान्त से राजा वा नायक का प्रजा के ग्रहण पालनादि का वर्णन। (७—८) राजा प्रजा का पति-पत्नीवत् परस्पर स्नेहवान् होकर रहने का वर्णन। (९) अग्नि और भूमि और बालक माता के दृष्टान्त से भूमि और राजा के कर्त्तव्यो का वर्णन। (१०—११) यज्ञाग्नि, मेघस्थ विद्युत् के दृष्टान्त से विद्वान् नायक वा राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१२) नौकावत् सेना का निर्माण, पक्षान्तर में 'पद्वती नौ' का रहस्य। (१३) उषाओं के दृष्टान्तों से विद्वान वीर पुरुषों का कर्त्तव्य।

सू० [१४१]—सत्य प्रकाश में अग्नि और गौओं के दृष्टान्त से विद्वान् और वेदवाणियों का वर्णन। (२) जीवात्मा और मनुष्य की हान दशाएं। (३) असंग आत्मा के ज्ञान करने का उपदेश। (४) वनस्पतिवत् जीवों के जन्म लेने आदि का वर्णन। (५–७) अविनाशी आत्मा का जन्म लेने का रहस्य। (८) उसकी प्राप्ति बन्धनों के नाश का उपदेश। (९, १०) नायकवत् प्रभु का वर्णन। (१०–१२) वीर नायक और आत्मा का वर्णन।

सू० [१४२]—अग्निवत् नायक के कर्त्तव्य। तनूनपात् का रहस्य। (५) यज्ञाग्निवत् उपासना कर्म, यज्ञकर्त्ता जनों के समान उपासक का वर्णन। द्वारों के समान, स्त्रियों, प्रजाओं और सेनाओं का वर्णन। (७) रात दिन के समान माता पिता का वर्णन। (८) दैव्य होता, विद्वानों का कर्त्तव्य। (९) भारती, इळा, सरस्वती, और होत्रा का वर्णन। (१०) त्वष्टा, शिल्पी, (१२) वनस्पतिवत् राजा का वर्णन। (१२) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१३) विद्वानों के आदर का उपदेश।

सू० [१४३] विद्यार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) अग्नि सूर्यवत् आचार्य की स्थिति, (४) सर्वपापनाशक अग्नि प्रभु की स्तुति। (५) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (६, ७) तपस्वी विद्यार्थी का कर्त्तव्य। (८) विद्वानको अप्रमादी रहने का उपदेश।

सू० [१४४]—अग्नि-व्रत का वर्णन। विद्यार्थी के आचार्य शुश्रूषा व्रत का वर्णन। आचार्य शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन। (३) माता, पिता, आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। (४) माता पिता का बालक के प्रति कर्त्तव्य। (५) प्रजाओं का रक्षक के प्रति व्यवहार और रक्षक का कर्त्तव्य। (६) अग्निवत् विद्वान् और राजा का कर्त्तव्य। (७) मेघवत् राजा का कर्त्तव्य।

सू० [१४५]—आदर्श विद्वान् का वर्णन। (२) जिज्ञासु का कर्त्तव्य, पक्षान्तर में जिज्ञास्य परमेश्वर का वर्णन। (३) शिष्य का स्वरूप। पक्षान्तर में आचार्य, राजा सेनाओं का वर्णन और स्वयंवर का दिग्दर्शन। शिष्य आचार्य और नायक के कर्त्तव्य। (५) विद्यार्थी के कर्त्तव्य।

सू० [१४६]—पुत्रवत् शिष्य का कर्त्तव्य, विद्यार्थी का लक्षण। त्रि-मूर्धा सप्तरश्मि का रहस्य। पक्षान्तर में परमेश्वर, त्रिमूर्धा सप्तरश्मि, अग्नि का वर्णन। बैल, मेघ, सूर्यादिवत् जगत्-धारक प्रभु और राष्ट्र-धारक राजा का वर्णन। (३) सूर्य पृथिवी के समान स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य। विद्वानों का प्रभु-दर्शन। (५) दर्शनीय शिष्य।

सू० [१४७]—अग्निवत् आचार्य का वर्णन। (२) उपदेश करने का प्रकार। पक्षान्तर में प्रभु का वर्णन।

सू० [१४८]—मातरिश्वा आचार्य का वर्णन। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (४) आचार्य-वर्णन। (५) विद्यार्थी का बल। पक्षान्तर में आत्मा का अविनाशी रूप।

सू० [१४९]—तेजस्वी स्वामी के कर्त्तव्य। सूर्यवत् नायक और परमेश्वर का प्रजासर्ग—पालन। (३) उसका शासन। द्विजन्मा अग्नि वत् द्विजन्मा विद्वान् का वर्णन।

सू० [१५०] गुरु वा प्रभु के प्रति शरणयाचना निन्द्य और अनि-न्द्य जन। अल्हादक प्रभु की शरण।

सू० [१५१]—वैज्ञानिकों और विद्वानों के समान उत्तम शासक के कर्त्तव्य (३) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, (४) पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन। (५) पति पत्नी का शिष्य गुरु का परस्पर वरण, गौओं के समान आचार्यों का शिष्यों का ज्ञान-रसपान तथा पहरेदारवत् रक्षा करने का कर्त्तव्य। (६) परस्पर सभ्य व्यवहार और मधुर वचन बोलने

तृतीयोऽध्यायः

कर्त्तव्य, विश्वरूप अज का रहस्य । (३) सेनापति के योग्य पुरुष, अश्व मेध के अश्व के आगे छाग आदि लाने का रहस्य । (४) अश्ववत् राष्ट्र पति के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य । अध्यात्म में अश्व, परमेश्वर का वर्णन । (५) राष्ट्ररूप यज्ञ का वर्णन, अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप, (६) राष्ट्र पति के सहयोगियों के कर्त्तव्य । (७) अश्ववत राष्ट्रपति, ब्रह्मचारी, और गृहस्थ पति का वर्णन । आत्मा का वर्णन (८) अश्व के बन्धनों के समान राष्ट्रपति की मर्यादाएं । (९) राष्ट्र के ऐश्वर्य के प्रबन्ध को विद्वानों के अधीन रखने का उपदेश । (१०) वध किये अश्व के मांसादि की नाना कल्पना आदि अयुक्त अर्थों का खण्डन । शरीर की व्यवस्थावत् राष्ट्र की सुव्यवस्था । अश्वमेध के अश्व के मांस पकाने आदि का खण्डन । (११) त्याग और तप के सत्फल का उपभोग राष्ट्र की भावि प्रजा को मिले (१२) तपस्वी, दृढ़ राष्ट्रपति की परिपक्व अन्न से तुलना । 'मांसभिक्षा' का सत्यार्थ । (१३) भूमि को स्थल, जल आदि का निरीक्षण, पक्षान्तर में आत्मा और शरीर का वैज्ञानिक और दार्शनिक रहस्य । मांस्-पचनी उखा और पात्रों का सत्य रहस्य । (१४) राष्ट्र की अश्व से तुलना । उसके सब कार्यों पर विद्वानों की अध्यक्षता । (१५) राष्ट्रशासक बल और सैन्य का कर्त्तव्य । अश्वसैन्य और राष्ट्रपति की अश्व से तुलना । (१७) अश्व-वत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (१८) अश्व देह की राष्ट्र देह से तुलना (१९) अश्व, काल, संवत्सर और प्रजापति राजा की तुलना (२०) राजा के कर्त्तव्य । (२१) ज्ञानी विद्वान् और राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२२) विद्वान् और राजा के प्रति राष्ट्र का कर्त्तव्य । अश्व मेध के इस सूक्त का सर्वतोमुखी रहस्य । (पृ० २४०–२५६)

सू० [१६३]—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से शिष्य की उत्पत्ति, और विद्वान् होने पर उसकी सफलता । आचार्य का शिष्य के प्रति कर्त्तव्य । यम से दिये अश्व को त्रित का जोड़ना और इन्द्र का उस पर

बैठने और गन्धर्व का लगाम पकड़ने का सत्यार्थ। (३) अश्व की उपमा से ब्रह्मचारी का वर्णन, शिष्य की पुत्र से तुलना। (४) तीन बन्धन (५) आत्म-शुद्ध्यर्थ व्रतों का आचरण (६, ७) शिष्य का कर्त्तव्य अध्यात्म में भक्त का उपास्य-आत्मदर्शन। (८) विद्वान् तेजस्वी के शासन में सब सम्पदाएं। (९) आचार्य, सर्वोच्च पद। अश्व पक्ष की योजना। (१०) जिज्ञासु शिष्यों का कर्त्तव्य (११) वीर, बलवान् राजा और राजा को तेजस्वी होने का उपदेश। (१२) सर्वोपास्य प्रभु। (१३) उत्तम पुरुष का मां बाप के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० २५६–२६६)

सू० [१६४]—गृहपति या राजावत् सप्त प्राण आत्मा का वर्णन पक्षान्तर में सूर्य, राजा परमेश्वर का वर्णन, वाम, पलित, होता का और उसके भ्राता अश्न और घृतपृष्ठ का रहस्य। (२) सात कलायुक्त यन्त्र-वत् आत्मा, सूर्य, संवत्सरात्मक चक्र का वर्णन, एक, त्रिनाभि अनर्व चक्र का रहस्य। (३) सप्त चक्र रथवत् आत्माधिष्ठित देह और परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन। (४) हड्डी वाले देह में बेहड्डी के आत्मा का रहस्य। (५) देह में प्राणों और आत्मा में यज्ञों का विस्तार। वत्स में तन्तु वितान और वयन का रहस्य। (६) सर्वाधार परमेश्वर विषयक प्रश्न। (७) ब्रह्मज्ञानी से आत्मविषयक प्रश्न। शिर से क्षीर दोहने वाली गौओं का रहस्य। (८) माता पिता या दम्पतिवत् सूर्य पृथ्वी और परमेश्वर प्रकृति का वर्णन। गर्भरसा बीभत्सु माता का रहस्य। (९) मातृगर्भ में बालकवत् अन्तरिक्ष में मेघ और प्रकृति गर्भ से जगत्-उत्पत्ति का वर्णन। (१०) सूर्यवत् तीन माता तीन पिताओं के पालक प्रभु का वर्णन। (११) द्वादशर, द्वादशाकृति और षडर सप्तचक्र का वर्णन। (१३) पञ्चार चक्र, आत्मा। (१४) दक्षाश्व रथवत् सर्वाधार आत्मा। (१५) सात सांकंज और ६ ऋषियों का वर्णन। (१६) परमेश्वरी शक्तियों का वर्णन। (१७) सवत्सा गौवत् उषा सूर्य, और परमेश्वर,

शक्ति का वर्णन। (१८) परात्पर प्रभु के विरल ज्ञाता। (१९) समीप के लोकों का विवेक। (२०) विश्व में विद्यमान् जीव ब्रह्म का दो पक्षियोंवत् वर्णन। (२१) रश्मिवत् ज्ञानीजनों का ज्ञानप्रकाश करना। आत्मा के रश्मि इन्द्रियों का वर्णन। (२२) संसार वृक्ष पर मधुभोजी सुपर्ण। (२३) विद्वानों की अमृत पद प्राप्ति। छन्दस्त्रयी ईश्वर स्तुति। (२४) चारों वेदों की उत्पत्ति और उनको ज्ञान करने की विधि। (२५) महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर। (२६) वेद वाणी का गौ के समान ज्ञान-दोहन। आचार्य का सवितावत् ज्ञानवर्षण। (२७, २८) परमेश्वर के माता एवं गौ वत् ज्ञान रसदान, और मातृवत् प्राणि मात्र से प्रेम। (२९) विद्युत् मेघवत् ईश्वर का वेदोपदेश प्रकाश। (३०) देहों में आत्मवत् लोकों में प्रभु की स्थिति। (३१) सूर्यवत् व्यापके प्रभु का अज्ञान-हरण। (३२) अगम्य आत्मा। (३३) जीव और विश्व की उत्पत्ति का रहस्य। (३४-३५) पृथिवी के परम अन्त भुवन की नाभि, महान् आत्मा के विश्वोत्पादक सामर्थ्य और परमाश्रय विषयक प्रश्न और उत्तर। (३६) सूर्यवत् प्रभु का शासन। (३७) जीव की ज्ञानप्राप्ति। (३८) कर्मों से जीव का उच्च नीच योनि में जन्म लेना। (३९) सूर्य में किरणोंवत् परब्रह्म में ज्ञानियों की स्थिति। (४०) गौ के समान परमेश्वरी शक्ति और विदुषी स्त्री का वर्णन। (४१) विद्युत्वत् वैदिक और लौकिक वाणी और विदुषी का वर्णन। (४२) विद्युत्वत् सर्व जीवनधार प्रभुशक्ति। (४३) शकमय धूम, नीहारिका तथा परमेश्वर और गुरु का वर्णन। (४४) तीन किसानों वत् वायु सूर्य के कार्य और उसी प्रकार विश्व के सृष्टि, पालन और संहारकारी प्रभु शक्ति के कार्यों का वर्णन। (४५) चतुष्पदा वाणी का वर्णन। वाणी के चार रूप। परम प्रभु के इन्द्र, मित्र, वरुणादि नाना नामों की व्यवस्था। (४७) किरणोंवत् विद्वानों को प्रभुपद-प्राप्ति। (४८) महायन्त्रवत् अध्यात्म शक्तियों का वर्णन। (४९) सर्वसुखद

सरस्वती नाम परमेश्वर का वर्णन। (५०) विद्वानों की यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना। (५१) वृष्टि जलवत् जीव की उच्च नीच गति का वर्णन। (५२) सर्वाधार सहस्वान् मेघवत् प्रभु। (पृ० २६६–३१४)

सू० [१६५]—अन्तरिक्ष में वायुवत् गुरु के आश्रय छात्रों का ब्रह्मचर्यवास और गुरुसेवा। (२) सूर्य वा प्रभुवत् गुरु की और देह में प्राणों पर आत्मा की स्थिति। (३) अद्वितीय शक्ति के विषय में प्रश्न। (४) प्रभु के वा गुरु के प्रति शान्ति-उपदेश। (५) वीरोंवत् मुमुक्षुओं वर्णन। (६–७) विद्युत्वत् प्रबल नायक। (८) राजा के राष्ट्र में उत्तम कार्य। (९) सर्वोपरि अनुपम प्रभु, स्वामी। (१०) अद्वितीय शासक। (११) वीरों का नायक से सम्बन्ध। (१२) विद्वानों, वीरों का राष्ट्र में, देह में प्राणवत् कर्त्तव्य। (१३) उनका योग्य परस्पर आदर। (१४–१५) परस्पर ज्ञानदान और बल प्राप्ति। (पृ० ३१४–३२६)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [१६६]—शिष्यों का गुरु के अधीन ज्ञानों का लाभ। (२) गृहस्थों के अन्नोपभोगवत् तेजस्वी मुमुक्षुओं की ब्रह्मरति, रुद्र विद्वानों का सर्वोपकार। (४) वायुओं के समान वीरों का प्रयाण। (५) वायु के समान ही वीरों को शत्रूच्छेदन। (६) प्रजाजनों का रक्षण। (७) प्रशंसनीय वीरों के लक्षण। (८) उनके कर्त्तव्य। (९) स्पर्द्धावान् सशस्त्र वीरों का वर्णन। (१०) पक्षियोंवत् सुसज्जित वीरों का वर्णन। (११–१४) सूर्य के अधीन वायुगणवत् सेनापति के अधीन वीरों और गुरु के अधीन शिष्यों का व्रतपालन। (१३) उनका परस्पर सहबन्धुभाव। (पृ० ३२७–३३६)

सू० [१६७]—रक्षक प्रभु की शरण सहस्रों ऐश्वर्यवान् हैं। (२) विद्वानों, धनवानों की राष्ट्र में उत्तम कामना। (३) पत्नीवत् वाणी से सुशोभित विद्वानों का आदर। (४) वीर युवाओं को वायु के दृष्टान्त से नवपत्नी के ग्रहण और रक्षा का उपदेश। (५) सूर्य दीप्तिवत् पुरुष को प्राप्त होने वाली स्त्री के उत्तम लक्षण। (६) यज्ञ में वेद वाणी के गानवत् पुरुष को उत्तम गाथागान का उपदेश। (७) नव गृहस्थों को सत्य प्रतिज्ञा से गृहस्थ निर्वाह का उपदेश। (८) विद्वानों, उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (९, १०) बलवृद्धि का कर्त्तव्य। (पृ० ३३६–३४३)

सू० [१६८]—एक साथ काम करने का उपदेश। विद्वानों को ज्ञानोपदेश करने का कर्त्तव्य। पत्नीवत् उनकी संगिनी शक्ति का वर्णन। वीरों का वायुवत् शासन कार्य। पक्षान्तर में प्राणों का देह में कार्य। (५) विद्युत् युक्त वायुओंवत् मेघ की सशस्त्रास्त्र वीरों का वीरकर्म। (६) परमेश्वर का सर्वोपरि बल। (७) वीरों की प्रबल शक्ति के लक्षण। (९) विद्युतों का यज्ञ से सम्बन्ध। (१०) वीर नायकों के कर्त्तव्य। (पृ० ३४३–३५१)

सू० [१६९] महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का वर्णन। (२) उत्तम दानशीलता। (३) प्रभु की अद्वितीय शासन-व्यवस्था। (४) यज्ञ-दक्षिणावत् प्रभु का समृद्धिदान। (५) मेघवत् प्रभु की उदारता। (६) सेनापति का वर्णन। पक्षान्तर में वायु, विद्युत् मेघवत् गुरु आदि के कर्त्तव्य। (७) परिव्राजकों के वायुवत् कर्त्तव्य। वायु, सूर्यवत् विद्वानों का संशयच्छेदन। (पृ० ३५१–३५३)

सू० [१७०]—मन की अस्थिरता, और भविष्य का अज्ञान। (२) भविष्य के लिये स्वामी, सेनापति को बलवान् होने का कर्त्तव्य।

पञ्चमोऽध्यायः

॥ इति प्रथमं मण्डलम् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्
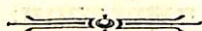
अष्टमोऽध्यायः

में प्रभु का वर्णन । शकुनि, श्येन, शकुन्त, आदि का रहस्य । इति द्वितीयं मण्डलम् । (पृ० ७४४–७४९)

अथ तृतीयं मण्डलम्
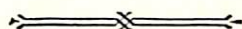
सू० [१]—गुरु और शिष्यों के कर्त्तव्य । राष्ट्र तेजस्वी राजा का वर्णन । (पृ० ७५०–७६५)

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२) राष्ट्रपति का पूज्य पद । (३) विद्वान् गुरु का वरण (५) अग्निवत् नायक का स्थापन उसके कर्त्तव्य । (पृ० ७६५–७७५)

सू० [३]—अग्निवत् प्रधान पद पर स्थित विद्वान् , नायक पुरुष के कर्त्तव्य । (पृ० ७७५–७८३)

सू० [४]—अग्रणी नायक के कर्त्तव्य (४) राजा प्रजाजनों और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । वीरों का कर्त्तव्य । (पृ० ७८३–७९१)

सू० [५]—अग्नि के दृष्टान्त से समर्थ योग्य विद्वान् अधिकारी के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । अग्रणी नायक का वर्णन । (७) जीव के पूनर्जन्म की व्यवस्था । अरणियों से अग्निवत् माता पिता से जीव सर्ग । अग्नि, प्रभु । (पृ० ७९१–८००)

सू० [६]—प्रधान पुरुष का आदर करने का उपदेश । उससे ज्ञान-ग्रहण । माता पिता का कर्त्तव्य । विद्वान् का कर्त्तव्य । (पृ० ८००–८०८)

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति द्वितीयोऽष्टकः ।

---

* ओ३म् *
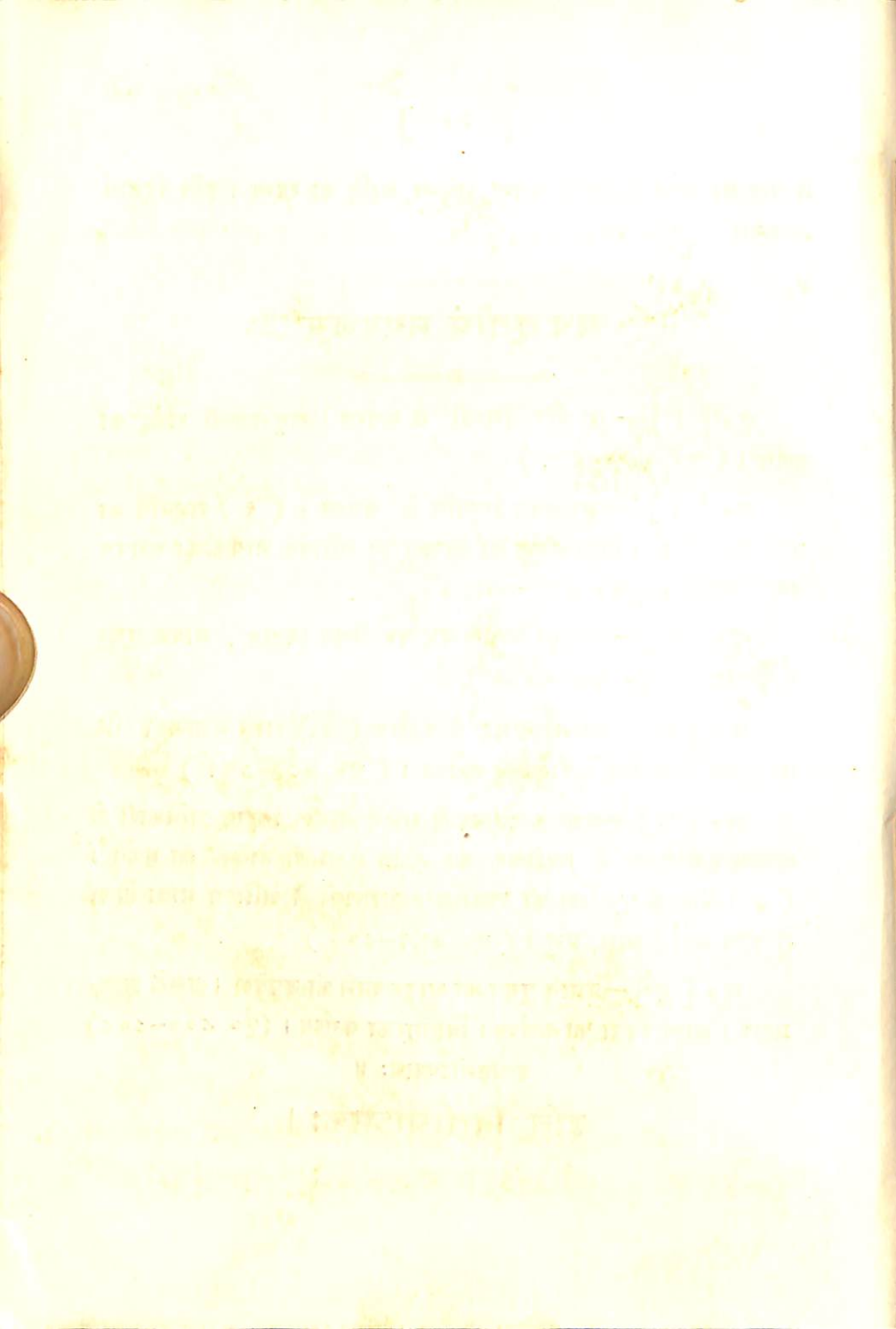
ऋग्वेद-संहिता

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[१२२]

॥ औशिजः कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवताः॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥

भा०—हे (रघुमन्यवः) स्वल्प क्रोधवालो, क्रोधरहित, या ज्ञान की तीव्र भावना वाले पुत्रो ! या शिष्यो ! (वः) तुम्हारे (रुद्राय) दुःखों को दूर करने वाले (मीढुषे) और तुम पर सुखों की वर्षा करने वाले पिता या गुरु के प्रति, (पान्तम्) उनकी पालना करने वाले (अन्धः) अन्न आदि को तथा (यज्ञम्) उचित सत्कार को (प्र भरध्वम्) श्रद्धापूर्वक भेट रूप में लाया करो । (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच (असुरस्य) सबको प्राण देने वाले (दिवः) सूर्य की ओर (इषुध्या इव मरुतः) जल वृष्टि धारक वायुओं के समान (वीरैः) वीर पुरुषों के

साथ विद्यमान (रोदस्योः) विजिगीषु और शत्रु दोनों के बीच स्थित, (असुरस्य) वीर सेनापति के तुल्य माता पिता के बीच स्थित (दिवः असुरस्य) ज्ञान के देने वाले आचार्य के (अस्तोष्यि) गुणों का मैं वर्णन करता हूं ।

पत्नी॑व पू॒र्वहू॑तिं वावृ॒धध्या॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ पुरु॒धा विदा॑ने ।
स्त॒रीर्नात्कं॒ व्यु॑तं॒ वसा॑ना॒ सूर्य॑स्य श्रि॒या सु॒दृशी॒ हिर॑ण्यैः ॥ २ ॥

भा०—(उषासानक्ता पुरुधा विदाने) दिन की न्याईं ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित पुरुष हो, तथा रात्रि की न्याईं सद्गुणों के तारा मण्डल से विभूषित स्त्री हो। ये दोनों नाना विद्याओं के जानने वाले हों। स्त्री (पत्नी इव) सती पत्नी के समान ही (पूर्वहूतिं) पूर्व स्वीकृत पति की (वावृधध्यै) निरन्तर वृद्धि के लिये यत्न करे। वह (स्तरीः) कवच को योद्धा के समान (व्युतम्) विशेष रूप से बुने गये वस्त्र को (वसाना) पहनती हुई (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी और विद्वान् पुरुष की (श्रिया) लक्ष्मी और (हिरण्यैः) हितकारी और रमणीय उत्तम गुणों से और सुवर्ण के आभूषणों से (सुदृशी) सुन्दर, पूजनीय रूप से दीखने वाली तथा उत्तम रीति से सब पदार्थों को देखने वाली, सुलोचना, हो।

म॒मत्तु॑ नः॒ परि॑ज्मा वस॒र्हा म॒मत्तु॒ वातो॑ अ॒पां वृष॑ण्वान् ।
शि॒शी॒तमि॑न्द्रापर्वता यु॒वं न॒स्तन्नो॒ विश्वे॑ वरिवस्यन्तु दे॒वाः ॥३॥

भा०—(वसर्हा) वसने और आच्छादन करने योग्य, गृह-वस्त्रादि से आदर करने हारा, (परिज्मा) उद्यमी या अन्न देने वाला, और (अपां वृषण्वान्) आप्त पुरुषों के हितार्थ मेघके समान ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाला ऐश्वर्यवान् पिता तथा (वसर्हा) अपने समीप बसने वाले शिष्यों को आदर से रखने वाला और उनके द्वारा आदरणीय, (परिज्मा) सबको अन्न तथा ज्ञान प्रदान करनेवाला, और (अपां वृषण्वान्) आप्त या प्राप्त शिष्यों के हितार्थ ज्ञान जलों का वर्षण करने वाला गुरु ये दोनों हमें हर्षित करें।

हे (इन्द्रापर्वता) सूर्य या विद्युत् या वायु और पर्वत या मेघ के समान सर्वोपकारक, ज्ञानप्रकाश और ऐश्वर्य जल, के देने वाले पिता और गुरु! (युवं) आप दोनों (निः शिशीतम्) हम अधीनस्थ ब्रह्मचारियों और सन्तानों को तीक्ष्ण बुद्धि, तपस्या और अभ्यास से शिक्षित करें । और (नः) हमें (विश्वे देवाः) सब विद्वान् और दानशील पुरुष भी (तत् वरिवस्यन्तु) ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करें ।

उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥

भा०—(रास्पिनस्य) परमात्म-स्तुति में तत्पर या सुख-रस के सदा पान करने वाले (आयोः) पुत्र या शिष्य को (मातरा) निर्माण करनेवाले माता पिताओं अथवा गुरु और गुरुपत्नी जोकि (यशसा) ज्ञान से (श्वेतनायै) जगत को श्वेत करने, उज्वल करने के लिये (व्यन्ता) भोजन ग्रहण करते और (पान्ता) जल-पान करते हैं, (त्या) आप उन दोनों का और (वः) आप सब माता पिता, और गुरुजनों का भी मैं (औशिजः) एक दूसरे को श्रद्धा पूर्वक स्वी कार करने वाले या तेजस्वी बाप का पुत्र या गुरु का शिष्य होकर (प्र कृणोमि) अत्यन्त अधिक आदर करता हूं । (हुवध्यै) और वार२ सहायतार्थ आप को पुकारता हूं । आप सब (अपां नपातम्) अपने प्राणों, ज्ञानों और आचारादि कर्तव्यों को न नष्ट होने देने वाले, मर्यादा को सुरक्षित रखने वाले पुत्र या शिष्य को (प्र कृणुध्वम्) उत्तम रीति से सुशिक्षित करो ।

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अर्जुनस्य नंशे) पीडाकारी दुःख के नाश करने के लिये जिस प्रकार (घोषा) वेदवाणी उत्तम उपदेश प्रदान करती है, उसी प्रकार मैं (औशिजः) विद्या प्रेमी गुरु तथा माता पिता का

पुत्र एवं शिष्य होकर (हुवध्यै) सबको ज्ञान देने, तथा सबके (अर्जुनस्य नंशे) दुःख के नाश करने के लिये (अग्नेः वसुतातिम्) ज्ञानमय परमेश्वर के श्रेष्ठ धन स्वरूप वेद ज्ञान का (वः रुवण्युम्) तथा आप लोगों के उत्तम उपदेश और ज्ञान का (पूर्णे) और पुष्टि और वृद्धि करने वाले और (दावने) आगे योग्य पात्रों में विद्या-दान देनेवाले विद्यार्थी को (प्र वोचेय) अच्छी प्रकार प्रवचन करूँ, उन्हें उपदेश करूं । इति प्रथमो वर्गः ॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र, सर्वस्नेही (वरुण) और सर्वश्रेष्ठ पूजनीय, माता पिता, गुरु पत्नी उपदेशक आदि जनो ! आप दोनो (मे) मेरे (इमा) ये (हवा) स्वीकार करने योग्य वचनों का (श्रुत) श्रवण करो तथा (सदने) गृहमें माता-पिताओं और गुरु गृह में गुरु पत्नी तथा गुरु और (विश्वतः) सर्वत्र जगत् में विचरने वाले उपदेशको ! आप सब मेरे वचनों का श्रवण करो । (नः) हमारे वचनों को (सुश्रोतुः) उत्तम श्रवण शील पुरुष अर्थात् पिता गुरु तथा उपदेशक और (श्रोतुरातिः) कान देकर सुननेवाली माता गुरुपत्नी तथा उपदेशिका (श्रोतु) सुने । (सिन्धुः) बहने वाला जलप्रवाह जिस प्रकार (अद्भिः) जलों से (सुक्षेत्रा) उत्तम खेतों को सींच देता है उसी प्रकार आप हमारे हृदय-क्षेत्रों को उपदेशामृत से सींचिये ।

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७॥

भा०—हे (वरुण) गुणों में उत्कृष्ट ! पापों से निवारक ! (मित्र) तथा स्नेहवान् दोनों प्रकार के सज्जनो ! (वां स्तुषे) मैं आप दोनों की स्तुति करता हूं । क्यों कि (गवां शता) सैकड़ों गौओं और भूमियों के समान उपकार करने वाली, या अमूल्य सैकड़ों ज्ञानवाणियां का

(पृक्षयामेषु) प्रश्न करने योग्य ज्ञानरहस्यों के निमित्त यम नियमों का आचरण करने वाले ब्रह्मचारियों में (वां) तुम दोनों का (रातिः) दान ही श्रेष्ठ दान है । जिस प्रकार लोग (पज्रे) गमन करने वाले रथ में पुष्टिं दधानाः निरुन्धानासः) पोषणकारी धन सम्पत् और अन्नादि रखकर और उसकी रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार पिता गुरु तथा उपदेशक आदि (निरुन्धानासः) प्रिय शिष्यों को कुमार्गों से रोकते हुए अथवा अपनी इन्द्रियों को विषय-विलासों से रोकते हुए और जितेन्द्रिय होकर (पज्रे) प्राप्तव्य (श्रुतरथे) गुरुपदेश से श्रवण करने योग्य, रमणीय, और (प्रियरथे) अतिप्रिय रस-स्वरूप आत्मा में (पुष्टिम्) पोषण सामर्थ्य को (दधानाः) धारण करते हुए (सद्यः) शीघ्र ही (अग्मन्) गमन करते हैं, आगे बढ़ते हैं ।

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥

भा०—मैं पुत्र या शिष्य (अस्य) इस (महिमघस्य) महान् एवं पूजा योग्य उत्तम धन अर्थात् श्रेष्ठ विधि से कमाए हुए धन या विद्या के स्वामी अर्थात् पिता या गुरु की (राधः) सम्पत्ति की (स्तुषे) प्रशंसा करता हूं जिस सम्पत्ति को हम (सुवीराः) उत्तम वीर (नहुषः) पुरुष (सनेम) स्वयं लेकर अन्यों के प्रति दान करें । (यः) जो स्वामी (पज्रेभ्यः) बलवन्तों को (वाजिनीवान्) ज्ञान और अन्न रूप सम्पत्ति का देने वाला है और (मह्यं च) मुझ पुत्र या शिष्य के हित के लिये मुझे (सूरिः) सन्मार्ग पर चलाने वाला है, मैं (अस्य अश्वावतः) उस इन्द्रियों के स्वामी और (रथिनः) शरीर-रथ के स्वामी की स्तुति करता हूं, उसकी प्रशंसा करता हूं ।

जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (जनः) पुरुष, हे (मित्रावरुणा) स्नेह करने वाले तथा श्रेष्ठ या दुःखों से निवारण करने वाले माता पिता ! या गुरु पत्नी और गुरु ! आप दोनों से (अभिध्रुक्) द्रोह करता है. और जो (अक्षणयाध्रुक्) सीधे द्रोह न करके, टेढ़े तरीके से द्रोह करके (वां) आप दोनों के सम्बन्धकी (अपः) सत्कारादि क्रियाओं को (न सुनोति) अच्छी प्रकार नहीं अनुष्ठान करता (सः) वह (स्वयं) आप से आप (हृदये) हृदय में (यक्ष्मं) पीड़ा, क्लेश, आदि कष्टको (निधत्ते) प्राप्त होता है। और (यत्) जो (होत्राभिः) सत्कार वाणियों द्वारा आपका सत्कार करता है (ऋतावा) वह सत्य मार्ग पर चलनेवाला (ईम् आप) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करता है।

स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१०॥२

भा०—(सः) वह (व्राधतोः नहुषः) बड़े२ मनुष्यों में भी महान् होजाता है जो कि (दंसुजूतः) अपनी इन्द्रियों का दमन कर उन द्वारा प्रेरित होता है, (शर्धस्तरः) जो अत्यन्त बलशाली है, (गूर्तश्रवाः) और नरों में जिस के उद्यम का यश फैला हुआ है, (विसृष्टरातिः) जो संसार में विद्या आदि का दान करता है, (याति बाढसृत्वा) और जो उत्तम कर्मों के करने वाला होकर विचरता है,(विश्वासु पृत्सु सदम् इत शूरः) तथा जो सम्राट् बुरे अर्थात् असुर भावों के साथ युद्धो में सदा विजयी, शूर साबित होता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

भा०—हे (राजानः) विद्या और ऐश्वर्य से प्रकाशमान ! हे (मन्द्राः) सबको आनन्द देने और स्वयं आनन्दित होने वाले, एवं स्तुत्य जनो ! आप लोग (सूरेः) विद्यावान्, सबके प्रेरक, (अमृतस्य) अमरण धर्मा नित्य

(नहुषः) सबको एक सूत्र में बाँधने हारे, परम पुरुष के (हवं) उत्तम वचन और स्तुति को (श्रोत) श्रवण करो और (ग्मन्त) सुन कर उस मार्ग पर चलो। (यत्) क्योंकि (नभोजुवः) वायु में वेग देने वाले आकाश में प्रेरणा देने वाले, (निरवस्य) निःशेष समस्त ज्ञानों और रक्षण सामर्थ्य वाले परमेश्वर की (राधः) आराधना या उस द्वारा दिया ऐश्वर्य (महिना) महान् सामर्थ्य से (रथवते) रमण साधन रूप देह को धारण करने वाले आत्मा के (प्रशस्तये) उत्तम उत्तम प्रशासन या ज्ञान प्राप्ति के लिये होता है।

एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२॥

भा०—(यस्य) जिस (सूरेः) सबके प्रेरक और सर्वोत्पादक (दशतयस्य) दशों दिशाओं में व्यापक परमेश्वर के ही (नंशे) समस्त संसार का प्रलय द्वारा नाश करने में (एतं) इस (शर्धः) बड़े भारी बल का और (नंशे) जगत् को व्यापने में जिसके (धाम) बड़े भारी धारण सामर्थ्य का विद्वान् जन (अवोचन्) वर्णन किया करते हैं वह (वसुतातिः) समस्त वसने वाले जीवों और वसने योग्य लोकों के विस्तार करने वाला है। हे विद्वान् पुरुषो! (येषु) जिन श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों के, या श्रेष्ठ पुरुषों के आश्रय पर आप (विश्वे) सब लोग (द्युम्नानि) नाना ऐश्वर्यों को (रारन्) भोगते हो उनसे (प्रभृथेषु) उत्तम प्रकार से सब का भरण पोषण करने वाले अनेक यज्ञ आदि कामों में और राजा, पुरोहित आचार्य आदि श्रेष्ठ पुरुषों में अपने (वाजम्) ऐश्वर्य का (सन्वन्तु) दान किया करो।

मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥

भा०—हम साधक लोग उस (दशतयस्य) दसों प्रकार के सर्गों को वा दशों दिशाओं से युक्त जगत् को (धासेः) धारण करने वाले परमेश्वर की

(मन्दामहे) स्तुति करते हैं। (यत्) जिसके आश्रय पर (द्विः पञ्च) वे दसों प्रकार के सर्ग, या दसों दिशा वासी प्रजाजन (अन्नं बिभ्रतः) अन्नों को धारण करते हुए (यन्ति) उद्देश्य को प्राप्त होते हैं, गुजर रहे हैं। (एते किम् ईशानासः) ये सूर्य आदि लोक भी या बड़े २ राजा महाराजा भी क्या स्वयं सामर्थ्यवान् हैं ? ये क्या ईश्वर हैं ? अर्थात् उस परमेश्वर की तुलना में ये सब तुच्छ हैं। वह परमेश्वर ही (इष्टाश्वः) समस्त वेगवान्, मन, अग्नि आदि व्यापक पदार्थों का इष्ट अर्थात् प्रेरक है वही (इष्ट-रश्मिः) समस्त रश्मियों का घोड़ों के सारथी के समान प्रेरक और संचालक, सबकी बागडोर चलाने वाला है। वही परमेश्वर (तरुषः) आकाश मार्ग से सूर्य के समान जाने वाले समस्त नक्षत्रादि लोकों को और (नॄन्) समस्त नायकों या पुरुषों को (ऋञ्जते) चलाता और वश करता है। [२] अध्यात्ममें यह आत्मा दशविध प्राणगणका धारक होने से 'धासि' है। जिसके आश्रय-पर ये दसों प्राण अन्नों को भोगते रहते हैं। वह आत्मा अश्व अर्थात् इन्द्रिय और रश्मि अर्थात् ज्ञान तन्तुओं का प्रेरक है। (एते किमीशानाः) ये प्राणगण तो क्षुद्र शक्तिवाले हैं। वह इन गतिशील नायक प्राणों को भी वश करता है।

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विनयशील योद्धाजन तथा विद्वान् पुरुष मिलकर (नः) हमारे में से (हिरण्यकर्णं) कान में सुवर्ण के कुण्डल पहने और (मणिग्रीवम्) गले में मणियों की माला पहने, उत्तम नायक पुरुष का (तत् अर्णः) वह उत्तम जल, अर्घ्य, पाद्य, आचमन और अभिषेक आदि के योग्य जल (वरिस्यन्तु) प्रदान कर उसकी सेवा करें। और (अस्मे) हमारे हित के लिये (उभयेषु) हमारे अपने और परायों के बीच में (देवाः) उत्तम विद्वान् पुरुष उसको (चाकन्तु) चाहें। (अर्यः) वह सबका स्वामी पुरुष (सद्यः) शीघ्र ही (जग्मुषीः) ज्ञान करने योग्य

(गिरः) वाणियों, समस्त भाषाओं और वेदवाणियों को और (उस्राः) दुधार गौवों को (आ) प्राप्त करें। (२) अध्यात्म में-आत्मा या इष्टदेव तेजो मय, हित और रमणयोग्य साधनों से और प्राणों से युक्त होने हिरण्यकर्ण है। मननशील मनद्वारा समस्त ग्राह्य ज्ञानों का लेनेवाला होने से मणिग्रीव है, देह का स्वामी होने से अर्थ है वह समस्त वाणियों को वश करता है। (देवाः) सब प्राण उस वरिष्ठ प्राण आत्मा को चाहते और उसके अधीन रहते हैं।

चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ।१५।३।

भा०—(मशर्शारस्य) दुष्टों को नाश करने और (जिष्णोः) विजय करने वाले (राज्ञः) राजा के (चत्वारः) चारों वर्ण और चारों आश्रम, या सेना के चारों अंग और (आयवसस्य) सर्वत्र व्यापक अन्नादि सामग्री के स्वामी पुरुष के (त्रयः) तीन,अध्यक्ष जन, भृत्यजन और प्रजाजन ये सब (शिश्वः) शिशु या बालक के समान पालन करने एवं शासन करने योग्य हैं। वे सब (मा) मुझ प्रजाजन को प्राप्त हों। हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण! सर्वस्नेही और सर्वश्रेष्ठ, या दुष्टों के निवारक ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग! आप दोनोंका (रथः) धारण करने योग्य, रथ के समान यह राष्ट्र (दीर्घाप्साः) विशाल रूप और काय वाला और विस्तृत उत्तम गुणों से युक्त (स्यूमगभस्तिः) सुखकारी किरणों वाले (सूरः न) सूर्य के समान (स्यूमगभस्तिः) सुखकारी शासन प्रबन्ध से युक्त होकर (अद्यौत्) प्रकाशित हो [२] देहके अधिष्ठाता राजा आत्मा, बाधक कारणों पर विजय करने से 'विष्णु' है। अन्नादि का स्वामी होने से आयवस' है। अज्ञान नाशक होने से ही 'मशर्शार' हैं। ४+३=७ प्राण उसके शिशु हैं। अथवा यह मुख्य आत्मा स्वयं सब में व्यापक होने से 'शिशु' है। उसके ये सातों सेवक हैं! मित्र वरुण, प्राण और अपान है। उन में रमणकारी (रथः)

रस रूप आत्मा महान् रूपवान् और कर्मवान् होकर, सुखकारी साधनों से युक्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होता है। ,शिशु' आत्मा का वर्णन देखो बृहदारण्यक उपनिषद्)। इति तृतीयो वर्गः।

॥ १२३ ॥

दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७, ६, २०, १३, विराट् त्रिष्टुप्। २ ४, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णादुदस्थादर्या३विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥

भा०—(दक्षिणायाः) यज्ञ में दाये भाग में विराजने वाली वधू का (पृथुः रथः) विशाल रथ (अयोजि) जोड़ा जावे। और उसमें (अमृतासः) कभी नाश न होने वाले (देवासः) प्रकाशमान, दीप्तियुक्त रत्न (अस्थुः) लगाये जावें (अर्या) गृहकी स्वामिनी नव वधू (कृष्णात्) वियोग से शोकातुर होते हुए पितृगृह से (मानुषाय क्षयाय) अपने पतिसम्बन्धी गृहों के प्राप्त होने के लिये अपना मनोरथ करती हुई (विहायाः) विशेष आदर युक्त होकर (उत् अस्थात्) उस रथ पर चढ़े।

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

भा०—(उषा) प्रभात बेलाके समान उत्तम कमनीय गुणों से युक्त कन्या (विश्वस्मात् भुवनात्) समस्त संसार से (पूर्वा) पूर्व (अबोधि) प्रवुद्ध हो, जागे। वह (वाजं) ऐश्वर्य और अन्नको और संग्राम को (जयन्ती) विजय करने वाली सेना के समान सबके चित्तोंपर विजय प्राप्त करती हुई (बृहती) बड़ी गुणवती (सनुत्री) यथायोग्य भोजन, मान, आदर का विभाग करने वाली (युवतिः) युवति, हृष्ट पुष्ट वयसवाली, (उच्चा)

उच्च, उत्कृष्ट गुणों को (वि अख्यत्) प्रकाशित करे । वह (पुनर्भूः) उषा के समान पुनः २ प्रतिदिन सदा नये प्रसन्न रूप में प्रकट होती हुई (पूर्वहूतौ) अपने पूर्व विद्यमान, विद्यावृद्ध और वयो वृद्धों के आदर सत्कार के कार्य और गृहस्थाश्रम में (प्रथमा) सबसे मुख्य होकर (आ अगन्) प्राप्त हो ।

यद॒द्य भा॒गं वि॒भजा॑सि नृ॒भ्य उषो॑ देवि मर्त्य॒त्रा सु॑जाते ।
दे॒वो नो॒ अत्र॑ सवि॒ता दमू॑ना॒ अना॑गसो वोचति॒ सूर्या॑य ॥ ३ ॥

भा०—हे (सुजाते) उत्तम कुल वंश और गुणों में प्रकट होने वाली ! (उषः देवि) प्रभात बेलाके समान कमनीय गुणों से युक्त देवि ! कन्ये ! (यत्) तू (अद्य) आजके समान सदा ही (नृभ्यः) उत्तम पुरुषों के लिये (भागं) सेवन करने योग्य अन्न आदि का (विभजासि) विशेषरूप से विभाग किया कर । (अत्र) इस गृहाश्रम के क्षेत्र में (नः) हममें से (दमूना) गृहका स्वामी, दमनशील चित्त वाला, जितेन्द्रिय (देवः) दानशील विजिगीषु पुरुष ही (सविता) पुत्रों को उत्पादन करने वाला तेरा पति हो । ऐसा ही (दमूनाः) जितेन्द्रिय, (देवः) विद्वान् (सविता) सबका उत्पादक आचार्य विद्वान ही (नः अनागसः) पाप कर्मों से रहित हम शिष्य और जिज्ञासु जनों को (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी होने के लिये (वोचति) उपदेश करे ।

गृ॒हङ्गृ॑हमह॒ना या॒त्यच्छा॑ दि॒वेदि॑वे॒ अधि॒ नाम॒ा दधा॑ना ।
सिषा॑सन्ती द्योत॒ना शश्व॒दागा॒दग्र॑मग्र॒मिद्भ॑जते॒ वसू॑नाम् ॥ ४ ॥

भा०—(अहना) प्रकाश से फैलने वाली, प्रभात वेला जिसप्रकार (दिवे दिवे दधाना) प्रतिदिन नव स्वरूप धारण करती हुई । (गृहं गृहम् अच्छ याति) प्रति गृह में प्राप्त होती है उसी प्रकार (अहना) सबके समक्ष गुणों का प्रकाश करने वाली अथवा (अहना) कभी भी न ताड़ने और न व्यथा पाने योग्य, अतिकोमल स्वभाव की, अक्षता नववधू (दिवे दिवे) प्रति दिन (नाम अधि) अपने विनयशील स्वभाव को अधिका-

धिक (दधाना) धारण करती हुई (गृहं गृहम्) प्रत्येक गृहको (अच्छ याति) भली प्रकार आदर से प्राप्त होती और वह (द्योतना) उषाके समान ही अपने गुणों का प्रकाश करती हुई (सिषासन्ती) समस्त ऐश्वर्यों को सेवन करती हुई (शश्वत्) सदा (वसूनां) वसने हारे, गृहस्थ में प्रवेश करने हारे विद्वान् नवयुवकों में से (अग्रम् अग्रम् इत्) सबमें श्रेष्ठ युवक को ही (भजते) प्राप्त हो । अथवा—(वसूनाम् अग्रम् अग्रम् इत् भजते) ऐश्वर्यों में से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त करे ।

भग॑स्य॒ स्वसा॒ वरु॑णस्य जा॒मिरुषः॑ सूनृते प्रथ॒मा ज॑रस्व ।
प॒श्चा स द॑ध्या॒ यो अ॒घस्य॑ धा॒ता जये॑म॒ तं दक्षि॑णया॒ रथे॑न ॥५॥४॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! तू (भगस्य-स्वसा) सूर्य के समान उत्पन्न होने वाली, मानो उसकी बहिन, प्रभात वेला के समान ही (भगस्य) सुख, सेवने योग्य ऐश्वर्य की (स्वसा) स्वयं प्राप्त करने और कराने वाली, ऐश्वर्य के साथ ही मानो उत्पन्न, ऐश्वर्य की भगिनी के समान साक्षात् गृहलक्ष्मी है ।(वरुणस्य जामिः) उषा जिस प्रकार वरण करनेयोग्य अन्धकार के वारण करने वाले सूर्य की 'जामि' अर्थात् भगिनी है, वह उसके साथ उत्पन्न होती है, अथवा उषा (वरुणस्य) सबको आवरण करने वाले रात्रिरूप अन्धकार की (जामिः) कन्या है उसी प्रकार हे कन्ये ! तू भी (वरुणस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष की (जामिः) अपत्य उत्पन्न करने हारी, अथवा दुःखों से वारण करने वाले भ्राता की भगिनी है । हे (सूनृते) शुभ वाणी बोलने हारी, श्रेष्ठ आचारशीले, अथवा, हे (सूनृते) उत्तम धन-ऐश्वर्यवति ! तू (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (जरस्व) उत्तम गुणों का बखान कर, या स्वयं उत्तम स्तुति को प्राप्त कर । और (यः) जो (अघस्य) पापका (धाता) पोषण करने वाला, कष्टों का देने वाला है (सः) उसको (पश्चा दध्याः) पीछे कर,उसका तिरस्कार कर । और (तं) उसको हम लोग (दक्षिणया) अति बलवती सेना से और (रथेन) रथबल से (जयेम) विजय करें । इति चतुर्थो वर्गः ।

उदी॑रतां सू॒नृता॒ उत्पुर॑न्धी॒रुद॒ग्नय॑: शुशुचा॒नासो॑ अस्थुः ।
स्पा॒र्हा वसू॑नि॒ तम॒साप॑गूळ्हा॒विष्कृ॑ण्वन्त्यु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥ ६ ॥

भा०—(उषसः) प्रातः वेलाएं जिस प्रकार (तमसा अपगूढानि) अंधकार से छुपे, (स्पार्हा वसूनि) अभिलाषा करने योग्य नाना ऐश्वर्यों और बसे हुए प्राणियों को और (विभातीः) विशेष रूप से चमकने वाली दीप्तियों को प्रकट करती हैं उसी प्रकार (उषसः) कान्तिमती, उत्तम स्त्रियें (तमसा अपगूढानि) अन्धकार में छिपे नाना (स्पार्हा वसूनि) अभिलाषा करने योग्य उत्तम ऐश्वर्यों को (आविः कृण्वन्ति) प्रकट करें। और (विभातीः) विशेष दीप्तियों का प्रकाश करें। (सूनृताः) उत्तम वाणियें, (उत् ईरताम्) उठें। वेद वाणियां उच्च स्वर से पढ़ी जावें (पुरन्धीः) पुर अर्थात् देह, गृह आदि को धारण करने वाली युवतियां (उत् ईरताम्) उन्नति को प्राप्त हों, उठें और (शुशुचानासः) अति प्रदीप्त, शुद्ध स्वच्छकारक (अग्नयः) यज्ञाग्नियें और विद्वान् जन (उत् अस्थुः) उठें, प्रज्वलित हों और विद्वान् जन (उत् अस्थुः) उत्तम पद प्राप्त करें।

अपा॒न्यदेत्य॒भ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ विषु॑रूपे॒ अह॑नी॒ सं च॑रेते ।
प॒रि॒क्षितो॒स्तमो॑ अ॒न्या गुहा॑क॒रद्यौ॑दु॒षाः शोशु॑चता॒ रथे॑न ॥ ७ ॥

भा०—(अहनी) दिन और रात्रि दोनों (विषुरूपे) तम और प्रकाश से विपरीत रूप के होकर भी (संचरेते) एक साथ गति करते हैं। इन दोनों में से (अन्यत् अप एति) एक हटता है, दूर जाता है, तो (अन्यत्) दूसरा उसके (एति) सन्मुख आजाता है। (परिक्षितोः) समीप २ साथ निवास करते हुए दोनों में से (अन्या) एक, रात्रि (गुहा) अन्तरिक्ष में (तमः अकः) अन्धकार को फैलाती है तो दूसरी (उषाः) उषा, प्रभातवेला, (शोशुचता) अति दीप्तियुक्त चमचमाते (रथेन) रथ अर्थात् तीव्र प्रकाशवान् सूर्य से (अद्यौत्) प्रकाशित होती है। इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष भी (विषुरूपे) भिन्न २ स्वभाव के या (वि-सु रूपे) विशेष

सुन्दर, रूपवान् पति पत्नी (अहनी) एक दूसरे के हृदय को व्यापने और प्रकाशित करने वाले होकर (सं चरेते) एकसाथ ही सांसारिक सुखका भोग करें । उनमें (अन्यत् अप एति) एक परे होवे तो (अन्यत् अभि एति) दूसरा सामने आवे अर्थात् यदि एक व्यक्ति उत्तम कार्य करता २ थककर विश्राम करे तो उसका स्थान दूसरा ले । अथवा एक स्त्री लज्जावश होकर परे रहती है तो दूसरा साथी पुरुष (अभि एति)सन्मुख रहता है । (परिक्षितोः) साथ ही निवास करने के लिये उन दोनों में से (अन्या) एक मेम्बर, स्त्री (गुहा) बुद्धि में यदि (तमः) अन्धकार के समान खेद, शोक आदि प्रकट करे तो दूसरा (उषाः) प्रभात के समान प्रकाश वाला होकर (शोशुचता रथेन) अति दीप्तियुक्त, रमण करने योग्य स्वरूप से (अद्यौत्) प्रकाशित हो और खेद आदि अन्धकार को दूर करे ।

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥

भा०—प्रभातवेलाएँ जिस प्रकार (अद्य) आज (सदृशीः) समान रूप से दीखती हैं (उ श्वः सदृशीः इत्) उसी प्रकार कल अर्थात् भविष्य में भी दीखती हैं । उसी प्रकार उत्तम सुन्दर स्त्रियें भी (अद्य सदृशीः) जिस प्रकार गुणों से युक्त अपने पतियों के अनुरूप हों उसी प्रकार श्वः इत् उ सदृशीः) कल, भविष्य में भी सदा तदनुरूप बनी रहें । वे (अनवद्याः) निन्दनीय आचारों से रहित, उत्तम आचारवाली होकर (वरुणस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के (दीर्घं) चिरकालतक निवास करने योग्य (धाम) गृहको (सचन्ते) प्राप्त हों । जिस प्रकार उषाएं वरणीय सूर्य के दीर्घ विस्तृत प्रकाश को प्राप्त होती हैं और जिस प्रकार (त्रिंशतं योजनानि) उषाएं सूर्योदय के स्थान से आगे ३० । ३० योजन दूरतक दीखती है और (एकैका अकेले २ भी क्रतुं परि यन्ति)प्रत्येक यज्ञ या अपने कर्त्ता सूर्य के आश्रय पर रहती हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी (त्रिंशतं योजनानि) कम से कम ३०।३०

योजन अर्थात् १२० कोश दूर तक (सद्यः) नित्य (क्रतुं परियन्ति) अपने 'क्रतु' अर्थात् कर्त्ता, पतिको प्राप्त हों। वे समीप २ विवाहित न होवें।

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती॥ ६॥

भा०—(अह्नः प्रथमस्य) दिनके आदि भाग, पूर्वाह्न के (नाम) स्वरूपको जानती जनाती हुई (श्वितीची) श्वेत वर्ण से युक्त, उज्ज्वल (शुक्रा) कान्तिमती उषा जिस प्रकार (कृष्णात्) काले अन्धकार के बीचमें से (अजनिष्ट) प्रकट होती है और वह (अहः-अहः) नित्य (निष्कृतम्) नियत, निश्चित रूप से उत्तम शोभासम्पन्न प्रकाश (आचरन्ती) करती हुई (ऋतस्य धाम) आदित्य के तेज को (न मिनाति) नष्ट नहीं होने देती प्रत्युत उसकी और भी वृद्धि करती है उसी प्रकार (योषा) दो कुलोंको मिलाने हारी स्त्री (प्रथमस्य नाम जानती) अपने कुल में अति प्रसिद्ध आदि वंश कर्त्ता का गोत्रनाम उच्चारण करती हुई (श्वितीची) स्वयं शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई (शुक्रा) कान्तिमती तेजस्विनी, चाहे (कृष्णात्) कृष्ण अर्थात् हीन कर्म करने वाले कुलसे भी अजनिष्ट) उत्पन्न हुई हो, वह भी (निष्कृतम्) शास्त्रादिसे निश्चित, उत्तम शोभाजनक कार्य का (आचरन्ती) आचरण करती हुई (ऋतस्य) सत्य व्यवहार या वेद, या सत्याचरण युक्त पुरुष के (धाम) स्थान, गृह आदि का (न मिनाति) नाश नहीं करे, प्रत्युत उसको उत्तम रीति से बसावे।

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥ १०॥ ५॥

भा०—(कन्या इव) कन्या जिस प्रकार (तन्वा) अपने शरीर से (शाशदाना) अपना स्वरूप प्रकट करती हुई (इयक्षमाणम्) अपने साथ संयुक्त (देवं) अपने योग्य एवं कामनाशील, प्रिय पति को प्राप्त होती है उसी प्रकार हे (देवि) तेजस्विनि! तूभी (तन्वा शाश-

दाना) अपने विस्तृत प्रभामय स्वरूपसे प्रकट होती हुई (देवम्) तेजस्वी (इयक्षमाणं) अपने से सुसंगत सूर्य को (एषि) प्राप्त होती है । और जिस प्रकार (युवतिः) जवान स्त्री (संस्मयमाना) भली प्रकार मुस्कराती हुई (विभातीः) विशेषगुणों से प्रकाशित होती हुई (पुरस्तात्) अपने पति के समक्ष (वक्षांसि आविः कृणुते) अपने बाहुमूल आदि अंगों को प्रकट करती है उसी प्रकार हे उषा ! तू भी (संस्मयमाना) मानो प्रकाश किरणों से मुसकाती हुई (विभातीः) प्रकाशों से प्रकाशित होती हुई (पुरस्तात्) सब के समक्ष (वक्षांसि) नाना रूपों को (आविः कृणुषे) प्रकट करती है ।
इति पञ्चमो वर्गः ।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

भा०—उषा जिस प्रकार (तन्वं आविः) विस्तृत प्रभामय देहको प्रकट करती है, (वितरं विच्छति) दूरतक अन्धकार को दूर करती है । उसी प्रकार हे (उषः) प्रभातवेला के समान कमनीये ! नवयुवति ! (योषा) दोनों कुलों को मिलाने हारी तू (सुसंकाशा) उत्तमरीति से सुशिक्षित होकर (मातृमृष्टा इव) माता द्वारा अच्छीप्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार, उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित की जाकर (दृशे) दिखाने के लिये (तन्वं) अपने शरीर को (आविः कृणुषे) प्रकट कर । (त्वम्) तू (भद्रा) मंगल आचार वाली हो कर (वितरं वि उच्छ) खूब अपने उत्तम गुणोंको प्रकट कर । (अन्या उषसः) अन्य कमनीय कन्याएं भी (ते) त (तत्) उस रूपादि शोभा को (न नशन्त) प्राप्त न हों । अर्थात् तू सबसे अधिक सुशोभित हो ।

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥

भा०—(उषासः) जिस प्रकार उषाएं (सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानाः)

सूर्यकी किरणों से यत्नशील होती हुई, (अश्वावतीः) व्यापक प्रकाशों या सूर्य से युक्त, (गोमतीः) किरणों से युक्त, (विश्ववाराः) सबसे वरण करने योग्य या समस्त विश्वको व्यापने वाली हो कर (नाम वहमानाः) सुन्दर रूप धारण करती हुई (परा यन्ति च पुनः आ यन्ति च) चली जाती हैं और फिर आजाती हैं। उसी प्रकार (उषासः) पतियों की कामना करती हुई कमनीय नववधुएं भी (अश्वावतीः) हृदय में व्यापक गुणवान् बलवान् पतिसे युक्त, या रथमें लगे अश्वों और (गोमतीः) गौ आदि पशुसमृद्धि से सम्पन्न हो कर (विश्ववाराः) समस्त पुरुषों से वरणीय, उत्तम अथवा समस्त संकटों को दूर करने हारी, (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की रश्मियों तेजों और नियामक शासनों से (यतमानाः) गृहोद्योग करती हुई, (नाम) सुन्दर स्वभाव, विनय और उत्तम नाम, ख्याति (वहमानाः) धारण करती हुइ (भद्राः) कल्याण आचरण, मंगल जनक गुणों वाली होकर (परा यन्ति च पुनः आ यन्ति च) पतियों के संग दूरदेश में भी जावें और पुनः अपने पिता के घर लौट भी आवें।

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः॥१३॥६

भा०—हे (उषः) प्रभातवेला के समान कमनीये! कान्तिमति! जिस प्रकार प्रभातवेला (ऋतस्य रश्मिम् अनु यच्छमाना) सूर्यके किरण के अनुकूल प्रकाश करती हुई हममें (भद्रम् भद्रम्) अतिकल्याणजनक ज्ञान, कर्म, बल धारण कराती है उसी प्रकार (ऋतस्य रश्मिम्) सत्य ज्ञानमय वेद के ज्ञान प्रकाश के (अनु यच्छमाना) अनुसार उद्योग करती हुई (अस्मासु) हममें (भद्रं भद्रं) अति सुख और कल्याणजनक (क्रतुम्) यज्ञ आदि कर्म, धर्माचरण को (अस्मासु) हमारे बीचमें (धेहि) धारण करा, स्थापन कर। तू (अद्य) आज और आजके समान सदा (सुहवा) उत्तम ज्ञानोपदेश से युक्त होकर

(नः) हमारे बीच (वि उच्छ) अज्ञानों को नाश कर। और (अस्मासु) हम (मघुवत्सु च) नाना ऐश्वर्य वालों के बीचमें (रायः) विविध ऐश्वर्य (स्युः) प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः ॥

॥ १२४ ॥

कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ उषो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ७, ११ त्रिष्टुप्। १२ विराट्त्रिष्टुप्। १, १३ भुरिक् पङ्क्तिः। ५ पङ्क्तिः। ८ विराट् पङ्क्तिश्च ॥ द्वादशर्चं सूक्तम्।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पादित्यै ॥ १ ।

भा०—जिस प्रकार (उच्छन्ती उषा) अन्धकार दूर करती हुई उषा, प्रभातवेला (अग्नौ समिधाने) अतिप्रदीप्त होते हुए सूर्यरूप अग्नि के आश्रय पर (उर्विया ज्योतिः अश्रेत्) बहुत अधिक प्रकाश को प्राप्त करती है, या महान् ज्योतिर्मय सूर्य का आश्रय लेती है। और (उद् यन्) उदय को प्राप्त होता हुआ (सूर्यः) सबका प्रेरक और प्रकाशक सूर्य भी (उर्विया) उस विशाल पृथ्वी, या अपने, या उषाके साथ ही (ज्योतिः अश्रेत्) परम तेज को प्राप्त करता है। उसी प्रकार (समिधाने अग्नौ) अग्नि के प्रदीप्त होने पर (उषा) पतिकी कामना करने हारी, कान्तिमती कन्या (उच्छन्ती) अपने गुणों का प्रकाश करती हुई (उर्विया ज्योतिः अश्रेत्) बड़े भारी ज्योति, प्रकाश या शोभा, या ज्ञानवान् पुरुष का आश्रय ले। और इसी प्रकार (उद् यन् सूर्यः) उदित होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (उर्विया ज्योतिः अश्रेत्) ज्ञानाग्निके प्रदीप्त होने पर बड़ी कान्तिमती पृथ्वीरूप स्त्रीका आश्रय ले। (अत्र) इसी गृहस्थाश्रम कार्य में (सविता देवः) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर (नु) शीघ्र (नः अर्थं) हमें इष्ट प्रयोजन और (इत्यै) इष्ट प्राप्ति या जाने

आने के लिये (द्विपत् चतुष्पत्) दोपाये, चौपाये, भृत्यादि और पशु धन को भी (प्र असावीत्) प्रदान करे।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभातवेला, (दैव्यानि व्रतानि अमिनती) देव, परमेश्वर सम्बन्धी व्रतों, उपासना आदि कर्मों का लोप न करती हुई (मनुष्या युगानि) मनुष्य सम्बन्धी वर्षों को (प्रमिनती) उत्तम रीतिसे मान करती हुई (इयुषीणाम् उपमा) अभी तक आई समस्त उषाओं के सदृश और (आयतीनां प्रथमा) आगे आनेवाली समस्त उषाओं को प्रथम, मुख्य होकर (वि अद्यौत्) विशेष रूप से प्रकाशित होती है उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त वधू (दैव्यानि) देव, परमेश्वर, आचार्य, माता, पिता, पति आदि मान्य पुरुषों, या उपासना सेवा, शुश्रूषा आदि नित्य धर्मों तथा उनके उपदेश किये कर्मों का (अमिनती) कभी भी लोप न करती हुई और (मनुष्या) मनुष्य जति के (युगानि) युगों अर्थात् भिन्न २ युगों, कालों, समयों का (प्रमिनती) निर्माण करती हुई (इयुषीणाम् उपमा) पूर्व आई उत्तम स्त्रियों के बीच उपमा देने योग्य, अनुकरणीय आचरण वाली, आदर्श हो कर और (आयतीनां प्रथमा) और आगे, भविष्य में उस कुल या ग्राम में आने वाली वधुओं में सबसे प्रथम, सबसे श्रेष्ठ होकर (वि अद्यौत्) विविध गुणों से प्रकाशित हो।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः दुहिता) प्रकाश से जगत् को पूर्ण कर देनेवाली, या प्रकाशमान् सूर्य की कन्या के समान उषा जिस प्रकार (प्रति अदर्शि, प्रत्यक्ष दिखाई देती है वह (पुरस्तात्) सबके समक्ष वा पूर्व दिशामें (ज्योतिः वसानः) प्रकाश को धारण करती हुई (ऋतस्य पन्थाम् अनु एति)

सूर्य के मार्ग पर गमन करती है और (प्रजानती इव) उत्तम ज्ञानवती विदुषी के समान (दिशः न प्रमिनाति) अन्य दिशाओं का लोप नहीं करती। उसी प्रकार (एषा) यह (दिवः दुहिता) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष की कन्या अथवा (दिवः दुहिता) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारी, या रमण क्रीड़ा की इच्छुक, कामनावान् पति के कामनाओं को पूर्ण करने हारी, नववधू (समना पुरस्तात्) एकत्र हुए जनसमूह के समक्ष (ज्योतिः) उज्ज्वल वस्त्र-आभूषणों को (वसाना) धारण करती हुई (प्रति अदर्शि) प्रत्यक्ष देखी जावे। उसे सब कोई देखें। वह (ऋतस्य) सत्य-ज्ञानमय वेद के उपदिष्ट (पन्थाम्) मार्ग को (साधु) उत्तम रीति से (अनु एति) अनुगमन करे। अथवा (ऋतस्य) प्राप्त हुए सत्य व्यवहारवान् पति के मार्ग का उत्तम रीति से अनुसरण करे। और (प्रजानती इव) उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करती हुई, विदुषी होकर (दिशः) गुरु जनों के आदेशों को और उपदेष्टा मान्यपुरुषों को (न मिनाति) नाश न करे उनको कष्ट न दे और उनके दिये सदुपदेशों का लोप न करे।

उपो॑ अद॒र्शि शु॒न्ध्युवो॒ न वक्षो॑ नो॒धा इ॑वा॒विर॑कृत प्रि॒याणि॑ ।
अ॒द्म॒सन्न स॒सतो॑ बो॒धय॑न्ती शश्वत्त॒मागा॒त्पुन॑रे॒युषी॑णाम् ॥ ४ ॥

भा०—उषा के समान उत्तम कमनीय गुणों से युक्त शोभावती नव वधू (उपो) समीप (अदर्शि) देखी जावे। (शुन्ध्युवः वक्षः न) शुद्ध, विमल जल जिस प्रकार अपने अपर के तल या रूप को स्वच्छ रूप से प्रकट करते हैं और सूर्य किरण जिस प्रकार अपना शुद्ध रूप प्रकट करते हैं अथवा जिस प्रकार शुन्ध्यु नाम का जलचर, बतक, हंस आदि अपने वक्षस्थल को उत्तम रीति से प्रकट करते हैं उसी प्रकार कन्या भी अपने (वक्षः आवि अकृत) उत्तम रूप से वक्षःस्थल को प्रकट करें अथवा (वक्षः) वह अपने 'वक्षस्' अर्थात् गृहस्थाश्रम के भार को वहन या धारण करने के उत्तम

सामर्थ्य को प्रकट करे। और (नोधाः इव प्रियाणि आविः अकृत) स्तुतिशील विद्वान् जिस प्रकार उत्तम प्रिय वचनों का प्रकाश करता है उसी प्रकार वधू भी (प्रियाणि) हृदय को प्रिय लगने वाले गुणों और वचनों का प्रकाश करे। (अद्मसत् न ससतः बोधयन्ती) जिस प्रकार उषा सोते हुऐ प्राणियों को जगा देती है और जिस प्रकार (अद्मसत्) घर में विराजने वाली माता सोते हुए बालकों को जगा देती है उसी प्रकार नववधू भी (अद्मसत्) गृहमें विराजे और (ससतः) सोते हुए अज्ञान दशामें विद्यमान बालकों को मातृगुरु हो कर (बोधयन्ती) जगाती हुई, ज्ञानवान् करती हुई (ईयुषीणाम्) अभीतक आई कुल बधुओं के बीच में (शश्वत्तमा) सबसे अधिक स्थिर, नित्य धर्मों का पालन करती हुई (पुनः अगात्) बार २ घर आवे, जावे।

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था॥ ५॥ ७॥

भा०—(अप्त्यस्य) व्यापनशील (रजसः) अन्तरिक्ष या लोक समूह के (पूर्वे अर्धे) पूर्व के आधे मार्ग में उषा जिस प्रकार (गवां जनित्री) सूर्य की किरणों को प्रकट करती हुई (केतुम् प्र अकृत) ज्ञान और प्रकाश पैदा करतो है और (पित्रोः उपस्थे) जगत् के पालक भूमि और सूर्य दोनों के बीचमें स्थित हो कर (उभा आ पृणन्ती) दोनों को अपने प्रकाश से पूरती हुई (वरीयः वितरं वि प्रथते उ) श्रेष्ठ स्वरूपको विशेष रूप से प्रकट करती है उसी प्रकार उषाके समान कमनीय, शुभगुणों से युक्त नववधू भी (अप्त्यस्य) उत्तम ज्ञान और कर्म करने में कुशल (रजसः) लोक समूह के (पूर्वे) आगे के, पूर्व विद्यमान (अर्धे) उत्तम पद में विराजती हुई (जनित्री) उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली हो कर (गवां केतुम्) वेद वाणियों के ज्ञान को (प्र अकृत) अच्छी प्रकार प्रकट करे, तदनुकूल आचरण करे। अथवा (अप्त्यस्य

रजसः) ज्ञान और कर्म के सम्पादन करने के लिये उत्तम (रजसः पूर्वे अर्धे) राजस युक्त यौवन के सबसे प्रथम के आधे भागमें वह(जनित्री) माता बनने वाली नववधू (गवां केतुम् प्र अकृत) वेद वाणियों के ज्ञान को भली प्रकार सम्पादन करे। और वह (पित्रोः उपस्था) माता पिता दोनों के समीप रहती हुई (उभा) दोनों को (पृणन्ती) प्रियाचरण से प्रसन्न करती हुई (वरीयः) अति श्रेष्ठ गुण को (वितरं) विशेष रूप से (वि प्रथते उ) विस्तृत करे। इति सप्तमो वर्गः

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥

भा०—(एषा) यह उषा जिस प्रकार (पुरुतमा) बहुत से लोकों में पूजनीय होकर (दृशे) सबको समस्त जगत् के प्रत्यक्ष कराने के लिये (न अजामिं परि वृणक्ति) न बन्धुता रहित पृथिवी आदि लोक को परित्याग करती है और (न जामिम् परि वृणक्ति) न बन्धु, सूर्यादि का ही परित्याग करती है। प्रत्युत (अरेपसा तन्वा) मलरहित, स्वच्छ, विस्तृत प्रकाश से (शाशदाना) चमकती हुई (विभाती) उषा या प्रभात वेला (न अर्भात् ईषते) स्वल्प पदार्थ से भी दूर नहीं होती, ठीक इसी प्रकार (विभाती) विविध गुणों से प्रकाशित होने वाली नववधू (एषा एव इत्) 'यह ही है' ऐसी (पुरुतमा) अति अधिक जनों में सर्वश्रेष्ठ, एवं नाना ऐश्वर्यों की कामना करती हुई, (दृशे) अपने गुणों को दर्शाने के लिये (न अजामिम्) न अपने बन्धुजनों से भिन्न को वर्जती है और (न जामिम् परिवृणक्ति) अपने बन्धुजन को ही त्यागती है और अर्थात् वह सबके प्रति समान भाव से अपने गुणों का प्रकाश करे। वह (अरेपसा) पाप और मल से रहित (तन्वा) स्वच्छ, निर्दोष शरीर से (शाशदाना) अति सुन्दर रूपवती होती हुई (अर्भात् न ईषते)न छोटे बालक से ही पृथक् हो और (न महः) न बड़े तेजस्वी व्यक्ति से पृथक् हो, अर्थात् छोटे बड़े सबको प्रिय लगती रहे। सब उसके साथ प्रीति बनाये रखें।

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥

भा०— (अभ्राता इव) भरण पोषणकारी भाई आदि बन्धुजनों से रहित स्त्री जिस प्रकार स्वयं (प्रतीची) प्रत्यक्ष में (पुंसः एति) अपने मन से चाहे पुरुष को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार यह उषा भ (प्रतीची) प्रत्यक्ष प्रकट होकर (पुंसः एति) अपने पुरुष के समान सूर्य को ही पुनः प्राप्त हो जाती है। और जिस प्रकार (गर्तारुग् इव सभाध्यक्ष के पद पर विराजने वाला पुरुष (धनानां सनये)धनों, ऐश्वर्यों के न्यायानुसार विभाग करने के लिये अध्यक्ष पद पर विराजता है उसी प्रकार यह उषा भी (गर्तारुक्)आदित्य के ऊपर विराजती हुई, ऐश्वर्य रूप प्रकाशों को देने के लये प्रकट होती है। और (पत्ये पति की प्रसन्नता के लिये (उशती) कामना करती हुई (जाया) विवाहित स्त्री जिस प्रकार (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र पहन कर अपना रूप प्रकट करती है उसी प्रकार यह उषा अपने पालक सूर्य के निमित्त अपना रूप प्रकट करती है। और (हस्रा इव) हंसने वाली, सुप्रसन्न वदना स्त्री जिस प्रकार (अप्सः नि रिणीते) अपने मुख को पति के सामने प्रकट करती है उसी प्रकार यह (उषा) उषा अपना (अप्सः) रूप (नि रिणीते) प्रकट करती है। इस प्रकार उषा पक्ष में ये चार उपमाएं स्पष्ट होती है। (२) नव वधू पक्ष में—वह (पुंसः प्रतीची) अपने प्रिय पुरुष पति को (अभ्राता इव एति) ऐसे प्राप्त हो मानो उसके अतिरिक्त दूसरा उसका भरण पोषण करने वाला कोई नहीं है। माता, पिता, भाई आदि के सम्पन्न होने पर भी नववधू को अपने अल्पधन पति के ही पास आना चाहिये। (गर्तारुक् इव) रथारोही विजिगुषु वीर जिस प्रकार धनैश्वर्य को विजय द्वारा लाभ करने के लिये उद्यत होता है उसी प्रकार वह नववधू भी (धनानां सनये) ऐश्वर्यों के लाभ के लिये वा धनों के देने वाले पति को प्राप्त करने के

लिये। मानो (गर्तारुक् इव भवति) रथ पर आरूढ़ हो। सूर्य कीकान्ति के समान चमके। वह (पत्ये उशती) अपने पति के लिये कामना करती हुई (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र आच्छादन पहनती हुई (जाया इव सन्तान कामना करने वाली स्त्री के समान निःसंकोच होकर जावे, (हस्रा इव) हंसती, मुसकराती हुई, प्रसन्न वदन होकर अपने (अप्सः) रूप को (निरिणीते) अच्छी प्रकार प्रकट करे।

स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥

भा०—उषा, प्रभातवेला जिस प्रकार (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की करणों से स्वयं (वि उच्छन्ती) प्रकट करती हुई (अञ्जि अंङ्क्ते) अपने उज्ज्वल रूपको प्रकट करती है। और (स्वसा) रात्रि जिस प्रकार (ज्यायस्यै स्वस्रे) अपनी बड़ी बहिन उषा के लिये (योनिम् आरैक्) अपना स्थान आदर से प्रदान करती है और (अस्याः) उसको (प्रतिचक्ष्य इव याख्यान सा करती हुई (अप एति) दूर चली जाती है इसो प्रकार नव वधू (सूर्यस्य रश्मिभः व्युच्छन्ती) सूर्य के समान तेजस्वी पति के उत्तम गुणों से प्रकट होती हुई अपने (अञ्जि अंङ्क्ते) सुन्दर रूप को प्रकट करे। और (स्वसा) बहिन (ज्यायस्यै स्वस्रे) बड़ी बहिन के लि (योनिम् आरेक्)स्थान रिक्त करे। आदर से उसे अपना स्थान दे। (तस्याः) उसके हितके लिये (प्रतिचक्ष्य इव) अपने इष्टको म नो त्यागत हुई (अप एति) आप स्वयं दूर हट जाय। और (समनगाः व्राः इव) संग्राम में जाने वाली सेनाओं के समान अथवा (समनगाः) स्वयंवर के लिये सभास्थल में आने वाली (व्राः) वरवर्णिनी कन्याओं के समान (अंञ्जि अंङ्क्ते) अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करे।

आसां पूर्वासामहःसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात्।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥

भा०—(अहः सु) दिनों पर आश्रित इन (पूर्वासां स्वसॄणां) पूर्व की बहिनों के समान स्वयं व्यतीत हुई रात्रियों में भी (अपरा) पीछे आने वाली रात्रि (पूर्वाम्) अपने से पूर्व की रात्रि के (पश्चात् अभ्येति) पीछे आती है उसी प्रकार इन प्रभातवेलाएं में भी ठीक एक दूसरे के पीछे आती हैं। (अथवा-अपरा) पीछे आने वाली उषा (पूर्वाम् पश्चात् अभ्येति) पूर्वा अर्थात् रात्रिके पीछे २ आती है। (ताः) वे (सुदिनाः उषासः) उत्तम दिवस के संग प्राप्त करने वाली उषाएं (नव्यसीः) सदा नयी बहार होकर (अस्मे) हमें (प्रत्नवत्) पुराने उत्तम सञ्चित धन से युक्त और (रेवत्) ऐश्वर्य से युक्त उत्तम सौभाग्य को (उच्छन्ती) प्रकट करें। उसी प्रकार उत्तम वधुएं भी (अहःसु आसां पूर्वासां स्वसॄणाम्) बहिन या आदित्य के समान उज्ज्वल अपने २ पतियों के आश्रित पूर्व की बहिनों में (अपरा पूर्वाम् पश्चाद् अभ्येति) दूसरी छोटी बहिन अपने से पूर्व की, बड़ी बहिन के पीछे २ उसका अनुसरण करती हुई चले। (नूनम्) निश्चय से वे (नव्यसीः) सदा नये उत्तम रूप वाली होकर (सुदिनाः उषासः) उत्तम दिन वाली कान्तिमती कन्याएं (प्रत्न-वत् रेवत् उच्छन्तु) पूर्व सञ्चित धन से युक्त, ऐश्वर्यवान् सौभाग्य प्रकट करें।

प्र बौ॑धयोषः पृण॒तो म॑घो॒न्यबु॑ध्यमानाः प॒णयः॑ ससन्तु ।
रेव॑दुच्छ म॒घव॑द्भ्यो मघोनि रे॒वत्स्तो॒त्रे सू॑नृते जा॒रय॑न्ती ॥१०॥८॥

भा०—हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्यवति ! (उषः) प्रभातवेला, (पृणतः) पालन करने वाले, सुप्रसन्न, हृष्ट पुष्ट प्राणियों को (प्रबोधय) जगा और जो (अबुध्यमानाः) न जागने वाले (पणयः) व्यवहार कुशल पुरुष (ससन्तु) सोते हों उनको भी जगा। हे (सूनृते) उत्तम धनैश्वर्यवति! सत्य व्यवहार से युक्त! (मघोनि) प्रातःवेले ! तू (जारयन्ती) सब प्राणियों की आयुओं को प्रति दिन क्षीण करती हुई (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान्

पुरुषों के हित के लिये (रेवत् उच्छ) अपने ऐश्वर्य युक्त रूप को प्रकट कर। और (स्तोत्रे) स्तुति शील उपासक के लिये भी (रेवत्) अपने ऐश्वर्य मय रूप को प्रकट कर। हे वधू ! इसी प्रकार (पणयः अबुध्यमानाः ससन्तु) जो व्यवहार युक्त पुरुष सोते हैं उन (पृणतः) अपने पालक भ्राता, पति आदि पुरुषों को (प्र बोधय) तू जगा। अर्थात् आप उनसे पूर्व उठ कर उनको जगा। हे (सूनृते) शुभ व्यवहार और उत्तम वाणी वाली ! हे (मघोनि) सौभग्यवति ! (मघवद्भयः, स्तोत्रे) ऐश्वर्यवान् सम्बन्धियों और उत्तम वेदोपदेष्टा पुरुष के आदर के लिये (रेवत् उच्छ) अपना ऐश्वर्य वृद्धि करने वाला सुखकारी रूप और गुण प्रकट कर। इति अष्टमो वर्गः ॥

अश्वे॑यमश्वैद्युव॒तिः पु॒रस्ता॑द्यु॒ङ्क्ते गवा॑मरु॒णाना॒मनी॑कम् ।
वि नू॒नमु॑च्छादस॑ति॒ प्र के॒तुर्गृ॒हंगृ॑हमुप॑ तिष्ठाते अ॒ग्निः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार (इयम्) यह उषा (युवतिः) प्रौढ स्त्री के समान (अश्वैत्) आगे आगे बढ़ती है और (अरुणीनाम्) उज्वल (गवाम्) रश्मियों के (अनीकम्) समूहको (पुरस्तात् युंङ्क्ते) अपने आगे जोड़ती है। इसी प्रकार वह (नूनम् वि उच्छात्) निश्चय से विविध दिशाओं में अपना रुप प्रकट करती और अन्धकार को दूर करती है और (केतुः) ज्ञानप्रद होकर (प्र असति) उत्तम रुप से प्रकट होती है तब (अग्निः) ज्ञाग्नि और सूर्य (गृहम्-गृहम्) घर २ (उपतिष्ठाते) उपस्थित होता है। उसी प्रकार (इयम्) यह (युवतिः) यौवन युक्त स्त्री (अव अश्वैत् बड़ी हो और (अरुणीनाम् गवाम्) सेना नायिका के समान अरुण रंग के बैलों वा अश्वों के समूह को (पुरस्तात्) आगे रथके (युङ्क्ते) जोडे, वह निश्चय से (उच्छात्) अपने उत्तम गुणों का प्रकाश करे। और विशेष (केतुः) ज्ञान युक्त होकर (प्र असति) प्रकट हो और (अग्निः) अग्रणी नायक, पति (गृहम् गृहम्) प्रति गृहमें (उप तिष्ठाते) उपस्थित या

स्थिर हो जाता है। अथवा, यज्ञाग्नि स्त्री के साथ ही प्रति गृहमें स्थापित हो।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभातवेले! उषः! (ते व्युष्टौ) तेरे विशेष रूप से प्रकट हो जाने पर प्रभात काल में (वयः चित्) जिस प्रकार पक्षि-गण (वसतेः) अपने निवास के घोंसले से (उत् अपप्तन्) उड़ जाते हैं उसी प्रकार ये (पितुभाजः नरः) अन्नादि को प्राप्त करने वाले, कृषि आदि करने वाले जन हैं वे भी कृषि के उत्तम फल की कामना से ही आहार भोजी पक्षियों के समान हो (वसतेः उत् अपप्तन्) अपने २ घर से बाहर चले जाते हैं। हे उषः! प्रभातवेले (अमा सते) साथ रहने वाले (मर्त्याय दाशुषे) दानशील सूर्य को (भूरि वामम् वहसि) तू बहुत उत्तम ऐश्वर्य धारण कराती है। उसी प्रकार हे (उषः देवि) हे कमनीय गुणों से युक्त! कान्तियुक्त देवि! नववधू स्त्रि! (ते व्युष्टौ) तेरे विशेष रूप से गृहमें बस जाने पर (ये पितु भाजः नरः) जो अन्न आदि पालन सामर्थ्यों को धारण करते हैं वे (व्युष्ट वयः चित्) प्रातः वेलामें घोसलोंसे उड़ते पक्षियों के समान (उत् अपप्तन्) उन्नत पद को प्राप्त हों। और हे (देवि) देवि! पति की कामना करने और उसको सुख देने हारी, उत्तम गुणों से युक्त विदुषि कन्ये! (अमत सते) अपने साथ, या एक गृहमें रहने वाले (दाशुषे) अन्न-वस्त्र तथा मान आदर एवं सर्वस्व समर्पण करनेवाले (मर्त्याय) अपने पुरुष को तु भी (भूरि वामम्) बहुत अधिक, प्रचुर भोग्य ऐश्वर्य, सुख (वहसि)प्राप्त करा।

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३।६॥

भा०—हे (स्तोम्याः) स्तुति योग्य, गुणवती (उषासः) प्रभात-वेलाओं के समान उत्तम गुणों से युक्त विदुषी स्त्रियो! वा, हे (स्तोम्याः)

स्तुतिकारी मन्त्र समूह को पढ़ने हारी विदुषि स्त्रियो ! आप (उशतीः) उत्तम गुणों और मन से पति की कामना करती हुई (अस्तोढ्वम्) अपने आदर योग्य पुरुषों की स्तुति या गुणानुवाद करो। और (मे ब्रह्मणा) मेरे महान् धन और ब्रह्मवर्चस. बल और ज्ञान से (अवीवृधध्वम्) आप वृद्धि को प्राप्त होवो और मुझे बढ़ाओ। हे (देवीः) उत्तम गुणों वाली एवं प्रिय कामना युक्त देवियो ! (युष्माकं अवसा) आप लोगों की रक्षा और ज्ञान समर्थ्य और प्राप्ति से हम लोग (सहस्रिणं) सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त और (शतिनं च) सैकड़ों बलों से युक्त (वाजं) ऐश्वर्यों को और संग्रामों को और ज्ञानों को (सनेम) प्राप्त करें और उपभोग करें।

उषा विषयक सूक्त में पक्षान्तर में 'उष' धातु दाहार्थक और और पीड़ार्थक होने से राजा की सेना का और अध्यात्म में अज्ञानदाहक होने से योग समाधि में प्रकट होनेवाले प्रकाश के उदय काल का भी वर्णन है। इति नवमो वर्गः

[१२५]

कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ दम्पती देवते दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ३, ७ त्रिष्टुप। २, ६ निचृत् त्रिस्टुप। ४, ५ जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

भा०—(प्रातर-इत्वा) प्रभात कालमें जागने वाले (प्रातः) प्रभातवेला में ही (रत्नम्) उत्तम रमण करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ को, धन ऐश्वर्य के रत्न के समान (दधाति) धारण करे। अर्थात्. जीवन के प्रारम्भ भाग, कौमार दशा में ही गुरु के समीप आकर मनुष्य अपने जीवन के प्रारम्भ काल २५ वर्ष तक न्यून से न्यून (रत्नं) जीवन में आनन्द देने, रमण करने योग्य बल वीर्य, और ज्ञान को धारण करे। उसको पुष्ट कर ब्रह्मचर्य का पालन करे। (चिकित्वान्) ज्ञानवान् विद्वान् होकर (तं प्रतिगृह्य) उसको ग्रहण करके (नि धत्ते) निषेक द्वारा धारण करावे (तेन) उससे ही वह (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् पुरुष (प्रजां) प्रजा, सन्तति

को (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ और (तेन) उसी (रायः पोषेण) ऐश्वर्य सुख सौभाग्य की वृद्धि और पुष्टि से (आयुः) दीर्घ जीवन को बढ़ाता हुआ (सचते) सन्तति और दीर्घ जीवन के आश्रय पर जम कर, स्थायी होकर रहने में समर्थ होता है।

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥२॥

भा०—हे (प्रातरित्वः) अपने जीवन के प्रभात काल से अपने गुरु के समीप आने वाले, वा प्रातःकाल से ही यत्नशील ! (यः) जो विद्वान् (इन्द्रः) समस्त ज्ञानों का दाता आचार्य (वसुना) ऐश्वर्य के सहित (त्वा आयन्तं) तुझे अपने समीप आते को प्राप्त करके (मुक्षीजया इव) मूंज की रस्सी से (पदिम्) वेगवान् अश्व को जिस प्रकार बांधा जाता है उसी प्रकार (पदिम्) ज्ञान की अभिलाषा से प्राप्त हुए तुझ को (मुक्षीजया) मूंज की बनी रस्सी या मेखला से (उत्सिनाति) उत्तम उद्देश्य के लिये नियम में बांधता है वही (इन्द्रः) आचार्य, ज्ञानोपदेष्टा (अस्मै) उस तुझ शिष्य को (बृहत् वयः) बड़ा बल, ज्ञान और दीर्घायु, ब्रह्मचर्य धारण कराता है। उसी से तू (सुगुः) उत्तम ज्ञानवाणियों, एवं उत्तम बलवान् इन्द्रियों से युक्त (सुहिरण्यः) उत्तम हितकारी और रमण करने योग्य, मनोहर ज्ञान से सम्पन्न (सु-अश्वः) उत्तम अश्व, भोक्ता आत्मा और उत्तम कर्मेन्द्रियों से युक्त हो जाता है।

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

भा०—(अद्य) अब मैं (प्रातः) जीवन या गृहस्थ काल के उदय काल में ही (इष्टेः) यज्ञ, परस्पर संगति रूप गृहस्थ के (सुकृतम्) उत्तम धर्मयुक्त कर्म को (इच्छन्) चाहता हुआ (वसुमता

रथेन) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त रथ से जिस प्रकार राष्ट्र को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (वसुमता) उत्तम ऐश्वर्य युक्त (रथेन) रमण योग्य गृहस्थाश्रम से मैं (पुत्रम् आयम्) पुत्र को प्राप्त करूं। हे माता! हे धात्रि! हे आचार्य वर! तू (मत्सरस्य) अति तृप्तिकर, (अंशोः) अपने अंश, शरीर के एक भाग, स्त्री से (सुतं) उत्पन्न पुत्र को (पायय) दूध वा ज्ञान का अंश पान करा। और (सूनृताभिः) उत्तम सत्य भाषणादि गुणों से युक्त, प्रिय वाणियों, वेदवाणियों और उत्तम अन्नों से (क्षयद्वीरं) वीर जनों सहित राजा के समान, प्राणों सहित विद्यमान स्वस्थ पुत्र को (वर्धय) बढ़ा।

उप॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ईजा॒नं च॑ य॒क्ष्यमा॑णं च धे॒नवः॑।
पृ॒णन्तं॑ च॒ पपु॑रिं च श्रव॒स्यवो॑ घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वतः॑॥४॥

भा०—(धेनवः) दुधार गौएं जिस प्रकार (ईजानं) यज्ञ करने वाले और (यक्ष्यमाणं च) यज्ञ करने में उत्सुक जन को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (ईजानं) यज्ञशील, सबको सत्संगति या व्यवस्था में रखने हारे और (यक्ष्यमाणं च) सबको उत्तम व्यवस्था में रखने की इच्छा करने वाले पुरुष को (सिन्धवः) वेग से बहने वाले, सबको व्यवस्था में बांधने वाले उत्तम २ प्रबन्धकर्त्ता (मयोभुवः) अति शान्ति सुख के जनक जन और (धेनवः) सब को सुख और अन्नादि से रस का पान कराने वाले, उत्तम पोषक जन और प्रजा गण भी (उप क्षरन्ति) नदियों के समान आप से आप प्राप्त होते और नाना पदार्थ प्राप्त कराते हैं। और (घृतस्य धाराः) घी की धाराएं जिस प्रकार अग्नि में आपसे आप पड़ती हैं और जिस प्रकार (घृतस्य) जल की धाराएं, नदियें समुद्र को या भूतल को आपसे आप प्राप्त होती हैं और वे (श्रवस्यवः) अन्नोत्पादन में समर्थ होती हैं उसी प्रकार (श्रवस्यवः) अन्न, यश, की कामना करने हारे लोग भी (पृणन्तं च) सबका पालन पोषण करने वाले और

(पपुरिं च) स्वयं पुष्ट और सबको प्रसन्न और हृष्ट पुष्ट, पूर्ण करने वाले समर्थ पुरुष (उप यन्ति) प्राप्त होते हैं।

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ५

भा०—(यः) जो पुरुष (पृणाति) अन्यों को धन, अन्न तथा ज्ञान से परिपूर्ण करता और सबको प्रसन्न और सुखी करता है वह (श्रितः) सबसे सेवा करने योग्य और सबको आश्रय देने हारा होने से आश्रय किया जाता है। वह सूर्य के समान (नाकस्य पृष्ठे) जहां ज़रा भी दुःख और क्लेश नहीं ऐसे लोक या परमानन्द स्वरूप परमेश्वर के आश्रय पर (अधितिष्ठति) विराजता है। (सः ह) वह ही निश्चय से (देवेषु) विद्वानों और दानशील और व्यवहारकुशल पुरुषों के ऊपर और उनके बीच (गच्छति) आदर से जाता है। (तस्मै) उसके लिये (आपः) प्राण गण, आप्त पुरुष और आप्त प्रजाजन सभी (सिन्धवः इव) महानदों या जल धाराओं के समान (घृतम्) अन्न, जल, ज्ञान और तेज प्रदान करते हैं। और (तस्मै) उसके लिये (इयं दक्षिणा) यह भूमि (दक्षिणा) समस्त अन्न ऐश्वर्य आदि देने में समर्थ होकर (सदा पिन्वते) सदा समृद्ध करती है। अथवा (इयं दक्षिणा) यह दक्ष अर्थात् ब्रह्मचर्य बल और ज्ञान को सम्पादन करने वाली साधना या यज्ञ अध्ययनाध्यापन के उपरान्त श्रद्धा पूर्वक दी गयी दक्षिणा उसको (सदा पिन्वते) सदा सब सुखैश्वर्य प्रदान करती है। जीवन की अत्यन्त सुखमय दशा को ही 'नाक-लोक' या 'स्वर्ग' कहा गया है। शबर स्वामी के कथनानुसार सांसारिक सब सुख सामग्री भी स्वर्ग शब्द से कहे जाते हैं।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ॥६॥

भा०—(दक्षिणावतां इत्) जो लोग धर्म से उपार्जित धन ऐश्वर्य

विद्या आदि के निमित्त श्रद्धा से दान देने और बल और ज्ञान प्राप्त करने की साधना करते हैं उनके लिये ही (इमानि) ये समस्त प्रकार के (चित्रा) अद्भुत, नाना विध सुखजनक पदार्थ हैं। (दक्षिणावताम्) उक्त प्रकार के धन और ज्ञान और आत्मशक्ति सम्पादन करने वालों के लिये ही (दिवि सूर्यासः) आकाश में सूर्यों के समान इस भूमि में तेजस्वी पुरुष उनकी सेवा के लिये होते हैं। (दक्षिणावन्तः) उस प्रकार के ऐश्वर्य दान देने और बल और प्रज्ञा के सम्पादन करने वाले पुरुष ही (अमृतं) मोक्षानन्द, पुत्रादि सन्तति तथा अन्न जल की समृद्धि का भी (भजन्ते) भोग करते हैं। और (दक्षिणावन्तः) उक्त प्रकार के दाता या ज्ञान बल के स्वामी लोग ही (आयुः) दीर्घ जीवन को (प्रतिरन्त) उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण सबको विद्या दें, क्षत्रिय अभय दें, वैश्य ऐश्वर्य, अन्नादि दान करें और शूद्र सेवा दें, वे सुखी होकर दीर्घ जीवन, नाना सुख और मोक्ष भी प्राप्त करें।

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः॥७।१०॥

भा०—(सूरयः) विद्वान् (सुव्रतासः) उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम मर्यादाओं का पालन करने हारे, धार्मिक गृहस्थ (पृणन्तः) भरण पोषण करने वाले पुरुष (दुरितम्) दुःख या दुरवस्था प्राप्त कराने वाले (एनः) पापाचरण को (मा आरन्) न करें। और वे (मा जारिषुः) जार के समान दूसरों की स्त्री आदि पर लम्पटता आदि कुकर्म न करें। अथवा (मा जारिषुः) बुद्धि, बल और आयु का नाश न करें। (तेषाम्) उनमें से (कश्चित् अन्यः) कोई एक पुरुष उनका (परिधिः अस्तु) सब तरफ से रक्षा करने हारा हो। परन्तु (अपृणन्तम्) पालन पोषण न करने वाले को (शोकः) शोक दुःख और पीड़ाएं (अभि संयन्तु) सब तरफ से प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः॥

[१२६]

॥ १२६ ॥ १—५ कक्षीवान् । ६ भावयव्यः । ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी चर्षिः । विद्वांसो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ६, ७ अनुष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अमन्दान्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (राजा) राजा के समान ऐश्वर्यवान् होकर (श्रवः इच्छमानः) ऐश्वर्य के समान यश और वेदज्ञानोपदेश को श्रवण करने की इच्छा करता हुआ (मे) मुझको (सहस्रं सवान्) सहस्रों ऐश्वर्य (अमिमीत) प्रदान करता है उस (सिन्धौ) सिन्धु के समान अतिगम्भीर आत्मा, या कामवेग के (अधि क्षियतः) ऊपर अधिकार करके, वशी होकर रहने वाले (भाव्यस्य) पुत्रोत्पादन में समर्थ, एवं प्रचुर सम्पत्ति के स्वामी और प्रभु परमेश्वर की (अमन्दान् स्तोमान्) अति उज्ज्वल, प्रकाशमान स्तुतियों को (प्र भरे) अच्छी प्रकार धारण करूं ।

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

भा०—मैं (कक्षीवान्) नाना विद्या-प्रस्थानों को जानने वाला और (कक्षीवान्) बगल में यज्ञोपवीतादि धारण कर, विद्वान् होकर (असुरस्य) मेघ के समान शिष्यों और जीवों को प्राणदान करने वाले आचार्य और परमेश्वर की (गोनां शतम्) सूर्य की किरणों के समान सैकड़ों वाणियों को (आदम्) प्राप्त करूं । और (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (अजरम्) अजर, कभी नाश को प्राप्त न होने वाले (श्रवः) यश और ख्याति, या ज्ञान को (आततान) विस्तृत करूं । वही मैं (नाध-

मानस्य राज्ञः) ऐश्वर्यवान् होते हुए, समृद्ध राजा के योग्य (शतम् निष्कान्) सैकड़ों मोहरों को और (शतम् प्रयतान् अश्वान्) सैकड़ों खूब सधे हुए घोड़ों को भी (सद्यः) शीघ्र ही (आदम्) प्राप्त करूं।

उप॑ मा श्या॒वाः स्व॒नये॑न द॒त्ता व॒धूम॑न्तो॒ दश॒ रथा॑सो अस्थुः ।
ष॒ष्टिः स॒हस्र॒मनु॒ गव्य॒मागा॒त्सन॑त्क॒क्षीवाँ॑ अभिपि॒त्वे अह्ना॑म् ॥३॥

भा०—(स्व-नयेन) स्वयं सबको अपनी आज्ञा से चलाने वाले, अपनी स्वायत्त नीति से शासन करने वाले सेनापति या राजा से (दत्ताः) दिये हुए (वधूमन्तः) राष्ट्र को वहन करने वाली शक्तियों से युक्त, (श्यावाः) अति तीव्र वेग से जाने वाले, (दश) दशों प्रकार के (वधूमन्तः) उत्तम वधुओं से युक्त (रथासः) रथों के समान रमण करने के साधन (मा उप अस्थुः) मुझे प्राप्त हों और (अनु) उसके पश्चात् मुझ राष्ट्रपति को (गव्यम्) पृथ्वी के हितकारी (षष्टिः सहस्रम्) साठ हजार, अनेकों ऐश्वर्य भी (आगात्) प्राप्त हों और उनको (अह्नाम् अभिपित्वं) दिनों के प्राप्त होने पर यथा समय (कक्षीवान्) उत्तम जितेन्द्रिय युद्ध कुशल और विद्या कुशल पुरुष (सनत्) सदा प्राप्त करे और उसका भोग करे।

च॒त्वा॒रिं॒शद्दश॑रथस्य॒ शोणाः॑ स॒हस्र॒स्याग्रे॒ श्रेणिं॑ नयन्ति ।
म॒द॒च्युतः॑ कृश॒नाव॑तो॒ अत्या॑न्क॒क्षीव॑न्त॒ उद॑मृक्षन्त प॒ज्राः ॥ ४ ॥

भा०—(दशरथस्य) दशों रथों के स्वामी, सेनापति के (चत्वारिंशत्) चालीस (शोणाः) लाल वर्ण के, या तीव्र वेग से जाने वाले अश्व (सहस्रस्य) सहस्रों पदाति योद्धाओं के (अग्रे) आगे रह कर (श्रेणिम्) समस्त नियमित पंक्ति या सेना के दस्ते, या रेजिमेण्ट को (नयन्ति) ले जावें और (पज्राः) तीव्र वेग से जाने वाले (कक्षीवन्तः) उत्तम बगलबन्ध लगाने वाले, वीर पुरुष (मदच्युतः) शत्रुओं का मद उतार देने वाले, (कृशनावतः) सुवर्णादि धातु के आभूषणों से सजे (अत्यान्)

वेगवान् अश्वों को (उद् अमृक्षन्त) उत्तम रीति से वश करें। (२) दशों रमण साधनों का स्वामी आत्मा दशरथ है। प्रत्येक से अन्तः-करण चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारों का पृथक् भोग होने से ४० अश्व हैं। वे ही सहस्रों सुखों के अग्रगामी होते हैं। (पज्राः कक्षीवन्तः) विद्वान् जन ही (मदच्युतः) हर्ष वर्षण करने वाले (कृशनावतः) आत्म-चेतना वाले (अत्यान्) इन इन्द्रिय रूप अश्वों को (अद् अमृक्षन्त) उत्तम रीति से वश करें।

पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑ति॒मा द॑दे व॒स्त्रीन्यु॒क्ताँ अ॒ष्टाव॒रिधा॑यसो॒ गाः।
सु॒बन्ध॑वो॒ ये वि॒श्या॑ इ॒व व्रा अन॑स्वन्तः॒ श्रव॒ ऐष॑न्त प॒ज्राः ॥५॥

भा०—हे (सुबन्धवः) उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, परस्पर प्रेम और विद्यासम्बन्ध, और योनिसम्बधों से बंधे हुए (पज्राः) ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुषो ! (विश्याः व्राः इव अनस्वन्तः श्रवः ऐषन्त) प्रजा जन में उत्तम धनवान्, वैश्य पुरुष, गाड़ियों के स्वामी, होकर जिस प्रकार वरण करने योग्य उत्तम स्त्रियों, प्रजाओं, तथा (श्रवः) अन्न, यश, धन को चाहते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (पज्राः) ज्ञानवान् और साधन सम्पन्न (अनस्वन्तः) यज्ञ, उत्तम प्राण तथा यान शकट के स्वामी होकर (व्राः) वरण करने योग्य ऐश्वर्यों, जन समूहों और दूर जाने हारे वीरों और रथों को तथा (श्रवः) यश, अन्न और धन, ज्ञान को (ऐषन्त) प्राप्त करने की इच्छा करो। मैं अध्यक्ष पुरुष (वः) आप में से (युक्तान्) उत्तम रीति से कार्य करने योग्य, कुशल (त्रीन्) तीन मुख्य पुरुषों को और (अष्टौ) आठ प्रमुख सभासदों को (अरिधायसः) ऐश्वर्यवान् स्वामी के धारण पोषण करने, उसे बलवान् बनाये रखने में समर्थ या विपक्ष के शत्रु को थाम लेने वाले जानकर (गाः) कार्य राष्ट्र के संचालक रूप से, शकट में लगे बैलों के समान प्रमुख उत्तम पुरुषों और (पूर्वाम् प्रयतिम्) आप लोगों के सर्वोत्कृष्ट उत्तम प्रयत्नों को भी (अनु आददे)

अपने अनुकूल करके धारण करता हूं। (२) यह शरीर जीवन से युक्त 'अनस्' है। उसको धारण करने वाले गति, चेतना युक्त 'पज्र' प्राण हैं। वे एकत्र सुबद्ध होने से 'सुबन्धु' हैं। वे अन्न चाहते हैं। आत्मरूप स्वामी को धारण करने वाले होने से वे 'अरिधायस्' हैं। इस देह में गति उत्पन्न करने से इसमें लगे बैलों के समान होने से वे 'गो' हैं। सात शीर्षण्य प्राण आठवीं वाक् इनको और तीन, प्रमुख आत्मा, बुद्धि, मन इन सब को और इनके उत्तम व्यापार या चेष्टा सामर्थ्यों को मैं (अनु आददे) पहले भी धरता था, पुनः देह के भीतर आकर भी धारण करता, वश करता हूं।

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

भा०—(या) जो नीति या राजसभा (जंगहे) राष्ट्र को वश करने के कार्य में (कशीका इव) ताड़ना देने वाली चाबुक के समान (आगधिता) सब प्रकार स्वीकार की जाने योग्य और (परिगधिता) सब ओर से सुरक्षित होकर (मह्यं) मुझ राष्ट्रभोक्ता को, गृहस्थ में स्त्री के समान (यादुरी) अति प्रयत्नशील होकर (याशूनां) अन्नपोषित, नाना प्रयत्नशील भृत्यों के भी ऊपर (भोज्या) सर्वश्रेष्ठ पालनकारिणी, स्वामिनी होकर (मह्यं) मुझे (शता) सैकड़ों सुख और शक्तियां (ददाति) प्रदान करती है, अथवा (याशूनां यादुरी) प्रयत्नशील भृत्यादि के बीच में सब से अधिक यत्न करने वाली होकर मुझे (शता भोज्या ददाति) सैकड़ों भोग्य, ऐश्वर्य और रक्षा करने के सामर्थ्य प्रदान करती है। (२) 'चेतना' देह पर शासन करने से विकाशवती होने से कशीका है। शरीर में सर्वत्र वश करने से 'आगधिता' और सर्वत्र मिश्रित होने से 'परिगधिता' है। वह (याशूनां) अन्नभोक्ता, या यत्नशील प्राणों में सब से अधिक यत्नशील, बलवती होने से 'यादुरी' है वह सैकड़ों शक्तियों और भोग्य सुखों को देती है।

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥११॥१८॥

भा०—हे राजन् ! (मे) मुझ राजसभा से सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों पर (उप उप) समीप २ बैठ कर (परामृश) अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार कर और (मे) मेरे कार्यों को (दभ्राणि) स्वल्प या राष्ट्र के लिये हानिकारक, तुच्छ (मा मन्यथाः) मत समझ । (गन्धारीणां अविका) पृथ्वी को धारण करने वाले, पर्वत प्रदेशों में रहने वाली भेड़ जिस प्रकार (रोमशा) रोम अर्थात् काट लेने योग्य ऊनरूप लोमों से आच्छादित होने से रोमशा है । उसी प्रकार मैं भी (गन्धारीणाम्) पृथिवी को धारण, पालन पोषण करने वाली समस्त नीतियों की (अविका) रक्षा करने वाली होकर (रोमशा) काटने और उखाड़ फेंकने योग्य शत्रुओं का अन्त कर देने वाली, और (सर्वा) सब कुछ, सर्वस्व (अस्मि) हूं, अथवा (सर्वा रोमशा अस्मि) सब प्रकार से और पूर्णरूप से अजेय शत्रु का अन्त कर देनेवाली हूं । [२] पति के प्रति पत्नी के पक्ष में— (मे उपउप परामृश) हे प्रियतम ! तू मेरे समस्त अंगों का स्पर्श तथा मेरे प्रत्येक गुण अवगुण पर विचार कर । (मे दभ्राणि मा मन्यथाः) मेरे अंगों तथा गुणों और गृह कार्यों को भी स्वल्प तथा हानिकारक मत जान । (गन्धारीणाम् अविका इव) पर्वतप्रदेशीय भेड़ जिस प्रकार लोमों से रोमशा होती है, उसी प्रकार मैं गोपालन करनेवाली स्त्रियों के बीच सबसे उत्तम रक्षिका होकर (सर्वा) सब प्रकार से (रोमशा) उच्छेद्य दुःखों का अन्त का देने वाली हूं । (३) ब्रह्मविद्या के पक्षमें—हे योगिन् ! मुमुक्षो ! तू अति सूक्ष्मता से विचार कर । मुझ ब्रह्म विद्या के छोटे से छोटे हृदयाकाश में अत्पन्न अनुभवों को स्वल्प मत जान । (गन्धारीणां) वाणी को धारण करने वाली समस्त चेतना शक्तियों को मैं पालन करने वाली, सर्व भूतात्मस्वरूप होकर (रोमशा) लोम २ में व्यापक,

अथवा सब दुखों का अन्तकर देने वाली हूं। 'लोमशा' लूयन्ते इति लोमानि तानि स्यति इति लोमशा। रत्वशत्वे छान्दसे। इत्येकादशो वर्गः॥ इत्यष्टादशोऽनुवाकः॥

[१२७]

परुच्छेप ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ८, ९ अष्टिः। ४, ७, ११ भुरिगष्टिः। ५, ६ अत्यष्टिः। १० भुरिगति शक्वरी॥ एकादशर्चं सूक्तम्।

अ॒ग्निं होता॑रं मन्ये॒ दास्व॑न्तं॒ वसुं॑ सू॒नुं सह॑सो जा॒तवे॑दसं॒ विप्रं॒ न जा॒तवे॑दसम्। य ऊ॒र्ध्वया॑ स्वध्व॒रो दे॒वो दे॒वाच्या॑ कृ॒पा। घृ॒तस्य॒ विभ्रा॑ष्टि॒मनु॑ वष्टि शो॒चिषा॒जुह्वा॑नस्य स॒र्पिषः॑॥ १॥

भा०—मैं (होतारं) सब को सुख, अधिकार और बल देने हारे (दास्वन्तं) सब को प्रेम से बुलाने हारे और सब को अन्न, वस्त्र और भृति देने वाले, (वसुं) सब को बसाने वाले और सब में वसने वाले, (सहसः शत्रु बल को पराजय करने में समर्थ, बल के (सूनुम्) प्रेरक, संचालक, (जातवेदसं) ऐश्वर्य और विद्या में प्रसिद्ध (विप्रं न) मेधावी, विद्वान्, ब्राह्मण के समान ही (जातवेदसं) समस्त विद्याओं में निष्णात पुरुष को (अग्निं) अग्रणी नायक रूप से (मन्ये) जानूं। (यः) जो (देवः) दानशील तेजस्वी, शुभकामनावान् और (देवाच्या कृपा) विद्वानों, वीर विजयी पुरुषों को प्राप्त होने वाले सामर्थ्य और (ऊर्ध्वया) सब से उत्कृष्ट शक्ति से ही (आजुह्वानस्य) आहुति किये गये (सर्पिषः घृतस्य) पिघले हुए घृत के कारण (विभ्राष्टिम् अनु) अति प्रदीप्त अग्नि के समान (आजुह्वानस्य सर्पिषः घृतस्य) आह्वान किये गये या स्पर्धालु, अतिवेग से आक्रमण करते हुए, तेजस्वी सैन्य बल के कारण (विभ्राष्टिम्) चमकते हुए (शोचिषा) अति तेज की ज्वाला से (वष्टि) चमकता है।

**यजि॑ष्ठं त्वा॒ यज॑माना हुवेम॒ ज्येष्ठ॒मङ्गि॑रसां
विप्र॒ मन्म॑भि॒र्विप्रे॑भिः शुक्र॒ मन्म॑भिः।**

परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन्! विद्वान् विविध उपायों और विद्याओं से और ऐश्वर्यों और सुचरितों से समस्त प्रजाओं से प्रसन्न, पूर्ण और सन्तुष्ट करने वाले! हे (शुक्र) शुद्ध आत्मा वाले! वा शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने हारे! (मन्मभिः) मान करने योग्य, एवं विचारशील (विप्रेभिः) विद्वान् पुरुषों और (मन्मभिः) ज्ञान विज्ञानों सहित, (यजिष्ठं) सब से अधिक पूजनीय, (अंगिरसां ज्येष्ठं) प्राणवान्, एवं ज्ञानी तेजस्वी पुरुषों में सूर्य के समान सब से बड़े, तेरे उपासक, तेरी संगति करने हारे (त्वा) तुझको हम (यजमानाः) (हुवेम) स्तुति करें, प्राप्त हों! (धाम इव परिज्मानम्) सूर्य के समान चारों ओर प्रकाश से और तेज से व्यापक (चर्षणीनाम् होतारम्) प्रजा और दीर्घदर्शी विद्वानों को अधिकार, ऐश्वर्य देने वाले उनको अपने अधीन स्वीकारने वाले (शोचिष्केशम्) ज्वालाओं के समान किरणों और केशों को धारण करने वाले (वृषणं) मेघ के समान सुखों के वर्धक एवं प्रजा को व्यवस्था में बांधने वाले, बलवान् (यं) जिस पुरुष को (इमाः) ये सब (बिशः) हृदय और गृह में प्रविष्ट स्त्रियें जिस प्रकार पति को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (विशः) उसके राज्य में प्रविष्ट होकर रहने वाली प्रजाएं (जूतये) उसे प्रसन्न करने और स्वयं प्रसन्न होने के लिये (प्र अवन्तु) प्राप्त होती हैं वह उनको भी प्राप्त हो और पालन करे।

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः। वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरं निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

भा०—(सः हि) और वह (विरुक्मता) विविध दीप्ति और तेज से युक्त (ओजसा) पराक्रम से (पुरू चित् दीद्यानः) खूब चमकता

(भवति) रहे। और (परशुः न) जिस प्रकार फरसा, कुल्हाड़ा (द्रुहन्-तरः) वृक्षों को खूब अच्छी प्रकार काट गिराता है उसी प्रकार वह भी (द्रुहन्तरः भवति) द्रोही शत्रु जनों का मारने वाला हो। और (यस्य) जिस का (स्थिरं) स्थिर (वीळु) वीर्य, बल, पराक्रम (समृतौ) संग्राम में (परशुः न वना) कुल्हाड़ा जिस प्रकार वनों को काटता है उसी प्रकार शत्रुसेना दलों को (श्रुवत्) नाश करता है। और वह स्वयं (निः-सहमाणः) शत्रु पराजयकारी वीर पुरुषों सहित शत्रु विजय करने हारा होकर (यमते) समस्त सैन्य बल को नियम में रखता है और (न अयते) कभी नहीं भागता, (धन्वसहा न) वह धनुष से शत्रु वशकारी, धनुर्धर के समान (अयते) आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है।

दृळहा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिरराणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे। प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा। स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

भा०—(यथा विदे) जैसे विद्वान् पुरुष को (अनु दुः) लोग आदर पूर्वक नाना अन्न, वस्त्र, धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार (अस्मै) उस नायक को (दृढ़ा चित्) दृढ़, बलवान् सैन्य, स्थायी, धनैश्वर्य प्रजाएं (अवसे अनु दुः) अपनी रक्षा के लिये प्रदान करें। जिस प्रकार (अग्नये) अग्नि को (तेजिष्ठाभिः अरणिभिः) अति तीव्रता से प्रज्वलित होने वाली अरणियों या काष्ठों सहित (अवसे) प्रकाश प्राप्त करने के लिये (दाष्टि) हवि आदि प्रदान करता है और जिस प्रकार (अग्नये) ज्ञानवान् आचार्य के लिये (तेजिष्ठाभिः अरणिभिः) अति तेजस्विनी समिधाओं सहित आकर शिष्य (दाष्टि) भेंट पुरस्कार आदि आचार्य का प्रिय भाग (अवसे) ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रदान करता है उसी प्रकार प्रजाजन (अग्नये) अग्रणी नायक की वृद्धि के लिये (तेजिष्ठाभिः) अति तेजस्विनी (अरणिभिः) शत्रुओं के नाशकारी सेनाओं सहित

(दृढ़ा अन्ना) दृढ़ स्थायी, ऐश्वर्य (अवसे दाष्टि) अपनी रक्षा के लिये प्रदान करे । (वना इव) जिस प्रकार कुल्हाड़ा वनों को (तक्षत्) काट छांट डालता है और जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जल वाले मेघों को (शोचिषा) तेज से छिन्न भिन्न करता है और जिस प्रकार अग्नि (शोचिषा) अपनी ज्वाला से (वना तक्षत्) वनों को जला कर लुंज पुंज कर देता है या (वना इव) अग्नि जिस प्रकार जलों को अपने ताप से तपा कर भाफ़ रूप में उड़ा देता है उसी प्रकार जो (शोचिषा) अपने तेज से (तक्षत्) शत्रु सेना दलों को काट गिराता है और (यः) जो (पुरूणि) बहुत से सैन्यों को (अव गाहते) खूब आलोडित कर देता, खूब मथ डालता है और (चित्) जिस प्रकार (अन्ना) जाठर अग्नि खाये हुए अन्नों को (ओजसा निरिणाति) तेज और ताप से सर्वथा पचा डालता, या अग्नि जिस प्रकार अपने पर (स्थिराणि) धरे (अन्ना ओजसा निरिणाति) अन्न आदि खाद्य पदार्थों को ताप से उबाल देता और खाने योग्य बना देता है उसी प्रकार जो ताप से (ओजसा) अपने बल पर क्रम से (स्थिराणि) स्थिर शत्रु सैन्यों को भी (निरिणाति) खूब आक्रमण करता और पुनः उनको अपना भोग्य बना लेता है, प्रजाजन उसको कर आदि दें ।

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातराद-प्रायुषे दिवातरात् । आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे । भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५॥१२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार सूर्य के अभाव में (नक्तं) रात्रि समय में (दिवातरात्) उत्तम दिन की अपेक्षा भी (सुदर्शतरः) उत्तम रीति से देखने योग्य और अन्यों को भी अपने प्रकाश से दिखानेहारा है उसी प्रकार (यः) जो ज्ञानवान् नायक या गुरु (अप्रायुषे) जीवित, जागृत, शक्ति-शाली पुरुष या नवयुवक शिष्य के लिये (दिवातरात् सुदर्शतरः) सूर्य

से या दिन के प्रकाश से भी अधिक अच्छी प्रकार दर्शनीय, उज्ज्वल और स्पष्ट मार्गदर्शी है (अस्य) इस महान् संसार के (पृक्षम्) सेचने हारे, जीवनप्रद, या सुव्यवस्थित करनेहारे, सर्वत्र संगत, सर्वव्यापक स्वामी, प्रभु की हम (उपरासु) यज्ञवेदियों में अग्नि के समान (उपरासु) समस्त दिशाओं में और भीतरी ध्यान पूर्वक रमण करने योग्य आभ्यन्तर चित्त भूमियों में भी (धीमहि) धारण करें और ध्यान करें । (आत्) और उसके उत्तम रीति से ध्यान करने के अनन्तर ही (अस्य आयुः) उसका परम जीवन, या उसका प्राप्त होना ही (ग्रभणवत्) सब के ग्रहण योग्य, सब को भीतर लेने वाला (सूनवे न शर्म) पुत्र के लिये पिता के घर के समान ही सुखद, (वीडु) बलवान् , दृढ़ आश्रय हो जाता है । (भक्तम्) परम भजन करने योग्य उस (अभक्तम्) स्वयं किसी की भक्ति न करने हारे, परम पूज्य, सर्व प्रधान, सर्वोच्च (अवः) परम रक्षा-स्वरूप प्रभु को (व्यन्तः) प्राप्त होते हुए (अजराः अग्नयः) उस अजन्मा परमेश्वर में रमण करने हारे, उसमें अपने आपको समर्पण करने हारे, ज्ञानी पुरुष और (अजराः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले नायक में रमण करने वाले उस पर पूर्ण प्रसन्न वीर, (अग्नयः) तेजस्वी जन (व्यन्तः) ऐश्वर्यों की कामना करते हुए भी (अजराः) जरा, आदि से रहित, दीर्घजीवी स्थिर या अविनाशी अमृतरूप हो जाते हैं । इतिद्वादशोवर्गः।

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः । आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा । अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥६॥

भा०—पुनः वह स्वामी, प्रभु, नायक और अग्नि और गृहस्थ में पति कैसा होना उचित है ? (मारुतं शर्धः न) वायु के प्रबल वेग के समान अग्नि जिस प्रकार (तुवि-स्वनिः) बड़ा भारी शब्द करने वाला होता है और (मारुतं शर्धः न) और जिस प्रकार वायु वेग से जाने

और शत्रुओं का मारने वाले वीर भटों के सैन्य के समान अकेला ही (अग्निः) आग्नेयास्त्र का अग्नि जिस प्रकार (तुवि-स्वनिः) बहुत घोर गर्जन कारी होता है उसी प्रकार सेना नायक भी (तुविस्वनिः) बहुत भारी शब्द वाला, सिंहवत् नादशील, एवं गम्भीर गर्जनशील हो। और अग्नि जिस प्रकार (अप्नस्वतीषु उर्वरासु) कर्म यज्ञादि वाली उत्तम वेदियों में (इष्टनिः) यज्ञ करने योग्य होता है और जिस प्रकार अग्नि (अप्नस्वतीपु) रूपवती, उत्तम, हरी भरी (उर्वरासु) उपजाऊ भूमियों में (इष्टनिः) सबकी इष्ट अभिलाषा पूर्ण करने वाला होता है उसी प्रकार सेनानायक या राजा भी (अप्नस्वतीपु) नानारूप, उत्तम वर्ण युक्त (उर्वरासु) उर्वरा, नाना धन धान्य पैदा करने वाली समृद्ध भूमियों और हरी भरी, प्रजाओं में (इष्टनिः) सबके अभिलाषा पूरी करने योग्य, सबका आदरणीय और (आर्त्तनासु) शत्रुओं को पीड़ाकारी सेनाओं में (तुविस्वनिः) प्रबल गर्जना या आज्ञाकारी होता हुआ (इष्टनिः) सर्वादरयोग्य, एवं सत्य व्यवहार युक्त प्रजाओं में पूज्य, आर्त्त, दुखित प्रजाओं को उनका मन चाहा सुखैश्वर्य प्राप्त करा देने वाला अर्थि-कल्पद्रुम हो। और (यज्ञस्य) अग्नि जिस प्रकार यज्ञ का (केतुः) ज्ञापक, मुख्य आश्रय होता है और (आददिः अर्हणा हव्यानि आदद्) सब पदार्थों की अपने में लेने में समर्थ होने से यज्ञोपासना में भक्ति पूर्वक दिये सब चरु पदार्थों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह नायक (यज्ञस्य) सुव्यवस्थित प्रजापालनकारी राष्ट्र वा सैन्य दल के संगठन तथा प्रजापति पद का (केतुः) मुख्य ध्वजा के समान सबसे उच्च और आदरणीय होकर (अर्हणा) पूजा, मान आदर करने योग्य, समस्त (हव्यानि) उत्तम अन्नों और ग्राह्य ऐश्वर्यों को (आदद्) सब प्रकार से स्वीकार करता है। (अध स्म) और जिस प्रकार (हृषीवतः) हर्षित, सुप्रसन्न ज्वाला वाले (हर्षतः) अन्यों के प्रमोदकारी अग्नि

के मार्ग का सब (नरः) नायक जन सेवन करते हैं अर्थात् वे अग्नि के समान तेजस्वी होते हैं उसी प्रकार (हृषीवतः) अति हर्ष करने वाले स्वयं प्रसन्न और अन्यों को हर्षित करने वाले (अस्य) इस नायक के (पन्थां) मार्ग को (शुभे पन्थां न) शुभ उद्देश्य से सन्मार्ग के समान (विश्वे जुषन्तु) सब कोई प्रेम से ग्रहण करें । (नरः) लोग (शुभे) अपने कल्याण के लिये (पन्थाम्) मार्ग के समान (जुषन्तु) उससे प्रेम करें और उसकी सेवा करें ।

द्विता यदीं कीस्तासो॑ अभिद्य॑वो नमस्यन्त॑ उपवोच॑न्त भृग॑वो मथ्नन्तो॑ दाशा भृग॑वः । अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो॑ धर्णिरेषाम् । प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

भा०—(भृगवः) पाप संकल्पों को भून डालने वाले, तेजस्वी पुरुष (दाशा) यज्ञ में चरु आदि देने के लिये जिस प्रकार (ईं मन्थन्तः) इस प्रत्यक्ष भौतिकाग्नि को मथते हुए (कीस्तासः) कीर्त्तन, भजन स्तुति करते हुए (नमस्यन्तः) नमस्कार करते हुए (उप वोचन्त) उपासना करते हैं उसी प्रकार (भृगवः) अति तेजस्वी (कीस्तासः) विद्यादि के उपदेष्टा, (अभिद्यवः) सूर्य के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (ईं) इस महान् राष्ट्र या राष्ट्रपति को (मन्थन्तः) वार २ मथते अर्थात् उसके उत्तम से उत्तम गुणों की परीक्षा लेते हुए (द्विता) दोनों राजा और प्रजा के हित के लिये (दाशा) समस्त राज्याधिकार दान करने के लिये (नमस्यन्तः) उसको आदर सत्कार करते हुए (यत्) जब (उप वोचन्त) प्रार्थना करते हैं तब (यः) जो (शुचिः) शुद्ध, निष्कपट और (एषां धर्णिः) इन समस्त प्रजाओं को धारण करने में समर्थ हो वही (अग्निः) अग्रणी नायक, तेजस्वी होकर समस्त (वसूनां) बसे राष्ट्रों और प्रजाओं और ऐश्वर्यों का (ईशे) स्वामी हो । वही (प्रियान्) सब को प्रिय लगने वाले, मनोहर, उत्तम (अपिधीन्) गोपनीय ख़ज़ानों और राष्ट्र की रक्षा

करने वालों को (मेधिरः सन्) शत्रुओं का नाशकारी होकर (वनिषीष्ट) स्वयं प्राप्त करे और (मेधिरः) स्वयं प्रज्ञावान् बुद्धिमान् हो कर ही (आ वनिषीष्ट) सब को विभक्त करे।

विश्वा॑सां त्वा वि॒शां पतिं॑ हवामहे॒ सर्वा॑सां समा॒नं दम्प॑तिं भु॒जे स॒त्यगि॑र्वाहसं भु॒जे। अति॑थिं॒ मानु॑षाणां पि॒तुर्न यस्या॑स॒या। अ॒मी च॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑स॒ आ वयो॑ ह॒व्या दे॒वेष्वा वयः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! हे परमेश्वर ! हे आचार्य ! हे स्वामिन् ! गृहपते ! (विश्वासां) समस्त (विशां) राज्य या शासन के भीतर प्रविष्ट प्रजाओं के (पतिं) पालक (त्वां) तेरी (हवामहे) हम उपासना करते हैं, तुझे अपना पालक स्वीकार करते हैं, तेरी शरण आते हैं। (भुजे दम्पतिं) जिस प्रकार सब आश्रम और सब सन्तानें पुत्र पुत्रियें अन्नादि भोजन को प्राप्त करने के लिये स्त्री-पुरुष रूप गृहस्थ, या मां बाप, या गृहपति के पास आते हैं उसी प्रकार हम समस्त प्रजाजन (भुजे) ऐश्वर्यों के भोगने और अपनी रक्षा के लिये (सर्वासां समानं) सब प्रजाओं के लिये समान, निष्पक्षपात रूप से रहने वाले, (दम्पतिम्) समस्त प्रजाओं को दमन करने वाले, दण्ड व्यवस्था के पालक पुरुष को (हवामहे) प्राप्त होते हैं। और हम (भुजे) ऐश्वर्यों को भोग और न्यायपूर्वक रक्षा के लिये प्रजाजन (सत्यगिर्वाहसम्) सत्य वाणी को धारण करने वाले (मानुषाणाम् अतिथिम्) समस्त मनुष्यों के बीच अतिथि के समान पूजनीय, तुझ को हम प्राप्त होते हैं। तेरी स्तुति करते हैं। (अमृतासः) सन्ततिजन (पितुः आसया न) जिस प्रकार पालक पिता के समीप प्रेम और उत्तम (हव्या) प्राप्त करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने के लिये उपस्थित होते हैं उसी प्रकार (यस्य पितुः आसया) जिस सर्व पालक के समीप, उसकी गोद और उपासना में स्थित (अमी च विश्वे अमृताः) ये सब अमर, मुक्त आत्मा, (वयः) भोक्ता, विद्वान् , जन (हव्या आ) उत्तम ज्ञानों और मोक्ष

सुखों को प्राप्त करने के लिये उपासना करते हैं। और (देवेषु) विद्वान् दिव्य पुरुषों में (वयः) सभी ज्ञानी पुरुष (आ) उसी की उपासना करते हैं।

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये। शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः। अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ६ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (सहसा) जलाने वाले बल से (सहन्तमः) सब को पराजित करने वाला, और (देवतातये) यज्ञ के लिये या विद्वानों, दिव्य पदार्थों के हित के लिये (शुष्मिन्तमः) शोषणकारी तीव्र ताप से युक्त पदार्थों में सब से श्रेष्ठ है, वही (देवतातये रयिः न) किरणों या प्रकाश के लिये अक्षय धन के समान है। उसको (श्रुष्टीवानः) अन्न आदि चरु से युक्त जन (परिचरन्ति) उसकी परिचर्या करते हैं। उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवान् परमेश्वर, अग्रणी नायक! राजन्! विद्वन्! आचार्य! तू (सहसा) सब को पराजित करने और दूर करने वाले बल से (सहन्तमः) सब से बढ़ कर पराजित करने वाला और (देवतातये) विद्वानों और दिव्य पदार्थों के हितार्थ (शुष्मिन्तमः) सब से अधिक बलवान् (जायसे) है। हे राजन्! तू बलवान् होकर रह। तू (देवतातये) देवों, विद्वानों और विजयी पुरुषों के लिये उनका (रयिः न) परम धनवत् सबका सुखदाता है। जैसे भौतिक अग्नि की (मदः) घृत आदि पदार्थों से तृप्ति ही (शुष्मिन्तमः) उस सब से अधिक तीव्र ताप वाला होना है वही द्युम्निन्तमः क्रतुः) उसी दशा में वह सबसे अधिक तेजस्वी, प्रकाशवान् और क्रिया सामर्थ्यवान् होता है उसी प्रकार! हे प्रभो! परमेश्वर (ते मदः) तेरा मद अति हर्ष या (मदः = दमः) तेरा दमन या शासन भी (शुष्मिन्तमः मदिन्तमः) शत्रुओं का सब से अधिक शोषण करने वाला, और सब से अधिक बलवान् और (द्युम्निन्तमः)

सब से अधिक तेजस्वी यशस्वी और ऐश्वर्य समृद्धि से युक्त (उत) और (क्रतुः) क्रियासामर्थ्यवान् प्रज्ञा से युक्त हो। हे परमेश्वर ! (ते मदः) तेरा परमानन्द स्वरूप (शुष्मिन्तमः द्युम्निंतमः उत क्रतुः) अति बलशाली, अतियशस्वी, प्रकाशयुक्त और क्रिया और ज्ञान से सम्पन्न संसार का उत्पादक है। (अध) और हे (अजर) जरा रहित (श्रुष्टीवानः न) अन्नादि चरु वाले याज्ञिकों के समान (श्रुष्टीवानः) तेरे में व्याप्ति वाले, तुझ में रमण करने वाले ज्ञानी पुरुष ही (ते परिचरन्ति) तेरी नित्य उपासना करते हैं। हे (अजर) हे जीर्णता या नाश को प्राप्त न होनेहारे ! सदा बलवान् ! राजन् ! (श्रुष्टीवानः) अति शीघ्र कार्य कारी सेवकजन दूत आदि (ते परिचरन्ति) तेरी सेवा करें। अथवा हे (अजर) अविनाशी प्रभो ! (श्रुष्टीवानः) व्याप्ति वाले आकाश, विद्युदादि नित्य पदार्थ भी (ते परिचरन्ति) तेरी सेवा करते हैं, तेरे अधीन हैं। पुनः, हे (अजर) अज, अजन्मा नित्य परमाणुओं और आत्मा, आकाशादि पदार्थों में भी रमण करने हारे ! तेरी ही हम उपासना करें।

प्र वो॑ म॒हे सह॑सा॒ सह॑स्वत उष॒र्बुधे॑ पशु॒षे नाग्नये॑ स्तोमो॑ बभू-त्व॒ग्नये॑ । प्रति॒ यदीं॑ ह॒विष्मा॒न्विश्वा॑सु॒ क्षासु॒ जोगु॑वे । अग्रे॑ रे॒भो न ज॑रत ऋषू॒णां जूर्णि॒र्होत॑ ऋषू॒णाम् ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का यत् जब (हविष्मान् स्तोमः) उत्तम चरु सामग्री से युक्त स्तोम (अग्नये) जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि को लक्ष्य करके पढ़ा जाता है उसी प्रकार वास्तव में वह (स्तोमः) स्तोम, मन्त्र समूह (हविष्मान्) आदन, या ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्नों तथा गुणों सहित, उनको प्रकाशित करता हुआ उस (महे) बड़े भारी महान् सामर्थ्य वाले, (सहसा सहस्वते) बल से बलवान् (उषर्बुधे) प्रातःकाल जागने वाले, आलस्य रहित, अथवा योग दशा में विशोका के उदय में ज्ञान का विषय होने वाले, (पशुषे) पशुओं को सब

प्रकार की पुष्टि देनेवाले गोपालक के समान समस्त प्राणियों के परिपोषक और व्यवस्थापक (विश्वासु क्षासु जी गुवे) समस्त भूमियों और चित्त भूमियों में प्राप्त होने वाले परमेश्वर के लिये (बभूतु) होवे। और (रेभः न) जिस प्रकार विद्वान् उपदेष्टा (ऋपूणां अग्रे जरते) श्रद्धा से आने वाले जिज्ञासु शिष्यों को उपदेश करता है या (रेभः) विद्वान् पुरुष जन जिस प्रकार (ऋपूणां) बड़े ज्ञानवान् पुरुषों के समक्ष (जरते) विद्या का प्रकाश करता है और जिस प्रकार (जूर्णिः ऋपूणाम् अग्रे) ज्वर आदि कष्टों से पीड़ित पुरुष जिस प्रकार विद्यावान् वैद्यों के समक्ष अपने सब वचन कहता है उसी प्रकार (जूर्णिः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् (होता) उपासक या विद्या का प्रदाता आचार्य भी (ऋपूणां रेभः) उत्तम उपदेशक होकर (ऋपूणाम् अग्रे जरते) दर्शनीय, प्राप्तविद्य या जिज्ञासु विद्यार्थी जनों को आगे ज्ञानोपदेश करे।

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना। महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै। महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा॥ ११॥ १३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् प्रकाशवान्! स्वामिन्! नायक! प्रभो! (सः) वह तू (नः) हमारे (नेदिष्ठं) अति समीप (ददृशानः) समस्त संसार को देखता हुआ, सबका साक्षी, अध्यक्ष, सर्वद्रष्टा होकर (सुचेतुना) उत्तम ज्ञानवान् नायक पुरुषों सहित (देवेभिः) विद्वान् तथा विजयशील पुरुषों सहित हमें (सचनाः) अन्नादि समृद्धि से युक्त एवं संघ बनाकर रहने और प्राप्त करने योग्य (रायः) ऐश्वर्य (आभर) सब तरफ से हमें प्राप्त करा। हे (शविष्ठ) बलवानों से सब से अधिक बलवान्! तू (सं-चक्षे) अच्छी प्रकार से उपदेश करने और अच्छी प्रकार देखने ज्ञान करने के लिये और (अस्यै) इस प्रजा को (भुजे) पालन और भोग करने के लिये (नः) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम बल

वीर्य भी (सुचेतुना) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष द्वारा (कृधि) प्रदान कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू! (शवसा) बल से (उग्रः) अति वेगवान् प्रचण्ड वायु या विद्युत् के समान (मथीः) शत्रुओं का मथन करने वाला होकर (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता, उपासक विद्वान् पुरुषों को (महि सुवीर्यम्) बड़ा उत्तम बल (कृधि) प्रदान कर। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१२८]

॥ १२८ । १—८ परुच्छेप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—निचृदत्यष्टिः । ३, ४, ६, ८ विराडत्यष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ५, ७ निचृदष्टिः । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रत-मग्निः स्वमनु व्रतम् । विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते । अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (मनुषः) मननशील पुरुष (होता) सब विद्याओं वा धनों का ग्रहण करने और योग्यपात्रों में दान देने वाला आचार्य (यजिष्ठः) अति उत्तम रीति से सुसंगत एवं विद्या आदि दान करने में सबसे उत्तम दाता होकर (उशिजाम् अनु) विद्या की इच्छा करने वाले जिज्ञासु जनों के (व्रतम्) व्रतों, धर्मों के अनुकूल (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (स्वम्) अपने (व्रतम्) कर्तव्यों को (अनु) यथावत् पालन करे। वह विद्वान् पुरुष (विश्व-श्रुष्टिः) समस्त श्रवण योग्य उपदेशों का जानने हारा (सखीयते) विद्यार्थी को अपना सखा या मित्र बना लेना चाहता है। वह (रयिः इव) धन सम्पन्न पुरुष के समान (श्रवस्यते) यश की कामना करता है। (अदब्धः) सदा विघ्न, पीड़ा आदि रहित होकर वह (होता) ज्ञान प्रदान करने में कुशल पुरुष (इळः पदे) स्तुति योग्य वेदवाणी के ज्ञान और भूमि प्राप्त कराने के कार्य में प्रमाण योग्य पदपर (नि सदत्)

विराजे और उसके समक्ष (होता) ज्ञान ग्रहण करने हारा विद्यार्थी और प्रजाजन (परिवीतः) अच्छी प्रकार सावधान, सुरक्षित, एवं सब प्रकार उत्तम वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि धारण कर, गुरुद्वारा उपनीत होकर (इडः पदे) वेदवाणी के ज्ञान करने के लिये (नि सदत्) नियम पूर्वक एवं विनय से समीप विराजे और इसी प्रकार (मनुष्य) मनन शील पुरुष (धरीमणि) राष्ट्र के धारण करने के कार्य में प्रसिद्ध हो। (उशिजाम् व्रतमनु अग्निः इव स्वव्रतम् अनु) तेजस्वी पुरुषों के बीच वह अग्नि के समान अपने व्रत पालन कार्य में सावधान हो। (विश्वश्रुष्टिः) समस्त राज्य कार्यों का कर्त्ता, समस्त अन्न, धन आदि का स्वामी होकर (रयिः) ऐश्वर्यवान् के समान सब का मित्र, यशस्वी होना चाहे। वह अहिंसित निष्कण्टक होकर (परिवीतः)। सुरक्षित रहकर पृथ्वी के प्राप्त करने और सर्वपूज्य सब प्रकार से राजा के परम पद सिंहासन पर विराजे।

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता। स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति। यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥

भा०—(यज्ञसाधम्) जिस प्रकार यज्ञ के साधन करने वाले अग्नि को हम (अपि वातयामसि) वायु द्वारा प्रज्वलित करते हैं। और (ऋतस्य पथा) यज्ञ या वेदोक्त मार्ग से (नमसा) अन्न द्वारा और (देवताता) देव, पृथिवी, जल आदि के उपकार या उत्तम शोधनादि के लिये (हविष्मता) उत्तम अन्नादि औषधिमय चरु से प्रज्वलित करते हैं और (सः) वह यज्ञाग्नि (नः) हमारे (ऊर्जाम् उप आभृति) नाना प्रकार के अन्नों के ग्रहण करने और सर्वत्र चारों तरफ फैला देने के निमित्त (अया कृपा) इस सामर्थ्य से (न जूर्यति) कभी क्षीण नहीं होता। प्रत्युत (देवं) उस प्रदीप्त अग्नि को (मनवे) मनुष्यों के

उपकार के लिये (मातरिश्वा) वायु (परावतः) दूर देश से आकर भी (भाः) प्रकाशित करता है उसी प्रकार हम (तं) उस (यज्ञसाधम्) अध्यापन वा ज्ञान दान करने वाले विद्वान् मान्य पुरुष को (ऋतस्य यथा) सत्य व्यवहार के मार्ग से, (देवताता) शुभ गुणों को प्राप्त करने वा विद्या के उत्सुक शिष्य जनों के हितार्थ, (हविष्मता) ग्राह्य भेट पुरस्कार सहित (नमसा) विनय द्वारा (अपि वातयामसि) उत्साहित करें। (यं) जिससे (देवं) विद्यादाता विद्वान् पुरुष को (परावतः परावतः) दूर २ देश से आया, (मातरिश्वा) ज्ञानवान् पुरुष के अधीन बढ़ने वाला शिष्य जन (मनवे) ज्ञान प्राप्त करने के लिये (भाः) प्रकाशित करता है (सः) वह (नः) हमारे (ऊर्जाम् उपाभृति) बल वीर्यों के धारण कर लेने पर (अया कृपा) अपने इस सामर्थ्य से (न जूर्यति) कभी क्षीण नहीं होता, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ता है।

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्। शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः। सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् (एवेन) अपनी व्यापक होने वाली क्रिया से (पार्थिवं) पृथ्वी के ऊपर विद्यमान समस्त पदार्थों को (सद्यः) अति शीघ्र (परि एति) व्याप लेता है उसी प्रकार राजा भी अपने (एवेन) गमन साधन रथादि से (पार्थिवं) समस्त पार्थिव लोक को (परि एति) प्राप्त करे। और (मुहुर्गीः) वार २ गर्जन करने वाला (वृषभः) बैल या सांड जिस प्रकार (कनिक्रदत्) गर्जता और (रेतः दधत्) वीर्य को गौओं में स्थापन करता और जिस प्रकार (मुहुर्गीः वृषभः) वार २ गर्जने वाला और (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, मेघ (रेतः) जल को भूमियों पर बरसाता है उसी प्रकार राजा भी (वृषभः) प्रजा पर ऐश्वर्य सुखों का वर्षण करने वाला एवं (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ,

आर्य एवं वृष अर्थात् धर्म मार्ग से चमकने वाला बलवान् होकर (कनिक्रदत्) शत्रुओं को वार २ ललकारता हुआ, (मुहुर्गीः) वार २ सेना और अधीन रथों को आज्ञाएं प्रदान करता हुआ (रेतः दधत्) राष्ट्र में ऐश्वर्य और बल वीर्य को धारण करावे। और जिस प्रकार (देवः) जलप्रद मेघ या तेजस्वी सूर्य (तुर्वणः) बड़े वेग से जाने वाला होकर (वनेषु) वनों में जलों में, (अक्षभिः शतं चक्षाणः) अपने किरण प्रकाशों से सैकड़ों पदार्थों को दिखाता हुआ, (उपरेषु) मेघों में, (सानुषु) ऊंचे प्रदेशों में और (परेषु सानुषु) अन्य, दूर के गिरि शिखरों पर भी (सदः दधातु) अपना आश्रय रखता है उसी प्रकार राजा या अग्रणी नायक (देवः) विजगीषु होकर, (वनेषु) सेवने योग्य ऐश्वर्यों में (तुर्वणिः) शीघ्र ही स्वयं उनको ग्रहण करने वाला होकर या दूर के देशों का भी भोक्ता होकर (अक्षभिः) अपने अध्यक्षों द्वारा (शतं चक्षाणः) सैकड़ों कार्यों का विचार करे। और वह (उपरेषु सानुषु) समीपवर्त्ती, सुखप्रद (वनेषु) कार्यकुशल अपने और पर-सेना के भृत वीर सैनिकों में (तुर्वणिः) अति वेग से शत्रु को विनाश करने वाला होकर (अक्षभिः चक्षाणः) नाना अध्यक्षों से देखता हुआ (उपरेषु सानुषु) अति आन्तरिक सुख और ऐश्वर्यों या उच्चावच कालों में (परेषु सानुषु अग्निः इव) दूरस्थ पर्वतों में अग्नि के समान (सदः) अपना आश्रय गढ़, दुर्ग आदि (दधातु) स्थापित करे।

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञस्य पुरोहितः) साक्षी रूप से प्रधान पद पर स्थापित हुआ विद्वान् पुरुष, यज्ञ का पुरोहित (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और प्रज्ञावान् होकर (अध्वरस्य) निर्विघ्न समाप्त होने वाले

यज्ञ को (चेतति) जानता और अन्यों को उपदेश करता है और (क्रत्वा) क्रतु अर्थात यज्ञ कर्म द्वारा (यज्ञस्य चेतति) यज्ञका ज्ञापन कराता है। उसी प्रकार (सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम धर्माचरण कृत्यों का करने वाला, (दमे दमे) प्रत्येक घर में (अग्निः) आग के समान तेजस्वी, सबका नायक गृहपति और राजा (दमे दमे) प्रत्येक दमन या शासन कार्य में (अध्वरस्य) अविनाशी (यज्ञस्य चेतति) संघ या गृहस्थ यज्ञ का ज्ञान रक्खे और (क्रत्वा) अपने उत्तम ज्ञान से (यज्ञस्य चेतति) उपास्य परमेश्वर या मुख्य प्रजापति पूज्य का भी ज्ञान करे। (वेधाः) कार्यों का करने वाला बुद्धिमान् पुरुष (क्रत्वा) अपने ज्ञान सामर्थ्य से ही (इषूयते) वाण के समान आचरण करे अर्थात् अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़े। वह (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न पदार्थों को (पस्पशे) अपने अधीन रखे, देखे और सुव्यवस्थित करे और भोगे। (यतः) क्योंकि (वन्हिः घृतश्रीः) जिस प्रकार अग्नि यज्ञ में पूज्य होकर घृत द्वारा विशेष कान्ति को धारण करता है उसी प्रकार (वेधाः) बुद्धिमान् पुरुष भी (अतिथिः) स्वयं अतिथि के समान प्रतिष्ठित (अजायत) होता और (घृतश्रीः) तेज और पराक्रम से सबको आश्रय देने योग्य या लक्ष्मी का भाजन हो जाता है और वह उसी प्रकार (वन्हिः) मुख्य होकर राष्ट्र आदि कार्यों का निर्वाहक (अजायत) बन जाता है।

क्रत्वा यद॑स्य तवि॑षीषु पृ॒ञ्चते॒ऽग्नेरवे॑ण म॒रुतां न भो॒ज्ये॑षि॒राय॒ न भो॒ज्या॑। स हि ष्मा दान॒मिन्व॑ति वसू॑नां च म॒ज्मना॑। स न॑स्त्रासते दुरि॒ताद॑भि॒ह्रुतः शंसा॑द॒घाद॑भि॒ह्रुतः॑॥ ५॥ १४॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नेः रवेण) विद्युत् अग्नि के गर्जन के साथ (अस्य क्रत्वा) और इस विद्युत् के कर्म सामर्थ्य से ही (तविषीषु) बलवती क्रियाओं में (मरुताम् भोज्या न) मनुष्यों के भोगने योग्य अन्नों के समान वायु गणों से भोग्य या सेवित जल (पृञ्चते) परस्पर

मिल कर स्थूल रूप धारण करते हैं और (इषिराय) इच्छुक, वृष्टि के अभिलाषुक कृषक जन के लिये (भोज्या न) वे जलकण ही अन्नों के समान बरसते हैं। और जिस प्रकार वह मेघ या विद्युत् ही (वसूनां च मज्मना) जल, अग्नि, विद्युत्, वायु आदि अन्तरिक्षगत भौतिक तत्वों के बल से ही (दानम् इन्वति) खण्ड २, बूंद २ होकर बहता है और (सः) वही (नः) हम प्राणियों को (अभिह्रुतः) मूर्छा दिला देने वाले (दुरितात्) दुःखप्रद दशा से और (अभिह्रुतः अघात् शंसात्) अति कुटिल घोर पाप या कष्ट, दुष्काल आदि से (त्रासते) रक्षा करता है। उसी प्रकार (अस्य तविषीषु) इस नायक की सेनाओं में (अग्नेः रवेण) अग्रणी पुरुष की आज्ञा से लोग परस्पर (पृञ्चते) सम्बद्ध मिल कर गठित हो जाते हैं और (मरुतां भोज्या न) वायु के समान तीव्र आक्रामक वीर जनों या प्रजाजनों के जो भोग योग्य ऐश्वर्य हैं वे सब (इषिराय) इच्छा वशवर्त्ती, राजा को ही प्राप्त हों। वह ही राजा, अग्रणी पुरुष (वसूनां च मज्मना) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों या अपने ही समवाय बल के सहित (दानम्) शत्रुओं के नाशकारी बल को (इन्वति स्म) प्राप्त करता है। (सः) वह ही (नः) हमें (अभिह्रुतः दुरितात्) अति कुटिल पापाचार (अघात् शंसात्) और पापमय कुटिल शिक्षा से (त्रासते) पालन करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

विश्वो॑ विहा॑या अर॒तिर्वसु॑र्दधे॒ हस्ते॑ दक्षि॑णे त॒रणि॒र्न शि॑श्रथ-च्छ्र॒व॒स्यया॒ न शि॑श्रथत्। विश्व॑स्मा॒ इदि॑षुध्य॒ते दे॑व॒त्रा ह॒व्यमोहि॑षे। विश्व॑स्मा॒ इत्सु॒कृते॒ वार॑मृण्वत्य॒ग्निर्द्वारा॒ व्यृ॑ण्वति ॥ ६ ॥

भा०—(१) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—(विश्वः) समस्त विद्याओं में प्रविष्ट एवं ब्रह्मचारियों को अपने भीतर ग्रहण करने हारा गुरु (विहायाः) गुणों से महान् (अरतिः) अति अधिक मतिमान्, ज्ञानवान्, (वसुः) स्वयं अपने अधीन समस्त शिष्यों को बसानेहारा

होकर (दक्षिणे हस्ते) दायें हाथ में रखे आमलक के समान प्रत्यक्ष रूप से समस्त ज्ञानैश्वर्य को (दधे) धारण करे। वह उस विद्यारूप धन को (तरणिः न) सूर्य के समान (शिश्रथत्) प्रदान करे। वह केवल उसे (श्रवस्यया) यश या धन की अभिलाषा से (न शिश्रथत्) प्रदान न करे। (इषुध्यते) बाणों को अपने भीतर धारण कर लेने वाले तर्कस के समान समस्त कामनाओं को अपने भीतर अन्तर्मुख वश कर लेने वाले (विश्वस्मै देवत्रा) समस्तदेवों, विद्वानों के बीच (हव्यम्) उत्तम प्रदान करने योग्य ज्ञानोपदेश और आचार को (आ ऊहिषे) सब ओर से धन के समान ही संगृहीत करके प्रदान करे। (अग्निः) अग्नि या सूर्य या दीपक या मशाल के समान मार्ग दिखाने वाला विद्वान् पुरुष (विश्वस्मै सुकृते इत्) सभी उत्तम सदाचारी, सत्कर्म करने वाले पुण्याचरणशील जिज्ञासु को (वारम्) उत्तम, वरण करने योग्य ज्ञानैश्वर्य (ऋण्वति) प्रदान करे। और ज्ञान के समस्त (द्वारा) द्वारों को (वि ऋण्वति) विशेष रूप से उपदेश करे। (२) इसी प्रकार राजा सर्वहितकारी होने से 'विश्व' है। वह समस्त ऐश्वर्य को अपने हाथ में रखे। वह सब (देवत्रा) इच्छुक याचकों को दान करे। प्रजा के लिये ऐश्वर्य प्राप्त करने के सब द्वार खोलदे।

स मानुषे वृजने शन्तमो हितो३ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः। स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते। स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) प्रकाशमान् अग्नि (मानुषे वृजने शंतमः) मनुष्यों के चलने योग्य मार्ग में अन्धकार के समय अति शान्तिदायक, कल्याणकारी और (हितः) हितकारी रूप से प्रदीपवत् स्थिर किया जाता है उसी प्रकार (स अग्निः) वह विद्वान् पुरुष, मुख्य नायक और राजा भी (मानुषे वृजने) मनुष्यों वा प्रजाओं के मार्ग में या दूर करने योग्य पाप व्यवहार को दूर करने के निमित्त (शंतमः)

अति शान्तिदायक, अनिष्टनिवारक और (हितः) हितकारी रूप में स्थापित किया जाय। अग्नि जिस प्रकार (यज्ञेषु जेन्यः) यज्ञों में सबसे उत्तम है उसी प्रकार वह विद्वान् और नायक पुरुष भी (यज्ञेषु) एक दूसरे से मिल कर करने योग्य कार्यों तथा संग्रामों में भी (जेन्यः) विजय शील, सबसे उत्कृष्ट पद के योग्य हो। वह (यज्ञेषु) सब उत्तम कर्मों में (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक, (प्रियः) सबका प्रिय (वि-श्पतिः) राजा के समान आदरणीय हो। (सः) वह अग्नि जिस प्रकार यज्ञों में (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (कृतानि हव्या) संस्कृत, अर्थात् कूट, पीस और परिपाक द्वारा सिद्ध किये हुए ओषधि अन्नों को और (इळा) मुख से उच्चारण की गई वेद वाणी को प्राप्त होता है उसी प्रकार वह प्रधान पुरुष भी (मानुषाणाम्) अधीन प्रजाजनों के (कृतानि) अच्छी प्रकार बनाये गये (हव्यानि) ग्रहण करने वा दान देने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों और (इळा) स्तुति वचनों को अथवा, (इळा कृतानि हव्या) यज्ञ वेदि में सम्पादित चरुओं के समान (इळा कृतानि हव्या) भूमि में उत्पन्न किये गये अन्नों और ऐश्वर्यों का (पत्यते) स्वामी हो। जिस प्रकार अग्नि (वरुणस्य धूर्त्तेः त्रासते) रात्रि के नाशकारी अन्धकार से रक्षा करता है उसी प्रकार (सः) वह नायक विद्वान् पुरुष (वरुणस्य धूर्त्तेः) शत्रुओं के नाशकारी, सर्व श्रेष्ठ, एवं सब दुःखों के नाश करने वाले सेनापति आदि के घातक बल से और (महः देवस्य धूर्त्तेः) बड़े भारी विजिगीषु पुरुष के हिंसाकारी सैन्य बल से भी (नः त्रासते) हमारी रक्षा करने में समर्थ हो।

अ॒ग्निं होता॑रमीळते॒ वसु॑धितिं प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं न्ये॑रिरे हव्य॒वाहं॒ न्ये॑रिरे। वि॒श्वायुं॑ वि॒श्ववे॑दसं॒ होता॑रं यज॒तं क॒विम्। दे॒वासो॑ र॒ण्वमव॑से वसू॒यवो॑ गी॒र्भी र॒ण्वं व॑सू॒यवः॑ ॥ ८ ॥ १५ ॥

भा०—विद्वान् जन (होतारम्) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले

(अग्निं) ज्ञानवान् और नायक, (वसुधितिं) ऐश्वर्यों के धारण करने वाले (प्रियं) प्रिय, (चेतिष्ठम्) सबसे अधिक ज्ञान देने वाले, अल्पज्ञों के चेताने वाले, (अरतिम्) मतिमान्, ऐश्वर्यवान्, (हव्यवाहम्) उत्तम अन्न आदि पदार्थों को धारण करने वाले पुरुष को (ईडते) आदर करते हैं। उसको (नि एरिरे) आदर से प्राप्त होते हैं। (वसूयवः) धनाभिलाषी पुरुष जिस प्रकार (गीर्भिः) वाणियों या स्तुतियों से (रण्वं) रमण करने हारे धनाढ्य की स्तुति करते हैं और (देवाः) ज्ञान की कामना करने हारे (वसूयवः) वसु, २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने की इच्छा करने वाले (रण्वं) उत्तम विद्योपदेशक पुरुष को (गीर्भिः) वेदवाणियों सहित प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष (विश्वायुम्) समस्त ज्ञान भण्डार को प्राप्त होने वाले, एवं (विश्वायुम्) समस्त प्राणियों या मनुष्य प्रजाजन के स्वामी, (विश्ववेदसं) समस्त ऐश्वर्य और ज्ञानों के स्वामी, (होतारं) ज्ञानैश्वर्य के दाता, (यजतम्) पूजनीय, (कविम्) क्रान्तदर्शी पुरुष को अपने (अवसे) रक्षा के लिये (नि एरिरे) नियमानुकूल प्राप्त हों। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१२६]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः१, २ निचृदत्यष्टिः । ३ विराडत्यष्टिः । ४ अष्टिः । ६, ११ भुरिगष्टिः । १० निचृदष्टिः । ५ भुरिगतिशक्वरी) ७ स्वराडतिशक्वरी । ८, ९ स्वराट् शक्वरी । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि। सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्। सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन्! शत्रुनाशक राजन्! सभा-सेनापते! (त्वं) आप (यं रथं) जिस 'रथ' रमण करने योग्य राष्ट्र, या

प्रजाजन, और रथादि से बने सैन्य को (मेध-सातये) यज्ञ के समान पवित्र कर्म और शत्रुओं को हिंसन करने और परस्पर सत्संग के लाभ के लिये (अपाका सन्तं) दुःखादि रहित और खूब बलवान्, सु-अभ्यस्त करके (प्र नयसि) आगे बढ़ाता, सन्मार्ग पर ले जाने में समर्थ है। अतः हे (अनवद्य) दोष रहित ! अनिन्दनीय ! हे (इषिर) सबके प्रेरणा करने हारे नायक ! तू उसको (प्र नयसि) आगे ले चल, उसको उन्नति मार्ग पर बढ़ा। (वशः च वाजिनम्) अश्वों को वश करने में समर्थ सारथी जिस प्रकार वेगवान् अश्व को अपने प्रयोजन में लगा लेता है उसी प्रकार तु भी (वशः) सबको वश करने में समर्थ होकर (सद्यः चित्) अति शीघ्र ही (तं वाजिनम्) उस बलवान्, वेगवान् सैन्य और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र तथा ज्ञानवान् विद्वज्जन सबको (अभिष्ट्ये) इष्ट सुखमय प्रयोजन के लाभ के लिये करः) नियुक्त कर। हे (अनवद्य) निन्दा के अयोग्य, सत्कार के पात्र, पूज्य ! हे (तूतुजान) सब कार्यों को शीघ्रता से करने हारे ! कुशल ! अथवा हे शत्रुनाशन ! (सः) वह तू (वेधसा) विद्वान् मेधावी पुरुषों की (वांचं न) वाणी के समान ही (अस्माकं वेधसां) हम विद्वान्, प्रज्ञावान् पुरुषों के बीच वाणी का (करः) प्रयोग कर।

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः। यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता। तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२॥

भा०—हे इन्द्र ! विद्वन् ! सेना और सभा के स्वामिन् ! (यः) जो तू (कासु चित्) कई सेनाओं संग्रामों, और कई प्रकार की प्रजाओं के बीच में (नृभिः) उत्तम नेता पुरुषों के सहित (भरहूतये) पालक पुरुषों को बीच सर्व श्रेष्ठ पालक कहलाने और शत्रुओं को संग्राम के लिये ललकारने के लिये (दक्षाय्यः) समर्थ, एवं प्रवीण होता

है और जो तू (कासु चित्) (पृतनासु) कई, अनेक सेनाओं के ऊपर (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा ही (प्र-तूर्त्तये) अच्छी प्रकार शत्रुओं के नाश करने में भी (दक्षाय्यः असि) समर्थ होता है । (सः) वह तू (श्रुधि) हमारे प्रजाजनों के वचन और न्याय-व्यवहार आदि भी श्रवण कर । क्योंकि (यः) जो पुरुष (शूरैः) शूरवीर पुरुषों के साथ मिलकर प्रजाओं को (स्वः) सुख (सनिता) प्रदान करने में समर्थ होता है और (यः) जो (विप्रैः) विद्वान् पुरुषों के द्वारा (वाजं तरुता) ज्ञान और ऐश्वर्य और अन्न प्रदान करने या युद्ध पार करने में समर्थ होता है (तं वाजिनम्) उस ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष को (ईशानासः शक्तिशाली, अधिकारवान् पुरुष भी (पृक्षम्) सत्संग योग्य और सुखों और ऐश्वर्यों से प्रजा और आश्रितजनों के सेचन और संवर्धन करने वाला जानकर (अत्यं वाजिनं न) अतिवेगवान् बलवान् अश्व के समान (इरधन्त) आश्रय करते हैं, उसे समस्त शासकों का भी शासक बना देते हैं

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् । इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे । मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे विद्वन् ! हे शत्रुनाशक सेनापते ! हे (शूर) शूरवीर ! अति शीघ्र कार्य्य करने हारे, कुशल ! तू (हि) निश्चय से (दस्मः) दर्शनीय, सर्वद्रष्टा, अथवा शत्रुओं का नाश करने हारा है । (चित् त्वचं कं) जिस प्रकार कोई पुरुष चाम की बनी मशक को जल से भरता है और जिस प्रकार वायु या सूर्य किरणों से खिंचे (कं) जल से (त्वचं) समस्त पृथिवी को आच्छादन करनेवाले वातावरण को पूर्ण कर देता है और (वृषणं पिन्वति) वर्षणशील मेघ को पूर्ण करता और बरसा देता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते तू भी त्वचं) आच्छादक देह की त्वचा के समान राज्य की रक्षा करने वाले (वृषणं) सुखों के वर्षक, और बलवान्

शत्रुओं पर शर वर्षा करने वाले वीर रक्षक पुरुषों को (पिन्वसि) ऐश्वर्य से सेचता है, उनका परित्राण करता है। (अररुं यावीः) सूर्य जिस प्रकार व्यापनशील मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू (अररुम्) अपने पर आ चढ़ने वाले, फैले हुए, या हिंसक (मर्त्यं) मनुष्य को (यावीः) दूरकर और ऐसे बुरे पुरुष को (परि वृणक्षि) सब तरफ से हटा। (उत) और मैं (दिवे) ज्ञान प्रकाश, या प्रजा के सुख की कामना करने वाले, (रुद्राय) शत्रुओं को रुलाने वाले, एवं सदुपदेश देने वाले, (मित्राय) सब के स्नेही, और प्रजा को मरण से बचाने वाले, (वरुणाय) सर्व श्रेष्ठ, सब कष्टों के वारक, (सुमृडीकाय) उत्तम सुख देने वाले (स्वयशसे) अपने ही पराक्रम से यश ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (तुभ्यं) तेरे ही लिये (तत् तत्) मैं वह यह नाना प्रकार के (सप्रथः) अति प्रसिद्धि जनक और (सप्रथः) अति विस्तृत वचन (वोचम्) कहता हूं।

अ॒स्माकं॑ व॒ इन्द्र॑मुश्मसी॒ष्टये॒ सखा॑यं वि॒श्वायुं॑ प्रा॒सहं॑ यु॒जं वाजे॑षु प्रा॒सहं॑ यु॒जम्। अ॒स्माकं॒ ब्रह्मो॒तयेऽवा॑ पृ॒त्सुषु॒ कासु॑ चि॒त्। न॒हि त्वा॒ शत्रुः॒ स्तर॑ते स्तृ॒णोषि॒ यं विश्वं॒ शत्रुं॑ स्तृ॒णोषि॒ यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (सखायं) सब के मित्र, (विश्वायुं) समस्त उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले, या दीर्घायु, (प्रासहं) उत्तम रीति से शत्रुओं को पराजय करने वाले, (युजं) सब के सहायक, (वाजेषु) संग्रामों और ऐश्वर्य, ज्ञान, बल के कार्यों में (प्रासहं) अति सहनशील और अन्यों को भी लगाने वाले नायक, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् बलवान् विद्यावान् पुरुष को (अस्माकं वः) हमारे अपने और आप सब लोगों के (इष्टये) इष्ट सुख लाभ के लिये (उश्मसि) हम प्राप्त करना चाहते हैं। हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (कासु चित्) कई, अनेकों (पृत्सुषु) संग्रामों में (अस्माकं ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (ब्रह्म अव) विशाल

धन की रक्षा कर। (चित्) उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू हमारी रक्षा के लिये (ब्रह्म) वेद ज्ञान की रक्षा कर और उसका ज्ञान कर। तू (यं) जिस (विश्वं) सब प्रजाजन को (स्तृणोषि) आच्छादित करता है अपनी रक्षा में रखता है और (यं) जिस (शत्रुं) शातन या उच्छेदन करने योग्य शत्रु को (स्तृणोषि) ढक लेता है, अपने आधीन करलेता या अपने नीचे दबा लेता है, वह (शत्रुः) शत्रु फिर (त्वा नहि स्तृणते) अपने आधीन नहीं करें और इसी प्रकार हे विद्वन् ! (यं विश्वं शत्रुः) जिस अपने अधीन वास करने वाले छात्र को तू अपने अधीन लेता है वह अनुशासन करने योग्य छात्र (त्वा न स्तृणते) तुझे दुःखदायी न हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः। नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे। विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर पुरुष ! (तेजिष्ठाभिः) अति अधिक तेज से युक्त (अरणिभिः) लकड़ियों से युक्त (वन्हि न) अग्नि जिस प्रकार (कयस्य चित् अतिमतिं नमति) जल के अधिक शमन बल को प्राप्त होकर झुक जाता है, शान्त हो जाता है इसी प्रकार हे शूरवीर पुरुष ! तू स्वयं (उग्राभिः) अति भयंकर (तेजिष्ठाभिः) अतितेज या पराक्रम से युक्त (अरणिभिः) वेग से आगे बढ़ने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं से युक्त होकर भी (न) उनके समान (तेजिष्ठाभिः) तेज, ओज से युक्त (अरणिभिः) रथादि से गमन करने वाली, अथवा ज्ञान बल से दूर तक पहुंचाने वाली (उग्राभिः) भयंकर, शत्रुओं में उद्वेग मचा देने वाली (ऊतिभिः) साधनों से युक्त (कयस्य चित्) ज्ञानवान्, ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् पुरुष की (अतिमतिं) बहुत अधिक बड़ी बुद्धि या ज्ञान के आगे (नि सु नम चित्) नियम से पूजा के

निमित्त आदर से, शिष्य के समान झुक, उस का आदर कर। (यथापुरा) पूर्वकाल के समान ही तू (अनेनाः) स्वयं अपराध और पाप से रहित, सदाचारी, धर्मात्मा रहकर (नः नेषि) हमें सन्मार्ग पर चला। तू (मन्यसे) सब कुछ जानता है। (वन्हिः न) तू अग्नि के समान ही (वन्हिः) समस्त कार्यभार को अपने ऊपर उठाने वाला, उत्तरदाता, जिम्मेवार होकर (पूरोः विश्वानि अप) मनुष्यों के सब दुःखों को दूरकर और (आसा) समीप रह कर या (आसा) अपने प्रमुख पद से, या मुख द्वारा आज्ञा और उपदेश द्वारा (पर्षि) पालन कर, जल सेचन से कृषक के समान उनको सब ऐश्वर्य दे। इति षोडशो वर्गः॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति। स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्। अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्॥ ६॥

भा०—(भव्याय) चन्द्रमा के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले (इन्दवे) ऐश्वर्यवान्, प्रेम से आर्द्र हृदय वाले उस शिष्य को मैं विद्वान् पुरुष (तत्) उत्तम २ ज्ञान का (वोचेयं) उपदेश करूं। (यः) जो (हव्यः) आहुति देने योग्य अग्नि के समान (हव्यः) स्वीकार करने योग्य शिष्य बन कर (इषवान्) इच्छा वाला होकर (मन्म रेजति) ज्ञान को प्राप्त होता है और (रक्षोहा) बाधक शत्रुओं को नाश करने वाले वीर पुरुष के समान (रक्षोहा) बाधक कारणों को नाश करता हुआ (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान, स्तम्भन बल, और ब्रह्मचर्य बल को प्राप्त करता है वह (स्वयं) अपने आप अकेले ही (अस्मत्) हमारे (निदः) निन्दा करने वालों को (वधैः आ अजेत) हिंसाकारी उपायों, शस्त्रास्त्रों से शूरवीर पुरुष के समान ही ज्ञान साधनों से ही (निदः) निन्दनीय आचार विचारों को (अजेत) दूर भगा दे और (दुर्मतिम्) दुष्टमति, दुर्बुद्धि, विपरीत मिथ्याज्ञान को (आ अजेत)

दूर करे। (अघशंसः) पापाचार की शिक्षा देने वाला पुरुष (क्षुद्रम्-इव) जल या क्षुद्र जन के समान (अव स्रवेत्) भय से भाग जाता है उसी प्रकार (अव तरम् अवस्रवेत्) वह नीचे जा गिरे।

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्। दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि। आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः॥ ७॥

भा०—हम लोग (चितन्त्या) ज्ञान उत्पन्न करने वाली (होत्रया) वाणी द्वारा ही (तत्) उस परम श्रेष्ठ, ज्ञान योग्य ब्रह्मपद को (वनेम) प्राप्त करें और उसका अन्यों को उपदेश करें। हे (रयिवः) ऐश्वर्यवान् हम (रयिम्) ऐश्वर्य (सुवीर्य) उत्तम वीर्य और उसके समान (रण्वं) सुख और ज्ञानप्रद, (सुवीर्यं) उत्तम वीर्यवान् (सन्तं) सज्जन पुरुष को भी (वनेम) प्राप्त करें। (सुमन्तुभिः) उत्तम मनन करने योग्य ज्ञानी और मननशील पुरुषों द्वारा उपदेश प्राप्त करके हम (दुर्मन्मानम्) विपरीत ज्ञान के नाशक, एवं दुःख या कठिनता से मनन करने योग्य, दुर्विज्ञेय, परमेश्वर या आत्मा के रूप को (इषा) प्रबल इच्छा या प्रेरणा द्वारा (पृचीमहि) प्राप्त करें, उससे जुड़ जायें। (यजत्रं) दानशील या सत्संग करने योग्य उत्तम पुरुष को जिस प्रकार (द्युम्नहूतिभिः) यशसूचक स्तुतियों द्वारा पहुंचाते हैं उसी प्रकार हम उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को भी (सत्याभिः) सत्य, (द्युम्नहूतिभिः) उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुतियों से (आपृचीमहि) खूब भली प्रकार अपने साथ जोड़ लें, उसको अपने हृदय में योग द्वारा ध्यान कर तन्मय हो जावें। (२) इसी प्रकार वीर्यवान् धनैश्वर्यवान्, दुष्टों के हिंसक सत्संग योग्य (इन्द्रं) राजा और आचार्य को भी उत्तम ज्ञानों ज्ञानवानों, यश, अन्नवर्धक क्रियाओं और स्तुतियों सहित मिलें; उससे अपना सम्पर्क या सम्बन्ध बढ़ावें।

प्रप्रा वो अस्मे स्वयंशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीम-न्दुर्मतीनाम्। स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः। हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो और मित्र वर्गो! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रु विनाशक सेनापति (स्वयशोभिः) अपने यशों, यशकारी पराक्रम के कामों से (वः अस्मे) तुम्हारे और हमारे दोनों के (ऊती) रक्षा के लिये और (दुर्मतीनां परिवर्गे) दुष्ट मतिवाले पुरुषों के विनाश करने के के लिये और (दुर्मतीनां। दुष्टाचार वाले दुर्दमनीय मनुष्यों के (दरीमन्) तोड़ फोड़ने के लिये (प्रप्र असत्) अच्छी प्रकार समर्थ हो। (या) जो (जूर्णिः न जूर्णिः ज्वर या जरा के समान जीवन का नाश करदेने वाली सेना (अत्रैः) भोगों के समान पतन के कारण, प्रजाजनों को खा जाने वाले शत्रु पुरुषों से (नः रिषयध्यै) हमारे विनाश कर देने के लिये (उपेषे) भेजा जावे (सा स्वयं) वह स्वयं अपने ही आप (हता ईम् असत्) विनाश को प्राप्त हो। वह (क्षिप्ता) परास्त होकर (न वक्षति) हम तक न पहुंचे और (न वक्षति) लौट कर अपने देश भी न पहुंचे।

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्य-रक्षसा। सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः॥ ९॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! हे विद्वन्! (परीणसा) बहुत से ऐश्वर्य से युक्त होकर और (अनेहसा) पाप और हिंसा से रहित और (अरक्षसा) दुष्ट पुरुषों से रहित, निर्भय, निर्विघ्न (पथा) मार्ग से (नः) हमारे (पुरः) नगरों को (याहि याहि) आया जाया कर। (पराके) दूरदेश में भी तू (नः) हमें (आ सचस्व) प्राप्त हो और (अस्तमीके नः आसचस्व) अति समीप हमारे घर में भी हमें तू प्राप्त हो। (दूरात्) दूर देश से भी तू आकर (अभिष्टिभिः) सब प्रकार यज्ञ, द्रव्यदान औष-

धिदान और सत्संगों द्वारा (नः पाहि) हमारी रक्षा कर। और (अभिष्टिभिः) उत्तम इच्छाओं, कामनाओं, आज्ञाओं और प्रेरणाओं से (नः) हमारी (सदा) (पाहि) रक्षा कर।

त्वं न॑ इन्द्र रा॒या तरू॑षसो॒ग्रं चि॑त्त्वा महि॒मा स॑क्षद॒वसे म॒हे मि॒त्रं नाव॑से। ओजि॑ष्ठ त्रातर॑वि॒ता रथं॒ कं चि॑दमर्त्य। अ॒न्यम॒स्मद्रि॑रिषेः कं चि॑दद्रिवो रिरि॑क्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (तरूषसा) संकटों से पार करने और शत्रुओं का नाश करने वाले (राया) ऐश्वर्य से (नः) हमारी रक्षा कर (त्वाम् उग्रम् चित्) आदर करने योग्य, बलवान् (मित्रं) सर्वस्नेही, और मृत्यु से रक्षा करने वाले तुझको (महे अवसे) बड़े रक्षा सामर्थ्य और (अवसे) ज्ञान, बल आदि के प्राप्त करने के लिये (महिमा) महान् यश और सामर्थ्य (सक्षत्) प्राप्त हो। हे (ओजिष्ठ) सबसे अधिक ओजस्विन्! बलशालिन्! हे (त्रातः) सब के पालक हे (अवितः) सब के रक्षक! हे (अमर्त्य) असाधारण पुरुष! यशस्विन्! तू (कं चित्) अतिसुखकारी (रथं) वेगवान् रथ, बल एवं रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कर और हे (अद्रिवः) उत्तम पर्वतों की भूमि के स्वामिन्! अथवा हे शस्त्रबल से संपन्न! (त् अस्मत् अन्यं कंचित्) हम और हमारे पुरुषों से अन्य (रिरिक्षन्तं) हम पर हिंसा का प्रयोग करते हुए शत्रु को भी (रिरिषेः) विनाश कर, उसको दण्ड दे।

पा॒हि न॑ इन्द्र सुष्टुत स्रि॒धो॑ऽवया॒ता स॒दमिद्दु॑र्म॒ती॒नां दे॒वः सन्दु॑र्म॒ती॒नाम्। ह॒न्ता पा॒पस्य॑ र॒क्षस॑स्त्रा॒ता विप्र॑स्य॒ माव॑तः। अधा॒ हि त्वा॑ जनि॒ता जीज॑नद्वसो रक्षो॒हणं॑ त्वा॒ जीज॑नद्वसो ॥११॥१७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! आचार्य सभा सेनापते! हे (सुस्तुत) उत्तम रीति से स्तुति योग्य! तू (देवः सन्) प्रजा को और उनके ऐश्वर्य वृद्धि, न्याय शासन आदि की कामना करता हुआ (नः)

हमें (स्रिधः) दुःखजनक पाप से (पाहि) बचा । तू (सदम् इत्) सदा ही (दुर्मतीनाम्) दुष्ट मति वाले दुष्ट पुरुषों और उनकी (दुर्मतीनाम्) दुष्ट कामनाओं को भी (अवयाता) नीचे गिरा देने वाला है। तू (रक्षसः) विघ्नकारी (पापस्य) पापाचारी पुरुष का (हन्ता) मारने वाला, दण्ड देने वाला है । और तू (मावतः) मेरे जैसे आत्मवान्, सच्चरित्र (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष का (त्राता) त्राण करने वाला हो। हे (वसो) स्वयं सब के भीतर बसने वाले ! हे (वसो) सब को अपने आश्रय पर बसाने वाले । (जनिता) उत्तम उत्पादक परमेश्वर या पिता ने (त्वा जीजनत्) तुझको उत्पन्न किया है और तुझको (रक्षोहणं जीजनत्) राक्षस, विघ्नकारी, दुष्ट पुरुषों का नाश करने और दण्ड देनेहारा पैदा किया, और बनाया है ।

[१३०]

॥ १३० ॥ १—१० परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता छन्दः—१, ५ भुरिगष्टिः । २, ३, ६, ९ स्वराडष्टिः । ४, ८, अष्टिः । ७ निचृदत्यष्टिः । १० विराट् त्रिष्टुप् ॥

एन्द्र॑ याह्युप॑ नः परा॒वतो॒ नायमच्छा॑ वि॒दथा॑नीव॒ सत्प॑ति॒रस्तं॒ राजे॑व॒ सत्प॑तिः । हवा॑महे त्वा व॒यं प्रय॑स्वन्तः सु॒ते सचा॑ । पु॒त्रासो॒ न पि॒तरं॒ वाज॑सातये॒ मंहि॑ष्ठं॒ वाज॑सातये ॥ १ ॥

भा०—(सत्पतिः) बलों और बलवान् पुरुषों का पालक, नायक जिस प्रकार (विदथानि इव) संग्रामों, ऐश्वर्यों या ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले संग्राम के नाना साधनों को प्राप्त होता है और जैसे (राजा इव) राजा (सत् पतिः) सज्जनों, और सत्य धर्मों का पालक होकर (अस्तं) राजसभा भवन में प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (परावतः) दूर देशों से भी प्रेमवश (अयम् न) इस वायु

के समान (नः उप) हमारे समीप आ, हमें प्राप्त हो । तू (सत्पतिः) सज्जनों और सत्यधर्मों और तत्वों का पालक होकर (विदथानि) ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (अच्छ) प्राप्तकर । राजा के समान (अस्तम्) उत्तम गृह को प्राप्त हो । सेनापति (सुते) तेरे अभिषिक्त हो जाने पर या इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र में (अस्तं) शत्रुओं के ऊपर शस्त्रास्त्र फेंकने के कार्य संग्राम को प्राप्त हो । (वयं) हम लोग (सचा) परस्पर के समवाय या संगठन द्वारा (प्रयस्वन्तः) उत्तम ज्ञान, अन्नादि भोग्य पदार्थ और उत्तम प्रयत्न, उद्योग से युक्त होकर (वाजसातये) ऐश्वर्य या धन के विभाग के लिये (पुत्रासः मंहिष्ठं पितरं न) पुत्र जन जिस प्रकार अपने दानशील और पूजनीय पिता को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (वाजसातये) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (मंहिष्ठं) अति दानशील, और अति पूजनीय (त्वां) तुझको (हवामहे) हम अपने में प्रमुख स्वीकार करते, तेरी शरण आते हैं । (२) परमेश्वर के पक्ष में भी स्पष्ट है ।

पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः । मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे । आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभापते ! (अद्रिभिः सुवानम्) शिलाखण्डों से कूट पीस निकाले गये (सोमम्) शान्तिदायक औषधिरस को (तातृषाणः वंसगः न) जिस प्रकार पिपासित पुरुष पान करता है और जिस प्रकार (अद्रिभिः सुवानम्) मेघों वा पर्वतों द्वारा उत्पन्न किये (सोमम्) शान्तिदायक जल को (तातृषाणः न वंसगः) प्यासे के तुल्य सूर्य अपनी किरणों से पान करता है और जिस प्रकार (कोशेन सिक्तम्) अन्तरिक्षगत मेघ द्वारा सींचे गये बरसाये गये, जल से पूर्ण (अवतम्) जलाशय को (तातृषाणः न वंसगः) प्यासा बैल आकर जल पान करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! विद्वन् ! तू भी (अद्रिभिः सुतम्) मेघों

के समान ज्ञान जलों के बरसाने और पर्वतों के तुल्य शीतल ज्ञान स्रोत बहाने वाले विद्वानों से (सुवानं) उपदेश किये गये (सोमम्) उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले ज्ञानोपदेश को (पिब) अमृत के समान पानकर उसे हृदय में धारण कर। उसी प्रकार हे राजन्। तू (अद्रिभिः) शत्रुओं द्वारा न विदीर्ण होने वाले और युद्धों में भी भय न खाने वाले और जलों को सूर्य रश्मियों के समान अपने सामर्थ्यों से शत्रु दल में से भी ऐश्वर्यों को बलात् हर लेने वाले वीर पुरुषों द्वारा प्राप्त (सोमम्) ऐश्वर्य या राष्ट्र को तू (पिब) पुष्टिकारक अन्न आदि औषधिरस के समान पानकर, उसका पालन और उपभोग कर। इसी प्रकार (कोशेन सिक्त.म् अवतं) हे राजन्! तू कोश अर्थात् अपने खजानों द्वारा सेंचकर बढ़ाये गये, रक्षित हुए राष्ट्र ऐश्वर्य को भी (वंसगः तातृषाण इव) प्यासे वृषभ के समान स्वयं राज्य की कामना से युक्त होकर भोग कर और यह समस्त ऐश्वर्य (हर्यताय) कामनाशील इच्छुक (तुविस्तमाय) अति अधिक बहुत सी प्रजा के स्वामी (धायसे) राष्ट्र के धारण करने वाले (ते) तेरे ही (मदाय) हर्ष और तृप्ति करने के लिये है। अथवा—यह सब ऐश्वर्य (ते मदाय) तेरे हर्ष और तृप्ति करने के लिये है, (ते हर्यताय) तेरी कामना इच्छा की पूर्त्ति के लिये और (ते तुविस्तमाय) तेरे लिये नाना प्रकार के ऐश्वर्य सुखों और प्रजाओं की वृद्धि के लिये और (धायसे) तेरे प्रजा पालन, धारण पोषण के लिये तुझे प्राप्त हो। (अहा विश्वा इव सूर्यम्) सूर्य को जिस प्रकार समस्त दिन आश्रय करते हैं और जिस प्रकार (हरितः न सूर्यम्) समस्त दिशाएं और प्रकाश की किरणें सूर्य को धारण करती हैं और उसी के आश्रय रहती हैं उसी प्रकार (विश्वा हरितः) समस्त दिशावासी प्रजाजन और (विश्वा अहा) समस्त अपराहत और आगे बढ़ने वाले सैन्य गण (त्वा आयच्छन्तु) तुझे धारण करें।

'तातृषाणः'—असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाश्च महीभुजः॥

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि। व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः। अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

भा०—(अश्मनि परवीतम्) पर्वतों में खूब सुरक्षित (वेः गर्भं न) पक्षिणी के गर्भ अण्डे आदि को जिस प्रकार पक्षी स्वयं, या शिकारी पुरुष खोज लेता या प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार (अंगिरस्तमः) अग्नि और सूर्य के समान अति अधिक तेजस्वी पुरुष (अनन्ते अश्मनि अन्तः) अनन्त शस्त्रास्त्र अर्थात् शत्रु सेना के बीच (परिवीतम्) छिपे हुए (वेः गर्भं) भोगयोग्य ऐश्वर्य के ग्रहण करने योग्य अंश को अपने (अश्मनि) शस्त्र बल पर और (दिवः) इस पृथिवी के (गुहाः) गुफा में छिपे (निधिं) खजाने को भी (अविन्दत्) प्राप्त करे। और वह (गवाम् व्रजं इव) गोओं के बाड़े या समूह को जिस प्रकार दण्डवान् गोपाल (सिषासन्) अपने वश करता है उसी प्रकार का श्रेष्ठ तेजस्वी पुरुष भी (वज्री) वज्र अर्थात् समस्त शस्त्रास्त्रबल, तलवार, और नाना आयुधों से सम्पन्न होकर (गवां व्रजम्) भूमियों के समूह या गमन करने योग्य मुख्य मार्गों, नाकों को (सिषासन्) अपने अधीन दमन करने की इच्छा करे। (परिवृताः इव द्वारः) जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् गृहपति अपनी इच्छानुकूल बनाये गये ढके हुए गृह के द्वारों को (अप अवृणोत्) खोलता है उसी प्रकार (इन्द्रः) राजा (परीवृताः) सब ओर से सुरक्षित (द्वारः) शत्रुओं को दूर से ही वारण कर देने वाली (इषः) प्रेरणा करने योग्य, आज्ञा के अधीन सेनाओं को (अप अवृणोत) खोले, उनको खुलकर शत्रु पर जा टूटने की आज्ञा दे।

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यद्-हिहत्याय संश्यत्। सं विव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना। तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः तिग्मम् वज्रम्) जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर करने वाला तीक्ष्ण प्रकाश अन्धकार को नाश करने और (अतिहत्याय) मेघ को छिन्न भिन्न करने लिये चारों ओर फेंकता है और जिस प्रकार (इन्द्रः तिग्मम् वज्रम् क्षद्मम् इव) मेघ तीक्ष्ण प्रहारकारी वज्र या विद्युत् को और तीक्ष्ण प्रहारकारी हिमकण को बरसाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुनाशक वीर सेनापति और राजा (दादृहाणः) अपनी वृद्धि करता हुआ, शत्रुओं का नाश करता हुआ (गभस्त्योः) बाहुओं में (तिग्मम्) तीक्ष्ण, और बहुत दूर तक जाने वाले (वज्रम्) शस्त्रादि हथियार और शस्त्र बल को अस-नाय) शत्रु पर चलाने के लिये और (अहिहत्याय) अभिमुख बढ़े चले आते हुए शत्रु को मारने के लिये (सं श्यत्) खूब तीक्ष्ण करे और सैन्य को (संश्यत्) खूब उत्तेजित करे। हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने हारे, परसेनाओं के विदारक ! (तष्टा इव वनिनः) काटने वाला जिस प्रकार वन में उत्पन्न बड़े वृक्षों को काट गिराता है अथवा (तष्टा इव वनिनः परश्वा) सूर्य या वायु जिस प्रकार उदक वाले मेघों को तीव्रवेग से छिन्न भिन्न करता है। उसी प्रकार तू (ओजसा) बल, पराक्रम, तेज से, (शवसा) शक्तिमान् सैन्य बल से, और (मज्मना) दृढ़ सामर्थ्य से (सं-विव्यानः) युक्त होकर (पर-श्वा इव) परशु या कुल्हाड़े से (वृक्षं न) वृक्ष के समान (वनिनः) सेना समूह से युक्त शत्रुओं को (पर-श्वा) दूर स्थित शत्रुओं तक वेग से जाने वाले शस्त्रास्त्र द्वारा (नि वृश्चसि) सर्वथा काट डाल।

त्वं वृथा नद्य॑ इन्द्र॒ सर्त॑वे॒ऽच्छा॑ समु॒द्रम॑सृजो॒ रथाँ॑ इव वाज॒यतो॒ रथाँ॑ इव। इत ऊ॒तीर॑युञ्जत समा॒नमर्थ॒मक्षि॑तम्।
धे॒नूरि॑व॒ मन॑वे वि॒श्वदो॑हसो॒ जना॑य वि॒श्वदो॑हसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(नद्यः समुद्रम् वृथा) मेघ जिस प्रकार अनायास ही नदियों को समुद्र की ओर बहा देता है उसी प्रकार हे (इन्द्र)

सेनापते ! (त्वं) तू भी (सर्तवे) गमन करने और आक्रमण करने के लिये (रथान् इव) रमण करने के साधनों वा वेग से चलने वाले रथों के समान ही (वाजयतः) और संग्राम करने वाले वीर पुरुषों को भी (असृजः) तैयार कर। (ऊतीः) रक्षा करने वाली सेनाएं या संस्थाएं भी जनों के पालन करने वाली नदियां जिस प्रकार (अक्षितम्) जल को अपने में धारण करती हैं उसी प्रकार वे भी (इतः) एकत्र होकर (अक्षितम्) अक्षय (समानम्) सब के लिये समान रूप से उपभोग करने योग्य (अर्थम्) द्रव्यमय कोश को (अयुञ्जत) धारण करें अथवा वे (अक्षितम्) शत्रु से न नाश होने वाले (समानम्) सबके प्रति निष्पक्षपात (अर्थम्) प्रार्थनीय, अभिलषित पूज्य नायक को (अयु-ञ्जत) प्रधान पद पर नियुक्त करें। वे सेनाएं तथा संस्थाएं भी (विश्व-दोहसः) समस्त ऐश्वर्यों का दोहन करने वाली, सब के हित के लिये दुध देने वाली (धेनूः इव) दुधार गौवों के समान (मनवे जनाय) मननशील प्रजाजन के हित के लिये अथवा (मनवे) शत्रु, मित्र और स्वराष्ट्र के स्तम्भन करने में समर्थ राजा और (जनाय) सर्व साधारण प्रजाजन के हित के लिये (विश्व-दोहसः) सब प्रकार के ऐश्वर्य को पूर्ण समृद्ध करने वाली हों।

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः। शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्। अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये॥६॥

भा०— (स्वपाः धीरः रथं न) उत्तम ज्ञानवान् और कर्मवान्, बुद्धि-मान्, कुशल पुरुष जिस प्रकार वेग से चलनेवाले रथ को तैयार करता है, उसको साधता है इसी प्रकार हे (विप्र) विविध ऐश्वर्यों से प्रजाओं को पूर्ण करने हारे राजन्! विविध ज्ञानों से शिष्यगणों को पूर्ण करने हारे हे आचार्य! (स्वपाः) स्वयं अपने आत्मा के रक्षक और सुकर्मा, (धीराः) बुद्धि के प्रेरक

मनीषी और (वसूयन्तः आयवः) धनैश्वर्य की कामना और ज्ञान का लाभ करने वाले और शिष्य रूप से वस कर ब्रह्मचर्य पालन करने के इच्छुक जन (ते) तुझ राजा की उत्साह वृद्धि के लिये (इमां वाचं) इस वाणी को (अतक्षिपुः) करते हैं। हे आचार्य! (ते इमां वाचं) तेरी इस प्रत्यक्षोपदेश द्वारा प्राप्त वेद वाणी को (अतक्षिपुः) कर्म द्वारा अभ्यास करते हैं। और हे राजन्! (सुम्नाय) सुख के प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार विद्वान् लोग रथ बनाते हैं उसी प्रकार (त्वाम्) तुझ राजा को भी प्रजाजन (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने के लिये ही (अतक्षिपुः) अति तीक्ष्ण, तेजस्वी बनाते हैं और हे आचार्य! विद्यार्थी जन भी (सुम्नाय) सुख प्राप्ति, और सुखपूर्वक सुगमता से वा उत्तम रीति से ज्ञानमय वेद का अभ्यास करने के लिये ही (त्वाम्) तुझको (अतक्षिपुः) तुझको प्रश्नादि द्वारा तीक्ष्ण करते, तुझ से शनैः खण्ड २ करके ज्ञान प्राप्त करते हैं। (यथा) जिस प्रकार (वाजेषु) संग्रामों में के अवसरों में (धना सातये) नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त करने, और (शवसे) बल को बढ़ाने के लिये वीर पुरुष (जेन्यं वाजिनं) विजयशील, संग्राम-शूर नायक को (अत्यम् इव) लड़ाकू, वेगवान् अश्व के समान (शुम्भन्तः) सुशोभित और प्रशंसित करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार हे विद्वन्! (विश्वा धनानि) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करने और (शवसे) ज्ञान प्राप्त करने के लिये (वाजेषु) ज्ञान के कार्यों में (जेन्यं) इन्द्रियों के जय करने में कुशल (वाजिनं) ज्ञानवान् तुझको (शुम्भन्तः) उत्तम पद पर सुशोभित करते रहें।

भिनत्पुरो॑ नव॒तिमि॑न्द्र पू॒रवे॒ दिवो॑दासाय॒ महि॑ दा॒शुषे॑ नृतो॒ वज्रे॑ण दा॒शुषे॑ नृतो। अ॒ति॒थि॒ग्वाय॒ शम्ब॑रं गि॒रेरु॒ग्रो अवा॑भरत्। म॒हो धना॑नि॒ दय॑मान॒ ओज॑सा॒ विश्वा॒ धना॒न्योज॑सा॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्! तू (दिवः दासाय) अभिमत धनैश्वर्य देने वाले (पूरवे) प्रजाजन की वृद्धि के लिये और (दिवः दासाय

पूरवे) हे सेनापते ! रक्षणसामर्थ्य, तेज और अभिमत ऐश्वर्य के देने वाले और प्रजाओं के पालन में समर्थ राजा की वृद्धि के लिये तू (नवतिं पुरः भिनत्) ६० अनेक शत्रुपुरों को तोड़ । हे (नृतो) युद्ध में अपने कर चरणादि के कौशल दर्शाने हारे । (महि दाशुषे) तू बड़े दानशील जन को वृद्धि के लिये और (अतिथिग्वाय) अतिथि के समान पूजनीय पुरुषों को उत्तम वाणी, एवं दुग्धादि उत्तम खाद्य पदार्थ और भूमि आदि के देने वाले पुरुष के उपकार के लिये (उग्रः शम्बरं गिरेः अव) वेगवान् प्रचण्ड वायु जिस प्रकार मेघ को पर्वत से नीचे गिरा देता है और जिस प्रकार (उग्रः) तीव्र विद्युत् (गिरेः शम्बरं अव) मेघ से जल को नीचे गिरा देता है उसी प्रकार ही (शम्बरं) प्रजा के शान्ति सुख और कल्याण के नाश करने वाले और शस्त्रधारी शत्रु को (उग्रः) स्वयं प्रचण्ड भयंकर होकर (गिरेः) पर्वत से या पर्वत के समान उच्चपद राजसिंहासन से (अव अभरत्) नीचे गिरा दे । और तू (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा धनानि) समस्त संग्रामों को या संग्रामकारी शत्रु सैन्यों को (दयमानः) विनाश करता हुआ और (ओजसा) बड़े बल पराक्रम से (महः धनानि दयमानः) बड़े ऐश्वर्य स्वयं लेता और अपने अधीन पुरुषों और प्रजाओं को देता हुआ शत्रु को नीचे गिरावे ।

इन्द्रः॑ स॒मत्सु॒ यज॑मान॒मार्यं॒ प्राव॒द्विश्वे॑षु श॒तमू॑तिरा॒जिषु॒ स्व॑र्मीळ्हेष्वा॒जिषु॑ । मन॑वे॒ शास॑दव्र॒तान्त्वचं॑ कृ॒ष्णाम॑रन्धयत् । दक्ष॒न्न विश्वं॑ ततृषा॒णमो॑षति॒ न्य॑र्श॒सा॒ न मो॑षति ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति (विश्वेषु समत्सु) समस्त संग्रामों और हर्ष के अवसरों में (आर्य) सब के शरण योग्य, विद्या आदि गुणों में श्रेष्ठ (यजमानम्) अन्यों को धन और अन्न आदि देने और राजा को कर देने वाले प्रजाजन को (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे । वह (शतम्-ऊतिः) अनेक प्रकार के सेना आदि रक्षा के

साधनों से सम्पन्न होकर (विश्वेषु) सब (आजिषु) शत्रुओं को उखाड़ देने वाले (स्वर्मीळ्हेषु) सुखों और ऐश्वर्यों से राष्ट्र को, जलों से वृक्ष के समान सींच कर बढ़ाने वाले, (आजिषु) संग्रामों में (यजमानम् आर्यं प्रावत्) दानशील श्रेष्ठ प्रजाजन की रक्षा करे। (मनवे) मनुष्य मात्र के हित के लिये (अव्रतान्) आचार धर्म, व्यवस्था के पालन न करने वाले उच्छृंखल, दुष्ट पुरुषों का (शासत्) शासन करे। और (कृष्णाम्) काटने वाली, (त्वचं) देह की त्वचा के समान शत्रु की रक्षा करने वाली सेना को (अरन्धयत्) नाश करे। अथवा-(कृष्णाम्) पाप करने वाली काली, निन्दनीय, (त्वचम्) शत्रु जनों की रक्षा करने वाली सेना आदि का नाश करे। अथवा--(अग्निरिव त्वचं कृष्णां कृत्वा अरन्धयत्) अग्नि या विद्युत् जिस प्रकार जलाते समय ऊपर की छाल को काला करके बाद जलाता है उसी प्रकार राजा भी दुष्टों की त्वचा को काला कर अर्थात् देह की त्वचा के समान उसको घेरे रहने वाली सेना आदि या देखने योग्य रूप को (कृष्णा) काला अर्थात् प्रजाजन के सामने बदनाम करके मारे, अर्थात् अपराधी दुष्टों पर अपराध की घोषणा करके उनको बध करे। अथवा उनकी खाल (मुख आदि को) काला करके, अपमानित करके दण्ड दे। और (विश्वं) सब प्रकार के (ततृषाणम्) मारने वाले शत्रु या प्रजा के धनादि की तृष्णा से लोलुप पुरुष को सूखे काष्ठ को अग्नि के (न) समान (दक्षत्) जला दे, दग्ध कर समूल नाश करे और (अर्शसानम्) इस प्रकार समीप आये, और प्रजा और अपनी सेना को मारते हुए शत्रुगण को भी (नि ओषति) सर्वथा भस्म ही कर दे।

सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति। उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे। सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ६ ॥

भा०—(सूरः) जिस प्रकार सूर्य (ओजसा) अपने बड़े भारी

बल से और तेज से (जातः) प्रकट हो कर (चक्रम्) ग्रह चक्र को (प्र वृहत्) अच्छी प्रकार धारण कर रहा है । उसी प्रकार (सूरः) सब को नियम में चलाने वाला तेजस्वी राजा अपने (ओजसा) बल पराक्रम और प्रभाव से ही (चक्रम्) समस्त राष्ट्र चक्र को (प्र वृहत्) अच्छी प्रकार उठावे, धारण करे । (अरुणः) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (प्रपित्वे) समीप प्राप्त देश में (मुषायति) अन्धकार को खण्ड २ करता, या जलों को अति सूक्ष्म कण कर २ के हर लेता है उसी प्रकार (अरुणः) तेजस्वी राजा लाल राजकीय पोषाक पहन कर (प्रपित्वे) समीप प्राप्त होने पर सब की (वाचम्) वाणी को हरले अर्थात् उसके सामने आतंक से किसी को कुछ कहने का साहस न रहे । वह (ईशानः) सबका स्वामी, सब का शक्तिशाली शासक होकर (आ मुषायति) शत्रुओं का सर्वस्व हरे और प्रजाजन से कर आदि ऐश्वर्य खण्ड २ कर के, थोड़ा २ करके ले ।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघु० ॥

हे (कवे) क्रान्तप्रज्ञ ! विद्वान् ! मेधाविन् ! (उशनाः) क्रान्तिमान् सूर्य जिस प्रकार (परावतः ऊतये अजगन्) दूर आकाश से भी प्रकाश करने के लिये पृथ्वी, या दूर २ तक के लोकों तक पहुंचता है उसी प्रकार (उशनाः) सब प्रजाओं को चाहने वाला, और तेजस्वी पुरुष भी (ऊतये) प्रजाओं की रक्षा करने के लिये (परावतः) दूर दूर के देशों तक भी (अजगन्) जावे । और (तुर्वणिः) अति वेग से जाने वाला अन्धकार नाशक प्रकाश जिस प्रकार समस्त सुखों को देता और (विश्वा इव अहा तुर्वणिः) सभी दिनों वैसा ही क्षिप्रकारी और अन्धकार का नाशक बना रहता है उसी प्रकार (तुर्वणिः) अतिक्षिप्रकारी और शत्रु नाशक और धनों का शीघ्र विभाग करने हारा राजा भी (मनुषा इव) विचारशील पुरुषों के समान (सुम्नानि) समस्त सुखकारी ऐश्वर्यों को भी विभक्त करे

और (विश्वा इव अहा) सब दिनों ही (तुर्वणिः) वैसा ही क्षिप्रकारी, शत्रु नाशक और धनैश्वर्य का विभाजक बना रहे।

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः। दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥१६॥

भा०—हे (वृषकर्मन्) धाराएं वर्षाने वाले मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा करने वाले! राजन्! हे (पुरां दर्तः) शत्रुओं के पुरों, गढ़ों नगर के प्रकोटों को तोड़ने हारे! (सः) वह तू (नव्येभिः) नये से नये, उत्तम से उत्तम, आविष्कृत (उक्थैः) अति प्रसंशनीय एवं गुरुओं द्वारा उपदेश करने योग्य (शग्मैः) सुख साधनों और (पायुभिः) रक्षा करने के उपायों से (नः पाहि) हम प्रजाजनों की रक्षा कर। (अहोभिः द्यौः इव) जिस प्रकार दिनों अर्थात् अपने प्रकाशों से सूर्य वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू भी (दिवः दासेभिः) ज्ञान प्रकाश और मनुष्यों की अभिलाषा योग्य समस्त व्यवहार योग्य, दिव्य पदार्थों के देने वाले विज्ञानवान् गुरू जनों से (स्तवानः) उपदेश किया जाकर, शिक्षित होकर (वावृधीथाः) निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो।

[१३१]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदत्यष्टिः। ४ विराडत्यष्टिः। ३, ५, ६, ७ भुरिगष्टिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम्।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः। इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः। इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा॥१॥

भा०—जिस प्रकार (द्यौः) यह समस्त नक्षत्र मण्डलमय आकाश और (असुरः) अपने प्रबल झोंकों से सब पदार्थों को उथल पुथल कर

देने वाला महान् वायुमय अन्तरिक्ष, या विद्युत् (वरीमभिः) वरण करने योग्य किरणों से (द्युम्नसाता) प्रकाश प्राप्त करने के लिये (इन्द्राय हि) उस अन्धकार के नाशक और जलों और मेघों के भेदक सूर्य के समक्ष (अनम्नत) झुकते हैं उसी प्रकार (द्यौः) ज्ञानवान् , तेजस्वी विद्वानों और पुरुषों से राजसभा और (असुरः) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला बलवान् सैन्य समूह (वरीमभिः द्युम्नसाता) उपायों से यश और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (इन्द्राय हि) ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा के समक्ष (अनम्नत) आदर से झुके। और इसी प्रकार (मही पृथिवी) बड़ी, सब पदार्थों को देने वाली यह पृथिवी (वरीमभिः) अपने वरण करने योग्य ऐश्वर्यों सहित (द्युम्नसाता) अन्न और रत्नादि के विभाग के लिये (इन्द्राय हि अनम्नत) सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुनाशक, बलवान् पुरुष के उपभोग के लिये झुकती है। (देवासः इन्द्रं) जिस प्रकार समस्त किरणगण सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार (सजोषसः) समान रूप से प्रीति और सेवा करने हारे (देवासः) विजयशील, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पुरुष भी उसको (दुरः) अपने आगे नायक के समान (दधिरे) धारण करें। (विश्वा) समस्त (मानुषा सवनानि) मनुष्योपयोगी ऐश्वर्य (इन्द्राय) उसी ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के निमित्त (रातानि) दिये जावें। और वे सब (मानुषा सन्तु) पुन सर्व मनुष्यों के हितकारी हों।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि। इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः॥२॥

भा०—हे राजन् (वृषमन्यवः) तुझको ही एकमात्र बलवान् , सब ऐश्वर्यों का वर्षक मानते हुए या स्वयं महा वृषभ के समान क्रोध से प्रतिस्पर्द्धाशील वीर पुरुष (पृथक् पृथक्) पृथक् पृथक् (स्वः)

सुखमय राज्य को (सनिष्यवः) स्वयं भोगने की कामना से युक्त होकर भी (विश्वेषु सवनेषु) समस्त ऐश्वर्यों और शासन कार्यों पर भी (एकं समानं त्वा हि) एक समान निष्पक्षपात तुझको ही (तुञ्जते) प्रतिपालन करते हैं, तेरी ही आज्ञा और अनुमति की ही प्रतीक्षा करते हैं। (पर्षणि नावं न) नदी से पार पहुंचा देने वाली नाव के समान (त्वा तं) उस तुझको ही (शूषस्य धुरि) बल के धारण करने के प्रमुख पद पर संग्राम सागर से पार करने वाले एवं पालन योग्य अन्नादि के दाता रूप से (धीमहि) धारण करें। (आयवः) ज्ञान और पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले (चितयन्तः) ज्ञानोपार्जक पुरुष (यज्ञैः) दान योग्य द्रव्यों से (इन्द्रं न) जिस प्रकार आचार्य को सन्तुष्ट करते हैं उसी प्रकार (आयवः) पुरुषार्थी लोग (इन्द्रं) राजा को भी (यज्ञैः) दान योग्य ऐश्वर्यों से और (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों तथा सेना समूहों से (इन्द्रम्) उस राजा को अपने में धारण करें।

वि त्वा॑ ततस्रे मिथुना अ॑वस्यवो॑ व्रजस्य॑ साता गव्य॑स्य निः सृजः सक्ष॑न्त इन्द्र नि सृज॑ः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व॑१र्यन्ता॑ समूह॑सि। आविष्कर॑िक्रद्वृष॑णं सचा भुवं वज्र॑मिन्द्र सचाभुव॑म् ३

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले (मिथुनाः) स्त्री पुरुषों के जोड़े, अथवा शत्रु नाशक वीर जन (निः सृजः) निरन्तर वेग से जाते हुए अथवा सब प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते हुए (त्वा) तुझे प्राप्त होकर (वि ततस्रे) विविध दुःखों को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे (निःसृजः) सब प्रकार अपना आत्मोत्सर्ग करने हारे, (सक्षन्तः) सब कुछ सहने वाले होकर (गव्यस्य) गौओं के हितकारी (व्रजस्य) बाड़े के समान आश्रयप्रद (गव्यस्य व्रजस्य) लोकों को शरण रूप से प्राप्त होने योग्य आश्रय के (साता) लाभ के लिये (त्वा) तुझको प्राप्त होकर (वि ततस्रे) विशेष रूप से

यत्न करते हैं। (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यत्) जब (गव्यन्ता) गौ आदि पशुओं की समृद्धि की कामना करने वाले, अथवा गो-मिथुन के समान आचरण करने वाले, एवं परस्पर अनुरूप, सर्वांग समान गुण होकर (स्वः यन्ता) सुख को प्राप्त होने वाले, अति सुखी (द्वा जना) दो जन स्त्री पुरुष गृहस्थ दम्पति को (समूहसि) भली प्रकार सुख सामग्री प्राप्त कराता उनको एकत्र रखता और उनको उत्तम ज्ञान प्रदान करता है तभी (सचा भुवं) परस्पर समभाव या मेल से उत्पन्न होने वाले (वृषणं) वर्षणशील मेघ और (सचाभुवं वज्रम्) उसके सहयोग से उत्पन्न विद्युत् के समान ही (सचाभुवं वृषणं) सहयोग से उत्पन्न होने वाले सुखों के वर्षण करने वाले बलवान् पुरुषों के बने सैन्य और (सचाभुवं वज्रम्) साथ होने वाले शस्त्रास्त्र बल वीर्य, पराक्रम को भी (आविः करिक्रद्) प्रकट करता है।

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते। महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार सूर्य (शारदीः पुरः अवातिरः) शरत् काल में वायु मण्डल में पूर्ण होने वाली जल धाराओं को जब वर्षा रूप में नीचे बरसाता है तब दुनिया सूर्य के जलाकर्षण बल को जानती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन्! (पूरवः) तेरा पालन और तेरे राष्ट्र बल को पूर्ण करने वाले प्रजाजन (ते अस्य वीर्यस्य) तेरे इस प्रत्यक्ष दीखने वाले वीर्य, बल पराक्रम को (विदुः) जानें (यत्) जब तू (सासहानः) सब शत्रुओं को पराजय करता हुआ उनकी (शारदीः पुरः) शरत् के समय अर्थात् युद्ध यात्रा काल के उपयोगी नगरियों को (अव अतिरः) नीचे गिरा देता है। हे (शवसः पते) बल के स्वामिन्! तू (तम्) उस २ नाना प्रकार के (अयज्युम्) सन्धि द्वारा तुझसे न आ

मिलने वाले तथा तुझे कर न देने वाले पुरुष को (शासः) अच्छी प्रकार शासित और दण्डित कर। जिस प्रकार सूर्य (इमाः अपः मन्दसानः) इन जलों और प्राणियों के प्राणों को ग्रहण करता हुआ (महीम् पृथिवीम् अपः) इस बड़ी पृथिवी और जलों तथा समस्त प्राणियों को अपने वश करता है उसी प्रकार हे (राजन्) तू भी (इमाः अपः) इन समस्त आप्त और प्राप्त प्रजाजनों को (मन्दसानः) प्रसन्न करता हुआ और स्वयं भी हृष्ट प्रसन्न होता हुआ (महीम् पृथिवीम्) बड़ी भारी विशाल पृथिवी और (अपः) जलों को तथा व पृथिवी निवासी प्रजाजनों और प्राणि वर्गों को (अमुष्णाः) अपने वश कर।

आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे। ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

भा०—हे (वृषन्) सब सुखों के और ऐश्वर्यों के वर्षण करने वाले! राजन्! तू (यत् उशिजः आविथ) जो तू अपने यश, धर्म, अर्थ की कामना करने वाले, तेजस्वी पुरुषों की रक्षा करता है और (यत् सखीयतः आविथ) जो तू मित्र के समान वर्त्ताव करने वाले सहायक जनों की रक्षा करता है (आत् इत्) तभी, (ते) वे (मदेषु) हर्षों और उत्सवों के अवसरों में (ते) तेरे (अस्य वीर्यस्य) इस बल, पराक्रम की (चर्किरन्) वृद्धि करते हैं। अथवा (ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्) वे तेरे इस महान् बल के द्वारा दुष्टों का नाश करें। और तू (पृतनासु) संग्रामों में (एभ्यः प्रवन्तवे) इनके हितार्थ उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिये (एभ्यः) उनके हित, योग्य (कारम् चकर्थ) कार्य विभाग नियत कर। (ते) वे (अन्याम् अन्यां) एक से एक बढ़ कर, या पृथक् २ (नद्यं सनिष्णत) अपनी समस्त समृद्धि को भोग करें और

(श्रवस्यन्तः) अन्न, यश और ऐश्वर्य की वृद्धि की कामना करते हुए (सनिष्णत) दान भी करें ।

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि । आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥६॥

भा०—राजा (अस्याः) इस उषा काल और (अर्कस्य) सूर्य के (हविषः) ग्रहण करने योग्य व्रत और आचरण को (जुषेत) सेवन करे । (उतो) और (नः) हमें प्रभात वेला और सूर्य के समान ही (हवीमभिः) स्तुति करने योग्य ग्रहण करने और उपदेश करने योग्य (हवीमभिः) ज्ञानों और कर्मों द्वारा (स्वः-साता) सुख ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (बोधि) ज्ञानवान् , प्रबुद्ध कर, जागृत और सचेत कर । हे (वज्रिन्) शस्त्र बल के धारण करने हारे ! हे (इन्द्र) राजन् ! (यत्) जिससे तू (वृषा) प्रजाओं पर सुखों और शत्रुगण पर शस्त्रों की वर्षा करने में समर्थ और वृषभ के समान बलवान्, हृष्ट पुष्ट, वीर्यवान्, राज्य कार्य भार को वहन करने में समर्थ होकर (मृधः) संग्रामकारी शत्रु सेनाओं के (हन्तवे) दण्ड देने और मारने के लिये (चिकेतसि) खूब अच्छी प्रकार उपाय करे इसलिये तू (मे) मुझ (अस्य वेधसः) इस विद्वान्, कार्य विधान करने में कुशल (नवीयसः नवीयसः) नवीन २ विद्याओं को ज्ञान करने वाले विद्वान् पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का (आ श्रुधि) श्रवण कर ।

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् । जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः । रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर पुरुष ! राजन् ! सेनापते ! हे (इन्द्र)

ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक ! (त्वं) तू (वावृधानः) बल, पराक्रम तथा ऐश्वर्य में बढ़ता हुआ और (अस्मयुः) हमें हृदय से चाहता हुआ (तम्) उस २ नाना प्रकार के (अमित्रयन्तं) शत्रु भाव दर्शाने वाले (मर्त्यं) मारने योग्य (मर्त्यम्) उस मनुष्य को (वज्रेण) शस्त्र बल से (जहि) मार (यः) जो (नः) हम पर (अघायति) पाप या घात करना चाहता है । हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध ! लोकविख्यात ! तू (सुश्रवस्तमः) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और प्रजाओं के कष्टों को उत्तम रूप से श्रवण करने हारा होकर (शृणुष्व) श्रवण कर । (यामन्) मार्ग में आये (रिष्टं न) विघ्न के समान (यामन्) शत्रु पर की चढ़ाई या प्रयाण काल में (रिष्टं) विघ्न और (विश्वा) समस्त प्रकार की (दुर्मतिः) दुर्बुद्धि और सब प्रकार के (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि वाले जन भी (अप भूतु) दूर हों । इति विंशो वर्गः ॥

[१३२]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ विराडत्यष्टिः । २ भुरिगतिशक्वरी । ४ निचृदष्टिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

त्वया॑ व॒यं म॑घवन्पू॒र्व्ये॑ धन॒ इन्द्र॑त्वोताः सासह्याम पृतन्य॒तो व॑नुयाम॑ व॑नुष्य॒तः । नेदि॑ष्ठे अ॒स्मिन्नह॒न्यधि॑ वोचा॒ नु सु॑न्व॒ते । अ॒स्मिन्य॒ज्ञे वि च॑ये॒मा भरे॑ कृ॒तं वा॑ज॒यन्तो॒ भरे॑ कृ॒तम् ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) परमैश्वर्यवन् ! सौख्यप्रद ! वयं हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से और (त्वा उताः) तेरे से सुरक्षित रहकर (पृतन्यतः) समस्त मनुष्यों को अथवा अपनी बहुत सेना वृद्धि करके युद्ध करने के इच्छुक शत्रुओं को (पूर्व्ये धने) हमारे पूर्व के, मान्य पूर्वज पुरुषों द्वारा सम्पादित धनैश्वर्य की रक्षा और प्राप्ति के लिए (सासह्याम) पराजित करें । और (वनुष्यतः) हम पर प्रहार करने के इच्छुक

शत्रुओं पर (वनुयाम) हम प्रहार करें। अथवा (वनुष्यतः वनुयाम) हमसे उसमें हिस्सा बांट कर उपभोग करने के इच्छुक जनों को साथ मिला कर अच्छी प्रकार न्यायपूर्वक विभाग करके उसका सेवन करें। (अस्मिन् अहनि) इस दिन, आज (नेदिष्ठे) अति समीप आये हुए शिष्य को गुरु के समान तू (सुन्वते) तेरा राज्याभिषेक करने हारे अधीन प्रजाजन के हित के लिए (अधि वोच नु) अध्यक्ष होकर आज्ञा और उपदेश कर। (अस्मिन् यज्ञे) यज्ञ के सदृश पवित्र इस परस्पर संगति, मेल, संगठन से सुसम्पन्न (भरे) सबको भरण पोषण करने वाले राष्ट्र में हम (वाजयन्तः) अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करते हुए (कृतम्) अपने किये उत्तम कार्य और परिश्रम का फल (वि चयेम) विविध उपायों से सञ्चय करें और (यज्ञे) यज्ञ के समान पवित्र (भरे) शत्रु का धन आहरण करनेवाले युद्ध कार्य में भी (वाजयन्तः) खूब युद्ध करते हुए हम लोग (कृतम्) सुसम्पादित ऐश्वर्य या उत्तम क्रियाकुशल नायक पुरुष को (वि चयेम) विशेष रूप से संग्रह करें।

स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि। अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णा प्रवाच्यः। अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः॥ २॥

भा०—(यथा इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (विदे) प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के लिए (अहन्) अन्धकार का नाश करता है और (शीर्ष्णा शीर्ष्णा) प्रत्येक शिर अर्थात् मुख द्वारा (उपवाच्यः) स्तुति योग्य होता है उसी प्रकार (विदे) ज्ञानोपदेश करने के लिये (इन्द्रः) अज्ञान नाशक गुरु या विद्वान् आचार्य (अहन्) अज्ञान का नाश करता तथा ज्ञान का उपदेश करता है और वह (शीर्ष्णा शीर्ष्णा) प्रत्येक शिर से, समीप बैठकर अनुकरण द्वारा वांचने योग्य होता है अर्थात् गुरु उपदेश करता और प्रत्येक विद्यार्थी उसके ज्ञान वाणी का तदनुसार स्वयं अभ्यास करता और अपने

अन्य शिष्यों को भी प्रवचन द्वारा बढ़ाता है। इस लिये हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी (स्वर्जेषे) ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिए (स्वस्मिन् अञ्जसि क्राणस्य) अपने तेज में स्वयं निष्पन्न सूर्य के समान अपने प्रकाशमान ज्ञान में (क्राणस्य) साधना करने वाले (आप्रस्य) पूर्ण ज्ञानी और अन्यों को ज्ञान से पूर्ण करने वाले विद्वान् पुरुष के (स्वस्मिन् अञ्जसि) स्वयं प्रकट होने वाले, और (भरे) आत्मा को पोषण करने, वा अज्ञान के नाश करने वाले (वक्मनि) प्रवचन उपदेश में रह कर (उषर्बुधः) उषा काल में उगनेवाले सूर्य के समान ही स्वयं अति उषाकाल और जीवन के प्रभात बाल्यकाल में प्रबुद्ध हो, ज्ञान सम्पादन कर अपना अज्ञान नाश करें।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम्। वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः। स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

भा०—हे गुरो! विद्वन्! सूर्य का जिस प्रकार (प्रयः) दूर तक जाने वाला तेज (शुशुक्वनं) अति देदीप्यमान और (प्रत्नथा) अति पुरातन, सनातन से चला आरहा है उसी प्रकार हे गुरो! हे प्रभो! (ते प्रयः) तेरा ज्ञानमय वेदमय, वचन (प्रत्नथा) अति प्राचीन, सदा से विद्यमान और (शुशुक्वनम्) अति प्रकाशमान, अति शुद्ध, कान्ति युक्त, अभिव्यक्त हो। (यज्ञे) उपासना और सत्संग के योग्य (यस्मिन्) जिस तुझ प्रभु और उपास्य में भक्त और शिष्य जन (वारम्) वरण करने योग्य (क्षयम् अकृण्वत) अपना आश्रय लाभ करते हैं वह तू स्वयं (ऋतस्य) जल के प्राप्त करने वाले सूर्य के समान स्वयं (ऋतस्य) सत्य ज्ञान का (क्षयं) आश्रय स्थान और (वाः) सब दुःखों का वारण करने हारा या (ऋतस्य वाः) ऐश्वर्य और ज्ञान का समभाग करने

हारा है। हे गुरो! हे भगवन्! आप (तत्) उस परम ज्ञान का (वि वोचः) विशेष रूप से उपदेश करें। (अध) और जिस प्रकार जन साधारण (रश्मिभिः द्विता पश्यन्ति) सूर्य की रश्मियों से प्रत्येक पदार्थ को पृथक् २ देखते हैं उसी प्रकार हे प्रभो! गुरो! विद्वान् जन भी (रश्मिभिः) ज्ञान रश्मियों या प्राणों के निग्रह द्वारा (अन्तः) अपने भीतर ध्यान योग से भी (द्विता) इह और पर, अहं और स्व, जीव और ब्रह्म दोनों को पृथक् २ (पश्यन्ति) साक्षात् कर लेते हैं, कि (स घ इन्द्रः) वही गुरु, और परमात्मा (विदे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये ज्ञानोपदेश के लिए (गवेषणः इन्द्र इव) किरणों को प्रेरणा या प्रक्षेप करने वाले सूर्य के समान ही (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धु के समान विद्या सम्बन्ध से अधीन रहने वाले शिष्यों के हितार्थ (अनु) अनुकूल होकर (गवेषणः) ज्ञान वाणियों को प्रदान करने हारा होता है। उपदेष्टा और सन्मार्ग में चलाने हारा प्राण वृत्तियों, इन्द्रियों एवं गौओं को गोपाल के समान रक्षा करने हारा, उनको चाहने वाला, उनका प्रिय हो।

नू इ॒त्था ते॑ पू॒र्वथा॑ च प्र॒वाच्यं॒ यदङ्गि॑रोभ्योऽवृ॑णो॒रप॑ व्र॒जमि॑न्द्र॒ शिक्ष॒न्नप॑ व्र॒जम्। ऐभ्यः॑ समा॒न्या दि॒शास्मभ्यं॑ जेषि॒ योत्सि॑ च। सु॒न्वद्भ्यो॑ रन्धया॒ कं चि॑दव्र॒तं हृ॑णा॒यन्तं॑ चिदव्र॒तम्॥ ४॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (व्रजम्) मेघ को दूर करके ज्ञान प्रकाश को प्रदान करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) आचार्य! अविद्यानाशक! (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ तू (अंगिरोभ्यः) देह में स्थित प्राणों के समान चैतन्य बुद्धि वाले विद्वान् और तेजस्वी शिष्यों को (व्रजम् अप अवृणोः) ज्ञान करने योग्य तत्व को खोल। (इत्था) इस प्रकार नवीन रीति और (पूर्वथा च) और पूर्व प्रचलित रीति से भी (यत् प्रवाच्यं) जो प्रवचन करने योग्य है वह भी (अप अवृणोः) स्पष्ट करके बतला। (एभ्यः अस्मभ्यम्) इन हम शिष्य जनों के हित के लिए ही आप (समान्या)

सबके प्रति समान भाव से रहने वाले (दिशा) उपदेश से (जेषि) तू सर्वोत्कृष्ट, एवं आदर करने योग्य हो और (योत्सि च) हमें दण्डित कर, ताड़ना दे । तू (सुन्वद्भ्यः) ज्ञान का सम्पादन करने वालों के हित के लिये हो । (कंचित् अव्रतम्) जिस किसी को भी व्रत, ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषण, विनय आदि से रहित पाओ उसको और (हृणायन्तं अव्रतं चित्) हरिण या पशु के समान चञ्चलता दिखाने वाले अथवा गुरु के समक्ष क्रोध दिखाने वाले अविनयी, व्रत रहित शिष्य को भी (रन्धय) दण्डित कर ।

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्रयक्षन्त श्रवस्यवः। तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा। इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

भा०—(शूरः) शूरवीर पुरुष के समान अति शीघ्रता से सहज में ही ज्ञानैश्वर्य के देने वाला आचार्य (यत्) जो (क्रतुभिः) ज्ञानों द्वारा (जनान्) मनुष्यों को (सम् ईक्षयत्) अच्छी प्रकार मार्ग दिखाता है (तस्मै) उसे (प्रजावत् आयुः इत्) प्रजा, सन्तति से युक्त दीर्घ जीवन प्राप्त हो । (श्रवस्यवः) यश और उत्तम वेदमय गुरु-उपदेश को श्रवण करने की इच्छा करने वाले जिज्ञासु लोग धन के बल पर संकटों से धनाढ्य के समान (हिते धने) परम हितकारी धन के समान सुगोप्य आत्मा के बल पर ही (तरुषन्त) दुःखों से तर जाते हैं । और वे (श्रवस्यवः) यश की कामना करते हुए (प्रयक्षन्त च) उत्तम रीति से अन्यों को भी ज्ञान प्रदान करते हैं । वे लोग (बाधे) अपने विरोधियों के दमन करने या बाधा उपस्थित हो जाने पर (ओजसा) उसके बल पराक्रम के कारण ही उसकी (अर्चन्ति) पूजा, आदर करते हैं । (धीतयः देवान् अच्छ न) जिस प्रकार दान लेने वाले पुरुष दान देने वालों के सन्मुख रहते, उसी प्रकार (धीतयः) अध्ययन करने वाले

शिष्य जन (इन्द्रे) अविद्यानाशक गुरु के अधीन रह कर (ओक्यं) प्रवचन योग्य गुरूपदेश को (अच्छ) सम्मुख बैठ कर (दिधिषन्त) धारण करें। शूरवीर के पक्ष में—(श्रवस्यन्तः तरुषन्त) धनार्थी लोग दूसरे की हिंसा कर सकते हैं। और (श्रवस्यवः प्रयक्षन्त च) अन्न और धनेच्छु लोग खूब शत्रुओं को मारते हैं। तब (यत् जनात् क्रतुभिः समीक्षयत्, तस्मै इत् प्रजावत् आयुः) जो पुरुष राज्य के प्रजाजनों को अपने कर्मों और ज्ञानों से विवेक दर्शाता है उसको प्रजा युक्त दीर्घ जीवन प्राप्त हो वह अपने पुत्र पौत्रादि सहित दीर्घायु हो। (वा ये ओजसा अर्चन्ति) संकट आ पड़ने पर उसे दूर करने के लिए पराक्रम के कारण ही उसका वे आदर करते हैं, धारण करने वाले भृत्य होकर (इन्द्रे ओक्यं दिधिषन्त) उस ऐश्वर्यवान् सेनापति के अधीन ही अपने आश्रय, देश गृह या पद को धारण पोषण करने योग्य जन जिस प्रकार अपने दाताओं का आदर करते हैं उसी प्रकार वे (धीतयः देवान् अच्छा दिधिषन्त) वेतन भृत होकर वे दानशील राजाओं को पुष्ट करें। अथवा—धारण पोषणकारी होकर वे विद्वानों की भी रक्षा करें।

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदि नक्षत्। अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥२१॥

भा०—हे (इन्द्रा पर्वता) सूर्य के समान शत्रुओं के नाश करने हारे! हे (पर्वत) पर्वत के समान अचल, मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रवर्षी! (यः) जो (नः) हम पर (पृतन्यात्) सेना लेकर आक्रमण करे (पुरोयुधा) सबसे आगे जाकर युद्ध करने वाले होकर, अथवा पूर्व ही अपराधी को दण्डित करने हारे (युवं) आप दोनों (वज्रेण) वज्र से (तम् तम् इत्) उस उसको ही (वज्रेण) शस्त्र बल से (हतम्) मारो, दण्ड दो। (यत्) यदि वह शत्रु (गहनं) वन में, या संकट

में (इनक्षत्) चला जाय और भाग जाय तो भी (दूरे चत्ताय) दूर चले गये शत्रु को भी (छत्सत्) पकड़ने की इच्छा करे । हे शूरवीर ! (अस्माकं शत्रून्) हमारे शत्रुओं को (विश्वतः दर्मा) सब तरफ से छेदता, बेंधता हुआ तू (विश्वतः) सब प्रकार से (परि दर्षीष्ट) सब तरफ को काट छांट डाल, छिन्न भिन्न कर डाल । (२) इन्द्र आचार्य और पालन करने से पिता 'पर्वत' है । वे पूर्व अवस्था बाल्यकाल में बालक को ताड़ने से 'पुरोयुध' हैं । जो दुर्भाव हम पर आक्रमण करें उनको वे दोनों दण्ड दें, जो कोई छात्र कठिनाई में पड़ जाय तो दूर तक भटक गये को भी आचार्य प्रेम से उभार लेवे या (दर्मा) आदर योग्य वह हमारे अन्तः शत्रु, काम क्रोधादि को सब प्रकार से नाश करता रहे । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१३३]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप् । ५ आर्षी गायत्री । ६ स्वराड् ब्राह्मी जगती । ७ विराडष्टिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥१॥

भा०—(ऋतेन रोदसी) जल से जिस प्रकार दोनों तट स्वच्छ हो जाते हैं उसी प्रकार (ऋतेन) सत्य व्यवहार, न्याय, बल या प्रयाण से (उभे रोदसी) मित्र और शत्रु दोनों पक्षों को (पुनामि) पवित्र करूं, निष्कण्टक करूं । मैं (अनिन्द्राः) इन्द्र अर्थात् राजा से रहित, उससे विपरीत, (द्रुहः महीः) द्रोहकारी भूमियों को (दहामि) जला डालूं, उनके द्रोही निवासियों को पीड़ित करूं । (यत्र) जहां (अमित्राः) शत्रु लोग (अभि-व्लग्य) आक्रमण करके मारे जावें उस (वैलस्थानं) गिरने या पराजित होने के स्थान पर ही वे (तृढाः) मारे गये लोग

(अशेरन्) भूमि पर सोवें। अध्यात्म में—मैं (ऋतेन) ज्ञान से (रोदसी) इह लोक और परलोक दोनों को पवित्र करूं (अनिन्द्राः) मैं आत्मा के विरोधी बड़ी द्रोहकारिणी विक्षेप प्रवृत्तियों या वासनाओं को सूखी लताओं के समान जला दूं, वे निर्बीज हो जावें। वे (अमित्राः) काम क्रोधादि शत्रु गण जहां पहुंच कर विनष्ट हो जाते हैं उस (वैलस्थानं) गुहास्थित ब्रह्म को प्राप्त होकर शान्त हो जावें।

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम्।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रधर ! हे मेघ के समान शरवर्षी वीरों के स्वामिन् ! (चित्) जिस प्रकार (वटूरिणा पदा) लपेट लेने वाले पैर से या शूण्ड से हाथी या पहलवान् अपने शत्रु को लपेट कर नीचे गिराता और सिरों को (अभिव्लग्य) कुचल डालता है उसी प्रकार तू (अभिव्लग्य) शत्रुओं को प्राप्त होकर और उनको पकड़ कर (यातु-मतीनां) पीड़ा देने वाले शस्त्रास्त्रों से सजी शत्रु सेनाओं के (शीर्षा) शिर भागों अर्थात् प्रमुख सेना नायकों, और मुख्य बलवान् दलों को (वटूरिणा पदा) लपेट लेने वाले हाथी के पैर या शूण्ड के समान (महा वटूरिणा पदा) उससे भी कहीं बड़ी शक्ति से चारों तरफ से घेर लेने वाले वेगवान् अपने सेना बल से (अभिव्लग्य) चारों ओर से घेर कर उनको खूब काबू करके उसको (छिन्धि) काट, उनको छिन्न भिन्न कर। इसी प्रकार (अभिव्लग्य यातुमतीनां शीर्षा छिन्धि) अन्यों को पीड़ा देने वाले उपायों को करने वाले दुष्ट व्यक्तियों के शिरों को पैर के नीचे धर कर काट, उनको दबा कर मार। 'शत्रुओं के शिर पर पैर रख कर काटना' यह मुहावरा, उपलक्षण मात्र है।

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम्।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! (अर्मके वैलस्थानके) जिस प्रकार पीड़ादायी व्यक्तियों को दुःखदायी छोटे से, बिल के समान बने कैदखाने में डाल दिया जाता है उसी प्रकार (आसाम्) इन (यातुमतीनाम्) पीड़ा दायक शस्त्रास्त्रों वाली सेनाओं के (शर्धः) प्रबल बल को (अर्मके) कष्टदायी (महावैलस्थे) बड़े भारी गढ़ों से युक्त ऊंचे नीचे खड्डों से भरे स्थान में डाल कर, या फांस कर (अप जहि) उसका नाश कर।

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

भा०—हे सेनापते! तू (यासां) जिन सेनाओं के (तिस्रः पञ्चाशतः) तीन पचासों को अर्थात तीन तीन कतारों की पचास २ की सेनाओं को भी (अभिव्लंङ्गैः) सब तरफ़ के पैतरों से या सब तरफ़ चलने वाले चौमुखा मारने वाले शस्त्रों और अस्त्रों से तू (अप अवपः) काट गिरावे, या मार भगावे (तत्) वही (ते) तेरा (सुमनायति) उत्तम मनः-संकल्प हो, (तकत् ते सु मनायति) वह ही तेरा उत्तम आदर योग्य विचार रहे।

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! सूर्य के समान तेजस्विन्! (पिशङ्गभृष्टिम्) पीले वर्ण के प्रकाश से भुन जाने वाले (अम्भृणं) पीड़ा को देने वाले (पिशाचिम्) देह के अवयव २ में व्याप्त, या रक्त को चूसने वाले रोगकारी कारण को सूर्य के प्रखर ताप से नष्ट किया जाता है उसी प्रकार (पिशङ्गभृष्टिम्) पीतवर्ण के, तेजस्वी पुरुषों द्वारा पीड़ित होने वाले (अम्भृणं) भयंकर, पीड़ादायी, या बड़े भारी (पिशाचिम्) खण्ड २ होने वाले शत्रु सैन्य को (सम्मृण) अच्छी प्रकार नष्ट कर डाल।

और (सर्वं) समस्त (रक्षः) बाधक कारणों और शत्रु बल को (नि बर्हय) विनाश कर, दूर कर।

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः। शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे। अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः॥ ६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! जिस प्रकार सूर्य या वायु (महः अवः) बड़े भारी मेघ को और विद्युत् पर्वत आदि को छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार तू (महः) बड़े भारी शत्रु दल को (अव-दादृहि) नीचे गिरा कर छिन्न भिन्न कर। हे (अद्रिवः २) न दीर्ण होने वाले शस्त्र बल से युक्त! वज्रधर सेनापते! (भीषा) विद्युत् के भय से जिस प्रकार (क्षा न द्यौः) पृथिवी के समान आकाश भी (शुशोच) चमक उठता है, उसी प्रकार (न) मानो (घृणात्) चमकने वाले अति तेजस्वी तुझसे भी (भीषा अभि इषा वा) भय से या तेरे चारों तरफ फैलनी वाली सेना से (क्षा न द्यौः) पृथिवी की सामान्य प्रजा के समान तेजस्वी राजजन भी (शुशोच) चमके, कांपे, वा भय-भीत हों। तू (शुष्मिभिः) बलवान् (उग्रेभिः) भयंकर (वधैः) हिंसा कारी शूरवीर पुरुषों और हिंसाकारी शस्त्रों से (शुष्मिन्तमः ईयसे) सब राजागण में सबसे अधिक बलशाली जाना जावे। और तू (अपूरुषघ्नः) अपने शूर पुरुषों को न नाश करता हुआ, हे (शूर) शूरवीर! हे (अप्रति-इत) शत्रुओं द्वारा न मुकाबला किये जाने वाले! या हे (अप्र-तीत) अविज्ञात बल वाले! तू (त्रिसप्तैः) तीन साते, इक्कीस (सत्वभिः) बलशाली, पुरुषों और (सत्वभिः) शरीरगत जीवन सत्ता धारण करने वाले मूल तत्वों से युक्त आत्मा के समान होकर मुख्य भोक्ता जाना जावे।

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः। सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः। सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥ २२ ॥ १६ ॥

भा०—(हि) निश्चय से (सुन्वन्) अभिषेक करने वाला प्रजाजन ही (क्षयं वनोति) निवास योग्य आश्रय प्राप्त करता है। और (सुन्वन्) अभिषेक करता हुआ प्रजाजन या सैन्य गण (देवानां) उत्तम पुरुषों, विद्वानों और विजयशील पुरुषों के (द्विषः) अप्रीतिकर (द्विषः) द्वेषी शत्रुओं को भी (अवयजति) विनाश करने में समर्थ होता है। (सुन्वानः इत्) अभिषेक करने हारा ही (अवृतः) अधिक पुरुषों से सुरक्षित न रह कर भी (वाजी) बलवान् होकर (सहस्रा) सहस्रों ऐश्वर्य सुखों को (सिषासति) प्राप्त करता है। (सुन्वानाय) अभिषेक करने वाले प्रजा गण को ही (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (आभुवं आभुवं रातिम्) पुनः २ प्राप्त होने वाले, और सर्वत्र सुख उत्पादन करने हारे, प्रचुर ऐश्वर्य या समस्त पृथ्वी में व्याप्त ऐश्वर्य का (ददाति) प्रदान करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले एकोनविंशोऽनुवाकः समाप्तः ॥

[१३४]

१—६ परुच्छेप ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः। २, ४ विराडत्यष्टिः। ५ अष्टिः। ६ विराडष्टिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये। ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती। नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

भा०—(जुवः रारहाणाः) जिस प्रकार वेगवान् शीघ्र गमनशील अश्व (सोमस्य पूर्वपीतये) ऐश्वर्य को सबसे पूर्व प्राप्त कर लेने के लिए वीर पुरुष को (प्रयः आवहन्ति) प्राप्तव्य युद्ध तथा विजय देश में प्राप्त

कराते हैं उसी प्रकार (जुवः) उत्तम मार्ग में ले जाने हारे प्रीति युक्त, (रारहाणाः) संसार के विलासों को त्यागने वाले, निःस्वार्थ विद्वान् जन (पूर्वपीतये) अपने पूर्व के विद्वानों और पूर्व पुरुषों के ज्ञान ऐश्वर्य आदि का पान करने, उसको प्राप्त करने के लिये (त्वा) तुझको हे (वायो) ज्ञानवन् ! वायु के समान राष्ट्र के प्राणरूप राजन् ! विद्वन् ! वा ज्ञानोत्सुक पुरुष ! (प्रयः) ज्ञान, परमपद, और प्रीति (आ वहन्तु) प्राप्त करावें। (जानती) ज्ञान वाली, विदुषी स्त्री (सूनृता) प्रिय सत्यवाणी बोलती हुई (मनः जानती अनुतिष्ठतु) अपने प्रियतम पुरुष के मनको अच्छी प्रकार जानती हुई तदनुसार ही आचरण करती है उसी प्रकार हे विद्वन् ! राजन् ! (सूनृता) उत्तम, पूजनीय शुभ सत्य वेद वाणी (मनः जानती) मन को ज्ञान प्रदान करती हुई, वा (मनः) ज्ञान को ही (जानती) जानती और जनाती हुई (ते अनु तिष्ठतु) तेरे कार्य के अनुकूल रहे। अथवा (जानती सूनृता ते मनः अनुतिष्ठतु) ज्ञानमयी वाणी तेरे मन के अनुकूल रहे, तेरा मन उसके प्रतिकूल न रहे। हे (वायो) वायु के समान बलवन् ! क्रियावन् ! ज्ञानवन् ! (दावने) आजीविका देने वाले के कार्य के लिये जिस प्रकार भृत्य (नियुत्वता रथेन याति) अश्वों वाले रथ से शीघ्र कार्य पर जाता है उसी प्रकार हे शूरवीर ! तू (मखस्य) पूजनीय उत्तम ज्ञान के देने वाले गुरु आचार्य के लिये और (मखस्य दावने) यज्ञ के दान और युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के नाश करने के लिये भी (नियुत्वता रथेन) अश्वों से जुते रथ, तथा असंख्य रथ सेना से (याहि) प्रयाण किया कर।

मन्द॑न्तु त्वा म॒न्दिनो॑ वाय॒विन्द॑वो॒ऽस्मत्क्रा॒णासः॒ सुकृ॑ता अ॒भिद्य॑वो॒ गोभिः॑ क्रा॒णा अ॒भिद्य॑वः। यद्ध॑ क्रा॒णा इ॒रध्यै॒ दक्षं॒ सच॑न्त ऊ॒तयः॑। स॒ध्रीची॑ना नि॒युतो॑ दा॒वने॒ धिय॒ उप॑ ब्रुवत ई॒ धियः॑ ॥२॥

भा०—(अभिद्यवः इन्दवः गोभिः मन्दिनः) सब प्रकार से देदी-

प्यमान चन्द्र कलाएं जिस प्रकार किरणों से सबको प्रसन्न करती और सबके चाहने योग्य होती हैं और जिस प्रकार आर्द्र, सरस सोमरस गो रसों से मिल कर हर्षोत्पादक होते हैं वे (मन्दन्ति) सबको प्रसन्न करते हैं, उसी प्रकार हे (वायो) ज्ञानवन् विद्वन् ! राजन् ! (मन्दिनः) सुख की कामना करने वाले, तेरे प्रिय, (अस्मत्) हममें से जो (क्राणासः) क्रियाशील, (सुकृताः) उत्तम पुण्यवान्, सदाचारवान् (इन्दवः) चन्द्र के समान सबके आल्हादकर, सोम रसों के समान राष्ट्र के पोषक, दयार्द्र चित्त वाले, (गोभिः क्राणाः) गौओं और बैलों से ऐश्वर्य, अन्न आदि उत्पन्न करते हुए, भूमियों से ऐश्वर्य और गमन योग्य उत्तम स्त्रियों सहित गृहस्थोचित यज्ञसम्पादन करते हुए और वाणियों द्वारा ज्ञान सम्पादन करते हुए (अभिद्यवः) अतितेजस्वी, और व्यवहारज्ञ होकर (त्वा मन्दन्तु) तुझे प्रसन्न करें, तुझे चाहें (यत्) जो (क्राणाः) कर्मशील, पुरुषार्थी (ऊतयः) ज्ञानवान् व्रतपालक, लोग (दक्षं) ज्ञान और बल अपने आत्मा के (इरध्यै) प्राप्त करने के लिये (सचन्ते) उद्योग करते हैं उसी में लगे रहते हैं वे सदा (सध्रीचीनाः) एक साथ सहोद्योगी होकर (नियुतः) एक ही रथ में लगे अश्वों के समान एक कार्य में लग कर (दावने) उत्तम मनोयोग देने, आत्म समर्पण करने वाले शिष्य जिज्ञासु को (धियः) धारण करने योग्य व्रतादि कर्मों और (धियः) नाना ज्ञान-युक्त प्रज्ञाओं और कर्मों का (उप ब्रुवत ईम्) सब प्रकार से उपदेश करते हैं।

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे। प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव। प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

भा०—(वायुः रथे रोहिता युङ्क्ते) अश्वों को प्रेरणा करने वाला सारथि जिस प्रकार अश्वों को रथ में और (वायुः) वायु, या सूर्य (अरुणान्) लाल वर्ण के किरणों को जिस प्रकार प्रेरित करता है,

और जिस प्रकार (वहिष्ठा) दूर देश तक हांक कर ले जाने वाला गाड़ीवान् (वायुः) अश्वों का प्रेरक होकर (वोढ़वे) शकट को उठाकर दूर देश में ले जाने के लिए (अजिरा) गति देने वाले, और गमन करने वाले यन्त्रों और पशुओं को (धुरि) रथ के धुरा में लगाता है उसी प्रकार (वायुः) विद्वान् ज्ञानवान्, पुरुष शिष्यों को ज्ञान मार्ग में परिचालन करने वाला, (रोहिता) वृद्धिशील, (अरुणा) आगे बढ़ने वाले एवं किरणों के समान अरुण वर्ण, तेजस्वी, (अजिरा) अजीर्ण, बालक एवं नवयुवक तथा अक्षतवीर्य, अखण्ड व्रतपालक शिष्यों को (वोढवे) संसार के कार्यभार को उठाने में समर्थ होने के लिये (धुरि) ज्ञान शक्ति के धारण करने के कार्य में, धुरा में बैलों के समान अपने अधीन उनको वश करता हुआ (युङ्क्ते) सन्मार्ग में नियुक्त करता है। हे विद्वान् ! (जारः ससतीम् इव पुरन्धिम्) प्रिय पुरुष जिस प्रकार सोती हुई या सह-शयन करती हुई स्त्री को (आ बोधयति) जगा देता है हे विद्वन् गुरो ! तू भी (जारः) विद्या के उपदेश करने में कुशल हो कर (ससतीम् इव पुरन्धिम्) शिष्य की सोती हुई बुद्धि और देहरूप पुर को धारण करने वाली धारणा शक्ति को (आ प्रबोधय) अपने अभिमुख करके अच्छी प्रकार जगा, उसे प्रबुद्ध कर, उसे ज्ञानवती बना दे। और (रोदसी) पृथ्वी और आकाश अर्थात् समस्त जगत् के ज्ञान का (प्र चक्षय) उत्तम रीति से उपदेश कर। (श्रवसे) ज्ञानोपदेश श्रवण कराने के लिये (उषसः) तू उन जिज्ञासु शिष्यों को (वासय) अपने अधीन बसा, उन्हें रख और फिर विद्या पढ़ लेने के अनन्तर (उषसः) गृहस्थ की कामना करनेहारे उन युवकों को गृहस्थ में और विद्याभिलाषी पुरुषों को अपने ही पास (बासय) बसा।

तुभ्य॑मु॒षास॒: शुच॑यः परा॒वति॑ भ॒द्रा वस्त्रा॑ तन्वते॒ दंसु॑ र॒श्मिषु॑ चि॒त्रा नव्ये॑षु र॒श्मिषु॑। तुभ्यं॑ धे॒नुः स॑ब॒र्दुघा॒ विश्वा॒ वसू॑नि दोहते। अज॑नयो म॒रुतो॑ व॒क्षणा॑भ्यो दि॒व आ व॒क्षणा॑भ्यः ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (शुचयः उषासः) अति दीप्त प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (रश्मिषु) किरणों के आधार पर (परावति) दूर २ देश में पहुंच कर (भद्रा वस्त्रा तन्वते) जगत् के सुखकारी आच्छादक प्रकाशों को फैलाती हैं और जिस प्रकार (उषासः) उषाओं के समान सुन्दर, कमनीय, प्रेम से युक्त (शुचयः) शुद्ध, पवित्र, उज्वल वर्ण और आचार वाली स्त्रियें (रश्मिषु) तन्तुओं के आश्रय (भद्रा) सुन्दर सुखप्रद (वस्त्रा) वस्त्र (तन्वते) तनती और बुनती हैं उसी प्रकार हे विद्वन् ! (उषासः) तेजस्वी, एवं तेरे अधीन बसने वाले विद्वान् छात्रगण (दंसु) इन्द्रियों को दमन करने वाले (रश्मिषु) साधनों और (नव्येषु) नये से नये स्तुत्य (रश्मिषु) ज्ञानमय प्रकाशों और कार्यों के आधार पर (परावति) दूर २ के देश में भी (भद्रा) तेरे अति कल्याणकारी (वस्त्रा) दोषों के आच्छादक यशः पटों को (तन्वते) विस्तृत करें । और (धेनुः) गौ और उसके समान समस्त जगत् को धारण करने वाली यह पृथ्वी (सवर्दुघा) समस्त रसों को दोहन करने वाली कामदुघा होकर (विश्वा वसूनि) समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करती है । (अजनयः मरुतः) जिस प्रकार वेग से गमन करने वाले वायुगण (दिवः वक्षणाभ्यः) आकाश या पृथ्वी के पार्श्वों से (आ) नाना मेघों और जल वृष्टियों को लाते हैं उसी प्रकार (अजनयः) 'अज' बकरे आदि पशुओं या तीव्र वेग से जाने वाले रथों को चलाने वाले (मरुतः) विद्वान् या व्यापारी जन भी (वक्षणाभ्यः) नदियों द्वारा और (दिवः वक्षणाभ्यः) पृथिवी और आकाश के सब पार्श्वों से (आ) ऐश्वर्य प्राप्त करावें । [२] गृहस्थ में—हे पुरुष ! (अजनयः) न जनी हुई, अखण्डित ब्रह्मचारिणियें ही गृहस्थ धर कर (वक्षणाभ्यः) कोखों से (दिवः) कामनावान् तुझ पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने के लिये (वसूनि दोहते) गर्भ से पुत्ररत्नों और नाना ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें और पूर्ण करें ।

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि। त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये। त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

भा०—हे बलवन्! राजन्! (शुक्रासः) शुद्ध कान्तिमान्, वीर्यवान् (शुचयः) शुद्ध आचरण वाले, (तुरण्यवः) अति शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने में कुशल, (उग्राः) उग्र, भयंकर बलवान् पुरुष (मदेषु) हर्ष के अवसरों में और (अपाम् भुर्वणि) जलों के धारण और आहरण के कार्य में वायु के समान (अपां भुर्वणि) प्रजाओं के भरण पोषण के कार्य में लगें। वे (तुभ्यम्) तुझे ही (इषणन्त) चाहें और (भुर्वणि) पालन पोषण के कार्य में (त्वा) तुझे ही (इषणन्त) सदा प्रेरणा करते रहें। हे राजन्! (त्सारी) छद्मगति से चलने वाला, कुटिलाचारी पुरुष भी (दसमानः) शत्रुओं का नाश करता हुआ (त्वां भगं) तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष की (तक्ववीये) और प्रजापीड़क पुरुषों के दूर करने के उत्तम काम के निमित्त (ईट्टे) स्तुति करता है। तू (विश्वस्मात्) सब प्रकार के (भुवनात्) उत्पन्न हुए सांसारिक भय से या प्राणी से (पासि) रक्षा करता है और तू ही (धर्मणा) धर्म से अर्थात् अपने धारण सामर्थ्य से (असुर्यात्) असुर अर्थात् दुष्ट पुरुषों के व्यवहार से भी प्रजा को (पासि) रक्षा करने में समर्थ है।

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि। उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम्। विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवान् एवं बलवान् राजन्! (अपूर्व्यः) पूर्व पुरुषों द्वारा किये कर्मों से भी विलक्षण कर्म करनेहारा, अथवा जिसके पूर्व कोई अन्य न हो ऐसे अद्वितीय पद के योग्य होकर तू (एषाम् सोमानाम्) इन समस्त ऐश्वर्यों और पदाधिकारों का ओषधि

रसों के समान (पीतिम् अर्हसि) पान अर्थात् उपभोग करने में समर्थ है। तू ही (सुतानां) अभिषिक्त राजपदाधिकारियों में से (प्रथमः) सब से प्रथम, उत्तम रहकर (पीतिम् अर्हसि) ऐश्वर्य भोग करने का अधिकारी है। तू (विहुत्मतीनां) विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न, सुसमृद्ध, और (ववर्जुषीणाम्) सब दोषों से रहित (प्रजानां) प्रजाओं का भी (पीतिम् अर्हसि) पालन और उपभोग करने में समर्थ है। (धेनवः) गौएं जिस प्रकार (आशिरम् घृतम् दुह्रते) सेवन करने योग्य घी आदि पदार्थ प्रदान करती हैं उसी प्रकार (विश्वाः इत्) समस्त प्रजाएं (ते) तेरे ही उपभोग के लिये (आशिरम्) सेवन करने योग्य और आश्रय करने योग्य समस्त ऐश्वर्य को (दुह्रे) प्रदान करें। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[१३५]

परुच्छेप ऋषिः॥ वायुर्देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः। २, ४ विराडत्यष्टिः। ५, ९ भुरिगष्टिः। ६, ८ निचृदष्टिः। ७ अष्टिः॥ नवर्चं सूक्तम्॥

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते। तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे। प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन्॥ १॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! (स्तीर्णः बर्हिः) जिस प्रकार पूज्य और आदरणीय पुरुष के लिये आसन विछाया जाता है उसी प्रकार तेरे लिये यह (बर्हिः) वृद्धियुक्त पद, सिंहासन और विशाल प्रजाजन का राष्ट्र (स्तीर्णं) फैला हुआ है। तू (वीतये) उसको प्राप्त करने और उपभोग करने के लिये (सहस्रेण नियुता) हजारों अश्व सैन्यों से और (शतिनीभिः) सौ सौ के दस्तों वाली सेनाओं सहित (नः उपयाहि) हमें, प्रजाजनों की रक्षार्थ (उप याहि) सदा प्राप्त हो। (नियुत्वते)

असंख्य पुरुषों के स्वामी और (नियुत्वते) नियुक्त सेनाओं के स्वामी (तुभ्यं देवाय) युद्ध और व्यवहारकुशल तुझ विजिगीषु के लिये ही (देवाः) सब विजयेच्छुक विद्वान् जन (पूर्वपीतये) सब से प्रथम प्रधान पद के उपभोग के लिये (येमिरे) सब नियम व्यवस्था करते हैं। और (ते) वे (मधुमन्तः) मधुर, मधु से युक्त औषधि रसों के समान सुखप्रद (मधुमन्तः) अन्नों से युक्त (सुतासः) उत्पादित ऐश्वर्य, वा (मधुमन्तः सुतासः) शत्रुसंहारक बल से युक्त पदाभिषिक्त अधिकारी जन सब (ते मदाय) तेरे ही हर्ष और सुख के लिये (क्रत्वे) सदा कार्य सम्पादन करने के लिये (अस्थिरन्) स्थापित हों और (अस्थिरन्) स्थिर, अविचलित निर्भय होकर रहें। इसी आधार पर जल, शर्बत, तथा मधुर पदार्थों का भाग भी प्रथम मुख्य व्यक्ति को ही देना चाहियें यह नियम (देवाः येमिरे) विद्वान् पुरुषों ने बनाया है।

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति। तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते। वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) विद्वन्! राजन्! सेनापते! (अयम्) यह (अद्रिभिः) शस्त्रों से, न दीर्ण होने वाले कवचों से और मणियों और आदर करने योग्य विद्वानों से (परिपूतः) पवित्र या दीक्षित हुआ हुआ (सोमः) विद्वान् पुरुष (स्पार्हा) चाहने योग्य, उत्तम, सुन्दर २ वस्त्रों को धारण करता हुआ और (शुक्रा वसानः) शुक्र, शुद्ध कान्तिमय, झिलमिल झिलमिल करते हुए वस्त्रों और आभूषणों और शुद्धाचरणों को धारण करता हुआ (कोशम् परि) कोश, अपार धनैश्वर्य प्राप्त करता है। अथवा वह (कोशम् परि अर्षति) खड्ग धारण करता है। हे राजन्! जो (सोमः) सौम्य गुणों से युक्त, दीक्षित पुरुष (आयुषु) साधारण मनुष्यों और (देवेषु) विद्वान् और विजयी पुरुषों के बीच (तव भागः)

तेरी सेवा करने वाला (अयं सोमः) यह ऐश्वर्यवान् पुरुष समूह ही (हूयते) कहा जाता है। हे (वायो) बलवन्! सेनापते! तू (नियुतः) अपने अधीन नियुक्त सेनाओं को, अश्वों को सारथिवत् समान सन्मार्ग पर ले चल। तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी और (अस्मयुः) हमें सदा समृद्ध रूप में चाहने वाला और हमारे समान या देह में आत्मा के समान अभिमान सहित होकर रहने वाला होकर (जुषाणः) सब राष्ट्र का भोग करता हुआ (पाहि) हमें प्राप्त हो और शत्रु पर चढ़ाई कर।

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रं स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि वी॒तये॒ वायो॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑। तवा॒यं भा॒ग ऋ॒त्वियः॒ सर॑श्मिः॒ सूर्ये॒ सचा॑। अ॒ध्व॒र्युभि॒र्भर॑माणा अयंसत॒ वायो॑ शु॒क्रा अ॑यंसत ॥३॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! वायु के समान बलवन् राजन्! तू (वीतये) राज्य को प्राप्त करने और उसको पालन करने और (हव्यानि) उपभोग करने और स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों को (वीतये) उपभोग करने के लिये (नः) हमारे (अध्वरम्) नाश न होने वाले, बलवान् राष्ट्र को (नियुद्भिः) बलवान् अश्वों और (शतिनीभिः) सैकड़ों दस्तों से बनी और (सहस्रिणीभिः) हजारों वीर पुरुषों से बनी नाना सेनाओं सहित (उप याहि) प्राप्त हो। (अयं) यह (तव) तेरा (ऋत्वियः) ऋतु अनुकूल, (भागः) सेवन करने योग्य अंश है जो (सूर्ये सचा) सूर्य में विद्यमान (सरश्मिः) किरणों के समान राष्ट्र को वश करने के साधनों सहित तुझे प्राप्त है। अर्थात् सूर्य की किरणों से वायु में जिस प्रकार यथा ऋतु जलवाष्प प्राप्त होते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के नियमों द्वारा राजा को उसका ऋत्वनुकूल कर आदि राजा का षष्ठांश प्राप्त हो। और हे (वायो) बलवन् शासक! (अध्वर्युभिः) अविनाश्य राष्ट्र के सञ्चालक पुरुषों सहित (भरमाणाः) राष्ट्र के कार्य भार को धारण करते हुए (शुक्राः) शुद्ध आचारवान् पुरुष (अयंसत)

राष्ट्र का भली प्रकार नियन्त्रण करें, वे तेरे अंश कर आदि की भी (अयंसत) व्यवस्था करें।

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये। पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम्। वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम्॥४॥

भा०—हे (वायो) बलवन् सेनापते! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सुधितानि) अच्छी प्रकार नियत, अथवा उत्तम पुष्टिकारक (प्रयांसि) प्रिय भोज्य अन्न और प्रीतिकारक (हव्यानि) उत्तम २ ऐश्वर्यों को (वीतये) भोगने और (वीतये) उनके रक्षण (अवसे) पालन और प्राप्त करने के लिये (नियुत्वान् रथः) उत्तम अश्वों से युक्त रथ (वां आवक्षत्) तुम दोनों को वहन करे, दूर २ देशों तक ले जावे। आप दोनों (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न का (पिबतम्) उपभोग करें। (वां) आप दोनों के लिये (हि) निश्चय से सदा, (पूर्वपेयम्) सब से पूर्व आदर से पान करने योग्य पदार्थ के समान उपभोग्य ऐश्वर्य आदि भी (हितम्) स्थित है। आप दोनों उसका उपभोग करें। आप दोनों (चन्द्रेण) सबको सुखी करनेवाले सुवर्ण आदि ऐश्वर्य सहित और (राधसा) सब कार्यों को भली प्रकार साधने वाले उपाय सामग्री सहित (आ गतम्) आवें, (राधसा) धनैश्वर्य सहित (आगतम्) हमें प्राप्त हों।

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्। तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या। इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम्॥५॥२४॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) सूर्य और वायु के समान जगत् और राष्ट्र को करादान और ऐश्वर्यदान द्वारा पालने वाले! सभासेनाध्यक्षो! जो विद्वान् पुरुष (वां) आप दोनों के (धियः) ज्ञानों और कर्तव्य

कर्मों का (आ ववृत्युः) नित्य प्रति अभ्यास करते हैं और (अध्वरान्) उत्तम प्रजापालक राज्यों की (आ ववृत्युः) व्यवस्था करते हैं और (इमं) इस (वाजिनम्) वेगवान्, ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्, (आशुम्) शीघ्र कार्य करने में कुशल, (इन्दुम्) चन्द्र के समान आल्हादक और ऐश्वर्य से युक्त राज्य को (वाजिनम् अत्यं न) वेगवान् अश्व के समान सदा (उप मर्मृजन्त) शोधन करते, उसको त्रुटियों रहित करते रहते हैं। (तेषां) उन (अद्रिभिः सुतानाम्) सूर्य और वायु जिस प्रकार मेघों या पर्वतों से उत्पन्न जलों का पान करते या (अद्रिभिः सुतानाम्) मूसल या शिलाखण्डों से कुटे पिसे औषधि रसों और अन्नों के समान दृढ़ शस्त्रास्त्रों के बलों से (सुतानां) अभिषिक्त (तेषां) उन नायकों के ऐश्वर्य का आप दोनों (मदाय) हर्ष और राज्य को दमन करने के लिये (पिबतम्) उपभोग करो, उसको अपने अधीन रखो। (नः) हमारे (इह) इस राज्य में (ऊत्या) रक्षण करने के निमित्त (आ गन्तम्) आप दोनोंआवें। (युवं) आप दोनों (वाजदा) अन्न और ऐश्वर्य के देने, पालने और संग्रामों में शत्रु का नाश करने वाले होकर हमें प्राप्त होवें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत। एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः। युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

भा०—(सोमाः अप्सु आसुताः) जिस प्रकार औषधि रस नाना रसों में डाले जाकर (शुक्राः) देह को शुद्ध करने वाले होते हैं और (अध्वर्युभिः) शरीर को नाश न होने देने वाले प्राणों से (भरमाणाः) धारण किये जा कर (शुक्राः) विशुद्ध वीर्यरूप से क्रियाजनक होकर (अयंसत) शरीर में बल प्रदान करते, शरीर को व्यवस्थित करते हैं उसी प्रकार हे इन्द्र! और वायु! या सूर्य और वायु के समान ज्ञान प्रकाश, ऐश्वर्य और राज्य शासन के क्रियाकौशल और ज्ञानकौशल को धारण

करने वाले प्रधान पुरुषो ! राजन् और सेनापते ! (वां) आप दोनों के सहायतार्थ ही (इमे सोमाः) ये प्रजाओं को सन्मार्ग में चलाने में समर्थ शक्तिशाली पुरुष (अप्सु) प्रजाओं में (आसुताः) सबके सन्मुख अभिषेक किये जावें। और वे (अध्वर्युभिः) राष्ट्र यज्ञ को नाश होने से से बचाने वाले प्रबल नायकों और वीर, विद्वान् पुरुषों द्वारा (भरमाणाः) प्रजा को धारण और पोषण करते हुए (शुक्राः) आशु, कार्यकुशल और शुद्ध धर्माचरण वाले होकर (अयंसत) राष्ट्र का प्रबन्ध करते रहें। जिस प्रकार (आशवः तिरः पवित्रम् अभि असृक्षत) वेग से फैलने वाले औषधि रस तिरछे लगे दशापवित्र नामक छनने पर गति करते हैं और (अव्यया रोमाणि अति) भेड़ के बालों को पार कर जाते हैं उसी प्रकार (एते) ये (आशवः) तीव्र वेग से जाने हारे पुरुष भी (तिरः) अति उत्तम, (पवित्रम्) पवित्र, राष्ट्र और प्रजा जन को पवित्र करने वाले आदेश को (अभि) लक्ष्य करके (असृक्षत) चलें, हरेक कार्य में प्रजाओं के पीड़क दुष्ट पुरुषों से जन समाज को स्वच्छ रखने का उद्देश्य ही सामने रख कर कार्य करें। और वे सब (युवायवः) राजा और सेनापति तुम दोनों को हृदय से चाहते हुए (सोमासः) सौम्य स्वभाव के शिष्यवत् अनुगामी शासक होकर (अव्यया) अव्यय, कभी समाप्त न होने वाले, अनन्त अनेक (रोमाणि) उच्छेदन या काट गिराने योग्य शत्रुओं को भी (अति) पार कर जाने में समर्थ हों।

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् और प्राणप्रद विद्वन् ! और राजन् ! तू (ससतः) सोने वाले आलसी पुरुषों से (अतियाहि) आगे बढ़, उनको अपने अधीन कर। और तू (शश्वतः) सनातन

या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाले पुरुषों से (अति याहि) आगे बढ़, उनसे अधिक उन्नति कर। (यत्र) जहां (ग्रावा) उपदेष्टा, विद्वान् पुरुष (वदति) उपदेश करता हो हे (वायो) ज्ञान की कामना करनेहारे शिष्य और (इन्द्रश्च) हे ऐश्वर्यवन् पुरुष ! तुम दोनों (गच्छतम्) वहां जाओ और ज्ञान प्राप्त करो और पूर्ण विद्या प्राप्त करके तब (गृहम् गच्छतम्) अपने गृह जाओ। (पूर्णया नियुता अध्वरं याथः) जब वायु और सूर्य दोनों अपने पूर्ण बल से जलादान और विसर्ग रूप यज्ञ को प्राप्त होते हैं तब जिस प्रकार (घृतम् रीयते) जल बरसता है और (सूनृता वि ददृशे) अन्न विविध प्रकार से उत्पन्न हुआ दिखाई देता है उसी प्रकार हे (वायो) वायु के समान बलवान् पुरुष ! तू और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् तुम दोनों अपनी (पूर्णया नियुता) पूरी शक्ति और नियुक्त सेना से (अध्वरम् अध्वरम्) यज्ञ के समान पवित्र प्रजाओं का नाश न होने देने वाले प्रजापालन के प्रत्येक कार्य को (याथः) प्राप्त होते हो तो घृतम् रीयते) राष्ट्र में जल घी दूध खाद्य पदार्थ और उत्तम तेज और विज्ञान का प्रकाश (रीयते) सर्वत्र सुना जाता और पाया जाता है और (सूनृता) शुभ सत्यमय वाणी और अन्न सम्पत्ति (वि ददृशे) विविध प्रकार से दिखाई देती है। [२]इसी प्रकार (वायु) ज्ञान की कामना करनेवाला विद्यार्थी और ज्ञान का उपदेष्टा इन्द्र दोनों (पूर्णया नियुता) अपनी पूरी शक्ति और भक्ति से (अध्वरं अध्वरं) अविनाशी, नित्य, परस्पर हिंसा से रहित ज्ञान मय दान-आदान रूप यज्ञ को प्राप्त हों तब (घृतम्) ज्ञान और ब्रह्मवर्चस तेज प्राप्त होता (घृतम्) यजुर्वेद का ज्ञान श्रवण किया जाता है और (सूनृता वि ददृशे) वेद वाणी विविध प्रकार से विनियुक्त देखी जाती है।

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः। साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

भा०—(मध्वः आहुतिम् अश्वत्थम्) मधुर फल के देने वाले अश्वत्थ अर्थात् पीपल को जिस प्रकार फल खाने की इच्छा से पक्षि गण (उप तिष्ठन्ति) प्राप्त होते और उसका आश्रय लेते हैं। और जिस प्रकार (जायवः अश्वत्थम् उपतिष्ठन्ति) अर्थात् अपत्य की कामना करने वाले स्त्री पुरुष अश्वत्थ या पीपल को प्राप्त करते हैं, उसको औषधि रूप से सेवन करते हैं। उसी प्रकार हे (इन्द्र वायू) ऐश्वर्यवन् और बलवन् राजन् और सेनापते ! (जायवः) विजयशील विजेता वीर पुरुष (यम्) जिस (मध्वः) शत्रुदल को कंपा देने वाले सामर्थ्य को (आहुतिम्) धारण करने और प्रकट करने वाले और (मध्वः आहुतिम्) अधीन भृत्यों को अन्न, भृति देने वाले (अश्वत्थम्) आश्रय वृक्ष के समान दृढ़ एवं (अश्वथ्थं) अश्व सैन्य के बल पर संग्राम में स्थित होने वाले (यम्) जिस नायक और कोशवान् सुदृढ़ पुरुष का (उपतिष्ठन्त) आश्रय लेते हैं, हे (इन्द्र वायू) राजन् और सेनापते ! आप दोनों (अत्र अह) इस राष्ट्र में अवश्य ही (तत् वहेथे) उस वीर नायक को धारण करो। और (ते) वे (अस्मे) हमारे वीर पुरुष (जायवः सन्तु) संग्राम में विजयी होवें। राज्य में (गावः) गौएं (साकम्) एक साथ ही (सुवते) वियावें। अर्थात् दूध घी एक साथ बहुत अधिक मात्रा से हो। (यवः पच्यते) जौ आदि अन्न भी एक साथ ही पके। हे (वायो) विद्वन् ! (ते धेनवः) तेरी गौएं (न उप दस्यन्ति) क्षीण न हों और (धेनवः) दुधार गौएं (न अप दस्यन्ति) चोर आदि द्वारा चुराई जाकर नष्ट न हों। अथर्ववेद में शमीपर स्थित पीपल को पुत्रोत्पादक कहा है। "शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्रपुंसवनं कृतम् ॥" यहां मधु के साथ अश्वत्थ के सेवन से पुत्र प्राप्ति होती है ऐसी व्यंजना है। पीपल, वट, और ढाक तीनों की फुनगी का सेवन समान रूप से पुत्रजनक है।

इ॒मे ये ते॒ सु वा॑यो बा॒ह्वो॑जसो॒ऽन्तर्न॒दी ते॑ प॒तय॑न्त्यु॒क्षणो॒ महि॑-

वार्धन्त उक्षणः। धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् सेनापते ! (ये) जो (इमे) ये (बाह्वोजसः) बाहु के पराक्रम से युक्त होकर (नदी अन्तः) अति समृद्ध प्रजा के बीच (उक्षणः) सेचन करने वाले मेघ के समान दानशील और वृषभों के समान बलवान् हैं (ते) वे (सुपतयन्ति) उत्तम पति होने योग्य हैं। अर्थात् वे प्रजा को भार्या के समान पालन करने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार (उक्षणः) मेघ (अन्तः नदी, धन्वन् चित्) जलमयस्थान और रेगिस्तान दोनों पर स्थिर होकर वर्षा करते हैं उसी प्रकार (ये) जो वीर और वे ही (उक्षणः) बड़े मेघों और वृषभों के समान (महि) बड़े बलशाली होकर (वाधन्तः) बढ़ते हुए, (नदी अन्तः धन्वन् चित्) जल स्थल और अन्तरिक्ष में (अनाशवः) स्थिर होकर शत्रुओं पर शर वर्षण करने में समर्थ होते हैं वे ही (अनाशवः) कभी नाश न होने वाले या अति शीघ्रकारी, चंचल और अस्थिर वृत्ति न होकर, गम्भीर स्थिर, अविचल कूटस्थभाव से रह कर (अन्तः नदी धन्वन् चित्) समृद्धि के अवसर और संग्राम में धनुष के कार्य में (जीराः) विजय शील होते हैं। और (ते) वे (अगिरौकसः) वाणी में भी स्थान नहीं पाते अर्थात् उनका बल पराक्रम भी अवर्णनीय होता है। और वे (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्य की किरणों के समान (दुर्नियन्तवः) बड़ी कठिनता से वश में आने वाले होकर भी (हस्तयोः) हाथों के बल में (दुर्नियन्तवः) दुष्ट पुरुषों को भी नियन्त्रण करने में समर्थ हों। वे आप शत्रुओं के वश में न आकर दुष्टों के निग्रह करने में समर्थ हों। उक्त सूक्तों में वायु और इन्द्र का जो वर्णन किया गया है उसका स्वरूप यजुर्वेद के वचनों में स्पष्ट है। 'इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः

सहस्रभृष्टिः शततेजाः वायुरसि तिग्मतेजाः द्विषतो वधः। (अ० १।२४)
इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१३६]

॥ १३६ ॥ १—७ परुच्छेप ऋषिः ॥ १-५ मित्रावरुणौ । ६—७ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ स्वराडत्यष्टिः । निचृदष्टिः । ४ भुरिगष्टिः । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्। ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता। अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (निचिराभ्याम्) अति वृद्ध, चिरकाल से विद्यमान परमेश्वर और आचार्य, माता और पिता इनको (ज्येष्ठं) सबसे अधिक, उत्तम (नमः) आदर और अन्न (प्र सुभरत) अच्छी प्रकार प्रदान करो। और (मृडयद्भ्याम्) माता पिता के समान सुख देने वाले और (मृडयद्भ्याम्) समस्त प्रजा को सुखी करने वाले राजा और सेनाध्यक्ष दोनों को भी (स्वादिष्ठं) अति स्वादयुक्त (हव्यं) ग्रहण करने योग्य अन्न और धन और (मतिं) ज्ञान (प्र भरत) अच्छी प्रकार प्रदान करो और उनके लिये लाओ। (सम्राजा घृतासुती) अच्छी प्रकार दीप्ति वाले गृह्य और आहवनीय अग्नि जिस प्रकार घृत की आहुति ग्रहण करने वाले होते हैं और जिस प्रकार अग्नि और विद्युत् क्रम से घृत ग्रहण करने और जल देने वाले होते हैं। उसी प्रकार (ता) वे दोनों माता पिता, ईश्वर आचार्य, और सभा और सेना के अध्यक्ष दोनों युगल (सम्राजा) ज्ञान, बल, और मान से प्रकाशित होने वाले, सम्राट् होकर (घृतासुती) घृत के समान पुष्टिकारक सारवान् पदार्थ को प्राप्त करने वाले और 'घृत' अर्थात् तेजोमय ज्ञान के देने वाले, या घृत अर्थात्

जल द्वारा अभिषेक करने योग्य हैं। और वे दोनों (यज्ञे यज्ञे उपस्तुता) प्रत्येक यज्ञ में, प्रत्येक सत्संग के अवसर पर स्तुति, आदर करने योग्य हैं। इसी प्रकार प्रति संग्राम के अवसर पर राजा और सेनाध्यक्ष दोनों (उपस्तुता) सम्मति ग्रहण करने योग्य हैं। (अथ) और (एनोः) उन दोनों का (क्षत्रं) बल वीर्य (कुतः चन) किसी भी शत्रु द्वारा (आधृषे न) धर्षण करने या हारने वाला न हो। और (एनोः देवत्वं नु चित्) उनकी विजयकामना दानशीलता और तेजस्वीपन भी किसी प्रकार (कुतः च न आधृषे) किसी से धर्षण या तिरस्कार प्राप्त होने योग्य न हो। अथवा (कुतः चित् आधृषे न) किसी कारण से भी उनका बलवीर्य, और दानशीलता और तेजस्वीपन व्यर्थ गर्व करने या प्रजा के धर्षण करने या सताने के लिये न हो। प्रत्युत—'ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः। रघुवंश। अध्यात्म में प्राण और अपान उन दोनों को उत्तम स्वादयुक्त अन्न से पुष्ट करो। वे देह के सम्राट् हैं। जल के ग्रहण करने, तेज के धारण कराने वाले हैं। प्रत्येक देह या आत्मामें उनकी स्थिति है। उनके बल और तेज को कोई रोगादि धर्षण नहीं कर सके।

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः। द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च। अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः॥ २॥

भा०—(उरवे) महान् पराक्रमशाली पुरुष के लिये ही यह (वरीयसी) अति श्रेष्ठ, वरण करने योग्य बड़ी भारी (गातुः) भूमि (अदर्शि) देख पड़ती है। (भगस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से जिस प्रकार (चक्षुः सम् अयस्त) चक्षु युक्त होता है और शक्तिशाली हो जाता है और (ऋतस्य पन्थाः) सत्य ज्ञान का मार्ग भी (रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (सम् अयंस्त) प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार

(भगस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (रश्मिभिः) ज्ञानमय किरणों से (चक्षुः) भीतरी नेत्र युक्त होते और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान सुख और ब्रह्म का (पन्थाः) मार्ग भी (रश्मिभिः) उन ज्ञानमय किरणों से (सम् अयंस्त) उपलब्ध हो जाता है। उसी प्रकार (भगस्य) सबसे सेवन योग्य, सबको सुख देने वाले ऐश्वर्यवान् और स्वतः ऐश्वर्य के (रश्मिभिः) वशकारी या मनोमोहक साधनों से (चक्षुः) लोगों की आंख, और विवेक चक्षु भी (सम् अयंस्त) भली प्रकार बंध जाती है (ऋतस्य) धन और अन्न, जीविका का (पन्थाः) मार्ग (सम् अयंस्त) सुसंयत हो जाता है। अथवा (रश्मिभिः) बन्धनों से धन के कारण (ऋतस्य) सत्य विवेक का मार्ग (सम् अयंस्त) संयत या रुद्ध हो जाता है। (मित्रस्य) सबके स्नेही प्राण के समान जीवनप्रद (अर्यम्णः) शत्रुओं को नियम में बांधने वाले और सर्व श्रेष्ठ, न्यायकारी और (वरुणस्य च) सर्व श्रेष्ठ और दुःखों और दुष्टों के वारण करने वाले पुरुष का (सादनम्) आसन, पद (द्युक्षम्) अन्तरिक्ष के समान ऊंचा और सूर्य के समान तेजो युक्त हो। (अथा) और मित्र और वरुण, न्यायाधीश और राजा दोनों ही (बृहद् उक्थ्यम्) बड़े भारी, प्रशंसनीय (वयः) बल को (दधाते) धारण करें और (बृहत् उपस्तुत्यं वयः) बड़े स्तुति योग्य, दीर्घ आयु और ज्ञान को भी धारण करें। अथवा, उक्त मित्र, अर्यमा और वरुण तीनों (वयः) पक्षियों के समान स्वतन्त्रचारी होकर, (वयः) प्रज्ञा के सुख सौभाग्य की कामना करते हुए ज्ञानवान् होकर (बृहत्) बड़े भारी (उक्थ्यं) वेद ज्ञान और (बृहत् उपस्तुत्यं) बड़े भारी स्तुति योग्य यश को (दधाते) धारण करें।

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे। जागृवांसा दिवेदिवे। ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती। मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

भा०—(आदित्याः) अदिति अर्थात् आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार (धारयत्-क्षितिं) पृथ्वी को धारण करने वाली (स्ववंतीम्) प्रकाश और ताप से युक्त या सूर्य से युक्त (ज्योतिष्मतीम्) ज्योतिर्मय ग्रह नक्षत्रों से युक्त (अदितिं) अविनाशी अखण्ड आकाश को (दिवे दिवे) प्रतिदिन (जागृवांसा) सदा जागृत नियम पूर्वक (आ सचेत) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (मित्रः वरुणः) मित्र और वरुण सर्वस्नेही, सभाधीश, और दुष्टों का वारक सेनापति दोनों (दिवे दिवे) प्रतिदिन (जागृवांसा) सदा जागते हुए, नित्य सावधान रह कर, (स्ववंतीम्) सुखजनक ऐश्वर्यों से युक्त (ज्योतिष्मतीम्) ज्योतिर्युक्त रत्नों को धारण करने वाली (धारयत्-क्षितिं) निवास करने वाले प्राणियों और मनुष्यों को धारण करने वाली (अदितिं) पृथिवी को (आसचेते) अच्छी प्रकार से धारण करें। वे दोनों (दानुनस्पती) दान देने योग्य ऐश्वर्य और दानशील जनों और शत्रु के बल के जोड़ने वाले वीर पुरुषों के पालक (आदित्या) अदिति, अर्थात् अखण्ड पृथ्वीराज्य के स्वामी, वे सूर्य के समान तेजस्वी, वा पृथ्वी माता के दो पुत्रों के समान (ज्योतिष्मत् क्षत्रम्) न्यायप्रकाश, ऐश्वर्य और तेज से युक्त बलवीर्य, और राज्य को (आशाते) प्राप्त हों। (तयोः) उनके अधीन (अर्यमा) दुष्ट पुरुषों को नियमन करने में समर्थ न्यायाधीश (यातयज्जनः) दुष्टों को पीड़ा देने वाले पुरुषों का स्वामी होकर (यातयज्जनः) समस्त राष्ट्रवासी जनों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला हो।

अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः। तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः। तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (अवपानेषु) प्रजाओं के रक्षा कार्यों में

(आभगः) सब प्रकार से सेवा करने और सुख देने वाला और (देवेषु) दानशील विद्वान् पुरुषों में (आभगः) सब ऐश्वर्यों से युक्त होकर (देवः) दानशील, विजयेच्छु (सोमः) सबका प्रेरक राजा (मित्राय) स्नेहवान् मित्रों और (वरुणाय) शत्रुवारक और सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के लिये (शं-तमः) अत्यन्त शान्तिकारक (भूतु) हो। (देवासः) विद्वान् और वीर पुरुष (विश्वे) सब (सजोषसः) समान प्रीति से युक्त होकर (अद्य) आज, सदा (जुषेरत) उसको प्रेम करें। अथवा उक्त गुणों वाला (सोमः) सबको सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला न्याय सब को सुखकारक हो और विद्वान् उसका सेवन करें। और हम (यत् ईमहे) जिस न्याय और श्रेष्ठ कार्य को (ईमहे) चाहते हों (राजाना) तेजस्वी प्रमुख पुरुष (तथा करथः) वैसा करें। और (यत्) जो हम चाहते हों वह वे दोनों (ऋतावाना) सत्य न्यायशील प्रमुख पुरुष करें। अथवा (यत् तौ करथः तथा ईमहे) वे जो कुछ करें हम वह चाहें।

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परिपातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्। उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५॥

भा०—(यह) जो (जनः) पुरुष (मित्राय) स्नेहवान् मित्र और (वरुणाय) दुःखों के वारक, श्रेष्ठ पुरुष के हित के लिये (अविधत्) उनकी सेवा करता और नाना कर्मों का अनुष्ठान करे वे दोनों (अनर्वाणं) द्वेषादि दोषों से रहित, शत्रु से हीन, अजातशत्रु (दाश्वांसं) दानशील (तं मर्त्तं) उस पुरुष की (अंहसः) पाप से (परिपातः) रक्षा करें। और (व्रतम् अनु) सत्याचार के अनुसार (ऋजूयन्तम्) अति विनयशील होकर रहने वाले (तं) उसको (अर्यमा) न्यायशील पुरुष भी (अंहसः) पापाचार और वधादि क्लेश से (अभिरक्षतु) सब प्रकार

से बचावे। (यः) जो (एनोः) उक्त दोनों मित्र और वरुण, स्नेही और श्रेष्ठ पुरुषों के (व्रतं) कर्त्तव्य को (उक्थैः) स्तुत्य वचनों द्वारा (परिभूषति) सर्वत्र वर्णन करता है और (व्रतं) अनुष्ठान करने योग्य धर्माचरण को (स्तोमैः) स्तुति योग्य उपायों से (परिभूषति) भली प्रकार आचरण करता है उसको भी न्यायशील पुरुष पाप मार्ग और वधादि दुःखों से सुरक्षित करे।

नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते रोद॑सीभ्यां मि॒त्राय॑ वोचं॒ वरु॑णाय मी॒ळ्हुषे॑ सुमृ॒ळी॒काय॑ मी॒ळ्हुषे॑। इन्द्र॑म॒ग्निमुप॑ स्तुहि द्यु॒क्षम॑र्य॒मणं॒ भग॑म्। ज्योग्जीव॑न्तः प्र॒जया॑ सचेमहि॒ सोम॑स्यो॒ती स॑चेमहि ॥ ६ ॥

भा०—मैं (बृहते) बड़े भारी (दिवे) सूर्य के समान तेजस्वी, व्यवहार कुशल, रक्षक विजिगीषु, और सर्व प्रिय, (रोदसीभ्याम्) आकाश और पृथ्वी के समान पालक माता पिता, गुरु और आचार्य, (मित्राय) स्नेहवान् मित्र और (वरुणाय) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष, और (मीढुषे) सुखों के वर्षण करने वाले (मीढुषे) मेघ के समान (सुमृडीकाय) सबको उत्तम सुख देने वाले उपकारी जनों का (नमः) आदर सत्कार के वचन (वोचं) कहूं ! हे मनुष्य ! तू (इन्द्रम्) ऐस्वर्यवान्, (अग्निम्) ज्ञानवान्, अग्रणी, तेजस्वी, (द्युक्षम्) दीप्ति युक्त, (अर्यमणं) सूर्य के समान शत्रुओं के वशकारी, (भगं) ऐश्वर्यवान् सेवनीय पुरुष और परम पुरुष की (उप स्तुहि) स्तुति कर। हम (ज्योक् जीवन्तः) चिरकालतक दीर्घजीवन भोगते हुए (प्रजया) उत्तम सन्तान सहित (सचेमहि) रहें। और (सोमस्य) ऐश्वर्य और उत्तम प्रेरक गुरु आदि विद्वान् अध्यक्ष के (ऊती) रक्षा में (सचेमहि) सदा विद्यमान रहें।

ऊ॒ती दे॒वानां॑ व॒यमिन्द्र॑वन्तो मंसी॒महि॒ स्वय॑शसो म॒रुद्भिः॑। अ॒ग्निर्मि॒त्रो वरु॑णः॒ शर्म॑ यंस॒न् तद॑श्याम म॒घवा॑नो व॒यं च॑॥७।२६।१॥

भा०—(वयम्) हम लोग (देवानां ऊती) विद्वान्, स्नेही, और दानशील पुरुषों की रक्षा में और उत्तम गुणों के धारण से (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान्, दुष्टनाशक क्षत्रियों से युक्त होकर (मरुद्भिः) विद्वान्, प्राणों के समान प्रिय, एवं व्यवहारकुशल वैश्यवर्गों सहित (स्वयशसः मंसीमहि) अपने यश और ऐश्वर्य से समृद्ध हुआ जानें। (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक और विद्वान् ज्ञानी, (मित्रः) प्राण के समान जीवनप्रद, स्नेहवान् (वरुणः) जल के समान श्रेष्ठ, स्वच्छ दुःखवारक पुरुष हमें (शर्म) सुख शान्ति (यंसन्) प्रदान करें। और (वयं च) हम भी (मघवानः) ऐश्वर्यवान् होकर (तद् अश्याम) उस सुख सम्पदा का भोग करें। इति षड्विंशो वर्गः।

इति द्वितीयाष्टके प्रथमोध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

[१३७]

परुच्छेप ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१ निचृच्छकरी। २ विराट्शकरी। ३ भुरिगतिशकरी॥ तृचं सूक्तम्॥

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे। आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः। इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १॥

भा०—हे मित्र और हे वरुण! शरीर में प्राण और उदान के समान वर्त्तमान राष्ट्र में प्रजा के साथ स्नेह करने और उनके दुःखों को निवारण करने हारे दो प्रकार के अधिकारी पुरुषो! आप दोनों (आ यातम्) आइये। (इमे) ये (सोमासः) सोम आदि औषधियों और उत्तम २

अन्नरस (अद्रिभिः) मेघों द्वारा सिक्त और पाषाणों से कुटे पिसे (गो-श्रीताः) गौ के दुग्ध में परिपाक किये हुए होकर जिस प्रकार (मत्सराः) हर्ष और तृप्ति को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (इमे) ये (सोमासः) सौम्य गुण वाले नवयुवक (अद्रिभिः) आदरयोग्य गुरुजनों से (गो-श्रीताः) वेद वाणी में परिपक्व, सुअभ्यस्त होकर (मत्सराः) आनन्द और हर्ष संचार करने हारे हैं। इसी प्रकार (इमे सोमासः) ये अभिषेक करने योग्य नवाधिकारी पुरुष (गो-श्रीताः) अपने ऊपर के अधिकारी की वाणी में स्थित, अथवा पृथ्वी या राष्ट्रभूमि के ऊपर स्थापित हों (मत्सराः) अति हर्षप्रद और गर्व से शत्रु पर प्रयाण करने में समर्थ हैं। हम (सुषुम) जिस प्रकार ओषधिरसों का सेवन करते हैं उसी प्रकार इनका अभिषेक करते हैं। आप दोनों (दिविस्पृशा राजाना) आकाशस्थ देदीप्यमान सूर्य चन्द्र के समान उत्तम ज्ञान, और शुद्ध व्यवहार में और उच्च पद में स्थित होकर प्रजा का अनुरंजन करने वाले और (अस्मत्रा) हम प्रजाजनों का पालन करने वाले होकर (नः) हमें (उपगन्तम्) हमें प्राप्त होवें। (इमे सोमासः) उत्तम सौम्य जन (गवाशिरः) इन्द्रियों से भोगने योग्य उत्तम पदार्थों के समान (गवाशिरः) आप दोनों की 'गो' अर्थात् वाणी में आश्रित होकर (वां) आप दोनों के ही अधीन रहें। (गवाशिरः शुक्राः) गोरस में मिश्रित औषधि अन्नादि पदार्थ जिस प्रकार रंग में श्वेत एवं शरीर में शुक्रवर्धक होते हैं। इसी प्रकार ये भी (गवाशिरः) पृथ्वी या राज्य के कार्य में स्थित या आज्ञावाणी में रह कर, या वेदवाणी में परिपक्व होकर (शुक्राः) शुद्ध व्यवहार वाले, शीघ्र कार्य करने वाले और सदाचारी हों।

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः। उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः। सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेही और सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ और दुःखवारक रात्रि के समान शान्तिदायक, माता पिता एवं अधिकारी पुरुषो ! (इमे) ये (इन्दवः) आर्द्र, जलमिश्रित (सोमासः) औषधिरस जिस प्रकार (सुतासः) कूट पीस कर निकाले हुए (दध्याशिरः) दधि में मिश्रित कर लिये जाते हैं इसी प्रकार (इमे) ये (सोमासः) सौम्य शिष्यगण भी (इन्दवः) ऐश्वर्य युक्त, एवं ज्ञान जल से और भक्तिभाव से आर्द्रचित्त (सुतासः) पुत्रों के समान पालित, शिक्षित और विद्यादि में स्नातक होकर (दधि-आशिरः) गृहस्थ धारण, प्रजापालन, पोषण के कार्य में आश्रय करने योग्य, समर्थ हो गये हैं। (उत) और जिस प्रकार औषधि और अन्न आदि के उत्तम रस (सूर्यस्थ रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से परिपक्व होकर (उषसः बुधि) प्रभात वेला के उदय होने पर (मित्राय, वरुणाय ऋताय च पीतये) स्नेहवान् श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुष के पान के योग्य होते हैं उसी प्रकार ये युवक विद्वान्गण (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी आचार्य के रश्मियों, अर्थात् नियामक प्रतिबन्ध, व्रत, नियमों से नियन्त्रित और शिक्षित होकर (उषसः बुधि) प्रभात वेला के समान जीवन के पूर्व भाग में ज्ञान प्राप्त हो जाने पर (वाम्) तुम माता पिताओं के (पीतये) पालन करने के लिये हों। जिस प्रकार (सुतः) कूट पीस कर छाना हुआ ओषधि रस, (मित्राय) स्नेहवान् बन्धुजन और मित्र के समान स्थित माता पिता के और (वरुणाय) श्रेष्ठ गुरुजन और पापादि मार्ग और कष्टों से निवारक उपकारी पुरुषों के और (ऋताय) ज्ञानमय परमेश्वर, और यज्ञ के (पीतये) पालन करने के लिये अथवा (ऋताय पीतये) धनैश्वर्य के उपभोग और रक्षा करने के कार्य में (चारुः) उत्तम यत्नवान् और आचरणशील हो। 'पीतये' पालनायेति सायणः। 'मित्राय'–प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्। मनुः।

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः। अस्मत्रा गन्तमुप नोर्वाञ्चा सोमपीतये। अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

भा०—(वासरीं धेनुं न) दिन भर चर कर पुनः घर पर आई गाय को जिस प्रकार गृहस्थ लोग (अद्रिभिः दुहन्ति) उसके अंगों को विक्षत न करने वाले हाथों से दोहते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष (वासरीम्) रसयुक्त हरी त्वचा से आच्छादित (अंशुम्) सोमलता को (अद्रिभिः) पाषाणों से (दुहन्ति) दोहते हैं, सिलबट्टों से उसका रस निकालते हैं। और उसी प्रकार विद्वान् पुरुष (वासरीम्) सबके आच्छादन करने वाली, सबको अपने भीतर बसाने वाली (अंशुम्) भोग्या वसुंधरा को (अद्रिभिः) पर्वतों द्वारा, वा शस्त्रधारी सैन्यों द्वारा अथवा न दीर्ण होने अखण्डित शासनों और शासकों द्वारा (दुहन्ति) दोहते हैं, उसका सारभूत ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार वे (वासरीं अंशुम्) दिन के अंशु अर्थात् व्यापक प्रकाश वाले सूर्य की दीप्ति को (अद्रिभिः) मेघों द्वारा दोहते हैं। उसका जल प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (सोमं अद्रिभिः दुहन्ति) जिस प्रकार लोग (अद्रिभिः) प्रस्तरों से सोमरस को भी दोहते हैं उसका रस प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार वे (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र बलों से ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को दोहते हैं, (अद्रिभिः) अखण्ड व्रत नियमों से (सोमम्) आज्ञापक गुरु का ज्ञानरस प्राप्त करते हैं। हे (मित्रा वरुणा) स्नेहवान्, माता पिता, और उनके समान कष्टवारक गुरुजनो ! आप लोग (अस्मत्रा) हमारे बीच और हमारी रक्षा करते हुए (नः सोमपीतये) हमारे ऐश्वर्य के पालन और उपभोग करने लिये (आ गन्तम्) आइये। (सुतः सोमः आपीतये) जिस प्रकार सिद्ध किया सोमरस पान करने के लिये होता है उसी प्रकार (सुतः) विद्या आदि में निष्णात यह पुत्र और शिष्य और पदाभिषिक्त युवक

(सोमः) ज्ञानवान्, और सोम्य स्वभाव होकर (वां) आप दोनों के (पीतये) पालन के लिये (नृभिः) नायक और उत्तम पुरुषों द्वारा (सुतः) योग्य पद पर अभिषिक्त किया जाय। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१३८]

परुच्छेप ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः। २ विराडत्यष्टिः ४ भुरिगष्टिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते। अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्। विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

भा०—(तुविजातस्य) बहुत प्रजाओं और लोकों में प्रसिद्ध सर्वोपकारी (पूषणः) सर्वपोषक, प्रजापालक प्रभु के (महित्वम्) महान् सामर्थ्य और महिमा का (प्रप्र शस्यते) अच्छी प्रकार वर्णन किया जाता है। (अस्य तवसः) बलशाली इसकी (स्तोत्रं न तन्दते) स्तुति कीर्त्ति को कोई नाश नहीं कर पाता, और (अस्य न तन्दते) उसकी सत्ता को भी कोई मिटा नहीं सकता। (अहम्) मैं (अन्ति ऊतिम्) अतिसमीप स्थित रक्षक और (मयोभुवम्) सुख शान्ति के एकमात्र उत्पादक, जननी के समान सुखकारी प्रभु को (सुम्नयन्) सुख की कामना करता हुआ (अर्चामि) सदा स्तुति करूं। (यः) जो (देवः) दानशील, प्रकाशस्वरूप, सबको कामना करने योग्य प्रभु (विश्वस्य मनः) समस्त संसार के मनों को अपने भीतर (आयुयुवे) मिलाये रखता है, सबके चित्त अपने में आकर्षण किये रहता है वह ही (मखः) पूजनीय है। वह ही (मखः) सर्वोपास्य, ऐश्वर्यवान्, सुखमय होकर (आयुयुवे) सबको अपने में जोड़े रखता है। (२) इसी प्रकार विद्वान्, नायक, राजा सभापति को भी होना चाहिये। वह बहुतों में प्रसिद्ध बलवान् विद्या-

वान् हो, उसका यश नाश न हो। सबका निरन्तर पालक, सुखकारी हो, सबका मन अपनी ओर खेचने वाला हो।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः। हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः। अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥२॥

भा०—(यामनि अजिरं न) वेग से गमन करने के निमित्त जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व को लिया जाता है उसी प्रकार हे (पूषन्) सर्वपोषक राजन्! (यामनि) युद्ध के प्रयाण के लिये (अजिरं) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और उस पर बाण आदि अस्त्रों के फेंकने में समर्थ (त्वा) तुझको (स्तोमेभिः) स्तुति करने योग्य उत्तम बलवान् सेना समूहों सहित (कृण्वे) अधिकारवान् करता हूं। (यथा) जिससे तू (मृधः) संग्रामकारियों को (ऋणवः) प्राप्त करे। और संग्रामों को जासके। (उष्ट्रः न) ऊंट जिस प्रकार बड़े २ रेगिस्तानों को पार करा देता है उसी प्रकार तू भी (उष्ट्रः) शत्रुओं को दग्ध करने और राष्ट्र में बसने वाली प्रजा को पालन करने में समर्थ होकर (मृधः) हिंसाकारी शत्रुओं और सेनाओं और संग्रामों को (पीपरः) पार कर। (यत्) जिस (त्वा) तुझको मैं (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (मयोभुवं) सुख शान्तिजनक (देवम्) दानशील, महादानी और विजिगीषु जान कर (सख्याय) मित्रता के लिये (हुवे) स्वीकार करता हूं वह तू (अस्माकम्) हमारे (आङ्गूषान्) विद्वान् पुरुषों को (द्युम्निनः) तेजस्वी, धनसम्पन्न (कृधि) बना। और (वाजेषु) संग्रामों को विजय करने और अन्न और ज्ञानों को उपलब्ध करने में भी हमारे (आङ्गूषान्) विद्वानों को (द्युम्निनः) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी बना।

यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तो वसा बुभु-

त्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे। तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे। अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥३॥

भा०—हे (पूषन्) सबके पोषक स्वामिन् ! (यस्य ते सख्ये) जिस आपके मित्र भाव से (सन्तः) रहते हुए (विपन्यवः) विद्वान् आप के उपासक जन (क्रत्वा) अपने ज्ञान सामर्थ्य (चित्) तथा (अवसा) रक्षा सामर्थ्य से सदा पालित होते और (इति) इसी प्रकार इस संसार को (क्रत्वा) ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से (बुभुज्रिरे) भोग करते हैं। (त्वा) उस तुझको प्राप्त होकर हम लोग भी (तां) उस (नवीयसीं) नयी से नयी (रायः नियुतं) ऐश्वर्य की, लक्षों की सम्पदा को (ईमहे) तुझसे मांगते हैं, तुझसे प्राप्त किया चाहते हैं। हे (उरुशंस) अति स्तुति योग्य ! तू (अहेडमानः) हमारा अनादर और हम पर क्रोध न करता हुआ (सरी) स्वयं उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी (भव) हो और (वाजे वाजे) प्रत्येक संग्राम में (सरी) शत्रु पर प्रयाण करने वाला, युद्धयायी (भव) हो।

अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो हेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व। ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः। नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥४॥२॥

भा०—हे (अजाश्व) बकरियों और अश्वों के स्वामिन् ! पशुओं से समृद्ध ! अथवा हे (अजाश्व) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले अश्व सैन्य के स्वामिन् ! हे (अजाश्व) वेगवान् अश्वों वाले ! तू (अस्याः) इस पृथ्वी के (सातये) राज्य प्राप्त करने के लिये (नः) हमारा (अहेडमानः) तिरस्कार न करता हुआ (श्रवस्यताम्) धन, अन्न, यश और ज्ञान की इच्छा करने वालों को (ररिवान्) इष्ट फल दान करता हुआ (नः) हमारे (उ सु उप भुवः) सदा समीप रहे। हे (ओ दस्म) दर्शनीय ! हे शत्रुओं के नाशकारिन् ! हम लोग (त्वा) तुझ को ही

(साधुभिः स्तोमेभिः) उत्तम २ स्तुति वचनों और कार्यसाधन में समर्थ वीर संघों सहित (त्वा ववृतीमहि) तुझे प्राप्त करें, तेरे समीप रहें। हे (पूषन्) सर्वपोषक! (त्वां न हि अतिमन्ये) मैं तेरा कभी तिरस्कार न करूं, तेरी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करूं। हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान ! तेजस्विन् ! हे दयालो ! मैं (ते सख्यम्) तेरे मित्रभाव को कभी (न अपन्हुवे) लुप्त न होने दूं। और तेरे (सख्यं न अपन्हुवे) मित्र भाव को कभी न छुपाऊं, प्रत्युत उसको सर्वत्र प्रकट करूं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१३९]

परुच्छेप ऋषिः ॥ देवता—१ विश्वे देवाः । २ मित्रावरुणौ । ३—५ अश्विनौ । ६ इन्द्रः । ७ अग्निः । ८ मरुतः । ९ इन्द्राग्नी । १० बृहस्पतिः । ११ विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, १० निचृदष्टिः । २, ३ विराडष्टिः । ६ अष्टिः । ८ स्वराडत्यष्टिः । ४, ९ भुरिगत्यष्टिः । ७ अत्यष्टिः । ५ निचृद्बृहती । ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तु॒ श्रौष॑ट् पु॒रो अ॒ग्निं धि॒या द॑ध॒ आ नु तच्छर्धो॑ दि॒व्यं वृ॑णीमह इन्द्रवा॒यू वृ॑णीमहे। यद्ध॑ क्रा॒णा वि॒वस्व॑ति॒ नाभा॑ स॒न्दायि॒ नव्य॑सी। अध॒ प्र सू न॒ उप॑ यन्तु धी॒तयो॑ दे॒वाँ अच्छा॒ न धी॒तयः॑ ॥ १ ॥

भा०—(श्रौषट्) वेद का श्रवण (अस्तु) हो। मैं (पुरः) अपने आगे (धिया) कर्म और प्रज्ञा वा धारण क्रिया के सहित (अग्निम्) ज्ञानवान् ज्ञान मार्ग में आगे ले चलने वाले आचार्य को (दधे) उपदेष्टा, आदर्श रूप में स्थापित करूं। (नु) तदन्तर (तत् शर्धः) उसके (दिव्यं) दिव्य, अद्भुत ज्ञान और बल को मैं (आ दधे) धारण करूं। हम सब शिष्यगण भी उस (अग्निम्) अग्नि, ज्ञानमय, तेजस्वी पुरुष को (वृणीमहे) आचार्यरूप से वरण करें और (इन्द्रवायू) हम लोग इन्द्र ऐश्वर्य-

वान् , अज्ञाननाशक वायु के समान प्राणप्रद, ज्ञानजीवन के दाता दोनों को भी (वृणीमहे) स्वीकार करें । (यत्) जिस प्रकार (नाभा) नाभि या केन्द्र में अरे लगे रहते हैं उसी प्रकार (नाभा) सबको अपने भीतर बांध लेने वाले और (विवस्वति) सूर्य में जिस प्रकार किरणें रहती है उसी प्रकार अपने में विशेष रूप से वसु, ब्रह्मचारी, अन्तेवासियों को अपने अधीन बसाने वाले गुरु में (क्राणा) समस्त कार्यों का प्रतिपादन करने वाली (नव्यसी) नयी से नयी, अतिस्तुत्य वाणी (संदायि) अच्छी प्रकार बंधती है। अथवा उसी के आश्रय रह कर वह वेदवाणी (संदायि) अच्छी प्रकार प्रदान की जाती है। (अध) और (धीतयः न) अंगुलियां जिस प्रकार पकड़ने योग्य पदार्थ को पकड़ लेती हैं और (धीतयः न) जिस प्रकार स्तुतियां स्तुत्य उपास्य देव को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (नः देवान्) हम विद्याभिलाषी शिष्य जनों को (धीतयः) उत्तम वेद वाणियें, प्रज्ञाएं और कर्म भी (प्र सु उप यन्त) उत्तम रूप से, सुख देती हुई प्राप्त हों ।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतदध्या ददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना । युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् । धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥२॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! स्नेहवान् और पाप दुःखनिवारक जनो ! जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों (ऋतात् अधि अनृतं आ ददाथे) जलमय पदार्थ से जल से भिन्न रूप वाष्प को भी ग्रहण कर लेते हैं और जिस प्रकार सूर्य चन्द्र (ऋतात् अनृतम् अधि आ ददाथे) तेजोमय प्रकाश से भी अतिरिक्त अप्रकाशमय छाया को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! देह में प्राण और उदान के समान राष्ट्र में जीवन देने और रोगों के समान

दुष्टों और संकटों के वारण करने हारे उत्तम पुरुषो ! आप लोग भी (ऋतात् अधि) सत्य से (अनृतम्) असत्य को (स्वेन) अपने (मन्युना) ज्ञान बल से पृथक् करके (अधि आददाथे) सर्वोपरि न्याय वितरण किया करो। और हम भी (युवोः सद्मसु) आप दोनों के न्याय भवनों में (दक्षस्य) ज्ञानवान् आत्मा के (स्वेन मन्युना) अपने मननशीलचित्त से और (धीभिः) उत्तम प्रज्ञाओं से (चन) और (मनसा) मन से और (स्वेभिः अक्षभिः) अपनी इन्द्रियों या नियुक्त पुरुषों से और (सोमस्य) राष्ट्रपति के (स्वेभिः अक्षभिः) अपने अध्यक्षों द्वारा भी (हिरण्यम्) प्रजा के हितकारी और रमणीय सुखकारी, व्यवहार को ही (अधि अपश्याम) सदा अच्छी प्रकार देखा करें और सत्य से असत्य का विवेक किया करें। सब व्यवहारों पर विचार करने के लिये प्रजापक्ष के निज कुछ व्यक्ति हों और कुछ राजपक्ष के अपने अध्यक्ष या नियत पुरुष। उनकी समितियां सभा भवनों में सब कार्यों पर विचार करें। वे सभापति और सेनापति के कार्यों को देख कर सत्य से भिन्न असत्य का विवेक किया करें।

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना श्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः। युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा। प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये॥३॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र का भोग करने वाले, विद्याओं में व्यापक उत्तम स्त्री पुरुषो ! (युवां) तुम दोनों (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (देवयन्तः) चाहते हुए (अभि आयवः) सन्मुख आने वाले (आयवः) विद्वान् पुरुष (श्लोकं) वेदवाणी को (आश्रावयन्तः) श्रवण कराते वा उपदेश करते हुए (इव) मानो (युवां) तुम दोनों को (हव्य-अभि आयवः) ग्रहण करने योग्य ज्ञान प्राप्त कराते हैं और (पवयः) वे पवित्र करने हारे मानो (वां) तुम दोनों के (हिरण्यये रथे) सुन्दर

सुवर्ण लोहादि के बने रथके समान या (हिरण्यये रथे) हित और रमणीय देह पर मानो (प्रुषायन्ते) मधुर या जल मधु वर्षण करते हैं। हे (दस्रा) दर्शनीय एवं दुःखों के नाश करने वालो! हे (विश्ववेदसा) समस्त प्रकार के ऐश्वर्य और ज्ञानों के स्वामियो! (विश्वाः श्रियः) सब प्रकार की लक्ष्मियें और (पृक्षः च) अन्न आदि योग्य सम्पत्ति और सबके साथ स्नेह (युवोः अधि) तुम दोनों का ही अधिक, सर्वोपरि रहे।

अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्ट्यध्वस्मानो दिविष्टिषु। अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये। पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः॥ ४॥

भा०—हे (दस्रा) दुःखों और दुष्टों का नाश करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (उ) ही (नाकम्) दुख रहित सुखमय गृहस्थ या ऐश्वर्य को (वि ऋण्वथः) विविध उपायों से प्राप्त करो। (दिविष्टिषु) आकाश मार्ग में विहार करने के अवसरों में जिस प्रकार (अध्वस्मानः) कभी नीचे न गिरने हारे, सावधानी से उड़ने हारे उड़ा के (रथयुजः) आकाश को जाने वाले (वां) जल और अग्नि या रस और विद्युत् के आशुगामी यन्त्रों की (युञ्जते) योजना करते हैं और जिस प्रकार (दिविष्टिपु) विजय कामना से प्रयाण करने के कार्यों में (अध्वस्मानः रथयुजः) नाश न होने देने वाले सारथी लोग (अश्विनौ युञ्जते) वेगवान् अश्वों को रथ में जोड़ते हैं उसी प्रकार (अध्वस्मानः) राष्ट्र और धर्म को नाश न होने देने वाले, स्वयं कर्त्तव्य मार्ग से पतित न होने वाले (रथयुजः) देह और आत्मा को समाहित चित्त से योग द्वारा प्राप्त करने हारे विद्वान् पुरुष (दिविष्टिषु) कामना योग्य व्यवहारों के प्राप्तिमार्गों में (युञ्जते) नियुक्त करें। और आप दोनों (पथा इव यन्तौ) मार्ग से जाने वाले स्त्री पुरुष जिस प्रकार (रजः अनु शासता) धूलियुक्त मार्ग पर गमन करते हुए सुखप्रद गृह को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार आप दोनों भी

(पथा यन्तौ) सन्मार्ग से जाते हुए और (रजः) लोक समूह का (अनु-शासता) धर्मानुकूल शासन करते हुए (अंजसा) शीघ्र ही (रजः) ऐश्वर्य और राजस भोगमय ऐश्वर्य का (शासता) शासन करते हुए (अंजसा) शीघ्र ही (नाकं ऋण्वथः) सुखमय पद, गृहस्थ और समृद्ध राज्य को प्राप्त करो । और (वां) तुम दोनों के (वन्धुरे) अति सुप्रबद्ध, दृढ़ (हिरण्यये) लोह सुवर्ण आदि से मढ़े (रथे) रथ पर हम (अधि-स्थाम) भी विराजें । अर्थात् वीर सेनाध्यक्षों के रथ बल पर हम राष्ट्र पर शासनाधिकारी होकर रहें ।

शची॑भिर्नः शचीवसू दिवा॒ नक्तं॑ दशस्यतम् ।
मा वां॑ रा॒तिरुप॑ दस॒त्कदा॑ च॒नास्मद्रा॒तिः कदा॑ च॒न ॥५॥३॥

भा०—हे (शचीवसू) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म को अपने भीतर और अपने शिष्यों के भीतर बसा देने हारे एवं ज्ञान और कर्म के धनी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग (दिवा नक्तं) दिन और रात (नः) हमें (शचीभिः) उत्तम कर्मों और बुद्धियों से, युक्त होकर (दशस्यतम्) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य का दान करो । (वां रातिः) आप दोनों का दिया हुआ उत्तम दान (कदाचन मा उपदसत्) कभी नाश को प्राप्त न हो । और (कदाचन) कभी (अस्मद्) हमारी तरफ से भी (रातिः) देने योग्य दातव्य पदार्थ भी (मा उपदसत्) नाश को प्राप्त न हो । अथवा वह दान दिया हुआ पदार्थ (मा वां उपदसत् मा अस्मत् उपदसत्) न तुमको नाश करे, न हमें नाश करे । इति तृतीयो वर्गः ॥

वृष॑न्निन्द्र वृषपा॒णास॒ इन्द॑व इ॒मे सु॒ता अद्रि॑षुतास उ॒द्भिद॒स्तुभ्यं॑ सु॒तास॑ उ॒द्भिदः॑ । ते त्वा॑ मन्दन्तु दा॒वने॑ म॒हे चि॒त्राय॒ राध॑से । गी॒र्भिर्गि॑र्वाह॒ः स्तव॑मान॒ आ ग॑हि सुमृ॒ळीको॑ न॒ आ ग॑हि ॥६॥

भा०—हे (वृषन्) मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का वर्षण करने हारे, हे वीर्यवान् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अद्रिसुतासः उद्भिदः)

पर्वतों पर उत्पन्न हुए वृक्ष लतादि जिस प्रकार (वृष-पानासः) वरसते मेघ से जलपान करने हारे होकर (इन्दवः) आर्द्र रसवान् होते हैं और वे (उद्भिदः) भूमि भेद कर उत्पन्न होते और नाना फलों को उत्पन्न करने वाले होते हैं, वे सब को (मन्दन्ति) आनन्दित करते हैं। और (अद्रिसुतासः उद्भिदः सुताः इन्दवः) जिस प्रकार पर्वत प्रदेशों पर उत्पन्न हुए और शिलाखण्डों से कूटे पीसे गये रस वाले सोमादि औषधि रस (वृषपानासः) वीर्योत्पादक पान योग्य रस होकर (उद्भिदः) नाना हर्षोत्पादक होकर मनुष्यों को सुखी करते हैं, उसी प्रकार (अद्रिसुतासः) न नाश होने वाले, अखण्ड बलों द्वारा सम्पन्न और पर्वत के समान अचल नायकों से संञ्चालित (इमे) ये (वृषपानासः) वीर्यवर्धक, रस पान करने वाले और बलवान् नायक की रक्षा करने वाले, (इन्दवः) दयार्द्र एवं ऐश्वर्य तेज से युक्त चन्द्र के समान आल्हादजनक (सुताः) राजा के पुत्रों के समान पालित (सुताः) और नाना पदों पर अभिषिक्त और (उद्भिदः) शत्रुओं को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले और स्वयं भी (उद्भिदः) वृक्षों के समान प्रजाजनों को आश्रय देने वाले हों (ते) वे (दावने) दान देने योग्य, एवं सुख-प्रद (महे) बड़े भारी (चित्राय) अद्भुत और संचय करने योग्य उत्तम (राधसे) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित और उत्साहित करें तुझे सदा भरपूर बनाये रखें, तेरे कोष खजाने को सदा पूर्ण करें। हे (गिर्वाहः) आज्ञा देने योग्य श्रेष्ठ वाणियों को अपने हाथ में रखने हारे ! राजन् विद्वन् ! तू (गीर्भिः) वाणियों से (स्तवमानः) सब को उपदेश करता हुआ या स्वयं स्तुतियों का पात्र होता हुआ (सुमृडीकः) उत्तम सुखप्रद होता हुआ (आगहि) आ और (नः आगहि) हमें प्राप्त हो।

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो

राजभ्यो यज्ञियेभ्यः । यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन। वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! अग्रणी नायक ! (त्वम्) तू (ईडितः) स्तुति योग्य और प्रार्थित होकर (नः सु शृणुहि) अच्छी प्रकार सुना कर । और तू (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) यज्ञ अर्थात् उपास्य परमेश्वर के उपासना में लगे उत्तम ज्ञान और कर्म में निष्ठ विद्वान् दानशील, और ज्ञान के इच्छुक पुरुषों को और (यज्ञियेभ्यः राजभ्यः) बड़े २ यज्ञों के करने में समर्थ, प्रजाओं के मनोरंजक और तेजस्वी राजाओं के हित के लिये भी (अवसि) उपदेश किया कर (ह) और (यत्) जिस (धेनुं) गोरस वाली गौ के समान ज्ञान आनन्दरस देनेवाली भूमि और तेजस्वी वाणी को (देवाः) ज्ञान प्रदान करने वाले दानशील गुरुजन (अंगिरोभ्यः) ज्ञानयुक्त, तपस्वी पुरुषों को (अदत्तन) दान करें। और (त्यां ताम्) उसको (अर्यमा) समस्त भूमिपतियों या जमीदारों का नियन्त्रण करने वाला न्यायशील राजा (सचा) सबके साथ ही (कर्त्तरि) कर्त्ता अर्थात् स्वामी के लिये ही (वि दुह्रे) नाना प्रकार से दोहन करे । उससे नाना प्रकार के उत्तम फल, अन्नरस और शिल्प व्यापार आदि उत्पन्न करे । (एषः) वह अग्रणी राजा नायक (मे) मुझ राष्ट्रजन के हित के लिये (तां) उस उत्तम भूमि, और वेदवाणी को (सचा) संघ बनाकर बलशाली होकर (वेद) प्राप्त करे और जाने ।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः । यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् । अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥८॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले वीर पुरुषो ! और देशदेशान्तर में जाने वाले व्यापारियो ! और ज्ञानेच्छु

आलस्य रहित विद्यवान् पुरुषो ! (तानि) वे नाना प्रकार के (वः) आप लोगों के (सना) सदा से चले आये (पौंस्या) पौरुष के कर्म और बल, सामर्थ्य और पुरुषोचित कर्त्तव्य (अस्मत्) हम से (मा अभि भूवन्) कभी दूर न हों (उत) और (वः सना द्युम्नानि) तुम लोगों के सदा काल से चले आये ऐश्वर्य और यश (मा जारिषुः) नष्ट न हों (उत) और (वः पुरा मा जारिषुः) तुम लोगों के नगर और देहादि भी नष्ट न हों और (यत्) जो (वः) आप लोगों का (युगे युगे) युग युग में समय २ पर (अमर्त्यं) कभी नाश न होने वाला असाधारण, (नव्यं) स्तुति योग्य, उत्तम, नया से नया (चित्रं) संग्रह करने योग्य, (घोषात्) वेदवाणी से उत्पन्न होने वाला ज्ञान और वाणी के उपदेश या ग्राम नगरादि से उत्पन्न धन है वह भी (अस्मासु दिधृत) हम में स्थापित करो और (यत् च) जो आप का दुस्तर, अपार वीर्य, बल है वह और (यत् च) जो भी (दुस्तरम्) दुखों और दुःखदायी पुरुषों के नाशकारी सामर्थ्य है (तत्) उसको भी (अस्मासु दिधृत) हम में धारण कराओ ।

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः । तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ६ ॥

भा०—(दध्यङ्) व्रत धारण करनेवाले को प्राप्त होने वाला (पूर्वः) पूर्ण विद्वान् (अङ्गिराः) तेजस्वी, ज्ञानी, (प्रियमेधः) यज्ञों का प्रिय, सबको तृप्त सन्तुष्ट करने वाली, सुख प्रद पवित्र प्रज्ञा विमल ज्ञानवती बुद्धि को धारण करने वाला, पण्डित, (कण्वः) मेधावी, विद्वान् (अत्रिः) तीनों तापों से रहित और (मनुः) मनन शील, ये सभी नाना प्रकार के विद्वान् पुरुष (मे) मेरे (जनुषं) मातृजन्म और विद्या जन्म को (विदुः) जानें । (ते) वेही (पूर्वं) मुझ शिष्य नवानुभवीके

पूर्व विद्यमान अनुभव वृद्ध जन (मे) मुझे भी (मनुम्) मनन शील मनुष्य रूप में (विदुः) प्राप्त करें। (तेषां) उन पूर्वोक्त विद्वानों का (देवेषु) विद्वानों और दिव्य पदार्थों और अपने देहगत इन्द्रियों पर (आयतिः) वश हो। और (तेषु) उनमें ही (अस्माकं) हमारे भी (नाभयः) सम्बन्ध हों। और (तेषां महि पदेन) उनके बड़े भारी ज्ञान और प्राप्त करने योग्य प्रतिष्ठा पद से और (गिरा) वेद वाणी के उपदेश से (आ नमे) सब प्रकार विनीत और शिक्षित होऊं। मैं (गिरा) वाणी के उपदेश से ही (इन्द्राग्नी) परमेश्वर और ज्ञानी आचार्य दोनों के आगे (आ नमे) सदा विनय शील होकर रहूं।

होता॑ यक्षद्व॒निनो॑ वन्त॒ वार्यं॒ बृह॒स्पति॑र्यजति॒ वेन॑ उ॒क्षभिः॑ पुरु॒वारे॑भिरु॒क्षभिः॑। ज॒गृ॒भ्मा दू॒रआ॑दिशं॒ श्लोक॒मद्रे॒रध॒ त्मना॑। अधा॑रयद्र॒रिन्दा॑नि सु॒क्रतुः॑ पु॒रू सद्मा॑नि सु॒क्रतुः॑ ॥ १० ॥

भा०—(होता वार्यं यक्षत् वनिनः वार्यं वन्त) जिस प्रकार रसों के ग्रहण करनेवाला सूर्य जल को प्रदान करता और मेघ जल को ग्रहण कर लेते हैं और जलप्रद मेघ जल को प्रदान करता है और (वनिनः) वनयुक्त भूप्रदेश उस जल को ग्रहण कर लेते हैं। और (होता) दाता जिस प्रकार धन को प्रदान करता और (वनिनः) धनाभिलाषी उस श्रेष्ठ धन को ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार (होता) सब ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अधिकारों को धारण करने और योग्य पुरुषों को देने हारा पुरुष (वार्यम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान ऐश्वर्य और पदाधिकार प्रदान करे। (वनिनः) वन अर्थात् उत्तम विद्यावान् और उत्तम अभिलाषी पुरुष उस (वार्यं) वरण करने योग्य ऐश्वर्य आदि पद को (वन्त) ग्रहण करें। (वेनः) कान्तिमान् तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (पुरुवारेभिः) प्रजा जनों से वरण करने योग्य (उक्षभिः) मेघों से (वार्यं यजति) जल को सर्वत्र प्रदान करता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेद वाणी

और बृहती भूमि अर्थात् महान् राष्ट्र का पालक (वेनः) तेजस्वी और मेधावी राजा भी (पुरुवारेभिः) बहुत से प्रजाजनों से वरण किये जाने वाले, सह सम्मति से चुने गये, (उक्षभिः) कार्य भार को अपने कन्धों पर उठा कर राज्य कार्यों के चलाने वाले, धुरन्धर पुरुषों और (उक्षभिः) मेघों के समान सुखों के वर्षक पुरुषों द्वारा (वार्यं) श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करे। इसी प्रकार (वेनः) विद्वान् आचार्य (पुरुवारेभिः) पुरु अर्थात इन्द्रियों को विषयों से वारण करके रखने वाले, जितेन्द्रिय और (उक्षभिः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट और (उक्षभिः) वीर्य सेचन में समर्थ वा ज्ञान वर्षण-कारी नरपुंगवों से (वार्यं) वीर्यादि निषेक तथा प्रजाओं में श्रेष्ठ ज्ञान का (यजति) प्रदान करावे। (अद्रेः दूर आदिशं श्लोकम्) मेघ के दूर से ही सुनने योग्य शब्द को जिस प्रकार हम लोग (जगृभ्म) दूर से ही सुन लेते हैं उसी प्रकार (अद्रेः) अखण्ड, तपस्वी, गुरु, और निर्भय, बलवान् अचल राजा के (दूरे आदिशम्) दूर से ही सुनाई देने वाले (श्लोकम्) वाणी, आज्ञा और घोषणा को (जगृभ्म) ग्रहण करें। वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष (सुक्रतुः) उत्तम कर्मकुशल और उत्तम प्रज्ञा-वान् और उत्तम कर्मकर्त्ता पुरुषों का स्वामी होकर (त्मना) अपने आत्म सामर्थ्य से ही (अररिन्दानि) जलों को मेघ के समान (अररिन्दानि) 'अररि' न देने वाले अर्थात् अराति, शत्रुओं को दमन करने और नाश करने वाले साधनों और गमानागमन के साधक रथों को और सैन्यों को (अधारयत्) धारण करे। और वही (सुक्रतुः) उत्तम प्रजा-वान् पुरुष (पुरू सद्मानि) बहुत से आश्रय गृहों, भवनों और पदाधि-कारों को भी (त्मना अधारयत्) अपने सामार्थ्य से धारण करे।

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥११॥४॥२०

भा०—हे (देवासः) विद्वान् जनो ! (दिवि) सूर्य के समान

ज्ञान प्रकाश के निमित्त (ये एकादश स्थ) आप लोग जो ग्यारह हो, (पृथिव्यां अधि एकादश स्थ) पृथिवी पर अध्यक्ष रूप से शासन करने के निमित्त भी ग्यारह होकर रहो और (महिना) बड़े भारी सामर्थ्य से (अप्सुक्षितः) जलों में निवास करने हारे होकर सामुद्रिक व्यापार और सेना विभाग के लिये भी (एकदश स्थ) ११ होकर रहते हो (ते) वे आप लोग (इमं यज्ञम्) इस सुसंगत राष्ट्र और सर्वैश्वर्यप्रद प्रजापति राजा की (जुषध्वम्) प्रेम से सेवा करो, उस का आश्रय लो। अध्यात्म में—दश प्राण और जीवात्मा, दश इन्द्रियां और मन, दश दिशा और सूर्य, या प्रजापति सब ११, ११ हैं। वे भी यज्ञ, प्रजापति परमेश्वर और सब के संगति कर्त्ता आत्मा और सूर्य को आश्रय करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥ इति विंशोऽनुवाकः ॥

[१४०]

दीर्घतमा औचथ्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ ५, ८ जगती। २, ७, ११ विराड्जगती। ३, ४, ९ निचृज्जगती च। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। १०, १२ निचृत् त्रिष्टुप् पङ्क्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१॥

भा०—(वेदिषदे) जिस प्रकार वेदि में विराजने वाले (प्रियधामाय) सुन्दर प्रकाशवान्, (सुद्युते) सुखप्रद उत्तम कान्ति युक्त (अग्नये) अग्नि को प्रदीप्त करने और बढ़ाने के लिये (धासिम् इव) उसके पोषक काष्ठ और चरु प्रदान किया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् प्रजाजन! तू (वेदिषदे) सब पदार्थों का लाभ कराने वाली भूमिपर राजा रूप से विराजने वाले, (प्रियधामाय) सबको प्रिय लगने वाले, तेज, नाम, कीर्त्ति और जन्म एवं, स्थान और धारण सामर्थ्य वाले, (सुद्युते) उत्तम

कान्तिमान्, तेजस्वी, (अग्नये) अग्रणी, नायक पुरुष के पालन पोषण और वृद्धि के लिये (धासिम्) प्राणों के धारक अन्नादि भोग्य पदार्थ के समान राष्ट्र और प्रजाजन को धारण करने वाले साधन को (प्र भर) अच्छी प्रकार उपस्थित करो। (तमोहनं) सूर्य के समान अन्धकार और शोक दूर करने वाले, (शुक्रवर्णं) शुद्ध, उच्च वर्ण के (ज्योतीरथं) सुवर्ण चान्दी आदि से बने रथ वाले, (शुचिं) शुद्ध आचार चरित्र के पुरुष को (वस्त्रेण इव) वस्त्र के समान (मन्मना) मान और आदर से भी (वासय) आच्छादित करो।

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमीं पुनः।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः॥२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (द्विजन्मा) दो अरणियों से उत्पन्न होने के कारण 'द्विजन्मा' है। वह (त्रिवृद् अन्नम् ऋज्यते) तीनों रूपों से वर्त्तमान खाने योग्य अन्न को प्राप्त कराता है। अग्नि रूप से पकान्न को देता है, विद्युत् रूप से जल को और सूर्य रूप से फलादि को प्रदान करता है। (ईम्) वह इस (जग्धम्) खाने योग्य अन्न को ही (संवत्सरे) एक वर्ष में (पुनः) फिर २ बढ़ा लेता है। अर्थात् सूर्य के द्वारा ही पुनः एक वर्ष में पृथ्वी पर प्रचुर अन्न उत्पन्न होता है। वह अन्न (अन्यस्य) अन्य अर्थात् सूर्य से भिन्न, प्राणियों के देह में स्थित जाठर अग्नि के (आसा) मुख से और (अन्येन) दूसरे, भिन्न रूप के भौतिक काष्ठाग्नि की (जिह्वया) ज्वाला से भी (जग्धम्) खाया जाता है। इस कारण वह (वृषा) जलों का वर्षण करने वाला सूर्य ही (वारणः) समस्त प्राणियों के संताप का वारण करने वाला होकर (वनिनः) जलयुक्त मेघों को (नि मृष्ट) उत्पन्न करता है। अथवा वही अग्नि (अन्येन) अन्य वनाग्नि रूप से (वनिनः नि मृष्ट) वनों से युक्त प्रदेशों को भस्म कर के साफ़ कर देता है। उसी प्रकार यह अग्रणी नायक पुरुष भी (द्वि-

जन्मा) माता पिता और गुरु शिक्षा दोनों से उत्पन्न, द्विज होकर (त्रिवृत्) तीन ऋणों सहित त्रिसूत्र से युक्त होकर रहता है। वह (संवत्सरे) वर्ष में (जग्धम्) खाने योग्य (ईम् अन्नम्) इस अन्न को (पुनः) वार २ (अभि मृज्यते) प्राप्त करे और (वावृधे) बढ़ावे। अथवा—वह (अन्नम् [इव]) अन्न के समान (अभिमृज्यते) सब प्रकार से शुद्ध किया जावे और (जग्धम् ईम्) खाये हुए अन्न के समान (पुनः) फिर (वावृधे) अपने राष्ट्र के बल की वृद्धि करे। वह (अन्यस्य आसा) दूसरे के मुख से, और (अन्यस्य जिह्वया च) दूसरे की जिह्वा अर्थात् वाणी से ही (जेन्यः) युद्ध आदि विजयी होकर (वृषा) बलवान् राज्य प्रबन्धक होकर फिर (अन्येन) दूसरे जनों से ही (वारणः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ होकर (वनिनः) भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के स्वामियों को भी (नि मृष्ट) साफ़ करदे, उनको परास्त करे।

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम्।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुप्यं वर्धनं पितुः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (मातरा) माता और पिता (उभा) दोनों (शिशुम् अभि) बच्चे को लक्ष्य करके (कृष्णप्रुतौ) उसके प्रति सदा आकर्षण या मन खिंचाव या प्रेम से पूर्ण रहते हैं और वे (अस्य सक्षितौ) उसके सदा साथ रहा करते हैं। और वे दोनों (पितुः वर्धनम्) पिता के यश, हर्ष, कुल गोत्र को बढ़ाने वाले (प्राचाजिह्वं) आगे जीभ निकालने वाले (ध्वसयन्तं) गिरते पड़ते, (तृषुच्युतम्) शीघ्र ही फिसल जाने वाले, (साच्यं) सुन्दर, सदा सहाय योग्य (कुपयं) रक्षण करने योग्य बालक को (आ) लक्ष्य करके (अभि तरेते) खूब प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार (शिशुम् अभि) अन्धकार को नित्य निरन्तर नाश करने वाले (प्राचाजिह्वं) प्राची दिशा में प्रीति प्रकट करने वाले, (ध्वसयन्तम्) अन्धकार को नाश करते हुए, (तृषुच्युतम्) अति शीघ्रता से गति

करने वाले, (साच्यं) सुन्दर, सर्वाश्रय योग्य (कुपयम्) सब के पालक (पितुः वधर्नम्) पालक पर्जन्य या मेघ को बढ़ानेवाले सूर्य को (आ अभि) लक्ष्य करके (अस्य मातरा) उसके माता पिता के समान आकाश और पृथ्वी दोनों (सक्षिता) एक साथ रहने वाले (कृष्णप्रुतौ) उसके आकर्षण बल से व्याप्त होकर (वेविजे) मानो भय से कांपते हैं। उसके द्वारा संचालित होते हैं। और (उभा) दोनों (अभि तरेते) चलते हैं। (२) उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजा वर्ग भी (संक्षिता) एकत्र ही निवास करते हुए, (कृष्णप्रुतौ) शत्रु दल को गिरा देने और प्रजा के आकर्षण करने के गुणों से व्याप्त होकर (वेविजे) भय से कांपते और (उभा) दोनों (मातरा शिशुम् अभितरेते) बालक को मां बाप के समान राजा को ही प्राप्त होते और उसकी वृद्धि करते हैं। और पिता के बढ़ाने वाले बालक के समान ही उसको भी (प्राचाजिह्वं) मुख्य उत्तम वाणी से युक्त (ध्वसयन्तं) शत्रु को नाश करने वाला (तृपुच्युतम्) शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन पद से उखाड़ देने वाला (साच्यं) सखा या संघ शक्ति का आश्रय (कुपयं) राष्ट्ररक्षक (आ) जानकर आश्रय लेते हैं।

मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ४

भा०—जिस प्रकार (मानवस्यते) समस्त मनुष्यों को अपनी प्रजा बनाने की इच्छा करने वाले (मनवे) शत्रुओं को स्तम्भन और राष्ट्र को व्यवस्थित करने में समर्थ प्रधान पुरुष के लिये ऐसे (आशवः) शीघ्र गति से जाने वाले घोड़े (उपयुज्यन्ते) रथ में लगाये जाते हैं जो (मुमुक्ष्वः) एक दम भाग छूटने को तत्पर होते, (रघुद्रुवः) अति वेग से दौड़ते, (कृष्णसीतासः) रथ के खींच कर हल के समान भूमि पर रेखा डालने वाले हों, (असचनाः) एक एक से बढ़कर (अजिरासः) निरन्तर एक चाल से चलने वाले, (रघुष्यदः) मार्गों पर वेग से दौड़ते, और

(वातजूताः) वायु के समान वेग से जाते हों। उसी प्रकार (मानवस्यते) समस्त मननशील पुरुषों को अपनाने वाले (मनवे) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये भी (मुमुक्षवः) अपने को संसार बंधन से मुक्त करने की इच्छा करने वाले ऐसे पुरुष ही (उप युज्यन्ते) उसके लिये उपयुक्त होते हैं, वे ही उस परमेश्वर की उपासना में लगा करते हैं जो (रघुद्रुवः) आस्वाद करने योग्य नाना अन्नों के समान भोग्य कर्म विपाकों में गति करते हैं, पर्य्याप्त भोग भोगकर उन से खिन्न हो चुकते हैं या उनमें भटक चुकते हैं। जो (कृष्ण-सीतासः) भूमि में हल चलाने वाले कृषकों के समान कर्षण अर्थात् तपस्या द्वारा अपने कर्मबंधनों को अन्त कर देते हैं और जो (असमनाः) अन्यों से असाधारण चित्त और ज्ञान वाले होते हैं, जो (अजिरासः) निरन्तर प्रयत्नशील और बाधक कारणों और विक्षेपक मलों को उखाड़ फेंकने में यत्नशील, (जुवः) स्वयं तीव्र वेग वाले हों, (रघुस्यदः) सन्मार्गों में वेग से जाने वाले, (वातजूताः) प्राणों को प्रेरित करने वाले अथवा ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा प्रेरित होते हैं। और (आशवः) उत्तम शत्रु के गुणों में ही व्याप्त या रचे मिचे हों, उसी के चिन्तन में संलग्न रहें वे (उप युज्यन्ते) उपासना द्वारा समाहित चित्त होकर योगाभ्यास करने में तत्पर होते हैं।

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥५॥

भा०—(आत्) उसके पश्चात् जो मुमुक्षु जन (अभ्वं कृष्णम्) 'असत्' काले, अशुद्ध, पापमय मलिन कर्माशय या मिथ्या ज्ञान का (ध्वसयन्तः) विनाश करते और (महि) बड़े भारी (अभ्वं) अव्यक्त (वर्पः) वरणे योग्य आत्मस्वरूप को भी (करिक्रतः) साक्षात् कर लेते हैं वे (अस्य) इस परमेश्वर को (वृथा) अनायास ही (ईरते) प्राप्त

हो जाते हैं। क्योंकि (यत्) जो पुरुष (सीम्) सब प्रकार से, सर्वतो भावेन, (महीम् वनिम्) उस महान् सर्वरक्षक को (प्र अभिमर्मृशत्) प्राप्त हो जाता है, उस तक पहुंच जाता है वह (अभि श्वसन्) आश्वासन या हृदय की शान्ति को प्राप्त हुआ और (स्तनयन्) मेघ के समान उत्साह से गर्जता हुआ और (नानदत्) सिंह के समान नाद करता हुआ, अति उत्साहवान् , निर्भय, और अन्तर्ब्रह्म नाद में लीन होकर (प्र एति) परम पद को प्राप्त होता है। (२) सूर्य पक्ष में—अग्नि या सूर्य के (ते) वे प्रकाश (कृष्णं अभ्वं ध्वसयन्तः) काले असत् अन्धकार का नाश करते हुए (महि वर्पः करिक्रतः) बड़े सुन्दर प्रकाश को प्रकट करते हैं। वे अनायस फैल जाते हैं। और वह (श्वसन्) वायु रूप से मानो श्वास लेता हुआ, मेघ रूप से (स्तनयन्) गर्जता हुआ (अवनिम्) भूमि को प्राप्त होता है। (३) वीर पुरुष जो शत्रु का नाश करते हुए राजा के आकर्षक, बड़े भारी रूप को बना लेते हैं वे अनायस उच्च पद तक पहुंचते हैं। और वह राजा गर्जता हुआ उत्साह पूर्वक पृथ्वी के पालक पद को प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः॥६॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (भूषन् न) प्रकट होकर ही (बभ्रूषु अधि) समस्त प्राणियों को भरण पोषण करने वाली औषधियों में (नम्नते) अधिक तेज से उनके भीतर प्रविष्ट होता और (वृषा इव) फिर मेघ के समान वर्षण शील होकर (पत्नीः) जगत्पालक भूमियों और औषधियों को (रोरुवत् अभि एति) गर्जता हुआ प्राप्त होता है और (ओजायमानः) खूब तेजस्वी होकर (तन्वः) विस्तृत पृथिवियों और दिशाओं को प्रकाशित करता है (भीमः) भयंकर पशु के समान (दुर्गृभिः) असह्य होकर (शृङ्गा दविधाव) किरण रूप सींगो को खूब तीव्रता से फेंकता है और जिस प्रकार अग्नि भी

सूर्य के समान ही (भूषन्) व्यापक होकर (वभ्रूपु अधि नम्नते) ओष-धियों और काष्ठों में प्रविष्ट होता, (पत्नीः रोरुवत् अभिएति) अपनी पालक समिधाओं में शब्द सहित आता । तीव्र होकर (तन्वः) अपनी ज्वालाओं को प्रकट करता, (दुर्गृभिः) तीव्र ताप के कारण स्पर्श करने के अयोग्य होकर (शृङ्गा) ज्वालाओं को चलाता है उसी प्रकार (यः) जो प्रधान अग्रणी नायक पुरुष (भूषन्) उत्पन्न होकर (वभ्रूपु भूषन् न) गर्भ धारण करने और प्रजाओं का पालन पोषण करने वाली या वभ्रु वर्ण की और सुन्दरी स्त्रियों के बीच वर के समान (वभ्रूपु) राजा और राष्ट्र का भरण पोषण कपने वाली समृद्ध प्रजाओं और पक्क अन्नादि से सम्पन्न भूमियों के बीच में (भूषन्) अपने को सिंहासन पर अधिकृत करता हुआ और सामर्थ्यवान् होता हुआ (अधि नम्नते) अध्यक्ष रूप से प्राप्त होता है और (वृषा पत्नीः) यज्ञ द्वारा बनी धर्म दाराओं में मन्त्रोच्चारण करते हुए पति के समान जो (पत्नीः) राष्ट्र का पालन करने वाली सेनाओं और धर्म दाराओं को भी (रोरुवत्) गर्जना करता हुआ (अभिएति) प्राप्त होता, उनके सन्मुख उपस्थित होता है, और जो (ओजा-यमानः) बलशाली, पराक्रमी होकर (तन्वः च) विस्तृत भूमियों, प्रजाओं सेनाओं को भी (शुम्भते) सुशोभित करता है वह (शृङ्गा दुर्गृभिः भीमः न) भयंकर बड़े दुर्दान्त सांढ़ के समान स्वयं भी (भीमः) अति भयंकर (दुर्गृभिः) शत्रुओं के वश में न आकर (शृङ्गा) शत्रुओं का नाश करने वाले शस्त्रास्त्रों और सैन्यों का (दविधाव) बराबर सञ्चालन करे । अध्यात्म में—'बभ्रू और पत्नीः' भिन्न २ प्रकार की नाड़ियां हैं । वह उनमें व्यापता और जीवन की पालक शक्तियों को प्राप्त करता है । पेशियों को सुशोभित करता है, स्वयं अग्राह्य होकर भी (शृङ्गा) इन्द्रियों या प्राणों का संचालन करता है । 'पत्नीः' अत्र दारावत् छान्दसं बहुत्वं वेदितव्यम् ।

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आशये।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥७॥

भा०—(सः) वह अग्रणी नायक (संस्तिरः) अपने राज्य को भली प्रकार विस्तृत करने वाला और (विस्तिरः) विविध उपायों से विस्तृत करता हुआ (सं गृभायति) भूमि को अपनी पत्नी के समान ग्रहण करता है। और (जानन् जानतीः आशये) ज्ञानवान् पुरुष जिस प्रकार विदुषी ज्ञानवती दाराओं को प्राप्त कर सन्तानोत्पत्ति करता है उसी प्रकार राजा भी (जानन् एव) ज्ञानवान् होकर ही (नित्यः) निरन्तर (जानतीः) विदुषी प्रजाओं से (आशये) सदा सत्संग करे। वे इस प्रकार ज्ञानसमृद्ध विदुषी प्रजाएं या विद्वान् जन (अन्यत्) असाधारण (देव्यं वर्पः) देव, सूर्य के समान तेजस्वी राजा के तेजस्वी रूप को स्वतः (अपि यन्ति) प्राप्त होते और (पुनः वर्धन्ते) वार २ बढ़ते हैं। और (पित्रोः) पालन करने वाले माता पिता के (देव्यं) अभिलाषा योग्य (अन्यत् वर्पः) और भिन्न रूप के पुत्र को जिस प्रकार विदुषी स्त्रियां प्राप्त करती और पुनः (वर्धन्ते) सन्तान की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार वे भी (पित्रोः) पालन करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्ग के हित के लिये (सचा) एक साथ ही (अन्यद् वर्पः) विशेष स्वरूप को (कृण्वते) प्रकट करते हैं।

तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद्सुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८॥

भा०—(अग्रुवः) अग्रगण्य उत्तम (केशिनीः) सुकेशी, स्त्रियां जिस प्रकार पति को प्राप्त करते ही और (मम्रुषीः) उसके विरह में मरती हुई भी (पुनः आयवे ऊर्ध्वाः प्र तस्थुः) पुनः आते हुए पति के लिये वार २ उठकर खड़ी हो जाती है। अथवा (प्रायवे) दूर देश में जाते, या मृत्यु को प्राप्त होते पति के लिए (मम्रुषीः तस्थुः) मरने के लिये तैयार हो

जाती हैं। (नानदत्) विद्या को प्राप्त करने हारा पुरुष जिस प्रकार (तासां जरां प्रमुञ्चन् एति) उन स्त्रियों के वार्धक्य या जीर्ण दशा या जीवन नाश को दूर करता हुआ उनको प्राप्त होता है और (परं जीवं जनयन्) उनके जीवन को पुनः देता है। उनको पुनः हर्षित, प्रफुल्लित कर देता है उसी प्रकार (अग्रुवः) आगे बढ़ने वाली, श्रेष्ठ प्रजाएं (केशिनीः) क्लेशों में फंसी हुई (तं) उस उत्तम अग्रगण्य नायक को (हि) निश्चय ही (सं रेभिरे) भली प्रकार प्राप्त करती हैं। और वे (म्रमुषीः) मरती हुई भी (आयवे) आते हुए राजा के आदर और वृद्धि के लिये (पुनः) वार २ (ऊर्ध्वाः प्र तस्थुः) उठ खड़ी होती उसका आदर करती हैं। (नानदत् जीवम् जनयन्) गर्जता हुआ मेघ जिस प्रकार जल को उत्पन्न करता है, जीवन-प्राण प्रदान करता है उसी प्रकार नायक भी (नानदत्) सिंहनाद करता हुआ या प्रजा को शिक्षा देता हुआ (तासां जराम्) उन प्रजाओं की जरा, अर्थात् प्राण, आयु के नाश या हानि को (प्र मुञ्चन्) दूर करता हुआ (एति) उनको प्राप्त हो। उनके लिये (परं असुं) उत्तम प्राण और (अस्तृतम् जीवम्) न नाश हुए जीवन और जीवित प्राणियों से (जनयन्) समृद्ध करता हुआ उनको प्राप्त हो।

अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (मातुः परि) माता पृथिवी के ऊपर उगे (अधिवासं रिहन्) आच्छादक घास, लता, वृक्ष आदि को (रिहन्) चरता हुआ (ज्रयः) अति बलवान् वेगवान् और नाशकारी होकर (तुविग्रेभिः सत्वभिः वियाति) घोर शब्द करने वाले प्राणियों के साथ ही विविध दिशाओं में फैल जाता है। वह अग्नि सदा (रेरिहत्) घास आदि को दग्ध करता, (पद्वते) पैरों वाले जीव गण को (वयः दधत्) वेग प्रदान करता और (अनु) उसके पीछे २

(श्येनी वर्त्तनीः) काले रंग का मार्ग (सचते) प्राप्त होता है और जिस प्रकार बालक (मातुः परि अधीवासं रिहन् अह) माता की गोद में उसके वस्त्र को अपने मुख में चाबता हुआ (अयः तुविग्रेभिः सत्वभिः वियाति) अति वेगवान् होकर अति शब्द युक्त सात्विक विविध चेष्टाओं से गमन करता है और वह (रेरिहत) इसी प्रकार सब पदार्थों का आस्वाद लेता हुआ ही (पद्वते वयः दधतः) चरण से चलने वाले बड़े बालक की अवस्था को धारण कर लेता और बड़ा हो जाता है (अनु) उसके पीछे२ उसके अनुकूल ही (श्येनी) बुद्धिमती माता (वर्त्तनिः) उसके पीछे रहती हुई (सचते) उसके साथ रहा करती है उसी प्रकार विद्वान् अग्रणी नायक, राजा भी (मातुः परि) उसका मान आदर करने वाली पृथिवी और उस पर निवास करने वाली प्रजा के ऊपर (अधिवासं) अधिष्ठाता या अध्यक्ष रूप से रहने और उसको वस्त्र के समान पालन पोषण करने के योग्य ऐश्वर्य को (रिहन्) अन्नादि के समान उपभोग, या आस्वादन करता हुआ (अयः) शत्रु पर आक्रमण करने में वेगवान् और विजयशील होकर (तुविग्रेभिः) अति उत्तम बहुत से शब्द करने और बहुत से उपदेश करने वाले (सत्वभिः) वीर्यवान् बलवान् वीर और विद्वान् पुरुषों सहित (वि याति) विविध देशों पर प्रयाण करे, उनका विजय करे। वह (सदा) सब कालों में (रेरिहत्) पृथ्वी के ऐश्वर्य का भोग करता हुआ ही (पद्वते) ज्ञानवान् पुरुष के उपकार के लिये ही अपना (वयः) पूर्ण जीवन (दधत्) धारण करे। (अह) और (अनु) उसके अनुकूल ही (श्येनी) वेग से जाने वाली सेना और (वर्त्तनीः) सदा उसके अनुकूल चलने वाली, अथवा वार्त्तावृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाली वैश्य प्रजा (सचते) अनुकूल संघ बना कर रहे।

अस्माक॑मग्ने म॒घव॑त्सु दीदि॒ह्यध॒ श्वसी॑वान्वृष॒भो दमू॑नाः ।
अ॒वास्या॒ शिशु॑मतीरदीदे॒र्वर्मे॑व यु॒त्सु प॑रि॒जर्भु॑राणः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (मघवत्सु = मखवत्सु) यज्ञशील पुरुषों के बीच प्रज्वलित होता (श्वसीमान्) और वायु के साथ युक्त होकर प्रकाशित होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! ज्ञानवन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (मघवत्सु) ऐश्वर्यवान्, सम्पन्न और (मा-अघवत्सु) निष्पाप पुरुषों के बीच में प्रकाशित हो, यशस्वी बन, (अध) और जिस प्रकार (वृषभः) वर्षणशील मेघस्थ (दमूनाः) विद्युत् रूप अग्नि (श्वसीवान्) समस्त प्राणियों को प्राण देने वाले पवन से युक्त होकर और (शिशुमतीः अवास्य) पृथ्वी पर पड़ने वाले जल से भरी धाराओं को गिराकर स्वयं चमकता है और जिस प्रकार (वृषभः) बड़ा सांड (श्वसीवान्) महाप्राण से युक्त होकर (वृषभः) वीर्य सेचन में समर्थ होकर (अवास्य शिशुमतीः) गौओं पर पड़ कर उनको प्रजावती करता है और उनके बीच सुशोभित होता है। उसी प्रकार तू भी (दमूनाः) स्वयं दान्तचित्त, जितेन्द्रिय होकर प्रजा के और शत्रुओं के दमन करने में भी दत्त चित्त होकर शत्रु सेनाओं को (अवास्य) अपने नीचे करके (शिशुमतीः) बालकों से युक्त उत्तम प्रजाओं, या अश्वों से युक्त सेनाओं को (अदीदेः) प्रकाशित कर। और (युत्सु) संग्रामों में (परिजर्भुराणः) शत्रुओं को पुनः २ दूर करता हुआ (वर्म इव) कवच के समान (शिशुमतीः) प्रजावती स्त्रियों के समान प्रजाओं की रक्षा कर। शिशुरित्यश्वनाम। यजु० अ० २२। १९॥ इति षष्ठो वर्गः॥

इदम॑ग्ने॒ सुधि॑तं॒ दुर्धि॑ता॒दधि॑ प्रि॒यादु॑ चि॒न्मन्म॑नः॒ प्रेयो॑ अस्तु ते।
यत्ते॑ शु॒क्रं त॒न्वो॒३॒॑ रोच॑ते॒ शुचि॒ तेना॒स्मभ्यं॑ वनसे॒ रत्न॒मा त्वम् ११

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! पालक पते ! (दुर्धितात्) दुःख से प्राप्त किये और कष्ट से सुरक्षित (प्रियात्) प्रिय धन आदि के (अधि) भी ऊपर, उससे भी बढ़कर (इदम्) यह (सुधितम्) सुख से धारण करने योग्य (उ चित्) ही उत्तम (मन्मनः)

मन को अति आकर्षक मेरा चित्त ही (ते प्रियः अस्तु) तुझे प्रिय हो। और (यत्) जो (ते तन्वः) तेरे विस्तृत देह के समान राष्ट्र का (शुक्रं) शुद्ध (शुचि) पवित्र तेज, बल (रोचते) चमकता है (तेन) उसके बल से (त्वम्) तू (अस्मभ्यम्) हमें (रत्नम्) रमण करने योग्य ऐश्वर्य (आ वनसे) प्राप्त करा। [२] जाया-पति पक्ष में—(रत्नम्) शुद्ध वीर्य द्वारा पुत्र रत्न प्राप्त करा।

रथा॑य॒ नाव॑मु॒त नो॑ गृ॒हाय॒ नित्या॑रित्रां प॒द्वतीं॑ रास्यग्ने।
अ॒स्माकं॑ वी॒राँ उ॒त नो॑ म॒घोनो॒ जनाँ॑श्च॒ या पा॒रया॒च्छर्म॒ या च॑ १२

भा०—जिस प्रकार विद्वान् पुरुष (रथाय उत गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं नावम्) रमण करने और वेग से जाने के लिये और गृह तक पहुंचने के लिये स्थिर चप्पुओं वाली और दृढ़ पैर या लंगर वाली नाव को तैयार करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू (रथाय) रमण करने के लिये, वेग से जाने के लिये (उत्) और (नः गृहाय) हमारे राष्ट्र को अपने वश में कर लेने, हमारे गृह बसा कर रहने के लिये, तू हमें (नित्यारित्राम्) नित्य शत्रुओं से बचाने वाली (पद्वतीम्) चरणों वाली (नावम्) शत्रुओं को दूर हटा देने वाली सेना को (रासि) प्रदान कर। (या च) जो (नः) हमारे (वीरान्) वीर पुरुषों को और (जनान्) राष्ट्रवासी (अस्माकं) हमारे (मघोनः च) धनसम्पन्न जनों को भी (पारयात्) संकटों से पार करे, पालन करे, ऐश्वर्य से पूर्ण करे और (शर्म च) सुखदायी हो। अध्यात्म—पद्वती नौ यह देह है। आत्मा के रमण करने और बन्धन में रखने दोनों प्रयोजनों के लिये है। वह हमें (वीरान्) प्राणों को और (जनान्) आत्मा को भी भवसागर से पार उतारती और सुख प्राप्त कराती है।

अ॒भी नो॑ अग्न उ॒क्थमिज्जु॑गुर्या॒ द्यावा॒क्षामा॒ सिन्ध॑वश्च॒ स्वगू॑र्ताः।
गव्यं॒ यव्यं॒ यन्तो॑ दी॒र्घाहेषं॒ वर॑मरु॒ण्यो॑ वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (नः) हमें (उक्थम् इत्) प्रशंसनीय) उत्तम उपदेश ही (अभि जुगुर्याः) प्रदान किया कर । (द्यावा क्षामा) आकाश और पृथिवी, (सिन्धवः) समुद्र और नदियें, और प्राणगण, ये सब (स्वगूर्त्ताः) अपने ही बलों से प्रेरित होकर जिस प्रकार (गव्यं) भूमि और इन्द्रियों के हितकारी और (यव्यं) यवादि के योग्य क्षेत्र को (यन्तः) प्राप्त होकर (इषं वरं वरन्त) वृष्टि और उत्तम अन्न को प्रदान करते हैं और (अरुण्यः) अरुण, सुमनोहर कान्ति से युक्त प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (इषं वरं) अभिलाषा करने और सब को प्रेरणे वाले वरणीय प्रकाश या सूर्य को (वरन्त) प्राप्त करती उत्तम प्रकाश को प्रदान करती हैं उसी प्रकार (द्यावाक्षामा) सूर्य और पृथ्वी के समान एक दूसरे के उपकार राजा और प्रजा और स्त्री पुरुष, (सिन्धवः) समुद्र के समान गम्भीर और प्रजा को परस्पर बांध लेने में समर्थ महापुरुष, (स्वगूर्त्ताः) अपने सहयोगी बन्धु बान्धवों, मित्र, सहयोगी जनों से उद्यमशील होकर (गव्यं) गौओं के दुग्ध के समान भूमि से प्राप्त ऐश्वर्य और वेद वाणी से प्राप्त ज्ञान को और (यव्यं) यवादि अन्नोपयोगी क्षेत्र और शत्रुनाशक वीरोत्पादक राष्ट्र को (यन्तः) प्राप्त होते हुए (दीर्घा अहा) चिरकाल तक बहुत दिनों तक (इषं) प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरक (वरम्) वरण करने योग्य उत्तम पद अधिकार को (वरन्त) प्राप्त करें । और (अरुण्यः) उषाओं के समान कमनीय गुणों से युक्त नव युवतियें (इषं वरम्) अभिलाषानुकूल वरण करने योग्य प्रिय पुरुष को (वरन्त) प्राप्त करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[१४१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ६, ११ जगती । ४, ७, ९, १० निचृज्जगती । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥१॥

भा०—(देवस्य) प्रकाशमान तेजस्वी अग्नि का (भर्गः) पदार्थों को परिपक्व करने का ताप ही (दर्शतम्) समस्त पदार्थों को दिखलाने और प्रकाशित करने वाला होता है। (तद्) वही तेज (वपुषे) शरीर की रक्षा, पोषण और वृद्धि के लिये भी (धायि) धारण करने योग्य है। (इत्था बट्) यह बात इस प्रकार से सर्वथा सत्य है। वह अग्नि का तेज (यतः) जिस कारण से (सहसः) बल या शक्ति से (जनि) उत्पन्न हुआ करता है इसी कारण से वह शरीर में भी बल को उत्पन्न करता है। (मतिः) मनन करने वाली बुद्धि नाम अन्तःकरण भी (ईम् उपह्वरति) इसको ही सब प्रकार से आश्रय करता है। उस पर ही निर्भर है। और (ईम् साधते) उसकी ही साधना करती है अर्थात् वह भी तेज से ही उत्पन्न होकर भीतरी तेज को उत्पन्न करती है (धेनाः सस्रुतः) दूध की धारा वाली गौएं जिस प्रकार अपने वत्स को ही प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (ऋतस्य) जल को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धाराएं भी (सस्रुतः) समान रूप से प्रवाहित होती हुई (ईम् अनयन्त) उस महान् अग्नि के तेज रूप मूल कारण तक ले जाती हैं। ठीक उसी प्रकार (देवस्य भर्गः) ज्ञानवान् पुरुष का दुष्टों को संताप देने वाला तेज भी (यतः) जिस कारण से (सहसः) बल से ही (जनि) उत्पन्न होता है। और उसका वह (दर्शतं तत्) दर्शनीय तेज भी (बड् इत्था) सचमुच एक बल ही है। (मतिः ईम् उपह्वरते साधते) बुद्धि भी उसको स्वीकार करती और उसको प्रमाणित और अधिक बलशाली बनाती है (सस्रुतः ऋतस्य धेनाः) एक समान मार्ग से जाने वाली ज्ञान की वाणियां भी उसी तक हमें पहुंचाती हैं।

वृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

भा०—जीवात्मा की तीन दशाएं—[१] (अस्य पृक्षः) इसके सेचन करने योग्य स्वरूप जो (वपुः) सन्तान उत्पन्न करने में मूल कारण है उसको (पितुमान्) उत्तम अन्न खाने वाला, वा वीर्य पालक पुरुष (नित्यः) सदा स्थिर, होकर (आशये) धारण करता है। और जो उसका स्वरूप (सप्त शिवासु मातृषु) सातों प्राणों या शिरोगत सातों इन्द्रियों में कल्याण युक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली (मातृषु)) माताओं के बीच गर्भ रूप से रहता है वह इसका (द्वितीयम्) द्वितीय स्वरूप है। और जो (वृषभस्य) वीर्य सेक्ता पुरुष के (दोहसे) पुत्र कामना को पूर्ण करने के लिये (योषणाः) स्त्रियें जिस (दशप्रमतिम्) दसों उत्तम ज्ञान कर्म साधनों से युक्त पूर्णाङ्ग बालक को (जनयन्त) जनती हैं वह उत्पन्न जीव के रूप में आत्मा का तीसरा स्वरूप है। (२) इसी प्रकार प्रारम्भ में (पितुमान्) अन्नादि पालन के साधनों वाला रक्षक (अस्य) इस पुरुष के (पृक्षः वपुः) पोषणीय देह को बाल्यकाल में (नित्यः आशये) पुष्ट करता है। (द्वितीयं वपुः) दूसरा कौमार काल के देह को (सप्तशिवासु) सातो सुखकारी पदार्थों को धारण करने वाली माताओं के बीच में पाला जाता है। और (अस्य वृषभस्य तृतीयं वपुः) फिर यौवन में इस सेचन समर्थ श्रेष्ठ पुरुष का तीसरा पूर्ण यौवन का समय है (दोहसे) कामना पूर्ति के लिए जिस (दशप्रमतिं) दश धर्म लक्षणों से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त कर (योषणः जनयन्त) स्त्रियें सन्तान उत्पन्न करती है। (३) इसी प्रकार इस देह में अन्न द्वारा उत्पन्न जीवनाग्नि के तीन स्वरूप हैं। (१) एक को अन्नवान् धारण करता है (२) दूसरे को जीव ज्ञान गृहीत इन्द्रियों या शिरोगत सात प्राणों में धारता है (३) तीसरा वीर्य

जिसे स्त्रियें धारण करती और सेक्ता पुरुष की स्त्रियें उसकी इच्छा पूर्त्यर्थ जनती हैं।

निर्यदीं बुध्रान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ३

भा०—(यद् ईम्) इस जीव को (ईशानासः) अधिक सामर्थ्यवान्, वशी (सूरयः) विद्वान् लोग (महिषस्य वर्पसः) बड़े रूपवान् देह के (बुध्नात्) बन्धन से (निः क्रन्त) निर्मुक्त करते हैं और (यत् ईम्) जिसको (प्रदिवः मध्वः आधवे) पुरातन, सनातन से चले आये, अति उत्तम अभिलाषा योग्य तेजोमय मधुर रस के प्राप्त करने के निमित्त (गुहा सन्तम्) अन्तर्गुहा, हृदय के भीतर विराजमान आत्मा को (मातरिश्वा) प्राण वायु (मथायति) अग्नि को पवन के समान प्रज्वलित करता है उसका साक्षात् कर ज्ञान करो।

प्र यत्पितुः पर॒मान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ४

भा०—वह जीव आत्मा कैसा है? (यत्) जो जीव (परमात्) सर्वोत्कृष्ट (पितुः) देह के पालक अन्न के सार से ही (प्रणीयते) प्रकट होता है और जो (वीरुधः) लताओं पर लगने वाले फूल के समान (पृक्षुधः वीरुधः) अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाले या पृक्-सु-धः) सम्पर्क, संग द्वारा उत्तम रीति से निषेक संस्कार द्वारा धारण कराने वाले (वीरुधः) विशेष रूप से वीज को जन्म देने वाले पुरुष के (दंसु) गृहों में या गृही जीवों, या जायाओं में (परि रोहति) गर्भ रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है। उभा और दोनों स्त्री और पुरुष (यत्) जब (अस्य) इस जीव के (जनुषं) जन्म के लिये (इन्वते) यत्न करते हैं (आत् इत्) तभी वह (यविष्ठः) यव से भी अधिक सूक्ष्म, अथवा अति सुन्दर, बलवान् (घृणा) तेजोमय (शुचिः) शुद्ध कान्तिमान्

आत्मा (अभवत्) प्रकट होता है। 'दंसु'–जाया शब्दस्य जंभावोदम्भावश्च जंपती दम्पत्यादिषु दृष्टः। अत्र च छान्दसो दम्भावो द्रष्टव्यः। अथवा दंसु दमेषु। दमो जायापर्यायः स्त्रीवाचको द्रष्टव्यः।

आ॒दिन्मा॒तॄरावि॑श॒द्यास्वा शुचि॒रहिं॑स्यमान उर्वि॒या वि वा॑वृधे।
अनु॒ यत्पूर्वा॒ अरु॑हत्सना॒जुवो॒ नि नव्य॑सी॒ष्वव॑रासु धावते॥५॥८

भा०—आत्मा का ही वर्णन है। वह जीव (मातृः) माताओं के गर्भ में (आविशत्) प्रथम प्रविष्ट होता है (आत् इत्) और अनन्तर (यासु) जिनके बीच में वह (अहिंस्यमानः) किसी प्रकार भी पीड़ित न होता हुआ (उर्विया) बहुत अच्छी प्रकार (शुचिः) शुद्ध रक्त से सिक्त होकर अग्नि के समान (आ वि वावृधे) विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है। वह जीवात्मा (सना-जुवः) सनातन काल से चला आया (पूर्वाः) पूर्व की (मातृः) माताओं को प्राप्त होकर जिस प्रकार वीज रूप में स्थित होकर (अनु अरुहत्) अनुकूल स्थिति में जन्म को प्राप्त करता रहा ठीक उसी प्रकार (अवरासु) अब के उरे के काल में विद्यमान (नव्य-सीषु) नये काल की अब की माताओं में भी उसी रीति से (नि धावते) नियम पूर्वक जन्म को प्राप्त होता है, अर्थात् जीवोत्पत्ति का क्रम अनादि काल से एक समान ही है। इत्यष्टमो वर्गः॥

आ॒दिद्धोता॑रं वृणते॒ दिवि॑ष्टिषु॒ भग॑मिव पपृचा॒नास॑ ऋञ्जते।
दे॒वान्यत्क्रत्वा॑ म॒ज्मना॑ पुरुष्टु॒तो मर्तं॒ शंसं॑ वि॒श्वधा॒ वेति॒ धाय॑से ६

भा०—जीवात्मा का ही पुनः वर्णन है। जब (पपृचानासः) संग या संपर्क करते हुए (दिविष्टिषु) कामना की एषणाओं में (भगम् इव) ऐश्वर्य के समान सुखजनक भोग को (ऋञ्जते) साधते हैं (आत् इत्) तब भी लोग (होतारम्) सब संस्कारों के ग्रहण करने वाले या कर्म-फलों के भोक्ता को ही (वृणते) पुत्र रूप से चाहते हैं। (यत्) जो (विश्वधा) आत्मा को धारण करने वाला जीव (पुरुस्तुतः) बहुधा,

बहुतों द्वारा वर्णित होता है, और जो (क्रत्वा) ज्ञान और (मज्मना) बल से (देवान्) प्राणों को और (शंसं मर्तं) स्तुति योग्य उत्तम मरण शील देह को भी (धायसे) धारण पोषण करने के लिये प्राप्त होता है।

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः। तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

भा०—जीव की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं—(यत्) जब वह (यजतः) बाहर आने या प्रसव कर देने योग्य हो जाता है तब वह (वातजूतः) सुखकारी प्रबल प्राण वेग से प्रेरित होकर (ह्वारः) कुटिल मार्ग से आता हुआ ही (अनाकृतः) अति पीड़ित होकर (वक्वा न जरणाः) वक्ता पुरुष जिस प्रकार स्तुतियों को धारण करता है उसी प्रकार वह भी (जरणाः) जेरों को (वि अस्थात्) छोड़कर पृथक् हो जाता है। और तब (वि अध्वनः) विपरीत मार्ग से आने वाले (दक्षुषः) माता को पीड़ा और संताप देने वाले (कृष्णजंहसः) खिंचाव तनाव के मार्ग में स्थित, (शुचिजन्मनः) शुद्ध जन्म वाले (तस्य) उस जीवात्मा के (पत्मन्) मार्ग में (रजः आ अस्थात्) रुधिर या राजस भाव भी आता है।

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते। आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥

भा०—(रथः न) जिस प्रकार रथ वा विमान (शिक्वभिः) रज्जुओं और कीलादि के बंधनों से (कृतः) तैयार किया जाकर (द्याम् ईयते) अपने ही अंगों से आकाश और भूमि पर गमन करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा भी (शिक्वभिः कृतः) निषेक आदि आधान संस्कारों द्वारा उत्पन्न और संस्कृत होकर (द्याम् यातः) इस पृथ्वी पर आता, तेजोमय ज्ञानमय प्रभु और आचार्य से विवेक दीप्ति को प्राप्त होकर (अङ्गेभिः) कर चरण आदि अवयवों और योग के साधनाङ्ग प्राणायाम आदि (अरुषेभिः)

तेजोमय, दीप्ति युक्त एवं रोष रहित शान्ति जनक अंगों से (द्याम् ईयते) इस तेजोमय, कमनीय परमेश्वर को प्राप्त होता है। शूरस्य = सूरस्य सूरयः इव कृष्णासः वयः) सूर्य के जिस प्रकार जलाकर्षण करने वाले दीप्तिमान् किरण गण (त्वेषथात् ईषते) अपने तेज से सर्वत्र व्यापते हैं उसी प्रकार (आत्) बाद में (शूरस्य इव) शूरवीर के समान अति बलवान् निर्भय (अस्य) इस जीव के भी (ते) वे (सूरयः) उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, (कृष्णासः) दुखों के काटने वाले (वयः) हंस पक्षियों के समान निर्विघ्न ज्ञानी पुरुष (त्वेषथात्) अपने ज्ञान प्रकाश से (ईषते) तुझे प्राप्त होते ओर तू (दक्षि) पापादि बन्धनों को दग्ध कर देता है।

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः॥६

भा०—व्यापक परमेश्वर, बलवान् आत्मा और नायक का वर्णन। हे (अग्ने) अग्रणी नायक (त्वया हि) तेरे ही बल से (धृतव्रतः वरुणः) सब कार्यों को धारण करने वाला, सर्वश्रेष्ठ सूर्य और (मित्रः) प्राण के समान प्रिय चन्द्र, दिन या रात और (सुदानवः) उत्तम सुखों के देने वाले ये दोनों और (अर्यमा) गमनशील प्राणों का नियामक वायु ये सब (शाशद्रे) तीक्ष्ण होकर कार्य करते हैं, (यत्) जो तू (सीम्) सब प्रकार (अरान् नेमिः न) अरों पर चक्रधारा के समान अपने (क्रतुना) महान् क्रिया सामर्थ्य, शक्ति और ज्ञान समर्थ्य से (विश्वथा अनु) समस्त जनों और प्राणों पर ही (परिभूः अजायथाः) सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान्, उनका रक्षक, स्वामी हो रहा है।

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि। तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि १०

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! विद्वन्! तू (शशमानाय)

स्तुतिशील (सुन्वते) सवन या अभिषेक करने वाले प्रजाजन को देने के लिये (देवतातिम् रत्नम्) देव सदृश, दानशील, उत्तम पुरुषों के हितकारी, रमण करने योग्य उत्तम पद को (इन्वसि) प्राप्त कर। हे (यविष्ठ युवन्) बलवन् ! युवक ! उत्साहवन् ! हे (महिरत्न) भूमि रत्न के स्वामिन् ! बड़े रत्नों के स्वामी एवं पूज्य रम्य गुणों से युक्त ! तुझको (कारे) सब उत्तम कार्यों में (भगं न) ऐश्वर्य के समान सेवनीय एवं (सहसः) बल के कारण (नव्यं) स्तुति योग्य हम (त्वां नु धीमहि) तुझ को ही जानें और धारण कर मुख्य पद पर कार्य में नियुक्त करें। (२) आत्मा के पक्ष में—वह आत्मा (शशमानाय) शम साधना करने वाले या स्तुतिकर्त्ता उपासक को रम्य, देव, तेजोमय या सुखरूप से प्राप्त होता है उसी स्तुत्य का हम ध्यान करें।

अस्मे र॒यिं न स्वर्थं॒ दमू॑नसं॒ भगं॒ दक्षं॒ न प॑पृचासि धर्ण॒सिम्। र॒श्मीँरि॑व॒ यो यम॑ति॒ जन्म॑नी उ॒भे दे॒वानां॒ शंस॑मृ॒त आ च॑ सु॒क्रतुः॑ ॥ ११ ॥

भा०—हे आत्मन् ! हे नायक ! विद्वन् ! तू (अस्मे) हमें (रयिं न) उत्तम ऐश्वर्य के समान (स्वर्थं) उत्तम पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम और (दमूनसं) इन्द्रियों और मन को दमन करने वाले (धर्णसिं) धैर्य, विद्यादि के धारण करने वाले (दक्षं) क्रियाकुशल, ज्ञानवान् (भगं) सेवन करने योग्य, सुखप्रद, ऐश्वर्ययुक्त स्वरूप को (पपृचासि) प्रदान करता है, प्रकट करता है। (यः) जो तू (रश्मीन् इव) सूर्य जिस प्रकार किरणों को और सारथि जिस प्रकार अश्व की बागों को वश में करता है उसी प्रकार (उभे) दोनों (जन्मनी) जन्म इहलोक और परलोक दोनों को (यमति) नियम में रखता है। तू (देवानां) विद्वानों के और प्राणों के बीच (शसं) स्तुत्य रूप को (आ यमति च) प्राप्त करता है (ऋते च) सत्य व्यवहार, ज्ञान और ऐश्वर्य के निमित्त तू (सुक्रतुः आ च)

शोभन कर्म करने वाला और उत्तम ज्ञानवान् हो। अग्रणी नायक भी ऐश्वर्य को और उत्तम धनाढ्य, दमनकारी, जितेन्द्रिय, कुशल, ऐश्वर्यवान् राष्ट्रधारक पुरुषों का सत्संग करे। वह दोनों पर और स्वपक्षों को रासों के समान वश करे, विद्वानों और राजाओं में स्तुति प्राप्त करे, उत्तम कर्मवान् बने।

उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरो अग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥

भा०—आत्मा का ही वर्णन है। (उत) और (सः) वह (नः) हमारा (सुद्योत्मा = सुद्यः-आत्मा अथवा सु-द्योत्मा) उत्तम रीति से चमकने वाला प्रकाश स्वरूप आत्मा (जीराश्वः) कर्म फलभोक्ता जीव ही (होता) सब विद्याओं और ज्ञानों को ग्रहण करने वाला और (चन्द्ररथः) आल्हादक सुवर्ण या चन्द्र के समान प्रकाश स्वरूप (मन्द्रः) अति हर्षकर, उत्तम (शृणवत्) सुना जाता है। (सः) वह (अमूरः) अमर, मृत्यु रहित और मोह रहित होकर (अग्निः) ज्ञानवान् आत्मा (नः) हमें (नेषतमैः) उत्तम नायक प्राणों द्वारा (वस्यः) देह में बसने योग्य और उनके द्वारा देह में वसने हारा होकर (सुवितम्) सुख प्राप्त करने योग्य (वामं) भजने योग्य उत्तम पद तक (नेषत्) ले जावे और उसका (अच्छ) साक्षात् करे। (२) नायक पक्ष में—वह तेजस्वी, वेगवान् अश्वों से युक्त सबको वेतन देने वाला, सुवर्णादि को रथ में धारण करने वाला, या लोह के बने दृढ़ रथ वाला, (मन्द्रः) स्तुत्य होकर (शृणवत्) सब की प्रार्थना सुने। वह (नेषतमैः) उत्तम नायकों सहित उत्तम प्राप्य पद, या देश को प्राप्त करावे। वह राष्ट्र वसाने हारा होने से 'वस्य' है।

अस्तांव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः। अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥१३॥९॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान्, विद्वान् नायक, परमेश्वर और देह के

अंग में व्यापक जीव (शिमीवद्भिः) उत्तम कर्मों का अनुष्ठान करने वाले धर्मात्माओं और शान्ति या शम की साधना वाले तेजस्वी और (अर्कैः) अर्चनाशील और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों से (अस्तावि) नित्य स्तुति किया जाता है, उसका वे नित्य वर्णन करते हैं। वह (साम्राज्याय) साम्राज्य पद, और सम्राट् परम प्रभु के अद्वितीय पद के लाभ के लिये (प्रतरं) शत्रुगण और भवसागर को पार करने वाले सैन्य और ज्ञानानुष्ठान को (दधानः) धारण करता है। और (ये च) जो (अमी) ये (मघवानः) ऐश्वर्यवान् और निष्पाप, (वयंच) और हम सब (सूरः मिहं न) मेघ को सूर्य के समान (निः ततन्युः) नित्य स्तुति कर उसको प्रसिद्ध करें। उसके गुणों को प्रकट करें। इति नवमो वर्गः।

[१४२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ देवता—१, २, ३, ४ अग्निः। ५ बर्हिः। ६ देव्यो द्वारः। ७ उषासानक्ता। ८ दैव्यौ होतारौ। ९ सरस्वतीडाभारत्यः। १० त्वष्टा। ११ वनस्पतिः। १२ स्वाहाकृतिः। १३ इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८, ९ निचृदनुष्टुप्। ४ स्वराडनुष्टुप्। ३, ७, १०, ११, १२ अनुष्टुप्। १३ भुरिगुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार अग्नि (देवान् आ वह) प्रकाश देने वाले किरणों को स्वयं धारण करता और अन्यों को भी प्रदान करता है और (यतस्रुचे) स्रुक् नाम घृताधार पात्र को थामने वाले और (सुतसोमाय) सोम वाले यजमान के हितार्थ (तन्तुं तनोति) यज्ञ का सम्पादन करता है उसी प्रकार हे (अग्ने)

विद्वन् ! हे अग्रणी नायक पुरुष ! तू भी (समिद्धः) खूब विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशित और तेजस्वी होकर (देवान् आ वह) उत्तम गुणों को धारण कर और विद्वान् पुरुषों को प्राप्त हो। और (अद्य) आज (यतस्रुचे) संयत वीर्य वाले, जितेन्द्रिय (सुतसोमाय) शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न कर, उनको उत्तम पद पर अभिषिक्त करने वाले (दाशुषे) अपना स्वर्वस्व ज्ञान और धन सौंपने वाले, वृद्ध पिता के लिये ही (पूर्व्यं) पूर्व पुरुषों से सुरक्षित (तन्तुं) प्रजातन्तु और शिष्यतन्तु को (तनुष्व) विस्तृत कर।

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात्।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

भा०—(तनूनपात्) देह को न गिरने देने से जाठर अग्नि 'तनूनपात्' है। तनू अर्थात् सूक्ष्म 'आपः' उनसे ओषधि काष्ठादि और काष्ठों से अग्नि इस प्रकार जलों का नपात् अर्थात् नाती भौतिक अग्नि है। वह जिस प्रकार स्तुतिशील हविदाता पुरुष के (घृतवन्तं मधुमन्तं यज्ञं) घृत और व्रीहि आदि अन्न से युक्त यज्ञ को सम्पादित करता है उसी प्रकार हे (तनूनपात्) प्रजा के शरीरों और विस्तृत राष्ट्र को न गिरने देने वाले विद्वन् ! और राजन् ! तू (शशमानस्य) कष्टों को पार करने वाले (दाशुषः) अपने को तेरे प्रति आत्मसमर्पण कर देने वाले (मावतः) मेरे जैसे (विप्रस्य) मेधावी बुद्धिमान् जन के (घृतवन्तं) जल से पूर्ण, और (मधुमन्तं) अन्न से समृद्ध (यज्ञं) उत्तम प्रजापालक राष्ट्र को (उप मासि) सम्पादन कर, उसको संचालित कर।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

भा०—(नराशंसः) नायक पुरुषों से स्तुति करने योग्य, प्रशंसनीय श्रेष्ठ पुरुष (शुचिः) शुद्ध आचारवान्, धर्मात्मा, (पावकः) अग्नि

के समान अन्यों को शुद्ध पवित्राचार बनाने हारा, (अद्भुतः) आश्चर्य-जनक, (देव) दानशील, विजिगीषु (देवेषु) अन्य दानशील, और विजय के इच्छुक कामनावान् पुरुषों के बीच में (यज्ञियः) स्वयं सब से श्रेष्ठ दानशील एवं स्तुति और सत्कार और प्रजापालक पद के योग्य पुरुष (यज्ञं) सुसंगत राज्य को (मध्वा) मधुर अन्न, मधुर वचन और मधुर विचारों तथा उत्तम जल से (त्रिः) तीनों प्रकार से (आ मिमिक्षति) सेचन करे ।

ई॒ळि॒तो अ॑ग्न॒ आ व॒हेन्द्रं॑ चि॒त्रमि॒ह प्रि॒यम् ।
इ॒यं हि त्वा॑ म॒तिर्ममाच्छा॑ सुजिह्व व॒च्यते॑ ॥ ४ ॥

भा०—उत्तम जिह्वा या दीप्ति, ज्वाला वाला अग्नि जिस प्रकार (इन्द्रं) ऐश्वर्यकर, प्रिय, मनोहर विद्युत् के प्रकाश को देता है उसी प्रकार हे (सुजिह्व) उत्तम मधुर वाणी वाले ! (अग्ने) विद्वन् ! तू (ईळितः) स्तुति किया जाकर, प्रशंसित और इच्छानुरूप उपदेश प्राप्त करके, विद्वान् होकर (इह) इस लोक में, और इस जन्म में (प्रियम्) प्रीति कारक, सब को अच्छा लगने वाले, (चित्रम्) आश्चर्यकर (इन्द्रं) ऐश्वर्य को (आ वह) धारण कर और प्राप्त कर (त्वा) तुझे (मम) मेरी (इयं मतिः) यह उत्तम बुद्धि (अच्छ) भली प्रकार (वच्यते) उपदेश की जावे ।

स्तृ॒णा॒नासो॑ य॒तस्रु॑चो ब॒र्हिर्य॒ज्ञे स्व॑ध्व॒रे ।
वृ॒ञ्जे दे॒वव्य॑चस्तम॒मिन्द्रा॑य॒ शर्म॑ स॒प्रथः॑ ॥ ५ ॥

भा०—(यथा यतस्रुचः यज्ञे बर्हिः स्तृणानासः इन्द्राय देवव्यचस्तमम् शर्म वृञ्जते तथा) जिस प्रकार यज्ञ में स्रुक् आदि पात्रों को उठाए हुए यज्ञ कर्त्ता लोग यज्ञ में कुश आदि बिछाते हुए 'इन्द्र' अर्थात् परमेश्वर या उपास्यदेव के व्यापक विस्तृत सुख को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (सु-अध्वरे) जिस को शत्रुजन नष्ट न कर सकें ऐसे राष्ट्र में (यतस्रुचः) बाहुओं,

चाणियों, इन्द्रियों, स्त्रियों और समस्त लोकों को नियम में रखनेमें समर्थ उत्तम शासक जन (बर्हिः) बड़े भारी बल या राष्ट्र को (स्तृणानासः) आच्छादित करते हुए (इन्द्राय) शत्रुहन्ता राजा के लिये (देवव्यचस्तमम्) विद्वानों, विजयेच्छुक वीर पुरुषों से खूब परि पूर्ण, (सप्रथः) खूब विस्तृत, (शर्म) सुखकारक भवन, शरण रक्षागृह सभाभवन दुर्ग आदि (वृञ्जे) बनाते हैं। अथवा बड़े भारी राष्ट्र को आच्छादित या सुरक्षित रख कर उसको सुरक्षित बड़े गृह के समान बना लेते हैं।

वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—(महीः द्वारः) जिस प्रकार बड़े २ द्वार (देवेभ्यः प्रयै) विद्वानों और व्यवहारवान् पुरुषों के आने जाने के लिये विविध प्रकार से खड़े किये जाते हैं उसी प्रकार (द्वारः) शत्रुओं का और बुरे कर्मों का वारण करने वाली (ऋतावृधः देवीः महीः) सत्याचरण को बढ़ाने वाली, पूज्य स्त्रियें, नलादि अर्थात् अन्न और धन से प्रजा को समृद्ध करनेवाली उत्तम उपजाऊ और रसमयी भूमियें, और विजयशालिनी ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली बड़ी २ सेनाएं (देवेभ्यः) विद्वानों को पाने और व्यवहारज्ञों के योग और विजयेच्छुओं के प्रयोग के लिये (वि श्रयन्ताम्) विशेष रूप से प्राप्त हों, सेवन की जायें, और वे (पावकासः) स्वयं पवित्र और अन्यों को पवित्र करने वाली, और (असश्चतः) अनासक्त, विलक्षण, और अन्यों से उपयुक्त या अन्यों के अधीन न हो। इति दशमो वर्गः ॥

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥

भा०—(नक्तोषासा) रात और दिन जिस प्रकार (भन्दमाने) सबको सुख देने वाले (सुपेशसा) उत्तम रूप वाले हैं उसी प्रकार

(भन्दमाने) सबके कल्याणकारक, एक दूसरे को सुख देने हारे, (नक्तोषासा) रात्रि और उषा काल के समान एक दूसरे के अति समीप रहते हुए (सुपेशसा) सुन्दर रूप और अंगों वाले (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (मातरा) जानने वाले माता पिता, स्त्री पुरुष (यह्वी) बड़े पूज्य होकर (उपाके) सदा समीप आवें और (सुमत्) उत्तम हर्षदायक (बर्हिः) वृद्धिकारी गृह और प्रजाजन, उत्तम आसन पर (आसीदतां) विराजें।

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥

भा०—(मन्द्रजिह्वा) अति हर्ष उत्पन्न करने वाली, उत्तम वाणी वाले, (जुगुर्वणी) निरन्तर उद्यमशील, और अध्ययनशील (होतारा) ज्ञान के दान और ग्रहण करने वाले (दैव्या) विद्वानों में प्रसिद्ध और उत्तम गुणों के धारण करने वाले, (कवी) दूरदर्शी, विद्वान् (नः) हमारे (इमं) इस (सिध्रम्) सब कार्यों के साधक (दिविस्पृशम्) सब कामनाओं और ज्ञान को प्रदान करने वाले (यज्ञं) यज्ञ, श्रेष्ठकर्म और परस्पर सत्संग, मैत्री भाव (यक्षताम्) करें।

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

भा०—जो (देवेषु) विद्वानों और व्यवहारज्ञ और ज्ञानप्रद गुरु जनों में (अर्पिता) गुरु परम्परा से प्राप्त (शुचिः) शुद्ध (होत्रा) शिष्य परम्परा से प्राप्त करने योग्य विद्यामयी वाणी है और जो (मरुत्सु) विद्वान् और वीर प्रजाजनों में (भारती) प्रजापालक राजाओं की वाणी है और जो (इळा) पूज्य ईश्वरोपासना योग्य और (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान वाली (मही) बड़ी भारी दानयोग्य उत्तम वेद वाणी हैं वे सब (यज्ञियाः) यज्ञ, अर्थात् परमेश्वर, और श्रेष्ठ कर्म तथा उपासनादि के

योग्य हैं। वे सब (बर्हिः) वृद्धिशील पुरुष और विद्यार्थी जन में (सीदन्तु) विराजें। अथवा होत्रा—ऋग्वेद, भारती यजुर्वेद, इळा सामवेद, सरस्वती अथर्ववेद।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुवारं पुरुत्मना।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

भा०—(अस्मयुः) हमारा प्रिय (त्वष्टा) शिल्पी और तेजस्वी राजा (नः पोषाय) हमें पुष्ट करने और पोषण करने के लिये और (नः राये) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (नः नाभा वि स्यतु) हमारे केन्द्र में आकर विराजे। वह (नः) हमें (तुरीपम्) अति शीघ्र रक्षा करने वाले (अद्भुतं) आश्चर्यकारी, नये से नये (पुरु) बहुत अधिक (अरं) बहुत पर्याप्त साधन और (त्मना) स्वयं अपने आत्म सामर्थ्य से (पुरु) प्रभूत ऐश्वर्य (वि स्यतु) प्राप्त करे और करावे।

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

भा०—हे (वनस्पते) रश्मियों के स्वामी सूर्य के समान तेजस्विन्! और वनस्पति अर्थात् महावृक्ष के समान अपनी छाया में अपने आश्रितों को शरण देने हारे! अथवा जलों के पति समुद्र के समान एवं सेवने योग्य ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों के स्वामिन्! विद्वन्! तू (त्मना) अपने आत्म सामर्थ्य से (देवान्) विद्या और धन के अभिलाषी उत्तम विद्वान् पुरुषों को (अव सृजन्) अति समीप बुला कर, (उप-यक्षि) विद्या और ऐश्वर्य को प्रदान कर। (अग्निः) ज्ञानवान् और (देवः) दानशील (मेधिरः) और बुद्धिमान् पुरुष (देवेषु) उन पदार्थों के इच्छुक पुरुषों में (हव्या) देने योग्य ज्ञान, धन और उपदेश आदि पदार्थ (सु सूदति) सदा दिया ही करता है।

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पूषण्वते) पोषण करने वाले गुणों से युक्त और पोषक साधनों और पोषक वर्गों के स्वामी, (मरुत्वते) विद्वानों, वैश्य प्रजा और वीर सैनिक स्वामी (विश्वदेवाय) समस्त उत्तम, विजिगीषुओं के स्वामी (वायवे) ज्ञानेच्छुक, ज्ञानप्रद और वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले नायक तथा (गायत्रवेपसे) गान करने वाले के रक्षक स्वरूप (इन्द्राय) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और उसके स्वामी प्रभु के लिये (स्वाहा) उत्तम सत्य आचरण और सत्कार द्वारा (हव्यम् कर्तन) उत्तम वचन सत्कार और अन्नादि पदार्थ उपस्थित करो ।

स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्यावन् ! आचार्य ! आप (स्वाहाकृतानि) उत्तम वाणी और आदर द्वारा सुसम्पादित (हव्यानि) अन्न आदि उत्तम पदार्थों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (आगहि) आओ । (आगहि) आओ और (हवं) उत्तम वचन (श्रुधि) श्रवण करो । लोग (अध्वरे) इस यज्ञ में परस्पर सत्संग और उत्तम कर्म के अवसर पर (त्वां हवन्ते) तुझे बुलाते और तुझ से ज्ञान श्रवण करने की प्रार्थना करते हैं । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१४३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृज्जगती । २, ३, ५, विराड्जगती । ४, ६ जगती च । ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे । अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदद्दृत्वियः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (अपां नपात्) आप्त पुरुषों के बीच जो कर्माचरण में पतित नहीं होता और जो (वसुभिः सह) गुरू के अधीन विद्या प्राप्ति के लिये वसने वाले, अन्तेवासी छात्रों के सहित (प्रियः) गुरु को सेवा शुश्रूषा से प्रसन्न करने वाला, (होता) ज्ञान का स्वीकार करने हारा, (ऋत्वियः) सत्य ज्ञान को धारण करने वाले गुरुओं के अधीन रहने वाला शिष्य होकर (पृथिव्यां) विनय से पृथिवी पर (नि—असीदत्) विराजता है ऐसे (अग्नये) अंग २ में विनय से झुकने वाले (वाचः सहसः सूनवे) वाणी और बल के सम्पादन करने वाले पुत्र और शिष्य के लिये मैं आचार्य विद्वान् पुरुष (तव्यसीं) बल सम्पादन करने वाली और (नव्यसीं) नये से नया ज्ञान सम्पादन करने वाली, (धीतिम्) धारण पोषण करने वाली अध्ययन क्रिया और (मतिं) ज्ञान का (प्र भरे) अच्छी प्रकार उपदेश करूं।

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने। अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः मातरिश्वने) प्रकाशमान सूर्य जिस प्रकार मातरिश्वा अर्थात् वायु को गति देने के लिये (परमे व्योमनि) बड़े आकाश में उदय को प्राप्त होता है और अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी को चमका देता है। और जिस प्रकार (अग्निः जायमानः मातरिश्वने) जिस प्रकार भौतिक अग्नि वायु के वेग बढ़ाने के लिये होता है और उस भड़कते हुए अग्नि की ज्वाला भूमि और आकाश दोनों को चमका देती है उसी प्रकार (सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् विनयशील विद्यार्थी (मातरिश्वने) सावित्री माता के पद पर चलने वाले, माता के समान अपने गर्भ में बालक को लेने हारे आचार्य के यशो वृद्धि और हर्ष के लिये ही (परमे) सब से उत्कृष्ट (वि-ओमनि) विशेष रक्षा करने वाले एवं विशेष रूप से

पालने योग्य 'ओ३म्' पर ब्रह्म की शरण में और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान में (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (आविः अभवन्) अपने उत्तम गुणों से प्रकट हो। (समिधानस्य) तेज से चमकने हारे (क्रत्वा) इसके उत्तम प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्य से और (मज्मना) बल से (अस्य-शोचि) उसका तेज और प्रभाव (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान माता और पिता दोनों को (प्रअरोचयत्) प्रकाशित कर दे। दोनों के नाम उज्ज्वल कर दे।

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः। भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (सुद्युतः) उत्तम कान्तिमान् सूर्य की (भानवः) किरणें भी (त्वेषाः, अजराः) कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं और जिस प्रकार (भात्वक्षसः) तेजोमात्र से बलशाली सूर्य के (असस‌न्तः) कभी नष्ट न होने वाले किरण भी (सिन्धवः) सदा वेग या प्रवाहों के समान सूर्य से बढ़ने वाले होते हैं वे (अक्तुः अति) अन्धकारमय रात्रि वेला को लांघ कर प्रकाशित हुआ करते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस (सुसंदृशः) उत्तम रीति से सब पदार्थों को ज्ञान दृष्टि से अच्छी प्रकार देखने वाले (सुप्रतीकस्य) उत्तम रूप या सुख शोभा से युक्त, सुन्दर, (सुद्युतः) उत्तम कान्तिमान्, तेजस्वी, (अस्य) इस विद्वान् आचार्य और शिष्ट विद्वान् के भी (भानवः) ज्ञान प्रकाश (अजराः) कभी नाश को प्राप्त नहीं होते और (अजराः) अवर्णनीय रूप से उत्तम होते हैं। (भात्वक्षसः अस्य) दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (अजराः सिन्धवः) अविनाशी सदा वेग से बहने वाली सरिताओं के समान वेग से गति करने वाले ज्ञान प्रवाह (अस-सन्तः) कभी न सोते हुए, जागरणशील पुरुषों के समान ही (अक्तुः

अति) रात्रि काल के समान उज्वल गुणों के प्रकाश कर देने वाले गुरु या शिष्य को भी पार कर (अति रेजन्ते) प्रकाशित होते हैं ।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना । अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥

भा०—(यम्) जिस (विश्ववेदसं) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्य के स्वामी को (भृगवः) अपने पाप और कर्म बन्धनों को भून देने वाले, तपस्वी लोग (पृथिव्या) पृथिवी के और (भुवनस्य) समस्त चराचर संसार के (नाभा) मध्य में, केन्द्र में (मज्मना) सब को बल से सञ्चालित करने वाला मुख्य बल रूप (आएरिरे) जानते और बतलाते हैं हे पुरुष ! (तम् अग्निम्) उस सर्वप्रकाशक, सर्वनायक, सर्वव्यापक परमेश्वर की (गीर्भिः हिनुहि) वाणियों से स्तुति कर (य एकः) जो अकेला, अद्वितीय होकर (स्वे दमे) अपने घर में स्वामी और शरीर में आत्मा के समान (वस्वः) बसे हुए इस महान् ब्रह्माण्ड के (दमे) दमन करने में (वरुणः नः) सर्वश्रेष्ठ राजा के समान (राजति) विराजता है ।

न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः । अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥

भा०—(मरुताम् स्वनः) तीव्र वेग वाले वायुओं का शब्द जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता और (सृष्टा सेना) चक्रव्यूहादि से रची या सेनापति के आज्ञा वचन से प्रेरित होकर छूट निकली सेना जिस प्रकार फिर रोकी नहीं जा सकती और (यथा अशनि) जिस प्रकार मेघ से निकली विद्युत् रोके नहीं रुक सकती उसी प्रकार (यः) जो (अग्निः) अग्रणी नायक (वराय न) रोका नहीं जा सकता । (योधः शत्रून् न)

योद्धा पुरुष जिस प्रकार शत्रुओं को (तिगितैः भर्वति) तीक्ष्ण शस्त्रों से नाश कर देता है और जिस प्रकार (अग्निः वनानि) अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से जंगलों को (अत्ति) भस्म कर देता है। उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् पुरुष (तिगितैः) अपने तीक्ष्ण (जम्भैः) तपः साधनों से (वनानि) सेवने योग्य विलासों को (भर्वति) नाश करे और (सः सत्रुन् नि ऋञ्जते) काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्तः शत्रुओं को अपने वश करे।

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्। चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः) विनीत विद्यार्थी (नः) हमारे (कुवित् उचथस्य) बहुत से उत्तम वचनों या आज्ञा वचन का (वीः असत्) पालक और प्राप्त करने का इच्छुक हो। वह (वसुः) गुरुओं के अधीन रहकर (वसुभिः) अन्य अन्तेवासी सहाध्यायी, विद्यार्थी, ब्रह्मचारी गण के साथ (कामम्) अपने अभिलाषा करने योग्य ज्ञान को (आ अवरत्) प्राप्त करे। अथवा (कामम् आ अवरत्) काम वेग को दूर करे। वह (चोदः) आचार्य द्वारा नित्य प्रेरित होकर (धियः सातये) ज्ञान और कर्म या आचार शिक्षाओं को प्राप्त करने के लिये (कुवित्) बहुत अधिक (तुतुज्यात्) बाधक कारणों को नाश करे, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे, और पढ़े। और तब (तम्) उस (शुचिप्रतीकम्) शुद्ध पवित्र स्वरूप वाले शोभन मुख, सौम्य शिष्य को आचार्य (अया धिया) इस प्रज्ञा और कर्म से (गृणे) उपदेश करे।

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते। इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ७

भा०—(समिधानः) अच्छी प्रकार तेज या वीर्यरक्षा के द्वारा

तेजस्वी होता हुआ शिष्य (घृतप्रतीकम्) घी को प्राप्त होकर चमकने वाले अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाशक, तेजस्वी और (घृतप्रतीकम्) जल को प्रकट करने वाले, अविच्छिन्न धारा से बरसने वाले और (ऋतस्य धूर्षदम्) जल के भार को अपने में धारण करनेवाले मेघ के समान (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और वेद ज्ञान के (धूर्षदम्) धुर अर्थात् मुख्य पद पर विराजने वाले, वेद विद्या के धुरन्धर आचार्य को (मित्रं न) मित्र या सुहृत् के समान (ऋञ्जते) प्राप्त करे, और उसकी सेवा करे। वह स्वयं भी (इन्धानः) ज्ञान और तपस्याओं से प्रकाशित होता हुआ (अक्रः) बाधक कारणों और पीडाओं से आक्रान्त न होकर, उनसे नष्ट न होकर (विदथेषु) ज्ञानप्राप्ति के अवसरों में और शास्त्रों में (दीद्यत्) चमके और उनको धारण करे। और वह आचार्य (नः) हमें (शुक्र-वर्णाम्) शुद्ध वर्ण वाली, विशुद्ध अक्षरोच्चारण से युक्त, शुद्ध ज्ञानस्वरूप, निर्मल, (धियम्) प्रज्ञा, वाणी, कर्म को (उत् यंसते) उद्योगपूर्वक प्राप्त और पालन करे। अथवा (इन्धानः विदथेषु दीद्यत् शुक्रवर्णां धियम् उद् यंसते) तेजस्वी ज्ञानों में चमकता हुआ विद्वान् शुद्धवर्णा स्त्री को विवाहे। और आचार्य उस शुद्ध ज्ञानमयी वाणी को (उद् यंसते) उत्तम रीति से प्रदान करे।

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥१२

भा०—हे विद्वन् ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! ज्ञानप्रकाशक ! हे नायक ! तू (अप्रयुच्छद्भिः) प्रमाद से रहित (शिवेभिः) कल्याणकारी, (शग्मैः) सुख शान्ति प्राप्त कराने वाले, (पायुभिः) रक्षक और पावन करने वाले (अदब्धेभिः) दूसरों से न मारे जाने वाले, (अदृपितैः) अन्यों को क्लेश न पहुंचाने वाले और मोह, गर्व आदि से रहित, (अनिमिषद्भिः) आंख न झंपकने वाले, सदा सावधान, कर्त्तव्य पर सदा दृष्टि रखने वाले विद्वान्

पुरुषों सहित आप स्वयं (अप्रयुच्छन्) कभी भी प्रमाद न करता हुआ (नः जाः) हमारी प्रजाओं को (परि पाहि) सब प्रकार से रक्षा कर। अथवा —(जा त्व नः परिपाहि) तू स्वयं पिता के समान उत्पादक सब को सुखजनक होकर हमारी सब प्रकार से रक्षा कर। परमेश्वर पक्ष की योजना विस्तार भय से नहीं लिखी।

[१४४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ७ निचृज्जगती। २ जगती। ६ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्। अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते १

भा०—अग्नि-व्रताचरण का क्या स्वरूप है? (शुचिपेशसं धियं) ऊर्ध्वां दधानः) जिस प्रकार अग्नि अपनी शुद्ध कान्तिमय, तेज को धारण करने वाली ज्वाला को ऊपर धारण करता है उसी प्रकार (होता) सद्-गुण, सद्विद्या के ग्रहण करने और अन्यों को प्रदान करने वाला विद्वान् (मायया) बुद्धि पूर्वक, (शुचिपेशसं) शुद्ध, पवित्र स्वरूप (धियम्) कर्म और ज्ञान युक्त मति या प्रज्ञा को (ऊर्ध्वाम्) सब से ऊपर (दधानः) धारण करता हुआ (अस्य) इस अग्नि के (व्रतम्) सेवा व्रत को (प्र एति) उत्तमता से पालन करे। उसी प्रकार वह शुद्ध प्रज्ञा, शुद्ध कर्मा-चरण को सर्वोपरि मुख्य रखता हुआ अग्नि के समान (अस्य) इस शिक्षक आचार्य के निर्धारित नियम तथा परमेश्वर के निमित्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। तब व्रतपालन रूप ब्रह्मचर्य के बाद क्या करे? (याः अस्य धाम प्रथमं निंसते ताः स्रुचः क्रमते) जो स्रुची आदि पात्र इस अग्नि के स्थान वेदि को प्रथम प्राप्त होते हैं। उनको अग्नि जिस प्रकार (दक्षि-णावृतः) दक्षिणावर्त्त होकर प्राप्त होता है अथवा वेदि स्थान में प्राप्त

पात्रों को जिस प्रकार होता दक्षिणा द्वारा वृत होकर ग्रहण करता है उसी प्रकार (याः) जो (स्रुचः) कान्तिमती कन्या (अस्य धाम) इस के (प्रथमं) सर्वोत्तम (धाम) तेज आदि गुणों को (निंसते) प्रेम से ग्रहण करती हैं उन (दक्षिणावृतः) यज्ञ की दक्षिण दिशा में स्थित होकर पति को वरण करने वाली स्वयंवरा को स्वयं भी (दक्षिणावृतः) दहिने बाजू स्थित कन्या द्वारा वरण किया जाकर (अभिक्रमते) प्राप्त हो। 'दक्षिणावृतः' यह दीपकवत् उभयत्र श्लिष्ट विशेषण है। स्रुचः इति बहुत्व वैकल्पिक दारावत् छान्दस है। अथवा—(याः स्रुचः) जो वाणियां (अस्य) इस उत्तम विद्वान् शिक्षक के (प्रथमं धाम) सब से उत्तम धारण करने योग्य ज्ञान को (निंसते) प्राप्त होती हैं उन (दक्षिणावृतः) दक्षिण दिशा, दायें भाग में स्थित शिष्य द्वारा वरण या प्राप्त करने योग्य वेद वाणियों को स्वयं भी (दक्षिणावृतः) आचार्य के दक्षिण हाथ में रह कर (अभिक्रमते) प्राप्त करे।

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥२॥

भा०—(यत्) जब विद्वान् पुरुष शिष्य होकर (अपाम् उपस्थे) आप्त पुरुषों के समीप (विभृतः) उन द्वारा शिष्य रूप से धारण किया जाकर (अवसत्) निवास करे तब वह (स्वधाः) अन्न और जलों के समान ही उन आत्मज्ञानरसों का भी (अधयत्) पान करे (याभिः) जिन से वह (ईयते) ज्ञानवान् हो और (ईम्) इसको सब प्रकार से (ऋतस्य दोहनाः) ऋत अर्थात्, सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले (देवस्य) ज्ञानप्रद आचार्य के (योनौ) गृह और (सदने) विद्या भवन में (परीवृताः) विद्यावान् आप्त पुरुष भी विदुषी माताओं के समान ही प्रेम से उसको (अभि अनूषत) सब प्रकार से उपदेश करें। (२) अग्नि के पक्ष में—जल के दोहन प्रदान करने वाली धाराएं देव

अर्थात् जलप्रद मेघ या सूर्य के आश्रय, अन्तरिक्ष में विद्यमान होकर भी मानो (ईम् अनूषत) उस अग्नि मय सूर्य या विद्युत् के गुणों को बतलाती हैं और जब वह जलों के बीच में धारण किया जाकर विद्युत् के रूप में जब रहता है और समस्त प्रजाओं को जलों का पान कराता है जिनके सहित वह प्रकट भी होता है।

युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः। आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः॥ ३॥

भा०—माता पिता और आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। जब (सवयसा) समान बल वाले स्त्री पुरुष या माता पिता या पति पत्नी (मिथः) परस्पर (समानम्) परस्पर एक दूसरे के लिये एक समान प्रिय, (अर्थं) कामना योग्य पदार्थ को वितरण करते हैं तभी वे (युयूषतः) परस्पर मिलना चाहते हैं। (तत् इत्) उसका ही परिणाम यह (वपुः) शरीर उत्पन्न होता है। जिस प्रकार (सारथिः) सारथि या कोचवान् (वोढुः) रथ को ढोने वाले अश्व के (रश्मीन् सम् अयंस्त) रासों को अपने नियन्त्रण में रखता है उसी प्रकार (अस्मद्) हमारा (हव्यः) पूज्य आचार भी (भगः) सुखदायी ऐश्वर्यवान् सूर्य के समान (हव्यः) ज्ञानों का प्रदान करने हारा (आत्) अनन्तर (ईम्) उस उत्पन्न बालक को (रश्मीन्) सब वागडोरों को (सम् अयंस्त) अपने वश कर के सब उपायों को अपने हाथ में ले।

यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा। दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा॥४॥

भा०—(यम्) जिस बालक को (द्वा) दोनों (सवयसा) समान रूप से परिपक्व बल वीर्य वाले, मित्र या सखाभूत (समोकसा) एक ही

गृह में रहते हुए, (मिथुना) स्त्री पुरुष, पति पत्नी (समाने योनौ) एक समान पुत्रोत्पादक गर्भाशय में स्थित (ईम्) इसकी (सपर्यतः) नाना प्रकार से परिचर्या करते हैं, उसको पालते पोषते हैं। तब वह (दिवा नक्तं न = च) दिन और रात (पलितः = पालितः) पाला जाकर अथवा (पलितः) ज्ञानवान् और पूर्ण होकर (पुरु) बहुत से (मानुषा युगा) मनुष्योचित जीवन के वर्षों को (चरन्) व्यतीत करता हुआ (अजरः) जरारहित, हृष्ट पुष्ट (युवा अजनि) युवा हो जाता है। अथवा, वह (युवा अजरः पुरु मानुषा युगा चरन् दिवानक्तं पलितः अजनि) वह युवा होकर भी बहुत से वर्ष भोग कर बाद में वृद्ध होवे। वह बाल-काल में नष्ट न होकर चिरायु हो।

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥५॥

भा०—(तम्) उस (देवम्) दानशील, तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी पुरुष को (दश व्रिशः) दसों प्रजाएं, दसों दिशा निवासिनी प्रजाएं और (मर्त्तासः) हम शत्रु संहारकारी मर्द युवा पुरुष भी, (धीतयः) अध्येता विद्यार्थी जन जिस प्रकार गुरु को (ऊतये) ज्ञान प्राप्ति के लिये प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (ऊतये) प्रजा रक्षण के लिये (हवामहे) बुलाते हैं। और जिस प्रकार (धनोः अधि प्रवतः) धनुष के ऊपर दूर तक जाने वाले वाणों को रखता और (अभि व्रजद्भिः) शत्रु को लक्ष्य करके चढ़ाई करने वालों से (नवा वयुना) नये २ प्रदेशों को (ऋण्वति) प्राप्त करता और उनको (आ अधित) अपने अधीन रख लेता है। इसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष (अभि व्रजद्भिः) उत्तम ब्रह्म पद को लक्ष्य करके जाने वाले मुमुक्षुओं के साथ मिलकर (नवा वयुना अधित) नये २ ज्ञानों को प्राप्त करे। और (धनोः अधि) धनुष के बल पर (प्रवतः) वाणों के समान दूर के देशों को भी (ऋण्वति) प्राप्त करे।

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ६

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! हे विद्वन् ! (त्वं) तू (दिव्यस्य) दिव्य, तेजोमय, कमनीय और (पार्थिवस्य) पृथ्वी के पालक राजा के ऐश्वर्य के (त्मना) अपने ही सामर्थ्य से (पशुपाः इव) पशुपालक और अधीन भृत्यों के स्वामी के समान (राजसि) प्रकाशित हो। (ते एते) वे ये दोनों (एनी) शुभ्रवर्ण के (बृहती) बड़े भारी (अभिश्रिया) श्री अर्थात् राजलक्ष्मी से युक्त (हिरण्मयी) हित और रमणीय स्वरूप वाले (वक्वरी) स्तुति कहने वाले होकर (बर्हिः) राजा प्रजावर्ग या शत्रु मित्र दोनों पक्ष (बर्हिः आशाते) महान् राष्ट्र की आशा करते हैं।

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् विद्वन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (मन्द्र) प्रसंशनीय ! हे (स्वधावः) जलप्रद मेघ के समान सब को अन्नादि वृत्ति देने हारे ! हे (ऋतजात) मेघस्थ जलों से उत्पन्न विद्युत् के समान सत्य ज्ञान द्वारा प्रसिद्ध ! हे (सुक्रतो) शोभन कर्म और प्रज्ञा वाले विद्वन् ! तू (तत्) उस (वचः) उत्तम वचन, वेदोपदेश और स्तुति को (जुषस्व) सेवन कर और (प्रति हर्य) पुनः २ चाह। (यः) जो तू (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रत्यङ् असि) प्रत्येक पुरुष से सत्कार करने योग्य है। अतः तू (दर्शतः) दर्शनीय (संदृष्टौ) सम्यक् दर्शन, यथार्थ तत्व ज्ञान में (रण्वः) रमण करने वाला, और सम्यक् ज्ञान दृष्टि के हो जाने पर अन्यों को भी उपदेश करने वाला होकर (पितुमान् क्षयः इव) अन्न से भरपूर भवन के समान सुख से निवास करने और आश्रय करने योग्य है।

Ber- Sookhta

[१४५]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, विराड्जगती । २, निचृज्जगती च । ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सान्वीयते। तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (सः जगाम) वह विद्वान् परम पद तक पहुंचा है, (सः वेद) वह ही उस परम पद को जानता और प्राप्त करता है। (सः) वह ही (चिकित्वान् ईयते) विशेष ज्ञानवान् होकर ज्ञेय ध्येय परम पद तक जाता है (सः नु ईयते) वही अन्यों द्वारा अनुसरण और अनुकरण करने योग्य है। (तस्मिन्) उसके ही आश्रय पर (प्रशिषः) उत्तम शासन और (तस्मिन्) उसके ही आश्रय पर (इष्टयः) यज्ञ दान आदि उत्तम कर्म और सत्संग सब मैत्रीभाव और लेन देन आदि निर्भर हैं। (सः) वह (वाजस्य) समस्त ज्ञान, अन्न और वेग का और (शवसः) बलों का स्वामी है और वही (शुष्मिणः) बलवान् पुरुषों का भी स्वामी है।

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत्। न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥

भा०—जिस बात को (सिमः) सर्व साधारण, सब कोई लोग, (न विपृच्छति) नहीं पूछा करता, विद्वान् जन ही (तम् इत् पृच्छन्ति) उसी विशेष प्रष्टव्य तत्व को उस विद्वान् के समीप जाकर प्रश्न करें। (यत्) जिसको वह (धीरः) बुद्धिमान् ध्यानयोगी पुरुष (मनसा) अपने मनन सामर्थ्य से (स्वेन इव) अपने आप आत्मा से ही (अग्रभीत्)

ग्रहण करता है। (अस्य) इसका (प्रथमं वचः) प्रथम वचन उपदेश भी (न मृष्यते) संदेह योग्य नहीं होता (न अपरं वचः) और इसका प्रश्न के उपरान्त दिया उत्तर रूप वचन भी (न मृष्यते) संदेह नहीं किया जाता। (अप्रदृपितः) मोह और गर्व आदि से रहित विनीत पुरुष ही (अस्य क्रत्वा) इस विद्वान् के ज्ञान और सामर्थ्य से (सचते) लाभ उठाता है। परमेश्वर पक्ष में—(तम् इत्) उस परमेश्वर या आत्मा को लक्ष्य करके ही सब लोग प्रश्न करते हैं (सिमः न विपृच्छति) सब कोई विशेष प्रश्न भी नहीं करता। वस्तुतः ध्यानयोगी पुरुष ही मनन द्वारा उसके (यत्) जिस स्वरूप को ग्रहण करता है उसके (प्रथमं न मृष्यते न अपरं वचः) सम्बन्ध में पहले और पिछले सभी वचन संदेह से रहित होते हैं। अथवा उस विषयक अगले पिछले सब वचन ठीक २ नहीं जाने जा सकते वह अमीमांस्य है। विनीत, मोहादि रहित पुरुष ही उसके ज्ञान से युक्त हो जाता है।

तमिद्गच्छन्ति जुह्व१स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः॥३॥

भा०—शिष्य का स्वरूप। (तम् इत्) उसको ही (जुह्वः) ग्रहण करने योग्य वेद वाणियां (गच्छन्ति) प्राप्त होती हैं। (अर्वतीः तम्) विद्वानों की ज्ञान वाणियां भी उसको ही प्राप्त होती हैं। वह ही (एकः) अकेला (मे विश्वानि वचांसि) मुझ आचार्य के सब वचनों को सुने। वह (पुरुप्रैषः) बहुत सी आज्ञाओं का पालक, (ततुरः) कार्य करने में अति शीघ्रकारी, अप्रमादी (यज्ञसाधनः) विद्या दान की साधना करने हारा (अच्छिद्रोतिः) त्रुटि रहित व्रत का पालक, (शिशुः) उत्तम प्रशंसनीय एवं मा की गोद में बालक के समान स्वच्छ हृदय से आचार्य की विद्यामय गोद में (रभः) कार्यारंभ करने वाला होकर (सम् आदत्त) उत्तम रीति से ज्ञान ग्रहण करे। (२) आचार्य का

स्वरूप। (जुह्वः अर्वती) वेद वाणियां और विद्वानों की सब वाणियां उसी को प्राप्त हैं वह मुझे एक आचार्य सब वचनोपदेश (श्रृणवत्) श्रवण करावे। (पुरुप्रैषः) बहुत से आज्ञा वचनों वा भृत्य के समान आज्ञा पालक शिष्यों वाला (ततुरिः) अज्ञान और दुःख से लड़ने वाला, (अच्छिद्रोतिः) त्रुटि रहित रक्षा और ज्ञान वाला, मिर्भ्रान्त (शिशुः) उत्तम प्रशंसायोग्य, शास्त्रों का उपदेष्टा, ज्ञानदाता (रभः) शिष्य को अपने अधीन लेने हारा होकर ही (सम आदत्त) अच्छी प्रकार मुझ शिष्य को स्वीकार करता है। (३) राजा को (जुह्वः) शत्रु को ललकारने और वेतन ग्रहण करने वाली सेनाएं और (अर्वतीः) अश्व सेनाएं प्राप्त होती हैं। वह (मे) मुझ प्रजाजन के सब प्रार्थना वचनों को श्रवण करे, आज्ञाएं सुनावे। बहुत से भृत्यों से युक्त, कष्टों से तारने वाला, (यज्ञ-साधनः) प्रजापति के पद पर, परस्पर संगति का करने वाला, सब संघों को वशकारी, अच्छिन्न रक्षक, प्रशंसनीय (रभः) महान् होकर राष्ट्र को ग्रहण करे। (४) विद्वान् को (जुह्वः) ज्ञानवती और (अर्वतीः) बलवती कन्याएं (गच्छन्ति) वरणार्थ प्राप्त होती हैं।

'जुह्वः'–क्षत्रं वै जुह्वः दिशः इतरा स्रुचः। श० १।३।२।११॥ शिशुः'– शेते प्रजासु मातुरङ्के शिशुरिव। शोचयिता वा शत्रूणाम् (सा०) शंसनीयो भवति, शिशीतेर्वा स्याद् दानकर्मणः। (निरु०। १०। ४। २) 'रभः'—रभते, लभते वर्ग।

उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः।
अभिश्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४॥

भा०—शिष्य के कर्त्तव्य। (यत्) जो (सम् आरत) आचार्य का सत्संग करता है और (उपस्थायं चरति) और उसके समीप ही उपस्थित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करता है वह (सद्यः) शीघ्र ही (जातः) आचार्य रूप माता से उत्पन्न (सद्यो जातः)

नव उत्पन्न बालक के समान ज्ञान रहित होकर भी (युज्येभिः) योग करने योग्य अन्य सहाध्यायियों सहित या योग करने योग्य उत्तम गुणों से (तत्सार) शनैः २ आगे बढ़ता है। (यद्) जब कि शिष्यगण (उशतीः) कामना वाली स्त्रियें जिस प्रकार अपने पति के पास जाती हैं उसी प्रकार विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन (यत्) जब (इम्) उस पूज्य (श्वान्तं) शान्त परिपक्व ज्ञान वाले (अपिस्थितम्) पूज्य स्थान पर-स्थित आचार्य को (गच्छन्ति) प्राप्त हों तब वे (नान्द्ये) हृदय का आनन्द प्राप्त करने और (मुदे) हर्ष या सन्तोष प्राप्त करने के लिये (अभि मृशते) नाना प्रकार के प्रश्न करें और तत्व पर विचार करें। आचार्य का कर्त्तव्य, (यदीं अपिस्थितं) जब उस उच्च पद पर स्थित आचार्य के पास (उशतीः) विद्या के अभिलाषी ब्रह्मचारियों की श्रेणियें जावें तब वह (नान्द्ये मुदे) अभिनन्दन करने योग्य हर्ष के लिये (श्वान्तं = स्वान्तं अभिमृशते) अपने समीप आये शिष्य जन को प्रेम से स्वीकार करे, उसे स्पर्श कर आलिंगन करे। वह (सद्यः) शीघ्र ही (जातः) विद्याओं में प्रसिद्ध होकर (युज्येभिः) योग्य गुणों से (तत्सार) युक्त हो (यत् सम् आरत) जो सत्संग करे वह (उपस्थायं चरति) सदा उपस्थित होकर व्रत का आचरण करे। (३) अग्रणी नायक पक्ष में—(यत् सम् आरत) जब प्रजाएं और विद्वान् राजा के शरण में आवें वा जब वीरजन रणांगण में जुटें तब नायक उपस्थित होकर धर्माचरण करे या रण में विचरे। (सद्यः जातः) यशस्वी होकर (युज्येभिः) साथियों सहित (तत्सार) शत्रु से छल गति से चालें चले। (अपिस्थितम्) उत्तम पद पर स्थित नायक को जब नाना धनादि कामनाओं से युक्त प्रजाएं या सेनाएं सब प्रकार से (गच्छन्ति) प्राप्त हों। (श्वान्तं = श्रान्तं) अपनों में से थके हुए सैनिक को (नान्द्ये मुदे) हर्षित और प्रफुल्लित करने के लिये (अभिमृशते) पीठ पर हाथ फेरे, उसे दिलासा दे, थपके। पति पत्नी के

रहस्य धर्मों तथा अध्यात्म का भी इसमें बड़ा वैज्ञानिक उपदेश है जो स्थानाभाव से नहीं लिखते ।

स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि । व्यंब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ३ ॥ १४ ॥

भा०—विद्यार्थी के कर्त्तव्य ! (अप्यः) जलाभिलाषी, (मृगः) हरिण जिस प्रकार (वनर्गुः) जंगल में भटकता और जल खोजता है उसी प्रकार (सः) वह विद्यार्थी भी (मृगः) विद्या तत्वों के खोजने हारा, (अप्यः) ज्ञान और कर्मों के उपदेश का अभिलाषी, (वनर्गुः) वन में आचार्यों और वनस्थ तपस्वियों के आश्रमों में जाता हुआ (उपमस्यां) गुरु के समीप प्राप्त होने वाली (त्वचि) मृगछाला या वृक्षत्वक् या ब्रह्मचारी के योग्य वल्कल पहना कर (निधायि) रखा जाता है, वह ही (ऋत चित्) सत्य ज्ञान को निरन्तर संग्रह करता हुआ (विद्वान् अग्निः) विद्वान् अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानवान् (सत्यः) सत्य आचरणशील, सत्यवक्ता, सज्जनों का हितैषी और उनमें श्रेष्ठ पूज्य होकर, (मर्त्येभ्यः) मरण धर्मा अन्य मनुष्यों को (वयुना) नाना प्रकार के ज्ञानोपदेश करे । (२) नायक राजा, (मृगः) सिंह के समान वीर (अप्यः) कर्मकुशल, (वनर्गुः) सेना-वन में विचरण शील होकर प्राप्त पृथ्वी पर राजा रूप में वह अग्नि रूप से स्थापित किया जाता है वह मनुष्यों को नानाकर्मों का कानून के रूप में उपदेश करता है । वह अग्नि के समान तेजस्वी ऐश्वर्य संचय करने से 'ऋतचित्' है । बलवान् पुरुषों में श्रेष्ठ और सत्य न्यायवान् होने से सत्य है ।

[१४६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १, २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५ त्रिष्टुप् । ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम्॥१॥

भा०—हे विद्वन्! (पित्रोः उपस्थे) माता पिता के समीप (निषत्तम्) विराजमान पुत्र जिस प्रकार (त्रिमूर्धानं) माता पिता और उसके निज का मिला कर तीन मस्तक वाला होता है अर्थात् वह तीनों मस्तकों के ज्ञान को धारण करने वाला होता है, अथवा माता पिता गुरु तीनों की शिक्षा को प्राप्त करने से तीनों के मस्तकों के ज्ञानानुभवों से युक्त होता है इस लिये 'त्रिमूर्धा' है। अथवा माता पिता गुरु तीनों को अति आदर से अपने शिर माथे रखने वाला होने से वह 'त्रिमूर्धा' है। उसके समान ही यह सूर्य भी तीनों लोकों के ऊपर शिर के समान विराजमान होने से त्रिमूर्धा है। (सप्तरश्मिम्) वेद के सातों प्रकार के छन्द ही रश्मि अर्थात् ज्ञान निदर्शक होने से विद्वान् पुरुष 'सप्तरश्मि' है सूर्य की संख्या में सात प्रकार की रश्मि या दूरतक सर्पणशील रश्मि होने से सप्तरश्मि है। अथवा शिरोगत सात इन्द्रिय छिद्र ही उनकी रश्मियों के समान ज्ञान दिखाने के साधन हैं। इधर अग्नि की काली, कराली आदि सात ज्वालाएं सप्तरश्मि हैं। हे विद्वन्! तू ऐसे (अनूनम्) न्यूनता रहित त्रुटि रहित (अग्निं) ज्ञानी पुरुष को (गृणीषे) स्तुति कर। (अस्य चरतः) सर्वत्र विचरण करते हुए (ध्रुवस्य) ध्रुव, धैर्यवान्, स्थिर अन्तःकरण वाले इसके (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के समान ही (विश्वा) सब प्रकार के कार्य और ज्ञान (रोचना) प्रकाश देने वाले एवं सब को रुचि करते हैं। (२) विद्यार्थी का भी लक्षण। हे विद्वन्! तू ऐसे (अनूनम्) न्यूनता रहित, निस्त्रुटि, अखण्डव्रती (अग्निम्) विनीत बालक को (गृणीषे) उपदेश कर। वह (पित्रोः उपस्थे निषत्तम्) माता पिता के समीप बैठा हुआ (त्रिमूर्धानम्) तीनों को अपने शिर से आदर करता हो (आपप्रिवांसं) सब विद्या से पूर्ण करने वाला (सप्तरश्मिम्) सातों ज्ञानेन्द्रियों

से पूर्ण हों। इस (ध्रुवस्य चरतः) स्थिर रूप से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए की (विश्वाः दिवः) समस्त कामनाएं और व्यवहार (रोचना) रुचिकर हों। (३) परमेश्वर पक्ष में—वह माता पिता गुरु तीनों से ऊपर होने से त्रिमूर्धा है सप्त छन्द उसकी सात रश्मि हैं। पूर्ण होने से अनून है। व्यापक होने से विचरणशील है कूटस्थ होने से 'ध्रुव' है। वही विश्व का पालक होने से पप्रिवान् है। ये सब चमचमाते प्रकाश सूर्यादि उसी के हैं।

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य॥२॥

भा०—(उक्षा) भार उठाने में समर्थ बैल जिस प्रकार भारी बोझा उठाता है और जिस प्रकार (महान्) बड़ा (उक्षा) सेचक, जल वर्षक सूर्य (एने ववक्षे) आकाश पृथिवी इन दोनों को धारण करता है, और जिस प्रकार सूर्य (ऋष्वः) सर्वत्र दर्शनीय और महान् होकर (अजरः तस्थौ) अविनाशी होकर विराजता है और जिस प्रकार सूर्य (उर्व्याः सानौ) पृथ्वी के उच्च प्रदेश पर (पदः निदधाति) अपने किरणों को डालता है और (अस्य अरुषासः) इसके प्रकाशमान किरण (ऊधः) जल मय प्रदेशों को (रिहन्ति) स्पर्श कर मानो जल पान कर उनको सुखा देते हैं। अथवा (अस्य) इसके किरण (ऊधः) रात्रि को स्पर्श करते हैं और उसी प्रकार (महान् उक्षा) बड़ा भारी सुखों का वर्षक और जगत् भार के उठाने वाला प्रभु परमेश्वर (एने) इन पृथिवी और आकाश दोनों को (अभि ववक्षे) सब प्रकार से धारण कर रहा है। वह (इतः-ऊतिः) इस लोक की सब प्रकार से रक्षा करता हुआ (ऋष्वः) महान् व्यापक (अजरः) अविनाशी होकर (तस्थौ) विराजता है। वह (ऊर्व्याः) महती प्रकृति के (सानौ) समग्र ऐश्वर्य में भी (पदः) अपनी पूर्व की गति शक्तियों को (निदधाति) स्थापित करता है।

और (अस्य ऊधः) उसके स्तन के समान आनन्द रस से भरे उत्तम रूप को (अरुपासः) रोष रहित, एवं अहिंसक सौम्यजन ही (रिहन्ति) आ-स्वाद लेते हैं। इसी प्रकार राजा, विद्वान् प्रजाओं पर सुख वर्षक होकर स्व, पर दोनों सेनाओं को धारण करे। वह (इतः ऊतिः) अपने पक्ष से सुरक्षित होकर महान् (अजरः) शत्रु को उखाड़ ने में सामर्थ्यवान् होकर (तस्थौ) रण में ठहरे। वह (उर्व्याः) विशाल राज्य भूमि के (सानौ पदः निदधाति) उच्च से उच्च पद या अधिकार की चट्टान पर पैरों के समान (पदः) पदों, पदाधिकारियों को नियुक्त करे। (अरुपासः) सौम्य तेजस्वी लोग (अस्य) इसके (ऊधः) बहुत ऐश्वर्य या जीवना-श्रय जल को धारण करने वाले मेघ के समान सर्वोपरि उपकारक स्वरूप को (रिहन्ति) स्वयं उपभोग करते हैं।

समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने॥३॥

भा०—सूर्य पृथ्वी के समान स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य (वत्सम् अभि संचरन्ती धेनू) गौ जिस प्रकार बछड़े के सदा समीप रहती है उसी प्रकार माता पिता (धेनू) बालक को दूध और अन्न से पोषण करने वाले (समानं वत्सम् अभि संचरन्ती) एक ही संतान या पुत्र को समान रूप से प्रेम पूर्वक प्राप्त होते हुए (विश्वम्) सब प्रकार से (वि चरतः) विविध उपाय और धर्माचरण आदि कार्य करें। वे दोनों (सुमेके) उत्तम शोभायुक्त कर्मों और हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान्, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने हारे (अनपवृज्यान्) कभी परित्याग न करने योग्य, या निन्द्य पदार्थों और आचरणों से रहित (अध्वनः) उत्तम मार्गों को (मिमाने) जाते हुए और (विश्वान् केतान्) सब प्रकार के ज्ञानों और (महः) बड़े २ कार्यों को भी (दधाने) अपने में धारण करते हुए सूर्य पृथिवी के समान रहें। (२) सूर्य और पृथ्वी उत्तम मेघों से जल वर्षण करने से 'सुमेक =

सुमेघ' है। उपदेश देने से आचार्य और सर्वत्र व्यापक होने से परमेश्वर और अधीन बसने से शिष्य तीनों 'वत्स' हैं।

धीरा॑सः प॒दं क॒वयो॑ नयन्ति॒ नाना॑ हृ॒दा रक्ष॑माणा अजु॒र्यम्।
सिषा॑सन्तः॒ पर्य॑पश्यन्त॒ सिन्धु॑मा॒विरे॑भ्यो अभव॒त्सूर्यो॒ नॄन् ॥४॥

भा०—(धीरासः) ध्यान और धारणशील (कवयः) दीर्घदर्शी शास्त्रज्ञ विद्वान् (हृदा) हृदय से, मनन और भक्ति द्वारा (नाना नॄन्) बहुत से लोगों को (रक्षमाणाः) संकटों से और नरक में गिरने से बचाते हुए स्वयं (सिन्धुम् इव) जल को सूर्य के समान (सिन्धुम्) समुद्र के समान अथाह आनन्द सागर प्रभु को (सिषासन्तः) प्राप्त होते हुए, उसका भजन सेवन करते हुए उसको (परि अपश्यन्त) भली प्रकार साक्षात् करते हैं। और वे उस (अजुर्यं) अविनाशी नित्य (पदं) परम प्राप्तव्य पद मोक्ष को (नयन्ति) स्वयं प्राप्त होते और औरों को भी वहां तक पहुंचाते हैं। (एभ्यः) इनके हित के लिये वह (सूर्यः) सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक, सर्वप्रकाशक तेजोमय प्रभु (आविः अभवत्) प्रत्यक्ष होता है।

दि॒दृ॒क्षेण्यः॒ परि॒ काष्ठा॑सु॒ जेन्य॑ ई॒ळेन्यो॑ म॒हो अर्भा॑य जी॒वसे॑।
पु॒रु॒त्रा यदभ॑व॒त्सूरहै॑भ्यो॒ गर्भे॑भ्यो म॒घवा॑ वि॒श्वद॑र्शतः ॥५॥१५॥

भा०—शिष्य विद्याभ्यास करने के उपरान्त (काष्ठासु) समस्त दिशाओं में (दिदृक्षेण्यः) सब लोगों के देखने के योग्य होता है। वह (जेन्यः) सर्वत्र विजयी, और सब के समान गुणों और कर्मों से प्रकट होने वाला, (ईळेन्यः) स्तुति और सत्कार के योग्य (महः अर्भाय जीवसे) छोटे और बड़े सबको जीवन देने वाला हो। वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् और (विश्वदर्शतः) सब प्रकार से और सब के लिये दर्शनीय होकर (यद्) जो (पुरुत्रा) सर्वत्र, या बहुतों को त्राण करने हारा (एभ्यः गर्भेभ्यः) इन गर्भों में उत्पन्न छोटे २ बच्चों का (सूः) उत्पादक और

स्तुति योग्य विद्वान् पुरुषों से स्वतः उत्पन्न होने वाला (अभवत्) हो जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४७]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्नणयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! जो पुरुष (ते) तुझ (आयोः) उत्तम रीति से प्राप्त (ददाशुः) दानशील विद्यादाता के (वाजेभिः) ज्ञान और ऐश्वर्यों से युक्त होकर (शुचयन्तः) अपने आत्मा को शुद्ध पवित्र बनाना चाहते हैं और जो (आशुषाणाः) तेरे ज्ञान आदि गुणों को निरन्तर या अति स्वल्पकाल में ही ग्रहण कर लेते हैं वे (देवाः) विद्या की कामना वाले विद्यार्थी जन और विद्वान् पुरुष (उभे) दोनों ही (दधानाः) विद्या को स्वयं धारण करते हुए भी (ऋतस्य सामन्) वेद ज्ञान को अपने शिष्यों को अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त (तोके तनये) पुत्र और शिष्यादि में (कथा) किस प्रकार से (रणयन्त) उपदेश करें।

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥२॥

भा०—उपदेश करने का प्रकार बतलाते हैं। [शिष्य] हे (यविष्ठ) अति तरुण ! प्रौढ़ ! विद्यासम्पन्न ! हे (स्वधावः) उत्तम अन्न को धारण करने वाले ! अथवा हे (स्वधावः) अपने आपको उत्तम रीति से वश करने वाली दमन शक्ति से सम्पन्न ! आप (मे) मुझको (अस्य) इस

(मंहिष्ठस्य) अति उत्तम, दान योग्य, प्रशस्त, (प्रभृतस्य) उत्तम रीति से धारण करने योग्य, (वचसः) वचन, उपदेश को (बोध) ज्ञान कराओ। [आचार्य] हे शिष्य ! तू (मे बोध) मुझसे ज्ञान प्राप्त कर । इस प्रकार परस्पर प्रार्थना और आदेश के बाद (त्वः पीयति) एक तो ज्ञान को रस के समान पान करता है (त्वः) दूसरा विद्वान्, गुरु (अनु गृणाति) उपदेश करता है । [शिष्य] हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! मैं (ते) तेरी (वन्दारुः) स्तुति करने वाला, तेरा प्रिय शिष्य (ते तन्वं वन्दे) तेरे शरीर को अभिवादन करता हूं, चरणों में नमस्कार करता हूं । इस प्रकार शिष्य गुरु के चरणों में नमस्कार करे । अथवा—(त्वः पीयति) एक ताड़ना करता है तो भी (त्वः अनुगृणाति) दूसरा उसके अनुकूल विद्याभ्यास करता है इस प्रकार (वन्दारुः) अभिवादन शील होकर मैं तेरे चरणों में वन्दना करूं ।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आचार्य ! एवं प्रभो ! परमेश्वर ! (ये) जो (ते) तेरे अधीन, (पायवः) सूर्य के समान ज्ञानव्रत का पालन करने वाले, (पश्यन्तः) स्वयं सब पदार्थों को भली प्रकार देखते हुए (अन्धं) सुजांखे पुरुष जिस प्रकार अन्धे को बुरे मार्ग से बचा देते हैं उसी प्रकार (अन्धं) ज्ञानरहित पुरुष को (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (अरक्षन्) बचावें । अथवा—(पायवः) ज्ञान के पिपासु जन (पश्यन्तः) देखते हुए, लोचनवान् होकर कामादि से अन्ध हुए (मामतेयं) ममता करने वाले अपने आत्मा को बुरे मार्ग से बचावें । और (विश्ववेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी आचार्य (सुकृतः) उत्तम आचरण करने वाले (तान्) उन सबकी (ररक्ष) रक्षा करे जिससे कि (दिप्सन्तः) नाशकारी (रिपवः) शत्रुगण, और काम, क्रोध, पाप युक्त

कर्म और हीन पुरुष आदि (अह) भी (न देभुः) उन पर आघात नहीं कर सकें ।

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् गुरो ! (यः) जो पुरुष (अररिवान्) किसी को कुछ नहीं देता और (अघायुः) दूसरे पर पापाचरण और आघात आदि का ही प्रयोग करने की चेष्टा करता है वह (अराति वा) अदानशील होकर ही (द्वयेन) भीतर कुछ और बाहर कुछ इस प्रकार के दो रूपों से (मर्चयति) लोगों को ठगता है । परन्तु (यः) जो (नः) हमारे बीच (मन्त्रः) मननशील और विचारवान् पुरुष है (सः) वह हमारा (पुनः) वार २ (गुरुः) उपदेष्टा (अस्तु) हो । और (अस्मै) उस गुरु के (दुरुक्तैः) दुःखदायी कठोर वचनों से भी शिष्यजन अपने अपने (तन्वं) शरीर और आत्मा को (अनु मृक्षीष्ट) उसके अनुकूल आचरण करके शुद्ध पवित्र करें ।

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्वम् ॥

मनुष्य अपने गुरुजनों की कठोर वाणियों से तिरस्कार को प्राप्त होकर ही बड़े पद को प्राप्त करते हैं ।

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥५॥१६

भा०—(उत वा) और अथवा (यः) जो (प्रविद्वान्) उत्तम विद्यावान् होकर (मर्त्तः) एक मनुष्य दूसरे (मर्त्तं) पुरुष को (द्वयेन) कोमल और कठोर या भीतर से हित और ऊपर से कटु दोनों प्रकार के वचनों से (मर्चयति) कहता है वह तू हे (सहस्य) पाप वासनाओं को विजय करने वाले बल में स्थित ! और हे सहनशील ! हे (स्तव-

मान) सदा सत्योपदेश करने हारे ! तू (स्तुवन्तम्) स्तुति करने वाले, शिष्य को (अतः) इसीलिये (पाहि) रक्षा कर । तू (नः) हमें (दुरिताय) दुष्टाचरण करने के लिए (माकिः धायि) कभी धारण मत कर अर्थात् अपने अधीन रखकर बुरा काम मत करने दे । इति षोडशो वर्गः॥

[१४८]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (ईम् मातरिश्वा विष्टः) इस अग्नि में वायु सब प्रकार से प्रविष्ट हो जाता है और उसको (विश्वाप्सुं) समग्र रूपों से युक्त, (विश्वदेव्यम्) सब दिव्य पदार्थों में व्यापक जान कर विद्वान् पुरुष (मथीत्) मथ कर उत्पन्न करता है और जिस (वपुषे विभावम्) देह में विशेष कान्ति से युक्त अग्नि को (मनुष्यासु विक्षु) मननपूर्वक कार्यों को करने वाली मानव प्रजाओं में, यज्ञों में सुरक्षित रूप से स्थापित करते हैं उसी प्रकार (यत्) जिसको प्राप्त होकर (मातरिश्वा) अपने माता, निर्माता, ज्ञानदाता, के अधीन रह कर विद्या को प्राप्त होने और जीवन धारण करने वाला, माता की गोद में बालक के समान नव शिष्य (विष्टः) प्रविष्ट होकर, उसका आश्रय लेकर (होतारं) ज्ञान के देने वाले और शिष्य को अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करने वाले (विश्वाप्सुम्) समस्त ज्ञानों, कर्मों और नाना रूप पदार्थों के जानने वाले (विश्वदेव्यम्) सब ज्ञानेच्छुक विद्यार्थियों के हितकारी आचार्य को प्राप्त होकर (मथीत्) दूध में से मक्खन के समान ज्ञानरूप सार को मथ कर प्राप्त करे । प्रश्नोत्तर और सद्-वाद द्वारा उससे ज्ञान प्राप्त करे । (यं) जिसको (वपुषे)

उत्तम ज्ञान रूप बीज के वपन करने और अज्ञान के नाश करने के लिये (विभा-वम्) विशेष कान्ति और ज्ञान सामर्थ्य से युक्त (चित्रं) ज्ञान के देने वाले, ज्ञान में रमण करने वाले, अद्भुत, आश्चर्यकारी पुरुष को विद्वान् जन (मनुष्यासु विक्षु) मनन पूर्वक कर्म करने वाली प्रजाओं या अन्तःप्रविष्ट शिष्य रूप प्रजाओं में (स्वः न) सूर्य के समान उत्तम ज्ञान-प्रकाशक रूप से (निदधुः) गुरु पद पर स्थापित करें ।

ददानमिन्न ददभन्त मन्मा॒ग्निर्वरूथं मम तस्यं चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वरूथं) वरण करने योग्य, उत्तम (मन्म) विज्ञान (ददानम्) देने वाले पुरुष को (न ददभन्त) कभी पीड़ित नहीं किया करते । और (तस्य मम) उस मुझ विद्वान् के (मन्म वरूथम्) मनन करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को (अग्निः) अंगों में विनय से झुकने वाला विनीत शिष्य ही (चाकन्) लेने की इच्छा करे। (उपस्तुतिम् भरमाणस्य) अति समीप प्राप्त शिष्य के प्रति उपदेश करने योग्य वाणी को धारण करने वाले (अस्य कारोः) इस क्रियाशील, कुशल पुरुष के (विश्वानि कर्म) समस्त कर्मों को (जुषन्त) प्रेम से ग्रहण करो ।

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

भा०—(रथ्यः अश्वासः गृभयन्तः न) रथ में लगे उत्तम अश्व रासों द्वारा सुसंयत होकर जिस प्रकार रथ में स्थित पुरुष को (इष्टौ सु प्र नयन्त) प्राप्त करने योग्य देश में ले जाते हैं उसी प्रकार (यज्ञियासः) विद्या का दान और आदान करने में कुशल पुरुष (यं) जिसको (नित्ये चित् सदने) नित्य, स्थिर आश्रय या आसन पर स्थापित करके (जगृभ्रे) उसको गुरु रूप से ग्रहण या स्वीकर करते हैं और (प्रशस्तिभिः) और उत्तम वाणियों उत्तम शासन क्रियाओं द्वारा (दधिरे) धारण करते हैं

ऐसे शिष्य को विद्वान् लोग (गृभयन्तः) अपने अधीन ग्रहण करते हुए, (रारहाणाः) ज्ञान का प्रदान करते हुए (इष्टौ) अभिलाषा करने योग्य और इष्ट, उपास्य और दातव्य विद्या मार्ग में (सु प्र नयन्त) अच्छी प्रकार आगे ही आगे ले जावें, उसे उन्नत करें। शिष्य जन को विद्वान् लोग उत्तम शासनों द्वारा ग्रहण करें, धारण करें और आगे सन्मार्ग पर बढ़ावें।

पुरूणि द॒स्मो नि रि॑णाति॒ जम्भै॒राद्रो॑चते॒ वन॒ आ वि॒भावा॑।
आद॑स्य॒ वातो॒ अनु॑ वाति शो॒चिरस्तु॒र्न शर्या॑मस॒नामनु॒ द्यून् ॥४॥

भा०—आचार्य का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार (दस्मः) जला कर नाश कर डालने वाला अग्नि (जम्भैः) अपने ज्वालाओं से (पुरूणि) बहुत से वनों को (निरिणाति) व्याप लेता और नाश कर देता है और जिस प्रकार (दस्मः) शत्रुनाशकारी बलवान् योद्धा (जम्भैः) अपने हिंसाकारी साधनों से और (दस्मः) हिंसक जन्तु अपने (जम्भैः) दांतों से बहुतों को काटता है उसी प्रकार आचार्य भी (दस्मः) अज्ञानों और दुःखों का नाशकारी होकर (जम्भैः) ताड़ना आदि उपायों से (पुरूणि) बहुत से बुरे व्यसनों को (नि रिणाति) सर्वथा दूर कर देता है। और जिस प्रकार अग्नि (विभा-वा) विशेष कान्तिमान् होकर (वने) जंगल में (आरोचते) सब तरफ़ प्रकाश करता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी (वि-भावा) विशेष ज्ञान सामर्थ्य से युक्त होकर (वने) शिष्यों के प्रदान करने योग्य ज्ञान में (आ रोचते) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। और जिस प्रकार (अस्य शोचिः अनु वातः वाति) अग्नि की ज्वाला के अनुकूल ही वायु बहा करता है उसी प्रकार (अस्य) इस आचार्य के (शोचिः अनु) दिखाये प्रकाश के पीछे २ (वातः) वायु के समान सदागति, आलस्यरहित, सावधान, ज्ञानवान् शिष्यगण भी (अनु वाति) अनुगमन करे। और जिस प्रकार (अस्तुः असनां शर्यां) बाण के फेंकने

वाले धनुर्धारी के फेंके हुए तीव्र बाण के पीछे २ वायु वेग से जाता है उसी प्रकार (अस्तुः) ज्ञान देने वाले गुरु के (असनाम्) बुरी आदतों को बाहर निकालने वाली (शर्याम्) ताड़ना के अनुसार ही विद्यार्थी (अनु द्यून्) सब दिन चला करे।

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ५।१७

भा०—विद्यार्थी का बल। जिस प्रकार (गर्भे सन्तं) काष्ठादि के गर्भ में लगे अग्नि को (रेषणाः न रेषयन्ति) बड़े आन्धी के झंकारे भी नहीं नष्ट कर सकते उसी प्रकार (यं) जिस ब्रह्मचारी को (गर्भे सन्तं) सावित्री के गर्भ में या विद्या के ग्रहण काल में (सन्तं) विद्यमान अग्नि स्वरूप तेजस्वी को (न रिपवः) न भीतरी शत्रु, काम, क्रोध, लोभ आदि व्यसन, और (न) नाहीं (रिषण्यवः) हिंसा करने वाली, नाशकारिणी (रेषणाः) आत्मा की नाशक प्रवृत्तियें (रेषयन्ति) विनाश करें और जिस प्रकार अग्नि को (अन्धाः अपश्या अभिख्या न दभन्) अन्धे, न देखने वाले, दृष्टि विहीन, केवल बात बनाने वाले लोग नहीं नाश कर सकते। उसी प्रकार उसको (अन्धा अपश्याः) मोहादि से अन्धे हुए और अच्छी प्रकार न देखने वाले (अभिख्याः) निन्दक जन भी (न दभन्) नष्ट न कर सकें। (ईम्) उसकी सब प्रकार से (नित्यासः) स्थिर, ध्रुव (प्रेतारः) उसके आगे २ जाने वाले शिष्यजन या गुरुजन (अरक्षन्) रक्षा करें।

अध्यात्म में—उस आत्मा को शत्रु हिंसक आदि नाश नहीं कर सकते। अन्धे, मोहान्ध असम्यग्-दृष्टि जन देख नहीं सकते, आगे बढ़ने वाले ज्ञानी ही उसकी रक्षा करते हैं। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१४९]

दीर्घतमा ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ भुरिगनुष्टुप्। २, ४ निचृदनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप्। ३ उष्णिक्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

म॒हः स रा॒य एष॑ते॒ पति॒र्दन्नि॒न इ॒नस्य॒ वसु॑नः प॒द आ ।
उप॒ ध्रज॑न्त॒मद्र॑यो वि॒धन्नित् ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (महः) बड़े भारी (रायः) ऐश्वर्य को (आ ईषते) प्राप्त करता है जो (दन्) दान देता हुआ ही (वसुनः) वसने वाले प्रजाजन के वा सब को बसाने वाले ऐश्वर्य और उत्तम नायक के (पदे) उच्चपद पर स्थित होकर (इनस्य इनः) स्वामी का स्वामी, सूर्य के समान तेजस्वी और उसका भी स्वामी, या प्रकाशक होकर (आ) प्रकट होता है। (अद्रयः) मेघ जिस प्रकार (ध्रजन्तम् उप विधन्) वेग से गति करते हुए वायु के साथ ही रहते हैं उसी प्रकार (अद्रयः) शस्त्रधारी सैन्य बल, (ध्रजन्तम्) वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले नायक की (इत्) ही (उप विधन्) आज्ञा पालन करें और उसकी सेवा करें।

स यो वृषा॑ न॒रां न रोद॑स्योः॒ श्रवो॑भि॒रस्ति॑ जी॒वपी॑तसर्गः ।
प्र यः स॑स्रा॒णः शि॑श्री॒त योनौ॑ ॥ २ ॥

भा०—(रोदस्योः न) भूमि आकाश के बीच में स्थित जिस प्रकार (वृषा श्रवोभिः जीवपीतसर्गः) बरसने वाला मेघ अन्नों द्वारा ही जीवों से अपने उत्पन्न किये उत्तम अन्न जलादि भोगों को भुगवाता है और वह (योनौ सस्राणः शिश्रीत) अन्तरिक्ष में गति करता और व्यापता हुआ विराजता है और जिस प्रकार सूर्य (नरां वृषा) सब नायक वायुओं में जलों को बरसाने वाला है, वही (श्रवोभिः) अन्नों द्वारा या स्रवण करने वाले मेघों से (जीवपीतसर्गः) जीवों को जल पिलाने हारा है (योनौ सस्राणः शिश्रीत) अन्तरिक्ष में स्थित होकर, और व्याप कर भी सब औषधियों और जीवों को ताप द्वारा संतप्त करता और पकाता है। उसी प्रकार (यः) जो (रोदस्योः) राजा प्रजावर्ग और माता पिता के बीच में (श्रवोभिः) श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेश और कीर्तियों से (जीवपीतसर्गः अस्ति) जीवित पुरुषों और प्राणियों को नाना सृष्टि के

सुख शीतल जलों के समान पिलाता है, सब को सुख पहुंचाता है और (यः) जो (सस्राणः) प्रजाओं में और आश्रित जनों में प्रविष्ट होकर (योनौ) गृह में और अपने पद पर (प्र शिश्रीत) अच्छी प्रकार विराजे और अन्यों को आश्रय देवे और शत्रुओं को संतापित करे (सः) वह ही (नरां वृषा) सब नायकों और पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ, नायक पुरुष कहाने योग्य है। (२) परमेश्वर सुखों का वर्षक होने से वृषा। सब संसार के कर्म फलों को भुगवाता है। वह ही (योनौ) गर्भाशय में प्रवेश कराता हुआ जीव को पकाता या परिपक्व कर्म फल देता है। जीव पक्ष में— जीव होकर सर्ग अर्थात् कर्म या उपभोग करता है और जो योनि में स्वयं जन्मजन्मान्तर से आश्रय लेता है वह ही सब (नरां वृषा) देह के नायक प्राणों में श्रेष्ठ, उनमें शक्ति संचारक आत्मा है।

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा॥ ३॥

भा०—(अर्वा न) जिस प्रकार अश्व (नार्मिणीम् पुरं अदीदेत्) नाना विलास योग्य सुखों से सम्पन्न पुरुषों की नागरी को सुशोभित करता है (सूरः न) और जिस प्रकार सूर्य (रुरुक्वान् शतात्मा) तेजस्वी होकर सैकड़ों स्थानों में व्याप्त होता है उसी प्रकार (यः) जो (अत्यः) सर्वत्र जाने हारा, व्यापक अधिकारवान् (कविः) क्रान्तदर्शी, अति विद्वान्, (नभन्यः) आकाश में व्यापक, वायु के समान बलवान्, वेगवान् और (न-भन्यः = न हन्यः) किसी से भी परास्त न होने वाला, किसी से भी न हनन करने योग्य हो, वह नायक ही (नार्मिणीम्) नाना विलासों से भरी पूरी (पुरं) नगरी को (आ अदीदेत्) सब प्रकार से चमका देता है। वह ही नगरी का राजा होने योग्य है। वह (सूरः न) सूर्य के समान (रुरुक्वान्) अति तेजस्वी और (शतात्मा) सैकड़ों

प्रजाजनों और भृत्यों को आत्मा के समान प्रिय, और जीवन दाता होकर रहे।

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

भा०—(द्विजन्मा) जिस प्रकार दो अरणियों में से उत्पन्न अग्नि (शुशुचानः त्री रोचनानि अस्थात्) तेज से चमकता हुआ चमकने वाले तत्व अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों में स्थित है और वही (विश्वा रजांसि) समस्त लोकों को प्रकाशित करता है वह (अपां सधस्थे होता) जलों के साथ मिल कर सबको अपने में घोलने में समर्थ और (यजिष्ठः) सबको मिलाने या शक्ति देने में समर्थ होता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष (द्विजन्मा) माता पिता या पिता और गुरु दोनों से जन्म पाकर और दीक्षित होकर स्वयं (शुशुचानः) अति तेजस्वी होकर शुद्ध पवित्र होकर (त्री रोचनानि) तीनों उत्तम वर्णों और शेष तीनों आश्रमों को और (विश्वा रजांसि) समस्त राजस भोगों और ऐश्वर्यों को (अभि अस्थात्) अपने वश करे। वह ही (अपां सधस्थे) आप्त पुरुषों के एकत्र होकर बैठने के सभा भवन में (होता) सबको अधिकार देने और सबको स्वीकारने वाला मुख्य और (यजिष्ठः) सबको संगत करने और सबको भृति आदि देने हारों मे सबसे मुख्य होकर विराजे।

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(अयं) यह (सः) वही (होता) सबके ज्ञानैश्वर्य का देने और लेने वाला विद्वान् पुरुष है (यः) जो (द्विजन्मा) माता पिता के द्वारा प्राप्त प्रथम जन्म के अनन्तर आचार्य और विद्या द्वारा व्रताचरण और विद्याध्ययन करके द्विजन्मा होकर (विश्वा) समस्त (श्रवस्या) श्रवण करने योग्य, यशोजनक (वार्याणि) श्रेष्ठ २ ऐश्वर्यों

और ज्ञानों को (दधे) धारण करता है। (सुतुकः) उत्तम पुत्रवान् पिता जिस प्रकार (अस्मै ददाश) अपने प्रत्यक्ष पुत्र को सर्वस्व दे देता है उसी प्रकार जो (सुतुकः) उत्तम पुत्र के समान उत्तम शिष्य से युक्त होकर (मर्त्तः) स्वयं मरणधर्मा होने से अपने विद्या धन को भी (अस्मै ददाश) इस विद्यार्थी को सौंप दे, इसी प्रकार अग्रणी पुरुष जो पुत्र-सम प्रजावान् होकर (अस्मै) राष्ट्र के जनों के हितार्थ ही सब कुछ दे देता है वही (मर्त्तः) श्रेष्ठ, कर्मवीर पुरुष है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१५०]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिग्गायत्री ।
२ निचृदुष्णिक् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (दाश्वान्) दान-शील (अरिः) ऐश्वर्यवान् स्वामी और सुखों और धनों को प्राप्त कराने वाला होकर मैं प्रजाजन (तोदस्य शरणे) आज्ञाकारी (महस्य) बड़े अध्यक्ष के (शरणे) गृह में नियुक्त भृत्य के समान होकर (तव स्वित्) तेरे ही (शरणे) शरण में या आश्रय में रह कर, तेरा ही होकर (त्वा पुरु) तुझे बहुत कुछ (वोचे) कहूं, बहुत कुछ प्रार्थना, आदेश करूं।

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

भा०—(अदेव-योः) जो न विद्या का दान दे सके और न धन का दान दे सके वे दोनों दान न देने के कारण 'अदेव' हैं, उन दोनों में से जो (धनिनः अनिनस्य) धनवान् होकर भी उस धन के भोग और दान

में समर्थ नहीं है उसके और (प्रहोषे चित् अररुषः) उत्तम रीति से दान और उपभोग में न लगाने हारे (प्र जिगतः) उत्तम पद पर प्राप्त या बात बहुत बनाने वाले के विषय में भी मैं (कदा च न) कभी (विवोचे) विशेष स्तुति वचन नहीं कहता । अथवा (अदेवयोः) अदानशील पुरुषों में से (अनिनः) उत्तम प्राणों के स्वामी (धनिनः) धन के प्रभु (प्रहोषे चित् अररुषः) प्रदान के काल में भी रोष और क्रोध से रहित (प्र जिगतः) उत्तम पद को प्राप्त पुरुष के लिये मैं (कदा च न विवोचे) कभी विपरीत वचन न कहूं ।

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

भा०—(दिवि चन्द्रः) आकाश में जिस प्रकार चन्द्रमा सब को आह्लादित करने वाला, (व्राधन्तमः) नित्य वृद्धि को प्राप्त होने वाला होता है उसी प्रकार हे (विप्र) विद्वन् ! विविध ऐश्वर्यों और ज्ञानों से स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने हारे ! (सः) वह उत्तम पुरुष भी (महः) महान् (दिवि) सब कामनाओं के पूर्ण करने में और तेज में (व्राधन्तमः) सदा वृद्धिशील होकर (चन्द्रः) सब को आह्लादकारक होता है । हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! ऐसे (वनुषः) सेवन करने और ज्ञान और ऐश्वर्य दान देने वाले (ते) तेरे अधीन रह कर हम (प्र-प्र इत् स्याम) उत्तम २ पद को प्राप्त होंवे । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१५१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ विराट् जगती । ६, ७ जगती । ८, ९ निचृज्जगती च ॥ नवर्चं सूक्तम् ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (गव्यवः) रश्मियों की इच्छा करने वाले विद्वान् जन (स्वाध्यः) उत्तम रीति से अग्नि विद्युत् की रक्षा करने में कुशल पुरुष (विदथे) उसको प्राप्त करने के निमित्त (शिम्या) विशेष क्रिया द्वारा विद्युत् को (अप्सु जीजनन्) जलों से भी उत्पन्न कर लेते हैं और जिस प्रकार विद्युत् अग्नि रूप के (पाजसा) बल और (गिरा) शब्द से (रोदसी अरेजेताम्) आकाश और पृथ्वी दोनों कांप जाती हैं उनको लोग (प्रति प्रियं) सब को प्रिय, हितकारी (यजतं) संगत करने वाला, दो पृथक् तत्वों के मिलाने वाला और (जनुषाम् अवः) और उत्पन्न हुए प्राणियों को रक्षा करने वाला भी होता है। उसी प्रकार (गव्यवः) गो अर्थात् वेद वाणी के उत्तम ज्ञाता और भूमि के बड़े २ स्वामी लोग (स्वाध्यः) उत्तम रीति से प्रजा के पालन पोषण करने में समर्थ उत्तम, बुद्धिमान्, (गोषु) गवादि पशुओं के आश्रय और भूमियों में बसी प्रजाओं के निमित्त (यं) जिस उत्तम नायक को (मित्रं न) प्रजा को मरण-विपत्ति से बचाने वाले, प्रजा के मित्र के समान स्नेही रूप से (अप्सु) प्रजाओं के बीच और (विदथे) संग्राम और ज्ञान लाभ के निमित्त यज्ञादि में अग्नि के समान भी (जीजनन्) मुख्य रूप से प्रकट करते हैं, उसको स्थापित करते हैं, उसके (पाजसा) पालन सामर्थ्य और बल पराक्रम से और (गिरा) उसकी आज्ञा से (रोदसी) एक दूसरे की मर्यादाओं को रोकने में समर्थ, समान बल वाली अपनी और प्रतिपक्ष की सेनाएं या राज प्रजावर्ग दोनों (अरेजेताम्) कांपें, ऐसे (प्रियं) सर्वप्रिय, (यजतं) सब को संगठित करने हारे, एवं दानशील पुरुष को (जनुषाम्) समस्त जनों के (अवः) पालक रूप से (प्रति जीजनन्) प्रतिष्ठित करें।

यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्यं सोमिनः प्र मित्रासो न दंधिरे स्वाभुवंः।
अधं क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः॥ २॥

भा०—हे (वृषणा) एक दूसरे के प्रति सुखों के वर्षण करने और

दुष्टों की शक्तियों को रोकने वाले मित्र और वरुण ! अर्थात् दिन रात्रि के समान सदा साथ रहने वाले स्त्री पुरुषो ! वा राज प्रजावर्गो ! (यत् ह) जब (वां) तुम दोनों के हितकारी (पुरुमीढस्य) मेघ के समान बहुत सी प्रजाओं को ज्ञान और धनादि जलों से सींचने वाले (सोमिनः) ज्ञानैश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुष के (स्वाभुवः) अपने २ व्यापार करने में कुशल, सामर्थ्यवान् पुरुष (मित्रासः न) मित्रों के समान रक्षक होकर (क्रतुं) यज्ञ को यज्ञकर्त्ताओं के समान, उसके राज्य कार्य को (प्र दधिरे) अच्छी प्रकार धारण करें, आप दोनों तब (पस्त्यावतः) गृहों के स्वामी, उस (अर्चतः) पूज्य विद्वान् पुरुष की (गातुम्) वाणी या आज्ञा का (विदतम्) ज्ञान प्राप्त करो (उत) और (श्रुतम्) नित्य श्रवण करो ।

आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे । यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृषणा) विद्या, सुख, ज्ञान और वीर्य के सेचन और संवर्धन करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (क्षितयः) पृथिवी निवासी प्रजाजन (महे दक्षसे) बड़ी भारी आत्मबल की वृद्धि के लिये ही (वां) तुम दोनों के (प्रवाच्यं) अच्छी प्रकार गुरु-उपदेश प्राप्त करने योग्य (जन्म) विद्या जन्म को (भूषन्) अलंकृत करते हैं अर्थात् गुरु के अधीन शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं । (यत्) जिससे आप दोनों (ईम्) सब प्रकार से (ऋताय) सत्य ज्ञान के प्राप्त करने के लिये (भरतः) अपने आप को पुष्ट करो और (यत्) जिससे (अर्वते) उत्तम ज्ञानवान् गुरु के प्रियाचरण करने के लिये उसके अधीन (होत्रया) वेदवाणी और (शिम्या) वैदिक कर्मानुष्ठान द्वारा (अध्वरं) अहिंसा आदि धर्मों से युक्त ब्रह्मचर्य आदि व्रतपालन को (प्र वीथम्) उत्तम रीति से पालन करो ।

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत्। युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः॥४॥

भा०—पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन। हे (असुर) प्राण के समान बलवान् और प्राणों में रमण करने वाले मित्र और वरुण ! राजन् और राजमित्र एवं उत्तम स्त्री पुरुषो ! (या महिप्रिया) जो बहुत अधिक प्रिय, सुख देने और प्रजा और पति को तृप्त करने हारी होती है (सा क्षितिः) वह ही उत्तम निवास योग्य भूमि के समान गृह बसा कर रहने योग्य उत्तम स्त्री होती है। हे (ऋतावानौ) परस्पर सत्य व्यवहार को धारण करने वालो ! तुम दोनों (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (प्र घोषथः) उत्तम जान कर उसका भाषण करो और उसी सत्य को (बृहत्) सदा वृद्धिकारी जान कर (आघोषथः) सर्वत्र उसका उपदेश करो। (धुरि दक्षं गां न) शकट का बोझा ढोके ले जाने के कार्य में जिस प्रकार दृढ़, बलवान् बैल को जोड़ा जाता है उसी प्रकार (युवं) आप दोनों भी (बृहतः) बड़े भारी, वृद्धिशील (दिवः) ज्ञान प्रकाशमय वेद के (दक्षम्) ज्ञान और (अपः) उसमें उपदिष्ट कर्म और (आभुवं) सब कार्यों के सम्पादन करने में समर्थ (गां) वेद वाणी और श्रेष्ठ पुरुष को (धुरि) अपने बड़े भारी कार्य भार को उठाने में (उपयुञ्जाथे) उपयोग किया करो।

मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः। स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव॥५॥२०

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! और गुरु शिष्यजनो ! आप दोनों (अत्र) (मही) इस पृथ्वी में (महिना) महान् सामर्थ्य, विशेष महत्ता से (वारम्) वरण करने योग्य और दुःखों के वारण करने वाले एक दूसरे को (ऋण्वथः) प्राप्त होवो। और (सद्मन्) घर में (अरे-

णवः) दोष रहित, अहिंसक, (तुजः) दूध देने वाली और पालन करने वाली (धेनवः) दूध पिलाने वाली गौवें जिस प्रकार प्रातः सायं (स्वरन्ति) मेघोत्पादक वायु और सूर्य को लक्ष्य करके रंभाते हैं। उसी प्रकार और उनके समान ज्ञान रस का पान कराने वाले, (अरेणवः) अहिंसक, निर्दोष, (तुजः) व्रतपालक जन और अन्न आदि देने वाली स्त्रियें एवं गौओं के समान सुशील ज्ञान पिपासु शिष्यजन (तक्वीः इव) चोरों से रक्षा करने वाले पहरे दारों के समान (निम्रुचः उषसः) सब रातों और सब दिनों (उपरतातिम्) मेघ के समान ज्ञानवर्षक और (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक पालक पुरुष और आचार्य को (स्वरन्ति) सुखपूर्वक प्राप्त हों, परस्पर एक दूसरे को उत्तम वचन कहें और संकट से चेताते रहें। इधर शिष्यजन गुरुजन ज्ञान को प्राप्त कर विद्याध्ययन करें। इति विंशो वर्गः ॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ६

भा०—हे (मित्र वरुण) मित्र! और हे वरुण! दिन रात्रि, सूर्य और सिन्धु के समान परस्पर स्नेह, प्राणरक्षा और श्रेष्ठ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो! (वाम्) तुम दोनों की (केशिनीः) उत्तम केशों से युक्त, सुसभ्य, गृहस्थ स्त्रियें (ऋताय) तुम्हारे सत्य आचार और व्यवहार के विषय में (अनूषत) स्तुति करें। और तुम दोनों परस्पर के (गातुम्) उत्तम वाणी और उत्तम भूमि और उत्तम मार्ग के उपदेष्टा और पोषक जानकर (अर्चथः) एक दूसरे का आदर करो। और आप दोनों (त्मना) स्वयं (धियः) उत्तम बुद्धियों और वाणियों को (अवसृजतम्) परस्पर प्रयोग करो। और (धियः पिन्वतम्) उत्तम कर्मों और स्तुतियों को देकर एक दूसरों को बढ़ाओ और प्रसन्न रखो। और (विप्रस्य मन्मनाम्) विद्वान् पुरुष की मनन करने योग्य ज्ञान वाणी को (इरज्यथः) प्राप्त करो।

यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः। उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो, और गुरु शिष्य जनो ! (वां) आप दोनों को (यः) जो पुरुष (यज्ञैः) नाना प्रकार के दानों और सत्संग योग्य ज्ञानोपदेशों से (शशमानः) आदर सत्कार करता और उपदेश करता हुआ (कविः) विद्वान् (होता) ज्ञानप्रदाता, (मन्मसाधनः) ज्ञान विज्ञान को मननपूर्वक साधन करने वाला होकर (दाशति) तुम्हें उत्तम ऐश्वर्य देता और ज्ञानोपदेश करता है और जो (यजति) तुमसे सत्संग करता है तुम दोनों (अह) सदा (तं उप गच्छथः) उसके ही समीप सदा जाया आया करो और उस (अध्वरम्) अविनाशक, सौम्य अहिंसक, द्वेषरहित पुरुष को (वीथः) प्राप्त होओ। और (अस्मयू) हम सब के प्रिय होकर (गिरः) ज्ञान वाणियों और (सुमतिम्) शुभ मति को (गन्तम्) प्राप्त होवो और हमें भी प्राप्त कराओ।

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु। भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे॥८॥

भा०—जो पुरुष (मनसः प्रयुक्तिषु) मन के उत्तम प्रयोगों और व्यवहारों के समान ज्ञान के उत्तम प्रयोगों में भी (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ कुशल और (ऋतावाना) सत्य ज्ञान, धर्माचरण और ऐश्वर्यवान् (वां) तुम दोनों को (यज्ञैः) उत्तम सत्कार, मान, पूजा और सत्कर्मों द्वारा (गोभिः) वाणियों और भूमियों द्वारा (अञ्जते) प्रकट करते हैं, तुम्हें उज्ज्वल करते हैं। और जो (वां) आप दोनों को (मन्मना) मनन करने योग्य ज्ञान और (संयता) संयमशील (अदृप्यता) विना गर्व के (मनसा) चित्त से (गिरः) वेदवाणियों का (भरन्ति) उपदेश करते

हैं वे आप दोनों उनके (रेवत्) ज्ञानैश्वर्य से युक्त, वचन और ज्ञान को (आशाथे) प्राप्त होवो ।

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ६ २१

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (रेवत् वयः) ऐश्वर्य युक्त बल और ज्ञान और दीर्घ जीवन को (दधाथे) धारण करो और (रेवत्) उसको ऐश्वर्ययुक्त बना कर (आशाथे) उपभोग करो । आप दोनों (नरा) नायक होकर (इतः-ऊति) इस लोक में रक्षा करने वाले (माहिनम्) महान् सामर्थ्य को (मायाभिः) अपनी बुद्धियों से (आशाथे) प्राप्त करो । (वां) आप दोनों के (देवत्वं) दानशीलता और ज्ञानप्रकाश को (अहभिः द्यावः) प्रकाशों से युक्त सूर्य आदि प्रकाशवान् पदार्थ अथवा तीनों लोक भी (न आनशुः) नहीं व्याप सकते । (उत) और आपके (देवत्वं) विद्वत्तायुक्त ज्ञान-दानशीलता को (सिन्धवः) सदा प्रवाहशील नदियां वा समुद्र भी (न आनशुः) नहीं प्राप्त हो सकें और (वां मघम् पणयः न आनशुः) और आप दोनों के ऐश्वर्य को व्यवहार-कुशल पुरुष भी न प्राप्त हो सकें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१५२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ६ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र अर्थात् परस्पर स्नेहपूर्वक सखा बन कर रहने और वरुण अर्थात् एक दूसरे को वरण करने वाले आप दोनों

स्त्री और पुरुषो ! (युवं) तुम दोनों (पीवसा) खूब हृष्ट होकर (वस्त्राणि) उत्तम वस्त्रों को धारण करो और उत्तम तेजों को धारण करो और उत्तम गृहोंमें (वसाथे) निवास करो । और (युवं अच्छिद्रा वस्त्राणि वसाथे) तुम दोनों छेदरहित अर्थात् जो फटे फटाएं न हों, एवं दोषों से रहित हों ऐसे वस्त्र धारण करो । और (युवोः) तुम दोनों के (सर्गाः) उत्पन्न किये हुए पुत्र पौत्रादि सन्तान (अच्छिद्राः) दोषरहित, परस्पर द्वेष या द्वैधभाव से रहित और (मन्तवः) एक दूसरे का आदर करने और स्वयं मनन करने वाले, विचारशील हों । हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (विश्वा अनृतानि) समस्त असत्य व्यवहारों को (ऋतेन) अपने सत्य व्यवहार और सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य के बल से (अव अतिरतम्) नाश करो । सत्य से असत्यों पर विजय प्राप्त करो । और (ऋतेन) सत्य के बल से ही (सचेथे) तुम दोनों परस्पर मिल कर रहो ।

एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥२॥

भा०—(एषां) इन लोगों में से (त्वः चन) कोई ही ऐसा उत्तम (सत्यः) सत्यभाषी, सज्जनों का हितैषी (मन्त्रः) मननशील, विचारवान्, (कविशस्तः) विद्वानों से उपदेश प्राप्त, (ऋघावान्) नाना सत्यासत्य विवेक करने वाली मति से युक्त होता है जो (चतुरश्रिः) चारों वेदों को प्राप्त करके अथवा चारों वर्गों का उत्तम साधक, (त्रिरश्रिम्) वाणी, मन और शरीरों से भोग करने योग्य अथवा तीनों गुणों को (हन्ति) प्राप्त करता है और (उग्रः) उग्रः बलवान् होकर इस जगत् को (हन्ति) विजय करता है और भली प्रकार जानता है । प्रायः (देवनिदः) विद्वानों की निन्दा करने वाले (प्रथमाः) अन्य सब बातों में श्रेष्ठ होकर भी (अजूर्यन्) नाश को प्राप्त हो जाते हैं ।

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पद्वतीनां) पैरों वाले जन्तुओं से सब से प्रथम (अपात्) पादरहित उषा आती है । और (मित्रावरुणा) दिन और रात्रि इन दोनों में से उस रहस्य को कोई नहीं जानता और जिस प्रकार (गर्भः) दानों को ग्रहण या धारण करने में समर्थ आदित्य (अस्य) इस जगत् के (भारं भरति) पोषणादि कार्य करता और (ऋतं) व्यक्त प्रकाश को पूर्ण करता और (अनृतं) असत्य अन्धकार को (नितारीत्) दूर कर देता है उसी प्रकार (पद्वतीनां प्रथमा) चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से भी (प्रथमा) प्रथम, श्रेष्ठ (अपात्) चरणादि से रहित वाणी (एति) प्रकट होती है, हे (मित्रा-वरुणा) अध्यापक विद्यार्थी आदि जनो (वां) आप दोनों में से (कः तत् चिकेत) कौन इस रहस्य को जानता है ? कोई नहीं। तो भी (गर्भः) विद्याओं को ग्रहण करने में समर्थ विद्यार्थी जिज्ञासु पुरुष (अस्य) इस सन्मुख स्थित आचार्य के (भारं आ भरति) पोषित ज्ञान को सब प्रकार से धारण करता है । वही (ऋतं पिपर्त्ति) उसके सुविचारित सत्य ज्ञान को पूर्ण करता और (अनृतं नि तारीत्) अज्ञान अन्धकार और अनृत व्यवहार को दूर करता उससे पार हो जाता है ।

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥४॥

भा०—हम लोग (कनीनां) उषा के समान कमनीय, दीप्तिमती, कन्याओं के (जारं) प्रथम कौमारभाव की हानि करने वाले एवं उसके साथ जीवन भर रहके उसकी जीवनसमाप्ति करने वाले (प्रियं) उसके प्रिय पुरुष पतिको हम लोग सदा (प्रयन्तम्) सूर्य के तुल्य उत्तम मार्ग से जाते हुए (परि पश्यामसि) देखें । और उसको हम (उपनि-

पद्यमानं) कभी नीचे मार्ग से जाते हुए या कभी संकट या विपत्ति में पड़ा (न परिपश्यामसि) न देखें। [अथवा नश्चार्यः] या, हम उसे सदा (उपनिद्यमानं परिपश्यामसि) उसको उनके समीप रहते हुए देखें, विरही न देखें। और सदा हम उसे (अनवपृग्णा) विरले २ खुले हवादार, शरीर के सुखकारी वस्त्रों को धारते और (वितता) विस्तृत वस्त्रों और गृहों में (वसानं) रहते हुए देखें। वही (मित्रस्य वरुणस्य) स्नेहशील रक्षक और वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का उत्तम (धाम) तेज, वैभव और धारण सामर्थ्य का स्वरूप या उत्तम पद है।

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (अनश्वः) अश्व रहित होकर भी (जातः) शीघ्रगामी प्रसिद्ध है वह (अर्वा) शीघ्र गमन करने वाला होकर (अनभीषुः) उसके कोई रासें नहीं हैं। और तो भी वह (कनिक्रदत्) मेघादि द्वारा गर्जता हुआ (ऊर्ध्वसानुः) पर्वतादि उच्च प्रदेशों में व्यापकर (पतयत्) शोभा को प्राप्त होता है। उसी प्रकार (जातः) उत्पन्न हुआ बालक प्रथम (अनश्वः) 'अश्व' या भोक्ता के समान बद्ध न होकर (अर्वा अनभीशुः) बे-लगाम घोड़े के समान (अर्वा) ज्ञानी पुरुष भी (अनभीशुः) बाधक कारणों से रहित होकर (ऊर्ध्वसानुः) शिरों, स्कन्धों को ऊंचे रखता हुआ और (कनिक्रदत्) खूब विद्याभ्यास करता हुआ (पतयत्) ज्ञानैश्वर्य प्राप्त करे। और फिर (युवानः) युवा होकर वे ब्रह्मचारीगण (अचित्तं ब्रह्म) अचिन्तनीय ब्रह्म के समान ही चेतनता रहित, (ब्रह्म) वृद्धिशील, पुष्टिकारक अन्न और धन को (जुजुषुः) प्राप्त करें। और (मित्रे) स्नेहवान् और (वरुणे) रूप के वरण करने योग्य उत्तम पुरुष में ही होने योग्य (धाम) तेज और धारण पोषण सामर्थ्य और स्थान गृह आदि का (प्र गृणन्तः) उत्तम रीति से उपदेश

करें। अध्यात्म में—आत्मा असंग, स्वभाव से अभोक्ता होने से 'अनश्व' है। अंगुलि आदि अंगों से रहित होने से 'अनभीशु' है व्यापक होने से अर्वा है। वह सर्वोपरि प्राप्तव्य होने से 'ऊर्ध्वसानु' है। मेघ के समान नाद करता है। वह महान् होने से 'ब्रह्म' अचिन्तनीय होने से 'अचित्त' है। योग द्वारा साक्षात्कारी जन 'युवा' हैं, वे उसका सेवन करते और सब के धारक परम बल के उसी सर्वश्रेष्ठ और खूब स्नेह-प्रेममय प्रभु को ही बतलाते, उसकी उपदेश वा स्तुति करते हैं।

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन्।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥६॥

भा०—(धेनवः) गौएं जिस प्रकार (सस्मिन् ऊधन्) अपने स्तन पर (मामतेयम्) ममता, प्रेम से पालन करने योग्य (ब्रह्म-प्रियम्) अन्न के प्रिय, दुग्धाभिलाषी बालक की (अवन्तीः) रक्षा करती हुई (अ-पीपयन्) उसको हृष्ट पुष्ट करती हैं। उसी प्रकार (धेनवः) धारण पोषण करने वाली परमेश्वर की शक्तियां, सूर्य की किरणें भी (ऊधन्) मेघ के आधार पर अन्न प्रिय, ममता वश अपने प्रिय प्राण के पोषक प्रजाजन की रक्षा करती हुई उसे पुष्ट करती हैं और उसी प्रकार (धेनवः) दूध पिलाने वाली माताएं भी (मामतेयम् अवन्तीः) अपनी ममता से युक्त (ब्रह्म-प्रियं) ज्ञान और अन्न के अभिलाषी पुत्र को (अवन्तीः) पालती हुई (सस्मिन् ऊधन्) अपने ही स्तन के आश्रय पर (पीपयन्) पुष्ट करें। और जिस प्रकार बालक (अदितिम्) माता को प्राप्त होकर (पित्वः भिक्षेत) अन्न की याचना करता है उसी प्रकार (विद्वान्) विद्वान् पुरुष भी (आसा) अपने मुख से भोजनार्थ (पित्वः) अन्न की (भिक्षेत) याचना करे और वह ही (अदितिम्) अदिति अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी और माता के समान स्नेहवान् और अन्नदात्री, भूमि के समान ज्ञानदाता आचार्य को प्राप्त कर उसको (आ विवासन्) सब प्रकार से सेवा करता

हुआ, उसके अधीन रहता हुआ (आसा) मुख से (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों की (भिक्षेत) गुरु से याचना करे और (उरुष्येत्) उसकी सेवा वा रक्षा करे, आज्ञा वा व्रत पाले।

आ वां मित्रावरुणा हुव्यजुंष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ७।२२

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् मित्रजन एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो ! (वां) आप दोनों की (हव्यजुष्टिम्) अन्नादि पदार्थों के सेवन करने की क्रिया को मैं विद्वान् सेवक पुरुष (नमसा) अन्न द्वारा और आदरपूर्वक (अवसा) ज्ञान और रक्षा द्वारा (आ ववृत्याम्) पुनः २ सम्पादन करूं। पुनः आप दोनों को भोजनादि के लिये निमन्त्रित करके आपका आदर करूं। (अस्माकं) हमारा (ब्रह्म) अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य और ब्राह्मणवर्ग (पृतनासु) सब मनुष्यों में (सह्याः) सब शत्रुओं और सब अकाल आदि कष्टों और दारिद्र्य आदि दुखों और विघ्न बाधाओं और द्वन्द्वों को सहन करे। और (अस्माकम्) हमारी (दिव्या) शुद्ध, चाहने योग्य, आकाश से होने वाली (वृष्टिः) जल वृष्टि और दुष्टों को बांधने वाली शक्ति (सुपारा) प्रजाओं को उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१५३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान्, परस्पर मित्र एवं एक दूसरे को श्रेष्ठ जान कर वरण करने और एक दूसरे की विपत्तियों का वारण करने

हारो! (सजोषाः) अति प्रेम से युक्त होकर (हव्येभिः) स्वीकार करने योग्य उत्तम पदार्थों और (नमोभिः) उत्तम अन्नों वा सत्कारों द्वारा (वां) आप दोनों के (महः) बड़े उत्तम यज्ञ आदि कार्य को हम विद्वान् लोग (यजामहे) सम्पादन करें। और आप दोनों को उत्तम दान योग्य पदार्थ प्रदान करें। (घृतस्नू) मेघ जिस प्रकार जल और सूर्य जिस प्रकार तेज का प्रवाह बहाता है उसी प्रकार हे सब के प्रति स्नेह का प्रवाह बहाने वाले आप दोनो! (वाम्) आप दोनों के हितार्थ ही (अध यत्) जो (अध्वर्यवः) हिंसा रहित यज्ञ के करने हारे विद्वान् पुरुष हैं वे भी (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये (अध्वर्यवः न) ऋत्विजों को तुल्य ही (धीतिभिः) धारण पोषण करने वाली क्रियाओं, युक्तिओं और उपायों से (वाम् भरन्ति) आप दोनों का पोषण करें।

प्रस्तु॒तिर्वां॒ धाम॒ न प्रयु॑क्ति॒रया॑मि मित्रावरुणा सुवृ॒क्तिः।
अ॒नक्ति॒ यद्वां॑ वि॒दथे॑षु॒ होता॑ सु॒म्नं वां॑ सू॒रिर्वृ॑षणा॒विय॑क्षन् ॥२॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सूर्य और मेघ के समान अधीन भृत्यों के प्रति स्नेहवान् और दुःखवारक स्त्री पुरुषो! हे (वृषणा) ज्ञानों, सुखों के वर्षक और बलवान्, वीर्यवान् स्त्री पुरुषो! (यत्) जब (सूरिः) विद्वान् (होता) ज्ञान ऐश्वर्यादि को देने में समर्थ पुरुष (वां) तुम दोनों के (इयक्षन्) सत्संग करने की इच्छा करता है तो वह (विदथेषु) यज्ञों, सत्संगों और ज्ञान प्रसङ्गों में (वां) आप दोनों के हितार्थ (सुम्नं) सुखकारी कल्याण ज्ञान को ही (अनक्ति) प्रकट करता है और आप दोनों का हृदय से सुख चाहता है। उसी प्रकार मैं (प्रस्तुतिः न प्रयुक्तिः) यथार्थ तत्व को वर्णन करने वाले के समान ही उत्तम प्रयोग, क्रिया कौशल को जानने वाला और (सुवृक्तिः) उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोक कर सन्मार्ग में प्रेरित करने हारा होकर ही मैं (वाम् धाम) आप दोनों के गृह को (अयामि) प्राप्त होऊं। विद्वान् पुरुष उत्तम वक्ता, प्रयोग कुशल

और सुधर्म मार्ग से वर्त कर धर्म मार्ग में प्रेरक होकर ही स्त्री पुरुषों के गृहों को प्राप्त होवे। वह विद्वान् ज्ञान का देने वाला होकर यजमानों का भला चाहे और ज्ञानादि प्रदान करे।

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता॥३॥

भा०—(धेनुः) जिस प्रकार दुधार गाय (हविर्दे जनाय) अन्नादि खाद्य पदार्थ देने वाले को (पीपाय) अपने दूध आदि से पुष्ट करती है उसी प्रकार (अदितिः) अखण्डित चरित्र वाली, सच्चरित्र स्त्री भी (हविर्दे) देने योग्य अन्न, वस्त्र, आभूषणादि पदार्थों के देने वाले (ऋताय जनाय) सत्य व्यवहार वाले पुरुष को ही (पीपाय) सुख समृद्धि से बढ़ाती है। और (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का (विदथे) ज्ञान और धन के लाभ होने पर (सपर्यन्) आदर करता हुआ (वां हिनोति) आप दोनों की वृद्धि करता है (सः) वही (होता न) यज्ञ में हवि देने वाले मुख्य होता के समान सब सुख ऐश्वर्यों का देने वाला होता है। (२) इसी प्रकार (अदितिः) आचार्य अपने प्रियपदार्थ के दाता शिष्यजन को ज्ञान से बढ़ाता है। ज्ञानयज्ञ में मित्र, वरुण रूप से विद्यमान शिष्य गुरु में से जो दूसरे का आदरपूर्वक ज्ञान बढ़ाता है वही सर्वपूज्य सर्वदाता 'आचार्य' है।

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ४।२३

भा०—हे स्त्री पुरुषो! (मद्यासु विक्षु) हर्ष देने वाली, और हर्ष प्राप्त करने योग्य प्रजाओं के बीच में रहते हुए (वां) आप दोनों की (गावः) गौ आदि पशुगण (आपः च) जल कूप, नदी, तड़ाग आदि और आप्त पुरुष (देवीः) और उत्तम विदुषी स्त्रियें सभी (पीपयन्त) वृद्धि करें। आप दोनों के बल, साहस और सुख को बढ़ावें (उतो) और (नः) हमारे बीच में। (वां) आप दोनों में से जो (दन्)

समस्त सुखों का देने हारा (उस्रियायाः पयसः दन्) गौ के दूध को देने वाले गोपालक के समान होकर (पूर्व्यः) पूर्व के बड़े आप्त पुरुषों द्वारा स्थिर कर दिया जाता है वह ही (पतिः) पालक पति रूप से रहे। वे तुम दोनों पति पत्नी (अस्य पयसः) इस पुष्टिकारक दुग्ध, अन्नादि को (वीतं पातम्) खाओ और पीओ और आनन्दित रहो। स्त्री पुरुष में माता पिता गुरुजन ही जिसको पति बना देते हैं वही स्त्री को सब कुछ देने वाला होता है। तो भी गौ के समान भूमि के पुष्टिकारक अन्नादि का वे दोनों मिलकर उपभोग करने के अधिकारी हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[१५४]

दीर्घतमा ऋषिः॥ विष्णुर्देवता॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्॥ षड्ऋचं सूक्तम्॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥ १॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (पार्थिवानि) पृथिवी में ज्ञान और अति विस्तृत तीनों लोकों में स्थिर (रजांसि) समस्त सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि लोकों को (विममे) विविध रूप से बनाता है (यः) जो (उत्तरम्) जगत् के प्रलय हो जाने के बाद भी विद्यमान उस (सधस्थं) कारण रूप प्रकृति, जिस में समस्त प्राकृतिक जगत् एक समान होकर कारण रूप से एक साथ रहते हैं, उसको भी (अस्कभायत्) धारण करता है और जो (उरुगायः) बहुत प्रकारों और मन्त्रों से स्तुति किया जाता है, या सब को वेद द्वारा उपदेश करने हारा है जो (त्रेधा विचक्रमाणः) सृष्टि, स्थिति, प्रलय, या सूक्ष्म कारण रूप, सूक्ष्म कार्यरूप और स्थूल कार्य रूप इन तीनों प्रकारों से सब पदार्थों को विशेष रूप से सञ्चालित करता

है उस (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) नाना बलशाली, महान् कार्यों को मैं (प्रवोचम्) वर्णन करूं।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

भा०—(यस्य) जिस जगदीश्वर के (त्रिषु उरुषु विक्रमणेषु) तीनों, महान् विक्रमणों, तीनों प्रकार के जगत्सर्गों में, सत्व, रजस, तमस् इन तीनों से बने सर्गों में या सृष्टि, स्थिति, प्रलय इन तीन क्रियाओं में (विश्वा भुवना) समस्त भुवन (अधि क्षियन्ति) आश्रय पा रहे हैं। और जो (वीर्येण) बल, पराक्रम और शक्ति में (मृगः न) सिंह के समान (भीमः) पापकारियों को भय देने हारा (कुचरः) सम विषम आदि नाना स्थानों में भी विचरने हारा, सर्वत्र व्यापक (गिरिष्ठाः) पर्वतादि में स्थित सिंह के समान (गिरिष्ठाः) पर्वत वा मेघ के समान सर्वोच्च देश में विद्यमान, या स्तुतिकर्ता जनों की मन्त्रादि स्तुति, वाणी में स्थित है (तत्) वह (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (प्र स्तवते) अच्छी प्रकार स्तुति करने योग्य है। अथवा, वही सब लोकों को उपदेश देता है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (त्रिभिः इत्) तीन ही (पदेभिः) ज्ञान करने योग्य मूल गुणरूप तत्वों से या पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौः इन तीन स्थानों से ही (इदं) इस (दीर्घं) बड़े भारी, लम्बे चौड़े (प्रयतम्) उत्तम यत्न द्वारा बनने वाले, एवं उत्तम कोटि के नियम में सुव्यवस्थित, (सधस्थम्) एक ही स्थान, महान् आकाश में स्थित जगत् को (एकः) अकेला, अद्वितीय होकर (विममे) बनाता है, उसे विशेष रूप से व्यापता है, उस (विष्णवे) सर्व व्यापक (वृष्णे) अनन्त बलशाली, सबको व्यवस्था में बांधने और थामने वाले (गिरिक्षिते)

मेघ, शैल आदि के एक आश्रय अथवा मेघ के समान सबको सुख जल से वर्षण करने वाले, आनन्दघन और पर्वत के समान सर्वोच्च पद पर विराजने वाले और (गिरिक्षिते) वेद आदि वाणियों में ज्ञानरूप से विराजने वाले (उरु गायाय) महान् स्तुति युक्त, परमेश्वर का (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञानमय स्वरूप और (शूषम्) महान् बल (प्र एतु) उत्तम रूप से हमें प्राप्त हो। उसी का ज्ञान और बल सर्वोच्च है। वह हमें प्राप्त हो।

यस्य॒ त्री पू॒र्णा मधु॑ना प॒दान्यक्षी॑यमाणा स्व॒धया॒ मद॑न्ति ।
य उ॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीमु॒त द्यामेको॑ दा॒धार॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥४॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (त्री पदानि) तीनों प्राप्त करने या ज्ञान किये जाने योग्य, जगत्सञ्चालक बल तीनों उक्त गुण या स्वरूप (मधुना) मधुर, आनन्ददायक, तृप्तिकारक गुण से (पूर्णा) पूर्ण हैं। और वे तीनों (अक्षीयमाणा) कभी भी नाश को न प्राप्त होते हुए (स्वधया) अन्न के समान देह और आत्मा या जीवन सर्ग को धारण करने वाली क्रिया से (मदन्ति) सब प्राणियों को तृप्त और आनन्दित करते हैं और (यः) जो परमेश्वर (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी और सूर्य, तेजस्वी और तेजोरहित पदार्थों को और (त्रिधातु) तीनों धारण करने वाले सत्व, रजस्, तमस् इन गुणों से बने समस्त संसार को धारण करता है वह ही (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों को (एकः) अकेला, बिना अन्य किसी के सहायता से स्वयं (दाधार) धारण करता है।

तद॑स्य प्रि॒यम॒भि पाथो॑ अश्यां॒ नरो॒ यत्र॑ देव॒यवो॒ मद॑न्ति ।
उ॒रु॒क्र॒मस्य॒ स हि बन्धु॑रि॒त्था विष्णोः॑ प॒दे प॑र॒मे मध्व॒ उत्सः॑ ॥५॥

भा०—(यत्र) जिस प्रभु परमेश्वर के आश्रय रहकर (देवयवः) परम उपास्य देव की आराधना करने वाले, उसके भक्त जन (मदन्ति)

आनन्द लाभ करते हैं, नित्य तृप्त और हर्षित रहते हैं मैं (अस्य) उस प्रभु के (प्रियम्) अति प्रिय, मनोहर (तत् पाथः) पालनकारी आनन्द रस या गन्तव्य परम मार्ग का (अभि अश्याम्) साक्षात् लाभ करूं। (सः हि) वह ही निश्चय (इत्था) सचमुच (बन्धुः) हमारा प्रिय बन्धु है। उस (उरुक्रमस्य) विशाल एवं नाना लोकों में व्यापक और चरा चर को बनाने वाले (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (परमे पदे) परम सर्वोत्कृष्ट 'प्राप्तव्य' परम वेद्य स्वरूप में ही (मध्वः) मधुर आनन्द रस का (उत्सः) स्रोत है।

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥२४॥

भा०—(यत्र) जिन गृहों में (भूरिशृङ्गाः) बहुत उत्तम २ सींगों वाली (गावः) गौएं (अयासः) प्राप्त हों और (यत्र) जहां (गावः) बहुत सी किरणें (भूरिशृङ्गाः) बहुत से रोगों का नाश करने वाले गुणों से युक्त होकर (अयासः) प्राप्त हों, हम लोग (वां) आप दोनों को (वास्तूनि) ऐसे २ निवास योग्य गृहों को (गमध्यै) प्राप्त करना (उश्मसि) चाहते हैं। (अह) निश्चय से (अत्र) यहां (उरुगायस्य) अति स्तुति योग्य, बहु स्तुत्य (वृष्णः) बलवान्, सर्व सुखवर्षक सूर्य का (परमं पदं) परम स्वरूप एवं प्रकाश (भूरि अव भाति) बहुत अच्छा प्रकाशित होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१५५]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ निचृज्जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१॥

भा०—हे पुरुषो ! आप लोग (धियायते) बुद्धिपूर्वक यत्न करने वाले, उत्तम कर्म और बुद्धि या ज्ञान का सम्पादन करने के इच्छुक (महे) महान् (शूराय) शूरवीर और (विष्णवे) उत्तम विद्या और गुणों में प्रवेश करने वाले या व्यापक पुरुष के हित के लिये (वः) अपने (अन्धसः) जीवन धारण कराने वाले अन्नादि के बने (पान्तम्) पान करने और पालन करने योग्य पदार्थ (प्र अर्चत) आदर सत्कार से प्रदान करो । (साधुना अर्वता इव पर्वतानां सानुनि) उत्तम अश्व के द्वारा जिस प्रकार लोग पर्वतों तक पहुंच जाते हैं उसी प्रकार (साधुना) सुखों दुःखों के वश करने वाले, साधनाशील उत्तम (अर्वता) ज्ञान मार्ग में आगे बढ़ने वाले सहायक या विद्वान् के द्वारा या जो दोनों इन्द्र और विष्णु, सेनापति और व्यापक शक्तिमान् राजा अथवा आचार्य और शिष्य दोनों (पर्वतानां सानुनि) पर्वतों के शिखरों के समान पालन करने वाले साधन से सम्पन्न राजाओं के उच्च शिरों पर मान, आदर और बल पूर्वक (महः) पूजित होकर (तस्थतुः) विराजते हैं और (अदाभ्या) कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते । इसी प्रकार आचार्य और शिष्य दोनों (पर्वतानां सानुनि) पर्व, अध्याय, सर्ग आदि सर्वोच्च सानु अर्थात् प्राप्तव्य ज्ञान से संयुक्त वेद आदि शास्त्रों के प्राप्त करने के निमित्त (महः) परस्पर पूजा करने योग्य और ब्रह्मदान देते हुए (अदाभ्या) कभी परस्पर हिंसा प्रतिहिंसा न करते हुए प्रेम से (तस्थतुः) रहें, उनकी भी (प्र अर्चत) अच्छी प्रकार अन्नादि से सेवा करो ।

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥२॥

भा०—सूर्य और वायु के तेज और वेग को जिस प्रकार (सुतपाः) उत्तम जलपान करने वाला मेघ (उरुष्यति) अपेक्षा करता है, हे (इन्द्रा विष्णू) वायु और सूर्य के समान बलवान् और तेजस्वी, प्रकाश

देने वाले दोनों विद्वान् और शूरवीर पुरुषो ! (शिमीवतोः) क्रियाकुशल (वां) तुम दोनों पुरुषों के (इत्था) इस प्रकार के (त्वेषम्) तेज को और (सम्-अरणम्) उत्तम ज्ञान और सत्संग को (सु-तपाः) उत्तम तपस्वी शिष्य या (सु-तपाः) उत्तम ज्ञान रस का पिपासु जन (उरुष्यति) प्राप्त करता है। जिस प्रकार वायु और सूर्य दोनों ही (मर्त्याय प्रतिधीयमानम्) मनुष्यों के हित के लिये प्रतिक्षण धारण पोषणार्थ देने योग्य अन्नादि पदार्थ को पालन करते हैं और जिस प्रकार वे दोनों (कृशानोः असनाम्) अग्नि के व्यापनशील ज्वाला की रक्षा करते हैं उसी प्रकार उक्त इन्द्र और विष्णु, सेनापति और राजा (मर्त्याय) प्रजा के साधारणजन के हितार्थ (प्रतिधीयमानम् उरुष्यथः) धारण करने योग्य प्रत्येक पदार्थ की रक्षा करें और वे (अस्तुः) शत्रु पर वाणवर्षा करने वाले (कृशानोः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की (असनाम्) शत्रु को उखाड़ फेंकने और शस्त्रादि फेंकने की शक्ति की (उरुष्यथः) रक्षा करें। इसी प्रकार आचार्य और अध्यापक दोनों भी जिज्ञासु मनुष्य के धारने योग्य ज्ञान की रक्षा करें और तेजस्वी, अग्नि के समान (अस्तुः) दोषों को दूर करने वाले जितेन्द्रिय पुरुष की (असनाम्) दोषों को त्यागने की प्रवृत्ति की रक्षा करें।

ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवृष्टि की धाराएं (ईं वर्धन्ति) अन्न को बढ़ाती हैं और (अस्य) इसके (महि पौंस्यं वर्धन्ति) बड़े भारी पुरुषत्व का बल बढ़ाती हैं और वह अन्न खाया जाकर (रेतसे भुजे) वीर्य उत्पत्ति और शरीर की रक्षा और पालन और नाना प्रकार के भोग भोगने के लिये (मातरा) स्त्री पुरुषों को (नि नयति) प्रवृत्त करता है। वही अन्न वीर्य द्वारा माता पिता से उत्पन्न होकर (पुत्रः) पुत्र रूप होकर

(दिवः अधिरोचने) सूर्य के समान प्रकाशित होने और ज्ञान प्रकाश और व्यवहार के उत्तम रुचिकर, तेजस्वी कार्यों में भी (पितुः अवरं परं तृतीयम्) पिता के निकृष्ट, सर्वोच्च और सबसे उत्तम (नाम) यश को भी (दधाति) धारण करता है उसी प्रकार (ताः) वे विदुषी स्त्रियां, और (मातरा) माता और पिता उसके (रेतसे भुजे) उसके वीर्य रक्षा और देह रक्षा के लिये (अस्य महि पौंस्यं वर्धन्ति) उसके बड़े भारी बल की वृद्धि करें और वह पुत्र (ताः मातरा) उनको और मा बाप को (नि नयति) नम्रता से प्राप्त हो। वह (पितुः दिवः अधि-रोचने) सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी होकर प्रकाशित होने के लिये तृतीयं) उस के परे के और तीसरे (नाम) स्वरूप को भी (दधाति) धारण करे।

'अवरं परं तृतीयम्'—अवर अर्थात् पौत्र, पर अर्थात् पुत्र और तृतीय अर्थात् पिता तीनों को धारण करे। अर्थात् पुत्र स्वयं पुत्र का कर्त्तव्य पालन करे, पौत्र को उत्पन्न करे और पिता का पालन करे। वह पुत्र एक ही समय में अपने पुत्र का पिता, अपने पितामह का पौत्र कहावे अर्थात् वह तीन पीढ़ियों का रक्षक हो। (२) इसी प्रकार (ताः) वे प्रजाएं वा सेनाएं इस राजा के बल को बढ़ाती हैं वह (मातरा) राज-प्रजा-वर्ग दोनों को बल वीर्य की वृद्धि और ऐश्वर्य भोग के लिये उत्तम मार्ग से ले जावे। वह प्रजा का पुत्र के समान होकर सूर्यवत् तेजस्वी पद पर विराज कर पिता के समान पालक होकर निकृष्ट उत्तम और सर्वोच्च स्वरूप यश को धारण करता है।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने अग्नि, विद्युत् और सूर्य इन तीन विशेष रूपों से समस्त लोकों में व्याप जाता है उसी प्रकार (यः) जो

पुरुष (त्रिभिः) तीन (विगामभिः) विशेष गमन या उपायों से (उरु-गायाय) अति प्रशंसित (जीवसे) जीवन की रक्षा और धारण करने के लिये (पार्थिवानि) पृथिवी के समस्त पदार्थों और लोकों और प्राणियों को (उरु) अति उत्तम रूप से (क्रमिष्ट) क्रमण कर जाता है (तत् तत्) वह नाना प्रकार का सब (पौंस्यं) बल पराक्रम, पौरुष हम लोग (इनस्य) स्वामी, सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रातुः) रक्षक, (अवृकस्य) भेडिये के समान वञ्चक वा प्रजाभक्षक न रहने वाले (मीढुषः) मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्षक प्रजापालक स्वामी का ही (गृणीमसि) बतलाते हैं। (२) यह वीर्य सेचन में समर्थ ब्रह्मचारी पुरुष का ही पुरुषत्व है कि वह पृथिवी अर्थात् स्त्री से उत्पन्न सब सन्तानों को उत्तम दीर्घ जीवन धारण कराने के लिये (त्रिभिः विगामभिः उरु क्रमिष्ट) पिता पुत्र और पौत्र तीनों रूपों से व्यापता है।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (अस्य स्वर्दृशः) इस तेजोमय, प्रकाश और ताप से उज्ज्वल दीखने वाले सूर्य के (द्वे क्रमणे) दो क्रमण, दो स्थान पृथिवी और अन्तरिक्ष इन को (मर्त्यः अभि ख्याय) मनुष्य प्राणी विद्या के बल से प्राप्त कर लेता है। (अस्य तृतीयम् नकिः आ दधर्षति) और इसके तीसरे स्थान आकाश को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। (पतयन्तः) दूर तक उड़ने वाले (पतत्रिणः चन) बड़े २ पक्षी भी वहां तक नहीं पहुंच सकते, ठीक इसी प्रकार (स्वर्दृशः) प्रजा सन्तान आदि के सुखमय मार्ग को देखने हारे (अस्य) इस वीर्यवान् ब्रह्मचारी पुरुष और राजा के (द्वे एव क्रमणे) दो ही ऐसे क्रमण अर्थात् गमन, आश्रम या आचरण हैं जिनको (अभि ख्याय) अच्छी प्रकार ज्ञान पूर्वक देख कर (मर्त्यः भुरण्यति) मनुष्य धारण कर सकता है।

(अस्य तृतीयम्) इसका तीसरा स्वरूप या विद्या जन्म वह है जिसको (पतयन्तः पतत्रिणः वयः चन) ऊपर नीचे जाने वाले पक्षवान्, पक्षियों के समान ही (पतयन्तः) केवल धन ऐश्वर्यों का स्वामी होने वाले (पतत्रिणः) मार्ग में जाते हुए गिरने से बचाने वाले सहायकों से युक्त या रथादि के स्वामी और (वयः चन) और सामान्य ज्ञानवान् पुरुष भी (न किः चन आ दधर्षति) कभी तिरस्कृत नहीं कर सकते। ब्रह्मचारी के विद्या बल के सामने सब झुकते हैं।

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत्। बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवा कुमारः प्रत्येत्याहवम् ६।२५

भा०—जिस प्रकार (अकुमारः) कुमार दशा अर्थात् बाल्यभाव को त्याग कर (बृहत् शरीरः) बड़े लम्बे चौड़े विशाल शरीर वाला (युवा) युवा पुरुष (ऋक्वभिः) अपनी वाणी या आज्ञा के अधीन पुरुषों से (विमिमानः) विविध दिशाओं के शत्रुओं को गिराता हुआ (आहवम् प्रति एति) युद्ध को जाता है और (चतुर्भिः साकं नवतिं च) चार के साथ नब्बे अर्थात् ९४ पुरुषों के बने (व्यतीन्) विशेष बलशाली पुरुषों और (चक्रं) चक्रव्यूह को भी (वृत्तं न) हाथ में रखे चक्रास्त्र के समान (नामभिः) अपने नमाने वाले बलों से (अवीविपत्) कंपा देता है उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी (अकुमारः) कुत्सिक काम क्रोधादि से त्रस्त न होकर (युवा) आचार्य के उपदेशों को जीवन में संगति करने वाला, (बृहत् शरीरः) नित्य वृद्धिशील, विशालकाय होकर (ऋक्वभिः) वेद की ऋचाओं वा ज्ञानवान् विद्वानों से (विमिमानः) विविध ज्ञानों को प्राप्त करता हुआ (आहवम्) समस्त ज्ञान को (प्रति एति) प्राप्त हो। वह (चतुर्भिः साकं नवतिं व्यतीन्) ९४ प्रकार के विरुद्ध बाधक कारणों को (वृत्तं चक्रम्) गोल चक्र के समान (नामभिः)

अपने चार दशा या आश्रमों या चार प्रकार के ब्रह्मचर्य के बलों से साधक (अवीविपत्) कंपा दे, उनको दूर करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१५६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । निचृज्जगती । ४ जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भवा॑ मि॒त्रो न शेव्यो॑ घृ॒तासु॑ति॒र्विभू॑तद्युम्न एव॒या उ॑ स॒प्रथाः॑ । अधा॑ ते विष्णो वि॒दुषा॑ चि॒दर्ध्य॒ः स्तोमो॑ य॒ज्ञश्च॒ राध्यो॑ ह॒विष्म॑ता ॥ १ ॥

भा०—हे (विष्णो) विद्याओं में व्यापक ! सामर्थ्यवन् ! विद्वन् ! एवं राजन् ! तू (मित्रः न) मित्र, सूर्य एवं मृत्यु से बचने वाले रक्षक के समान (शेव्यः) सुख का देने हारा (भव) हो। तू (घृतासुतिः) जलवर्षी मेघ के समान स्नेह और पुष्टिकारक अन्न और तेजोयुक्त पदार्थों और ओज का प्रदान करने वाला हो। तू (विभूतद्युम्नः) सूर्य के समान अति अधिक तेज, ऐश्वर्य, अन्न और यश से सम्पन्न हो। तू (एवयाः) रक्षक पुरुषों को प्राप्त करने वाला, रक्षक रूप से सबको प्राप्त होने (उरु प्रथाः) और इसी प्रकार से विख्यात कीर्त्ति वाला हो। (अध) और हे (विष्णो) व्यापक शक्ति वाले ! (ते स्तोमः) तेरा स्तुति करने योग्य व्यवहार और गुण (विदुषा चित्) विद्वान् पुरुष द्वारा (अर्ध्यः) पूज्य और (यज्ञः च) तेरा सत्संग और दान आदि कार्य (हविष्मता) उत्तम ग्राह्य ज्ञान और अन्नादि से समृद्ध पुरुष और कर्म द्वारा (राध्यः) सम्पादन करने योग्य हो। (२) इसी प्रकार सर्व व्यापक परमेश्वर सबका मित्र, सुखप्रद, अन्न, जल, तेज का दाता, ऐश्वर्यवान्, रक्षक, महान् व्याप्तिमान् है। विद्वान् उसके गुण गाता, और हविष्मान् उसके निमित्त, यज्ञ दान करता है।

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्॥२॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (वेधसे) विद्वान् मेधावी, या विशेष रूप से सेवा करने वाले (पूर्व्याय) अपने से पूर्व विद्यमान विद्या-वयोवृद्ध पुरुषों की उत्तम रीति से सेवा करने वाले, (नवीयसे) अति नवीन, सुन्दर एवं सदा सुप्रसन्न, (सुमत्-जानये) स्वयं ही स्वभाव से ही ज्ञान सम्पादन करने में संलग्न, (विष्णवे) ज्ञान मार्ग में प्रवेश करने वाले नव विद्यार्थी को (ददाशति) ज्ञान और अन्न, धनादि दान करता है और (यः) जो पुरुष (महतः) व्रतों और गुणों में महान् (अस्य) इस विद्यार्थी को (महि जातम्) उत्तम २ ज्ञान का (ब्रवत्) सदा उपदेश करता है (स इत् उ) वह ही (श्रवोभिः) श्रवण योग्य उप-देशों तथा मनन निदिध्यासनादि कर्मों से (युज्यं चिद्) युज्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य ब्रह्म ज्ञान का ही स्वयं (अभि असत्) अभ्यास करता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह परमेश्वर सबसे पूर्व विद्यमान, पूर्व के विद्वानों से उपास्य, सदा स्तुत्य, स्वयंभू, सर्व व्यापक है। उसके निमित्त जो दान करता है जो इस महान् परमेश्वर के ज्ञान का उपदेश करता है, वह ज्ञानों और गुरूपदेशों से उस परम सखा, योग द्वारा गम्य परमेश्वर को ही (अभि असत्) साक्षात् करता हुआ उसी की उपासना करता है।

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥ ३॥

भा०—हे (स्तोतारः) हे यथार्थ गुणों का उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (तम् पूर्व्यम्) उस पूर्व के विद्वानों द्वारा विद्या के योग्य पुरुष को (यथा) जिस प्रकार यथाविधि (विद) प्राप्त करो और ज्ञान लाभ कराओ। और (ऋतस्य) ज्ञानैश्वर्य को (गर्भम्)

अपने में धारण करने वाले उसका हे विद्यावान् पुरुषो ! (जनुषा) विद्या द्वारा नवीन जन्म प्राप्त कराके यज्ञोपवीत आदि द्वारा (पिपर्त्तन) पालन और विद्या से पूर्ण करो । (अस्य) इसके (नाम चित्) उत्तम नाम को भी (जानन्तः) जानते हुए (विवक्तन) इसे विशेष रूप से उपदेश करो । हे (विष्णो) विद्याओं में व्यापक विद्वन् ! हम (ते) तेरे (महः सुमतिम्) महान् उत्तम ज्ञान को (यजामहे) प्राप्त करें । (२) परमेश्वर पक्ष में—स्तुतिकर्त्ता जन सबसे पूर्व विद्यमान आदि पुरुष को यथावत् जानें । समस्त जगत् को अपने में धारण करने वाले उसके व्रत को इस जन्म में ही पालन करें, उसकी उपासना करें । इसका नाम भी ज्ञान पूर्वक लिया करें । हे (विष्णो) व्यापक प्रभो ! हम तेरे महान् पूज्य उत्तम ज्ञान का सेवन करें ।

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४॥

भा०— (विष्णुः) व्यापक प्रकाश और तेज वाला सूर्य जिस प्रकार (अहर्विदं) दिन को प्राप्त कराने वाले किरण समूह को (अप ऊर्णुते) प्रकट करता और अन्धकार को दूर करता है और वह जिस प्रकार (उत्तमं दक्षं दाधार) उत्तम बल को धारण करता है और जिस प्रकार (अस्य-मारुतस्य वेधसः) इस वायु गणों के प्रेरक व वृष्टि आदि के करने वाले इस सूर्य के (क्रतुं) कर्म सामर्थ्य को ही (राजा वरुणः अश्विना) राजा वरुण मेघ और दिन और रात्रि सब प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (सखिवान् विष्णुः) मित्र जनों से युक्त राजा (व्रजं अप ऊर्णुते) शत्रु समूह को दूर भगावे और अपने सैन्य दल और अपने गुण समूह को प्रकट करे । और (सखिवान् विष्णुः) शिष्य रूप मित्रों से युक्त आचार्य विद्वान् पुरुष (व्रजं) उस परम गन्तव्य, परम वेद्य ज्ञान को और गो रूप वाणियों के संघ वेद को (अप ऊर्णुते) प्रकाशित करे । वह सूर्य वत् ही (अहर्विदं)

प्रकाश लाभ कराने वाले (उत्तमम्) उत्तम (दक्षं) ज्ञान सामर्थ्य को (दाधार) धारण करे । (राजा वरुणः) प्रजा का मनोरंजन करने, तेज से चमकने वाला श्रेष्ठ पुरुष और (अश्विनौ) नाना ऐश्वर्यों के भोक्ता स्त्री-पुरुष और अश्व-सेना के अधिकारी दो मुख्य सेनानायक और वायु के समान आलस्य रहित शिष्यों के नायक और (वेधसः) ज्ञानवान् आचार्य के (अस्य तम् क्रतुम्) इसके उस ज्ञान और कर्म सामर्थ्य को (सचन्त) प्राप्त हों और उसमें सहयोग करें । (मारुतस्य) वायु के समान बलवान् पुरुषों के नायक राजा परमेश्वर के भक्त उपासक सुहृदों से सखिवान् है । वह सर्वोत्तम बल और ज्ञान को धारण करता और प्रकट करता है । राजा श्रेष्ठ पुरुष सूर्य, सिन्धु, दिन रात्रि, सूर्य चन्द्र आदि सब उसी को आश्रय लेते हैं । सर्वविधाता होने से वेधा और सब प्राणियों का आश्रय होने से 'मारुत' है ।

आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः । वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥ २६ ॥ २१ ॥

भा०—(यः) जो (दैव्यः) विद्वानों का हितकारी, उनका विद्या और जन्म द्वारा सम्बन्धी, (विष्णुः) शुभ गुणों और विद्याओं में प्रवेश करने हारा जिज्ञासु पुरुष (इन्द्राय) विद्या आदि ऐश्वर्य से युक्त गुरुको प्रसन्न करने के लिए और (सचथाय) उसकी सेवा करने के लिए (आ-विवाय) उसको प्राप्त होता है और और जो (सुकृते) उत्तम उपकार करने वाले के प्रति (सुकृत्तरः) और अधिक उपकार करने वाला होता है वह (वेधा) बुद्धिमान् पुरुष (त्रि-सधस्थः) कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों में स्थिर होकर (आर्यम्) उत्तम शुभ गुणों और विद्या में निपुण श्रेष्ठ गुरु को (अजिन्वत्) प्रसन्न करे । धनार्थी जिस प्रकार दानशील को प्राप्त होता है उसी प्रकार और (ऋतस्य भागे) ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त

वह (यजमानं) विद्या दान देने वाले को, (आ भजत) प्राप्त हो और उसकी सेवा शुश्रूषा करे । इति षड्विंशो वर्गः । इत्येकविंशोऽनुवाकः ॥

[१५७]

दीर्घतमाः ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ निचृज्जगती ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु१षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा । आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (अबोधि) प्रज्वलित होता और (ज्मः) पृथिवी से भिन्न उसको प्रकाशित करने वाला (सूर्यः) सूर्य जैसे उदय को प्राप्त होता है । वैसे विनयी शिष्य अपनी विद्याभूमि आचार्य से विद्वान् हो सूर्य के समान तेजस्वी होकर (उद् एति) उदय को प्राप्त हो । (चन्द्रा) जैसे आल्हादकारिणी, सुखप्रद (उषाः) प्रभात वेला (मही) अति पूज्यस्वरूप (अर्चिषा) कान्ति के सहित (आ अवः) प्रकट होती है । उसी प्रकार आदरणीय, कान्तिमती कन्या तेज से विविध गुणों को प्रकट करे । तब ठीक इसी प्रकार (अश्विना) विद्या से व्यापक और विद्या के बल से जगत् के सुखों को भोगने वाले विद्वान् स्त्री-पुरुष मिलकर (यातवे) संसार के मार्ग पर चलने के लिये (रथं) उत्तम आनन्द देने और वेग से चलने वाले गृहस्थ रूप रथ को (आ अयुक्षाताम्) युक्त करें । जैसे (सविता देवः) सर्वैश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक तेजस्वी सूर्य (जगत्) सब जंगम प्राणिसंसार को (पृथक् प्र असावीत्) पृथक् प्रेरित कर सबको उनकी प्रकृति के अनुसार चलाता और उनको जीवन देता है । उसी प्रकार उत्पादक (देवः) कामनावान् पुत्रैषी, प्रिय पुरुष संतान को उत्पन्न करे । (२) अथवा—प्रातः यज्ञाग्नि के जलते, सूर्योदय

हो, उषा प्रकटे, तब स्त्री पुरुष (रथं) रमण योग्य आत्मा को (अयुक्षातां) योग समाधि द्वारा प्राप्त करने का अभ्यास करें । देखें (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर जगत् को (पृथक्) पृथक् नाना रूपों से कैसे उत्पन्न करता है ।

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि॥२॥

भा०—हे (अश्विना) ऐश्वर्य और गृहस्थ सुखों के भोगने और एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले, रथ सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! (यत्) जब आप दोनों (वृषणं) सुख का और वीर्य का सेचन करने वाले (रथं) रमण करने के साधन रूप अंग को (युंजाथे) संयुक्त करो इससे पूर्व आप दोनों अपने (क्षत्रम्) वीर्य को (घृतेन) घृत आदि पुष्टकारक पदार्थ से और (मधुना) मधुर अन्न से (उक्षतम्) सींचो अर्थात् जिस प्रकार जल से सींचकर वृक्ष को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार स्त्री-पुरुष सन्तानार्थ मिलने के पूर्व पुष्टिप्रद घृत दुग्ध तथा अन्न से वीर्य को पुष्ट करें । इसी प्रकार (अस्माकं) हमारे (पृतनासु) मनुष्यों में (ब्रह्म) उत्तम अन्न और बल को पूर्ण करो । जिससे (वयं) हम लोग सदा (शूरसाता) शूरवीर पुरुषों को प्राप्त करने के लिए (धना) नाना ऐश्वर्यों को (भजेमहि) प्राप्त करें और सेवें । उसी प्रकार राष्ट्र में—हे (अश्विना) सभा-सेनापतियो ! सुखवर्षक और शत्रु पर शरों के वर्षक रथ को जोड़कर ले जाओ, (क्षत्रं) अपने सैन्य बल को (घृतेन मधुना) तेज और अन्न या दीप्ति और शत्रु को धुन देने वाले बल से पुष्ट करो । हमारे (ब्रह्म) बड़े भारी बल को सेनाओं और संग्रामों में बढ़ाओ, जिससे (शूरसाता) संग्राम में हम ऐश्वर्यों को प्राप्त करें ।

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे॥३॥

भा०—(अश्विनोः) विद्यावान् स्त्री पुरुषों का (मधुवाहनः) जल के बल से चलने वाला, (मधुवाहनः) मधुर नाना सुखों को प्राप्त कराने वाला और (मधुवाहनः) अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, (जीराश्वः) वेगवान् अश्वों से युक्त (त्रि-चक्रः) तीन चक्रों वाला, (सु-स्तुतः) उत्तम, प्रशंसनीय, (त्रि-बन्धुरः) तीन बन्धनों वाला, (मघवा) धनों से पूर्ण, बहुमूल्य, (विश्वसौभगः) समस्त ऐश्वर्यों से युक्त होकर (नः यातु) हमें प्राप्त हो और (नः) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे) दो पाये भृत्य आदि और चौपाये गौ आदि पशुओं को (शं = आवक्षत्) शान्ति सुख प्राप्त करावे । (२) रात्रि दिन के पक्ष में— उनका रथ संवत्सर या सूर्य है । मुख्य तीन ऋतु तीन चक्र हैं । काल रूप वेगवान् 'अश्व' है । व अन्न आदि को प्राप्त करता या वसन्तादि ऋतुओं से गति करता है । तीन कालों से बद्ध है । (३) गृहस्थ रथ मधुर सुखों को प्राप्त कराने से 'मधुवाहन' है । मा, बाप, पुत्र या मा, बाप, आचार्य तीन चक्रों पर स्थित है । पति उसका वेगवान् अश्व है । या भोक्ता है । तीन ऋण तीन बन्धन हैं ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! अध्यापक उपदेशक, वा राज प्रजावर्गो ! आप दोनों (नः) हमें (ऊर्जं वहतम्) बल पराक्रम और उत्तम अन्न प्राप्त कराओ । और (युवं) तुम दोनों (नः) हमें (मधुमत्या कशया) मधुर, विज्ञान युक्त वाणी से (मिमिक्षतम्) सेचन करो, उससे हमारे ज्ञान की वृद्धि करो । (आयुः) जीवन को (प्र तारिष्टम्) बहुत अधिक बढ़ा हमें दीर्घायु करो । (रपांसि) हमारे सब पापों को (नि मृक्षतम्) सब प्रकार से शुद्ध कर दूर करो । (द्वेषः) द्वेष के भावों को (नि षेधतम्) दूर करो और (सचाभुवा) सदा एक दूसरे

के साथ सहयोगी होकर (भवतम्) रहो। (२) दिन और रात्रि काल के वयव और सूर्य चन्द्र अन्नोत्पादक हों, जल युक्त विद्युत् से वृष्टि करें, जीवनप्रद अन्न प्रदान करें, मल दुःख पीड़ा धो बहावें, अप्रीतिकर कष्टों को दूर करें, सदा सहयोगी रहें।

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वृषणा) उत्तम वृष्टि करने वालो सूर्य चन्द्र ! या सूर्य और वायु ! और उनके समान तेजस्वी और बलवान् स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार सूर्य और वायु (जगतीषु गर्भम्) भूमियों में और प्राणि योनियों में ऋत्वनुसार गर्भ धारण कराते हैं और (जगतीषु) तीनों लोकों में (गर्भं) वृष्टि योग्य जल को सूक्ष्म रूप से धारण कराते हैं उसी प्रकार से हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (वृषणौ) कामनाओं, सुखों, वीर्यों के सेचन और वीर्य के रक्षण करने हारो ! आप (जगतीषु) गमन योग्य रात्रियों में ही (गर्भं धत्थः) गर्भाधान क्रिया द्वारा गर्भ धारण करो इससे अतिरिक्त निषिद्ध रात्रियों में नहीं। और (जगतीषु) आप दोनों प्रजाओं में (गर्भं) वशकारी प्रधान पुरुष को (धत्थः) धारण या स्थापन करो। (युवं) आप दोनों (विश्वेषु भुवनेषु) सब लोकों के बीच सुख से रहो। (युवम्) आप दोनों (अग्निम्) अग्नि, और (अपः च) जलों को और (वनस्पतीन् च) वनस्पतियों को भी (ऐरयेथाम्) कार्य में लाओ। अथवा (अग्निम्) अग्रणी नायक और विनीत पुत्र, विद्वान्, ज्ञानी, (अपः च) आप्त पुरुषों और (वनस्पतीन्) वृक्ष के समान सबके शरणदाता और सेना के दलपतियों और ऐश्वर्य पालकों को (ऐरयेथाम्) सदा अपने योग्य कार्यों पर नियुक्त करो।

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या॒ राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ६।२७।

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (भेषजेभिः) रोगनाशक वैद्यों और औषधियों से (भिषजा) रोग निवारण करने वाले (स्थः ह) होकर रहो और रोग निवारण किया करो। आप दोनों (राथ्येभिः) रथ के योग्य उत्तम अश्वों और अन्यान्य ऊँट, बैल आदि पशुओं से (रथ्या) रथ संचालन के कार्य में कुशल होकर (स्थः) रहो। और (वां) तुम दोनों में से (यः) जो (हविष्मान्) अन्न और ऐश्वर्य आदि ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों से सम्पन्न होकर (मनसा) चित्त से, प्रेम से और ज्ञान (ददाश) प्रदान करता है उसको आप दोनों (उग्रा) तीव्र स्वभाव के, अपमान और अधर्म को न सहने वाले होकर (क्षत्रम् अधि) क्षात्र बल और राष्ट्र के भी ऊपर (धत्थः) अध्यक्ष रूप से स्थापन करो। इति सप्तविंशो वर्गः। इति द्वितीयोऽध्यायः॥

[१५८]

दीर्घतमा ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। भुरिक् पङ्क्तिः। ६ निचृदनुष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती॥१॥

भा०—हे (वृषणौ) सूर्य और वायु, या विद्युत् और मेघ के के समान प्रजा पर सुखों का वर्षण करने वाले राजा और अमात्य, सभापति और सेनापति, अध्यापक और उपदेशक, और माता और पिता आप दोनों (वसू) प्रजाओं को बसाने और स्वयं भी राष्ट्र और गृह में बसने हारे, (रुद्रा) दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों के देने और ४४ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, और दुष्टों को रुलाने वाले, (वृधन्तौ) परस्पर बढ़ते और अधीनों की वृद्धि करते हुए, (पुरुमन्तू)

अति अधिक ज्ञानशील, बहुतों से मान आदर करने योग्य, (दस्रौ) दुःखों के नाशक और दर्शनीय होवो। (औचथ्यः) उपदेश करने योग्य, और उत्तम शिष्य (वां) तुम दोनों के समीप (यत्) जब विद्या प्राप्ति के निमित्त प्राप्त होता है तब आप दोनों (अकवाभिः) अनिन्दनीय, उत्तम (ऊतिभिः) ज्ञान वाणियों और रक्षा क्रियाओं सहित (प्र सस्राथे) ज्ञान का प्रसार करो। और (वां) आप दोनों का (यत् रेक्णः) दान देने योग्य, जलवर्षी मेघ के जल के समान ज्ञान और ऐश्वर्य है उसको (अभिष्टौ) उत्तम कामना की पूर्त्ति और इष्ट सिद्धि के लिये (प्र दशस्यतम्) अच्छी प्रकार प्रदान किया करो।

को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥

भा०—हे राजा रानी पुरुषो ! आप दोनों (कामप्रेण इव) एक दूसरे के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले (मनसा) मन से (चरन्ता) परस्पर आचरण करते हुए (यत्) जब (गोः पदे) पृथिवी के ऊपर रहने के स्थान में (नमसा) परस्पर आदर पूर्वक या अन्न द्वारा (रेवतीः) ऐश्वर्य से सम्पन्न (पुरन्धीः) नगरवासिनी प्रजाओं को पुष्ट करो तब (वसू) प्रजाओं के बीच उनको बसाने वाले उनके प्राणों के समान होकर तुम दोनों (अस्मे) हमारे हित के लिये (जिगृतम्) जागते रहो, सदा सावधान होकर रहो। (अस्यै चित् सुमतये) इस शुभ मति के लिये (वां) तुमको (कः) कौन (दाशत्) ज्ञान प्रदान करे। अथवा (कः) प्रजापति परमेश्वर ही उत्तम मति का उपदेश करे।

युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् अध्यक्ष एवं शिल्पिजनो ! (यत्) जिस प्रकार (तौग्र्याय) शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य सञ्चालन के

कार्य में कुशल पुरुष के कार्य के लिए (वां) आप दोनों से (युक्तः) संयुक्त (पेरुः) सर्व पालक, राष्ट्रपति, जल और अग्नि से युक्त महानौका के समान पार कराने वाला (पज्रः) स्वयं विद्वान् और बलवान् होकर (मध्ये अर्णसः) बीच सागर के (धायि) स्थापित किया जाता है। (शूरः न) जिस प्रकार शूरवीर सेनापति (पतयद्भिः एवैः) वेग से जाने वाले वेगवान् अश्वों सहित (अज्मन्) महासमर को जाता है उसी प्रकार मैं भी (पतयद्भिः) वेगवान् साधनों से युक्त होकर (वाम् शरणं गमेयम्) आप दोनों की शरण को प्राप्त होता हूं। अध्यात्म में—प्राण और उदान दोनों के आश्रय 'तौग्रय' अर्थात् आत्मरक्षा और द्युस्थानों के साधना और कर्मलोक के लिए पालक आत्मा 'पेरु' है। वह ज्ञानवान् चेतन होने से 'पज्र' है। वह भवसागर में फंसा है। वह प्राण-उदान के शरण जाकर गमनशील प्राणों के साथ उत्क्रमण करे।

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम्॥४॥

भा०—हे (अश्विनौ) दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र के समान सदा प्रकाशमान् और समस्त विद्याओं और प्रजाओं का भोग करने वाले सभा और सेना के स्वामीजनो! (उपस्तुतिः) समीप २ बैठकर राष्ट्र तथा राज्य के हित के लिये यथार्थ बातों की चर्चा, (औचथ्यम्) उत्तम वचनों के पात्र प्रशंसनीय राजा की (उरुष्येत्) रक्षा करो। इमे ये (पतत्रिणी) दोनों वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाली, दायें बायें रहने वाली और पक्ष प्रतिपक्ष से विवाद करने वाली सभा के सदस्यों की श्रेणिएं दोनों ही (मां) मुझ राजा या स्वामी को (मा वि दुग्धाम्) विपरीत रूप से दोहन न करें अर्थात् विपरीत हानिकारक दुष्फल प्राप्त न करावें। बल्कि, (दशतयः) दशगुणा (चितः) संचय किया हुआ (एधः) काष्ठ के समान प्रज्वलित होने वाला तेजस्वी सैन्यसमूह भी (मां मा

प्र धाक्) मुझको न जलावे । (यत्) क्योंकि (वां) तुम दोनों सभा और सेना के स्वामियों के आश्रय पर ही राजा वा प्रजावर्ग (त्मनि) अपने राष्ट्र में (बद्धः) बंधकर (क्षाम् खादति) इस भूमिका भोग करता है । (२) अध्यात्म में—गुरुद्वारा प्रवचन या उपदेश पाने योग्य होने से औचथ्य 'जीव' है । जो प्राण और अपान के बल पर देह में बंधकर (क्षाम्) निवास योग्य भोग भूमि, नाना योनियों का भोग करता है । उसके देह में मिथ्या ज्ञान और अकर्म दो पत्नी हैं वे उसे गिराते हैं । दशों इन्द्रियें दुष्कर्मों से दाहकारी होने से जलते काष्ठ के समान हैं । वे मुझे न सतावें और (उपस्तुतिः) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना ही मुझ जीव की रक्षा करे ।

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

भा०—(यत्) जब (दासाः) सुख देने वाले भृत्यजन या राष्ट्र के नाशकारी शत्रुजन (सु-समुब्धम्) अच्छी प्रकार धन धान्य से परिपूर्ण, सुसम्पन्न (मुझ) राष्ट्रपति को (अव अधुः) नीचे गिराने का यत्न करें उस समय (मातृतमाः) उत्तम माताओं के समान अति हितकारिणी, ज्ञानवान् (नद्यः) और धनैश्वर्य से सम्पन्न और उत्तम उपदेश देने वाली विद्वान् और आप्त प्रजाएं (मा न गरन्) मुझे निगलने का यत्न न करें, प्रत्युत मेरी रक्षा करें । (यत्) जब (त्रैतनः) धन जन और कोष, तीनों प्रकार की शक्तियों को बढ़ाने वाला (दासः) सुखप्रद भृत्यजन और उक्त तीनों प्रकार की शक्तियों को बढ़ाकर राष्ट्र को नाश करने वाला शत्रुजन (अस्य शिरः) इस राष्ट्र के शिर को (वि तक्षत्) विविध और विपरीत मार्ग से नाश करता है तब वह मानो (स्वयं) अपने ही आप (उरः अंसौ अपि ग्ध) अपने ही छाती और कन्धों पर आघात करता है । प्रजा का उत्तम बलवान् नायक राजा का घात करना अपना ही नाश कर लेना है । इसी प्रकार बलवान् राज्य से निर्बल का शत्रुता करना भी

अपने आप अपने पर विपत्ति मोल लेना है। ब्रह्मचारी पक्ष में—(यद् ईं सुसमुब्धम् दासाः अव अधुः) जब इस अति उत्तम विनीत विद्यार्थी को विद्यादि के दाता अपने अधीन रखें तब (मातृतमाः नद्यः न मा गरन्) नदियों के समान ममता से अश्रु बहाने वाली उत्तम माताएं मुझे अपने स्नेहमय मोह के पाश में न डुबो लें। जो गुरु विद्यादाता तीनों शरीर, आत्मा, मन के बल और त्रिविध वेद विद्या से युक्त होकर (अस्य-शिरः वि तक्षत्) इस मुझ विद्यार्थी के शिर या मस्तक को विवध उपायों से गढ़ता है, शिल्पी के समान उत्तम बनाता है वही (स्वयं) स्वयं (उरः अंसौ अपि ग्ध) उस विद्यार्थी के वक्षस्थल और कंधों को भी अपने आप प्राप्त कर उनको भी गढ़कर बनावे। अर्थात् ज्ञाता का ही कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थी के मस्तक के साथ२ हृदय और बाहु बल की भी वृद्धि करे। अध्यात्म में—दास कर्म-इन्द्रियगण जब आत्मा को नीचे गिरावें तब मातृतम नदी, गुरुजन क्यों न मुझे उपदेश करें। चेतन दास मन ही मेरा शिरो भाग को बनाता है वही (उरः अंसौ) छाती बाहू आदि अंगों को भी वश करता है।

दी॒र्घत॑मा माम॒ते॒यो जु॑जु॒र्वान्द॑श॒मे यु॒गे।
अ॒पामर्थं॑ य॒तीनां॑ ब्र॒ह्मा भ॑वति॒ सार॑थिः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—जो (दीर्घतमाः) अति विस्तृत अज्ञान और शोकादि में व्याकुल और (मामतेयः) अति ममताशील, लोभी होता है वह राजा (दशमे युगे) दसवें वर्ष (जुजुर्वान्) जीर्ण होकर नाश को प्राप्त हो जाता है। और (यतीनां) नियम में सुप्रबद्ध, सुसंगत जितेन्द्रिय (अपाम्) आप्तजनों, विद्वानों और प्रजाओं के (अर्थं) ऐश्वर्य और प्रयोजन को प्राप्त करता है यह उनका (ब्रह्मा) बड़ा विद्वान् और महान् स्वामी और (सारथिः) रथ के संचालक के समान उनको सन्मार्ग से ले जाने हारा होता है। अथवा—शिष्य जो अति अज्ञानी माता पिता

से अति ममता में बद्ध हो यह भी (दशमे युगे) दश वर्ष या ५० वर्ष तक आप्त जितेन्द्रिय गुरुजनों के सत्यार्थ का (जुजुर्वान्) उपदेश प्राप्त करके (ब्रह्मा) ब्रह्मचर्यवान्, विद्वान् वेदवक्ता और सार ज्ञान का ग्रहण करने वाला हो। या रथवान् आत्मा के ज्ञान से युक्त हो जाता है।

(दशमे युगे) दशवें वर्ष, अथवा युग = ५ वर्ष। (दशमे युगे) पचासवें वर्ष। अध्यात्म में—ज्ञानरहित जीव दीर्घतमा मामतेय है। (दशमे) सर्व दुःखों के नाशक शान्तिदायक याग में अपने को जीर्ण करता हुआ, आप्त जितेन्द्रियों के परम उद्देश्य को प्राप्त करता, स्वयं ब्रह्म में मग्न होकर रथवान् = रसवान् परमात्मा के साथ ही विचरता है। इति प्रथमो वर्गः॥

[१५९] पञ्चर्वं सूक्तम्

दीर्घतमा ऋषिः॥ द्यावापृथिव्यौ देवते॥ छन्दः—१ विराट् जगती। २, ३, ५ निचृज्जगती। ४ जगती च॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्र द्यावा॑ य॒ज्ञैः पृ॑थि॒वी ऋ॑ता॒वृधा॑ म॒ही स्तु॑षे वि॒दथे॑षु॒ प्रचे॑तसा। दे॒वेभि॒र्ये दे॒वपु॑त्रे सु॒दंस॑से॒त्था धि॒या वार्या॑णि प्र॒भूष॑तः॥ १॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के दृष्टान्त से माता पिता और गुरुजनों के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार (द्यावापृथिवी मही ऋता-वृधा) सूर्य और पृथिवी बड़े और सब प्रजाओं को अन्न और जल से बढ़ाने वाले होते हैं और जिस प्रकार वे दोनों (देवेभिः देवपुत्रे) प्रकाश युक्त किरणों और सुखप्रद पदार्थों द्वारा उत्तम पुरुषों के पालन करने वाले और (सुदंससा) उत्तम रीति से दुःखनाशक रह कर (वार्याणि प्रभूषतः) नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करते हैं उसी प्रकार (द्यावा पृथिवी) ज्ञान प्रकाश, स्नेह और उत्तम व्यवहारों से युक्त, भूमि के समान विस्तृत और प्रजा के उत्पादक माता, पिता और गुरुजन (मही) अति पूजनीय

(ऋतावृधा) सत्य ज्ञान और अन्न जल से सन्तानों की मन आत्मा और देह की वृद्धि करने वाले हों, उन दोनों (प्रचेतसा) उत्तम ज्ञान, उत्तम स्नेहवान् चित्त से युक्तों को मैं (विदथेषु) ज्ञानों के निमित्त और जब २ भी वे प्राप्त हों तब २ (स्तुषे) उनके उत्तम गुण वर्णन करूं। (ये) जो दोनों वे (देवेभिः) उत्तम विद्वानों द्वारा (देवपुत्रे) देव, तेजस्वी और दानशील, विजयी और व्यवहारकुशल पुत्रों और शिष्यों से युक्त होकर (सुदंससा) उत्तम कर्म और ज्ञान से युक्त होकर (धिया) बुद्धि और कर्म के बल से (वार्याणि) वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों को (प्र भूषथः) अधिक मात्रा में धारण करते कराते हैं।

उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥

भा०—(उत) और मैं (अद्रुहः) द्रोह रहित (पितुः) पिता और (मातुः) माता के (मनः) मन को (हवीमभिः) स्तुति योग्य, और सबको अपनाने वाले स्नेहों से (स्वतवः) स्वयं बलवान् और (महि) अति पूज्य (मन्ये) मानता और जानता हूं। क्योंकि दोनों (पितरा) जगत् के पालक सूर्य और पृथ्वी जिस प्रकार (सुरेतसा) उत्तम तेज और जल से युक्त होकर (प्रजायाः ऊरु अमृतं चक्रतुः) प्रजा के लिये बहुत अन्न और जीवन उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार दोनों (पितरा) प्रजा सन्तानों के पालक माता पिता (सुरेतसा) उत्तम वीर्यवान् होकर (वरीमभिः) श्रेष्ठ २ उपायों से (प्रजायाः) स्वसन्तानों के लिये (भूम) बहुत अधिक (अमृतं) जीवन अन्नादि (चक्रतुः) उत्पन्न और प्रदान करें। इसी प्रकार गुरुजन (सुरेतसा) उत्तम वीर्यवान् ब्रह्मचारी स्वशिष्यों के (भूम अमृतम्) भूमा स्वरूप अमृतमय ब्रह्म ज्ञान उत्तम उपायों से प्रदान करें।

ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३॥

भा०—पुत्रों का कर्त्तव्य । (ते) वे (सूनवः) पुत्र जन (स्वपसः) उत्तम ज्ञान (सुदंससः) उत्तम कर्म और व्यवहार वाले होकर (पूर्वचित्तये) सबसे पूर्व मान आदर करने के लिये (मातरा) माता पिता दोनों और ज्ञान कराने वाले आचार्यजनों को (मही) सबसे अधिक पूज्य (जज्ञुः) जानें । हे माता पिताओ ! आप दोनों (स्थातुः) स्थावर और (जगतः च) जंगम दोनों के (धर्मणि) धारण करने में (अद्वयाविनः) दोनों में सामर्थ्य से अधिक सूर्य के समान (अद्वयाविनः) मां बाप दोनों से भी गुणों में अधिक, अकेले (पुत्रस्य) पुत्र के (पदम्) स्थान वा मार्ग का (पाथः) पालन करो ।

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४॥

भा०—पुत्रों के कर्त्तव्य ! (ते) वे (मायिनः) बुद्धिमान् (सुप्रचेतसः) उत्तम सुन्दर ज्ञान और चित्त वाले (कवयः) क्रान्तदर्शी, दीर्घदर्शी, (सुदीतयः) उत्तम दीप्ति और तेज से युक्त (समुद्रे) अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणों के समान (जामी) परस्पर समान रूप से पुत्रोत्पादन में समर्थ, बन्धु होकर (मिथुना) जोड़े २ बन कर (समोकसा) एक ही स्थान में घर बना कर रहते हुए, (नव्यं नव्यं) नये २ (तन्तुं) प्रजातन्तु को (दिवि) अपनी कामनानुरूप पुत्रैषणा के निमित्त (आ तन्वते) उत्पन्न करें । अथवा (दिवि नव्यं-नव्यं तन्तुम्) वे जोड़े २ युगल दम्पति होकर नये २ यज्ञ को सुख और मोक्ष प्राप्त करने के निमित्त करें ।

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५॥२

भा०—(वयम्) हम लोग (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) प्रकाशस्वरूप, सुखदायक परमेश्वर के (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (राधः) परम आराधनीय स्वरूप ऐश्वर्य को उसके (प्रसवे) उत्तम उपासना काल में (मनामहे) सदा चिन्तन करें। इसी प्रकार (सवितुः देवस्य) पुत्रोत्पादक जीवन और ज्ञानदाता गुरु के (प्रसवे) शासन में रह कर उसके (वरेण्यं तद् राधः मनामहे) सर्वश्रेष्ठ ज्ञान और ऐश्वर्य को धारण करें। वे दोनों (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान (सुचेतुना) उत्तम चित्त और ज्ञानवान् होकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शतग्विनं) सैकड़ों गौओं और वाणियों से युक्त (वसुमन्तं) ऐश्वर्य युक्त, (रयिं) सम्पदा को (धत्तम्) प्रदान करें। द्वितीयो वर्गः ॥

[१६०]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् जगती । २, ३, ४, ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

भा०—सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से पति पत्नी के कर्त्तव्यों का वर्णन। (द्यावा पृथिवी विश्वशम्भुवा) सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार समस्त विश्व को शान्ति और कल्याण देने वाले हैं। वे (ऋतावरी) प्रकाश और जल से पूर्ण होकर (धारयत्कवी) क्रान्तदर्शी प्रकाश को धारण करते और (धिषणे) सबको धारण करते हैं उसी प्रकार (ते) वे दोनों स्त्री-पुरुष या माता पिता (हि) भी (विश्व-शम्भुवा) समस्त संसार को शान्ति देने और कल्याण करने वाले (ऋतावरी) सत्य व्यवहार, उत्तम धन को चाहने और स्वीकार करने वाले (रजसः) प्रजाजनों और लोकों

के हितार्थ, (धारयत्-कवी) क्रान्तदर्शी विद्वानों को धारण करने वाले, (सुजन्मनी) उत्तम जन्म वाले, (धिपणे) समस्त लोकों को अपने आश्रम में धारण करने वाले हों। उनमें से (देवः सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी और कामना युक्त पुरुष (धर्मणा) धर्म से (शुचिः) शुद्ध पवित्र हो। और उसी प्रकार (देवी) कामना युक्त, स्नेहवती स्त्री भी (धर्मणा शुचिः) धर्म से शुद्ध पवित्र होकर (अन्तः ईयते) हृदय, अन्तःकरण में विराजे।

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (रोदसी न) सूर्य और पृथिवी दोनों (उरु व्यचसा) अति विस्तृत और बहुत विविध कान्तियों और कमनीय पदार्थों से युक्त होती है। वे दोनों (महिनी) महान् होकर (भुवनानि रक्षतः) समस्त भुवनों को पालते हैं। वे (सुधृष्टमे) उत्तम रीति से दृढ़ होकर रहते हैं उसी प्रकार माता और पिता (उरुव्यचसा) अति विशाल हृदय वाले, विविध कामनीय गुणों को धारण करने वाले, (महिनी) पूजनीय, गुणों में महान्, (असश्चता) अयुक्त कार्यों, कामादि विलासों में असक्त, जितेन्द्रिय और निःस्वार्थ होकर (माता च) माता और (पिता च) पिता दोनों (भुवनानि) गृह में उत्पन्न सन्तानों की रक्षा करें। वे दोनों (सुधृष्टतमे) अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट, सहनशील, और (वपुष्ये) उत्तम शरीर के डील डौल वाले, सुन्दर हों। और (यत्) उन दोनों में जो (पिता) सन्तानों का पालक पिता है वह (रूपैः) नाना रुचिकर पदार्थों और वस्त्रों से (सीम्) सब प्रकार से (अभि अवासयत्) सब पुत्रादि सन्तानों को आच्छादित करे और पाले।

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३॥

भा०—उत्तम पुत्र के लक्षण। (सः) वह (पित्रोः पुत्रः) माता पिता का पुत्र (पवित्रवान्) पवित्र आचार और पवित्र वेद ज्ञान से युक्त होकर (धीरः) धैर्यवान् (वन्हिः) अग्नि के समान तेजस्वी और गृहस्थ कार्य को वहन करने में समर्थ एवं वीर्यवान्, विवाहित होकर (मायया) अपनी उत्तम बुद्धि से (भुवनानि) लोकों को सूर्य के समान समस्त उत्पन्न सन्तानों और अन्य लोकों को भी (पुनाति) पवित्र करता है। सूर्य जिस प्रकार (पृश्नि) पृथ्वी और (सुरेतसं वृषभं) उत्तम सजल मेघ को (पयः दुक्षत) जल से पूर्ण करता है इसी प्रकार वह पुत्र भी (धेनुम्) दूध पिलाने वाली माता, वा गौ को, (पृश्निम्) रसदात्री भूमि, रस पान कराने वाली माता ज्ञानप्रद आचार्य को (सुरेतसं) उत्तम वीर्यवान् (वृषभम्) बलवान् वीर्य निषेक्ता पुरुष पिता को (विश्वाहा) सदा ही पवित्र करता है। हे पुरुषो! आप लोग (अस्य) इसके (शुक्रं) बल वीर्य को और पुष्टिकारक अन्न जल को (दुक्षत) पूर्ण करो।

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंम्भुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे॥४॥

भा०—पुत्र के कर्त्तव्य। (अयं) यह (अपसाम्) उत्तम ज्ञानी और कर्मण्य (देवानाम्) विद्वानों के बीच (अपस्तमः) सब से अधिक ज्ञानी, कर्मनिष्ठ, आप्त होवे। (यः) जो पुत्र (रोदसी) अपने को उत्तम ज्ञान देने वाले माता पिताओं तथा गुरुजनों को (विश्वशम्भुवा) सब प्रकार के कल्याणों के उत्पादक रूप से (जजान) जानता है और (यः) जो (रजसी) चित्त को मनोरंजन करने वाले माता पिताओं को (सुक्रतुया) उत्तम कर्म युक्त कीर्त्ति से (वि ममे) विशेष कीर्त्तिमान् बनाता है और वह उन दोनों को (अजरेभिः) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले (स्कम्भनेभिः) स्तम्भों के समान आश्रयप्रद उपायों से

(सम् आनृचे) अच्छी प्रकार से सेवा करता है, उनको प्रसन्न करता है। परमेश्वर पक्ष में-क्रियावान् सब देवों में सर्वशक्तिमान् है जो शान्तिदायक द्यौ पृथिवी को बनाता और रचता है। जगत् को अजर अविनाशी थामने के साधनों से धारे हुए है।

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्। येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञान और आश्रय के देने वाले (ते) वे आप दोनों (गृणाने) स्तुति योग्य एवं पुत्रों को उत्तम ज्ञान का उपदेश करने वाले, (महिनी) अति पूज्य और ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले होकर (महिश्रवः) बड़ी अन्न समृद्धि के समान ज्ञान और कीर्त्ति और (बृहत् क्षत्रं) बड़े भारी बल वीर्य को भी (धासथः) धारण कराओ। (येन) जिसके बल से हम (विश्वहा) सदा ही (कृष्टीः) प्रजाओं को (ततनाम) विस्तृत करें। आप दोनों उत्तम स्त्री-पुरुष युगल मिल कर (पनाय्यं) स्तुति योग्य (ओजः) बल पराक्रम की (अस्मे) हम में (सम् इन्वतम्) प्राप्त कराओ। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् जगती ॥ ३, ५, ६, ८, १२ निचृज्जगती। ७, १० जगती च। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, १३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ९ स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप्। १४ स्वराट् पङ्क्तिः। चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ्कद्यदूचिम।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम॥१॥

भा०—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन। (किम् उ श्रेष्ठः) क्या यह पुरुष सबसे अधिक उत्तम, प्रशंसनीय गुणों से युक्त है, (किं यविष्ठः) क्या वह सबसे अधिक युवा, बलवान्, उत्साह पूर्ण है अथवा (यविष्ठः = वयिष्ठः) क्या सबसे अधिक ज्ञान आयु में वृद्ध है। (नः आजगन्) ऐसा पुरुष भी हमें प्राप्त हो। वह हम (यत् कत् ऊचिम) जो कुछ भी कहे उसी वचन को दूर दूसरे राज्य में ले जाने के लिये (किम्) किन कारणों से (दूत्यम्) दूत कर्म के पद को (ईयसे) प्राप्त हो। हे (भ्रातः) तत्वार्थ को अपने भीतर धारण करने में कुशल! (यः) जो पुरुष (महाकुलः) बड़े कुल में उत्पन्न होता है ऐसे (चमसं) मेघ के समान सत्पात्र पुरुष की हम (न निन्दिम) निन्दा नहीं करें। प्रत्युत हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे ज्ञानवन् पुरुष! दूत्य कर्म के लिये तो (द्रुणः) शीघ्र गति से जाने वाले पुरुष के ही (भूतिम्) सामर्थ्य की हम (ऊदिम) अधिक प्रशंसा करते हैं।

सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज हैं अर्थात् उत्तम धनुर्धर वीरों में तीन प्रकार के पुरुष हैं शिल्पी, धनाढ्य, वेगवान् बल शाली। परन्तु वीर योद्धाओं के सन्धि विग्रहादि के दूत कर्म के लिये चतुर्थ प्रकार का विद्वान् आवश्यक है उसका विवेचन है। वह श्रेष्ठ, युवा, उत्साही, यथार्थ वक्ता, सत्पात्र, कुलीन, शीघ्रगामी हो।

एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम्।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ॥२॥

भा०—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुष आदि शस्त्रों के सञ्चालन में कुशल! एवं हे उत्तम देश के शासन में कुशल पुरुषो! (देवाः)

ज्ञान देने हारे विद्वान् पुरुष (वः) आप लोगों को (तत् अब्रुवन्) उस उक्त प्रश्न के विषय में उपदेश करते हैं। मैं विद्वान् पुरुष भी (वः) आप लोगों के समक्ष (तत्) उसको यथावत् (आगमम्) प्रकट करता हूं। आप लोग (तुरः) चारों जनें मिल कर (एकं) एक (चमसं) सत् पात्र, वा मेघ के समान गम्भीर गर्जन करने वाले पुरुष को ही (कृणोतन) अपना दूत नियत करो। (यदि) यदि (एवा) इस प्रकार (करिष्यथ) करोगे तो आप लोग भी (देवैः साकं) विद्वान् एवं दानशील कर और ज्ञानप्रद पुरुषों के साथ मिल कर (यज्ञियासः) एक सुसंगत राष्ट्र के अंग एवं पूज्य पद के योग्य होकर (भविष्यथ) रह सकोगे।

अ॒ग्निं दू॒तं प्रति॒ यदब्र॑वीत॒नाश्वः॒ कर्त्वो॒ रथ॑ उ॒तेह कर्त्वः॑।
धे॒नुः क॒र्त्वा यु॑व॒शा क॒र्त्वा द्वा तानि॑ भ्रात॒रनु॑ वः कृ॒त्व्येम॑सि ॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार (दूतं अग्निं प्र अब्रवीतन) अति तापकारी अग्नि की विद्या को जान कर ही विद्वान् शिल्पी लोग यह कहा करते हैं कि (अश्वः कर्त्वः रथः उत) इस अग्नि के द्वारा वेग से जाने का एंजिन, और रमण साधन गाड़ी बनाये जाते हैं। (धेनुः कर्त्वा) उत्तम जल पिलाने वाला जलयन्त्र (वाटर्वर्क्स) बनाया जाता है। (द्वा युवशा कर्त्वा) अग्नि या विद्युत् के प्रयोग से निर्बल स्त्री-पुरुष दोनों को बलवान् पुनर्युवा कर दिया जाता है। हे (भ्रातः) धन अन्न से भरण पोषण करने हारे ऐश्वर्यवान् पुरुष! (तानि कृत्वी अनु) उन नाना प्रकार के कर्मों को करने के लिये हम शिल्पी लोग (वि आ-इमसि) प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार (अग्नि) ज्ञानवान् अग्रणी सबके प्रमुख (दूतं) दूत कर्म को करने वाले पुरुष को लक्ष्यकर (यत् प्रति अब्रवीतन) जो २ नाना कार्य आप लोग कहते हो कि उसके लिये (अश्वः कर्त्वः) उत्तम अश्व गण, आशुगामी रथ और अश्वसैन्य तैयार करो, (रथः कर्त्वः) रथ,

और रथ सैन्य तैयार करने चाहिये। (धेनुः कर्त्वा) नाना रस पिलाने वाली गौ के समान पृथिवी तैयार करनी और उत्तम वाणी बोलनी चाहिये और उसके राज्य में (द्वा युवशा कर्त्वा) स्त्री-पुरुष दोनों को युवा बलवान् बनाना चाहिये। हम विद्वान् लोग (वः) आप प्रजा के हितार्थ ही (तानि कृत्वी) उन नाना उत्तम कार्यों को (अनु) करने के लिये (आ एमसि) प्राप्त होते हैं।

चकृवांसं ऋभवस्तदंपृच्छत क्वेदंभूद्यः स्य दूतो न आजंगन्।
यदावाख्यंच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (त्वष्टा) सूर्य (कृतान् चमसान्) उत्पन्न किये मेघों को प्रकट करता है और स्वयं (ग्नासु अन्तः नि आनजे) भित्तियों व दिशाओं के बीच में भी प्रकाशित होता है उसी प्रकार (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (यत्) जिन (कृतान्) स्वयं तैयार किये (चतुरः) चार (चमसान्) शत्रु पक्ष के खा जाने वाले चतुरंग सैन्य बलों को मेघ के समान शस्त्रवर्षी और चारों वर्णों या चारों आश्रमों को राज्य समृद्धि के भोक्ता रूप से (कृतान्) सुव्यवस्थित रूप से बने और अच्छे रूप से आचरण किये हुए (अव अख्यत्) अपने अधीन देखता है। तब वह (त्वष्टा) राजा सूर्य के समान तेजस्वी होकर (ग्नासु अन्तः) गमन करने योग्य दाराओं में पति के समान, प्रजा और शासन करने योग्य भूमियों के बीच उनका भोक्ता होकर (नि आनजे) सब प्रकार से प्रकाशित होता है। तब (चकृवांसः) राज्य शासन करने वाले, (ऋभवः) सत्य धर्म और ज्ञान से प्रकाशित होने वाले बड़े पुरुष (तत् अपृच्छत) उससे यह प्रश्न करें कि (यः स्यः दूतः नः आजगन्) वह जो भी दूत हमारे पास आवे (क्व इत् अभूत) वह कहां रहे ? प्रमुख२ विद्वान् को किस २ पद पर स्थापित करें। इस प्रकार राजा से पूछ कर विद्वान् लोग उसी प्रकार

उसका निश्चय करें जैसे विद्वान् लोग अग्नि के नाना कार्यों, उसके स्वरूप और प्रयोगों का प्रश्न किया करते हैं।

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो लोग (चमसं) मेघ के समान सब सुखों के वर्षक राष्ट्र के भोक्ता (देवपानम्) विद्वानों द्वारा पालन करने योग्य राजा के (अनिन्दिषुः) निन्दक हैं (एनान्) उनको (हनाम) हम मारें (इति) इस प्रकार से (यत्) जब (त्वष्टा) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (अब्रवीत्) आज्ञा या निश्चय कहता है। तब (सुते) उत्तम शासनाभिषेक हो जाने पर या उत्तम शासन में वे पुरुष दण्ड से भयभीत होकर (अन्या नामानि) अन्य २ प्रकार के शत्रु पक्ष के दबाने के साधनों को भी (कृण्वते) करते हैं और (कन्या) तेजस्विनी सेना प्रजापति, प्रजापालक राजा की शक्ति या उत्तम राज्यव्यवस्थापक राजसभा (अन्यैः नामभिः) नाना वश करने के उपायों से (एनान्) इन राष्ट्रवासी (सचान्) संघ बनाकर मिले हुए मनुष्यों को (स्परत्) पाले पोषे, प्रसन्न करे और आगे बढ़ावे। इति चतुर्थो वर्गः ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन॥६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (हरी युयुजे) धारण और आकर्षण दोनों प्रकार के बलों को एक साथ अपने वश करता है इसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (हरी) दो अश्वों के समान ही राष्ट्र के धारण और शत्रु संहरण के बलों को (युयजे) अपने वश करे। उन दोनों का प्रयोग करे। (अश्विना) स्त्री पुरुष, एवं विद्वान् दो नायक स्मरण करने योग्य साधन गृहस्थाश्रम को, रथ को रथी सारथी के समान

सदा संचालित करें। राजा जिस प्रकार (विश्वरूपाम्) सब प्रकार की प्रजा को धारण करता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेद की वाणी का पालक विद्वान् (विश्वरूपाम्) सब संसार के पदार्थों को प्रकट करने वाली वेद वाणी को (उपाजत) ज्ञान करे। (ऋभुः) सत्य वाणी, सत्य व्यवहार के द्वारा सामर्थ्यवान् (वाजः) ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त (विभ्वा) विविध सामर्थ्यों सहित (देवान् अगच्छत) दानशील और तेजस्वी पुरुषों के पास जावे। और इस प्रकार हे पुरुषो! आप लोग (स्वपसः) उत्तम रूप, ज्ञान और कर्म वाले, सुसभ्य, सुशिक्षित, सत्कर्मी होकर (यज्ञियं भागम्) यज्ञ अर्थात् परस्पर सत्संग से और लेन देन के व्यवहार से प्राप्त होने योग्य सेवनीय राष्ट्र के ऐश्वर्य को (आ एतन) प्राप्त करो।

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन॥८॥

भा०—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुर्धारी पुरुषो! हे उत्तम पृथ्वी के पालन करने हारे पुरुषो! आप लोग (चर्मणः) ढाल के बल पर (गाम्) भूमि को (धीतिभिः) अपने धारण सामर्थ्यों से (निर अरिणीत) प्राप्त कर अपने वश करने में समर्थ होवो। और हे शिल्पीजनो! आप लोग (चर्मणः) चर्म में से (धीतिभिः) शास्त्रों द्वारा (गाम्) वाणों को दूर फेंकने वाली अपनी धनुष की डोरी प्राप्त करो। हे विद्वान् शिष्य पुरुषो! आप लोग (चर्मणः धीतिभिः) वृक्ष, हरिणादि की छाला के धारण करने के व्रतों से (गाम्) वेद वाणी को (निर् अरिणीत) पूर्ण रीति से प्राप्त करो। (या) जो (युवशा) युवक कुमारों को अपने अधीन धारण करें (ता) उन ऐसे (जरन्ता) उपदेश करने वाले विद्यावृद्ध माता पिताओं को (कृणोतन) अपना प्रमुख स्वीकार करो। अथवा बलवान् उपदेश करने वालों को प्रमुख बनाओ। (अश्वात्) उत्तम अश्व से (अश्वम्) उत्तम अश्व को (अतक्षत) तैयार करो। अर्थात् उत्तम जाति के अश्व पशु से उत्तम

अश्व सैन्य तैयार करो। अथवा उत्तम अश्व से उत्तम अश्व सन्तति प्राप्त करो (रथम् युक्त्वाय) रथ जोड़ कर (देवान्) दिव्य भोगों, गुणों, समस्त उत्तम व्यवहारों और विजयशील संग्राम कार्यों को (उप अयातन) प्राप्त करो।

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८॥

भ०—हे (सौधन्वनाः) उत्तम ज्ञानवान् और धनुर्धर वीर पुरुषों के शिक्षण में कुशल पुरुषो! आप लोग अपने अधीन पुरुषों को (इति अब्रवीतन) ऐसा उपदेश देते रहा करो कि (इदम् उदकं पिबत) ऐसा जल पान किया करो। (इदं) यह (मुञ्जनेजनं) रोगों से छुड़ाने और शरीर को शुद्ध कर देने वाला औषधि रस (घ) निश्चय ही (पिबत) पान किया करो। (यदि) यदि (तत् न इव हर्यथ) वह भी पान न करना चाहो तो (तृतीये) उन सबसे भी उत्तम (सवने) सोम आदि रस और ऐश्वर्य में (घ) ही (मादयध्वै) सदा आनन्दित रहो।

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९॥

भ०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों में (एकः) एक विद्वान् (इति अब्रवीत्) यही उपदेश करे (आपः भूयिष्ठाः) जल ही बहुत गुणों से युक्त हैं। वह जलों की विद्याओं का ही उपदेश किया करे। (अन्यः) दूसरा व्यक्ति (इति) ऐसा ही (अब्रवीत्) उपदेश किया करे (अग्निः भूयिष्ठः) अग्नि ही बहुत गुणों से युक्त है। वह अग्नि के ही गुणों का उपदेश किया करे। और (एकः) आप में से एक (बहुभ्यः) बहुत से शिष्यों को (वधर्यन्तीम्) शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या का या भूमि की विद्या का ही (अब्रवीत्) अच्छी प्रकार प्रवचन किया करे,

उपदेश किया करे। इस प्रकार आप सब लोग (ऋता वदन्तः) सत्य ज्ञानों का उपदेश करते हुए (चमसान्) ज्ञान और ऐश्वर्यों का भोग करने वाले या ज्ञान जिज्ञासू मानवों को (अपिंशत) नाना विभागों में बांट दो।

श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः १०

भा०—विद्वान् पुरुषों के कार्यों का वर्णन। (एकः) एक विद्वान् पुरुष (उदकं अव अजति) जल को यन्त्र द्वारा नीचे से ऊपर निकालता है और (एकः) दूसरा विद्वान् (श्रोणाम्) श्रवण करने योग्य (गाम्) उत्तम वाणी को (अव अजति) नीचे की तरफ हृदय या नाभिदेश से उठा कर ऊपर मुख द्वारा प्रकट करता है अथवा (श्रोणाम् श्लोणाम्) श्रवण योग्य, प्रसिद्ध गुणों से युक्त गौ को (अव अजति) चराता है अथवा (श्रोणाम्) उत्तम भूमि को प्राप्त करता है। और (एकः) एक पुरुष (सूनया) हल की फाली से या अन्नोत्पादक क्रिया से (भृतं) प्राप्त हुए (मांसम्) मन को उत्तम लगने वाले अन्नादि को (पिंशति) करता और पैदा करता या उसे रुचिर बनाता है या (मांसं) मनन करने योग्य ज्ञान जिसको (सूनया आभृतम्) गुरु की प्रेरणा या उपदेश क्रिया से प्राप्त किया गया है उसको (पिंशति) पृथक् पद २ क के अभ्यास करे। (एकः) विद्वान् (निम्रुचः) अस्त जाते सूर्य के (शकृत्) शक्ति दायक अंश को (अप अभरत्) उससे प्राप्त करता है। (पुत्रेभ्यः) बहुतों की रक्षा करने में समर्थ विद्वानों के हित के और जो कुछ भी (किंस्वित्) पदार्थ हैं उन्हें (पितरौ) पालक माता और पिता दोनों (उप आवतुः) प्राप्त कराना चाहें। (२) पुत्रों में से एक गौ पाले, एक जल लावे, एक सूर्यास्त के पूर्व २ गोबर के कण्डे ले आवे, फिर माता पिता क्या लावें जो पुत्रों से लाना शेष रहे? कुछ नहीं। पुत्र ही माता पिता की सेवा

किया करें। सूर्य की किरणों के तथा भौतिक पदार्थों के पक्ष में-(एकः) वह सूर्य या वायु सूर्य की किरण (श्रोणाम् गाम् प्रति उदकं अवअजति) सूखी या सेचने योग्य पृथ्वी पर जल बरसाता है। और एक (सूनया भृतम्) उत्पादन क्रिया द्वारा प्राप्त मांसमय शरीर को रूपवान् बनाता है। और एक आदित्य के अस्त होने तक शक्ति का संञ्चार करता है। इन रक्षकों से क्या शेष रहता है जिसे माता पिता के समान आकाश और पृथिवी प्राप्त करावें।

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११॥

भा०—हे (नरः) नायक विद्वान् पुरुषो! आप लोग (उद्वत्सु) ऊंचे स्थलों पर (अस्मै) इस पशुवर्ग के हितार्थ (तृणं) घास आदि चरने योग्य पदार्थ (अकृणोतन) उत्पन्न करो और (निवत्सु) और नीचे के गहरे स्थानों पर (सु अपस्यया) उत्तम कर्मों की इच्छा या परोपकार से प्रेरित होकर (अपः) जल एकत्र करो। अथवा निम्न श्रेणियों के पुरुषों पर (अपः) ज्ञानों और ज्ञानवान् आप्त पुरुषों को नियुक्त करो। (गृहे) घर में (यद्) जब जाकर (असस्तन) रहो या सोओ (तत्) तब (अद्य) सदा (अगोह्यस्य) अग्राह्य पुरुष और अग्राह्य पदार्थ के (इदम्) इस दुश्चरित्र का (न अनुगच्छथ) कभी अनुगमन मत करो।

सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन॥१२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! हे विद्यार्थी जनो! (यत्) जब (सम्मील्य = संमिल्य) परस्पर प्रेम से मिल कर या (संमील्य) अच्छी प्रकार आंख खोल कर या सबको अच्छी प्रकार वस्त्र रक्षा आदि से आच्छादन कर (भुवना) समस्त प्राणियों और पदार्थों और पुत्रों को (परि असर्पत) प्राप्त होवो। (ता त्या) उस समय (वः) आप लोगों

के (पितरा) माता पिता (क्वस्वित्) कहीं भी (आसतुः) रहें। इसकी चिन्ता मत करो। (यः) जो (वः) आप लोगों के (करस्नं) बाहु को (आददे) पकड़े, जो तुम्हारे क्रिया शक्ति पर प्रतिबन्ध लगावे (तस्मै अशपत) उसको तुम बुरा कहो और (यः) जो (वः) तुमारे लिये (प्र अब्रीत्) उत्तम रीति से उपदेश करे (तस्मै) उसके लिये हितकारी, (प्र अब्रवीतन) प्रिय वाणी बोला करो।

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत॥१३॥

भा०—हे (ऋभव) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले सूर्य किरणों के समान देदीप्यमान! हे (सुषुप्वांसः) सुख से शयन करने हारे, निश्चिन्त, निष्पाप विद्यार्थी जनो! आप लोग (तत्) उस परम ज्ञान के सम्बन्ध में सदा (अपृच्छत) प्रश्न किया करो। हे (अगोह्य) तुझ से कुछ भी न छिपा रखने योग्य, हे आचार्य! (नः) हमें (इदं) यह सब ज्ञातव्य विषय कौन बतला सकता है? तब (बस्तः) अपने गुरु के दोषों को अच्छादन करने और उसके अधीन बसने वाला विद्यार्थी ही (श्वानं) अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर ले जाने हारे, (बोधयितारं) ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य को (अब्रवीत्) कहे (संवत्सरे) एक वर्ष में ही (इदं) यह समस्त ज्ञान हमें (अद्य) अभी (वि अख्यत) विशेष रूप से व्याख्यान करदें।

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः १४।६

भा०—हे (शवसः नपातः) बलवीर्य और ज्ञान का पतन या विनाश न होने देने हारे विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार (मरुतः दिवा याति) वायुगण सूर्य के बल से चलते हैं। (भूम्यः अग्निः) और अग्नि भूमि के आश्रय

से बढ़ती और (अयं वातः) यह वायु (अन्तरिक्षेण याति) अन्तरिक्ष का आश्रय लेकर चलता है और जिस प्रकार (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ राजा (समुद्रैः अद्भिः) समुद्र के समान गम्भीर आप्तजनों के साथ जिस प्रकार (वरुणः) जल या मेघ (समुद्रैः) आर्द्र करने वाले या भूतल से उठते हुए (अद्भिः) जलों के साथ (याति) गमन करता है उसी प्रकार (युष्मान्) तुम को (इच्छन्तः) चाहने वाले (शवसो नपातः) बल वीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाले विद्वान् लोग प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१६२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् । त्रिष्टुप् । ६, ११, २१ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ स्वराट् त्रिष्टुप् । १३ १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५, १६, २२ स्वराट् पङ्क्तिः । १६ विराट् पङ्क्तिः । ३ निचृज्जगती ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥१॥

भा०—(मित्रः) हमारा मित्र, स्नेहीजन, (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायाधीश, (आयुः) वायु और अन्न जीवन प्रद एवं ज्ञानवान् , (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षाः) विद्वान् पुरुषों के बीच निवास करने वाला, परम विद्वान् , मेधावी और (मरुतः) अन्य विद्वान् ऋत्विग् और वायु के समान बलवान् , शत्रु नाशक सैनिक लोग (नः) हमारे उसे (देवजातस्य सप्तेः) विद्वान् विजयशील पुरुषों में प्रसिद्ध, उत्तम गुण और व्यवहारों में प्रसिद्ध (सप्तेः) वेग से आगे बढ़ने हारे और समवाय बनाने में कुशल पुरुष के (वीर्याणि) बलों और

सामर्थ्यों की (मा परिख्यन्) कभी निन्दा और उपेक्षा न करें (यत्) जिस (वाजिनः) बलवान्, ज्ञानवान्, वेगवान्, समवाय करने में कुशल राजा या सेनापति के (वीर्याणि) नाना सामर्थ्यों का हम (प्र वक्ष्यामः) अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं। अध्यात्म में—आत्मा और परमात्मा दोनों शक्ति और ज्ञान सामर्थ्यवान् होने से 'वाजी' हैं, इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्ति वाला होने से 'देवजात' है। व्यापक होने से 'सप्ति' है। हम उसके गुण वर्णन करें और मित्र, उत्तम ज्ञानी और धनी पुरुष राजादि हमारी उपेक्षा और अपमान न करें। प्राण, उदान, समान, और इन्द्रियों की शक्ति और अन्यान्य उपप्राण भी हमें न छोड़ें। (यजु० अ० २५। २५)

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥

भा०— (यत्) जब (निर्णिजा) उत्तम शुद्ध रूप या अभिषेक तथा (रेक्णसा) धनैश्वर्य से (प्रावृतस्य) सुशोभित पुरुष की (रातिं) दी हुई और (मुखतः गृहीताम्) मुख्य रूप से प्राप्त वृत्ति को अधीनस्थ पुरुष (नयन्ति) प्राप्त करते हैं तब (सुप्राङ्) उत्तम प्रश्नशील विद्यार्थी के समान उत्तम रूप शोभा से युक्त, कान्तिमान् (अजः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, (विश्वरूपः) सब पदार्थों और राष्ट्र में बसे प्राणियों और अधिकारों का स्वामी, नायक, (मेम्यत्) सब बाधक शत्रुओं को नाश करता हुआ (इन्द्रापूष्णोः) इन्द्र, सेनापति और पूषा, पोषक स्वामी दोनों के पदों अर्थात्, विद्युत् सूर्य या मेघ और पृथ्वी इन दोनों में विद्यमान (प्रियं) सब को प्रिय लगने वाले (पाथः) जल और अन्न के समान सब को पालन करने वाले बल और ऐश्वर्य को (अपि-एति) प्राप्त होता है। (२) अध्यात्म में—जब विद्वान् जन उस परमेश्वर के शुद्ध और अतिरिक्त, सर्वातिशायी केवल रूप से युक्त प्रभु की दी, स्वतः ग्रहण की ज्ञान राशि और दान राशि को प्राप्त करते हैं तब यह विश्वरूप जीव आत्मा (मेम्यत्)

सब बाधाओं को नाश करता हुआ परमेश्वर के ऐश्वर्यवान् और सर्व पोषक दोनों रूपों के (पाथः) परम पावन स्वरूप को साक्षात् कर उसमें मग्न हो जाता है ।

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

भा०—(एषः) यह (विश्वदेव्यः) समस्त विजयी, व्यवहारकुशल अपने चाहने वाले तथा विद्वान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ और उनका हितकारी (छागः) शत्रुओं को छेदन भेदन करने हारा, शस्त्र विद्या और युद्ध में निपुण तथा राष्ट्र को भिन्न २ भागों में बांटने वाला, वीर पुरुष (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) अश्व सैन्य और (वाजिना अश्वेन) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के साथ (पूष्णः) सर्वपोषक सूर्य और पृथिवी के (भागः) तेज और ऐश्वर्य को भोग करने वाला होकर (पुरः नीयते) सब से आगे २ सेना पति के मुख्य पद पर स्थापित किया किया जाता है तब (त्वष्टा इत्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ही (अर्वता) विद्वान् जन और अश्व सैन्य के सहित (अभिप्रियम्) सर्वप्रिय, (पुरोडाशम्) सब के समक्ष, सबके सन्मुख देने योग्य प्रधान पद को प्राप्त (एनं) इस नायक को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (जिन्वति) परिपुष्ट करता है ।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

भा०— (यत्) जब (हविष्यम्) उत्तम अन्न के समान श्रेष्ठ, स्वीकार करने योग्य, (देवयानं) विद्वानों को प्राप्त करने योग्य, और उनका भार अपने ऊपर लेकर उनको उत्तम मार्ग पर ले जाने हारे (अश्वं) आशुगामी, अश्व के समान बलवान्, सेनापति, राष्ट्र और राष्ट्रपति को

(मानुषाः) मननशील पुरुष (त्रिः) तीनों प्रकारों से (परि नयन्ति) प्राप्त कराते हैं (अत्र) इस अवसर पर (पूष्णः) सर्वपोषक पृथ्वी का (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (भागः) सेवन करने योग्य भाग, या पृथ्वी का सब से उत्तम भोक्ता (अजः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, एवं विद्वान् पुरुष (देवेभ्यः) विद्वानों और तेजस्वी विजयाभिलाषी पुरुषों की वृद्धि के लिए (यज्ञं) सब के संयोजक, प्रजापति, सर्वोपास्य, आदरणीय प्रधान पुरुष को (प्रति वेदयन्) एक दूसरे का परिचय कराता हुआ (एति) प्राप्त हो। वर्ष की तीनों ऋतुओं में राजा का भ्रमण करावे और उसी अवसर पर वीर प्रधान २ प्रजापालक शासकों से उसका परिचय कराया करें। (२) अध्यात्म में (हविष्यं) परमोपास्य (अश्व) व्यापक परमेश्वर को जब विद्वान्‌गण मनसा, वाचा, कर्मणा प्राप्त होते हैं, परम पोषक प्रभु का परम सेवक अज आत्मा कामनाशील इन्द्रियों की विषयाभिलाषाओं से पृथक् होकर उसी परमोपास्य यज्ञ, परमेश्वर का प्रतिक्षण ध्यान करता हुआ उसको प्राप्त होता है।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५॥७॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता और ब्रह्मा ये ऋत्विज् होते हैं उसी प्रकार राष्ट्र रूप यज्ञ में (होता) अधिकारों का प्रदाता, (अध्वर्युः) समस्त प्रजा पालन के तन्त्र को चलाने हारा, महामात्र, (आवयाः) सर्वत्र व्यापक सबको अपने अधीन योग्यतानुसार कलपुर्जों के समान जोड़ने वाला, (अग्निमिन्धः) राजादि अग्रणी नायकों और विद्वान् ब्राह्मणों को मान, दान आदर से सदा उत्साहित और उत्तेजित करने वाला, (ग्रावग्राभः) विद्वानों और शस्त्रास्त्र बल को अपने वश में रखने वाला, (शंस्ता) उत्तम प्रशंसक, सन्मार्ग का उपदेष्टा, या (सुविप्रः) उत्तम विद्वान् मेधावी, सबकी

न्यूनताओं को पूर्ण करने हारा सभापति हो। हे विद्वान् पुरुषो ! आप सब (तेन) उस (स्विष्टेन) सुव्यवस्थित, सुचालित, (सु-अरङ्कृतेन) उत्तम रीति से सुशोभित, खूब क्रिया कुशल, सुअभ्यस्त (यज्ञेन) प्रजापालक राजा वा उत्तम राष्ट्र से (वक्षणाः) यज्ञ से उत्पन्न जलों से नदियों के समान और उत्तम पति से प्राप्त पुत्र द्वारा भार्या की कुक्षियों के समान, धनैश्वर्य और अन्न द्वारा प्रजा की कुक्षियों तथा दिशावासिनी राष्ट्र को वहन करने वाली प्रजाओं और सेनाओं को (आपृणध्वम्) सब प्रकार से पूर्ण, समृद्ध करो। (२) अध्यात्म में सातों प्राण सात ऋत्विग् हैं। यज्ञ आत्मा है, उसको उपासना के जल से नदियों के समान धर्ममेघ, आनन्दघन में रम रम कर सब कामनाएं पूर्ण करो। इति सप्तमो वर्गः॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु॥ ६॥

भा०—जो मनुष्य (यूपव्रस्काः) शत्रुओं के नाशकारी, उनको मोहित करने और प्रजा के बीच स्तम्भ के समान सर्वाश्रय, सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पद को परिश्रम से बनाते हैं (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) जो उसको अपने कन्धों पर, रथ को अश्वों के समान धारण करते हैं और (ये) जो (चषालं) स्तम्भ के मुख्य भाग के समान राजा के प्रधान पद को (तक्षति) वृक्ष को वर्धकि के समान शस्त्रास्त्र संचालनों द्वारा बाधक कारणों को नाश करके बनाते हैं (उतो) और (अर्वते) ज्ञानवान्, वेगवान्, शत्रु पर प्रयाण करने वाले अश्वसैन्य और सेनानायक के लिये (पचनं) परीपक्व अन्न को (संभरन्ति) सब प्रकार से संग्रह करके उन तक पहुंचाते हैं (तेषां) उन सभी सहोद्योगी पुरुषों का (अभिगूर्तिः) उद्यम (नः) हमें (इन्वतु) प्राप्त हो।

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्॥७॥

भा०—जो पुरुष (मे) मुझ प्रजाजन के लिये (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान और शत्रु और प्रजाओं को वश करने वाले बल को धारण करता है और जो (देवानाम् आशाः) विद्वान् और वीर तेजस्वी पुरुषों की समस्त आशाओं और कामनाओं को धारण करता है उस (उप वीतपृष्ठः) हृष्ट पुष्ट पृष्ठ वाले, अश्व के समान सबका भार अपने ऊपर उठाने में समर्थ और (उप वीतपृष्ठः) गुरु के समीप प्राप्त यज्ञोपवीत से युक्त पीठ वाला, द्विज, आचार्य से शिक्षित और (उप वीतपृष्ठः) उत्तम वस्त्रादि से यज्ञोपवीत के समान द्विपट्टा धारण करने हारा, सदा सन्नद्ध होकर (सुमत्) उत्तम ज्ञानवान् उत्तम रीति से सबको आनन्दित करने हारा होकर या स्वयं (उप प्र अगात्) हमें सदा प्राप्त हो, (एनं) इसको देख कर (विप्राः) विविध विद्याओं के वेत्ता विद्वान् जन और (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा और राजर्षि जन भी (अनु मदन्ति) सदा प्रसन्न होते हैं। उसको ही हम लोग (देवानां पुष्टे) विद्वानों और आप्त वीर पुरुषों के पोषण कार्य में (सुबन्धुम्) उत्तम बन्धु निज सम्बन्धी और प्रबन्धकर्त्ता रूप से (चकृम) बनावें। अर्थात् योग्य शिक्षित, समावृत्त स्नातक को हम कन्या आदि दे अपना बन्धु बनावें। और उत्तम हृष्ट पुष्ट शिक्षित संपन्न पुरुष को प्रबन्धक बनावें। अध्यात्म में—आत्मा आवरणकारी तामस आवरण या देह बन्धन को त्याग कर मुक्त हो, उसको ही हम उत्तम बन्धु बनावें।

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥

भा०—(यत् वाजिनः दाम) जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व के दमन करने वाला बन्धन, (संदानम्) उत्तम पग आदि का बन्धन, (शीर्षण्या रशना) सिर पर बांधने वाली रस्सी और (रज्जुः) गले की रस्सी आदि होती है और जिस प्रकार (प्रभृतम् तृणम् आस्ये)

उत्तम पुष्टिकारक घास आदि तृण मुख में दिया जाता है वह सब (देवेषु) विद्वान् व्यवहारकुशल पुरुषों के हाथ में होना चाहिए इसी प्रकार (यत्) जो (वाजिनः) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष का (दाम) दमन साधन, यम नियम पालन, और व्यवस्था हो, (संदानम्) उसका दान आदि करने का धन वैभव और दण्ड बल, अथवा (दाम संदानम्) सुन्दर बन्धन, शिरोवेष्टन, मुकुट, पेटी आदि हो, और (या) जो (अस्य अर्वतः) इस ज्ञानी, बलवान् पुरुष की और अश्व सैन्य की (शीर्षण्या) मुख्य अंग या पद पर शोभा देने वाली (रशना) सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक, (रज्जुः) सर्जनकारिणी या व्यवस्था निर्मात्री शक्ति या अधिकार हैं, (यद् वा घ), और जो (अस्य आस्ये) इसके प्रमुख स्थान पर (तृणम्) शत्रु और संकटों के काटने में समर्थ बलवान् सैन्य, (प्रभृतम्) अच्छी प्रकार से वेतन पर नियत है हे पुरुष ! (ते) तेरे (ता) वे सब पदार्थ (देवेषु) विद्वान् वीर पुरुषों के अधीन और उनके हित के लिये (अपि अस्तु) हुआ करें।

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जो भाग (क्रविषः अश्वस्य) विजय करने योग्य राष्ट्र की (मक्षिका) उपदेश या शिक्षा का कार्य करने वाली, विद्वत्सभा या रोष का कार्य करने वाली सेना (आश) खा जाती है, (यद् वा) और जो अंश (स्वरौ) तापदायक और शत्रु संन्तापक और (स्वधितौ) वज्र आदि शस्त्रास्त्र बल में (रिप्तम् अस्ति) लग जाता है। और जो भाग (शमितुः) शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले वीर पुरुष के (हस्तयोः) हाथों अर्थात् हनन करने के साधनों और उपायों में लग जाता है, (यत् नखेषु) जो राष्ट्र के ऐश्वर्य का अंश छिद्र रहित राष्ट्र के प्रबन्ध कार्यों में और प्रबन्धकर्त्ताओं में,

व्यय हो जाता है (ता सर्वा) वे सब कार्य (ते) तुझ राष्ट्र और राष्ट्र-पति के (देवेषु अपि अस्तु) देवों के अधीन ही हुआ करें।

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (ऊवध्यं) विनाश करने योग्य, चिकित्सनीय, (उदरस्य) पेट का वायु अपान आदि पेट से (अप वाति) अनपच, वमन आदि के द्वारा निकल जाता है और (यः) जो (आमस्य) कच्चे (क्रविषः) खाने योग्य अन्न का (गन्धः अस्ति) बुरा गन्ध हो (तत्) उन सब दोषों को (शमितारः) शान्तिजनक, अन्न के पकाने वाले जन दूर करके (सुकृता कृण्वन्तु) सुखजनक कर दें। और (मेधं) अन्न को (शृतपाकं पचन्तु) खूब अच्छी प्रकार परिपक्व करें। (२) राष्ट्र पक्ष में—(यत्) जो भी (ऊवध्यम्) उच्छेद करने योग्य या मलिन कार्य करने वाला राष्ट्र का भाग (उदरस्य) पेट के भीतर पड़े अधकचे अन्न के समान उपद्रवियों को समूल नाश करने वाले दुष्ट दलनकारी विभाग के हाथ से (अप वाति) निकल भागे और (यः) जो (आमस्य) रोगकारी हिंसक जन्तुओं का (गन्धः) परपीड़न का कार्य (अस्ति) है (शमितारः) उपद्रव और दैवी और मानुषी विपत्तियों को शान्त करने वाले विद्वान् और वीर पुरुष (सुकृता) उत्तम उपाय से (तत्) उसको (कृण्वन्तु) विनाश करें। (उत) और (मेधं) हिंसाकारी वर्ग को (शृतपाकं पचन्तु) खूब परिपक्व अर्थात् सन्तप्त करें। जिससे वह दुष्टता त्याग सौम्य हो जाय। विशेष देखो यजु० २५। ३३ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥

भा०—हे विद्वन् ! हे शूरवीर ! अश्व सैन्य ! (ते) तेरे (अग्निना)

क्रोधाग्नि द्वारा (पच्यमानात्) दग्ध होते हुए (ते गात्रात्) तेरे गात्र अर्थात् हाथ से (शूलम् अभि) पीड़ा देने वाले शत्रु को लक्ष्य करके (निहतस्य) मारे गये शस्त्रास्त्र का (यत्) जो भी आघातकारी बल है (तत्) वह (भूम्याम् मा आश्रिषत्) अपनी ही आश्रय रूप भूमि पर जाकर न गिरे, (तृणेषु) तृण अर्थात् तुच्छ, निर्बलों पर (मा आश्रिषत्) न गिरे, प्रत्युत (उशद्भ्यः) शत्रुयुद्ध की कामना करने वाले (देवेभ्यः) विजयेच्छु शत्रुओं के लिये (रातम् अस्तु) उसका त्याग किया जाय । अथवा राष्ट्रपक्ष में—हे राष्ट्र ! (शूलम् अभि निहतस्य) शूल अर्थात् हल आदि द्वारा तोड़े फोड़े गये तेरे (अग्निना पच्यनात् गात्रात्) सूर्य और राजपुरुषों आदि से संतापित, प्रजा के देहों और खेतों से (यत् अवधावति) जो भाग भी अलग हो (तत् भूम्याम् मा आश्रित्) वह भूमि पर न पड़ा रह और (मा तृणेषु)वह तिनकों, घासों में भी न मिल जाय । प्रत्युत वह प्रिय (उशद्भ्यः देवेभ्यः) अन्नादि के इच्छुक विद्वान् और विद्या और विजय के इच्छुक विद्यार्थियों और वीरों को प्राप्त हो । राष्ट्र का सब ओषधि अन्नादि जो भूमि से उत्पन्न हो वह पुरुषों और प्रजाओं को खाने के लिये मिले । ब्रह्मचर्य पक्ष में—देखो यजु० अ० २५ । ३४ ॥

ये वा॒जिनं॑ परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ई॑मा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑ ।
ये चार्व॑तो मां॒सभि॒क्षामु॒पास॑त उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्तिर्न इन्वतु ॥ १२॥

भा० (ये) जो लोग (वाजिनम्) अश्व के समान अश्व सैन्य को और राष्ट्र को (पक्वं) परिपक्व, सुदृढ़, सुशिक्षित, तपस्या से युक्त को (परिपश्यन्ति) देखते हैं उस पर अपना सदा सब प्रकार निरीक्षण, देख रेख रखते हैं और (ये) जो (ईम्) इसको (पक्वं) परिपक्व ज्ञान और बलवीर्यवान् देखकर (आहुः) ये उपदेश करते हैं कि तू (सुरभिः) सुदृढ़, आचारवान्, सुगन्धित सुपक्व अन्न के समान है तू (निर्हर) अब बाहर निकल आ, मैदान या कार्य क्षेत्र में आ । और (ये च) जो भी

(अर्वतः) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष की (मांसभिक्षाम्) मनन करने और मन को उत्तम प्रतीत होने योग्य ज्ञान और बल अथवा उसके देह की भिक्षा अर्थात् लेने की याचना (उपासते) करते हैं, अर्थात् उससे ज्ञान चाहते या उसकी कार्यक्षेत्र में बलि चाहते हैं इस कार्य के लिये उसके समीप रहते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्त्तिः) उसके हित के लिये सब प्रकार का उद्योग (नः इन्वतु) हमें प्राप्त हो। (२) राष्ट्र पक्ष में—(ये) जो विद्वान् लोग (वाजिनम्) अन्नादि समृद्धि से युक्त या संग्रामादि के बल से युक्त राष्ट्र को खूब (पक्वं) परिपक्व, पके खेतों वाला और दृढ़ (परिपश्यन्ति) देख लेते हैं और (ये) जो (ईम्) इसके विषय में (आहुः) कहते हैं कि वह (सुरभिः) वह खेत खूब उत्तम पके धान के गन्धसे युक्त और सैन्य सुदृढ़ है। (निः हर) इस पके खेत को काट के ले जाओ, और सैन्य को हे सेनापते ! तू संग्राम में ले जा। और (ये) जो (अर्वतः) इस भोगयोग्य राष्ट्र के (मांसभिक्षाम् उपासते) मन को लुभाने वाले अन्न ऐश्वर्यादि और सैन्य के देह रक्तादि की याचना करते हैं उनका (अभिगूर्त्तिः) उद्यम और उपदेश हमें प्राप्त हो। (३) ब्रह्मचारी पक्ष में देखो (यजु० २५। ३५)

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३॥

भा०—(यत) जो (मांस्पचन्याः) मन को अच्छे लगने वाले नाना अन्नों और फलों का परिपाक करने वाली, (उखायाः) खनी जाकर उत्तम फल देने वाली भूमि का (नि-ईक्षणं) निरन्तर देख भाल करना, या उसके सुन्दर दर्शनीय दृश्य और (या) जो (पात्राणि) सब प्राणियों की पालना करने वाले (यूष्णः आसेचनानि) रस या जल के सेचन करने के साधन कूप, तडाग आदि स्थान, वर्त्तन आदि और जो

(चरूणां) विचरने वाले पथिकों के निमित्त (ऊष्मण्या) ग्रीष्म काल में सुखकारी (अपिधानानि) आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं और जो (अंका) स्थान २ पर अङ्कित मार्ग और (सूनाः) स्नान करने के तीर्थ आदि स्थान हैं वे सभी सुखजनक पदार्थ (अश्वं परिभूषन्ति) अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को सुभूषित करते हैं। (२) अध्यात्म में— देहगत मांसादि को परिपक्व करने वाली उखा यह देह है मांस अथवा, अर्थात् या मनन योग्य, मन की गति के पात्र, उत्तम विचारों को परिपक्व करने वाली उखा यह मस्तिष्क है। इस जड़ देह वा मस्तिष्क का इन्द्रियों द्वारा देखना, और रोम २ या देह के प्रत्येक अणु (Cell) का जीवनमय रस से सींचा जाना, त्वचाओं के जीवन की उष्मा को ढक कर रखने के आवरण, (अङ्काः) बाह्य पदार्थों के भीतर ज्ञान ग्रहण करने की इन्द्रियां और (सूनाः) भीतरी विचारों को बाहर प्रेरित करना ये सभी आत्मा के सर्वत्र लक्षण हुआ करते हैं। (यजु० २५ । ३६)

नि॒क्रम॑णं नि॒षद॑नं वि॒वर्त॑नं॒ यच्च॒ पड्बी॑शमर्व॑तः।
यच्च॑ प॒पौ यच्च॑ घा॒सिं ज॒घास॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (अर्वतः) अश्व का (निक्रमणं) नियम पूर्वक पैरों का उठा २ कर रखना (निषदनं) नियम पूर्वक खड़ा होना, उस पर बैठना, (विवर्त्तनम्) विविध प्रकार की चेष्टा करना, और (पड्वीशम्) चरण आदि का बांधना और वस्त्रादि का आच्छादन करना, और (यत् च पपौ) वह जो कुछ पीता है (यत् च घासिं जघास) वह जो घास आदि खाता है वह सब (देवेषु) व्यवहारकुशल और विज्ञ पुरुषों के अधीन रहता है। उसी प्रकार (अर्वतः) अश्व सैन्य, शत्रु नाशकारी राजा के भी (निक्रमणं) चलना फिरना, (निषदनं) बैठना उठना, (पड्वीशम्) आचरणादि नियम बंधन, और जो भी वह (पपौ) पीवे (घासिं जघास) जो भी वह अन्न खावे (सर्वा ता) वे सब तेरे

काम हे ज्ञानवन्! (देवेषु अस्तु) ऐश्वर्य ज्ञान और मान देने वाले गुरुजनों के अधीन हों। (२) इसी प्रकार राष्ट्र को निकलने के मार्ग, (निषदनं) राजसभा आदि के अधिवेशन होने के स्थान, पदाधिकार के योग्य नियुक्ति, प्रजा के मान योग्य जल और अन्न इन सबका निरीक्षण विद्वान् पुरुषों के अधीन रहे। (यजु० २५ । २८)

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् १५।६

भा०—हे अश्व! राष्ट्र! और हे अश्वसैन्य! (त्वा) तुझे (धूमगन्धिः) विषैली धूम से पीड़ित करने वाली धूम की बुरी, उद्वेजक गन्ध वाला, (अग्निः) अग्नि और अग्निमय अस्त्र प्रयोग (मा ध्वनयीत्) कभी पीड़ित कर हिनहिनाने और दुःखित होने का अवसर न दे। (भ्राजन्ती) खूब भड़कती हुई (उखा) उखा हंड़िया, बारुद से भरा बम्ब आदि (मा अभि विक्त) तुझे कभी उद्विग्न न करे। तब उसे (वीतम्) प्राप्त हुए, समृद्ध सुन्दर, (इष्टं) सबको प्रिय (वषट् कृतं) दानशील, (अभिगूर्तम्) परिश्रमी, (अश्वं) विद्वान् राष्ट्र और राष्ट्रपति को (देवासः) दानशील, और विजय के इच्छुक जन (प्रति गृह्णन्ति) स्वीकार करते हैं। इति नवमो वर्गः ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

भा०—(यत् अश्वाय वासः उपस्तृणन्ति) जिस प्रकार अश्व के लिये वस्त्र ढांपते, (अधीवासं) उसको ऊपर का वस्त्र, (हिरण्यानि) सुवर्ण के आभूषण, (संदानं) उत्तम बंधन, लगाम आदि (पड्वीशं) पैर के बांधने के पदार्थ आदि सभी उस अश्व को (देवेषु आयामयन्ति) विजयशील सैनिकों के लिये सब प्रकार से कसते और तैयार करते हैं।

इसी प्रकार (अश्वाय) घुड़सवारों के सैन्य के लिये (वासः) वस्त्र और रहने के स्थान, (अधिवासं) ऊपर का लबादा, (हिरण्यानि) सुवर्ण आदि रूप में वेतन, (संदानम्) उत्तम पुरस्कार, (पड्वीशम्) पदाधिकारों का ऐश्वर्य ये सब प्रिय पदार्थ उसको (देवेषु) राजाओं के अधीन (आयामयन्ति) बंधन में बांधते हैं। (३) इसी प्रकार राष्ट्रपति राजा के आदर के लिये (वासः उपस्तृणन्ति) उत्तम वस्त्र बिछाते हैं, (अधीवासं) ऊपर पहनने का लबादा सर्वोत्तम गृह और अध्यक्ष पद देते हैं (हिरण्यानि) सुवर्ण के आभूषण (संदानं) प्रजाओं का मिल कर उत्तम से उत्तम अभिनन्दन या वस्त्र आदि उत्तम पदार्थ का देना और (पड्वीशं) पैरों के रखने का पीढ़ा आदि ये सब (प्रिया) तृप्त और प्रसन्न करने के पदार्थ (अर्वन्तम्) उस बलवान् पुरुष को (देवेषु) विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच में (आयामयन्ति) व्यापक अधिकार वाला और व्यवस्थित करते हैं।

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।
स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥१७॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! हे राष्ट्रपते ! हे अश्व के समान वेग से कार्य करने हारे ! जिस प्रकार तेज़ घोड़े को (पार्ष्ण्या कशया वा तुतोद) एडी या चाबुक से पीड़ित कर ठीक मार्ग पर चलाया जाता है उसी प्रकार (यत्) जब (शूकृतस्य) शीघ्र कार्य करने वाले या अविवेक के कारण बिना विचारे शीघ्रता से कार्य कर डालने वाले (ते) तेरे (सादे) अवसाद अर्थात् पथभ्रष्ट होने या आलस्य में पैर रख देन पर कोई (महसा) अपने बड़े बल से या (पार्ष्ण्या) पार्ष्णिग्राह अर्थात् पीछे से आक्रमण करने वाली शत्रुसेना द्वारा या (कशया) अपनी बड़ी शासन शक्ति से (त्वां तुतोद) तुझे पीड़ा पहुंचावे तुझे दुःखित करे तो (ते) तेरी (ता) उन सब त्रुटियों को मैं विद्वान् पुरोहित (अध्वरेषु हविषः ब्रह्मणा

स्रुचा इव) यज्ञों में जैसे हवियों को वेद मन्त्र सहित स्रुचों से दिया जाता है उसी प्रकार (ब्रह्मणा) महान् बल और वेद ज्ञान और ऐश्वर्य से (सूदयामि) दूर करूं।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

भा०—(१) अश्व के पक्ष में—(वाजिनः अश्वस्य चतुस्त्रिंशत् बङ्क्रीः) वेगवान् अश्व की चौतीसों पीठ की पसुलियों को (स्वधितिः) शस्त्र (समेति) पहुंच सकता है। इसलिये हे वीर पुरुषो ! (गात्रा अच्छिद्रा कृणोत) उसके गात्रों को छिद्र अर्थात् कटने योग्य, निर्बल, निरावरण, मत रखो। (वयुना अच्छिद्रा कृणोत) सब कर्म क्रियाएं चालें, और पैंतरे भी दोषरहित करो। (परुः परुः) प्रत्येक पोरू २ को (अनुघुष्य) बार २ अभ्यास कर २ के (विशस्त) विविध प्रकार से शिक्षित करो। युद्धविद्या की प्रत्येक बात अच्छी प्रकार अभ्यस्त हो। (२) राष्ट्रपति पक्ष में—समस्त राष्ट्र को अपने बल से धारण करने वाला वीर्यवान् पुरुष का शासन चक्र (देवबन्धोः) विद्वानों के बीच सुप्रबन्धक (वाजिनः) ऐश्वर्यवान्, (अश्वस्य) व्यापक राष्ट्र के (चतुस्त्रिंशत् बङ्क्रीः) ३४ पसुलियों के समान चौतीसों विभागों को (सम् एति) अच्छी प्रकार सुसंगत करे। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (गात्रा अच्छिद्रा कृणोत) राष्ट्र के सब अंगों को छिद्र अर्थात् त्रुटि रहित रखो। और (वयुना अच्छिद्रा कृणोत) सब काम और सब ज्ञान दोषरहित त्रुटिरहित सम्पादन करो। (परुः परुः अनुघुष्य) प्रत्येक विभाग का पुनः २ घोषणा करके (विशस्त) राष्ट्र के अंगों को विभक्त करे। प्रजा को विविध विद्याओं में शिक्षित करो (३) इसी प्रकार अश्वादि सैन्य की चौतीसों वक्रगामी गतियों को, स्वयं अपने धारणाधिकार से प्राप्त करे। उनके अंग त्रुटिरहित हों अर्थात् उन टुकड़ियों की चालें पैंतरे त्रुटिरहित हों और उनके एक पौरु २ को

आज्ञाओं द्वारा विविध प्रकार से विभक्त और शिक्षित किया जावे। सेना का एक भी अंग बिना नायक की आज्ञा के एक कदम भी न हिले।

एकुस्त्वष्टुरश्वस्या विशुस्ता द्वा युन्तारा भवतुस्तथ ऋतुः। या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्युग्नौ १६

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्र के प्रजापति से तुलना करते हैं। (त्वष्टुः) तेजस्वी सूर्य के (अश्वस्य) आशुगामी काल का (एकः ऋतुः) एक पूर्ण संवत्सर (विशस्ता) काल को विभक्त किया करता है। उसके भी (द्वा यन्तारा भवतः) दो अयन नियन्ता होते हैं। (तथा ऋतुः) उसी प्रकार एक ऋतु भी संवत्सर को विभक्त करता है उस ऋतु के भी (द्वा यन्तारा भवतः) दो दो मास नियामक हैं। उसी प्रकार हे प्रजापते ! प्रजापालक राष्ट्र एवं राष्ट्रपते ! (त्वष्टुः) तेजस्वी (अश्वस्य) सबके भोग्य और सबके भोक्ता तेरे ऊपर (एक ऋतुः) एक सर्वोपरि ज्ञानवान् पुरुष (विशस्ता) तुझे विशेष रूप से शासन करने वाला हो और तेरे अधीन (द्वा) दो(यन्तारा) शासक प्रजा को नियम में रखने वाले, देह में दो भुजाओं के समान नियामक हों। (ते गात्राणाम्) तेरे अंगों में से (या) जिन २ को (ऋतुथा कृणोमि) ज्ञानवान् नियन्ता पुरुष के अधीन करूं (पिण्ड॰ नां) शरीर के अंगों में से (ता ता) उन २ अंगों को (अग्नौ) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के अधीन (प्र जुहोमि) अच्छी प्रकार वश करूं।

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्युसिना मिथू कः॥ २०॥

भा०—हे भोक्ता आत्मन्! पुरुष! विद्वान्! (प्रियः आत्मा) तेरा प्रिय देह (अपियन्तं) ब्रह्म या मोक्ष में अप्यय अर्थात् लय करते हुए (त्वा) तुझको (मा तपत्) संन्तप्त न करे। हे राजन् (त्वा अपियन्तं)

शत्रु पर आक्रमण करते हुए (त्वा) तुझको (प्रियः आत्मा) तेरा प्रिय अपने आत्मा के समान पुत्र, कलत्र भाई बन्धुजन भी (मा तपत्) विरह दुःख आदि द्वारा सन्तप्त या दुःखी न करे। हे विद्वन् (स्वधितिः) स्वयं देह को धारण करने वाला आत्मा ही उस समय (तन्वः मा आतिष्ठिपत्) शरीर पर अपनी आस्था या ममता न बैठाये रखे। राजा पक्ष में—हे राजन्! (स्वधितिः) शस्त्र बल (ते तन्वः) तेरे शरीर पर (मा आतिष्ठिपत्) अधिकार न करले, आघात न पहुंचावे। हे विद्वन्! (अविशस्ता) विशेष ज्ञान के शासन या शिक्षा करने में अकुशल पुरुष (गृध्नुः) लोभी होकर (ते छिद्राणि अतिहाय) तेरे दोषों की उपेक्षा करके (असिना) शस्त्रादि से (गात्राणि) देह के अंगों का (मा मिथू कः) कभी छिन्न भिन्न या पीड़ित न करे। अर्थात् तुझे सच्चा शिक्षक प्राप्त हो। हे राजन्! (अविशस्ता) शत्रु का नाश करने में असमर्थ या अविद्वान् (गृध्नुः) लोभी पुरुष (ते गात्राणि छिद्रा मिथू मा कः) तेरे देहों के अवयवों को व्यर्थ न काटे फाटे।

न वा उ॑ ए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ इदे॑षि प॒थिभि॑: सु॒गेभि॑:।
हरी॑ ते॒ युञ्जा॒ पृष॑ती अभूता॒मुपा॑स्थाद्वा॒जी धु॒रि रास॑भस्य॥२१॥

भा०—हे विद्वन्! (वा उ) निश्चय तू (एतत्) यह सत्य तत्व होने से कभी (न म्रियसे) मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। (न रिष्यसि) न तू कभी मारा जा सकता है। तू अमर होकर (सुगेभिः पथिभिः) सुख से गमन करने योग्य ज्ञान मार्गों से (देवान् इत्) ज्ञानप्रद, तेजस्वी प्रिय विद्वानों को ही (एषि) प्राप्त हो। (ते) तेरे (युञ्जा) परस्पर संयुक्त, और योग द्वारा एकाग्र चित्त हुए (हरी) आगे बढ़ने वाले आत्मा और मन, प्राण और अपान दोनों (पृषती) सुख और ब्रह्मानन्द रस के वर्षण करने वाले (अभूताम्) होवें। और (वाजी) ज्ञान ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् पुरुष (रासभस्य) अन्तर्नाद करने वाले

परम उपदेष्टव्य आत्मा के (धुरि) मुख्य, परम, धारक स्वरूप में (उप अस्थात्) अवस्थिति करे । तदा द्रष्टुःस्वरूपे अवस्थानम् । योगसूत्र १।४॥ (२) राष्ट्र पक्ष में—हे राष्ट्र (एतत् नवा उ म्रियसे न रिष्यसि) इस प्रकार सुव्यवस्था से तू कभी न मरे, न पीड़ित हो । (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) उत्तम, सुख से गमन करने योग्य मार्गों और उपायों से उत्तम व्यवहारों और योद्धाओं को प्राप्त हो । (ते हरी पृषती युंजा अभूतां) रथ में हृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान दो योग्य नायक नियुक्त हों । (वाजी) ऐश्वर्यवान् ज्ञानी पुरुष (रासभस्य धुरि उपअस्थात्) उपदेष्टा आज्ञापक के धुरा अर्थात् मुख्य पद पर उपस्थित हो ।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥२२॥१०

भा०—(वाजी) ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष (नः) हमारे लिये (सुगव्यम्) उत्तम गौओं से युक्त, पृथिवी से उत्पन्न अन्नादि समृद्धि से युक्त, (सुअश्व्यं) उत्तम अश्वादि से समृद्ध (पुंसः पुत्रान्) पुरुषत्वयुक्त, नपुंसकतारहित, बलवान् पुत्र (उत) और (विश्वापुषं रयिम्) सबको पुष्ट करने वाला ऐश्वर्य और (नः अनागास्त्वं) हममें पाप रहित पवित्रता अर्थात् अनाचार अन्याय और अधर्म का सर्वथा अभाव (कृणोस्तु) उत्पन्न करे । (अदितिः) वह अखण्ड बल और शासन वाला, प्रजा के माता, पिता, आचार्य और पुत्र के समान सब कुछ होकर (अश्वः) राष्ट्र का भोक्ता एवं (हविष्मान्) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों से समृद्ध होकर (नः क्षत्रं) हमारे धन, बल, वीर्य और क्षात्र बल को भी (वनताम्) प्राप्त करे । इति दशमो वर्गः ॥

[१६३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अश्वोऽग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, १३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिः ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१॥

भा०—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से उत्पन्न होने वाले शिष्य का वर्णन करते हैं। हे (अर्वन्) ज्ञानवान् पुरुष! (यत्) जो तू (समुद्रात्) समुद्र या महान् आकाश से (उद् यन्) उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के समान (समुद्रात्) ज्ञानों के सागर (उत = वा) और (पुरीषात्) ज्ञानों में परिपूर्ण गुरु से (जायमानः) पूर्ण वीर्यवान् पिता माता से उत्पन्न पुत्र के समान उत्पन्न होता हुआ (प्रथमं) सबसे उत्तम पद पर विराज कर तू (अक्रन्दः) उपदेश करता और (श्येनस्य) वाज के (पक्षा) दोनों वाजू जिस प्रकार बलवान् होकर आकाश के पार जाने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार (श्येनस्य) ज्ञानवान् आत्मा या पुरुष के (पक्षौ) वश करने वाले दोनों ज्ञान और कर्म उसको अपार भवसागर से पार करने में समर्थ हों। (हरिणस्य बाहू) हरिण की बाहूएं जिस प्रकार वेग से वन आदि में उसकी रक्षा करने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार (हरिणस्य) सर्व दुखहारी आत्मा की (बाहू) अज्ञान संकटों और विपक्षियों को दूर करने और पीड़ित करने वाले देह और मन के दोनों बल प्राप्त हों। तभी (ते जातं महि) ऐसा तेरा मातृगर्भ और आचार्य गर्भ से उत्पन्न होना अति आदर योग्य एवं सफल है।

समस्त सूक्त की राजा के पक्ष में लगने वाली अर्थयोजना देखो यजु० अ० २९। १२-२४॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २॥

भा०—जिस प्रकार अश्व को रथ में जोड़ा जाता है ऐश्वर्यवान् पुरुष उसकी सवारी करता है और एक उत्तम पुरुष उसकी लगाम थामता है, विद्वान्जन इस प्रकार अश्व को सधाने वाले से प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार

(यमेन) उत्तम यम नियमों के पालन करने और उत्तम संयम कराने वाले गुरु या पिता द्वारा (दत्तं) दिये गये (एनं) इस योग्य शिष्य को (त्रितः) अज्ञान सागर से पार उतरने में समर्थ, और (त्रितः) ज्ञान और कर्म और उपासना तीनों में सिद्ध एवं तीनों वेदों में पारंगत गुरु, आचार्य (एनम्) इसको (आयुनक्) सन्मार्ग में लगावे। (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, अज्ञान का नाशक, तेजस्वी आचार्य ही (एनं) इस पर (अधि अतिष्ठत्) शासन करे। और (गन्धर्वः) गौ अर्थात् वेद वाणी को धारण करने वाला विद्वान् आचार्य ही (अस्य) उसको (रशनाम्) व्यापक विद्या प्राप्त करावे और वश करने वाली मर्यादा को (अगृभ्णात्) अपने अधीन रखे। इस प्रकार (वसवः) जिन विद्वान् पुरुषों के अधीन शिष्यगण ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए निवास करें वे विद्वान् जन या प्रजाजन मिल कर (सूरात्) सूर्य्य के समान तेजस्वी, ज्ञानवान्, सबके प्रेरक, पिता के समान उत्पादक गुरु से ही (अश्वं) सर्व विद्या के ज्ञाता, विद्वान् ब्रह्मचारी को (निर् अतष्ट) उत्पन्न करते और प्राप्त करते हैं। (राज्यपक्ष में देखो यजु० २९। १३)

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥३॥

भा०—हे विद्वन्! हे ब्रह्मचारिन्! तू (यमः असि) यम नियमों का पालन करने वाला, इन्द्रियों को दमन करने हारा होने से 'यम' है। (आदित्यः असि) तू भूतल से जल ग्रहण करने वाले सूर्य के समान आचार्य से ज्ञान ग्रहण करने वाला और 'अदिति' अर्थात् माता, पिता, आचार्य का पुत्र और शिष्य होने से भी 'आदित्य' है। हे (अर्वन्) अज्ञान के नाशक! विद्वन्! ज्ञानवन्! तू (गुह्येन व्रतेन) पालन करने योग्य ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से (त्रितः) तीनों वेदों के पार करने

वाला और पुत्र और शिष्य रूप से माता पिता गुरु को भी इह और पर दोनों लोकों में तारने हारा (असि) है। और तू (सोमेन) अपने प्रेरणा करने वाले आचार्य और योग्य शिष्य के (समया) सदा साथ (वि-पृक्तः) विशेष प्रकार से स्नेहवान् और विद्यासम्बन्ध से सम्बद्ध और उसको विपरीत मार्ग से परे रखने हारा है। (दिवि) ज्ञान के प्राप्त करने के लिये (ते) तेरे ऊपर (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धन कहे गये हैं अर्थात् पितृ ऋण, देव ऋण, और ऋषि ऋण, ये तीनों ही बन्धन हैं। उनसे बद्ध ही 'त्रित' है। उनसे मुक्त और उनको पूर्ण कर पितरों को तराने वाला होने से भी 'त्रित' है। (राष्ट्र और राजा के पक्ष में देखो यजुर्वेद २९। १४)

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (दिवि) ज्ञान प्राप्त करते हुए (ते) तेरे ऊपर (त्रीणि बन्धनानि आहुः) तीन बन्धन विद्वान् बतलाते हैं। इसी प्रकार (अप्सु) कर्मों के करने और ज्ञानों के धारण करने में भी तेरे (त्रीणि) तीन ही बन्धन हैं, कर्म, कर्मफल और करण, अथवा (अप्सु) आप्त जनों और प्रजाओं के बीच में भी तेरे ऊपर तीन कर्त्तव्य बंधे हैं, बड़ों की सेवा, छोटों का पालन और सबसे स्नेह करना। (समुद्रे अन्तः त्रीणि) समस्त फल देने वाले, आकाश के समान महान् परमेश्वर के बीच रहते हुए भी तेरे तीन कर्त्तव्य हैं, स्तुति, प्रार्थना और उपासना या श्रवण, मनन और निदिध्यासन। हे (अर्वन्) ज्ञानवन् ! हे बाधक कारणों को दूर करने हारे आचार्य ! (उत इव) और तू (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, और सब कष्टों का वारण करने हारा होकर (मे) मुझ शिष्य को (छन्त्सि) लेजा (यत्र) जिस स्थान में (ते) तेरा (परमं)

सबसे उत्तम (जनित्रम्) जन्म या स्वरूप (आहुः) होता हुआ बतलाते हैं। राजा आदि पक्ष में (देखो यजु० अ० २९। १५)।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना। अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः॥५॥११॥

भा०—हे (वाजिन्) बलवीर्यसम्पन्न! हे ज्ञानवन्! विद्वन्! (ते) तेरे लिये (इमा) ये (अवमार्जनानि) पापों को दूर करने और आत्मा को शुद्ध करने वाले व्रत आदि नाना उपाय हैं। और (इमा) ये (सनितुः) तुझे शान्ति का ज्ञान प्रदान करने तथा तेरे सेवा करने योग्य उपास्य गुरु के (शफानां) शान्तिदायक उपदेश करने वाले ज्ञान वचनों या आचरणों के (निधाना) खजानों के समान ज्ञान भण्डार हैं। (अत्र) इस गुरु के अधीन, इस आश्रम में ही (ते) तेरे योग्य (भद्रा) सुख और कल्याणकारिणी, (रशनाः) रस्सियों के समान उत्तम मर्यादाओं और (रशनाः) व्यापक विद्याओं या वाणियों को मैं (अपश्यम्) साक्षात् देख रहा हूं। (याः) जिन का (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और वेद की (गोपाः) रक्षा करने वाले विद्वान् जन (अभिरक्षन्ति) सब प्रकार से पालन करते हैं। (राजा पक्ष में यजु० २९। १६) 'शफाः'—शं फणन्ति इति शफाः। इत्येकादशो वर्गः॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्। शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि॥६॥

भा०—हे विद्वन्! मैं (ते) तेरे (आत्मानं) आत्मा को (मनसा) ज्ञान और मनन शील चित्त से (आरात्) अति समीप होकर तेरी सेवा और उपासना द्वारा (अजानाम्) जान लूं अर्थात् गुरु के हृदयगत ज्ञान को शिष्य समचित्त होकर प्राप्त करे। और (दिवा) दिन के समय में (पतयन्तं) गमन करते हुए, और सब पर ऐश्वर्यवान्

स्वामी के समान आचरण करते हुए, (पतङ्गम्) सूर्य के समान तेजस्वी तेरे (अवः) रक्षण करने के सामर्थ्य, तेज, और ज्ञान को मैं मनन पूर्वक प्राप्त करूं। और तेरे (शिरः) शिर के समान मुख्य, अज्ञानों के नाशक और हृदय को शान्ति देने वाले, मस्तक या मुख्य पद को (अरेणुभिः) रेणु, रजोदोष और हिंसा के भावों से रहित (सुगेभिः) सुख से गमन करने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (पतत्रि) जाने वाला व्यापक (अपश्यम्) देखूं। (राजपक्ष में—यजु० २९। १७)। (२) अध्यात्म में—हे प्रभो ! मैं तेरे स्वरूप को दिन में सूर्य के समान (अवः) ज्ञानमय, सबके रक्षाकारी रूप से मनन द्वारा साक्षात् करता हूं। तेरे स्वरूप को शिर के समान मुख्य, शान्तिदायक, सुखकारी, सात्विक ज्ञान मार्गों से प्राप्त करने योग्य साक्षात् करूं।

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष, हे शिष्य ! ते आत्मन् ! (अत्र) इस गुरु गृह में (गोः पदे) वेद वाणी के प्राप्त करने के अवसर में और योग द्वारा (गोः पदे) इन्द्रिय गण को प्राप्त अर्थात् दमन करने के अवसर में (इषः) समस्त कामनाओं को (जिगीषमाणम्) विजय करने की इच्छा करते हुए, (ते) तेरे (उत्तमम्) सबसे उत्तम (रूपम्) कान्तिमान् स्वरूप को (अपश्यम्) देखूं, साक्षात् करूं। (यदा) जब (मर्तः) मनुष्य (ते) तेरे (भोगम्) भोजन करने योग्य पदार्थ को (अनु आनट्) अनुकूल होकर आदर से प्राप्त करावे (आत् इत्) तभी तू (ग्रसिष्ठः) उत्तम रीति से ग्रसने वाला, भूख से युक्त होकर (ओषधीः) उत्तम अन्नादि ओषधियों का (अजीगः) सेवन कर। आत्मा के पक्ष में—मैं कामनाओं पर विजय पाते हुए तेरे उत्तम रुचिकर स्वरूप का साक्षात् करूं। तेरा मरण स्वभाव वाला देह भी जब भोग, भोजन अथवा अपने पालन

करने के साधन को प्राप्त करे तब तू अन्नादि ओषधियों का भोजन कर। राजा के पक्ष में देखो (यजु० २९ । १८)

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

भा०—हे (अर्वन्) अश्व के समान बलवान् पुरुष ! ज्ञानवान् विद्वन् ! जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ, मनुष्य, गौ आदि सम्पत्ति, कन्याओं का सौभाग्य, और अनुगामी रक्षकों के दल चलते हैं, विजयेच्छु लोग अश्व के बल को जानते हैं उसी प्रकार (त्वा अनु) तेरे पीछे २, तेरे अधीन (रथः) रथ और रमण करने योग्य पदार्थ हों. (त्वा अनु मर्यः) तेरे अधीन साधारण जन हों, (त्वा अनु गावः) तेरे अधीन गौ आदि पशु हों, (त्वा अनु कनीनां भगः) तेरे अधीन, तेरी रक्षा में ही तुझे चाहने वाले स्त्री, पुरुषों का सौभाग्य और ऐश्वर्य सुरक्षित रहे । (तव अनु व्रातासः) तेरे अधीन नाना व्रताचरण करने हारे शिष्यगण या (व्रातासः) शिष्य समूह (तव सख्यम्) तेरे ही मैत्री भाव को (ईयुः) प्राप्त हों और (देवा) विद्वान् और दानशील पुरुष भी (ते) तेरे (वीर्यं) बल, वीर्य का (अनु ममिरे) उत्तम आदर करें, उसका महत्त्व जानें । (२) अध्यात्म में—हे आत्मन् ! तेरे ही अधीन, यह (रथः) रमण साधन और मरणशील देह है । तेरे अधीन वाणी और अन्य इन्द्रियें और तेरे अधीन ही (कनीनाम्) दीप्ति युक्त और विषयों की कामना करने वाली इन्द्रियों का सेवनीय सुख है । (व्रातासः) ये प्राण गण तेरे अधीन हैं । (देवाः) सब प्राण तेरे वीर्य बल को ही प्रधान मानकर उसके अधीन रहते हैं । देखो उपनिषदों में 'वरिष्ठ प्राण' का वर्णन । राजपक्ष में देखो (यजु० २९. १९)

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥९॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् के (पादाः) प्राप्त होने योग्य (अयः)

ज्ञान के साधन (मनोजवाः) मन के समान वेगवान् और (मनोजवाः) ज्ञान मार्ग में वेग से जाने वाले हों। (हिरण्यशृङ्गः इन्द्रः) सुवर्णादि को शिरपर रखने वाला ऐश्वर्यवान्, धनाढ्य पुरुष भी (अस्य अवरः आसीत्) इसके नीचे की श्रेणी का है। और (यः) जो आचार्य (प्रथमः) उससे भी अधिक श्रेष्ठ होकर (अर्वन्तं) ज्ञानवान् शिष्य के भी (अधि-अतिष्ठत्) ऊपर अधिष्ठाता होकर विराजता है (अस्य इत्) उसको (हविरद्यम्) अन्नादि भोग्य पदार्थों को (देवाः) दानशील पुरुष (आयन्) प्राप्त करावें। अथवा—(यः प्रथमः अर्वन्तम् अधि अतिष्ठत् स इन्द्रः अवरः आसीत्) जो प्रथम उस विद्वान् शिष्य पर अध्यक्ष होकर विराजता है (अवरः) उससे कोई अन्य श्रेष्ठ नहीं। अतः वह आचार्य ही सर्व श्रेष्ठ है वह (हिरण्य-शृङ्गः) हित, रमणीय, शान्तिदायक स्वभाव का हो। (अस्य पादा अयः) उसके धारण या ज्ञान कराने वाले उपाय 'अय' अर्थात् ज्ञानदायी, और सब पुरुषार्थों को प्राप्त करानेवाले और (मनोजवाः) मनन द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं। (२) अश्व के पक्ष में—शिर पर सुवर्ण की कलगी, चरण वेगवान् हैं, राजा जो उस पर चढ़ता है वह भी 'अ-वर' है, उससे कोई उत्तम नहीं है। विजयेच्छुक जन उसके दिये अन्नादि भोग को प्राप्त करते हैं। राजा के पक्ष में—देखो (यजु० २९।२०॥)

ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमासः॒ सं शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ अत्याः॑।
हं॒सा इ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑॥१०॥१२॥

भा०—(अश्वाः) अश्व जिस प्रकार (ईर्मान्तासः) पिछले भागों पर कशा द्वारा प्रेरित होकर (सिलकमध्यमासः) मध्य भागों को मिलाए हुए, (शूरणासः) शीघ्र रण में जाने वाले, (अत्याः) वेगवान् होकर (हंसा इव श्रेणिशः यतन्ते) हंसों के समान पंक्ति दल बना कर दौड़ते हैं, (दिव्यम् अज्मम् आक्षिषुः) विजयप्रद संग्राम को जाते हैं, उसी प्रकार योगाभ्यासी विद्वान् जन (ईर्मान्तासः) गुरुओं द्वारा प्रेरित अर्थात्

उपदेशों द्वारा बतलाये सिद्धान्त और अन्तिम उद्देश्यों को धारण करके (सिलिकमध्यमासः) आदित्य के समान प्रमुख पुरुष को अपने बीच में रखते हुए, (शूरणासः) आने वाली बाधाओं को नष्ट करते हुए, वीर पुरुषों के समान, (दिव्यासः) ज्ञान मार्ग में जाने वाले (अत्याः) सब विघ्नों को पार कर जाने वाले और निरन्तर आगे २ ही बढ़ने वाले आत्मवान् हों। (यत्) जब वे (दिव्यम्) ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त होने में सब से उत्तम (अज्मम्) पार पहुंचा देने वाले मार्ग अथवा, सब बंधनों को परे फेंक देने वाले मोक्ष व्रत को (आक्षिषुः) प्राप्त हों तब वे (अश्वाः) आनन्द सुख को भोगने और परम मार्ग, देवयान को जाने वाले (हंसाः इव) हंसों के समान परम हंस, अज्ञान और वासनाओं का हनन करते हुए (श्रेणिशः) अपने व्रत कर्मों के और भक्ति में दृढ़ता से आश्रय पाकर (सं यतन्ते) निरन्तर यत्न करें। अश्वों और वीरों के पक्ष में देखो (यजु० २९। २१)। इति द्वादशो वर्गः ॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान्।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥

भा०—हे (अर्वन्) विद्वन्! हे वीर! (तव) तेरा (शरीरं) शरीर (पतयिष्णुः) वेगवान्, अश्व के समान शीघ्रता से जाने में समर्थ, बलवान्, ऐश्वर्य युक्त हो। (तव) तेरा (चित्तं) चित्त (वात इव) वायु के समान (ध्रजीमान्) वेग से युक्त, बलवान् हो (तव) तेरे (शृङ्गाणि) पर्वत शिखरों के समान दूर से सबको दीखने योग्य, कर्म, यज्ञ आदि, कूप, बगीचे, और भवन आदि परोपकारी पदार्थ और (शृङ्गाणि) उच्च शिखरों वाले प्रासाद (पुरुत्रा) बहुत से (अरण्येषु) जंगल के दुर्गम स्थानों में भी (विष्ठिता) विविध रूप से स्थिर हों। अथवा—हे राजन् (तव शृङ्गाणि) तेरे दुष्टों के नाश करने वाले हिंसाकारी सैनिक, बल, जन भी वनों में सिंहों के समान निर्भय होकर (पुरुत्र अरण्येषु) बहुत से

दुर्गों में स्थित होकर (जर्भुराणाः) प्रजा का पालन करते हुए (चरन्ति) विचरें । अध्यात्म में—हे आत्मन् ! तेरा शरीर (पतयिष्णु) विनाश शील है । चित्त वात के समान वेगवान् अस्थिर है । अतः तेरे (शृङ्गाणि) उन्नत अंग, इन्द्रिय गण (अरण्येषु) रमण करने योग्य विषयों से भिन्न (पुरुत्र) अन्य बहुत से कर्मों में स्थिर होकर परिपुष्ट होकर विचरें, विषयों में न जावें । देखो (यजु० अ० २९ । २२)

उप॒ प्राग॒ाच्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।
अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्यानु॑ प॒श्चात्क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥१२॥

भा०—(अर्वा) सर्व व्यापक (वाजी) ज्ञानवान् आत्मा, (देवद्रीचा मनसा) विद्वानों को प्राप्त होने योग्य ज्ञान से (दीध्यानः) देदीप्यमान होता हुआ (शसनं उप प्र अगात्) स्तुति को प्राप्त होता है । वह स्तुति करने योग्य है । वह (अजः) जन्म रहित होने से 'अज' है । वह (नाभिः) सबका प्रबन्धक और बन्धु होने से 'नाभि' है । वही (पुरः नीयते) सब यज्ञों में पुरोहित के समान सब से आगे मुख्य पद या उपास्य पद पर प्राप्त कराया जाता है । (अस्य अनु) उसी को लक्ष्य करके (रेभाः) स्तुति कर्त्ता (कवयः) विद्वान् जन (यन्ति) आगे बढ़ते हैं । विद्वान् जन उस परमात्मा की ही स्तुति करते, उसी को प्राप्त करने का यत्न करते हैं । राजा के पक्ष में देखो (यजु० २९ । २३)

उप॒ प्रागा॑त्पर॒मं यत्स॒धस्थ॒मर्वाँ॒ अच्छा॑ पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।
अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या अथा शा॑स्ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि१३।१२

भा०—(अर्वान्) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष (यत्) जो (परमं) सबसे उत्तम (सधस्थम्) स्थान को (उप प्र अगात्) प्राप्त करे वह (पितरं मातरं च) पिता और माता और (देवान्) देव, विद्वान् पुरुषों को भी (अच्छ जुष्टतमः) प्राप्त होकर उनकी उत्तम प्रकार से सेवा करने

वाला होकर (हि) ही (गभ्याः) आगे बढ़ता है। (अथ) और तब (दाशुषे) विद्या आदि देने वाले मान्य पुरुष के आदरार्थ (वार्याणि) श्रेष्ठ धन देने की भी (आशास्ते) इच्छा करे। अध्यात्म में एवं राजपक्ष में—देखो (यजु० अ० २६। २४)। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१६४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ देवता—१—४१ विश्वेदेवाः। ४२ वाक्। ४२ आपः। ४३ शकधूमः। ४३ सोमः॥ ४४ अग्निः सूर्यो वायुश्च। ४५ वाक्। ४६, ४७, सूर्यः। ४८ संवत्सरात्मा कालः। ४९ सरस्वती। ५० साध्याः। ५१ सूर्यः पर्जन्या वा अग्नयो वा। ५२ सरस्वान् सूर्यो वा॥ छन्दः—१, ६, २७, ३५, ४०, ५० विराट् त्रिष्टुप्। ८, ११, १८, २६, ३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४९ निचृत् त्रिष्टुप्। २, १०, १३, १६, १७, १९, २१, २४, २८, ३२, ५२ त्रिष्टुप्। १४, ३९, ४१, ४४, ४५ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२, १५, २३ जगती। २९, ३६ निचृज्जगती। २० भुरिक् पङ्क्तिः। २२, २५, ४८ स्वराट् पङ्क्तिः। ३०, ३८ पङ्क्तिः। ४२ भुरिग् बृहती। ५१ विराडनुष्टुप्॥ द्वापञ्चाशदृचं सूक्तम्॥

(समस्त सूक्त देखो अथर्व का० ९। सू० ९, १०)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वामस्य पलितस्य होतुः) उत्तम आहुति देने वाले वृद्ध पुरुष का (अश्नः) सब पदार्थों को खाजाने वाला अग्नि ही (मध्यमः भ्राता) बीच के भाई के समान उसका सहायक है और (तृतीयः) तीसरा (भ्राता) भाई अग्नि, विद्युत् (घृतपृष्ठः) जल को अपनी पृष्ठ पर धारण करता है और (अत्र) इसी अग्नि में

(सप्तपुत्रम्) सात तत्वों से उत्पन्न (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालक सूर्य को भी (अपश्यम्) देखता हूं। उसी प्रकार (अस्य) इस (वामस्य) सब पदार्थों का सेवन करने वाले (पलितस्य) ज्ञानवान् या वृद्ध (होतुः) अन्नादि भोजन ग्रहण करने वाले, देहवान् जीव का (भ्राता) भरण पोषण करने वाला (मध्यमः) बीच में रहने वाला (अश्नः) मझोले भाई के समान अन्नादि खाने वाला जाठर अग्नि है। अथवा बीच में आत्मा और इन्द्रियों के बीच में स्थित (अश्नः) मन सब का भोक्ता होकर विद्यमान है। और (अस्य) इसका (तृतीयः) तीसरा सर्वोत्कृष्ट (भ्राता) पोषक आत्मा (घृतपृष्ठः) जलों में व्यापक या जलों के वर्षक विद्युत् के समान और सब अंगों में तेज और बल का सेचन करने वाला आत्मा है। उस आत्मा या देह में ही मैं साधक (सप्तपुत्रं) सात पुत्रों वाले (विश्पतिम्) प्रजा के स्वामी गृह पति के समान (सप्तपुत्रं विश्पतिम्) शिरोगत सात मूर्धन्य प्राणों को धारण करने वाले, और शरीर के भीतर प्रविष्ट सब अंगों की प्रजा को राजा के समान पालना करने वाले आत्मा का मैं (अपश्यम्) साक्षात् करता हूं। (२) सूर्य के पक्ष में—आरोग्य के लिये सबके सेवन करने योग्य होने से सूर्य ही 'वाम' है। सबका पालक और प्रेरक, सबसे अधिक सनातन एवं सर्वत्र प्रकाश द्वारा व्यापक होने से सूर्य ही 'पलित' है। उसका मध्यम भ्राता बीच अन्तरिक्ष में स्थित वायुवत् व्यापक होने से 'अश्न' है। वृष्टि के लिये भूमि से रश्मियों से सोखे जल का आहरण करने से वह 'भ्राता' है। सूर्य का तीसरा भाई 'घृतपृष्ठः' यह अग्नि है जो घृत द्वारा सेचन करने से वृद्धि को प्राप्त होता है। वह भी सूर्य के तेज को धारण करने से 'भ्राता' है। सब में ही अग्नि तत्व सर्पणशील रश्मियों को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाला होने से 'सप्त रश्मि' और प्रजाओं का पालक होने से 'विश्पति' है। सर्वत्र उसी को देखता हूं। (४) परमेश्वर पक्षमें—समस्त विश्व को वमन

कर देने, अपने में से उगल देने या रचनेहारा वा परम सेव्य परमेश्वर 'वाम' है। अपने में लेलेने हारा होने से वह 'होता' है। सर्व पालक और व्यापक और संञ्चालक होने या पुण्य पुरुष होने से 'पलित' है। कर्म फलों का भोक्ता जीव उसके मध्यम भ्राता के समान है। भरण पोषण योग्य होने या देह का भरण पोषण करने से 'भ्राता' है। अल्प शक्ति होने से, देह के बीच में रहने से 'मध्यम' है। इसका तीसरा भाई घृत अर्थात् जलका सेचन करने वाले मेघ के समान 'घृत' अर्थात् अन्न, ज्ञान और वीर्य का सेचन, दान, और वर्षण करने वाला, आचार्य, दाता और वीर्य से युक्त सदेह पुरुष है। (अत्र) इसी पुरुष में (सप्तपुत्रं विश्पतिं अपश्यं) सात पुत्रों से युक्त प्रजापति के समान सप्त प्राणों के पिता प्रजापति का स्वरूप साक्षात् करता हूं। (५) अथवा, कारणात्मक सूत्रात्मा वायु, व्यापक होने से 'अश्व' है। कार्यात्मा तीसरा यह शरीर या स्थूल जगत् रूप है। समस्त सर्पणशील सूर्यादि लोक परमेश्वर के पुत्र होने से परमेश्वर 'सप्तपुत्र' है सब उसमें प्रविष्ट लोकों, और प्रजाओं कापालक होने से वही 'विश्पति' है। मैं उस सर्वोत्पादक, सर्वपालक का साक्षात् दर्शन करूं।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (एकचक्रं रथम्) बड़े एक चक्र वाले गमनशील महायन्त्र के साथ (सप्त युञ्जन्ति) सात यन्त्र कला युक्त हों (सप्तनामा) उन सातों को नमाने या अपने अधीन चलाने वाला उन सब को (एकः अश्वः वहति) एक ही वेगवान् अग्नि या मुख्य शक्ति धारण करता है। और वह (चक्रम्) महाचक्र (त्रिनाभि) तीन मुख्य बंधनों से युक्त हो, (अजरम्) कभी नाश न होने वाला, दृढ़, (अनर्वम्) अन्य किसी वाह्य शक्ति, अश्व आदि से रहित होता है (यत्र) जिसके आश्रय पर (इमा विश्वा भुवना) ये सब अन्य नाना यन्त्र कलाएं स्थित होती हैं उसी प्रकार

यह आत्मा से संयुक्त देह (एकचक्रम् रथम्) एक आत्मा रूप कर्त्ता से युक्त रथ के समान है। रमण साधन होने से देह रथ है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ उप० ॥

उस देह रथ को (सप्त युंजन्ति) सात गौण प्राण, सात अश्वों के समान जुतते हैं और (एकः) एक ही मुख्य प्राण (अश्वः) गाड़ी में लगे अश्व के समान बलवान् और कर्म फलों का भोक्ता आत्मा (वहति) धारण करता और उसे चलाता फिराता है। वह आत्मा स्वयं (सप्तनामा) पूर्व कहे सातों प्राण रूप अश्वों के नामों वाला है। उनको अपने अधीन रखने वाला और उनके कार्यों को करता हुआ वह उनके नामों को स्वयं धारण करता है। देखने से आत्मा ही चक्षु और सूंघने से वही नाक, सुनने से वही कान कहा जाता है। वह (चक्रम्) एक मात्र कर्त्ता (त्रिनाभि) शरीर में तीन प्रकृति, तीन गुण, या वात, पित्त, कफ तीन धातु या अग्नि, जल, वायु तीन तत्वों द्वारा बंधा होने से 'त्रिनाभि' है। (अजरम्) वह कभी नाश को प्राप्त न होने से 'अजर' है। अथवा स्वयं अचर या अचल, अभोक्ता, कूटस्थ होने से 'अजर' है। उसके चैतन्य के लिये (अनर्वम्) दूसरा कोई सञ्चालक कारण अपेक्षित नहीं होने से वह स्वयं 'अर्वा' होकर 'अनर्वा' है। वह स्वयं सञ्चालक होकर अन्यों से सञ्चालित नहीं होता। (यत्र) जिसके आश्रय (इमा) ये सब (भुवना) प्राणि गण (अधि तस्थुः) स्थिर हैं। (२) सूर्य एक सप्त चक्र रथ है। गतिमान् होने से वह 'रथ' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। सात ग्रह उसमें लगते हैं। वह सातों को धारण करता और नमाता है। स्वयं अपने, ग्रह और उपग्रह तीनों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। अथवा तीनों लोकों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। ध्रुव होने से अजर या अचर है। स्वतः गतिमान् होने से 'अनर्वा' है। ये सब पृथिवी आदि लोक उसी पर आश्रित हैं। (३) परमेश्वर पक्ष में—यह आत्मा और परमेश्वर (रथम्) रस स्वरूप

होने से और और सबका सञ्चालक होने से 'रथ' है। उसको (सप्त) सातों चित्त भूमियों पर स्थित साधक जन (युञ्जन्ति) योग द्वारा साक्षात् करते हैं। वह व्यापक होने से 'अश्व' है। वह सातों के प्रति, पुत्रों के प्रति माता के समान अमृत रस पान के लिये नमता है। अतः 'सप्तनामा' है। तीनों लोकों, प्रकृति के तीनों गुणों को बांधने वाला व्यवस्थापक होने से, कर्म कर्त्ता, और कर्मफल का व्यवस्थापक होने से 'त्रिनाभि' है। वह अविनाशी, स्वतः अद्वितीय, चिद्-घन है। उसमें ही समस्त लोक आश्रित हैं। (४) इसी प्रकार प्रजापति संवत्सरात्मक चक्र में अधिक मलमास सहित सात ऋतु युक्त है। सूर्य एक अश्व सातों को नमाने या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला है। तीन ग्रीष्म, वर्षा, शरद् रूप में बद्ध है। विशेष देखो (अथर्व० का० ९। सू० ९। २॥)

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम॥३॥

भा०—जिस प्रकार (सप्त चक्रम् रथम् सप्त अधि तस्थुः) सात मुख्य चक्रों वाले महायन्त्र के चलाने के लिए उसमें प्रत्येक चक्र पर एक २ पुरुष, इस प्रकार सात पुरुष अध्यक्ष, सञ्चालक नियत हों और उनके अधीन (सप्त अश्वाः वहन्ति) सात अश्व या प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उस रथ या वेगवान् यन्त्र को सञ्चालित करें। और उसमें (सप्त) सात (स्वसारः) अपने ही बल से चलने वाले कला पुञ्ज (अभि संनवन्ते) भली प्रकार चलते हों (यत्र) जिन में (गवां) गमन करने वाले यन्त्रों के (सप्त नाम निहिता) पृथक् २ सात स्वरूप या सात प्रकार के यन्त्र स्थापित हों उसी प्रकार (इमं) इस (सप्त चक्रं रथम्) सात चक्र वाले रथ के समान रमण करने के देह रूप रथ को (सप्त तस्थुः) सात मुख्य प्राण सात धातुओं या सात प्राणों वाले अपने वश करते हैं। वे सातों ही (अश्वाः) विषयों के भोक्ता इन्द्रिय होकर (वहन्ति) धारते हैं। उनमें रहने वाली

(सप्त स्वसारः) सात बहनों के समान सात शक्तियें सात मात्राएं 'स्व' अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाली शक्तियें (सं नवन्ते) गति कर रही हैं। (यत्र) जिनमें (गवां) इन्द्रियों के (सप्त नाम) सात स्वरूप स्थित हैं। (२) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ में पञ्चभूत, महत् और अहंकार ये सात अश्व हैं उनमें विद्यमान शक्तियें सात स्वसाएं हैं। उनका वर्णन करने वाली सप्त छन्दोमय वाणियां स्थित हैं। (२) आदित्य पक्ष में—सात रश्मियें, सात ग्रह, सात ऋतु, (३) संवत्सर पक्ष में—अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त्त ये सात कालावयव हैं। स्वयं गतिमान् होने से, या 'स्वः' नाम तेज-तापमय सूर्य से प्रेरित होने से रश्मि 'स्वसा' हैं, विशेष देखो अथर्व० का० ९।९। ३ ॥

को द॑दर्श प्रथ॒मं जाय॑मानमस्थ॒न्वन्तं॒ यद॑न॒स्था बिभ॑र्ति।
भूम्या॒ असु॒रसृ॑गा॒त्मा क्व॑ स्वि॒त्को वि॒द्वांस॒मुप॑ गा॒त्प्रष्टु॑मे॒तत् ॥४॥

भा०—(यः) जो स्वयं (अनस्था) हड्डियों आदि शरीर के घटक पदार्थों से रहित होकर भी (अस्थन्वन्तं) हड्डियों आदि से युक्त शरीर को या कार्य जगत् को (बिभर्त्ति) धारण और पालन पोषण करता है, उस (प्रथमं) सबसे पहले, और इस शरीर और कार्य जगत् से भी पूर्व कारण रूप से विद्यमान (जायमानं) और देह या कार्य रूप से प्रादुर्भाव होते हुए को (कः) कौन (ददर्श) देख पाता है। उस समय इस सृष्टि होने के पूर्व काल में (भूम्याः) भूमि का विकार पाञ्चभौतिक, स्थूल पार्थिवांश, (असुः) वायु का अंश प्राण, (असृग्) जल का अंश रुधिर और (आत्मा) यह जीव सभी (क्वस्वित्) कहां रहे। उस समय (कः) कौन जिज्ञासु होकर (एतत् प्रष्टुम्) इस रहस्य को पूछने के लिये (विद्वांसम्) समस्त सर्ग के तत्व को जानने वाले के समीप (उप अगात्) जाता है। अर्थात् बहुत कम इस तत्व को पूछने वाले हैं। विशेष देखो (अथर्व० का० ९। ९। ४।)

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ॥५।१४॥

भा०—मैं (पाकः) ब्रह्मचर्य, तपस्या और गुरु-उपासना द्वारा अपने देह, बलवीर्य और ज्ञान का परिपक्व करने हारा जिज्ञासु (मनसा) मन से (अविजानन्) विशेष तत्वज्ञान को न जानता हुआ उनके सम्बन्ध में (पृच्छामि) प्रश्न करता और ज्ञान प्राप्त करता हूं। (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष (वष्कये) देखने योग्य, उत्तम (वत्से) पुत्र के निमित्त ही (ओतवे) मानो उसके देह की रचना के लिये ही (सप्त तन्तून्) सातों देह-घटक धातुओं को (वितत्निरे) विविध रूप से विस्तृत करते हैं (देवानां) विद्वानों या प्राणों के (एना) ये ही (पदानि) ज्ञातव्य निगूढ़ तत्व (निहिता) गुप्त रूप से रखे हैं। अथवा--(बष्कये) सत्य स्वरूप (वत्से) स्तुत्य, सब में बसे, वा सब को बसाने वाले आत्मा में ही (कवयः) विद्वान् जन (सप्त तन्तून्) सातों सोम और पाक यज्ञों को विस्तृत करते हैं। ये ही (देवानां निहिता पदानि) देवों विद्वानों के ज्ञातव्य सात तत्व हैं। उनको न जानता हुआ मैं मनसे प्रश्न करता हूं कि वह आश्रय भूत 'वत्स' कौन है ? उसके आश्रय पर सात तन्तु कैसे फैलाये जाते हैं, उन देवों के ज्ञेय गुप्त रूप कौन से और कहां छुपे हैं ? विशेष देखो अथर्व० ९।९।६॥
इति चतुर्दशो वर्गः॥

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्॥६॥

भा०—(अत्र) इस तत्व ज्ञान के लिये मैं (चिकितुषः) ज्ञानवान् क्रान्तदर्शी विद्वानों के समीप जाकर (न विद्वान्) स्वयं कुछ भी न जानता हुआ (अचिकित्वान्) अज्ञानी शिष्य के समान (विद्मने) ज्ञान लाभ करने के लिये ही (पृच्छामि) उस परमेश्वर या महान् शक्तिमान् के विषय में प्रश्न करता हूं। (षड् रजांसि) मुख्य प्राण जिस प्रकार छः गौण प्राणों और सूर्य जिस प्रकार छः ऋतुओं पर वशी

है, उसी प्रकार इन (षड् रजांसि) छहों लोकों को (यः) जो (वि तस्तम्भ) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से थाम रहा है। (अजस्य) अजन्मा, अनादि, सबके सञ्चालक उस परम तत्व के (रूपे) रूप में (किमपि) किसी (एकम्) एक, उस अद्वितीय पदार्थ का उपदेश करो।

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥७॥

भा०—(अंग) हे विद्वान् पुरुषो आप लोगों में से (यः) जो विद्वान् पुरुष भी (अस्य) इस (वामस्य) सूर्य के समान अति उत्तम (वेः) कान्तिमान्, व्यापक, गतिमान्, तेजोमय हंस के समान विवेकवान् आत्मा के (निहितं) भीतर छुपे, निगूढ़, (पदं) चिन्मय स्वरूप को (वेद) भली प्रकार जानता और साक्षात् करता है वह (इह) इस आत्मा के सम्बन्ध में (ब्रवीतु) हमें उपदेश करे कि जिस प्रकार (अस्य गावः) सूर्य की किरणें (वव्रिं वसानाः) तेजोमय रूप को धारण करती हुई (शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते) शिर अर्थात् ऊपर की ओर से मेघ द्वारा जल वर्षण करती हैं और जिस प्रकार राजा की (गावःक्षीरं दुह्रते) गौएं उत्तम दूध देती हैं उसी प्रकार (अस्य) इस आत्मा की (गावः) गो-रूप इन्द्रियें (शीर्ष्णः) शिरो भाग से (क्षीरं) क्षरणशील आनन्द रस को (दुह्रते) उत्पन्न करती हैं और (वव्रिं) वरण करने योग्य दैहिक आवरण या विषय के स्वरूप को (वसानाः) धारण करती हुई (पदा) ज्ञान सामर्थ्य से, (वृक्षः पदा उदकम् इव) वृक्ष जिस प्रकार चरण भाग से जल पीते हैं उसी प्रकार (उदकम्) उत्तम ज्ञान का पान करती हैं। विशेष विवरण और पहेली का स्पष्टीकरण देखो (अथर्व० का० ९। ९। ५॥)

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८॥

भा०—जिस प्रकार (माता) पुत्रों को उत्पन्न करने वाली स्त्री (पितरम्) पुत्रों के उत्पादक और पालक पुरुष को (ऋते) सत्य व्यवहार या परस्पर संगम के निमित्त या (ऋते = ऋतौ) ऋतु के अवसर पर (आ बभाज) सेवती है, उसके समीप आती है, और वह (अग्रे) उसके भी पूर्व (धीती) स्त्री को पुरुष धारण करने, और पालन पोषण करने के सामर्थ्य से और स्त्री पुरुष को सन्तान धारण करने के निमित्त (मनसा) चित्त से (संजग्मे हि) संगत हो जाती है, उसको मनसे चाहती है। और (सा) वह (बीभत्सुः) बन्धन चाहती हुई (गर्भरसा) गर्भ रूप, सार रूप वीर्य को धारण करने में समर्थ होकर (निविद्धा) पति से अच्छी प्रकार संगत होकर रहती है और (नमस्वन्तः) परस्पर विनयशील होकर ही लोग (उप वाकम्) परस्पर के वचन प्रतिवचन को (ईयुः) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (ऋते) जल के प्राप्त करने के लिये और सूर्य के सात्विक बल पर ही (माता) समस्त प्राणियों की माता यह पृथिवी भी (पितरम्) सबके पालक सूर्य को (आ बभाज) सब प्रकार से सेवती है। (अग्रे) पूर्व ही दोनों एक दूसरे को (धीती) धारण करने के सामर्थ्य से और (मनसा) स्तम्भन बल से (संजग्मे हि) संगत होते हैं। (सा) वह पृथिवी (बीभत्सुः) सूर्य से बंधने की इच्छा करती हुई (गर्भरसा) अपने बीजवपनादि द्वारा गर्भित होने के रस अर्थात् बल को और अपने गर्भ में जल को धारण करती हुई (निविद्धा) सब प्रकार खनी जाती है। (नमस्वन्तः) अन्न के लाभ करने हारे कृषक जन ही इस (उप वाकम्) वेद वाक्य के तत्व को (अथवा उपवाकम् = उपपाकं) पके के समान अन्न को (ईयुः) भली प्रकार जानें। इसी प्रकार जगन्नि-र्मात्री माता प्रकृति पिता परमात्मा को उसके ऋत परम ऐश्वर्यमय बल में बंध कर उसका आश्रय लेती है। उसके (धीती, मनसा)

धारण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य से वह उसके साथ सदा संगत रहती है। वह ब्रह्म बीज से गर्भित होकर इसकी शक्ति से ओत प्रोत हो जाती है। इस तत्व ज्ञानमय वचन रूप उपनिषत् को ज्ञानवान्, विनयी जन ही प्राप्त करें।

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (दक्षिणायाः) कार्य करने में समर्थ और (धुरि) धारण करने में समर्थ पुरुष की शक्ति पर (माता) पुत्रों की माता (युक्ता) एक चित्त होकर आश्रय पाती है, उसके साथ संयोग करती है और अनन्तर (वृजनीषु अन्तः) बाह्य बाधाओं को वर्जन करने वाली सुरक्षित नाड़ियों के भीतर (गर्भः अतिष्ठत्) गर्भ स्थिर हो जाता है अनन्तर (वत्सः अमीमेत्) बालक उत्पन्न होकर शब्द करता है। उसी प्रकार विद्वान् जन (त्रिषु योजनेषु) तीनों लोकों में (विश्वरूप्यम्) समस्त रूपों के पदार्थों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के सामर्थ्य को (गाम् अनु) इस पृथ्वी के समान ही उत्पादक पालक और विश्वजननी रूप में (अनु अपश्यत्) देखा करे। इसी प्रकार (दक्षिणायाः धुरि) शक्तिमती सूर्य की धारण शक्ति पर माता (पृथिवी) आश्रित है (वृजनीषु अन्तः) दिशाओं के बीच (गर्भः) अन्तरिक्ष में मेघ जल से गर्भित होकर ठहरता है। (वत्सः) मेघ (गाम् अनु अमीमेत्) गाय को देख उसके प्रति बछड़े के समान गर्जना करता है इसी प्रकार (त्रिषु योजनेषु) तीन प्रकार के योगों में यही परमेश्वरी सर्ग के क्रम को साक्षत् करे। (३) इधर माता प्रकृति परमेश्वरी धारणशक्ति पर संयोग को प्राप्त होती है। गर्भ अर्थात् हिरण्यगर्भ विराट् (वृजनीषु) आपः अर्थात् कारण परमाणुओं के आश्रय रहता है। सूर्य सर्वाच्छादक पृथ्वी पर तेज प्रक्षेप करता है तीनों लोकों में यह विश्वरूप परमेश्वर के सर्ग को विद्वान् देखता है।

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् १०।१५

भा०—(एकः) अकेला सूर्य जिस प्रकार (तिस्रः मातॄः) अन्न, जल और तेज को उत्पन्न करने वाली पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु तीन भूमियों को और (त्रीन् पितॄन्) पालन करने वाले तीन अग्नि, वायु और सूर्य इनको (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः) सब से ऊपर अध्यक्ष, सबका धारक होकर (तस्थौ) विराजता है (ईम्) इसको कोई पदार्थ (न अव-ग्लापयन्ति) मन्द तेज नहीं कर सकते । उस पर पर्दा नहीं डाल सकते, उसकी शक्ति का तिरस्कार नहीं कर सकते उसी प्रकार (एकः) एक अद्वितीय परमेश्वर ही (तिस्रः मातॄः) सत्व, रजस, तमस तीन गुणों से युक्त तीन प्रकार की प्रकृति या उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों को और (त्रीन् पितॄन्) अग्नि, वायु, और जल इन तीन जीवों के पालकों को (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः) सबके ऊपर अध्यक्ष रूप में, सबको धारण करने में समर्थ होकर (तस्थौ) विराजता है (ईम्) इसके सामर्थ्य और तेज को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि कोई भी (न अव-ग्लापयन्ति) तिरस्कृत नहीं कर सकते । विद्वान् लोग (अमुष्य) उस परोक्ष (दिवः) सबके कामना करने योग्य, तेजोमय, सब के रक्षक परमेश्वर के (पृष्ठे) पालन, सबके वर्धन, सेचन के सामर्थ्य के वर्णन में (अविश्व-मिन्वां) समस्त साधारण अज्ञ जनों से न सेवन करने योग्य (विश्वविदं) समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली (वाचं) वेद वाणी को (मन्त्र-यन्ते) गूढ़ रूप से, भाव पूर्ण रूप से वर्णन करते हैं । सर्वे वेदाः यत्प-दमामनन्ति० । ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्० इत्यादि । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ११

भा०—जिस प्रकार (ऋतस्य) सदागति शील काल का (द्वाद-

शारं) बारह मास रूप अरों वाला (चक्रं) संवत्सर चक्र (द्याम् परि) सूर्य के आश्रय पर (वर्वर्ति) सदा घूमता रहता है (तत्) वह कभी (जराय न भवति) नाश होने के लिए नहीं होता, प्रत्युत बराबर चलता रहता है। और उससे (सप्त शतानि विंशतिश्च) सातसौ बीस (मिथुनासः पुत्राः) जोड़े २, दिन रात, सूर्य के पुत्र के समान (आतस्थुः) विद्यमान् रहते हैं उसी प्रकार (ऋतस्य) सत्य, चिन्मय आत्मा का (द्वादशारं चक्रम्) बारह प्राण रूप अरों वाला चक्र अर्थात् करण समूह जो (द्याम् परि वर्वर्त्ति) इच्छा करने वाले मन के आश्रय पर चेष्टा करता है (तत्) वह (जराय) उसके नाश के लिये (नहि) नहीं होता, प्रत्युत उसकी शक्ति के विकास के लिये ही होता है। (अत्र) इस देह में (सप्त शतानि विंशतिश्च) सात सौ बीस (मिथुनासः) जोड़े अध्यात्म तत्व (पुत्राः) पुरुष, आत्मा को त्राण करने वाले उसकी शक्ति को प्रकट करने वाले होकर हे (अग्ने) ज्ञानवान् पुरुष ! वे इस आत्मा के आश्रय देह में (तस्थुः) रहते हैं। संवत्सर में दिन रात्रि के समान प्राण और रयि दो पदार्थ हैं उनके ही अंशांश रूप से वर्ष के दिन रात्रि के समान ३६०, ३६० कलाएँ हैं। इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १—६ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥१२॥

भा०—विद्वान् लोग (पितरं) सबके पालक कालात्मा सूर्य या संवत्सर को (दिवः) आकाश, या प्रकाशमान तेज के (परे अर्धे) सर्वोत्तम स्थान में स्थित (पञ्चपादं) क्षण मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष इन अथवा हेमन्त, शिशिर को एक मानकर पांच ऋतु रूप चरणों और (द्वादशाकृतिम्) १२ मास रूप, १२ स्वरूप वाला और (पुरीषिणम्) वर्ष द्वारा जल बरसाने वाला, एवं सर्वशक्तिसम्पन्न (आहुः) बतलाते हैं। (अथ इमे) और ये (अन्ये) दूसरे विद्वान् (उपरे) सब प्राणियों को

जीवन में आनन्द देने वाले (सप्त-चक्रे) अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन रात, मुहूर्त्त इन सात अथवा सात ग्रहों की परिधि चक्रों से युक्त (षडरे) छः ऋतु रूप अरों वाले वर्ष से युक्त क्रान्ति चक्र में (विचक्षणं) विविध पदार्थों के दिखाने वाले सूर्य को (अर्पितम् आहुः) स्थित बतलाते हैं। (२) अध्यात्म में—ज्ञान करने के पाचों साधनों का स्वामी आत्मा, 'पञ्च-पाद' है, १२ प्राणों का स्वामी होने से वह 'द्वादशाकृति' है। उसको कामना शील देह के परम स्थान हृदय में 'पुरीषी', पुरु अर्थात् प्रीणन साधन इन्द्रियों द्वारा भोग्य विषयों की इच्छा करता हुआ और इस देह रूप पुरका सञ्चा-लन करता हुआ बतलाते हैं। दूसरे व्यक्ति उसी को (सप्तचक्रे) सात मूर्धन्य प्राणों के चक्र या समूह या मूल, अधिष्ठान, नाभि मणिपूर, आज्ञा, सोम सहस्त्रदल आदि सात चक्र वाले और मन सहित छहों इन्द्रिय रूप अरों से युक्त इस देह में (विचक्षणं) विविध विषयों के द्रष्टा रूप से स्थित बतलाते हैं। इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १। ११॥ और (३) परमेश्वर ब्रह्माण्ड रूप पुरका संचालक होने से 'पुरीषी' है। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द ये ब्रह्म के पञ्च पाद हैं। पञ्चतन्मात्रा, पञ्च स्थूल भूत अहङ्कार और महत् ये १२ उसी की शक्ति के द्वारा भौतिक विकास, आकार या विकार होने से वह ब्रह्म 'द्वादशाकृति' है (दिवः परे अर्धे) तेजोमय परमेश्वर के परम समृद्ध रूप के निरूपण में उक्त प्रकार ब्रह्मको सबका उत्पादक पिता पालक बतलाते हैं। दूसरे उसी को सप्त तत्व कारकों से युक्त तन्मात्रामय ज्ञानसाधनों से सम्पन्न देह पर द्रष्टा रूप समष्टि चैतन्य रूप से वर्णन करते हैं। 'उ परे' इति उपनिषत्सम्मतः पाठः॥ अध्यात्म में—सात धातु से युक्त मनः सहित छ इन्द्रियों से युक्त देह में अधिष्ठित जीव का वर्णन करते हैं।

पञ्चा॑रे च॒क्रे प॑रि॒वर्त॑माने॒ तस्मि॒न्ना त॑स्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
तस्य॒ नाक्ष॑स्तप्यते॒ भूरि॑भारः स॒नादे॒व न शी॑र्यते॒ सना॑भिः ॥१३॥

भा०—(पञ्चारे चक्रे) पांच अरों वाला चक्र (परि वर्त्तमाने) जो बराबर घूम रहा है उसके आश्रय में ही (विश्वा भुवनानि तस्थुः) समस्त भुवन स्थित हैं। (तस्य) उसका (भूरिभारः) बहुत से भार से युक्त (अक्षः) धुरा (न तप्यते) गरम नहीं होता वह (सनाभिः) अपनी नाभि सहित (सनात् एव) चिर काल से नित्य, अनादि से चला आ रहा है तो भी (न शीर्यते) वह नहीं घिसता (१) आदित्य या संवत्सर चक्र बराबर घूम रहा है। उसमें पांच ऋतु पांच अरे हैं। उसका अक्ष-अर्थात् अध्यक्ष बहुत से प्राणियों को भरण पोषण करने से 'भूरिभार' है। वह (न तप्यते) संतप्त नहीं होता, जिस प्रकार चक्र का धुरा बहुत भार लेकर चलता हुआ गरमा जाता है। उस प्रकार संवत्सर चक्र का केन्द्र तप्त नहीं होता, तो भी वह कालचक्र अनादि काल से चला आ रहा है, वह क्षीण नहीं होता। (२) अध्यात्म में—पांच इन्द्रि पांच अरे हैं। उनसे युक्त आत्मा के आश्रय ही सब (भुवनानि) उत्पन्न होने हारे प्राणी गण स्थिर हैं उसका (अक्षः) अध्यक्ष आत्मा सबको धारण करके भी (न तप्यते) खिन्न नहीं होता, वह सर्व शक्तिमान् प्रभु अनादि काल से विद्यमान्, सबका समान रूप से नाभि अर्थात् आश्रय है, वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। (३) यह समस्त जगत् चक्र भी पांच भूत रूप अरों से युक्त है, उसका अध्यक्ष भी ईश्वर है।

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति) उत्तान इस भूमि पर दस अश्व एक ही रथ में जुड़कर उसको ढो ले जाते हैं और (सनेमि अजरं चक्रं विवावृते) हाल सहित दृढ़ चक्र बराबर घूमता जाता है (उत्तानायाम्) उत्तम शक्तिमान् पुरुष, परमेश्वर के आश्रय पर विद्यमान प्रकृति में ही (दश) पांचों भूत और पांच उनकी तन्मात्राएं सब मिलकर

दसों (युक्ताः) परस्पर सम्मिलित होकर (वहन्ति) इस जगत् को धारण करते हैं और (सनेमि) सर्वत्र समान रूप से नियम पूर्वक चलने हारा (चक्रम्) काल (अजरं) कभी नाश को न प्राप्त होकर (वि वावृते) विशेष रूप सें वर्त्तता है, व्यतीत होता है। (चक्षुः रजसा आवृतम् एति) जिस प्रकार देखने वाली आंख प्रकाश से युक्त होकर आगे ग्राह्य विषय तक जाती है और (भुवना) अन्य इन्द्रिय गण भी उसी के आश्रय रहते हैं उसी प्रकार (सूर्यस्य) सूर्य, सर्वोत्पादक, सर्व प्रेरक सूर्य के समान तेजोमय परमेश्वर का (चक्षुः) सब पदार्थों को दिखाने और बतलाने वाला वेद और प्रकाशमय सूर्यादि (रजसा) प्रकाश युक्त तेज और ज्ञान से (आवृतं एति) युक्त होकर प्राप्त होता है (तस्मिन्) उसी के ऊपर (विश्वा भुवनानि) सब लोक (आ अर्पिता) स्थित हैं। (२) अध्यात्म में—सर्व वशकारी कारक प्राण, सबसे ऊपर विद्यमान् चिति शक्ति के आधार पर चल रहा है और दश प्राण उसमें युक्त होकर देह को धारण करते हैं। सूर्य रूप आत्मा या सूर्यचक्र सहस्रदल कमल का अन्तश्चक्षु ज्ञानयुक्त होकर आगे बढ़ता है उसी के आश्रय सब देहस्थ प्राणी जीते हैं।

साकुञ्जानां सप्तथमाहुरेकुजं षळिद्यमा ऋषयो देवुजा इति। तेषामिष्टानि विहितानि धामुशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपुशः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (साकं-जानां) एक साथ उत्पन्न हुए वसन्तादि ऋतुओं में से (सप्तथम्) सातवें को (एकजम् आहुः) एक अधिक मास से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं और (षट् यमाः इत् ऋषयः देवजाः इति आहुः) छः यम अर्थात् जोड़े २, दो दो मासों के बने ऋतुओं को ऋषि, क्रान्तदर्शी विद्वान् 'देवज' अर्थात् तेजस्वी सूर्य से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं। (तेषाम्) उनके (इष्टानि) समस्त प्राणियों को अभिलषित स्वरूप

(रूपशः विकृतानि) प्रत्येक के भिन्न२ रूपमें प्रति पदार्थ विकार को प्राप्त हुए हैं, वे (स्थात्रे धामशः विहितानि) स्थिर सूर्य के ही धारण सामर्थ्य या तेज के अनुसार विविध रूप से बनते हैं उसी प्रकार आत्मा से अधिष्ठित देह में (साकं-जानां) एक साथ उत्पन्न शिरोगत सातों प्राणों में से (सप्तथम्) सातवें मुख्य प्राण को (ऋषयः) अध्यात्म वेदी ऋषिजन (एकजं आहुः) एक मात्र आत्मा के ही मुख्य बल से एवं अकेला ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं और (षट् इत् यमा देवजाः इति) शेष छहों जोड़े २ प्राण 'देव' अर्थात् आत्मा की शक्ति से उत्पन्न होते बतलाते हैं (तेषाम्) उनके (इष्टानि) अभिलषित रूप आदि विषय भी (स्थात्रे धामशः) स्थाता, के धारण सामर्थ्य के अनुसार ही रचे हैं वे सब (रूपशः) प्रत्येक रूप २ प्रति देह में (विकृतानि रेजन्ते) विकृत होकर गति करते हैं । इति षोडशो वर्गः ॥

स्त्रियः॑ स॒तीस्ताँ उ॑ मे पुं॒स आ॑हुः॒ पश्य॑द॒क्षण्वा॒न्न वि चे॑तद॒न्धः।
क॒विर्यः पु॒त्रः स ई॒मा चि॑केत॒ यस्ता वि॑जा॒नात्स पि॒तुष्पि॒तास॑त्॥१६॥

भा०—(स्त्रियः सतीः) जो स्त्रियें हैं (तान् उ मे पुंसः आहुः) उनको ही विद्वान् लोग पुरुष कहते हैं अर्थात् (मे) मुझ परमेश्वर की (स्त्रियः) प्रकृति के परमाणुओं में घनी भाव उत्पन्न करने वाली शक्तियां (सतीः) जो सद् रूप से या बल रूप से वर्त्तमान हैं उनको ही विद्वान् (पुंसः आहुः) पुरुष रूप से अर्थात् अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि पुमान् नामों से पुकारते हैं (तान् अक्षण्वान् पश्यत्) उनको चक्षु वाला ज्ञानी ही देखता है । (अन्धः न विचेतत्) अन्धा अज्ञानी पुरुष उनको विशेष रूप से नहीं जान सकता । (यः) जो (पुत्रः) पुरुष (कविः) क्रान्त दर्शी मेधावी है (सः ईम् आ चिकेत) वही उस तत्व को जानता है । (यः ताः विजानात्) जो उन शक्तियों को विशेष रूप से जान लेता है वही (पितुः पिता असत्) अपने पिता का भी पिता होने योग्य है । ज्ञानवान् होने से वह पिता के तुल्य आदर योग्य होता है । (२) आदित्य

पक्षमें—सूर्य के रश्मि ही जल को अपने गर्भ में धारण करने में स्त्रियों के समान होते हैं और वे ही पुनः भूमि पर पुरुष के समान वीर्यवत् जल सेचन कर ओषधियों के उत्पादक होने से पुरुष के समान होते हैं। (३) आत्म पक्षमें—ज्ञानवृत्तियां या प्राण वृत्तियां अपने गर्भ में आत्मा को धारण करने से स्त्रियों के समान हैं और वे ही प्राण होने से पुमान् हैं। अथवा (ताँ = ताः उ मे पुंसः—मम पुरुषस्यात्मनः) वे सब वृत्तियां मुझ पुरुष की ही है ऐसा बतलाते हैं। उनको ज्ञानी ही जानता है, अज्ञानी नहीं जानता ब्रह्मज्ञानी पुरुष पुत्र अर्थात् अल्पायु होकर भी ज्ञानवान् होने से आंगिरस कवि के समान वृद्ध अज्ञानियों के पिता के समान आदरणीय है।

अ॒वः प॒रेण॑ प॒र ए॒नाव॑रेण प॒दा व॒त्सं बिभ्र॑ती॒ गौरुद॑स्थात्।
सा क॒द्रीची॒ कं स्वि॒दर्धं॒ परा॑गा॒त्क्व॑ स्वित्सूते॒ न॒हि यू॒थे अ॒न्तः॥१७

भा०—(परेण अवः अवरेण परः पदा वत्सं बिभ्रती गौः) जिस प्रकार गाय परे के अर्थात् पिछले पैरों के नीचे और अगले पैरों के पीछे अपने बछड़े को धारण करती हुई (उत् अस्थात्) खड़ी होती है उसी प्रकार (गौः) यह सूर्य की उषा (परेण पदा अवः) परम स्थान आकाश से नीचे और (अवरेण पदा परः) अवर पद इस भूलोक से ऊपर अन्तरिक्ष गत मेघ से (वत्सं) बसने वाले जीव लोक को पालन पोषण करती हुई (उत् अस्थात्) उदित होती है (सा) वह (कद्रीची) अदृश्य स्थान से, न जाने कहां से आती हुई (कं स्वित् अर्धं) किसी समृद्धतम आधे आकाश को (परा गात्) व्यापती है (क-स्वित्) कहीं भी वह सूर्य को वत्स के समान (यूथे अन्तः न सूते) सामान्य गौ के समान यूथ के बीच में नहीं प्रसव करती (२) परमेश्वरी शक्ति सर्व व्यापक होने से 'गौ' है। उसका पर पद आकाश और अवर पद यह लोक दोनों के बीच स्थित जगत् को (पदा) अपने सामर्थ्य से धारण करती हुई सबसे उच्चतम होकर विराजती है। वह अदृश्य होने से 'कद्रीची' है। (कंस्वित् अर्धं)

किस किस या कर्त्ता, परम सुख मय, समृद्ध तम, परमेश्वर्यवान् परमेश्वर को ही प्राप्त है। वह (यूथें अन्तः) महत् आदि प्रकृति के विकृति गण में (कस्वित् नहि सूते) किसी के भी आश्रय होकर जगत् को प्रसव नहीं करती। प्रत्युत परमेश्वर की निरपेक्ष शक्ति ही जगत् को उत्पन्न करती है। (३) अध्यात्म में देखो अथर्व० का० ९। ९। १८॥ पर आत्मा से नीचे और अवर इन्द्रिय गण से ऊपर आत्मा चिति शक्ति मन रूप वत्स के (पदा) ज्ञान शक्ति से धारण करती है वह अदृश्य होकर सुखमय आत्मा को ही प्राप्त होकर इस देहादि संघात से अतिरिक्त रहकर किसके आश्रय होकर मन आदि का प्रसव करती है? किसी के भी नहीं। स्वतः।

अवः परे॑ण पि॒तरं॒ यो अ॑स्या॒नुवेद॑ प॒र ए॒नाव॑रेण।
क॒वी॒यमा॑नः क इ॒ह प्र वो॑चद्दे॒वं मनः॒ कुतो॒ अधि॒ प्रजा॑तम् ॥१८॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (अस्य) इस स्थावर जंगम जगत् के (अवः) इस लोक में प्रत्यक्ष और (परेण) परे अप्रत्यक्ष में भी (पितरं) परिपालक परमेश्वर को भी (एना अवरेण परः) इस पृथ्वी लोक से ऊपर (परेण अवः) पर आकाश से नीचे स्थित मेघ या विद्युत के समान सबके बीच में विराजमान् सर्व सुख प्रद सबके जीवन प्रद (अनु वेद) विद्याभ्यास, ज्ञान, ध्यान, मनन, दर्शन, द्वारा साक्षात् जान लेता है वह (इह) इस लोक में (कः) कोई विरला ही होता है जो (कवीयमानः) अति विद्वान् क्रान्तदर्शी होकर (प्र वोचत्) तत्व ज्ञान का उपदेश करता है। वही अध्यात्म में यह भी बतलाता है कि (एवं) इसी प्रकार (मनः) मनन शील अन्तःकरण, और ज्ञानशील चित् और मन, चेतना वान् जीव गण भी (कुतः अधि प्रजातम्) कहां से उत्पन्न होता है। (अथर्व० ९। ९। १८)

ये अ॒र्वाञ्च॒स्ताँ उ॒ परा॑च आहु॒र्ये परा॑ञ्च॒स्ताँ उ॑ अ॒र्वाच॑ आहुः।
इन्द्र॑श्च॒ या च॒क्रथुः॑ सोम॒ तानि॑ धु॒रा न यु॒क्ता रज॑सो वहन्ति १९

भा०—(ये अर्वाञ्चः) जो समीप, उरे के हैं (तान् उ) उनको ही विद्वान् लोग (पराचः आहुः) पर अर्थात् दूर के बतलाते हैं। और (ये पराञ्चः) जो दूर के हैं (तान् उ अर्वाचः आहुः) उनको भी समीप का ही बतलाते हैं। अर्थात् जिस प्रकार समीप देश के लोगों को भी कोई सम्बन्ध न होने से अपने से दूर और दूरके लोगों को भी सम्बन्ध होने से अपने निकट तम सम्बन्धी कहा करते हैं उसी प्रकार (अर्वाञ्चः) इस जगत् में कार्य रूप से दीखने वाले जलादि को ही (पराचः) कारण रूप से भी निर्देश करते हैं और कारण रूप से स्थित सूक्ष्म परमाणुओं को स्थूल कार्य रूप में बना हुआ बतलाते हैं। तत्वतः कार्य कारण में कोई भेद नहीं, दोनों एक हैं। (इन्द्रः सोमः च) महान् जगत् में इन्द्र परमेश्वर और सोम जीव या सर्व प्रसव कर्त्ता प्रधान तत्व दोनों मिलकर (या चक्रथुः) जिन विकृत परिणामों को उत्पन्न करते हैं (धुरा न युक्ताः) धुरे में लगे अश्व जिस प्रकार रथ स्थित लोगों को ढोले जाते हैं उसी प्रकार (तानि) वे विकार परिणाम भी (धुरा युक्ता) धारण शील परमेश्वर के बल से संयोग को प्राप्त होकर (रजसः) रजो गुण से उत्पन्न, एवं अभिव्यक्त उत्पन्न लोकों को (वहन्ति) धारण करते हैं। (२) जो जीवगण इस लोक में हैं वे ब्रह्म से दूर होने से (पराञ्चः) दूरस्थ हैं। जो इस लोक को छोड़ दूर परम पद को प्राप्त हो जाते हैं उनको ही ब्रह्म पद के समीप गया बतलाते हैं। जीव और ब्रह्म दोनो के किये कर्मही सब लोकों को धारण करते हैं। (३) दूर के ग्रह आदि समीप और समीप के चक्र गति वश से दूर हो जाते हैं। चन्द्र और सूर्य के भ्रमण ही लोकों को धारण करते हैं। (अथर्व० ९। ९। १९)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति २०।१७

भा०—इन्द्र सोम, जीव, ब्रह्म और आत्मा तथा अन्तःकरण इनका

वृक्ष पर स्थित दो पक्षियों के दृष्टान्त से वर्णन करते हैं। जिस प्रकार (द्वा सुपर्णा) दो उत्तम पंखों वाले पक्षी (युजा) एक साथ प्रेम से संयुक्त हुए, (सखाया) एक दूसरे के मित्र बने हुए, एक नाम वाले, (समानं) एक ही (वृक्षं परि) वृक्ष के ऊपर (सस्वजाते) स्थित होकर एक दूसरे से आलिंगन करते या वृक्ष का आश्रय लेते हैं, उसपर सुख लाभ करते हैं। (तयोः अन्यः) उनमें से एक (स्वादु पिप्पलं अत्ति) स्वादयुक्त फल खाता हो (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि चाकशीति) देखा करे उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा, दोनों (सुपर्णा) शोभन, सुन्दर, उत्तम ज्ञान और पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' हैं। परमात्मा सर्वोत्तम ज्ञानी सब से बड़ा पालक है, जीव उत्तम कर्म करने हारा, उसके दिये ज्ञान से ज्ञानवान्, यम नियमादि का पालक और अधीनस्थ प्राणों और देहादि संघात का पालक होने से 'सुपर्ण' है। वे दोनों (सयुजा) सदा साथ रहने वाले साथी हैं। वे व्याप्य व्यापक भाव से सदा सम्बद्ध हैं, पिता पुत्र भाव से, आश्रयाश्रयी भाव से, उपास्य–उपासक भाव से सदा युक्त हैं। (सखाया) दोनों सखा अर्थात् मित्र के समान रहते हैं। 'आत्मा' यह दोनों समान नाम है। एक समान दोनों स्वप्रकाश हैं। वे दोनों (समानं वृक्षं परि सस्वजाते) एक समान वृक्ष का आश्रय लेते हैं। व्रश्चनीय अर्थात् काटे जाने वाले देह में जीवात्मा आश्रित है। विराट् ब्रह्माण्ड रूप में परमेश्वर है। वह प्रलय में काट दिया जाता है। (तयोः अन्यः) उन दोनों से एक जीवात्मा (स्वादुः) स्वादु, मनोहर वाञ्छित (पिप्पलं) पके फल के समान अपने किये पाप पुण्यमय कर्म के सुख दुःख रूप फलका भोग करता है। और (अन्यः) दूसरा, परमेश्वर (अनश्नन्) भोग नहीं करता हुआ (अभि चाकशीति) केवल साक्षी मात्र होकर सर्व द्रष्टा होकर रहता है। (२) मन और आत्मा पक्षमें—वे दोनों उच्छेद्य देह में स्थित हैं।

आत्मा साक्षी, असंग है, भोक्ता मन है 'वृक्षः'—(ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखः एषोऽश्वत्थः सनातनः। इत्यादि क्षेत्रसंज्ञकः)। (२) सूर्य में—दो प्रकार के किरण हैं एक तप से (पिप्पलं) जल ग्रहण करते हैं। दूसरा प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। दोनों एक साथ रहते हैं। इति सप्तदशो वर्गः॥

यत्रा॑ सु॒प॒र्णा अ॒मृत॑स्य भा॒गमनि॑मेषं वि॒दथा॑भि॒स्वर॑न्ति।
इ॒नो विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः स मा॒ धीरः॒ पाक॒मत्रा वि॑वेश॥२१

भा०—जिस प्रकार (सुपर्णाः) रश्मियें (अमृतस्य भागम्) जल के अंश को लेती और (अनिमेषं) निरन्तर (विदथा) सब पदर्थों के लाभ या ज्ञान कराने के निमित्त (अभिस्वरन्ति) सर्वत्र प्रकाश करती हैं जल ग्रहण के लिये सर्वत्र तपती हैं, (इनः) सूर्य (विश्वस्य भुवनस्य) समस्त जगत् का (गोपाः) रक्षक है (सः) वह (पाकम् आविवेश) पकने योग्य ओषधि आदि में किरणों द्वारा प्रविष्ट हो जाता उनको परिपक्व रस प्रदान करता है। उसी प्रकार (यत्र) जिस परमेश्वर में (सुपर्णाः) उत्तम कार्य और ज्ञान से सम्पन्न, उत्तम गति से जाने वाले देवयान मार्ग के आत्म ज्ञानी पुरुष (अमृतस्य) उस अमृत, नित्य, अविनाशी, परमेश्वर के स्वरूप के (भागम्) भजन सेवन को ही (अनिमेषं) निरन्तर समाहित चित्त होकर (विदथा) ज्ञान और परम पद के लाभ के लिये (अभिस्वरन्ति) उसी की स्तुति करते और अन्यों को उसका उपदेश करते हैं। और वही (इनः) सबका स्वामी परमेश्वर (विश्वस्य भुवनस्य) समस्त जगत् का (गोपाः) रक्षक है। (सः) वह (धीरः) ध्यानवान्, धीर बुद्धिमान् पुरुष (पाकम्) परिपक्व ज्ञान वाले (मा) मुझ साधक को (अत्र) इस परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में (आविवेश) सब प्रकार से ज्ञान प्रदान करे। (२) अध्यात्म में—यास्क के [निरु० ३। २। ६] अनुसार—इन्द्रिय गण 'सुपर्ण' हैं। अविनाशी आत्म-चैतन्य द्वारा गृहीत ज्ञान

को ग्रहण करती हैं। वह (इनः) आत्मा सब इन्द्रियों का रक्षक है। वह मुझ अपरिपक्व ज्ञानवान् पुरुष को प्राप्त हो।

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

भा०—(यस्मिन् वृक्षे) जिस अन्धकार को काट देने वाले, सूर्य में (मध्वदः सुपर्णाः) जल ग्रहण करने वाले रश्मि गण (अधिविश्वे) समस्त जगत् पर (निविशन्ते) पड़ते और प्रकाश, ताप और जल प्रदान करते हैं (तस्य इत्) उस सूर्य का (स्वादुः पिप्पलं आहुः) उत्तम फल तथा उसके उत्तम पालन सामर्थ्य रूप विद्वान् जन बतलाते हैं। (यः पितरं न वेद) जो सर्व पालक सूर्य को नहीं जानता (तत् न उत नशत्) वह उस परम सुखद जल के सुख प्रद बल को नहीं प्राप्त करता है। (२) (यस्मिन् वृक्षे) जिस संसार रूप वृक्ष के ऊपर (मध्वदः) मधुर कर्म फल के भोक्ता (सुपर्णाः) उत्तम कर्म और ज्ञानवान् जीवगण (निविशन्ते) आश्रय पाते और (अधि सुवते च) अपनी सन्तान उत्पन्न करते और परमेश्वर का भजन करते हैं (तस्य इत्) उसके (अग्रे) उत्तम स्थान में (पिप्पलं स्वादु आहुः) पालन कारी उत्तम आनन्द प्रद फल की विद्वान् लोग चर्चा करते हैं। (यः) जो पुरुष अज्ञानवश (पितरं न वेद) सर्व पालक परमेश्वर को नहीं जानता। वह ही (तत् न उत् नशत्) उस स्वादु परम आनन्द रूप फल को नहीं प्राप्त करता। अध्यात्म में— इस वृक्ष रूप देह में प्राण गण सुपर्ण आश्रय लेते और देह को प्रेरते हैं। उसके अग्र अर्थात् उत्तमांग भाग शिर में उत्तम पालन कर आनन्द लाभ होता है। इसके पालक आत्मा को जो साक्षात् नहीं करता उसको वह आनन्द लाभ नहीं होता।

यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥२३॥

भा०—(यत्) जो (गायत्रम्) गायत्र (गायत्रे) गायत्र में (अधि आहितम्) स्थित है और (त्रैष्टुभात् वा) त्रैष्टुभ से (त्रैष्टुभं निर् अतक्षत) जिस त्रैष्टुभ को प्राप्त करते हैं (यद्वा) और जो (जगत् जगती आहितं) जगत् जगती में स्थापित है (ये इद्) जो विद्वान् पुरुष (तत् पदम्) उस परम ज्ञातव्य तत्त्व को जान लेते हैं वे अमृतत्व को भोग करते हैं । (१) गानकरने वाले का त्राण करने वाला परमेश्वर ही गायत्री छन्द में वेद में स्तुति किया है । तीनों वेदों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर ही त्रिष्टुप् छन्दों से वर्णन किया है । जगती छन्दों में भी वही (जगत्) सर्व व्यापक प्रभु वर्णन किया गया है । उस परम सर्व-प्रेरक, प्राप्तव्य और ज्ञेय परमेश्वर को जो जानते हैं वे अमृतत्व को भोगते हैं । शेष अन्य सब पक्षों के अर्थों का सप्रमाण स्पष्टी करण देखो (अथर्व भाष्य का० ९ सू० १० । १) ॥

गा॒य॒त्रेण॒ प्रति॑ मिमीते अ॒र्कम॒र्केण॒ साम॒ त्रैष्टु॑भेन वा॒कम् ।
वा॒केन॑ वा॒कं द्वि॒पदा॒ चतु॑ष्पदा॒क्षरे॑ण मिमते स॒प्त वाणीः॥ २४ ॥

भा०—वह परमेश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (अर्क) ऋग्वेद को (प्रति मिमीते) बनाता है । (अर्केण साम) ऋचाओं के समूह से (साम) सामवेद को रचता है । (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुभ् छन्द या तीनों वेदों के मन्त्रों से (वाकम्) यजुर्वेद को रचता है । और (वाकेन) यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद को रचता है, (द्विपदा) दो चरणों और (चतुष्पदा) चार चरणों वाले (अक्षरेण) अक्षरों से ही विद्वान् लोग (सप्त वाणीः) सातो छन्दोमय वाणियों को (प्रति मिमते) ज्ञान करते हैं । अथवा (२) (अर्क) अर्चना करने योग्य प्रभु को विद्वान् पुरुष (गायत्रेण प्रतिमिमीते) गायत्र छन्द अर्थात् ऋग्वेद से ज्ञान करता है । (साम) सर्वत्र समान रूप से व्यापक प्रभु का वह (अर्केण) ऋक् समूह से या ऋचाओं के आश्रय लेकर ज्ञान करे । (वाकं) प्रश्न प्रति प्रश्न या गुरु

के उपदेश द्वारा जानने योग्य परमेश्वर को (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुभ छन्द द्वारा ज्ञान करे और (वाकेन) प्रश्न प्रतिप्रश्न या गुरूपदेश द्वारा ही उस उपदेष्टव्य परमेश्वर को जान लेता है। द्विपात् अक्षर अर्थात् पुरुष, जीव और चतुष्पात् अक्षर परमेश्वर दोनों के ज्ञान पूर्वक ही विद्वान् (सप्त वाणीः) सातों छन्दों में विभक्त वेद वाणियों का (प्रति मिमते) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। अन्य पक्षों का सप्रमाण संक्षिप्त स्पष्टी करण देखो (अथर्ववेद भाष्य का० ९। १० मन्त्र २)॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्। गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥१८॥

भा०—वह परमेश्वर (जगता) अपने सर्वप्रेरक, गति देने वाली गमन रूप काल शक्ति से ही (सिन्धुम्) वेग से गति करने वाले सूर्यादि लोक समूह को (दिवि) आकाश में (अस्तभायत्) स्तब्ध करता है, थामता है और (रथन्तरे) अन्तरिक्ष में या और अधिक वेगवान् शक्तिमान् के आश्रय पर ही (सूर्यं) सूर्य के समान तेजस्वी पिण्ड को (परि अपश्यत्) सर्वत्र भ्रमण करते हुए दिखाता है। उस (गायत्रस्य) गान करने वाले के रक्षक प्रभु परमेश्वर के ही अधीन (समिधः) अच्छी प्रकार देदीप्यमान (तिस्रः) अग्नि, विद्युत् और सूर्य तीनों हैं। (ततः) वह उनसे भी अधिक (महित्वा मह्ना) महान् सामर्थ्य से और महान् स्वरूप से (प्ररिरिचे) उनसे कहीं बढ़कर है। विशेष विवरण देखो (अथर्व० का० ९। १०। ३)॥ इत्यष्टादशो वर्गः॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम्॥२६॥

भा०—जिस प्रकार कोई गृहस्थ (सुदुघां धेनुम्) सुख पूर्वक दोहने योग्य, सुशील दुग्धदात्री गाय को चाहता है और (सुहस्तः गोधुक् दोहत्) कुशल पुरुष उसको दोहता है। यज्ञकर्त्ता उत्तम यज्ञ करता है, उसी

प्रकार मैं (एतां) उस वाणी रूप, आत्मारूप, परमेश्वर रूप और भूमि रूप (सुदुघाम्) सुखों को दोहन करने वाली (धेनुम्) सब रसों का पान कराने वाली, गौ के समान ही (उपह्वये) जानकर उसकी स्तुति करता हूं। ब्रह्मवाणी का गुरु के समीप जाकर अध्ययन करता हूं (सुहस्तः) उत्तम, कुशल, अज्ञान और बाधक कारणों का नाश करने में चतुर पुरुष (गोधुक्) गो अर्थात् वाणी के रस का दोहन करने हारा विद्वान् पुरुष ही (एनाम्) इसको (दोहत्) दोह पाता है। पृथ्वी को दोहन करने में कुशल पुरुष उत्तम शत्रुहन्ता राजा उसे दोहता है। आत्मा रूप गौ को बाधनाओं का नाशक योगी ही दोह पाता है। (अभीद्धः घर्मः सविता सवं साविषत्) जैसे अति प्रदीप्त, घाम और सूर्य या तेजस्वी, प्रतप्त सूर्य जल को वृष्टि रूप में और अन्न को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार (सविता) शिष्यों का आज्ञापक आचार्य (अभीद्धः) स्वयं तेजस्वी (घर्मः) तपस्वी, या ज्ञान का क्षरण करने हारा होकर (श्रेष्ठं सवं) सब से उत्तम ज्ञानाभिषेक (साविषत्) करता है। (तत् उ सु प्रवोचम्) उसका ही मैं सदा उत्तम रीति से उपदेश करता हूं। विशेष देखो अथर्व० ७।७३।७॥

हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्समि॒च्छन्ती॒ मन॑सा॒भ्याग॑त् ।
दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॑ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां मह॒ते सौभ॑गाय॥२७॥

भा०—जिस प्रकार (वत्सम् इच्छन्ती) अपने बछड़े की प्यारी गौ (हिंकृण्वती) अपने वत्स के प्रति प्रेम हिंकार शब्द पूर्वक उस को चूमती हुई (मनसा अभि आ अगात्) चित्त से स्नेहपूर्वक गृह में बछड़े के समीप आ जाती है और वह (वसूनां) मनुष्यों के (वसुपत्नी) अन्न, दुग्ध, घृत आदि सब ऐश्वर्यों और बाल वृद्धादि सबको पालने वाली होती है। (इयं अघ्न्या) वह कभी वध न करने योग्य एवं सदा पालने योग्य होकर (अश्विभ्यां) स्त्री पुरुषों के लिये (पयः दुहाम्) दूध प्रदान करती है और (सा महते सौभगाय) वह बड़े भारी सौभाग्य की

वृद्धि के लिये (वर्धतां) वृद्धि को प्राप्त हो। उसी प्रकार (वसूनां वसुपत्नी) समस्त लोकों में वसने वाले जीवों को पालन करने वाली और (मनसा) ज्ञानपूर्वक (वत्सम् इच्छन्ती) वसे हुए इस लोक रूप वत्स को प्रेम से चाहती हुई, प्रभु की परमेश्वरी शक्ति (हिंकृण्वती) वेद द्वारा ज्ञानोपदेश करती हुई (अभि आ अगात्) साक्षात् दिखाई देती है। (इयं) वह (अघ्न्या) अविनाशिनी होने से 'अघ्न्या' है। वह (अश्विभ्यां) इन्द्र, वायु और आत्मा और मन दोनों को (पयः दुहाम्) पुष्टिप्रद सामर्थ्य प्रदान करती है। उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (वर्धताम्) सबसे बढ़कर है और वह हमें बढ़ावे। शेष पक्षों की योजना देखो अथर्व० ७। ७३। ८॥

गौर॑मीमे॒दनु॑ व॒त्सं मि॒षन्तं॑ मू॒र्धानं॒ हिङ्ङ॑कृणो॒न्मात॒वा उ॑।
सृक्वा॑णं घ॒र्मम॒भि वा॑वशा॒ना मिमा॑ति मा॒युं पय॑ते॒ पयो॑भिः॥२८॥

भा०—जिस प्रकार (मिषन्तं वत्सं अनु) शब्द करते हुए या, उत्सुकता से, छटपटाते या आंख झपकते बछड़े को देख कर प्रेम से (गौः अमीमेत्) गौ शब्द करती है और (मातवा उ) उसको प्रेम पूर्वक अपनाने के लिये (हिंङ् अकृणोत्) चाहती, सूंघती और पुचकारती है। वह (घर्मं सृक्वाणं) रस उत्पन्न करते हुए बछड़े को लक्ष्य करके (अभि वावशाना) अति कामना करती हुई, या उसको बुलाती हुई (मायुं मिमाति) शब्द करती है, हंभारती है उसी प्रकार मेघस्थ वाणी विद्युत् और मेघ रूप रस से भरी गौ और पृथिवी रूप कामधेनु, (मिषन्तं) जल वृष्टि के लिये उत्सुक एवं (वत्सं) वसे हुए स्थावर जंगम संसार के प्रति (अमीमेत्) गर्जना करती है उसी प्रकार (मिषन्तं) एक टक से देखने वाले या दया और अन्न को पुकारने वाले प्रजाजन के प्रति (अमीमेत्) ध्वनि करती है वह (मातवै) माता के समान प्रजामात्र के पालन पोषण के लिये (मूर्धानं) शिर पर गर्जती मानो उसको चूसती हुई (अमीमेत्)

विशेष ध्वनि करती है। वह (सृक्काणं घर्मम् अभि वावशाना) जल उत्पन्न करते हुए प्रतप्त सूर्य को लक्ष्य करके मानो उस जलादि को चाहती हुई शब्द करती (पयोभिः पयते) जलों से बरसती है। (२) अध्यात्म में—व्यापक और ज्ञानमय होने से परमेश्वर और आत्मा दोनों ही 'गौ' हैं। प्रजाजन वत्स है वह मानो सब को दया से अपनाने या सब को (मातवै उ) ज्ञान कराने के लिये (अमीमेत्) आचार्य के समान उपदेश करती और (हिंङ् अकृणोत्) सामगान आदि करती है। वह (घर्मम् सृक्काणं अभिवावशाना) तप करते हुए शिष्य के प्रति उपदेश करने वाले आचार्य के समान संतप्त ताप, प्रकाश या क्षरणशील जल का सर्जन करते हुए 'मेधया' आदित्य के समान भीतरी अन्तःकरण में तेज और आनन्द रस का सर्जन करते हुए आत्मा को (अभिवावशाना) अपने अधीन करती हुई, उसके प्रति अन्तर्नाद करती हुई (मायुं मिमाति) ज्ञानपूर्ण उपदेश करती है और (पयोभिः) पुष्टि कारक पदार्थों या ऐश्वर्यों से (पयते) उन्हें पुष्ट करती है। अन्य पक्षों की योजना देखो अथर्व० अ० १०।९।७॥ (३) इसी प्रकार वाणी रूप गौ (वत्सं) अर्थात् बोलने में मुख्य कारण के ही अधीन होकर (मूर्धानं मिषन्तं अनु अमीमेत्) शिरोभाग की तरफ़ आते हुए के अधीन रहकर ध्वनि करती (मातवै) ज्ञान कराने के लिये ध्वनि करती है (घर्मम्) नाद रस को रचने वाले आत्मा के अधीन ही शब्द करती हुई नाद उत्पन्न करती और आत्मा के तृप्तिकारक रसों से ज्ञान उत्पन्न करती है।

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता। सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

भा०—(सः शिंक्ते) बछड़ा जिस प्रकार मनोहर ध्वनि करता है (येन गौः अभीवृता) जिसके साथ गौ आकर लिपट जाती है। (ध्वसानौ

अधि श्रिता) गौओं के निवास स्थान में खड़ी रहकर (मायुं मिमाति) शब्द करती, हंभारती है। वह (चित्तिभिः) अपने पालन आदि कर्मों से (मर्त्यं हि नि चकार) मनुष्य मात्र को नीचे करती, स्वयं सर्वोपरि आदर का पात्र होती है। वह (विद्युद् भवन्ती) विद्युत् के समान कान्तिमती और विशेष कामनावाली होकर (वव्रिम्) वरण करने योग्य स्वरूप को (प्रति औहत) प्रकट करती है। (२) इसी प्रकार (सः अयं) वह यह मेघ (शिङ्क्ते) ध्वनि अर्थात् गर्जना करता है। (येन) जिसके साथ २ (गौ) अति वेग से जाने वाली मध्यमिका वाक्, विद्युत् (अभीवृता) सब तरफ चम चमाती हुई (ध्वंसनौ) ध्वंस होने अर्थात् क्षीण होने वाले मेघ के आश्रय में (अधिश्रिता) आश्रित हुई (मायुं मिमाति) शब्द किया करती है। (सा) वह (चित्तिभिः) तीव्र क्रियाओं से (मर्त्यं हि नि चकार) मनुष्य मात्र को भयभीत करती है। वह (विद्युद् भवन्ती व्रव्रिम् प्रत्यौहत) विशेष दीप्तिमती होकर अपने को वरण करने वाले आकर्षक पदार्थ के प्रति बह जाती है। अथवा अपना रूप प्रकट करती है। (३) (अयं सः शिंक्ते) वह परमेश्वर ही वेद द्वारा गर्जते मेघ के समान, आचार्यवत् उपदेश करता है जिसके साथ वेद वाणी व्यापक होकर भी सदा उपदेश देती है। और वह नाशवान् वर्ण की ध्वनि पर आश्रित रह कर (चित्तिभिः) ज्ञानों द्वारा (मर्त्यं नि चकार) मनुष्य का बड़ा उपकार करती है (विद्युत्) विशेष २ अर्थ को द्योतक होकर (वव्रिम्) वरणीय परमेश्वर के ही स्वरूप को प्रकाशित करती, उसीका प्रतिपद वर्णन करती है। विशेष देखो (अथर्व० ९ । १० । ७ ॥)

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥१९

भा०—(जीवः) जीव आत्मा (पस्त्यानां मध्ये) गृहों के बीच में गृहपति के समान और प्रजाओं और सेनाओं के बीच प्रजापति, राजा और

सेनापति के समान देहों के बीच उनका (ध्रुवम्) धारण करने वाला होकर स्थिर रूप से (जीवम्) जीवनप्रद और प्राणधारक (तुरगातु) अति वेग से इन्द्रियों में गति उत्पन्न करता हुआ, (एजत्) शरीर को सञ्चालित करता हुआ और (अनत्) प्राण देता हुआ, चेतन रूप होकर (शये) व्याप रहा है वह (जीवः) जीवात्मा (मृतस्य) मरने वाले जड़ देह के बीच में (स्वधाभिः) अपने आप को धारण करने वाली शक्तियों या अन्नों के द्वारा (चरति) भोग कराता और विचरता है। वह स्वयं (अमर्त्यः) मरणधर्मा देह से भिन्न होकर भी (मर्त्येन) मरने वाले शरीर के साथ (सयोनिः) एक ही आश्रय में रहता है। परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर (अनत्) सबको प्राण देता हुआ (तुरगातु) शीघ्र गति देने वाला, सर्व प्रेरक, (ध्रुवं) कूटस्थ ब्रह्म (पस्त्यानां मध्ये जीवम् एजत्) शरीरों और लोकों के बीच में कर्मानुसार जीव को प्रवेश करता हुआ स्वयं (शये) अदृश्य, निष्क्रिय रूप से व्याप रहा है और (जीवः मृतस्य स्वधाभिः चरति) जीव जड़ देह का अपने किये कर्मों द्वारा या अन्नों से भोग करता है। वह आत्मा या ब्रह्म (अमर्त्यः) मरणधर्मा जीव से भिन्न होकर भी (मर्त्येन सयोनिः) जीव के साथ ही व्यापक रूप से रहा करता है। देखो (अथर्व० ९।१०।८॥) इत्येकोनविंशो वर्गः॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥३१॥

भा०—मैं उस (गोपाम्) सब के रक्षक को (पथिभिः) नाना मार्गों से (आ चरन्तं च) समीप आते और (परा चरन्तं च) दूर जाते हुए तथा (अनिपद्यमानं) कभी भी नाश को प्राप्त न होते हुए को (अपश्यम्) निकट और दूर के मार्गों से गुज़रते एवं अस्त न होने वाले सूर्य के समान नाना प्रकारों से साक्षात् करता हूं। परमेश्वर नाना मार्गों तथा उपायों अर्थात् सात्विक साधनों से साधक के कभी अति निकट और तामस प्रवृत्तियों

से कभी बहुत दूर होता प्रतीत होता है। और (सः) वह (सध्रीचीः) उसके सदा साथ रहने और उसके साथ ही प्रकट होने वाली, स्वाभाविक और (विषूचीः) सब तरफ़ जाने और व्यापने वाली शक्तियों को किरणों के समान (वसानः) अपने में धारण करता हुआ (भुवनेषु) उत्पन्न हुए समस्त लोकों के (अन्तः) भीतर और (आ वरीवर्त्ति) बाहर सर्वत्र वर्त्तमान रहता है। (२) आत्मा भी (आ च परा च पथिभिः) आभ्यन्तर और वाह्य, तथा ब्रह्म के या अध्यात्म के समीप और दूर ले जाने वाले मार्गों से विचरते, कभी नाश न होने वाले इन्द्रियों के पालक आत्मा को मैं साक्षात् करूं। वह स्वाभाविक और विविध दिशाओं में जाने वाली प्राण और इन्द्रियों की चेष्टाओं पर वश करता हुआ (भुवनेषु) समस्त प्राणों के भीतर (वरीवर्त्ति) चेष्टा करता है। (देखो अथर्व० ९।१०।११)

य ईं॑ च॒कार॒ न सो अ॒स्य वे॑द॒ य ईं॑ द॒दर्श॒ हिरु॒गिन्नु तस्मा॑त् ।
स मा॒तुर्योना॒ परि॑वीतो अ॒न्तर्ब॑हुप्र॒जा निर्ऋ॑ति॒मा वि॑वेश ॥३२॥

भा०—(यः) जो जीव (ईं चकार) यह सब कार्य करता है (सः) वह जीव भी (अस्य) इस जीव के स्वरूप को नहीं जानता है। और जो (ईं) इस सब अपने कर्म आदि को (ददर्श) साक्षी होकर देखता है वह भी (तस्मात्) उस सब से (हिरुक्) पृथक् और छिपा हुआ अदृश्य है। (सः) वह (मातुः) माता के (योनौ) गर्भाशय के (अन्तः) भीतर (परिवीतः) लिपट २ कर (बहुप्रजाः) बहुत से जन्म धारण करता हुआ (निर्ऋतिम्) प्राकृत बन्धन को (आविवेश) धारता है या भूमि को प्राप्त होता है। अथवा—परमेश्वर पक्ष में— देखो अथर्व० भाष्य ६।१०।१०॥ आदित्य मेघ पक्ष में—जो (ईं) जल वृष्टि आदि जगत् के पालन के कार्य करता है (सः) वह आदित्य आदि जड़ होने से उसको नहीं जनता (यः ईं ददर्श) जो इस सृष्टि के बीच जल वृष्टि होने और जगत् के पालन की व्यवस्था

को देखता है वह (तस्मात् हिरुग् इत् नु) अवश्य उससे भिन्न और छिपा हुआ है । (सः) वही (मातुः योनौ) अन्तरिक्ष के एक देश में (परिवीतः) प्रकाशित होके (बहु प्रजाः) बहुत अन्नादि एवं जीव गणों को प्रजापति के समान उत्पन्न करता हुआ (निर्ऋतिम् आ विवेश) जल रूप से भूमि को प्राप्त हो जाता है । (२) इसी प्रकार जो जीव निषेकादि से गर्भ स्थापन करता है वह जीव के गर्भ में उत्पत्ति के रहस्य को नहीं जानता । प्रभु जो जीव या जनक पिता से भी भिन्न और बढ़कर है वह उसे देखता है । वह मातृयोनि में बहुत जन्मों के बाद आकर बन्धन कष्ट को प्राप्त होता है ।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३॥

भा०—(मे) मेरा (पिता) पालक और (जनिता) उत्पादक (द्यौः) सूर्य है, वही (मे) मुझ जीवको (नाभिः) बन्धन में बांधने वाला, एवं केन्द्र के समान हम सब जीवों का आश्रय है । (अत्र) उसी आश्रय में (मे बन्धुः) मेरे बन्धु के समान प्रेम से बांधने वाली, (माता) माता के समान गर्भ में धारण करके उत्पन्न कर पालने वाली (इयं) यह (मही) बड़ी विस्तृत और आदरणीय, सब अन्नादि भोग्य पदार्थों को देन वाली (पृथिवी) पृथिवी, है । (उत्तानयोः) उतान शयन करने वाले, (चम्वोः) एक दूसरे का परस्पर भोग करने हारे माता पिता के समान ऊर्ध्व उत्कृष्ट रीति से अति विस्तृत (चम्वोः अन्तः) भोग्य भोक्तृ के समान परस्पर संयुक्त सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच में मेरा (योनिः) प्रकट होने का स्थान है । (अत्र) इस स्थान में ही (पिता) सब का पालक जगदीश्वर (दुहितुः) सब भौतिक अन्नादि ऐश्वर्यों को दोहन या पूर्ण करने वाली पृथिवी का (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण कराता है । अथवा (दुहितुः) जलादि देने वाले अन्तरिक्ष में सूर्य ही गर्भ अर्थात् जल से

पूर्ण मेघादि को स्थापित करता है। (२) परमेश्वर प्रकृति पक्षमें—तेजो-मय, सृष्टि उत्पत्ति करने की इच्छा वाला प्रभु ही 'द्यौः' है वही सबका आश्रय जनक, सबका सबको कर्म बंधनों में बांधने वाला है। अथवा विस्तारवती, सर्व निर्मात्री प्रकृति हो माता है। उन दोनों के बीच में मुख्य जगत् की उत्पत्ति का स्थान है। सब ऐश्वर्य दोहन करने हारी वही दुहिता प्रकृति है। वह परमेश्वर ही बड़ी पृथिवी के समान सर्वाश्रय है। वह ईश्वरीय शक्ति से ही प्रादुर्भूत अर्थात् विकार को प्राप्त होती है इससे वह उसकी दुहिता के समान है. उसमें ब्रह्म, गर्भ, हिरण्यगर्भादि को धारण करता है यह संसार उत्पन्न होता है। अथर्व० ९। १०। १२ ॥

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ गीता अ० १४।३-४॥
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥ गी० अ० १३।२०-२२

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

भा०—हे विद्वन्! मैं (त्वां) तुझ से (पृथिव्याः परम् अन्तम्) पृथिवी के उस परले अन्त को (पृच्छामि) पूछता हूं। मैं उस परले अन्त के विषय में (पृच्छामि) पूछता हूं (यत्र) जिस पर (भुवनस्य नाभिः) समस्त संसार की धुरी टिकी है। मैं (त्वा पृच्छामि) तुझ से पूछता हूं (वृष्णः)

उस जल वर्षण करने वाले मेघ के समान सब भूमियों पर उत्पादक वीर्य के निषेक करने वाले (अश्वस्य) सर्व व्यापक सूर्य के समान सब उत्पादक भूमियों के भोक्ता परमेश्वर का (रेतः) वह उत्पादक वीर्य कौन सा है जिससे यह विविध प्रजाएं स्थावर जंगम, नाना लोक लोकान्तर उत्पन्न होते हैं। और (पृच्छामि) पूछता हूं कि (वाचः) वेद वाणी का (परमं) सर्वोत्कृष्ट (व्योम) विशेष रक्षा स्थान, परमाश्रय कौनसा है। उत्तर अगले मन्त्र में स्पष्ट है। अथर्व ९। १०। १३॥

इ॒यं वेदि॒: परो॒ अन्त॑: पृथि॒व्या अ॒यं य॒ज्ञो भुव॑नस्य॒ नाभि॑: ।
अ॒यं सोमो॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ रेतो॑ ब्र॒ह्मायं वा॒चः प॑र॒मं व्यो॑म ३५।२०

भा०—(इयं वेदिः) यह वेदि (पृथिव्याः परः अन्तः) पृथिवी का परला छोर है। (अयं यज्ञः) यह यज्ञ, परमोपास्य परमेश्वर ही (भुवनस्य नाभिः) समस्त संसार का आश्रय है। (अयं सोमः) यह सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक सूर्य रूपमय ओषधि रस अर्थात् ताप धारक पुंज (वृष्णः) सर्व निषेचक व्यापक परमेश्वर का परम वीर्य रूप तेज है। (अयं ब्रह्मा) यह महान् ज्ञानवान् प्रभु ही (वाचः परमं व्योम) वेद वाणी का परम रक्षा स्थान है। यज्ञ परक अर्थ स्पष्ट है। ज्ञानवान् सर्व वेत्ता और सब पदार्थों का लाभ कराने वाला परमेश्वर ही वेदि है। वही मही प्रकृति रूप पृथिवी का परम सर्वोत्कृष्ट पालक और पूरक 'अन्त' अर्थात् उसमें व्यापक चेतन है। अथर्व० ९। १०। १४॥ आधिभौतिक पक्ष में—वेदि पृथिवी है, यज्ञ सर्वाश्रय है, सोम अन्नादि ओषधिवर्ग, उस सूर्य का सार रूप वीर्य है। ब्रह्मा बुद्धि, वाणी का आश्रय है। इति विंशो वर्गः॥

स॒प्तार्धग॒र्भा भुव॑नस्य॒ रेतो॒ विष्णो॑स्तिष्ठन्ति प्र॒दिशा॒ विध॑र्मणि ।
ते धी॒तिभि॒र्मन॑सा॒ ते वि॑प॒श्चित॑: परि॒भुव॒: परि॑ भवन्ति वि॒श्वत॑: ३६

भा०—ज्ञान, या सर्पण करने या व्यापने वाले किरण (अर्धगर्भाः)

समृद्धतम जलांश को अपने भीतर ग्रहण करते हुए (भुवनस्य) प्राणि मात्र को उत्पन्न करने में समर्थ (रेतः) जल को ग्रहण करके (विष्णोः) महान् सामर्थ्य वाले सूर्य के (प्रदिशा) उत्तम शासन से ही (विधर्मणि) विशेष रूप से धारण करने वाले अन्तरिक्ष में (तिष्ठन्ति) स्थित रहते हैं। (ते) वे किरण ही (धीतिभिः) अपने धारण पोषण या जलवर्षण आदि क्रियाओं से और (मनसा) स्तम्भन बल से (विपश्चितः) जल को सञ्चित करने वाले अर्थात् जल से समृद्ध होकर या स्वयं (विपश्चितः धीतिभिः मनसा) शक्तिशाली सूर्य की क्रियाओं और स्तम्भन बल से (परिभुवः) सर्वत्र व्यापकर (विश्वतः परिभवन्ति) सब ओर पहुंच जाते हैं। (२) परमेश्वर पक्षमें—(अर्धगर्भाः) अपने से अधिक शक्तिमान् परमेश्वर के बल ऐश्वर्य को भीतर धारण करने वाले (सप्त) सातों महत्, अहंकार और पञ्च सूक्ष्म भूत (विधर्मणि) विरुद्धधर्मवान् आकाश में भी (विष्णोः प्रदिशा तिष्ठन्ति) परमेश्वर के शासन से ही विराजते हैं। (ते ते विपश्चितः) वे,वे नाना विद्वान् जन अथवा (विपश्चितः) परम ज्ञानवान् परमेश्वर के (धीतिभिः) ध्यान धारणा, कर्मों और (मनसा) ज्ञान बल से (परिभुवः) सब विद्याओं को जानकर (विश्वतः परिभवन्ति) सब पदार्थों को जान लेते हैं। अथवा वे ही सातों (धीतिभिः) ईश्वर की धारण शक्तियां और (मनसा) ज्ञान सामर्थ्य से (विपश्चितः) विद्वानों के समान क्रिया और ज्ञान से युक्त होकर (परिभुवः) सर्वत्र विकृत होकर, सर्वोत्पादक हो (सर्वत्र परि भवन्ति) नाना उत्पन्न पदार्थों के रूप में प्रकट हो रहे हैं।

न वि जा॑नामि॒ यदि॑ वे॒दमस्मि॑ नि॒ण्यः संन॑द्धो॒ मन॑सा चरामि।
य॒दा माग॑न्प्रथम॒जा ऋ॒तस्यादिद्वा॒चो अ॑श्नुवे भा॒गम॒स्याः॥३७॥

भा०—(यत् इव) जिस तरह का (इदम् अस्मि) यह मैं हूं सो (न विजानामि) मैं विशेष रूप से नहीं जानता हूं। मैं तो वस्तुतः

(मनसा) अपने मननशील, मनोरूप अन्तःकरण से (संनद्धः) अच्छी प्रकार बंधा हुआ और (निण्यः) उसी में छिपा हुआ (चरामि) विचरता हूं, या समस्त सुख दुःखादि को भोगता हूं। और (यदा) जब (ऋतस्य) सत्य स्वरूप परमेश्वर के संकल्प से उत्पन्न (प्रथमजाः) सब से प्रथम उत्पन्न ज्ञान या सर्व श्रेष्ठ विकार पञ्च तन्मात्राएं, विषयग्राही इन्द्रिय रूप ज्ञान साधन (मा आ अगन्) मुझे प्राप्त होती हैं (आत् इत्) तभी (अस्याः) इस (वाचः) वाणी के द्वारा (भागम्) भजन करने योग्य परम ब्रह्म अथवा (वाण्याः भागं) वेद वाणी के भाग अर्थात् प्रतिपाद्य सत्य ज्ञान को मैं (अश्नुवे) प्राप्त करता हूं। (अथर्व०९।१०।१५)

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ३८

भा०—यह जीव (स्वधया) अन्न और जल से बने इस शरीर तथा अपने किये कर्मों के फल से (गृभीतः) बद्ध होकर ही (अपाङ्-एति) नीचे अर्थात् तुच्छ योनियों में जाता और उसी प्रकार (स्वधया गृभीतः) कर्मों से बद्ध या शरीर में बद्ध होकर (प्राङ् एति) उत्कृष्ट देहों में जाता है। वह (अमर्त्यः) अविनाशी आत्मा (मर्त्येन) मरण धर्मा, जड़ देह के साथ मिलकर (सयोनिः) एक साथ रहता है। (ता) आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह वे दोनों (शश्वन्ता) परस्पर सदा साथ रहने वाले (विषूचीना) सभी लोकों में साथ ही जाने वाले (वि यन्त) विविध लोकों को प्राप्त होते हैं। सभी जन (अन्यं) उनमें से एक को (नि चिक्युः) भली प्रकार जान लेते हैं और मूढ़ जन (अन्यं) दूसरे आत्मा को (न निचिक्युः) नहीं जान पाते। अथवा—'मर्त्य' मरणधर्मा जीव और 'अमर्त्य' तद्भिन्न परमेश्वर दोनों सदा साथ रहते हैं वे दोनों अनादि, सर्वत्र लोकों में जाने वाले, विविध लोकों में जाने वाले हैं।

उनमें एक आत्मा जीव को तो सभी जानते हैं परन्तु परमेश्वर को मूढ़जन नहीं जान पाते।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ३९

भा०—(ऋचः) ऋग् आदि चारों वेदों के बीच प्रतिपादन किये (यस्मिन्) जिस (अक्षरे) अविनाशी, अनादि, (परमे) सबसे उत्कृष्ट (व्योमनि) विशेष रूप से सब के रक्षक, और आकाश के समान अलेप, निराकार और सर्वव्यापक परमेश्वर में (विश्वे देवाः) सब तेजोमय, सूर्यादि लोक और समस्त विद्वान् और समस्त व्यवहार योग्य पदार्थ सूर्य में किरणों के समान (अधि निषेदुः) आश्रय पा रहे हैं (यः) जो अविद्वान् पुरुष (तत् न वेद) उसको नहीं जानता वह (ऋचा) ऋग् आदि वेदों से (किम् करिष्यति) क्या करेगा ? क्या फल प्राप्त कर सकता है। (ये इत्) जो विद्वान् भी (तद् विदः) उस परम वेद्य, वेद प्रतिपाद्य परम ब्रह्म और सत् कारण, एवं अमर्त्य तत्व आत्मा को (विदुः) जान लेते हैं (ते इमे) वे ही ये (सम् आसते) उस आनन्दमय परमेश्वर की सम्यग् ज्ञान पूर्वक उपासना करते हैं। उपासना, यज्ञादि कर्म परमेश्वर के परम तत्व को न जानकर किये हुए निष्फल हैं। अज्ञानी के मुख से वेद ऋचा का उच्चारण मात्र निष्फल है। उसको जान कर ही विद्वान् उसकी ऋचाओं द्वारा उत्तम उपासना कर सकता है। इसलिये श्रुति वाक्यों से श्रवण करके उपपत्तियों द्वारा मनन कर, योग साधनाओं से उसका साक्षात् कर, वेद द्वारा उसका सेवन करे। अथर्व० ॥

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥४०॥२१॥

भा०—हे (अघ्न्ये) अविनाशशीले ! (सुयवसात्) जिस प्रकार

गौ उत्तम तृण आदि खाने हारी होकर (शुद्धम् उदकम्) शुद्ध जल पीती और (तृणम्) तृण खाती और (विश्वदानीं आचरन्ती भगवती भवति) समस्त संसार को दूध आदि पौष्टिक पदार्थ और कृषि आदि द्वारा अन्न प्रदान कर ऐश्वर्यसुख से पूर्ण होती है उसी प्रकार हे (अघ्न्ये) कभी नाश न करने वा न होने योग्य ! अविनाशिनी ! परमेश्वरी शक्ते ! तू (सुयवसात्) समस्त उत्तम 'यवस' अर्थात् प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य सुखों का स्वयं प्राप्त करने और अन्यों को प्राप्त कराने वाली है। तू सदा (हि) निश्चय से (भगवती) सेवने योग्य ऐश्वर्यों की स्वामिनी (भूयाः) बनी रह। (अथो) और (वयं) हम (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् बनें। (तृणम् अद्धि) गौ जिस प्रकार तृण खाती है उसी प्रकार छेदन करने योग्य तुच्छ देह बन्धन एवं तुच्छ सांसारिक दुखों को खाजा, नष्ट कर और जिस प्रकार (विश्वदानीं) गौ सदा (आचरन्ती) सर्वत्र विचरण करती हुई (शुद्धम् उदकम्) शुद्ध जल पान करती है उसी प्रकार यह परमेश्वरी शक्ति (विश्वदानीं आ चरन्ती) सर्वदा, सर्वत्र व्यापती हुई अथवा सबको सब प्रकार के सुखैश्वर्य प्रदान करती हुई (शुद्धम् उदकम्) विशुद्ध ज्ञान रस को पान करती या पालन करती या अन्यों को पान कराती है। (२) इसी प्रकार विदुषी स्त्री भी आदरणीय होने से 'अघ्न्या' है वह भी पीड़ित करने योग्य नहीं है, वह उत्तम 'यवस' अन्न और भोग्य पदार्थों का आहार करे। ऐश्वर्य वाली हो, उसके द्वारा उसके पति, भ्राता आदि भी सुख ऐश्वर्य के भागी हों। वह तृण अर्थात् रोग हारी वानस्पतिक पदार्थ अन्नादि खावे और शुद्ध जल का पान करे और स्वयं उत्तम सुख भोगे और ज्ञान रस का पान करे, करावे। सब को दान आदि दे। अन्य पक्षों का स्पष्टी करण देखो अथर्व का० ७। ७३। ११॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥ ४१॥

भा०—जिस प्रकार ध्वनि या शब्द करने वाली मध्यम लोक, अन्तरिक्ष की वाणी विद्युत् (मिमाय) ध्वनि करती है वह (सलिलानि तक्षती) जलों को उत्पन्न करती, (एकपदी) मेघ रूप एक आश्रय में रहकर 'एक पदी' (द्विपदी) मेघ और वायु के आश्रित रहने से 'द्विपदी' और (चतुष्पदी) चारों दिशाओं में व्यापने से 'चतुष्पदी' और (अष्टापदी) चार दिशा और चार उपदिशाओं में व्यापने से 'अष्टापदी' और (नवपदी) ऊपर की ऊर्ध्व दिशा में भी व्यापक होने से 'नवपदी' (बभूवुषी) होती हुई (सहस्राक्षरा) सहस्रों प्रकार से जल प्रस्रावण करती हुई (परमे व्योमन्) परम, आकाश में चमकती है उसी प्रकार परमेश्वर की वेद वाणी (गौरीः) ब्रह्म ज्ञान का उपदेश करने वाली और ज्ञानवान् विद्वानों को रमण कराने वाली होकर वह (सलिलानि) ज्ञान, आनन्द रसों को या व्यापक तत्वज्ञानों को उत्पन्न करती है। वह (एकपदी) एक मात्र परम परमेश्वर का ज्ञान कराने से 'एकपदी', गुरु शिष्य दो द्वारा ज्ञान करने कराने योग्य होने से 'द्विपदी', चारों वेद में आश्रित या चारों आश्रमों द्वारा सेवन योग्य होने से 'चतुष्पदी' है। चारों वेदों और चार उपवेदों में व्यापक होने या चार वर्ण, चार आश्रमों की व्यवस्थापक और उनको ज्ञान और ऐश्वर्य देने वाली होने से 'अष्टापदी', वही एक मात्र नवें ब्रह्म के आश्रित होने से 'नवपदी' है। और सहस्रों प्रकार से 'अक्षर' परमेश्वर का वर्णन करने और सहस्रों अक्षर अर्थात् ककारादि वर्णराशि युक्त होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह (परमे व्योमन्) परम रक्षा स्थान ओंकार प्रणव में आश्रित है। वह (मिमाय) सबको उपदेश करती, ज्ञान प्रदान करती और अज्ञान का नाश करती, सन्मार्ग में प्रेरित करती है। (२) अथवा—'मुखस्थ वाणी सरस्वती' विद्वानों में रमण करने से गौरी, ज्ञान रसों या संञ्चारी भावों को उत्पन्न करती है। प्राण रूप एक चरण वाली, अथवा अव्याकृत रूप से एक गद्यमय स्वरूप होकर एकपदी, या एक ओंकार रूप होने से एकपदी है।

सुप्, तिङ् भेद से द्विपदी, वा मनुष्य वाणी होने से द्विपदी, नाम, आख्यात, उपसर्ग निपात भेद से वा अव्याकृत रूप से चौपायों में भी व्याप्त होने से 'चतुष्पदी', सम्बोधन सहित सात विभक्तियों द्वारा जानने योग्य होने से वा अष्टविध प्राणि-सर्ग में व्यापक होने से 'अष्टापदी', नव विध वैकारिक सर्ग में व्यापक होने से, वा अव्यय सहित पूर्वोक्त अविभक्ति युक्त होने से 'नवपदी' होकर सहस्रों अक्षरों वाली होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम सर्वोत्कृष्ट विशेष ज्ञानवान् पुरुष में विकास को प्राप्त होती है। (३) इसी प्रकार विदुषी (सलिलानि तक्षती) जल के समान मधुर शान्ति कारक वचनों को उत्पन्न करती हुई (एकपदी) एक वेद का अभ्यास करने से एकपदी, दो वेद का अभ्यास करने से द्विपदी, चारों वेदों का अभ्यास करने से चतुष्पदी, उपवेदों सहित वेदों का अभ्यास करने से अष्टापदी, व्याकरणादि षडङ्ग सहित या इतिहासादि पञ्चम वेद के अभ्यास से नव-पदी, होकर (सहस्राक्षरा) सहस्रों अनेक अक्षय सामर्थ्यों या बलवीर्य युक्त अक्षय, अच्युत ब्रह्मचर्य का धारण करने वाली होकर (गौरीः) वेद वाणियों में रमण करने वाली अन्य अनेक विदुषियों को भी (मिमाय) उपदेश करे। अथर्व० ९ । १० । २१ । 'गौरिन् मिमाय'० 'सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिः स्तस्याः समुद्रा अधि विक्षरन्ति' इत्यादि पाठ भेद है। वहां भुवन का परिपाक या परिणाम करने वाली परमेश्वरी शक्ति का वर्णन है। उस पक्ष में—वह समस्त गतिशील लोकों में व्यापक होने से 'गौरी' है। 'आपः' अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु 'सलिलों' को प्रथम विकृत करती, ब्रह्म मात्र आश्रय होने से एकपदी, चर अचर या प्रकृति पुरुष भेद से द्विपदी, स्थूल चार भूतों में परिणत होने से 'चतुष्पदी' अष्टधा प्रकृति में व्यक्त होने से 'अष्टापदी' उक्त आठों में नवें जीव की गणना कर उसमें भी व्यापने से 'नवपदी' सहस्रों लोकों में अक्षय बलवती होकर व्यापने से सहस्राक्षरा है, भुवन अर्थात् संसार का काल द्वारा परिपाक करने या प्रपञ्च रचने से 'पङ्क्ति' है।

प्रमाण—जैसे 'एकपदी'—अज एकपात् । वेद ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ गी०अ० १३।१३ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते । गी०अ० १३।१७ ॥

'द्विपदी'—प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि । गी०अ० १३ । १९

'चतुष्पदी'—प्रकृतिं पुरुषञ्चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेवच । गी०अ० १३ । ११

'अष्टापदी'—भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा । गी० अ० ७ । ९ ॥

'नवपदी'—अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धिमेपराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् । गी० अ० ७ । ५ ॥

सहस्राक्षरा—एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । गी०अ०७ । ६ ॥

विशेष विरण देखो अथर्ववेद आलोक भाष्य का० ९ । १० । २१ ॥

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥

भा०—जिस प्रकार (तस्याः) उस विद्युत् से आघात खाकर (समुद्राः) जलों को बहाने वाले मेघ (अधि वि क्षरन्ति) बहुत अधिक मात्रा में और विशेष रूप से बरसते हैं । (तेन) उस वर्षा से (प्रदिशः चतस्रः) चारों दिशाओं में बसने वाले जीव गण (जीवन्ति) अन्न द्वारा जीवन धारण करते हैं । (ततः) उस मध्यम वाणी, मेघमयी विद्युत् से ही (अक्षरं क्षरति) जल बरसता है और (तत्) उसी के आश्रय (विश्वम्) समस्त संसार (उप जीवति) अपना जीवन धारण करता है । उसी प्रकार (तस्याः) उस परमेश्वरी शक्ति से (समुद्राः) समुद्र के समान अथाह ऐश्वर्यों को बहाने वाले (वि क्षरन्ति) विविध ऐश्वर्य बहाते हैं उससे (चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति) चारों दिशाओं में

स्थित लोक जीते हैं, (ततः) उसी से 'अक्षर' अक्षय जीवन शक्ति प्राप्त होती है जिसको समस्त संसार या (विश्वम्) उसमें प्रविष्ट जीव संसार जीवन प्राप्त करता है ।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ मनु० १२ । १४ ।

पंच भूतों से उत्पन्न एवं पञ्चेन्द्रियों से ग्राह्य भोग्य ऐश्वर्य ही अक्षय समुद्र हैं । उन्हीं का जीवगण अनादि काल से भोग कर रहे हैं (२) वाणी से समुद्र रूप शब्दों के सागर उत्पन्न होते हैं, सब प्राणी गण उसी वाणी पर जीते हैं । अथवा (चतस्रः प्रदिशः) उत्तम उपदेश देने वाली चार वेद वाणियाँ उसी वाणी पर आश्रित हैं । उसी वाणी से (अक्षरं) अक्षर अविनाशी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है जिसका (विश्वम्) उसमें प्रविष्ट अभ्यासी जीव, गुरु की उपासना और गुरुशुश्रूषा द्वारा भृत्य के समान ज्ञान प्राप्त करता है ।

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

भा०—मैं (आरात्) समीप से (धूमम्) सब बाधाओं को कंपा कर दूर करने वाले, (शकमयम्) शक्तिमान् को (अपश्यम्) देखता हूं कि वह (अवरेण) इस निकृष्ट रूप (विषूवता) फैलने वाले (एना) इस यज्ञाग्नि से उत्पन्न धूम से (परः) कहीं उत्तम है । उस उत्तम शक्तिमय, ब्रह्मचर्य पालन रूप, सर्व प्रकम्पी धूम द्वारा (वीराः) सर्व विद्याओं में कुशल और विविध विद्याओं का अच्छी प्रकार उपदेश प्रवचन करने हारे आचार्य एवं गुरुजन (उक्षाणं) विद्याओं के वहन करने और मेघ के समान अन्यों के देने में समर्थ, (पृश्निम्) सूर्य के समान तेजस्वी और व्रतपालक ब्रह्मचारी पुरुष को (अपचन्त) तप द्वारा परिपक्व करते हैं (तानि धर्माणि) ये धर्म, ये उत्तम कर्मानुष्ठान के प्रकार (प्रथ-

मानि) सब से प्रथम, सर्व श्रेष्ठ (आसन्) हैं। (२) ब्रह्म और सृष्टि पक्षमें—अति दूर (शकमयं) शक्तिमान् (धूमम्) धूम के समान जो नीहार (Nebulea) को मैं वैज्ञानिक (अपश्यम्) देख रहा हूं (एना) इस (अवरेण) अपेक्षया समीप (विषूवता) चारों दिशाओं में फैलने या ग्रह, उपग्रह और आकाशीय पिण्डों को उत्पन्न करने के पदार्थ से युक्त धूम से भी (परः) परे उससे भी उत्कृष्ट या सूक्ष्मतर (वीराः) विविध दिशाओं में गति करने वाले पदार्थ (उक्षाणं) सब भावी पिण्डों को वहन करने और अन्यों में बल सेचन करने वाले (पृश्निम्) महान् सूर्य को (अपचन्त) परिपक्क, परिपुष्ट और अधिक प्रतापी बना रहे हैं। (तानि) वे नाना प्रकार (धर्माणि) जगत् को धारण करने वाले बल या नियम या तत्त्व (प्रथमानि) सृष्टि के पूर्व में (आसन्) विद्यमान रहे। (३) परमेश्वर पक्षमें—यह जीव या यह संसार स्पन्दन शील होने से, 'धूम' और शक्तिमय होने से 'शकमय' है। वह अति समीप है। स्वयं उत्पन्न होने और विविध प्रजाओं के उत्पन्न करने से 'विषुवान्' है। उससे भी परे उत्कृष्ट सर्व धारक, सब को बल देने वाला 'पृश्नि' आदित्य या मेघ के समान, सर्वपालक परमेश्वर है उसको विद्वान् जन (अपचन्त) प्राप्त करने के लिये तप और योग करते हैं। वे ही धर्म पुण्य कार्य सर्व श्रेष्ठ हैं। (अथर्व० ९। १० २५)

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥

भा०—जिस प्रकार (त्रयः केशिनः) तीन केश वाले जटिल पुरुष हों वे तीनों (ऋतुथा विचक्षते) ऋतु के अनुसार अपना २ कार्य देखते हों (एकः एषाम्) इनमें से एक (संवत्सरे वपते) संवत्सर में बीज बोये, (एकः विश्वं अभि चष्टे) और एक समस्त क्षेत्र को देखे, रखवारी करे। और (एकस्य ध्राजिः दृश्यते) तीसरे एक की वेग से चलती धार या

दरांती या कांपता सूप आदि दीखे और उसका रूप न दीखे उसी प्रकार इस विश्व में—(त्रयः केशिनः) तीन केश अर्थात् किरणों और अपने २ ज्ञापक चिन्हों सहित पदार्थ विद्यमान हैं जो क्रम से विद्युत्, सूर्य, और वायु हैं। वे तीनों (ऋतुथा) अपनी २ ऋतु के अनुसार (विचक्षते) भिन्न २ विशेष लक्षणों से अपने आप को दिखलाते, बतलाते हैं (एषाम् एकः) इनमें से एक विद्युत् वर्षते मेघ के साथ प्रकट होता है, वह (संवत्सरे) वर्ष में एक बार (वपते) समस्त ओषधियों और प्राणियों के बीजों को वपन करता है। वे मौसम में उत्पन्न होते हैं। उनमें से (एकः) एक सूर्य ज्येष्ठ आदि मास में (विश्वम्) समस्त विश्व को (शचीभिः) किरणों से (अभि चष्टे) सब प्रकार से देखता और प्रकाशित करता है। और (एकस्य) तीसरे वायु का (ध्राजिः दृश्यते) वेग तो देखने में आता है, वह पतझड़ में वेग से बहता है, परन्तु उसका (रूपं न दृश्यते) रूप नहीं देख पड़ता। वायु का रूप नहीं होता। (२) इसी प्रकार विश्व के प्रति परमेश्वर के तीन रूप हैं वे (ऋतुथा) अपने काल गति के अनुसार संसार को दीखते हैं। पहिला बीजों के समान सबको (वपते) उत्पन्न करता है, दूसरा सब प्रकार (शचीभिः) कर्मों से, शक्तियों से (अभि चष्टे) देखता, पालता है। तीसरा काल संहारकारी रूप उसका (ध्राजिः) वेग दीखता है रूप नहीं देखता, काल होकर सबका संहार करता है। अथर्व० ९। १०। २६॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥

भा०—(वाक्) वाणी के (चत्वारि) चार (पदानि) जानने योग्य स्वरूप (परि मितानि) जाने गये हैं। (ये) जो (मनीषिणः) मन को वश करने हारे बुद्धिमान्, (ब्राह्मणा) वेदज्ञ विद्वान् हैं वे (तानि)

वाणी के इन चारों स्वरूपों को (विदुः) भली प्रकार जानते, उनका साक्षात् करते हैं। (त्रीणि) उनमें से तीन रूप (गुहा निहिता) गुहा अर्थात् बुद्धि में स्थित रहकर (न इंगयन्ति) प्रकट नहीं होते। और (वाचः) वाणी के (तुरीयं) चौथे स्वरूप को (मनुष्याः) मनुष्य (वदन्ति) बोलते हैं।

वाणी के वे चार स्वरूप कौन २ से हैं इसमें बहुत से मत भेद हैं जिनका संक्षेप से उल्लेख करते हैं। (१) भू, भुवः, स्वः और प्रणव ओ३म् इन चार पदों में समस्त वाणी परिमित है। (२) मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिक व्यवहार और काव्यादि भाषा। (३) ऋग्, यजुः, साम और चौथी व्यावहारिक भाषा। (४) सर्प, पक्षी, क्षुद्र सरीसृपों और चौथे मनुष्यों की भाषा। (५) पशुओं, वाद्य यन्त्रों, मृगों और अपने आत्मा की भाषा। (६) परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। इन में परा मूला-धार में सूक्ष्म नाद रूप से रहती है, हृदय चक्र में वही पश्यन्ती है, बुद्धि में आकर वह मध्यमा है, मुख में आकर वैखरी है। (७) ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार वाक् उत्पन्न होकर चार प्रकार से हो गयी। तीनों लोकों में तीन प्रकार की और जंगम प्राणियों में चौथी प्रकार की। तीनों लोकों में अग्नि, विद्युत्, दीप्ति रूप में और पशुओं में ध्वनि रूप में। (८) वाणी के ४ रूप हैं नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। नाम संज्ञासञ्ज्ञी सम्बन्ध का द्योतक है, क्रिया का द्योतक आख्यात, विशेषण का द्योतक उपसर्ग है और अव्यय शब्द अर्थात् शब्द को निपात कहा जाता है। अथवा कोई शब्द क्यों, किसी भाव या पदार्थ के लिये कहा इस तर्ककी अपेक्षा न करके केवल नाना भाव द्योतक होकर शब्दों का प्रयोग 'निपात' कहाता है।

इन्द्रं मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒रथो॑ दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न्।
एकं॒ सद्विप्रा॑ बहु॒धा व॑द॒न्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः॥४६॥२२॥

भा०—विद्वान् लोग (इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निम् आहुः) इन्द्र, मित्र

और वरुण को ही 'अग्नि' कहते हैं। (अथो) और (सः) वह ही (गरुत्मान्) गरुत्मान् और (दिव्यः सुपर्णः) दिव्य 'सुपर्ण' कहाता है। (विप्राः) विद्वान् लोग (एकं सत्) एक सत् पदार्थ को ही (बहुधा वदन्ति) बहुत तरह से कहते हैं, उसको ही (अग्निं) अग्नि, (यमं) यम (मातरिश्वानम्) और मातरिश्वा नाम से कहते हैं। परमेश्वर ऐश्वर्य-वान् होने से 'इन्द्र' है सबका स्नेही और मृत्यु से त्राणकारी होने से 'मित्र' है। सर्व श्रेष्ठ और दुःख निवारक होने से वरुण, तेजोमय होने से 'दिव्य' है, भली प्रकार पालनकारी और पूर्ण होने से 'सुपर्ण' है। महान् आत्मा होने से 'गरुत्मान्' है। वह सब से पूर्व और ज्ञानवान् होने से 'अग्नि', सर्व नियन्ता होने से 'यम' जगन्निर्मात्री प्रकृति में और ज्ञाता आत्मा में भी सूक्ष्मतया व्यापक और गति दाता होने से 'मातरिश्वा' है। विद्युत् प्राण, जल, समुद्र, सूर्य, अग्नि, मृत्यु, वायु आदि दिव्य पदार्थ भी भिन्न२गुणों से ही इन्द्रादि नामों से कहे जाते हैं। और उनमें भी वे गुण परमेश्वर से प्राप्त होने से वे सब नाम परमेश्वर में ही मुख्यतया अधिक उचित हैं। अन्यों के वे गौण नाम हैं। वह परमेश्वर अद्वितीय होने से 'एक' है। सर्वत्र व्यापक, सर्वाश्रय, बलरूप एवं कारण होने से 'सत्' है। सब उसीकी नाना नामों और अलंकारोंसे स्तुति करते हैं। विशेष प्रमाण देखो अथर्व० ९। १०। २८॥ इति द्वाविंशो वर्गः॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते॥ ४७॥

भा०—(कृष्णं) काले, श्याम वर्ण के (नियानं) नीचे की तरफ़ आने वाले, जल से भारी मेघ को (हरयः) ले जाने वाले (सुपर्णाः) उत्तम वेग से जाने वाले, वायुगण (अपः) जलों के सूक्ष्मांशों को (वसानाः) धारण करते हुए जब (दिवम्) आकाश की ओर (उत् पतन्ति) उठते हैं (ते) वे (ऋतस्य सदनात्) जल के स्थानों से (आ ववृत्रन्) सब ओर

फैल जाया करते हैं और बाद में (घृतेन) आकाश से गिरते हुए जल से (पृथिवी) विशाल भूमि (वि उद्यते) विशेष रूप से गीली हुआ करती है। इसी प्रकार (सुपर्णाः) उत्तम ज्ञानवान् जीवगण (अपः वसानाः) प्राणमय लिंग शरीरों को धारण करते हुए (कृष्णं नियानं हरयः) काले अशुक्ल, नीचे गिराने वाले पाप कर्म को दूर करने हारे होकर (दिवम्) ज्ञान प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त होते हैं वे (ऋतस्य सदनात्) सत्य ज्ञानमय प्रकाश के आश्रयस्थान से पुनः लौटते हैं और फिर (घृतेन) उनके तेजोमय ज्ञान से (पृथिवी) यह भूमि सिंचती हैं। वे ज्ञानोपदेश करते हैं। अथर्व० ९।१०।२२॥

द्वाद॑श प्र॒धय॑श्च॒क्रमेकं॒ त्रीणि॒ नभ्या॑नि॒ क उ॒ तच्चि॑केत।
तस्मि॒न्त्सा॒कं त्रि॒श॒ता न श॒ङ्कवो॑ऽर्पि॒ताः ष॒ष्टिर्न च॑लाच॒लास॑ः ४८

भा०—जिस प्रकार किसी यन्त्र में (द्वादश प्रधयः) १२ परिधिएं हों, (एकम चक्रम्) और एक ही चक्र हो। और (त्रीणि नभ्यानि) तीन धुरे पर लगने वाले पट्ठे हों। (कः उ तत् चिकेत) उसको कोई विरला ही ठीक २ जान सकता है। उस चक्र में (त्रिशता साकं षष्टिः) तीन सौ साठ (शङ्कवः न) खूंटियों के समान (चल-अचलासः) चलने और न चलने वाली कलाएं (अर्पिताः) लगी हैं। उसी प्रकार काल चक्र में १२ मास १२ परिधियें हैं सवंत्सर का एक चक्र है। उससे तीन मुख्य ऋतुएं तीन धुरे पर स्थित तीन पट्टे हैं। उससे ३६० दिनरात्रि रूप ३६० शंकु के समान कला हैं, जिनके घुमाते ही रात्रि दिन होता है। ब्रह्म पक्ष में—पांच स्थूल, पांच सूक्ष्म, महत् अहंकार ये १२ परिधि हैं। एक ब्रह्म कर्त्ता 'चक्र' है। तीन गुण संसार में बन्धनकारी होने से 'नभ्य' हैं। ३६० संवत्सर की अहोरात्र रूप प्राण 'कलाएं' हैं। अध्यात्म में १२ प्राण हैं। एक आत्मा कर्त्ता है। तीन गुण बांधने वाले हैं। ३६० धारक प्रयत्न, कला रूप हैं।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवेकः ॥४९॥

भा०—(स्तनः शशयः) जिस प्रकार उत्तम दुग्ध दात्री माता का स्तन बालक को सुख से सुला देने वाला, शान्तिदायक, (मयोभूः) सुख प्रद हो उसे पुष्ट करता है, उसी प्रकार हे (सरस्वति) वेदवाणि ! और वेद वाणी के जानने वाले विद्वन् और उत्तम ज्ञानमय परमेश्वर ! (यः) जो (ते स्तनः) तेरा मेघ के समान गर्जनशील, उपदेशप्रद, ज्ञानमय स्वरूप, (शशयः) उपासक को शान्ति देने वाला है और (यः) जो (भूः) सुख और आनन्द देने वाला है, (येन) जिससे (विश्वा) समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य उत्तम २ ज्ञानों और गुणों को (पुष्यसि) पुष्ट करता है (यः) जो (रत्नधा) रमणीय सुखों को धारण करता (यः वसुविद्) अपने में वसने वाले शिष्यों और भक्तिमान् प्रिय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करने और उनको ऐश्वर्य देने वाला है । (यः सुदत्रः) जो सुख कल्याण का देने वाला है (तम्) उसको इस जगत् में (धातवे) सबके पोषण के लिये (कः) प्रकट करता है राष्ट्र पक्ष में—देखो यजुर्वेद अ० ३८ । ५ ॥ विदुषी स्त्री या माता और द्यौः पक्ष में देखो अथर्व० का० ७ । १० । १ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥५०॥

भा०—(देवाः) देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले, दानशील, व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष (यज्ञेन) अग्नि आदि पदार्थों से होने योग्य, या दान, परस्पर सत्संग और उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मों से (यज्ञम्) उपास्य परमेश्वर की (अयजन्त) उपासना करते तथा (यज्ञम् अयजन्त) प्राप्त करने योग्य धर्मार्थ, काम, मोक्ष और पुरुषार्थों की साधना करते हैं । (तानि) वे नाना प्रकार के (धर्माणि)

ब्रह्मचर्य अनुष्ठान आदि कर्त्तव्य (प्रथमानि) सबसे उत्तम (आसन्) हैं। (यत्र) जिन कर्त्तव्यों के बीच में रहकर (पूर्वे) प्रारम्भ के प्रथमाभ्यासी साधनाशील (देवाः) उत्तम पद की कामना करते हुए (सन्ति) रहते हैं और जिन कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहकर ही (ते) वे पूर्वोक्त साधक पुरुष (महिमानः) बड़े सामर्थ्यवान् होकर (नाकं) सब प्रकार के दुःखों से रहित मोक्ष तक को (सचन्त) प्राप्त होते हैं। विशेष सप्रमाण विवेचन देखो अथर्व०७।५।१॥

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः॥ ५१॥

भा०—(एतत्) यह (उदकम्) जल जिस प्रकार (उत् एति च) ऊपर भी जाता है (अहभिः) कुछ दिनों में (अव च एति) नीचे भी आ उतरता है यह (समानम्) दोनों अवस्थाओं में एक समान रहता है। नीचे कैसे आता है ? (पर्जन्याः) जल को बरसाने वाले मेघ (भूमिम्) भूमि को (जिन्वन्ति) संतृप्त करते हैं और (अग्नयः) अग्निएं या विद्युतें (दिवं) अन्तरिक्ष को जल से तृप्त करती हैं उसी प्रकार यह जीव भी जल के समान दोनों दशाओं में एक समान ही रहता है अर्थात् कुछ दिनों में वह ऊपर जाता है, उत्तम लोक को प्राप्त करता है। कुछ दिनों तक वह पुनः नीचे लोकों को भी प्राप्त करता है। जिस समय जीव नीचे, भूमि आदि लोक में आता है तब (पर्जन्याः) उसके उत्पन्न होने में उत्तम कारण, प्राण आदि उसके (भूमिं) उत्पत्ति को पुष्ट करते हैं और जब (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (दिवं) उसके ज्ञान को जिन्वन्ति बढ़ाते हैं तब वह (उत् च एति) उत्तम गति को भी प्राप्त करता है।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि॥५२॥२५॥

भा०—(दिव्य) आकाश में स्थित, तेजोमय, (सुपर्णं) उत्तम

रश्मियों से युक्त, (वायसं) अति वेग से गमन करने वाले, (बृहन्तम्) सब की वृद्धि करने वाले और स्वयं महान्, (अपां गर्भम्) जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण कर लेने वाले, (दर्शतम्) सबको तेज से दिखाने वाले, स्वयं दर्शनीय, (ओषधीनाम्) ओषधियों को (अभी-

पतः) ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्राप्त होने वाली (वृष्टिभिः) जलों से (तर्पयन्तं) तृप्त करने वाले (सरस्वन्तम्) जलों से पूर्ण मेघ या सूर्य को जिस प्रकार सभी आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार मैं साधक (दिव्यं) अति कमनीय, कान्तिमय, दिव्य, (सुपर्णः) उत्तम पालनकारी और ज्ञानमय, (वायसं) ज्ञान और बल में सबसे महान्, (बृहन्तम्) सबसे बड़े (अपां गर्भम्) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी अपने वश रखने हारे, (दर्शतम्) परम दर्शनीय, अति सुन्दर, (ओषधीनाम्) देह में ताप या जीवन को धारण करने वाले चराचर जगत् को (अभीपतः) सब तरफ की (वृष्टिभिः तर्पयन्तम्) मेघ के समान सुखों की जल धाराओं से तृप्त, एवं आनन्दित करते हुए (सरस्वन्तम्) उत्तम ज्ञान और कर्म के भण्डार, समुद्र के समान अगाध परमेश्वर की (अवसे) ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये (जोहवीमि) उपसना करता हूं, उसको पुकारता और उसका आश्रय लेता हूं। इति त्रयो विंशो वर्गः ॥

[१६५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ ११, १२ विराट् त्रिष्टुप् । २, ८, ६ त्रिष्टुप् । १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५, पङ्क्तिः । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः सनीडाः सं मिमिक्षुः) समान अन्तरिक्ष

में रहकर ही मेघ अच्छी प्रकार भूमि पर जल वृष्टि करते हैं उसी प्रकार (मरुतः) वायु के समान सदा उत्तम मार्ग से चलने वाले, आलस्य रहित, विद्वान् मनुष्यो ! एवं छात्र जनो ! आप सब लोग (सवयसः) एक समान वीर्य, ज्ञान और अवस्था वाले (सनीलाः) एक ही स्थान पर रहते हुए (कया शुभा) किस प्रकार उत्तम गति से (संमिमिक्षुः) परस्पर को बलवान् बनाओ ? इस बात को अच्छी प्रकार जानो । उत्तर– आप लोगों में एक दूसरे की बल वृद्धि सदा (समान्या) समान क्रिया, समान रहन सहन, वेष, अहार, विहार, चेष्टा आदि से होनी सम्भव है । (एते) ये शिष्य आदि जन (कुतः) किस २ देश से (एतासः) आ २ कर और (कया मती) किस विचार या संकल्प से प्रेरित होकर (वृषणः) स्वयं बलवान् होकर भी (शुष्मं) अधिक बलशाली और प्रवृद्ध ज्ञानवान् पुरुष को (अर्चन्ति) आदर पूजा देते और उसके अधीन रहते हैं ? उत्तर–(वसूया) उसके अधीन शिष्य बन कर रहने की इच्छा, या वसु अर्थात् ब्रह्मचारी होने की इच्छा से ।

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥

भा०—(मरुतः कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः) वायु गण किसके बड़े बल को या जलों को प्राप्त करते हैं ? (अन्तरिक्षे ध्रजतः श्येनान् इव कः आववर्त्त) घोड़ों या बाजों के समान, वेग से जाते हुए उनको कौन लौटा सकता है ? (केन महामनसा) किस बड़े भारी स्तम्भन बल से वे ठहर जाते हैं ? उत्तर–(कस्य) उस प्रजापति परमेश्वर या सब कर्मों के कर्त्ता सूर्य के । (२) उसी प्रकार हे (युवानः मरुतः) युवा विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कस्य ब्रह्माणि) किसके पास से ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्रों के ज्ञान और नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को (जुजुषुः) प्राप्त कर सकते हो ? (अन्तरिक्षे श्येनान् इव ध्रजतः) अन्तरिक्ष में वेग से जाते

हुए बाजों के समान भोग्य व्यसनों या विषयों के प्रति जाते हुए तुम लोगों को (अध्वरे) अहिंसामय, शान्तिमय वेदाध्ययनादि यज्ञ कार्य में (कः) कौन (आववर्त्त) तुम्हें वेदाभ्यास कराता है ? (केन महा मनसा) किस बड़े ज्ञानवान् पुरुष से हम सब मनुष्य (रीरमाम) अति आनन्द लाभ कर सकते हैं। उत्तर—(कस्य) उस प्रजापति तुल्य, सर्वोपदेशक गुरु से वेद ज्ञान प्राप्त करें, वही हमें सत्पथ में चलावे, उसी से हम सुप्रसन्न रहें। अध्यात्म में—(१) मरुतः-प्राण गण हैं। एक ही देह में आश्रित रहकर समान वायु की चेष्टा से देह में आरोग्य सुख वर्षण करते हैं। (वसूया) वसु आत्मा की शक्ति से ही सब बलवान् मुख्य प्राण के आश्रय रहते हैं। (२) वे उसीके बलों को सेवते हैं। वही उन पर वश करता है। उसी के ज्ञान और स्तम्भन बल से देह में रमण करते हैं।

कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ अ॒स्मे ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (माहिनः) सबसे अधिक महान्, पूजनीय होकर (एकः) एक, अद्वितीय होकर (कुतः) किस बल पर (यासि) गमन करता है ? हे (सत्पते) सज्जनों के पालक (ते इत्था किम्) तेरा ऐसा बल क्यों कर है ? हे विद्वन् ! तू (समराणः) हमसे मिलता हुआ ही (संपृच्छसे) अच्छी प्रकार कुशल आदि प्रश्न किया करता है। अतः हे (हरिवः) उत्तम आकर्षक गुणों से युक्त, दुखहारी साधनों से युक्त ! वेगवान् रथ आदि साधनों से सम्पन्न ! वा मनुष्यों के स्वामिन् ! (ते) तेरा (यत्) जो भी (अस्मे) हमारे लिये हितकारी वचन हो वह (शुभानैः) उत्तम २ उपायों से (नः) हमें (वोचेः) उपदेश कर।

ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शं सु॒तासः॒ शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥४॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (मे शुष्मः अद्रिः) मेरा बलवान् व मेघ के समान ज्ञान जलों की वर्षा करने वाला उपदेश (शं इयर्त्ति) शान्ति को प्राप्त कराता है । और (मतयः) मनन शील (सुतासः) पुत्र और शिष्य गण (मे) मेरे (ब्रह्माणि) ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञानों और ऐश्वर्यों को, पिता के धनों के समान (आशासते) चाहते हैं (इमा उक्था) इन उत्तम वचनों को सदा (प्रति हर्यन्ति) ले लेना चाहते हैं । (ता) उन सबको (हरी) ज्ञानवान् और कर्मनिष्ठ दोनों प्रकार के गुरु शिष्य जन आप लोग ज्ञान और धनैश्वर्य के प्राप्त करने योग्य होकर रथ को दो अश्वों के समान (नः अच्छ वहतः) हमें अच्छी प्रकार प्राप्त कराओ ।

अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्यु॒जा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व१॒ः शुम्भ॑मानाः ।
महो॑भि॒रेताँ॒ उप॑ युज्महे॒ न्विन्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑॥५॥२४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (हि) क्योंकि तू (नः) हमारे (स्वधाम्) 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करने योग्य वृत्ति को (अनु बभूथ) प्रदान करता है (अतः) इस लिये (वयम्) हम सैनिक लोग (तन्वः शुम्भमानाः) देहों को चमकाते और सुशोभित करते हुए और (अन्तमेभिः) अपने समीप के (महोभिः) बड़े २ (स्वक्षत्रेभिः) अपने बलों, सैन्यों और राष्ट्रों सहित (युजानाः) तेरा साथ देते हुए (एतान्) इन समस्त पदार्थों को (उपयुज्महे) हम अपने उपयोग में लेते हैं । अथवा (एतान्) इन गतिशील अश्वों को रथों में लगाते हैं । अध्यात्म में—हे परमेश्वर ! तू हमारे (स्वधाम् अनु बभूविथ) जीवात्मा में भी व्यापक है । हम भीतरी (स्वक्षत्रेभिः) अपने आत्मिक बलों से अपने आपको सुशोभित करते हुए, योग समाधि का अभ्यास करते हुए (एतान्) इन गति युक्त प्राणों को वश में करते हैं ।

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतां स्वधा क्व) वायुओं के बल से जल नहीं उत्पन्न होता और (उग्रः तुविष्मान् वधस्नैः नमयति) विद्युत् ही बलवान् होकर अपने प्रहारों से जल को नीचे गिराता है। उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! हे सैनिको ! (स्या) वह (स्वधा) अन्न आदि राष्ट्र को धारण पोषण करने वाला बल (वः क्व आसीत्) आप लोगों का कहां विद्यमान रहता है ? क्या आप लोगों में रहता है या मुझ सेनापति में ? सुनो (अहम्) मैं (हि) निश्चय से (उग्रः) तीक्ष्णस्वभाव, शत्रु को उद्विग्न करने वाला, सदा शस्त्र बल में विद्युद्-वत् रहने वाला और (तुविष्मान्) बलवान् होकर (वधस्नैः) शस्त्रों के प्रहारों से (विश्वस्य शत्रोः) समस्त शत्रु को (अनमम्) नमा लेता हूं, उनको दबा देता हूं, उनको सिर नहीं उठाने देता हूं।

भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥

भा०—हे (शविष्ठ) हम में सबसे अधिक बलवन् ! हे ज्ञानवन् ! हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृषभ) जलों के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू (अस्मे) हमारे लिये, और हमारे ही (युज्येभिः) परस्पर सहयोग से होने वाले (समानेभिः) एक समान (पौंस्येभिः) पुरुषोचित बलों से ही तू (भूरि चकर्थ) बहुत काम करता है। और (भूरीणि हि) हम बहुत से कार्य (यद् वशाय) जो भी हम (मरुतः) मरुद् गण, सैनिक गण चाहें वह (क्रत्वा) तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से कृणवाम) करने में समर्थ होते हैं।

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रियेण वृत्रं) इन्द्र अर्थात् विद्युत् के बल से सूर्य (स्वेन भामेन तविषः बभूवान्) अपनी उग्रता से बलवान् हो कर (वज्रबाहुः) तेजो रूप विद्युत् वज्र से मेघों को पीड़ित करने वाला होकर (विश्वचन्द्राः अपः सुगा चकर) समस्त संसार को आल्हाद करने वाले जल धाराओं को सुख से नीचे बहा देता है, उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर सैनिको ! मैं (स्वेन भामेन) अपने क्रोध, उग्रता से (तविषः बभूवान्) बलवान् होकर (वृत्रं वधीम्) राष्ट्र को घेरने और अपने से बढ़ने वाले शत्रु को नाश करने में समर्थ होता हूं। और (अहम्) मैं (वज्रबाहुः) शस्त्रास्त्र और यन्त्र कलादि हाथ में धारण कर, उनसे बाधक कारणों को दूर करते हुए, सबका नायक हो (मनवे) मननशील विद्वान् प्रजाजन के हित के लिये (एताः) इन नाना प्रकार की (अपः) जलों, जल धाराओं, नदी तड़ाग आदि को आल्हाद जनक और (सुगाः) सुख से बहने वाले नहर आदि रूप में और सुख से भोगने योग्य तीर्थ आदि द्वारा (चकर) बनाता हूं।

अनु॑त्तमा ते मघवन्नकि॒र्नु न त्वावाँ॑ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः।
न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (मघवन्) पूज्य गुणों से युक्त ! समृद्धिमान् राजन् ! परम आत्मन् ! निश्चय से कुछ भी (ते अनुत्तमा न किः) कोई भी पदार्थ या कार्य तेरी प्रेरणा के बिना नहीं है और (त्वावान्) तेरे जैसा (विदानः) ज्ञानवान् विद्वान् (देवता) दानशील, कामनावान्, तेजस्वी भी (न) कोई और नहीं। हे (प्रवृद्ध) सबसे अधिक बढ़े हुए ! तू (यानि) जिन (करिष्या) कर्त्तव्यों और अद्भुत कर्मों को (कृणुहि) करता है उनको (न जायमानः) न उत्पन्न होने वाला ही कोई (नशते) कर सकता है और (न जातः नशते) न उत्पन्न हुआ ही कोई कर सकता है।

एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम्॥१०॥२५

भा०—(एकस्य चित्) एक, अद्वितीय ही (मे) मेरा (विभुः) व्यापक, विशेष (ओजः) बल, पराक्रम (अस्तु) हो। मैं (या) जिन कर्मों को भी (मनीषा) मन की शक्ति से, या संकल्प की शक्ति से (दधृष्वान्) वश कर लेता हूं उनको (कृणवै) करने में समर्थ होता हूं। हे (मरुतः) वीरो! विद्वान् पुरुषो! (अहं हि) मैं निश्चय से (उग्रः) बलवान् (विदानः) और विद्वान् होकर (यानि) जिनको भी (च्यवम्) प्राप्त कर लेता हूं, मैं (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् (एषाम् इत् ईशे) उन पर ही अपना प्रभुत्व करता हूं। इसी प्रकार परमेश्वर का बल व्यापक है। वह अद्वितीय ही अपने व्यापक बल से सृष्टि के कार्य करता, वह ज्ञानवान्, बलवान्, जिन पदार्थों में व्यापक है उन सब पर वह वशी है।

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः॥११॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! हे (नरः) नायको! (अत्र) इस राष्ट्र में आप लोग जो (मे) मेरे लिये (स्तोमः) आप लोगों के स्तुति वचन या आदर भाव सदा (अमन्दत्) हर्षकारी होते हैं। और (यत्) जो (श्रुत्यं) श्रवण योग्य, कीर्त्तिजनक (ब्रह्म) महान् ऐश्वर्य और प्रभुत्व आप लोग (चक्र) बना रहे हो वह सब आप लोगों को भी सुखकारी हो और हे (सखायः) मित्र वर्गो! आप लोग अपने (तनूभिः) शरीरों से (मे तन्वे) मेरे शरीर की रक्षा और वृद्धि के लिये, (मे इन्द्राय) मेरे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (वृष्णे) सब सुखों के वर्षक मुझ बलवान् (सुमखाय) उत्तम यज्ञशील, (सख्ये मह्यं) मुझ मित्र के लिये आप (चक्र) करते हैं उसका उत्तम फल आपको भी प्राप्त हो।

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
सञ्चक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥

भा०—हे (मरुतः) प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार करने वाले प्रिय विद्वान् पुरुषो ! (एते) वे आप सब लोग (मा प्रति रोचमानाः एव इत्) मेरे प्रति अति स्नेहवान् होकर रहो ! और (अनेद्यः) उत्तम (श्रवः) गुरु उपदेश, वेद ज्ञान और (इषः) उत्तम इच्छाओं और शक्तियों को (आ दधानाः) धारण करते हुए (चन्द्र-वर्णाः) चन्द्र या सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण वाले, तेजस्वी, और शुद्ध चरित्रवान् होकर (संचक्ष्या) उत्तम रीति से अन्यों को उपदेश करके और उत्तम रीति से तत्वों का आलोचन करके (अच्छान्त) अपने को आच्छादित करो, अपने को अन्न वस्त्रादि से सुभूषित करो और सुरक्षित रखो। और (मे च) मेरे राष्ट्र की भी (नूनम्) अवश्य (छदयाथ) रक्षा करो।

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् १३

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (नु) देखो (अत्र) यहां (वः) आप लोगों का (कः) कौन (मामहे) आदर सत्कार करता है। हे (सखायः) मित्रो ! (सखीन् अच्छ प्र यातन) अपने समान स्नेही मित्रों को ही प्राप्त होवो। हे (चित्राः) अद्भुत २ नाना कर्म करने हारे ! विद्वानों ! आप लोग (मन्मानि) नाना मनन योग्य विद्वानों और धनों को (अपि-वातयन्तः) प्राप्त कराते हुए (मे) मेरे (एषां) इन (ऋतानां) समस्त ऐश्वर्यों और सत्य ज्ञानों के (नवेदाः भूत) शेष न रखकर पूर्ण रीति से प्राप्त करने वाले और ज्ञाता होवो।

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् १४

भा०—(दुवस्यात् दुवसे कारुः न मेधा) सेवा शुश्रूषा करने योग्य पुरुष से जिस प्रकार परिचर्या करने वाले पुरुष को शिल्पसाधिका बुद्धि प्राप्त होकर उसे भी शिल्प करने में कुशल कर देती है। उसी प्रकार (मान्यस्य मेधा) माननीय, आदर योग्य पुरुष की बुद्धि भी (अस्मान्) हमें योग्य (चक्रे) बनावे। हे (मरुतः) मनुष्यो ! आप लोग (विप्रम्) विद्वान् पुरुष के समीप (अच्छ) उसके समक्ष (ओ सु वर्त्त) जाकर उसका सत्संग करो। और वह विद्वान् (जरिता) उपदेष्टा (वः) आप लोगों को (ब्रह्माणि) नाना प्रकार के वेद ज्ञानों को दानों के समान (अर्चत्) आदर पूर्वक प्रदान करे।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १५।२६।३

भा०—हे (मरुतः) मनुष्यो ! (एषः) यह (वः) आप लोगों के लिये ही (स्तोमः) उत्तम वेदमन्त्र समृद्ध हैं। (मान्दार्यस्य) सबको हर्षित करने वाले सर्व श्रेष्ठ और (मान्यस्य) माननीय (कारोः) क्रिया कुशल गुरु जन की ही (इयं) यह (गीः) वेद वाणी है। आप लोग उस गुरु के समीप (इषा) इच्छा पूर्वक (आ यासीष्ट) आवें। (वयाम्) हम लोग (इषम्) उत्तम ज्ञान, दृढ़ इच्छा शक्ति, (वृजनं) पाप निवारक और शत्रु निवारक बल, और (जीरदानुम्) जीवन या जयदायी सामर्थ्य को (विद्याम) प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

[१६६]

मैत्रावरुणोऽगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८ जगती । ३, ५, ६, १२, १३ निचृज्जगती । ४ विराट् जगती । ७, ९, १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् । १५ पङ्क्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन॥१॥

भा०—हे (मरुतः) विद्या के अभिलाषी विद्यार्थी जनो ! शत्रु हन्ता वीर सैनिक जनो ! (वृषभस्य केतवे) वर्षणशील मेघ को उत्पन्न करने के लिये और उसके (रभसाय जन्मने) वेग से उत्पन्न होने के लिये जिस प्रकार वायु गणों का सबसे पूर्व, सबसे अधिक (महित्वं) महान् सामर्थ्य होता है इसी प्रकार (वृषभस्य) मेघ के समान निष्पक्ष पात होकर ज्ञान वर्षण करने वाले आचार्य के (केतवे) ज्ञान को प्राप्त करने और (रभसाय) वेग या बल पूर्वक उसके अधीन रहकर (जन्मने) उत्तम द्विजत्व प्राप्त कर विद्या में जन्म लेने के लिये जो आप लोगों का (पूर्वं) पूर्व का, माता पिता से प्राप्त या पूर्व जन्मों से प्राप्त (महित्वम्) महान सामर्थ्य है (तत् नु वोचाम) उसका उपदेश करते हैं । अथवा—(वृषभस्य रभसाय, जन्मने केतवे च पूर्वं महित्वं तत् नु वोचाम) ज्ञान के वर्षक गुरु के अधीन प्राप्त करने योग्य वेग, दृढ़ता, उत्तम जन्म अर्थात् द्विजत्व लाभ, और स्वरूप, और केतु अर्थात् ज्ञान प्राप्ति का पूर्ण महत्त्व है उसका हम उपदेश करें । हे (तुविष्वणः) नाना प्रकार की वेदध्वनियों को करने वाले शिष्यो ! जिस प्रकार (यामन् एधा इव) मार्ग बनाने के लिये वृक्षादि की लकड़ियों को काट दिया जाता है और जिस प्रकार (यामन्) राज्य शासन के जमाने के

लिये (युधा) युद्ध या शस्त्र प्रहारों से (तविषाणि) शत्रुओं के सैन्यों को काट गिराया जाता है उसी प्रकार आप लोग (शक्राः) शक्तिमान् होकर (यामनि) संयम के पालन के लिये (तविषाणि) बलों का (कृत्तन) सम्पादन करो । 'कर्त्तन'–अत्र क्रियाश्लेषः ।!

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः । नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार गृहस्थ लोग (क्रीळाः) इन्द्रियोपभोग्य विषयों में रमण करते हुए, (मधु बिभ्रतः) मधुर अन्नादि पदार्थ धारण करते हुए (नित्यं सूनुं) अपने औरस पुत्र को प्राप्तकर (उप क्रीळन्ति) बहुत प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार (घृष्वयः) सहन शील तपस्वीजन (सुनुं न) अपने पुत्र के समान ही देह को प्रेरण करने वाले, (नित्यं) नित्य आत्मा को (मधु) मधुर आनन्दमय रूप से (बिभ्रतः) धारण करते हुए, (क्रीळाः) उसी में रमण करते हुए (उप क्रीळन्ति) उपासना द्वारा उसको प्राप्त हो अति प्रसन्न हुआ करते हैं । वे (रुद्राः) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा, विद्वान् जन (नमस्विनं) नमस्कार करने वाले, विनीत शिष्य को (अवसा नक्षन्ति) अपने ज्ञान से युक्त करते हैं । वे (स्व-तवसः) 'स्व' अर्थात् अपने आत्मा के बल से बलवान् होकर (हविष्कृतम्) दान योग्य अन्नादि पदार्थों के प्रदान करने वाले को (न मर्धन्ति) कभी नाश नहीं करते ।

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे । उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिताइव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

भा०—(मरुतः) जिस प्रकार वायु गण (हिताः) हितकारी मित्रों के समान (पयसा मयोभुवः) जल से सबको सुखजनक होकर

(अस्मै) इस जीवगण के सुख के लिये (पुरु रजांसि) बहुत लोकों को जल से सेंचते हैं। और वे (ऊमासः) सब के रक्षक और (अमृताः) अमृत, प्राणमय हो (हविषा ददाशुषे) हवि द्वारा यज्ञ करने वाले को (रायः पोषं अरासत) धन, गौ आदि समृद्धि को प्रदान करते हैं। उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् पुरुष, वीर सैनिक, (हिताः-इव) हितकारी मित्रों के समान, अपने २ पदों पर स्थित होकर (पयसा) अन्न और पुष्टि कारक पदार्थों से (मयोभुवः) सबको सुख देने वाले, (यस्मै) जिस (ददाशुषे) अपने अन्न दाता के वृद्ध्यर्थ (रायः पोषं अरासत) धनों की समृद्धि को दें (ऊमासः) वे राष्ट्ररक्षक (अमृताः) अमर होकर (अस्मै सिञ्चन्ति) उसी के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, (पुरु रजांसि उक्षन्ति) बहुत से लोकों को बढ़ाते हैं।

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्। भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु॥ ४॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (तवीषीभिः) अपनी बलशालिनी सेनाओं से (रजांसि) समस्त लोकों की धूलिओं और लोकों को वायु गणों के समान (आ अव्यत) सब तरफ़ से व्याप लेते हैं। हे वीर पुरुषो! वे (वः) आप लोगों के (एवासः) तीव्र वेग से जाने वाले (स्व-यतासः) अपने आप संयत, उत्तम रीति से बंधे हुए, या जितेन्द्रिय, अश्व गण और सवार लोग (अध्रजन्) वेग से जाते हैं उस समय (विश्वा भुवनानि) सब प्राणी गण (भयन्ते) भयभीत होते हैं और (विश्वा हर्म्या) सब महल वा उनमें रहने वाले स्त्री आदि जन (भयन्ते) कांपते हैं। हे वीरो! तब भी (प्र-यतासु) खूब उत्तम नियमों में बंधे, (ऋष्टिषु) हथियारों के बीच सुसज्जित होकर (वः) आप लोगों का (यामः) प्रयाण करना बड़ा (चित्रः) अद्भुत, विस्मयकारी होता है।

यत्त्वे॒षया॑मा न॒दय॑न्त॒ पर्व॑तान्दि॒वो वा॑ पृ॒ष्ठं नर्या॒ अचु॑च्यवुः।
विश्वो॑ वो॒ अज्म॑न्भयते॒ वन॒स्पती॑ रथी॒यन्ती॑व॒ प्र जि॑हीत॒ ओष॑धिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (नर्याः) सब मनुष्यों के हितकारी (त्वेषयामाः) तीव्र वेग से जाने वाले वायु गण (पर्वतान् नदयन्त) पर्वतों और मेघों को गुंजाते हैं (दिवः पृष्ठं वा अचुच्युवुः) आकाश या अन्तरिक्ष पृष्ठ को भी व्याप लेते हैं। जिस प्रकार वायुओं से (विश्वः वनस्पतिः अज्मनि भयते) सब बड़े वृक्ष उनके वेग के भय से कापते हैं और (ओषधिः) ओषधिएं (रथीयन्तीव) रथ पर चढ़ी स्त्री के समान खूब वेग से उड़तीसी दीखती हैं उसी प्रकार (नर्याः) सब मनुष्यों के हितकारी वीर और सज्जन पुरुषों के रथ आदि (त्वेषयामाः) दीप्ति, विद्युत् के द्वारा चलने वाले आकाश में (पर्वतान् नदयन्त) पर्वतों की शोभा बढ़ावें और पृथ्वी पर (पर्वतान् नदयन्त) पर्वतों को गुंजावें। वे (दिवः पृष्ठं) भूमि और अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर भी (अचुच्युवुः) चलें। हे वीर पुरुषो ! (वः अज्मन्) आपके उखाड़ फेंकने वाले बल के आधार पर (विश्वः) सब (वनस्पतिः) सैन्य दल के रक्षक शत्रुजन तथा ऐश्वर्यपालक जन भी (भयते) भय खाते हैं। और (ओषधिः) दाहकारी अस्त्रों के धारण करने वाली सेना भी (रथीयन्तीव) रथ को चाहने वाली नव वधू के समान भीरु होकर मानो अपने रथवान्, नायक को चाहती हुई (प्र जिहीते) खूब कांप जाती वा आगे बढ़ती है। इति प्रथमो वर्गः ॥

यू॒यं न॑ उग्रा मरुतः सुचे॒तुनारि॑ष्टग्रामाः सुम॒तिं पि॑पर्तन।
यत्रा॑ वो दि॒द्युद्रद॑ति॒ क्रिवि॑र्दती रि॒णाति॑ प॒श्वः सुधि॑तेव ब॒र्हणा॑ ॥६

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! (उग्राः) प्रचण्ड, तीव्र गुण-कर्म स्वभाव वाले (यूयं) आप लोग (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से (अरिष्टग्रामाः) अपने जन संघों, ग्रामों और प्राणसमूहों को नष्ट न होने

देते हुए, उनकी रक्षा करते हुए। (नः सुमतिं) हमारी शुभ बुद्धि, ज्ञान और बल को (पिपर्त्तन) सदा पूर्ण करो। (यत्र) जहां (वः) तुम वीरों की (क्रिविर्दती) हिंसाकरी दांतों वाली (विद्युत्) चमचमाती विद्युत् शक्ति (रदति) भूमि और आकाश को फाड़ देती है और (सुधिता इव) खूब लगी हुई या चलाई हुई तेज धार की (बर्हणा) शस्त्र धारा के समान विद्युत् भी (पश्वः रिणाति) संग्राम में अश्वादि पशुओं और अधीन होकर लड़ने वाले सैनिकों को नाश कर डालती है। अथवा—(सुधिता इव बर्हणाः पश्वः रिणाति) उत्तम रीति से धारण की गयी बड़ी विद्युत् अनेक पशुओं के समान यन्त्रों को चलाती है।

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७॥

भा०—वीर पुरुष और विद्वान् जन (स्कम्भदेष्णाः) युद्धादि में अपने सैन्य और प्रजा के बीच में स्तम्भन बल, दृढ़ता आदि गुणों और प्रबन्ध, बल के देने और "स्कम्भ" नाम सर्वाधार परमेश्वर के ज्ञान का उपदेश करने वाले, (अनवभ्रराधसः) कभी धन का नाश न करने वाले, सदा समृद्ध (अलातृणासः) शत्रुओं को खूब काट गिरा देने वाले और अति दानशील पुरुष (विदथेषु) संग्रामों और यज्ञों में (सु-ष्टुताः) उत्तम प्रशंसित होते हैं वे (मदिरस्य पीतये) आनन्दप्रद राष्ट्र की रक्षा के लिये (अर्कं अर्चन्ति) सूर्य समान तेजस्वी पुरुष की अर्चना करते हैं, उसको प्रमुख बना कर उसके अधीन रहते हैं। इसी प्रकार विद्वान् ज्ञान मार्गों में (मदिरस्य पीतये) अति आनन्दमय आत्मरस का पान करने के लिये तेजोमय प्रभु की उपासना करते हैं। वे ही (वीरस्य) शूरवीर परम शक्तिमान् प्रभु के श्रेष्ठ २ कर्मों को भली प्रकार जानते हैं।

शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (उग्राः) सदा बलशाली, (विरप्शिनः) नाना वाणियों, ज्ञानोपदेशों व विद्याओं के ज्ञाता, (तवसः) बलवान् होकर (यम्) जिस (जनं) पुरुष को (आवत) बचाते और (शंसात्) गर्व भरी स्तुति या हिंसा होने से (तनयस्य) पुत्र समान पोषणादि कर्मों से (पाथन) रक्षा करते हो (तम्) उसको आप लोग (अभिह्रुतेः) कुटिल मूर्छाकारी (अघात्) प्राणघातक पाप से (शतभुजिभिः) सेकड़ों को पालने वाले (पूर्भिः) पुरों या नगरों से (रक्षत) सुरक्षित रखो। प्राणों के पक्षमें—ये इन्द्रिय गण या देह सैकड़ों भोगदायी पुर हैं, उनसे प्राण गण, आत्मा की रक्षा करते और बालक के पोषण के लिये उसको (शंसात्) मृत्यु से भी बचाते हैं।

विश्वा॑नि भ॒द्रा म॑रुतो॒ रथे॑षु वो मिथ॒स्पृध्ये॑व तवि॒षाण्याहि॑ता ।
अंसे॒ष्वा व॒ः प्रप॑थेषु खा॒दयोऽक्षो॑ व॒श्च॒क्रा स॒मया॒ वि वा॑वृते॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वीर और विद्वान् पुरुषो ! (वः रथेषु) तुम्हारे वेग से जाने वाले रथों में (विश्वानि) सब प्रकार के (भद्रा) सुखकारी पदार्थ और (मिथः-स्पृध्या) परस्पर स्पर्धा से लड़ने वाली सेना और (तविषाणि) बल वाले, प्रबल हथियार (आहिता) रखे होने चाहियें। इसी प्रकार (वः) तुम्हारे (अंसेषु) कन्धों पर भी और (प्रपथेषु) उत्तम २ मार्गों में (खादयः) खाने योग्य फल आदि उत्तम पदार्थ और उत्तम शस्त्रादि हों और (वः) तुम्हारे रथ का (अक्षः) धुरा (चक्रा समया) दोनों चक्रों के निकट ही (वि वावृते) विशेष रूप से घूमे। (२) प्राणों और वायुओं के वेग से गमनों में उत्तम सुख, परस्पर चाहने योग्य बल, अंगों और गृहों में उत्तम बल व खाद्य पदार्थ हों। अक्ष = अध्यक्ष आत्मा (वः) प्राणों के भीतरी और वाह्य साधनों के द्वारा विविध चेष्टाओं को करता है।

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे१०।२

भा०—जो वीर और विद्वान् मनुष्य (रभसासः) वेग से काम करने वाले, (अंजयः) मधुर स्वभाव, कान्तिमान् प्रसिद्ध गुणवान् , होकर (नर्येषु) मनुष्यों के हितकारी (बाहुषु) शत्रु-बाधक बाहुओं पर (भूरीणि) बहुत से (भद्रा) कल्याणकारी, अन्यों को सुख देने वाले बल, ऐश्वर्य और कर्त्तव्य धारण करते हैं (वक्षः सु) छातियों पर (रुक्मा) सुवर्ण के आभूषण पदक जो (अञ्जयः) उनके किये उत्तम कार्यों और गुणों को प्रकट करते हैं उनको और वे (अंसेषु) कन्धों पर (एताः) शुभ्र वर्ण के वस्त्र और (पविषु) वाणियों में (क्षुराः) उत्तम शब्द और (पविषु क्षुराः) शस्त्रों में तीक्ष्ण धारों को (वयः न पक्षान्) पक्षों पक्षियों के समान (वि अनुधिरे) विविध प्रकारों से धारण करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

भा०—(मरुतः इन्द्रे) जिस प्रकार विद्युत् या सूर्य के आश्रय वायुगण होते हैं। उसी प्रकार (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन सैनिक वीर और अन्धकारनाशक विद्वान् आचार्य के अधीन विद्वान्, चतुर विद्यार्थी जन रहें। वे (महा) महान् सामर्थ्य से (महान्तः) गुणों में महान् अर्थात् आदरयोग्य हों, वे (विभ्वः) कार्य करने में समर्थ, शक्तिशाली, (विभूतयः) नाना ऐश्वर्यों से युक्त, (दिव्याः इव) दिव्य पदार्थ सूर्य, चन्द्र आदि लोक जिस प्रकार (स्तृभिः) नक्षत्रगणों सहित (दूरेदृशः) दूर से दीखने वाले होते हैं उसी प्रकार ये भी (दिव्याः) ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर (स्तृभिः) विस्तृत गुणों और

अनुभवों सहित (दूरेदृशः) दूरदर्शी हों। अथवा—(स्तृभिः) शरीर के आच्छादक उत्तम वस्त्रों से युक्त और दूरदर्शी हों। वे (मन्द्राः) स्वयं सब उत्तम पदार्थों की कामना करने वाले, आल्हादकारी और स्तुति युक्त, (सु जिह्वाः) उत्तम वाणीवाले, (आसभिः स्वरितारः) मुखों से उत्तम वचन बोलने हारे, (संमिश्लाः) परस्पर अच्छी प्रकार मिले हुए, स्नेही, (परिस्तुभः) सब को धारण करने और सब विद्याओं का अध्ययन करने वाले हों।

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम्।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम्१२

भा०—(तत् मरुतः महित्वम्) यह वायुओं का ही महान् सामर्थ्य है और उनका ही (दीर्घं दात्रम्) लम्बा चौड़ा दान सामर्थ्य है जो (इन्द्रः चन) विद्युत् भी (त्यजसा) जल के साथ (विह्रुणाति) विविध कुटिल मार्ग से चमका करता है। उसी प्रकार हे (सुजाताः) उत्तम कुलों में उत्पन्न और गुणों में प्रसिद्ध (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह नाना प्रकार का (महित्वनम्) महान् सामर्थ्य है और (वः) आप लोगों का ही वह (दीर्घम्) लम्बा चौड़ा (दात्रम्) दान, विद्यादान है आप लोगों का (व्रतम्) व्रत आचरण भी (आदितेः व्रतम् इव) सूर्य के व्रत के समान ही है। आप लोग (यस्मै) जिस (सुकृते) उत्तम पुण्यकारी पुरुष के उपकार के लिये (अराध्वम्) विद्या आदि दान करते हो उसके उपकार के लिये (इन्द्रः चन) ऐश्वर्यवान् पुरुष भी (त्यजसा) अपने त्यागने, दान देने योग्य धन से (वि) उलटे सीधे, या प्रत्यक्ष परोक्ष विविध प्रकारों से (ह्रुणाति) सहायकारी होता है।

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे१३

भा०—वायुगण की यह (जामित्वं) बन्धुता है कि वे (परे युगे यत् शंसम् अवन्ति) गत वर्ष या गत काल के समान शान्तिदायक मेघादि को पुनः लाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। इसी बुद्धि से (मनवे श्रुष्टिम् आव्या) मनुष्य मात्रा को सुख और अन्न आदि प्राप्त कराकर (दंसनैः साकं चिकित्रिरे) अपने वर्षणादि कर्मों सहित ही जाने जाते हैं। उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह उत्तम (जामित्वम्) बन्धु भाव है कि आप लोग (अमृतासः) दीर्घजीवी, होकर (परे युगे) अतीत काल में भी (यत्) जो (शंसम्) उपदेश करने योग्य उत्तम वेदवचन और ज्ञान रहता है उसकी (आवत) रक्षा किया करते हो। और (अया धिया) इसी उत्तम धारण शक्ति, बुद्धि और अध्ययन आदि कर्म से (मनवे) मनुष्यमात्र के हित के लिये, (श्रुष्टिम् आव्या) श्रवण करने योग्य ज्ञान की रक्षा करके स्वयं (नरः) नायक नेता बनकर (दंसनैः साकम्) उत्तम आचारों और कर्मों के साथ (आ चिकित्रिरे) ज्ञान का सम्पादन करते और कराते रहते हो। ऐसा ही किया करो।

येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शू॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न॒ परी॑णसा तुरासः।
आ यत्त॒तन॑न्वृ॒जने॒ जना॑स ए॒भिर्य॒ज्ञेभि॒स्तद॒भीष्टि॑मश्याम् ॥१४॥

भा०—हे (तुरासः) वेगवान्, बलवान् (मरुतः) वायुओं के समान सर्वोपकारक विद्वान् और बलवान् पुरुषो ! (युष्माकेन) आप लोगों के (येन) जिस (परीणसा) बहुत से और बड़े भारी सामर्थ्य और ज्ञान से हम (दीर्घं) बहुत लम्बा, चिरकाल तक का ब्रह्मचर्य या जीवन (शूशवाम) बढ़ा लेते हैं और आप के (यत्) जिस (वृजने) विघ्न निवारक बल पर निर्भर करके (जनासः) लोग (आ ततनन्) नाना यज्ञ करते हैं। मैं (एभिः यज्ञैः) उन यज्ञों, दान, सत्संग, उपासना आदि पुण्य कर्मों के साथ २ (तत्) आप के उसी बल

सामर्थ्य से (अभीष्टिम्) अपने अभीष्ट, मनचाही मनोकामना को (अश्याम्) प्राप्त करूं। (२) प्राणों के बड़े भारी सामर्थ्य से हम दीर्घ जीवन प्राप्त करते, उनके ही बल पर लोग सब कर्म करते, उनके ही बल से हम सब मनोकामना को प्राप्त करें।

एष वः स्तोमो मरुत इयंगीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सू० १६५ का १५ वां मन्त्र।

इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो मरुच्च देवत छन्दः—१, ४, ५, भुरिक् पङ्क्तिः। ७, ९ स्वराजट् पङ्क्तिः। १० निचृत् पङ्क्तिः : ११ पङ्क्तिः। २, ३, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी (सहस्रं) हजारों (ऊतयः) रक्षा के साधन (गूर्त्ततमाः) उत्तम उद्यमी (सहस्रम् इषः) सहस्रों सेनाएं और (सहस्रं) हजारों (रायः) ऐश्वर्य और (सहस्रिणः) हजारों ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (वाजाः) ज्ञान, और नाना ऐश्वर्य और बल और अन्न (नः) हमें (मादयध्यै) हर्ष और आनन्द प्राप्त करने के लिये (उप यन्तु) प्राप्त हों।

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

भा०—वे (मरुतः) वैश्य गण और विद्वान् जन जो (ज्येष्ठेभिः)

विद्या और वयस् में वृद्ध (वृहद्दिवैः) बड़े भारी ज्ञान ज्योतियों से प्रकाशमान, विद्वानों के सत्संग से (सुमायाः) उत्तम शुभ बुद्धिवाले हैं (नः) हमें सदा (अवोभिः) ज्ञानों और रक्षा साधनों सहित (अच्छ आयान्तु) प्राप्त होते रहें। (अध) और वे (यद्) जिस (एषां) इनके (परमा) उत्कृष्ट कोटि के साधन, उत्तम सेनाएं भी या लाखों आदमी (समुद्रस्य चित् पारे) समुद्र के परले पार भी (धनयन्त) धन ऐश्वर्य की कामना से व्यापार करते हैं और ऐश्वर्य उपार्जन करते हैं, वे भी हमें प्राप्त हों।

मि॒म्यक्ष॒ येषु॒ सुधि॑ता घृ॒ताची॒ हिर॑ण्यनिर्णि॒गुप॑रा॒ न ऋ॒ष्टिः।
गुहा॒ चर॑न्ती॒ मनु॑षो॒ न योषा॑ स॒भाव॑ती विद॒थ्ये॑व॒ सं वाक् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं में (घृताची) जल लाने वाली या जल में प्रकट होने वाली, (सुधिता) उत्तम रूप से विद्यमान्, (हिरण्य-निर्णिक्) सुवर्ण के समान चमकने वाली, (उपरा) मेघ माला (ऋष्टिः न) चलकती तलवार के समान चमकती है और जिन वायुओं में (स-भावती मनुषः योषा न) समान कान्ति वाली मनुष्य की स्त्री के समान (गुहा चरन्ती) अन्तरिक्ष रूप गुफा (गृह) में विचरने वाली (वाक्) शब्द करने वाली मध्यमा वाक् विद्युत् आश्रित है उसी प्रकार (येषु) जिन विद्वानों में (घृताची) प्रकाश युक्त, या गुरु मुख से शिष्य के पास वह आने वाली या शिष्य के प्रति अर्थों की प्रकाशक, ज्ञानको प्राप्त कराने वाली (सु-धिता) उत्तम सुख पूर्वक धारण की गयी, सु-अभ्यस्त, (हिरण्यनिर्णिक्) हित और रमणीय ज्ञान से शिष्यों के ज्ञानसामर्थ्य को बढ़ाने वाली, या सुवर्ण के समान अत्यन्त निर्मल, (उपरा) सबको प्राप्त होकर रमण कराने वाली, सर्वोपरि, ऊंच (ऋष्टिः) पुरुषार्थों को प्राप्त कराने वाली, (मनुषः) मनुष्य की (सभावती योषा न) सभा में एक साथ बैठने वाली प्रियतमा स्त्री के समान (सभावती) धर्म-

सभा आदि सभाओं को धारण करने वाली, (गुहा चरन्ती) हृदय में या बुद्धि के आश्रय होकर विचार पूर्वक मुख से निकलने वाली (विदथ्या) ज्ञान देने में श्रेष्ठ (वाक्) वाणी (सं मिम्यक्ष) अच्छी प्रकार निवास करती है वे विद्वान् जन हमारे आदर के पात्र हों।

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (यव्या साधारण्या) संयोग विभाग करने वाली साधारण गति से (अयासः) बहने वाले, (शुभ्राः) भासने वाले (मरुतः) वायु गण (परा मिमिक्षुः) दूर २ तक देशों को जलों से सींच देते हैं। (न रोदसी अपनुदन्त) शब्द करने वाले मेघ और विद्युत् दोनों का भी गर्जन दूर नहीं हटा देते प्रत्युत (घोराः) स्वयं भयंकर वेग से चल कर भी (देवाः) जल प्रदानशील होकर वे (सख्याय) सब प्राणियों के प्रति मित्र भाव के लिये (वृधं जुषन्तं) सबके बढ़ाने, पुष्ट करने वाले जल अन्न या सूर्य का सेवन करते कराते हैं उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् लोग (यव्या) अपने से कम अवस्था वाली (साधारण्या इव) अपने समान बल वीर्य धारण करने वाली स्त्री के साथ (अयासः) संगत होने वाले (शुभ्राः) अलंकारों और उत्तम उज्ज्वल वस्त्रों से शोभायमान होकर (परा मिमिक्षुः) उत्तम रीति से क्षेत्र में बीज वपन करें। (रोदसी) रोने के स्वभाव वाली दुःखिता स्त्री को या दीन दुखिया स्त्री-पुरुषों को भी वे (न अप नुदन्त) अपने से दूर न करें, प्रत्युत सान्त्वना देकर स्वयं (घोराः) बलवान् शत्रुओं के लिये भयंकर होकर भी (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त एवं कामना शील प्रेम युक्त होकर (वृधं) अपने कुल को बढ़ाने वाली स्त्री को ही (सख्याय) मित्र भाव की वृद्धि के लिये (जुषन्त) उससे और अधिक प्रेम करें। अथवा—वे (रोदसी) सूर्य पृथिवी के समान अपने माता पिताओं को घर से

बाहर न निकालें, उनको अपने से दूर नहीं करें। प्रत्युत (देवाः) वे दानशील, उदार होकर (वृधं) कुल के बढ़ाने वाले वृद्ध पुरुष को भी (सख्याय जुषन्त) मित्र भाव के लिये उसका सेवन और प्रेम पूर्वक शुश्रूषा करें।

जोष॒द्यदी॑मसु॒र्या॑ स॒चध्यै॒ विषि॑तस्तुका रोद॒सी नृ॒मणाः॑।
आ सू॒र्येव॑ विध॒तो रथं॑ गात्त्वे॒षप्र॑तीका॒ नभ॑सो॒ नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—(सूर्या इव) सूर्यकी मध्यान्ह काल की दीप्ति, जिसप्रकार (त्वेष-प्रतीका) तेज प्रकाश देने वाली होकर (विधतः) विविध लोकों को धारण करने वाले सूर्य के (रथं) रमणीय बिम्ब को (गात्) प्राप्त होती है, अथवा (नभसः इत्या न) वायु की तीव्र गति जिस प्रकार (विधतः) विशेष शिल्प रचने वाले पुरुष के (रथं) वेगवान् रथ को (आगात्) प्राप्त होती है उसी प्रकार (असूर्या) मेघों में उत्पन्न होने वाली (यत्) जो (ईम्) इस जल को (सचध्यै) संचय या संयुक्त करने के लिये (जोषत्) मानो प्रेम पूर्वक आती है वह भी (विषितस्तुका) विविध प्रकार से किरणों को बांधती हुई (रोदसी) ध्वनि करने वाली और (नृमणाः) मनुष्यों के मन को हरती है अथवा जल को संग्रह करती हुई (रोदसी जोषत्) आकाश और पृथिवी को व्यापती है (२) उसी प्रकार (आसूर्या) असुर अर्थात् प्राणों में रमण करने वाले और प्राणों का प्रदान करने वाले, प्राण प्रिय पुरुष की हित कारिणी और बलवान् पुरुषों के योग्य (विषितस्तुका) विविध प्रकार से अपने केशों को बांधने वाली, (रोदसी) वियुक्त होते हुए माता पिता सम्बधियों को देखकर आखों में जल भरलाने वाली, (नृमणाः) सब मनुष्यों के लिये उचित स्नेह वाली, (त्वेष-प्रतीका) दीप्ति युक्त मुख वाली, कान्तिमती, सुन्दर स्त्री (यत्) जब (ईं जोषत्) अपने अभिलषित पुरुष को स्वीकार करे तब वह (सूर्या इव) सूर्य की कान्ति के समान और (नभसः इत्या न)

जल की धारा के समान (विधतः) विवाह विधि से धारण करने वाले वर के (रथं) रथ को (आगात्) प्राप्त हो । इति चतुर्थो वर्गः ॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् । अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार (अर्कः) सूर्य (हविष्मान्) जलों का ग्रहण करने वाला (सुतसोमः) ओषधियों को उत्पन्न करने हारा, (दुवस्यन्) क्रिया करता हुआ (गाथं गायत्) वायुओं की 'गाथा' अर्थात् ध्वनि करने वाली, अन्तरिक्ष गत वाणी, गर्जना को गाता है, उत्पन्न करता है तब वे वायुगण (विदथेषु) संघात योग्य जलों में (पज्राम्) व्यापने वाली (निमिश्लाम् = निमिश्राम्) सब पदार्थों में गूढ़ रूप से रहने वाली (युवतिं) अति बलवती विद्युत् को (शुभे) जल वर्षण और दीप्ति के लिये (आस्थापयन्त) अन्तरिक्ष में प्रकट करते हैं । उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (अर्कः) पूजा करने योग्य, आदरणीय, वर पुरुष (हविष्मान्) उत्तम ज्ञान, और अन्न सम्पदा से युक्त (सुतसोमः) ऐश्वर्य को प्राप्त करके (दुवस्यन्) वृद्धों की सेवा शुश्रूषा करता हुआ, (गाथं गायत्) गाथा, वेद वाणी का अध्ययन कर लेता है, या (दुवस्यन्) अग्नि की परिक्रमा करता हुआ (गाथं गायत्) गाथा वेद मन्त्र का पाठ करता है तब (युवानः) युवा पुरुष वर के सखाजन या वधू के वर से मिलाने वाले जन (विदथेषु) धर्मानुकूल व्यवहारों में, ज्ञानों और ऐश्वर्यों में पति के साथ जाने वाली या बलवती (निमिश्लां) अच्छी प्रकार शुभ गुण विद्या आदि स्वभाव द्वारा अपने को मिलाने वाली (युवतिम्) युवती कन्या को (शुभे) शुभ कार्य के निमित्त (आ अस्थापयन्त) सब प्रकार से दृढ़तया स्थापित करें । उसे किसी प्रकार का क्षोभ न होने दें । वे निर्विघ्न प्रबन्ध करें ।

प्र तं वि॑वक्मि॒ वक्म्यो॒ य ए॑षां म॒रुतां॑ महि॒मा स॒त्यो अस्ति॑।
सचा॒ यदीं॒ वृष॑मणा अहं॒युः स्थि॒रा चि॒ज्जनी॒र्वह॑ते सुभा॒गाः॥७॥

भा०—(यः) जो (एषां) इन (मरुतां) विद्वान् पुरुषों का (सत्यः) सत्य, (वक्म्यः) वर्णन करने योग्य, (महिमा) महान् सामर्थ्य है मैं (तं) उसका (प्र वक्मि) उपदेश करता हूं। वह यह कि (यत्) जो (एषां) उनमें से (वृषमनाः) वीर्य सेचन अर्थात् पुत्रोत्पादन करने में चित्त देने वाला, गृहस्थ का अभिलाषी, पुत्रैषणावान् (अहंयुः) अहं भाव से युक्त, आत्मवान्, जितेन्द्रिय है वह ही (स्थिराः) धर्म और लोक यात्रा में स्थिर चित्त (सुभागाः) सुख सौभाग्य से युक्त, सुख से सेवने योग्य (जनीः) पुत्र जनन में समर्थ दाराओं को (वहते) विवाहे। बिना पुत्रैषणा के कोई विवाह नहीं करता। जो करे वह उसको सत्यता पूर्वक निबाहे। वायु पक्षमें—(मरुतां) वायु गण की यह सत्य महिमा है कि इनमें बरसने वाला आत्मवान् पर्जन्य है, वह उत्तम भाग्यवान् (जनीः) प्रजाओं को धारण करता है।

पान्ति॑ मि॒त्रावरु॑णावव॒द्याच्चय॑त ईमर्य॒मो अप्र॑शस्तान्।
उ॒त च्य॑वन्ते॒ अच्यु॑ता ध्रु॒वाणि॑ वावृ॒ध ईं॑ मरुतो॒ दाति॑वारः॥८॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (मित्रावरुणौ) मित्र, सबका स्नेही, प्रजा को मरण से बचाने वाला, वरुण, सब दुष्टों का वारक और श्रेष्ठ जन, प्राण और जल के समान और (अर्यमा) शत्रुओं को संयमन करने वाला न्यायकारी पुरुष सब (अवद्यात्) निन्दनीय पापाचरण से (पान्ति) रक्षा करें। और (अप्रशस्तान्) बुरे पापाचारी लोगों को (चयते) विनाश करें अथवा (अप्रशस्तान्) व्यवहार में अकुशल निर्बल प्रजाजनों को (चयते) एकत्र संगठित करे। अथवा (अप्रशस्तान्) तुच्छ २ स्वल्प २ करों को भी (चयते) संग्रह करे। इस प्रकार करने से (अच्युता) कभी न डिगने वाले (ध्रुवाणि) स्थिर राष्ट्र भी

(च्यवन्ते) उत्तम पद से गिर जाते हैं। और (दातिवारः) वरने योग्य उत्तम ऐश्वर्य का दाता, और (दातिवारः) दान योग्य, कर आदि संग्राह्य पदार्थों को प्रजा से स्वीकार करने वाला पुरुष भी (ईम्) सब प्रकार से (ववृधे) बढ़ता और इस प्रजाजन को भी बढ़ाता है। अथवा—(अच्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते) अक्षय स्थायी ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। दान-संग्रही बढ़ता है। वायु पक्षमें—(मित्रावरुणौ) दिन रात्रि और सूर्य निन्दनीय कष्ट से जनों की रक्षा करते, तुच्छ जलों का सञ्चय करते, या बुरे रोगों का नाश करते हैं। ये मेघ न गिरने वाले जलों को नीचे गिराते हैं, जल दाता मेघ सबको इस प्रकार बढ़ाता है।

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः॥९॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं का नाश करने वाले प्राणों के समान जीवन युक्त और वायुओं के समान विद्वान् और बलवान् पुरुषो! (अस्मे) हम प्रजाजनों में से (वः) आप लोगों में से (शवसः) बल और ज्ञान का (अन्ति आरात् च) दूर और पास कहीं भी (नही नु अन्तम् आपुः) कदाचित् कोई भी पार न पा सकें। (ते) वे आप सब लोग (धृष्णुना) शत्रु को पराजय कर देने वाले (शवसा) बल से (शूशुवांसः) सदा बढ़ते हुए (धृषता) बड़े बल पूर्वक (द्वेषः) द्वेष करने वाले अधार्मिक शत्रुओं को द्वेष आदि अप्रीति कर दोषों को (अर्णः न) जल को तटों के समान (परिस्थुः) चारों ओर से घेर कर रोक लो।

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात्॥१०॥

भा०—(वयम्) हम लोग (प्रेष्ठाः) परमेश्वर वा राजा के अति प्रिय होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (अद्य) आज और (श्वः) आने वाले दिनों में आगे भी (समर्ये) अन्य मनुष्यों के सत्संग में (वोचेमहि)

स्तुति करें। उसके गुणों का वर्णन करें। (वयं) हम (पुरा च) पहले भी और (अनुद्यून् च) अब भी सब दिनों, उसके गुण गान करें वह (नः) हमें (महि) बहुत बल सामर्थ्य (अनु) प्रदान करे। (तत्) और वह (नराम्) सब नायकों में से (ऋभुक्षा) सबसे बड़ा होकर (नः) हमारे (अनु ष्यात्) अनुकूल सुखदाता हो।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल १।सू० १६५।१५०॥ इति पञ्चमो वर्गः॥

[१६८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ४, निचृज्जगती। २ ५ विराट् त्रिष्टुप्।३स्वराट् त्रिष्टुप्।६, ७, भुरिक् त्रिष्टुप्। ८, त्रिष्टुप्। ९, निचृत् त्रिष्टुप्। १० पङ्क्तिः।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥१॥

भा०—हे वीर और विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों की (यज्ञा-यज्ञा) मिलकर करने योग्य उपासना, युद्ध, यज्ञ, सत्संग आदि प्रत्येक कार्य में, देह में प्राणों के समान (वः) आप लोगों की (तुतुर्वणिः) शीघ्र गति भी (समना) एक समान वेग से हुआ करे। उपासना में एक साथ मन्त्रादि कहें, युद्ध में एक चाल से कदम उठावें, सत्संगों में समान भाव से वर्त्तें। (वः) आप लोगों में से जो (देवयाः) दिव्य गुणों वाले और विद्वानों के उपासक, शिष्य आदि और अग्नि आदि दिव्य पदार्थों को प्राप्त वैज्ञानिक लोग हैं वे (धियंधियं) प्रत्येक काम और प्रत्येक ज्ञान को (दधिध्वे) धारण करें, प्रत्येक कार्य करने का यत्न करें, और प्रत्येक विद्या का अभ्यास करें। (वः) आप लोगों में से (अर्वाचः) नव शि-

क्षितों को (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के (महे सुविताय) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये और (महे अवसे) बड़े भारी रक्षा कार्य के लिये (सुवृक्तिभिः) दुःखदायी कारणों को दूर कर देने वाले साधनों, शत्रुवर्जक अस्त्रों सहित (आ ववृत्याम्) सब प्रकार से वरण करूं और उनको कार्य में नियुक्त करूं।

व्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः।
सहस्त्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (व्रासः) सदा चलने हारे, वायुओं और प्राणों के समान परोपकारी जीवन की वृद्धि के लिये निरन्तर देश देशान्तर में भ्रमण करने हारे (स्वजाः) स्वयं बल ऐश्वर्य और आत्म सामर्थ्य से संसार में प्रकट हैं, और प्रसिद्ध (स्वतवसः) स्वयं अपने बल से बलवान् , (धूतयः) वृक्षों के कंपाने वाले वायुओं के समान शत्रुओं को और बाधक, मोह आदि अन्तः शत्रुओं को कंपाकर दूर करने हारे, निःसंग (स्वः) परम सुखमय, सूर्य के समान प्रकाशमय, (इषं) सर्व कामना-मय, सर्व प्रेरक परमेश्वर को (अभि जायन्त) साक्षात् करते हैं, वे (सह-स्त्रियासः) संख्या में सहस्रों, या बलवान् आत्मा वाले (अपां ऊर्मयः न) जलों की तरंगों के समान स्वयं भी (अपां ऊर्मयः) ज्ञानों और कर्मों का उपदेश करने हारे तथा (गावः) गौओं के समान ज्ञानदुग्ध से सब को पालने वाले और (वन्द्यासः) अभिवादन, आदर और कामना करने योग्य (उक्षणः नः) सेचन करने वाले मेघों के समान (आसा) मुख द्वारा मुख से ज्ञान का वर्षण करने हारे हैं। अथवा वे (आसा गावः) मुख से आदित्य समान तेजस्वी, स्तुत्य और मेघ के समान ज्ञानवर्षक हैं। (२) सैनिक लोग शीघ्रगन्ता, स्वयम् बलवान् , प्रेरक आज्ञापक सेनापति को लक्ष्य किये रहते हैं। वे शत्रुओं को कंपाते, संख्या में हजारों समुद्र तरंगों के समान हैं। वे (आसा गावः) मुख या अग्र

भाग से आगे बढ़ने वाले, स्तुति योग्य, (उक्षणः नः) मेघों के समान शरवर्षी हों।

सोमा॑सो॒ न ये सु॒तास्तृ॒प्तांश॑वो हृ॒त्सु पी॒तासो॑ दु॒वसो॒ नास॑ते।
ऐषा॒मंसे॑षु र॒म्भिणी॑व रारभे॒ हस्ते॑षु खा॒दिश्च॑ कृ॒तिश्च॒ सं द॑धे॥३॥

भा०—(सोमासः न) सोम आदि ओषधियां जिस प्रकार (तृप्तांशवः) एक २ रेशे में तृप्त अर्थात् रस से पूर्ण होती हैं उसी प्रकार जो मरुद् गण विद्वान् और वीर पुरुष (सोमासः) सौम्य गुणों से युक्त शिष्य जनों के समान (सुताः) पुत्र और अपने औरस पुत्रों के समान शिष्य और (सुताः) विशेष अधिकार पर अभिषिक्त राज पुरुष हैं वे (हृत्सु पीतासः) हृदयों में अर्थात् हृदय भर कर पान करने वाले पूर्ण तृप्त अति संतुष्ट, तृष्णारहित होकर (दुवसः न) सेवकों के समान सदा सेवा करने को तैयार होकर (आसते) विराजें। (अंसेषु रम्भिणीव) उत्तम गृहस्थ कार्यों को आरम्भ करनेवाली, या प्रेमालिंगन करने वाली स्त्री जिस प्रकार कन्धों पर हाथ रखकर पति का आलम्ब और आलिंगन करती है उसी प्रकार (एषाम् अंसेषु) इन वीर पुरुषों के कंधों पर (रम्भिणी) बलवती अस्त्रादि शक्ति, (रारभे) आश्रय पाती है और (हस्तेषु) हाथों में (खादिः च) अपना खाद्य भोजन और (कृतिः च) क्रिया कौशल या कर्त्तव्य अथवा (खादिः च कृतिः च) हाथों में हस्त त्राण और काटने वाली तलवार (सं दधे) सदा तैयार रहती है। वायुओं के पक्षमें—ये वायुगण जल से पूर्ण होकर 'तृप्तांशु' हो जाते हैं। वे भी खूब जल पान करके सेवकों के समान कार्य करते हैं। उनके झंकारों में विद्युत् गर्जती है। उनके आघातो में 'खादि' अन्न और 'कृति' उनका काटना स्थित हैं। (३) प्राणों के पक्षमें—'पशु' आत्मा, 'रम्भिणी' वाणी, 'खादि' भूख और 'कृति' क्रिया सामर्थ्य।

अव॒ स्वयु॑क्ता दि॒व आ वृथा॑ ययु॒रम॑र्त्याः॒ कश॑या चोदत

त्मना । अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः) वायुगण (स्वयुक्ताः) अपने ही बल से प्रेरित होकर (दिवः वृथा ययुः) आकाश में अनायास आते जाते हैं और (कशया त्मना चोदत) अपनी गति से आप ही सब को प्रेरित करते हैं और वे जिस प्रकार (अरेणवः) रेणुरहित, (तुविजाताः) बलशाली होकर (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमकते सूर्य से रश्मियां पाकर (दृढ़ानि अचुच्यवुः) बड़े दृढ़ वनों, पर्वतों को भी कंपा देते हैं । उसी प्रकार ये (मरुतः) वीर पुरुष और विद्वान् जन (स्वयुक्ताः) धनैश्वर्य के द्वारा नियुक्त होकर (दिवः) द्यौ, अर्थात् तेजस्वी पुरुष के अधीन (वृथा) अनायास ही (अव आ च ययुः) जाते आते हैं, छोटे बड़े सब कार्य करते हैं । वे (अमर्त्याः) साधारण मनुष्यों से भिन्न रहकर (त्मना) स्वयं (कशया) शासन व्यवस्था से (चोदत) प्रजा को संचालित करें । वे (अरेणवः) हिंसादि दोषों से रहित (तुवि-जाताः) बल द्वारा प्रसिद्ध, यशस्वी होकर (भ्राजद्-ऋष्टयः) तीव्र गतिमान् , और चम चमाते शस्त्रों से सुसज्जित होकर (दृढानि चित्) शत्रु के दृढ़ सैन्यों और दुर्गों को भी (अचुच्यवुः) कंपा देते और (दृढ़ानि चित् अचुच्यवुः) स्थायी ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करते हैं । (२) प्राणगण, आत्मा से प्रेरित होने से 'स्वयुक्त' हैं । योगी जन स्व आत्मा में समाहित चित्त होने से 'स्वयुक्त' हैं । अमरण धर्मा होने से 'अमर्त्य' हैं वा वाणी, वेद वाणी और विवेक, दीप्ति 'कशा' है । उससे और आत्म शक्ति से सबको चलाते हैं । दोष रहित, अहिंसा व्रती होने से 'अरेणु' हैं । शुक्र कर्म होने से 'भ्राजद्-ऋष्टि' हैं । दृढ़ स्थायी लोकों को प्राप्त होने से दृढ़ बाधक कारण कार्यादि को दूर करते हैं।

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया । धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३नैतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(ऋष्टिविद्युतः मरुतः) दुधारा तलवार के समान बिजुली को धारण करने वाले जैसे वायु गण होते हैं वे (इषां यामनि) वृष्टियों अन्नों को प्राप्त कराने के लिये (धन्वच्युतः) आकाश से जल बरसाते (पुरु प्रेषाः) बहुत जल फेंकते हैं। प्रश्न यह है कि उनके बीच में कौन सा बल उनको चला रहा है? उत्तर—(एतशः न अ-हन्याः) जैसे उत्तम अश्व बिना ताड़ना के ही मार्ग में जाता है उसी प्रकार (एतशः) शुक्र कान्ति से युक्त, सूर्य (अहन्-यः) जो दिन के करने हारा है वही सब वायुगण को चला रहा है। ठीक इसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो! (ऋष्टि-विद्युतः) विद्युत् के समान रण में दुधार तलवार और आत्मा में ज्ञान दीप्ति को धारण करने वाले (वः) आप लोगों के (अन्तः) बीच वह (कः) कौम है जो (जिह्वया हनू इव) जिह्वा की गति से जिस प्रकार दोनों जबाड़े चलते हैं उसी प्रकार (हनू) शत्रु को हनन करने वाली दायें बायें या स्वपक्ष पर पक्ष की दोनों सेना को (जिह्वया) अपनी वाणी द्वारा ही (रेजति) सञ्चालित करता है। और (इषां यामनि न धन्वच्युतः) आप लोग अन्नों के प्राप्ति के लिये जल बरसाने वाले मेघों के समान आप लोग (इषां यामनि) वाणों और सेनाओं के संचालन के कार्य में, सेनाओं के गन्तव्य स्थान रण में (धन्वच्युतः) धनुष द्वारा शरवर्षा करने, धनुष के बल से शत्रुओं को च्युत करने और धनुष लेकर आगे आने वाले (पुरुप्रेषाः) बहुत से ऐश्वर्यों के लिये उत्कट इच्छा वाले (एतशः न अहन्यः) अश्व के समान बिना ताड़ना के ही मार्ग पर जाने वाले हैं। इसी प्रकार वह आपका सञ्चालक भी (इषां यामनि) सेना सञ्चालन में (धन्वच्युतः) धनुष द्वारा शत्रुओं को गिराने वाला, (पुरुप्रेषाः) बहुत सी उत्तम सेनाओं का सञ्चालक (एतशः न अ-हन्यः) दिन के प्रकाशक सूर्य के समान शत्रु से न मारा जाने योग्य और उत्तम उज्वल कान्तिमान् है। इति षष्ठो वर्गः॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥६॥

भा०—(अस्य रजसः) इस महान् लोक का (परम्) सबसे उत्कृष्ट (महः) बड़ा भारी कारण या आश्रय (क्व स्वित्) कहां है। (क्व अवरम्) 'अवर' अर्थात् उत्पन्न कार्य जगत् कहां, किस पर आश्रित है। हे (मरुतः) विद्वान् लोगों! (यस्मिन् आयत) जिस परम आश्रय पर आप पहुंचते हैं उसका उपदेश करो। इसी प्रकार (रजसः) जल का उत्कृष्ट कारण सूक्ष्म रूप और 'अवर' स्थूल रूप किसके आश्रय है? और देव गण किसके वल से गति करते हैं? जिस प्रकार (विथुरा च्यावयथ) शिथिल जलों को वायु गिरा देते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! वह कौनसा बल है जिससे प्रेरित होकर (विथुरा इव) व्यथित दुखितों को आप प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार वायु गण (अद्रिणा) विद्युत् या मेघ से (त्वेषम् अर्णवम्) दीप्तिमान् जलमय मेघ को (वि पतथ) लाते और बरसाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (संहितं) सर्वत्र समान भाव से व्यापक, सबके लिये हितकारी, (त्वेषम्) सूर्य के समान दीप्तिमान् (अर्णवम्) समुद्र के समान महान्, सब शक्तियों के सागर की (अद्रिणा) मेघ के समान आनन्दवर्षी धर्ममेघ, या आत्मा सहित (विपतथ) विशेष विविध उपाओं से प्राप्त करते हो। वह कौन सा है? उत्तर—वह परमेश्वर है।

सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ७

भा०—(१) वायुओं का (सातिः न अमवती स्वर्वती) जलादि का विभाग और सेवन रोगकारी न होकर सुख देने वाला है। वह वायुओं का विभाग (त्वेषा विपाका, पिपिष्वती) वेगवान्, विविध फलों को पकाने वाला, मेघ के जलों को छिन्न भिन्न कर पीसने वाला होता है। वायु

गणों का (रातिः) दान (भद्रा) सुखजनक, (पृथुज्रयी) बहु वेग युक्त (असुर्या) मेघ लाने वाला, (जञ्जती) बलात् सबकों दबाने वाला, होती है। (२) इसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् जनो ! वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का किया हुआ विभाग भी (सातिः) (अमवती न) अन्यों को कष्ट देने वाला न हो, प्रत्युत (स्वर्वती) सुख देने वाला हो। अथवा (अमवती न स्वर्वती) गृहों से युक्त गृह व्यवस्था या सहायकों से युक्त राज व्यवस्था या ज्ञान से युक्त विद्या के समान (स्वर्वती) सुख देने वाला हो। आप लोगों की (त्वेषा) दीप्ति, चमक, ज्ञान और प्रताप सूर्य की दीप्ति के समान (विपाका) फलों के समान, भोजनों को अग्निताप के समान, नाना प्रकार के उत्तम परिणामों को परिपक्व करने वाली, उत्तम फल वाली हो। और वह (पिपिष्वती) आप लोगों की (सातिः) सेनाओं की विभक्ति अर्थात् विविध भागों में विभक्त होना भी (पिपिष्वती) बहुत अवयवों वाली होकर भी (पिपिष्वती) दानों को चक्की के पाटों के समान शत्रु का प्रत्येक अंग पीस २ डालने वाली हो। और (वः) आप लोगों को (रातिः) दिया दान (पृणतः) पालन करने वाले यजमान स्वामी की दी (दक्षिणा न) दक्षिणा या काम करने के एवज में दिये वेतन के समान कार्य क्षमता को बढ़ाने वाला हो। और वह (पृथुज्रयी) बड़े २ लोगों में भी वेग या शक्ति पैदा कर देने वाला, (असुर्या इव) प्राणों की शक्ति के समान या मेघों के बीच उत्पन्न विद्युत् के समान या बलवान् पुरुषों की सेना के समान (जञ्जती) सबको अपने अधीन करने वाला (भद्रा) और कल्याणकारी सुखदायक हो।

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥८॥

भा०—(यत्) जब वायुगण (अभ्रियां वाचम्) मेघ से उत्पन्न

वाणी अर्थात् गर्जना को (उत् ईरयन्ति) उत्पन्न करते हैं तब (सिन्धवः) जल धाराएं या वेगवान् जल धारा बहाने वाले मेघ (पविभ्यः) विद्युत् के आघातों से (प्रति स्तोभन्ति) बराबर विक्षुब्ध होते हैं और (यद् मरुतः ईम्) जब वायु गण सब तरफ (प्रुष्णुवन्ति) वर्षा करते हैं तब मानो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (विद्युतः) बिजुलियां (अव स्मयन्त) मानो नीचे को मुंह किये इषद् हास करतीं, मुस्कुराती हैं । इसी प्रकार विद्वान् लोग ! जब भी (अभ्रियाम्) मेघ के समान ज्ञान धाराओं के देने वाले निष्पक्षपात, प्रजापति पद पर स्थित होकर (पविभ्यः) परम पवित्र करने वाले ईश्वरोपासना तथा, पवित्र कार्यों के लिये (वाचम् उत् ईयन्ति) वेद वाणी का उच्चारण करते हैं, तब वे (सिन्धवः) बहुत नदियों या बरसते मेघों या गर्जते समुद्रों के समान वे विद्वान् जन (प्रति स्तोभन्ति) 'स्तोभ' नामक सामगानोपयोगी ध्वनि को उत्पन्न करते हैं । और जब (मरुतः) ऋत्विग्जन (पृथिव्यां) पृथिवी पर (ईम्) इस अग्नि को (घृतं) घृत धारा (प्रुष्णुवन्ति) डालते हैं तब (विद्युतः) विशेष कान्तियुक्त अग्नि ज्वालाएं (अव स्मयन्त) प्रत्यक्ष रूप से मुस्कुराती हैं, चमक उठती हैं ।

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्व मादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्निः) सूर्य (महते रणाय) बड़े भारी रमण, अर्थात् जीव लोक के आनन्द पूर्वक रमण करने के लिये (त्वेषम् असूत) अपना प्रकाश, तीक्ष्ण ताप उत्पन्न करता और (अयासाम्) वेग से जाने वाले (मरुताम् अनीकं च असूत) वायु गणों के समूह को भी प्रेरित करता है । और (ते) वे (सप्सरासः) तीव्र वेग से जाने वाले वायु गण (अभ्वम्) जल मय मेघ को (अजनयन्त) उत्पन्न करते हैं (आत् इत्) उसके अनन्तर लोग (इषिराम्) इच्छानुकूल (स्वधाम्) जल और खेतों में अन्न को ही (परिपश्यन्) सब ओर बरसा और उत्पन्न

हुआ देखते हैं उसी प्रकार (पृश्निः) आदित्य के समान तेजस्वी ऐश्वर्य-वान् प्रतापी राजा या सेनापति (महते रणाय) बड़े भारी संग्राम के विजय के लिये (त्वेषं) अपने तेज (अयासां) आक्रमण करने में कुशल (मरुताम् अनीकम्) शत्रुमारक वीर पुरुषों के सैन्य को या (त्वेषम् अनीकम्) अति तीक्ष्ण प्रदीप्त सैन्य को (असूत) उत्पन्न करे और आज्ञा से चलावे । (ते) वे (सप्सरासः) समवाय या दस्ते या दल बना कर चलने हारे वीर जन (अभ्वम्) असामर्थ्य, थकान (अजनयन्त) प्रकट करते हैं । बाद में वे (स्वधाम्) अपने रक्षा और (इषिरां) अभिलषित वेतन और अन्न को भी प्राप्त करते हैं ।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥७॥

भा०—व्याख्या देखो ऋ० १ । १६५ । १५ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[१६६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, भुरिक् पङ्क्तिः । २ पङ्क्तिः ।
५, ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ४ ब्राह्म्युष्णिक् । ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

महाश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महाश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! दुःखों के नाशक ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! (त्वम्) तू (चित्) भी (महः) महान् ही (असि) है । (यतः) क्योंकि तू ही (एतान्) इन सब (महः चित्) बड़े २ लोकों को (त्यजसः) अपने से उत्पन्न पुत्रों के समान ही (वरूता) अपना रहा है, उनकी रक्षा करने हारा (असि) है । अथवा (एतान् महः त्यजसः वरूता) इनको बड़े ऐश्वर्य का प्रदान करके रक्षा कर रहा है । हे (मरुतां वेधः) वायुओं के प्रवर्त्तक सूर्य के समान और शिष्यों के

प्रवर्त्तक ज्ञानवान् गुरु के समान हम सब प्राणियों के (वेधः) पिता के समान सबके उत्पादक ! (सः) वह तू सर्व पूज्य (चिकित्वान्) सब कुछ जानने हारा है। तू (तव हि प्रेष्ठा) तेरे जितने अति प्रिय (सुम्ना) सुख हैं वे (नः) हमें (मनुष्व) प्रदान कर।

अयुंजन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! (मर्त्यत्रा) मनुष्यों के बीच में (विदानासः) विद्वान् लोग (निष्षिधः) बुरे मार्गों और बुरे आचरणों का निषेध करते हुए (ते) तेरे (विश्वकृष्टीः) समस्त मनुष्य प्रजाओं को (अयुञ्जन्) उत्तम कार्य में प्रेरित करें। क्योंकि (स्वर्मीढस्य) सुखों को वर्षाने वाले (प्रधनस्य) उत्तम २ धन के (सातौ) सर्वत्र विभाग कर देने में (मरुतां) विद्वान् पुरुषों की (पृत्सुतिः) सर्व साधारण मनुष्यों के प्रति जो प्रेरणा और दान शीलता होती है वह सदा (हासमाना) आनन्द से युक्त सबको प्रसन्न करने वाली होती है। वायु पक्षमें—वे (मर्त्यत्रा) मरणधर्मा प्राणियों के हितार्थ (निष्षिधः विदानासः) मेघों का लाते हुए (विश्वकृष्टीः अयुञ्जन्त) समस्त किसानों को खेत जुतवा देते हैं। (स्वर्मीढस्य प्रधनस्य सातौ) सुख दायी उत्तम धन अन्नादि के विभाग कार्य में (मरुतां) वायु गणों की (पृत्सुतिः) अन्न दान सब को (हासमाना) आनन्द प्रद होता है।

अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्य के समान अन्धकार को दूर करने और मेघ के समान जल और ज्ञान ऐश्वर्य के देने हारे ! परमेश्वर ! (ते) तेरी ही (सा) वह अवर्णनीय (ऋष्टिः) प्राप्ति, प्रेरणा और शक्ति (अम्यक्) सर्व श्रेष्ठ और सर्वत्र व्यापक है जो (मरुतः) विद्वान्

गण (सनेमि) अति पुरातन सनातन से चले आये (अभ्वं) अनादि सिद्ध ज्ञान का (अस्मे) हमें (जुनन्ति) उपदेश करते हैं। इसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्य ! यह तेरी ही (ऋष्टिः) देदीप्यमान शक्ति है कि (मरुतः) वायुगण (सनेमि अभ्वं जुनयन्ति) पहले से संगृहीत समुद्र के जल को ले आते हैं और ला ला कर बरसाते हैं। और (अतसे) काष्ठ में लगा (अग्निः चित्) अग्नि जिस प्रकार लगकर (शुशुक्वान्) खूब चमकता है और (अतसे) आकाश में (चित् अग्निः शुशुक्वान्) जिस प्रकार सूर्य चमका करता है उसी प्रकार (अतसे) व्यापक आत्मा में (अग्निः चित्) ज्ञानवान् पुरुष भी (शुशुक्वान्) शुद्धज्ञान प्रकाश से प्रकाशित हो। (आपः द्वीपं न) जल जिस प्रकार द्वीप को घेर लेते हैं और उसको अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार (आपः) प्राण गण (द्वीपं) भीतरी और बाहर दोनों ओर से प्राणों को धारण करने वाले देह को (प्रयांसि) बल और अन्न प्रदान करते और पुष्ट करते हैं।

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम्।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः॥४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्य के समान अन्धकारों और शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! (ओजिष्ठया दक्षिणया इव रातिम्) जिस प्रकार अति बल प्रदान करने वाली दक्षिणा के साथ दान करने योग्य द्रव्य राशि को यजमाना पुरोहित के हाथ सौंपता है उसी प्रकार तू भी (ओजिष्ठया दक्षिणया) सब से अधिक बल शालिनी 'दक्षिणा' अर्थात् आत्मा की कार्य करने में समर्थ बलवती शक्ति या सेना के साथ (नः) हम प्रजाजनों को (रातिं) सब ऐश्वर्य देने वाली (रयिं) राज्यलक्ष्मी (दाः) प्रदान कर। हे राजन् (याः) जो (स्तुतः) स्तुतिशील प्रजागण (वायोः) वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् और ज्ञानवान् (ते) तुझको (चकनन्त) चाहती हैं (मध्वः स्तनं न

वाजैः) क्षीर के देने वाले स्तन को जिस प्रकार अन्नों के द्वारा अधिक पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार वे प्रजाएं भी (वाजैः) अपने बलों और ऐश्वर्यों से (मध्वः) मधुर और शत्रु को कंपाने वाले (स्तनं) गर्जन शील तुझ वीर को (पीपयन्त) खूब समृद्ध करें। (२) वायु, सूर्य पक्ष में—हे (इन्द्र) सूर्य या वायो ! तू हमें सर्व सुखदात्री ऐश्वर्य राशियां वायु के गुणों का वरण करने वाली प्रजाएं तुझको चाहती हैं। वे (मध्वः स्तनं) दूध के स्तन के समान जल के देने वाले (वाजैः) यज्ञों द्वारा गर्जन शील मेघ की वृद्धि करें।

त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः॥५॥८॥

भा०—(रायः कस्य चित् ऋतायोः तोशतमाः प्रणेतारः) जिस प्रकार दान योग्य मेघ के जल, जल के इच्छुक किसी भी किसान को खूब प्रसन्न करते और उसको खेत के काम में लगाने वाले होते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! दानशील पुरुष ! (त्वे रायः) तेरे ऐश्वर्य (ऋतायोः) सत्य और धन की इच्छा करने वाले के लिये (तोशतमाः) अति सुख देने वाले और उसको (प्र नेतारः) उत्तम कार्य में लगने वाले हों। इसी प्रकार हे आचार्य ! (त्वे रायः) तेरे देने योग्य ज्ञानोपदेश (ऋतायोः) वेद और सत्य ज्ञान के इच्छुक शिष्य को (तोशतमाः) अज्ञान को अच्छी प्रकार नाश करने और हृदय को सुखी करने वाले और उसे सन्मार्ग में ले जाने वाले हैं। (ये) जो (देवाः) विद्वान् जन, या विद्याभिलाषी जन (पुरा) पहले (गातूयन्ति इव स्म) पृथिवी के समान सब आश्रयों के आश्रय भूत ब्रह्मचर्य, सन्मार्ग और गान योग्य वेद राशि के अभ्यास की इच्छा करते हैं (ते) वे (मरुतः) विद्वान् पुरुष (नः सु मृडयन्तु) हमें खूब सुखी करें। वायुपक्ष में—जो वायु पृथिवी की ओर हैं वे हमें सुखी करें। इति अष्टमो वर्गः॥

प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) सेना पते ! शत्रु हन्तः ! तू (मीळुषः नॄन्) मेघों के समान तुझ पर शस्त्र वर्षाने वाले प्रति पक्षी शत्रु गण पर (प्रति प्रयाहि) प्रयाण कर । उन पर चढ़ाई कर और (महः) बड़े भारी (पार्थिवे) पृथिवी के (सदने) राज्य सिंहासन के प्राप्त करने के निमित्त (यतस्व) यत्न कर । कब कर ? (यत्) जब (एषां) इन अपने वीर सैनिक पुरुषों के (पृथुबुध्नासः) बड़े मूल, आधार वाले, दृढ़ (एताः) अश्व गण, बड़ी २ प्रयाण करने वाली सेनाएं, स्त्रियें और प्रजाएं, (तीर्थे) पार पहुंचा देने वाली नाव पर (अर्यः न) वैश्य के समान (तीर्थे) संग्राम सागर से पार उतारने वाले नायक पुरुष के अधीन रहकर (पौंस्यानि) नाना बल कर्म (तस्थुः) करने को तैयार बैठी हैं । जब भी अपने वीर सैनिकों की सेनाएं उत्तम नायक के अधीन बल पकड़ें तभी वह शत्रुओं पर धावा बोल कर राज्यासन लेने का यत्न करें । (२) वायु, मेघ पक्षमें—(मीळुषो नॄन्) विद्युत् तभी बरसती मेघों पर टूटती है और पृथिवी पर आने का यत्न करती है जब वायुओं के बड़े आश्रय वाले झकोरे बल पकड़ते हैं वायु के झकोरों से पर्वत आदि रगड़ खाकर वे भी बल युक्त विद्युत् से न्यस्त हो जाते हैं तभी मेघोंकी बिजली भी आकर्षित होती है । (३) आचार्य पक्षमें—हे (इन्द्र) धनवन्! विद्वन् ! तू उपदेश अमृत बरसाने वाले नायकों को प्राप्त पार्थिव सदन अर्थात् राज्य संचालन में यत्न कर । जब इन विद्वानों में बड़े आश्रय वाले बलवान् पुरुष (तीर्थे) गुरु के अधीन वीरों की रक्षा का व्रत धार चुके । वे राजा के अधीन विद्वान्, ब्रह्मचारी, बलधारी लोग सेनापति आदि कार्यों पर नियुक्त हों, दुराचारी गुण्डे नहीं ।

प्रति॑ घो॒रा॒णा॒मेता॑ना॒म॒या॒सां॑ म॒रुतां॑ शृ॒ण्व आ॒य॒ता॒मु॑प॒ब्दिः ।
ये मर्त्यं॑ पृत॒ना॒यन्त॒मू॒मै॑र्ऋ॒णा॒वा॒नं न प॒तय॑न्त॒ सर्गैः॑ ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (घोराणां) उग्र वेग से बहने वाले (अयासां) गति शील (एतानाम्) आये हुए और (आयताम्) सब तरफ जाने वाले (मरुतां) वायुओं की (उपब्दिः) ध्वनि सुनाई देती है और जिस प्रकार वे वायु गण (पृतनायन्तम् मर्त्यं) अन्न को चाहने वाले मनुष्य को (ऊमैः) पशु आदि रक्षा साधनों और (सर्गैः) जलों सहित (पतयन्त) प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार धनी लोग (ऊमैः सर्गैः) रक्षाकारी पुरुष या नाना उपायों सहित (ऋणावानं प्रति पतयन्त न) ऋण वाले पुरुष के प्रति अपने को उसके धन का भी स्वामी बतलाते हैं उसी प्रकार मैं वा हम लोग (घोराणाम्) उग्र, दुष्टों को भय देने वाले, (एतानाम्) शुक्ल वर्ण, के वस्त्रों वाले, उत्तम कर्म और ज्ञान से सम्पन्न, (अयासां) ज्ञानवान् , (आयताम्) सब तरफ जाने वाले (मरुतां) वायु और प्राण के समान सर्वोऽपकारी उन परिव्राजकों की (उपब्दिः) उपदेशमयी वाणी (प्रति शृण्वे) बराबर सुनाई दे जो विद्वान् पुरुष (ऊमैः) अपने रक्षा साधनों से और (सर्गैः) नाना प्रकार के उपायों से (पृतनायन्तम् मर्त्यम्) सेना और सहायक मनुष्यों को चाहने वाले पुरुष को भी (ऋणावानम्) ऋणीवान् पुरुष के समान प्राप्त कर, उसे अपने वशकर (सर्गैः) उत्तम उपदेशों से (पतयन्त) उस पर आधिपत्य प्राप्त करते हैं । उसको अपने वश कर लेते हैं । (२) वीर सैनिकों के पक्षमें—वे सेना के इच्छुक शत्रु को ऋणी के समान (पतयन्त पातयन्ति) नाना उपायों से नीचे गिरा देते हैं ।

त्वं मानेभ्यः इन्द्र विश्वजन्या रदा॑ म॒रुद्भिः॑ शु॒रुधो॒ गोअ॑ग्राः ।
स्तवा॑नेभिः स्तवसे देव दे॒वैर्वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥८॥६॥

भा०—सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार (शु-रुधः) अन्धकार के नाशक किरणों को धारने वाली, (गो-अग्राः) किरणों को अपने अग्र भागों पर रखने वाली (विश्वजन्या) सबके हितार्थ अन्नादि के पैदा करने वाली मेघमालाओं को (मरुद्भिः) वायुओं द्वारा छिन्न भिन्न करता है और सब को उनका सुख प्रदान करता है। उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! आचार्य! विद्वन्! तू (विश्वजन्या) समस्त ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली (शुरुधः) शीघ्र ही दुःखों को रोकने और अज्ञान का नाश करने वाली (गो-अग्राः) श्रेष्ठ वाणियों को (मानेभ्यः) अपना मान करने वाले, ज्ञान करने वाले, उत्तम शिष्यों के लिये (रद) खोल २ कर रख। हे (देव) ब्रह्म दान के दातः! तू (मरुद्भिः) प्राणों के समान प्रिय (स्तवानैः) स्तुतिशील, (देवैः) विद्या की कामना करने वाले शिष्य जनों से इस प्रकार (स्त-वसे) प्रार्थना किया जाता है कि हम (इषं) सन्मार्ग में उत्तम प्रेरणा, (वृजनं) पापों का निवारक बल और (जीर-दानुम्) जीवन देने वाला अमृत (विद्याम) प्राप्त करें। इति नवमो वर्गः ॥

[१७०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप्। ४ निचृदनुष्टुप्। ५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम्।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥१॥

भा०—जो (नूनम्) निश्चय से आज (न अस्ति) नहीं है वह (नो श्वः) कल भी नहीं। (तत् कः वेद) उसको कौन जानता है (यत् अद्भुतम्) जो अद्भुत, आश्चर्यजनक या जो कभी हुआ ही नहीं? (अन्य-स्य) जो सब से भिन्न है उस अन्य का (चित्तम्) ज्ञान करने का साधन चित्त, (अभि सञ्चरेण्यम्) इधर उधर सञ्चार करता है, इधर उधर सर्वत्र

विचलित होता रहता है, वह स्थिर नहीं होता (उत) और (अधीतं) अच्छी प्रकार विचार और स्मरण किया हुआ भी (वि नश्यति) विनष्ट हो जाता है। वह भी लुप्त हो जाता है। अर्थात् आज, कल परसों आदि काल के भागों में उत्पन्न अनित्य पदार्थों को कोई नहीं जानता। तब जो आत्मा कभी उत्पन्न नहीं हुआ उसके विषय में भी कोई क्या जाने! वह आत्मा सबसे पृथक् रहने से 'अन्य' है। उसका संकल्प विकल्प साधन चित्त है वह इधर उधर जाता, नाना फल भोग करता, एक स्थान पर नहीं टिकता, इसी कारण पुनः २ चिन्तित भी लुप्त हो जाता है।

किं नं इन्द्र जिघांससि भ्रातंरो मुरुतुस्तवं ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नंः सुमरंणे वधीः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! शक्तिशालिन्! (नः) हम (तव भ्रातरः) तेरे ही भरण पोषण करने वाले वा तेरे द्वारा ही पोषण पाने योग्य, तेरे भाई हैं। तू (नः) हमें (किं जिघांससि) क्यों मारना चाहता है? तू (तेभिः) उनके साथ (साधुया) उत्तम, साधना द्वारा सबको वश करने वाले व्यवहार से (कल्पस्व) आचरण कर, स्वयं अधिक शक्तिमान् बन। (नः) हमें (सम्-अरणे) संग्राम में, एक साथ मिलकर बनी संघ शक्ति से जाने योग्य कार्य में (मा वधीः) मत मार।

किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

भा०—हे(भ्रातः) सबके भरण पोषण करनेहारे! हे(अगस्त्य) वृक्षादि स्थावर पदार्थों को भी वेग से उखाड़ फेंकने में समर्थ, वायु के समान बलशालिन्! और उच्छेद्य अन्धकार को दूर हटाने वाले ज्ञान प्रकाश में उत्तम! सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (नः) हमारा (सखा) मित्र (सन्) होकर हमारे समान ख्याति, नाम, कीर्त्तिवाला होकर (नः अतिमन्यसे) हम

से अधिक अपने को मानता और हमें तिरस्कार करता है (यथा) जिस प्रकार (ते मनः) तेरा चित्त है, तेरा मनन सामर्थ्य है (विद्महि) हम भी उसे प्राप्त करें, जानें तू क्या (अस्मभ्यम् इत) हमें ही या हमें भी (न दित्ससि) नहीं देना चाहता ? क्यों नहीं ? देता ही है । प्राणगण आत्मा को कह रहे हैं वह सबका भरण पोषणकारी होने से भ्राता है । द्रष्टा, श्रोता, मन्ता आदि समान नामों से कहलाने योग्य होने से 'सखा' है। उसके पास 'मनः' मनन सामर्थ्य, ज्ञान सामर्थ्य है। वह अपनी ज्ञान शक्ति ही इन्द्रियों को प्रदान करता है, उसी प्रकार अगस्त्य ज्ञानी पुरुष शिष्यों का सुहृत् है वह उनका अपमान न कर प्रत्युत अपना ज्ञान अन्यों को देना चाहता है । राजा ऐश्वर्य से सबका पोषक है वह प्रजा का अपमान न करके अपना चित्त उनके प्रति दे ।

अरं कृण्वन्तु वेदिं सम॒ग्निमि॑न्धतां पु॒रः ।
त॒त्रामृत॑स्य॒ चेत॑नं य॒ज्ञं ते॑ तनवावहै ॥ ४ ॥

भा०—(वेदिं अरं कृण्वन्तु) वेदि को विद्वान् पुरुष सुशोभित करें उत्तम रीति से उसका निर्माण करें । (अग्निम् पुरः सम् इन्धताम्) अग्निको आगे प्रज्वलित करो (तत्र) वहां (अमृतस्य) अमरणधर्मा नित्य जीव का (चेतनं) ज्ञान कराने वाले (ते) तुझ परमेश्वर की (यज्ञं) पूजा, उपासना रूप यज्ञ को (तनवावहै) हम स्त्री पुरुष मिलकर करें । (२) गृहस्थ पक्ष में—पुत्रादि लाभ कराने और प्रेम से पति का लाभ करने और पति द्वारा वरणीय होने से स्त्री 'वेदि' है । ज्ञानवान् साक्षी पुरुष 'अग्नि' है । उस वेदि में 'अमृत' प्रजा है उसको चेताने वाले गृहस्थ यज्ञ को स्त्री पुरुष मिलकर करें । (३) 'वेदि' सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली पृथिवी है। अग्रणी नायक को सबके आगे शस्त्रास्त्रों से तेजस्वी कर आगे स्थापित करें। 'अमृत' अन्नादि सम्पदा को देने वाले युद्ध, राज्यादि रूप यज्ञ को प्रजा राजा दोनों मिलकर करें। (४) शिष्यजन (वेदिं) ज्ञान कराने

वाली प्रजा को उत्तम रखे। ज्ञानवान् आचार्य रूप 'अग्नि' को समक्ष रखे। अमृत ज्ञानमय प्रभु का ज्ञान कराने वाले ब्रह्मदान यज्ञ रूप को गुरु शिष्य करें।

त्वमी॑शिषे वसुपते॒ वसू॑नां॒ त्वं मि॒त्राणां॑ मित्रपते॒ धेष्ठः॑।
इन्द्र॒ त्वं म॒रुद्भिः॒ सं व॑द॒स्वाध॒ प्राशा॑न ऋ॒तुथा॑ ह॒वींषि॑ ॥५॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! हे (वसुपते) सब ऐश्वर्यों और बसने बसाने वाले जीवों और लोकों के पालक ! तू ही (वसूनां ईशिषे) सब प्राणियों, ऐश्वर्यों और लोकों का स्वामी है। उनको अपने वश कर रहा है। हे (मित्रपते) मित्रों के पालक ! तू (मित्राणां) सब स्नेह करने वालों का (धेष्ठः) पालन पोषण और धारण करने वाला है। (त्वं) तू (मरुद्भिः) प्राणों के समान प्रिय विद्वान् मनुष्यों के साथ (सं वदस्व) उत्तम संवाद कर। (अध) और (ऋतुथा) ऋतु अनुसार (हवींषि) उत्तम अन्नों का (प्र अशान) अच्छी प्रकार भोग कर। (२) अधीन रहने वाले शिष्य अन्तेवासी 'वसु' ब्रह्मचारी हैं। उनका आचार्य 'वसुपति' है। वे ही 'मरुत' हैं उनसे संवाद कर उनको विद्योपदेश देवे। ऋतु अनुसार अन्नों और हविष्यों का भोग करे। परमेश्वर सब लोकों और जीवों का स्वामी है। वह विद्वानों द्वारा प्रजाओं को उपदेश करता है ऋत्वनुसार नाना अन्नों का अन्यों को भोग कराता है। अध्यात्ममें—इन्द्र जीव। मरुत्, वसु, प्राण। वह प्राणों से वाणी का उच्चारण करता है, अन्नों को भोगता है। इति दशमो वर्गः ॥

[१७१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः १, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पङ्क्तिः ॥

प्रति॑ व ए॒ना नम॑सा॒हमे॑मि सू॒क्तेन॑ भिक्षे सुम॒तिं तु॒राणा॑म्।
र॒रा॒णता॑ मरुतो वे॒द्याभि॒र्नि हेळो॑ ध॒त्त वि मु॑चध्व॒मश्वा॑न् ॥१॥

भा०—हे (मरुतः) पुरुषो ! योग्य शिष्यो ! मैं (वः) आप लोगों को (एना नमसा) इस नमाने के साधन, विनय को सिखाने वाले उपाय से (वः प्रति एमि) तुम्हें प्राप्त होता हूं। (सूक्तेन) उत्तम वेद के उपदेश से (तुराणां) अतिशीघ्रकारी, चंचल वृत्ति वाले आप लोगों की (सुमतिम्) उत्तम मति को (भिक्षे) चाहता हूं। आप सब अपना मनोयोग मुझे दें। आप लोग (वेद्याभिः) ज्ञान करने योग्य विद्याओं से (रराणता) आनन्द युक्त हुए प्रसन्न चित्त से (हेळः) क्रोध और हृदय के बीच छुपे अनादर और चंचलता के भाव को (नि-धत्त) वश करो। और (अश्वान्) अपने भोक्ता आत्माओं या इन्द्रियों को (वि मुचध्वम्) विशेष रूप से वश करो। अथवा अपनी ज्ञानेन्द्रियों को विविध दिशाओं में ज्ञान प्राप्त करने के लिये छोड़ो। 'उपसृष्टो मुञ्चति धारणे प्रयुज्यते'। राजा या नायक इन्द्र अन्नादि विनयकारी साधन से सैनिकों को वश करे, उनका चित्त अपनी तरफ़ खेंचे, वेतनादि से सुप्रसन्न चित्त होकर ये क्रोध या अनादर को छोड़कर अश्वों को ठंढा करे या शत्रुओं पर छोड़े।

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे शिष्य जनो ! हे (देवाः) उत्तम विद्या और शुभ गुण, कर्म, उपदेशों की कामना करने वालो ! (एषः) यह (वः) आप लोगों के लिये (नमस्वान्) विनयशीलता से युक्त, विनय से ग्रहण करने योग्य (स्तोमः) उत्तम उपदेश (हृदा) हृदय से (तष्टः) खूब विचार किया गया और (मनसा) मनन द्वारा (धायि) धारण करन योग्य है। (यूयं) आप लोग (मनसा जुषाणाः) मन से इसको ग्रहण करते हुए (ईम्) सब प्रकार से मनसा, वाचा, कर्मणा, (उप आयात) मेरे अति निकट आवो। (यूयं हि) आप लोग ही

(नमसः) अन्नों की वृद्धि करने वाले वायुगण के समान (नमसः) गुरुजनों के प्रति विनय शीलता और 'उत्तम ऐश्वर्य की (वृधासः) वृद्धि करने हारे हो।

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु काम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा॥३॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (स्तुतासः) स्तुति किये जाकर और गुरुओं द्वारा उत्तम रीति से उपदेश प्राप्त करके (नः मृडयन्तु) हमें सदा सुखी करो। (उत) और (मघवा) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य का स्वामी, पूज्य पुरुष (स्तुतः) अति प्रशंसित होकर (नः) हमारे लिये (शंभविष्ठः) अत्यन्त शान्ति और कल्याण का करने वाला हो। हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! (नः) हमारे पास (विश्वा अहानि) सब दिनों (ऊर्ध्वाः) सब से ऊंचे (काम्या) अत्यन्त सुन्दर, उत्तम, (वनानि) सेवने योग्य ऐश्वर्य और (जिगीषा) जीतने योग्य राज्य सुख प्राप्त हों।

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः॥४॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो, विद्वान् पुरुषो! (अस्मात्) इस (इन्द्रात्) ऐश्वर्यवान्, शत्रु हन्ता (तविषात्) बलवान् पुरुष से (ईषमाणः) प्रेरित या भयभीत होता हुआ और उसी से (अहम्) मैं प्रजाजन (भिया) भयभीत होकर (रेजमानः) कांपता रहता हूं। इसलिये (युष्मभ्यम्) तुम्हारे (हव्या) लेने योग्य जो (निशितानि) तेज़ धार वाले शस्त्र अस्त्र हैं उनको हम भी (आरे चकृम) अपने पास रखें और आप लोग भी (नः) हमें (मृळत) सदा सुखी रखो। न हो कि कभी प्रजा और राजा में संघर्ष हो और तुम हमें राजा की तरफ़ से सताने लग जावो।

[यावन्तः स्त्रीपुरुषाः भवेयुः तावन्तः सर्वे शस्त्राभ्यासं कुर्युः]। इति महर्षिदयानन्दः। 'जितने स्त्री पुरुष हों वे सब शस्त्राभ्यास करें' यह भावार्थ इस मन्त्र पर महर्षि ने लिखा है।

येन॒ माना॑सश्चि॒तय॑न्त उ॒स्रा व्यु॑ष्टिषु॒ शव॑सा॒ शश्व॑तीनाम्।
स नो॑ म॒रुद्भि॑र्वृषभ॒ श्रवो॑ धा उ॒ग्र उ॒ग्रेभि॒ः स्थवि॑रः सहो॒दाः॥५॥

भा०—हे (वृषभ) प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे राजन्! सभाध्यक्ष! (शश्वतीनां व्युष्टिषु उस्राः चितयन्त) उषाओं के चमकने पर किरण जिस प्रकार सबको प्रबुद्ध करती हैं (येन शवसा) जिस बल पराक्रम से उसी प्रकार (शश्वतीनां) सनातन से चली आयी प्रजाओं की (व्युष्टिषु) बसतियों में (मानासः) विचारवान्, ज्ञानवान् और माननीय (उस्राः) उत्तम मार्ग में चलने हारे, या वहां के ही रहने वाले पुरुष (चितयन्त) प्रजा को शिक्षित और जागृत करें। हे राजन्! वह तू (नः) हमें (उग्रेभिः) बलवान् तेजस्वी (मरुद्भिः) वीरों और विद्वानों और व्यापारियों से (श्रवः) ज्ञान, बल, कीर्त्ति, ऐश्वर्य (धाः) प्रदान कर। तू स्वयं भी (उग्रः) बलवान् तेजस्वी, (स्थविरः) वृद्ध और स्थिर दृढ़ और (सहोदाः) शत्रु पराजयकारी बल का देने वाला हो। (२) वायुगण के पक्षमें—वायुगण प्रक्षेपकारी होने से 'मान' हैं। गति शील होने से 'उस्र' हैं। सूर्य वृषभ है। वह अन्न देता है।

त्वं पा॑हीन्द्र॒ सही॑यसो॒ नॄन्भवा॑ म॒रुद्भि॒रव॑यातहेळाः।
सु॒प्र॒के॒तेभि॑ः सास॒हिर्दधा॑नो वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम्॥६॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (सहीयसः) अति बलवान् और सहनशील (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर। उनको अपने अधीन राजपुरुष बना कर रख। तू (मरुद्भिः) राष्ट्र देह को प्राणों के समान प्रिय और शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों, विद्वानों

और व्यापारी वैश्यों के सहयोग से (अवयातहेडाः) अपने क्रोध, और अनादर के कारणों को दूर करता (भव) रह और (सुप्रकेतेभिः) उत्तम शुभ, सुखजनक, ज्ञान वाले, ध्वजा चिन्हादि वाले वीरों और विद्वानों के साथ (सासहिः) शत्रु को पराजित करता हुआ और (दधानः) राष्ट्र का पालन करता (भव) रह। और हम प्रजाजन (इषं) उत्तम अन्नादि समृद्धि (वृजनं) शत्रु वर्जन करने योग्य बल और (जीरदानुम्) जीवन (विद्याम) प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१७२]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ३ गायत्री ॥ तृचं सूक्तम् ॥

चित्रो वोऽस्तु याम॑श्चित्र ऊती सु॑दानवः ।
म॑रुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः) वायुगणों का (यामः चित्रः) जाना आना मेघ के जलों और मेघों का एकत्र करने वाला, और अद्भुत होता है वे स्वयं भी (सुदानवः) उत्तम जीवन वृष्टि के देने वाले और (अहिभानवः) विद्युत् द्वारा मेघों के प्रकाशक होते हैं। वे (ऊती) जगत् की रक्षा करने के लिये होते हैं। उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (यामः) जीवन मार्ग, आगमन और प्रयाण भी (चित्रः) अद्भुत, मान करने योग्य और अन्यों को ज्ञान प्रदान करने और चेताने हारा (अस्तु) हो। और आप लोग जो (सुदानवः) उत्तम दानशील, (अहिभानवः) सूर्य के समान तेजस्वी, होकर (ऊती) सब की रक्षा करने और ज्ञान देने के लिये हों। (२) देह में—प्राण गणों का (यामः) आगमन, गति और व्यापन (चित्-रः) चेतना सञ्चार करने वाला हो। जीवन प्रद होने से वे 'सुदानु' हैं। न मरने वाला अविनाशी आत्मा 'अहि' है। उसके भानु अर्थात् तेज और ओज को धारने वाले प्राण 'अहिभानु' हैं। वे देह की रक्षा के लिये होते हैं।

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

भा०—हे (सुदानवः मरुतः) उत्तम दानशील और शत्रुसेना के खण्ड २ करने वाले विद्वान् और राष्ट्र देहके प्राण रूप वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (ऋञ्जती शरुः) जो बहुत वेग से जाने वाली शत्रुओं को संताप देने, जलाने वाली, हिंसा करने वाली, पंक्ति, वाण, धार या शस्त्र है (सा) वह (आरे) हमसे दूर रहे । और (अश्मा) वज्र के समान कठोर अस्त्र या व्यापक, दूर तक फैलाने वाला विद्युत् (यम् अस्यथ) जिसको तुम फेंकते हो वह भी (आरे) दूर ही रहे । (२) हे विद्वानो ! (वः ऋञ्जती शरुः) उत्तम कार्य साधन करने वाली अज्ञान नाशक विद्या है, वह हमारे तुम्हारे (आरे) समीप हो और (अश्मा) वज्र, अभेद्य बल जिसको दूर तक फेंकते हों, जिसको दूर तक चला सकते हों वह भी (आरे) हमारे पास हो । उसका हम प्रयोग कर सकें । (३) प्राणों की रोगादि नाशक शक्ति शरीर को साधने वाली होने से 'ऋञ्जती शरु' है । 'अश्मा' भोक्ता आत्मा है जिसको वे धारण करते हैं । वह दोनों प्राप्त हों ।

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! आप लोग (तृणस्कन्दस्य) जो तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला अत्याचारी राजा है उसके (विशः) अधीन प्रजा को (परिवृङ्क्त) उससे बचाओ । (नः) हमारे (जीवसे) जीवन की रक्षा के लिये हमें (ऊर्ध्वान् कर्त्त) ऊंचा करो । (२) अध्यात्ममें—वायु से जिस प्रकार तृण हिलता है उसी प्रकार चलने वाला यह देह 'तृण-स्कन्द' है । उसके भीतर

प्रविष्ट शक्तियां ये प्राणगण, रोग आदि से बचावें। और उनके दीर्घ जीवन के लिये उनको (ऊर्ध्वान्) ऊपर की ओर, उत्कृष्ट बलवान् बनावें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१७३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ११ पङ्क्तिः । ६, ९, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ बृहती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

गायत्साम॑ नभ॒न्यं॑१ यथा॒ वेरर्चा॑म॒ तद्वा॑वृधा॒नं स्व॑र्वत् ।
गावो॑ धे॒नवो॑ ब॒र्हिष्यद॑ब्धा॒ आ यत्स॒द्मानं॑ दि॒व्यं विवा॑सान् ॥१॥

भा०—हे विद्वन्! (धेनवः) गौएं जिस प्रकार (अदब्धाः) पीड़ित न होकर सुख से (बर्हिषि) यज्ञ में (दिव्यं सद्मानं आविवासान्) उत्तम गृह में आकर रहती हैं उसी प्रकार जब (गावः) सूर्य की किरणें (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (दिव्यं सद्मानं) अपने दिव्य, तेजस्वी निवास या आश्रय स्थान सूर्य को (आ विवासान्) सब तरफ प्रकाशित करदें तब प्रातःकाल के समय तू (यथा) जिस प्रकार भी (वेः) चाहे या जिस प्रकार तू जानता हो, उसी प्रकार तू (नभन्यं साम) अज्ञान के नाश करने वाले या अविनाशी ईश्वर की स्तुति करने वाले, या ईश्वर के साथ आत्मा को बांधने वाले, या सूर्य के समान परमेश्वर से सम्बद्ध, या उच्च स्वर से आकाश भर में गूंजने वाले, (साम) साम को (गायत) गान कर। और (तत्) उस (वावृधानं) सबसे बड़े, सबके बढ़ाने वाले (स्वर्वत्) सब सुखों के स्वामी की हम भी (अर्चाम) स्तुति करें। (यत्) जिसको (दिव्यं सद्मानं धेनव इव) कामना योग्य आश्रय स्थान को दुधार गौवों के समान (गावः) ज्ञान रस देने वाली वेद वाणियें ही (अदब्धाः) कभी नाश को न प्राप्त होकर (बर्हिषि) सबको बढ़ाने वाले यज्ञ या उपासना में (यत् दिव्यं) जिस दिव्य,

परम कमनीय, आनन्दमय (सद्मानं) सबके आश्रय, शरण्य परमेश्वर को (आ विवासान्) सब प्रकार से प्रकट करती हैं। सब वेद वाणियां जिस शरण्य प्रभु के ही स्वरूप को प्रकट करती है उसके स्तुति साम को तू गा। उसी महान् आनन्दमय की हम उपासना करें।

अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

भा०—(वृषा) वर्षा करने वाला सूर्य जिस प्रकार (स्व-इदु-हव्यैः) अपने आल्हादक, जल रूप दानों से युक्त मेघों और (स्व-इदु-हव्यैः) अपने प्रकाशमान, जल ग्राहक किरणों से (अर्चत्) प्रकाशित होता है और (अश्नः मृगः न) भूखे मृग, हरिण या सिंह के समान वह (अतिजुगुर्यात्) ऊपर उठता और अधिक मात्रा में जल को अपने भीतर ग्रहण कर लेता है और वह (मनां मन्दयुः) मनुष्यों को प्रसन्न करता हुआ (होता) जलों को देने वाला हो कर (यजत्रः मर्यः) दानशील मनुष्य के समान (मिथुना) समस्त पुरुषों या वर्गों का (भरते) भरण पोषण करता है। उसी प्रकार (वृषा) प्रजा पर सुखों का वर्षण करने हारा, शत्रुओं पर शस्त्रों का वर्षण करने हारा, विद्वान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष (स्व-इदु-हव्यैः) अपने चमचमाते साधन शस्त्रों से युक्त (वृषभिः) बलवान् शस्त्रवर्षी सैनिकों के साथ (अर्चत्) गमन करे। वह (अश्नः मृगः न) भूखे सिंह के समान (यत्) जब (अति जुगुर्यात्) खूब बढ़कर उद्यम करे शत्रु पर सेनाबल को दण्ड के समान उठाकर उससे पीड़ित करे। और वह (होता) सबको अन्न, वेतनादि देने वाला (यजत्रः) सबका दाता, सबको सत्संगादि कराने वाला, व्यवस्थापक (मर्यः) उत्तम मनुष्य, (मनां) मननशील और शत्रुस्तम्भनकारी पुरुषों के बीच उनकी (मन्दयुः) स्तुति को सुनता हुआ, या उन्हें

प्रसन्न करता हुआ (प्र गूर्त) अच्छी प्रकार उद्यम करता और (मिथुना) समस्त नर नारियों को (प्र भरते) अच्छी प्रकार भरण पोषण करता है।

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार होता (मिता सद्म यन् नक्षत्) परिमित उत्तम गणित विज्ञान और शिल्प विज्ञान के नियमों से मापकर बनाये गये गृह में रहता है और (पृथिव्याः गर्भम् भरत्) पृथिवी रूप स्त्री के गर्भ को पूर्ण कर देता है, या पृथ्वी के गर्भ को धन आदि से पूर्ण कर लेता है उसी प्रकार (होता) किरणों द्वारा जल को लेने हारा सूर्य (यन्) गमन करता हुआ (मिता सद्म) परिमित स्थानों में (नक्षत्) व्यापता है और (शरदः) शरत् अर्थात् वर्ष भर के (पृथिव्यां) पृथिवी के (गर्भम्) मध्य या भीतरी बीजधारक भाग को अर्थात् मध्य भाग को (भरत्) जल से पूर्ण करता है। (नयमानः अश्वः क्रन्दत्) जिस प्रकार सवारी को लेजाता हुआ घोड़ा हिनहिनाता है, (गौः रुवत्) जिस प्रकार वृषभ हंभारता है (अन्तः दूतः) जिस प्रकार राज सभा में दूत अपना संदेश निर्भय होकर कहता है उसी प्रकार (वाक्) यह मध्यमावाणी, विद्युत् गर्जना (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (चरत्) व्यापती है। (२) इसी प्रकार (होता) राष्ट्र की शक्तियों का ग्रहण करने वाला मुख्य अध्यक्ष नये २ उत्तम बने घरों में रहे, पृथिवी को ऐश्वर्य से पूर्ण करे। वह अश्व और वृषभ के समान गर्जे। उसकी आज्ञा वाणी (रोदसी) प्रजा वर्ग और शासक वर्ग या स्वपक्ष परपक्ष, मित्र, शत्रु दोनों पर चले।

ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—(देवयन्तः) विद्वान् और दानशील, राजा को स्वयं

प्राप्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष (अस्मै) इस विजय शील ऐश्वर्य वान् राजा या मुख्य सेनापति के हित के लिये (च्यौत्नानि) शत्रु को पदच्युत करने वाले, ऐसे साधनों, या शस्त्रास्त्रों को (प्र भरन्ते) अच्छी प्रकार प्रयोग करते, शत्रु पर प्रहार करते हैं जो (अषतरा) शत्रु पक्ष के हथियारों की अपेक्षा अधिक वेग से फैलने और जाने वाले, उनकी अपेक्षा अधिक उत्तम चलने वाले हों। हम प्रजागण भी उन स्थानों, यन्त्रों और अस्त्रों को (कर्म) बनावें और तैयार करें। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् पुरुष (दस्म-वर्चाः) शत्रु नाशकारी तेज और पराक्रम से युक्त, या प्रजा नाशक शत्रुओं पर पराक्रमी (सुग्म्यः) उत्तम सुखदायिनी भूमि में सर्व श्रेष्ठ, और पृथिवी के विजय और पालन करने में कुशल होकर (नासत्या इव) परस्पर असत्याचरण से न वर्त्तने वाले दम्पती स्त्री पुरुषों के समान (रथेष्ठाः) रथ पर विराजमान होकर (जुजोषत्) पूर्वोक्त शत्रु नाशक साधनों को स्वीकार करे।

तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥५॥१३॥

भा०—हे विद्वन्! तू (तम् इन्द्रं उ स्तुहि) उस ऐश्वर्यवान् की ही सदा स्तुति कर (यः सत्वा) जो निश्चय से बड़ा बलवान्, (यः) जो (शूरः) शूरवीर, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, (यः रथेष्ठाः) जो रथ या रथसेना पर स्थित, हो। और जो (प्रतीचः चित्) अपने प्रति आने वाले शत्रुओं के साथ (योधीयान्) सबसे अधिक युद्ध करने वाला, (वृषण्वान्) मेघ के समान शस्त्रवर्षी, वीरों का स्वामी, वा बलवान् वीर्यवान्, और (ववव्रुषः तमसः चित्) आवरणकारी अन्धकार को सूर्य के समान शत्रुओं को (विहन्ता) विविध उपायों से नाश करने वाला है। (२) अध्यात्म में—इन्द्र अर्थात् आत्मा परमात्मा सत्व गुण से युक्त होने से 'सत्वा', ऐश्वर्यवान् और पूजा योग्य होने से 'मघवा', देह और

ब्रह्माण्ड रूप रथ पर स्थित, या रस रूप आनन्द में स्थित होने से 'रथेष्ठा' है। वह बड़े योद्धा के समान आवरणकारी तम, अज्ञान का नाशक है।
इति त्रयोदशो वर्गः ॥

प्र यदि॒त्था म॑हि॒ना नृभ्यो॒ अस्त्यरं॒ रोद॑सी क॒क्ष्ये॒३ नास्मै॑ ।
सं वि॑व्य॒ इन्द्रो॑ वृ॒जनं॒ न भूमा॒ भर्ति॑ स्व॒धावाँ॑ ओप॒शमि॑व॒ द्याम् ॥६॥

भा०—(यत्) जो ऐश्वर्यवान् (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (इत्था) इस प्रकार, सचमुच (नृभ्यः) मनुष्यों के हित के लिये (प्र अस्ति) सब कार्य करने में समर्थ है (अस्मै) उसके लिये (कक्ष्येन) अगल बगल में रहने वाले छोटे मकानों के समान (रोदसी) स्वपक्ष और परपक्ष की सेनाएं भी (अरं न) पर्याप्त नहीं है। वह (इन्द्रः) महान् ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक राजा (संविव्य) सबको अच्छी प्रकार अपने वश कर लेता है। और (वृजनं भूम न) शत्रुवर्जक बल जिस प्रकार बहुत प्रजा की रक्षा करता है उसी प्रकार वह भी (भूम) बलवान् होकर बहुत से ऐश्वर्य और बड़े राज्य को (भर्त्ति) धारण करता है और (स्वधावान्) जलमय मेघ जिस प्रकार (ओपशं धाम) समीप विद्यमान अन्तरिक्ष और पृथिवी को भरण पोषण करता है उसी प्रकार वह भी (स्वधावान्) अन्न समृद्धि का स्वामी होकर (ओपशम् इव) समीप सोने वाली स्त्री या बन्धुजन के समान (द्याम्) कामना शील, स्नेहमयी प्रजा को या पृथिवी को (भर्त्ति) पालन करता है। (२) परमेश्वर पक्षमें—(महिना इत्था नृभ्यः अस्ति) वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से इतना भारी हित है कि उसके लिये आकाश और भूमि भी समाने को पर्याप्त नहीं है, वह पापनिवारक बल स्वरूप (भूम) महान् आत्मा सब में व्यापक है। वही शक्तिमान् होकर पृथिवी को मेघ के समान धारण करता है।

स॒मत्सु॑ त्वा शूर स॒ताम॑ु॒रा॒णं प्र॑प॒थिन्त॑मं परितंस॒यध्यै॑ ।
स॒जोष॑स॒ इन्द्रं॒ मदे॑ क्षो॒णीः सू॒रिं चि॒द्ये अ॑नु॒मद॑न्ति॒ वाजैः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(क्षोणीः सूरिं चित् वाजैः) भूमियां जिस प्रकार अन्नों को प्राप्त होकर सूर्य को लक्ष्य करके (अनु मदन्ति) बहुत प्रसन्न होती हैं उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर ! (ये) जो (क्षोणीः) भूमिवासी प्रजाएं (वाजैः) अपने ऐश्वर्यों, बलवान् अश्वों और वीरों के साथ (सूरिं) अपने प्रेरक, विद्वान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (मदे) हर्ष के अव-सरों में (अनुमदन्ति) स्वामी के साथ २ बड़ा हर्ष अनुभव करती हैं वे ही (समत्सु) संग्राम के अवसरों में (सताम् उराणां) सज्जनों के बल को बढ़ाने वाले (प्रपथिन्तमम्) सबसे उत्तम मार्ग में चलने वाले (त्वा) तुझको (सजोषसः) प्रेम और उत्साह से युक्त होकर (परि तंस-यध्यै) सब तरफ से सुशोभित करने के लिये तैयार रहते हैं।

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ८

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! (ते) तेरे (सवना) समस्त ऐश्वर्य यज्ञ यागादि भी (समुद्रे आपः) समुद्र या अन्तरिक्ष के जलों के समान (एवा हि शम्) सदा निश्चय से सुख और कल्याणकारी होते हैं (यत्) जब (ते) तेरी (देवीः) दिव्य गुण वाली उत्तम प्रजाएं (आसु) इन आप्त पुरुषों और प्राणों में (मदन्ति) अति हर्ष प्राप्त करती हैं। (यदि) जब तू (सूरीन् जनान् चित्) उत्तम उत्तम, माननीय विद्वान् पुरुषों को (धिषा) उत्तम आदर सत्कार और उत्तम प्रज्ञा या चित्त से (वेषि) प्राप्त होता है तब (ते) तेरी (विश्वा) सब प्रकार की (गौः) मधुर वाणी अर्थात् आज्ञा भी, (अनु जोष्या) अनुकूल होकर सेवन करने योग्य हो जाती है। राजा विद्वानों से उत्तम ज्ञान प्राप्त करे तो राजा की सभी आज्ञाएं पालने योग्य, सुखकारी हो जाती हैं जब आप्त प्रजाएं या देवियां इन सामान्य प्रजाओं के बीच समुद्र में जलों के समान प्रसन्न स्वच्छ सदा सन्तुष्ट होकर रहती हैं तब राजा वा गृहपति के सब कार्य, और

ऐश्वर्य भी सबको शान्तिदायक होते हैं। (२) परमेश्वर पक्षमें—ईश्वर की सब प्रेरणाएं, जगतों की उत्पन्न की सृष्टियां और उसकी स्तुति यागादि भी शान्तिदायक होते हैं जब उत्तम दिव्य भाव वाली प्रजाएं इन क्रियाओं में रमें। हे परमेश्वर ! जब तू विद्वान् जनों और सूर्यों को भी ज्ञानपूर्वक प्रेरता और उनको ज्ञान दृष्टि और कर्म योग से प्राप्त होता है (ते अनु) तुझे लक्ष्य करके सब वाणी सेवन करने योग्य होती हैं।

असा॑म॒ यथा॑ सुष॒खाय॑ एन स्वभि॒ष्टयो॑ न॒रां न शंसैः॑।
अस॒द्यथा॑ न॒ इन्द्रो॑ वन्दने॒ष्ठास्तु॒रो न कर्म॒ नय॑मान उ॒क्था ॥६॥

भा०—(नरां शंसैः न) जिस प्रकार नायक अग्रणी पुरुषों के उत्तम उपदेशों से लोग (सु-अभिष्टयः) अपनी उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने में सफल होते हैं उसी प्रकार हे (इन) स्वामिन् ! पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त करने कराने हारे नायक विद्वान् हम लोग (शंसैः) उत्तम उपदेशों से ही (स्वभिष्टयः) सुखदायी कामनाओं को प्राप्त होकर (यथा) उत्तम रीति से (सुसखायः) उत्तम मित्र भाव से सखा होकर रहें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष जिस प्रकार (वन्दनेष्ठाः) सत्कार पूजा और स्तुति में दत्तचित्त होकर (उक्था नयमानः) उत्तम स्तुत्य पदार्थ प्रदान करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (यथा) जैसे भीतर वैसे (नः) हमारे (वन्दनेष्ठाः असत्) स्तुति प्रार्थना और उपासना के भीतर विद्यमान रहे। (तुरः कर्मा) जिस प्रकार वेगवान् रथ या पुरुष हरकाम बहुत शीघ्र फुर्त्ती से कर लेता है उसी प्रकार (तुरः) सब विघ्नों का नाशक, शीघ्र फलप्रद परमेश्वर (उक्था) उत्तम २ वेदोपदेशों और पदों को (नयमानः) प्राप्त कराता (असत्) रहे।

विष्प॑र्धसो न॒रां न शंसै॑र॒स्माका॑स॒दिन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः।
मि॒त्रायुवो॒ न पूर्प॑तिं॒ सुशि॑ष्टौ मध्या॒युव॒ उप॑ शिक्षन्ति य॒ज्ञैः॥१०॥१४

भा०—(नरां शंसैः न) जिस प्रकार उत्तम मार्ग के नायक

पुरुषों के उपदेशों से मनुष्य (विष्पर्धसः) परस्पर स्पर्धा या द्वेष संघर्ष को छोड़कर प्रेमी हो जाते हैं उसी प्रकार (अस्माकम्) हमारे बीच (वज्रहस्तः) दण्ड, शासन को अपने हाथ में संभालने वाला बलवान्, पराक्रमी, न्यायशील राजा रहे। हम लोग कलह हीन होकर परस्पर प्रेम से रहें। धर्मविरुद्ध स्पर्द्धा न करें। और जिस प्रकार (मित्रायुवः) मित्रता चाहने वाले और (मध्यायुवः) मध्यस्थ होने के इच्छुक राजा गण (सुशिष्टौ) उत्तम शासन में रहकर (पूर्पतिम्) पुर या नगर के स्वामी राजा को (यज्ञैः) नाना दानों, वा उत्तम कर्मों और परस्पर संगति या मेल मिलापों भेंट पुरस्कारों से (उपशिक्षन्ति) उसको देते हैं उसी प्रकार हे ईश्वर तू ज्ञान वज्र से अज्ञान दूर करने हारा होकर (अस्माकं असत्) हमारा ही होकर रह और उत्तम पुरुषों द्वारा शिक्षाओं से हम भी (न) मानो (विस्पर्धसः) द्वेष रहित होकर, या नाना स्पर्द्धा वाले, एक दूसरे से बढ़ने की अभिलाषाएं करते हुए (मित्रायुवः मध्यायुवः) मित्रों के इच्छुक और मध्यस्थ पुरुषों के इच्छुक होकर (यज्ञैः) उत्तम उपासना और सत्संगों द्वारा इस देह पुरी के पालक आत्मा को (उप शिक्षन्ति) शिष्य के समान अति समीप पहुंचकर शिक्षा करते, उसकी साधना करते हैं।

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११॥

भा०—(कश्चित) कोई ही उत्तम (यज्ञः) परस्पर संगति योग्य या बड़ादानशील सहयोगी या राजधर्म (हिस्य) निश्चय से (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा को (ऋन्धन्) समृद्ध कर देता है। और कोई दूसरा (मनसा) चित्त से (जुहुराणः) कुटिलता करता हुआ (परियन्) इधर उधर भटक जाता है (न) जिस प्रकार (ओकः) कोई स्थान (तीर्थे) घाट में (तातृषाणम्) पियासे को भी (अच्छ) भली प्रकार उसे प्राप्त होकर

उसकी प्यास बुझा देता है और (न) जैसे कोई २ (दीर्घः अध्वा) लम्बा रास्ता भी (सिद्‌ध्रम्) जाने वाले पथिक को (आ कृणोति) इधर उधर कर देता, सब तरफ घुमाया करता है। (२) इसी प्रकार कोई आत्मा या परमेश्वर की उपासना का साधन इन्द्र को बढ़ा देता अर्थात् इन्द्र के समृद्ध रूप को प्रकट कर देता है और मन से कुटिल सदा इधर उधर भटकता है। तीर्थ में कोई स्थान सुगमता से प्यासे की प्यास बुझा देता है और लम्बा रास्ता यात्री को भटका देता है। इसलिये उपासना से ही आनन्द धाम प्रभु को पावे, मिथ्या व्यभिचारी चित्त से उसको न ध्यावे।

मो षू ण॑ इन्द्रात्र॑ पृत्सु दे॒वैरस्ति॒ हि ष्मा॑ ते शुष्मिन्नव॒याः।
म॒हश्चि॒द्यस्य॑ मी॒ळ्हुषो॑ य॒व्या ह॒विष्म॑तो म॒रुतो॒ वन्द॑ते॒ गीः॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमारा (अवयाः) नीचे गिराने हारा (मो सु) कभी न हो। प्रत्युत (अत्र) इस जगत् में (पृत्सु) सेनाओं और संग्रामों के बीच में (ते) तेरा (अवयाः) शत्रुओं और पापों को दूर करने वाला वज्र या सामर्थ्य (देवैः) विजयाकांक्षी सैनिकों के साथ ही (अस्ति हि स्म) रहा ही करता है। (यस्य) जिस (महः चित् मीढुषः) महान्, मेघ के समान जल वर्षाने वाले वीर्यवान्, बलवान् शस्त्रवर्षी, तेरी (यव्या गीः) शत्रु को दूर कर देने वाली वाणी (हविष्मतः मरुतः) ग्रहण करने योग्य वेतन पुरस्कार आदि पाने वाले वीर भटों को (वन्दते) बाद से प्रसंशा करती है वह तू हमें कभी संकट में न डाल।

एषः स्तोम॑ इन्द्र॒ तुभ्य॑म॒स्मे ए॒तेन॑ गा॒तुं ह॑रिवो विदो नः।
आ नो॑ ववृत्याः सुवि॒ताय॑ देव वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम्॥१३॥१५

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! राजन् ! (अस्मे) हमारा (एषः) यह (स्तोमः) बल, संघ और स्तुतिवचन, (तुभ्यम्)

वेरे हित के लिये है। (एतेन) इससे तू (नः) हमारे लिये (गातुं) पृथिवी, और सन्मार्ग को (विदः) प्राप्त करा। हे (हरिवः) अश्व सैन्य के स्वामिन् ! हे (देव) विजयशील ! अन्नदातः ! देव ! राजन् ! तू (सुविताय) अपने ऐश्वर्य की वृद्धि, रक्षा और उत्तम प्रयाण के लिये (नः) हमें (आववृत्याः) सब तरफ भेज। और हम सर्वत्र (इषं) उत्तम, अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन या आजीविका देने वाले उपाय को (विद्याम) प्राप्त करें। इति पञ्चदशो वर्गः।

[१७४]

अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः। २, ३, ६, ८, १० भुरिक् पङ्क्तिः। दशर्चं सूक्तम्॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य युक्त ! (त्वं) तू (राजा) राजा, सबका स्वामी, तेज, पराक्रम, न्याय, विद्या और प्रभाव से देदीप्यमान हो। तू (नॄन्) मनुष्यों और उत्तम नायक लोगों और (ये च) जो (देवाः) दानशील, धनाढ्य और विद्यादाता, ज्ञान से चमकने वाले, सूर्य की किरणों के समान ज्ञान के प्रकाशक विद्वान् हैं उनकी भी (रक्ष) रक्षा कर। हे (असुर) मेघ के समान सुखों के वर्षक ! हे बलवन् ! (त्वं) तू (अस्मान् पाहि) हम प्रजाजनों का पालन कर। (त्वं) तू (नः) हमारा (सत्पतिः) उत्तम पुरुषों और उत्तम वेदमय सत्य ज्ञान का पालक और स्वामी, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ पूज्य है। (त्वं) तू (नः) हमें (तरुत्रः) दुखों से तारने वाला, (सत्यः) बलवान्, सज्जनों में भी सर्वश्रेष्ठ, (वसवानः) सब धनों को ला देने वाला एवं बसी प्रजाओं को अपनी छत्रछाया में रखने वाला और (सहोदाः) बलप्रदान करने वाला है।

दनो॒ विश॑ इन्द्र मृ॒ध्रवा॑चः स॒प्त यत्पुरः॒ शर्म॒ शार॑दी॒र्दर्त् ।
ऋ॒णोर॒पो अ॑नव॒द्यार्णा॒ यूने॑ वृ॒त्रं पु॑रु॒कुत्सा॑य रन्धीः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (दनः) दानशील चित्त वाले उदार (विशः) प्रजाओं को (मृध्रवाचः) अति कोमल वाणी बोलने वाला कर । वे धनादि के मद में परुष भाषण न किया करें । (यत्) जिस प्रकार सूर्य (सप्त शारदीः दर्त) वर्ष की सातों ऋतुओं को खण्ड २ करता और (अपः ऋणः) मेघों द्वारा जल प्रदान करता है । और (यूने) संयोग विभाग करने में समर्थ (पुरुकुत्साय) बहुत से वज्रों से या विद्युत् से युक्त वायु के लिये (वृत्रं) जल या मेघ को छिन्न भिन्न करता है । उसी प्रकार (यत्) जब तू (सप्त) सात (शारदीः पुरः) शत्रुओं की हिंसाकारिणी पुरियों को (दर्त्) नाश करे, हे (अनवद्य) अनिन्दनीय ! हे स्तुत्य ! तू (अर्णाः अपः ऋणोः) जलों के समान ऐश्वर्यों को प्रदान कर और (पुरुकुत्साय) बहुत से शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र के युवक गण के प्रोत्साहन के लिये या उसके बल पर (वृत्रं) नगर के घेरने वाले शत्रुओं को (रन्धीः) विनाश कर । अथवा—हे इन्द्र तू (मृध्रवाचः विशः) बड़ी २ वाणियों वाली या उद्यम युक्त बलवान् वाणियों वाली प्रजाओं को भी (दनः) अपने अधीन दमन कर या उनको (दनः = नदः) और उत्साह से मुखरित वा सम्पन्न कर कि वे तेरी स्तुति करें । शेष पूर्ववत् ।

अजा॑ वृ॒त इ॑न्द्र॒ शूर॑पत्नी॒र्द्यां च॒ येभि॑: पुरुहूत नू॒नम् ।
रक्षो॑ अ॒ग्निम॒शुषं॒ तूर्व॑याणं सिं॒हो न दमे॒ अपां॑सि॒ वस्तोः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! शत्रुहन्तः ! राजन् ! तू (वृतः) नायक, मुख्य सेनापति वरा जा कर (शूरपत्नीः) शूर वीर पुरुषों को पालनकरने वाली वा शूर पति वाली सेनाओं को और (द्याम् च) तुझे अपने मनसे चाहने वाला इस पृथिवी को भी पत्नी और कमनीय स्त्री के समान (अज) संचा-

लित कर, उसे प्राप्त हो। और साथ ही (वृतः शूरपत्नीः) शूर वीर सेनापति वाली, अपने नगर को घेरने वाली शत्रु सेनाओं को (अजः) दूर फेंक, उनको मार भगा। हे (पुरुहूत) बहुतों से स्मारण करने योग्य ! (येभिः) जिन वीर पुरुषों के साथ तू (अशुषं) शोष या पीड़न से रहित, अन्यों को पीड़ा न देने वाले (तूर्वयाणं) शीघ्र गामी रथों के स्वामी, या (तूर्वयाणम्) हिंसाकारी प्रयाण करने में कुशल, (अग्निं) ज्ञानी, अग्रणी नायक को अवश्य (रक्ष उ) सुरक्षित रख। जिससे वह (अपांसि) सब कर्मों और राष्ट्र के कार्यों पर (वस्तोः) रहने के लिये और (दमे) उच्छृंखलों पर दमन करने के लिये (सिंहः न) सिंह के समान निर्भर रहकर राष्ट्र की रक्षा करे।

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! शत्रुनाशकारिन् ! (सस्मिन् योनौ) एक ही संग्राम में, एक ही स्थान पर (ते) तेरे (पवीरवस्य मन्हा) वज्र की गर्जती ध्वनि के महान् सामर्थ्य से ही तेरे शत्रुगण (शेषन् उ) पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। यह सब (ते प्रशस्तये) तेरी ख्याति के लिये ही है। सूर्य या तीव्र वायु या विद्युत् जिस प्रकार (अर्णांसि अवसृजत्) जलों को नीचे बहाता है और (गाः) ध्वनि वाणियों या गर्जनाओं को भी (अवसृजत्) उत्पन्न करता है और वह (धृषता) बड़े बल से (हरी तिष्ठत्) गतिशील वायु और मेघ पर स्थित होकर (वाजान् मृष्ट) अन्नों को समृद्ध करता है उसी प्रकार राजा भी (यत्) जब (अर्णांसि अव सृजत्) अपने सैनिक बलों को अपने अधीन खड़ा कर लेता है तब (युधा) युद्ध द्वारा (गाः च अवसृजत्) आज्ञा वाणियों को प्रकट करता या भूमियों को अपने अधीन कर लेता है और (हरी तिष्ठत्) वेगवान् दो अश्वों पर स्थिर रहकर रथ में बैठकर, (धृषता) शत्रुपरा-

जयकारी बल से (वाजान् मृष्ट) ऐश्वर्यों और संग्रामों पर विजय प्राप्त करता है। (२) अध्यात्म में—उत्तम स्तुति की वाणी के बल से अपने ही योनि, आत्मा में (ते शेपन्) इन्द्र आत्मा की सब वासनाएं या बाधक वृत्तियां प्रसुप्त हो जाती हैं। वह योग द्वारा वाणियों और कर्मों पर वश करता है। प्राण और अपान के बल पर (वाजान्) विभूतियों को जीतता है।

वह॒ कुत्स॑मिन्द्र॒ यस्मि॑ञ्चा॒कन्त्स्यू॑म॒न्यू ऋ॒ज्रा वात॒स्याश्वा॑।
प्र सूर॑श्च॒क्रं वृ॑हताद॒भीके॒ऽभि स्पृधो॑ यासिष॒द्वज्र॑बाहुः॥५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, शत्रुनाशक सेनापते! (वातस्य) वायु के वेग से जाने वाले (ऋज्रा) सरल गति वाले, (स्यूमन्यू) सुख प्रद (अश्वा) दोनों अश्वों को और (कुत्सम्) शत्रु के सैन्यों को काट गिराने वाले शस्त्रास्त्र बल को भी (यस्मिन्) जिस पर तू (चाकन्) चाहे उस पर (वह) चढ़ाले, उस पर सेना बल और अस्त्र बल से चढ़ाई कर। तू (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अभीके) अपने समीप अपने (चक्रं) राज्य चक्र को (प्र वृहतात्) खूब बढ़ा और उसका भार अपने ऊपर अच्छी प्रकार ले। तब (वज्रबाहुः) शस्त्र बल को हाथ में लेकर (स्पृधः) स्पर्धालु शत्रुओं पर (अभि यासिषत्) आक्रमण कर। (२) अध्यात्म में दो ऋतुगामी अश्व प्राण अपान हैं जो वात अर्थात् मुख्य प्राण के दो रूप हैं। इन्द्र आत्मा है। वह जिस पर भी चाहे अपनी स्तुति कारी वाणी का प्रयोग और प्राणापान का बल रोककर करे। वह आत्मा सूर्य के समान तेजस्वी होकर मुख्य 'चक्र' सहस्त्र दल को पहुंचे और ज्ञान के वज्र को हाथों में लेकर 'स्पृधः' बाधक वृत्तियों पर विजय करे। इति शोडषो वर्गः॥

ज॒घन्वाँ इ॑न्द्र मि॒त्रेरू॑ञ्चो॒दप्र॑वृद्धो हरिवो॒ अदा॑शून्।
प्र ये पश्य॑न्नर्य॒मणं॒ सचा॒योस्त्वया॑ शू॒र्ता वह॑माना॒ अप॑त्यम्॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाशक सभापते ! राजन् ! तू (चोदप्रवृद्धः) चोदना अर्थात् वेदाज्ञा के बल से सब से उत्तम और बढ़ी हुई शक्तिसे युक्त, सब से बड़ा और आदरणीय होकर (अदाशून्) अदानशील, लोभी, शत्रुरूप दुष्ट (मित्रेरून्) मित्र अर्थात् स्नेही लोगों पर भी हिंसा का प्रयोग करने वाले, मित्रघाती, कृतघ्नों को (जघन्वान्) दण्ड देने वाला है। (ये) जो लोग तुझ (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुओं को भी वश करने में समर्थ (प्र पश्यन्ति) अच्छी प्रकार जान लेते हैं वे भी (आयोः) मनुष्यों के (अप-त्यं) सन्तानों तक को अथवा (अ-पत्यम्) मनुष्य प्रजा के उस धन को जिसके वे स्वामी नहीं हैं (वहमाना) उठाते हुए, हरते हुए पकड़े जावें तो वे धूर्त लोग (सचा) एक साथ समवाय बल से हे राजन् ! (त्वया) तेरे द्वारा (शूर्त्ताः) दण्डित किये जाया करें।

रप॑त्क॒विरि॑न्द्रा॒र्कसा॑तौ॒ क्षां दा॒साये॑प॒बर्ह॑णीं कः।
कर॑त्ति॒स्रो म॒घवा॒ दानु॑चित्रा॒ नि दु॑र्यो॒णे कुय॑वाचं मृ॒धि श्रे॑त्॥७॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी, बुद्धिमान् पुरुष (सातौ) उत्तम अन्न को प्राप्त करने के निमित्त (दासाय) भृत्य वर्ग के लिये (क्षाम्) उत्तम और निवास करने की भूमि का उपदेश करे। वह (क्षाम्) पृथिवी को (उपबर्हणीं) खूब ऐश्वर्य बढ़ाने वाली (कः) बनावे। (मघवा) ऐश्वर्यवान् , उत्तम पूजनीय पुरुष ही (तिस्रः) तीनों प्रकार की पर्वतमय, सम, और जलमय स्थली, अथवा उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों को (दानुचित्राः) उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और सुखप्रद पदार्थों से अद्भुत रूप से पूर्ण (करत्) करे। और वही (दुर्योणे मृधि) दुखदायी रणांगण में (कुयवाचं) कुत्सित वाणी के बोलने वाले को (निः श्रेत्) खूब मारे। अथवा—जो कवि विद्वान् (अर्कसातौ) पूज्य पुरुष प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश करता है वही (दासाय) प्रजा के नाश करने वाले असुर के लिये (क्षाम् उपबर्हिणीं कः) भूमि को उसका नाशकारणी

बना देता है। इसी लिये जो तीनों प्रकार की भूमिओं को कल्पवल्ली बनाता है वही कुवाच्य कहने वाले को दारुण संग्राम में कुचल डालता है।

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (नव्याः) नये विद्वान् लोग (ते) तुझे (ता) वे अनेकानेक (सना) सनातन से चले आये प्रजा-पालनकारी धर्मों का (आ अगुः) उपदेश करें, तुझे कहें। तू (पूर्वीः) पहले की (नभः) शत्रु सेनाओं को (अ-वि-रणाय) विशेष युद्धादि के न करने के लिये (सहः) पराजित कर। तू (पुरः) शत्रु की नगरियों को (भिनत्) तोड़ डाल, और (अदेवीः) दानशील करप्रद प्रजाओं से भिन्न (भिदः) फूट डालने या स्वयं फूटने वाली, अपने से भिन्न, द्रोही लोगों को (ननमः) निरन्तर नमा। और (अदेवस्य) करादि न देने वाले, अव्यवहारज्ञ, या देव, राजा को न स्वीकार करने वाले, अराजक, नीच (पीयोः) हिंसक पुरुष का (वधः) हनन कर, उसे दण्ड दे।

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्य और विद्युत् के समान शत्रु को नाश करने हारे ! (त्वं) तू वायु के समान (धुनिः) शत्रु को कंपा देने हारा हो। (न) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (धुनिमतीः अपः) कांपती हुई जल धाराओं को (स्रवन्तीः सीराः ऋणोः) बहती नदियों के रूप में बहा देता है उसी प्रकार तू भी (धुनिमतीः) शत्रु को कंपा देने वाले नायकों वाली (अपः) प्रजाओं को (स्रवन्तीः सीराः न) बहती नदियों या देह में बहती नाड़ियों के समान (ऋणोः) प्रवाह में सञ्चालित कर। (यत्) जो तू हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुहिंसक ! (समुद्रम्

अति) समुद्र को भी अति क्रमण करके (पर्षि) अपनी प्रजा और सेना को पालन करने में समर्थ है इसलिये तू (तुर्वशं) शीघ्रता से जाने वाले अपने अधीन मनुष्य, अर्थात् तीव्र गतिवाले यानों से गमनागमन करने वाले अपने अधीन प्रजाजन को और (यदुम्) यत्नशील उद्यमी, पुरुषों को (स्वस्ति) सुख से, (समुद्रम् अति पारय) समुद्र के भी पार कर। उन संकटों से पार उतार। (२) अध्यात्म में–सबका सञ्चालक परमेश्वर 'धुनि' है समस्त लोक और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु और आत्मा सहित लिङ्ग शरीर 'धुनिमती आपः' हैं। वह उनको आप से आप बहती नदियों के समान निरन्तर चला रहा है मानों वे अपनी ही प्रवृत्ति से निरन्तर से बह रहे हैं। वह परमेश्वर सब संकटों से जीवों को पार करता और पालन भी करता है। मनुष्य चतुर्वर्ग की कामना करने से 'तुर्वश', और यत्नवान् होने 'यदु' है।

त्वम॒स्माक॑मिन्द्र वि॒श्वध॑ स्या॒ अवृ॑कतमो न॒रां नृ॑पा॒ता।
स नो॑ वि॒श्वासां॑ स्पृ॒धां स॑हो॒दा वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम्॥१०॥१७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारे में से (विश्वध) सब प्रकार से (अवृकतमः) सबसे अधिक ईमानदार और कृपालु, चौर्य वृत्ति से रहित, और (नरां) समस्त नायक पुरुषों में सबसे उत्तम (नृपाता) मनुष्यों का पालक (स्याः) होकर रह। (सः) वह तू (नः) हमारी (विश्वासां) समस्त (स्पृधाम्) स्पर्धाओं, युद्धक्रियाओं और संग्रामकारी सेनाओं के बीच में (सहोदाः) शत्रुविजयकारी बल को देने वाला हो। जिससे हम लोग (इषं) अन्न, अभिमत पदार्थ, (वृजनं) शत्रुवर्जक बल, और (जीरदानुम्) जीवनप्रद सामर्थ्य (विद्याम) लाभ करें। (२) वृक इति वज्र नाम। हे परमेश्वर! तू हमारे लिये सबसे अधिक सौम्य और हमारा निःशस्त्र रक्षक, सब का पालक है, हमारी (स्पृधां) इच्छाओं का तू बलप्रद हो। हम अन्न, बल, जीवन प्राप्त करें। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१७५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । उष्णिक् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

भा०—(पात्रस्य इव) जिस प्रकार पात्र में रखा हुआ (मदः) आनन्ददायक नीरोगजनक उत्तम ओषधियों का सार देह में (मत्सरः) हर्ष का सञ्चार और तृप्ति करने वाला होता है और वह मनुष्यों द्वारा पान किया जाता है (ते) तुझ (पात्रस्य) समस्त प्रजा के पालक का (मदः = दमः) दमन कारी सामर्थ्य ही (महः) महान् है और (मत्सरः) सबको हर्ष देने वाला होता है जिससे तू स्वयं भी (मत्सि) अति हर्ष युक्त रहता है और वह ही जनों द्वारा (अपायि) पालन किया जाता है, अर्थात् सब उसके अधीन रहते हैं । हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों, अश्वसैन्य और विद्वानों के स्वामिन् ! हे (वृष्णः ते) प्रजा पर सुखों की मेघ के समान वर्षा करने वाले ! (ते) तेरा (वृषा) अति बलवान् (वाजी) ऐश्वर्यवान् , अश्ववत् बलवान् प्रजावर्ग या शासक वर्ग, प्रजाजन ही (इन्दुः) चन्द्र के समान आल्हादकारी और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला और (सहस्रसातमः) सर्वोत्तम सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाला, सहस्रों को ऐश्वर्य विभक्त कर देने वाला हो । (२) हे समस्त लोकों के स्वामिन् ! प्रभो ! तेरा परमानन्द महान् आल्हाददायक है । उससे तू पूर्ण आनन्दमय है । वह हमें भी प्राप्त हो । वह ऐश्वर्यमय, तेरा आनन्द सुखों का वर्षक सहस्रों में सुखों का विभाग कर रहा है ।

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरा (मत्सरः) हर्षकारी (मदः) दमनकारी शासक वर्ग (वरेण्यः) नायक रूप से स्वीकार करने योग्य (वृषा) बलवान् होकर (नः) हमें (आ गन्तु) प्राप्त हो ! हे इन्द्र ! तू, या वह शासक वर्ग (सहावान्) शत्रुपराजयकारी बल वाला, (सानसिः) ऐश्वर्य का सर्वत्र विभाग करने वाला, (पृतनाषाट्) शत्रु सेनाओं और प्रजा के मनुष्यों को भी दबाने हारा, (अमर्त्यः) कभी नहीं मरता; या वह साधारण मनुष्य से अधिक बलशाली और अधिकार वान् हो । (२) परमेश्वर का हर्षकारी सर्व श्रेष्ठ परमानन्द हमें भी प्राप्त हो । वह सब दुखों के सहन शक्ति वाला, सब सुखों का दाता, सबको विजेता और अमर, अविनाशी है ।

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से (शूरः) शूरवीर है । तू (सनिता) सैन्य को व्यूहों में, ऐश्वर्य को प्रजाओं में यथोचित रूप से विभाग करने हारा होकर (मनुषः) पैदल योद्धा पुरुषों को और (रथम्) और रथ सैन्य को भी (चोदय) सञ्चालन कर । तू ही (सहावान्) बलवान् होकर (अव्रतम्) व्रत अर्थात् उत्तम कर्मों से हीन (दस्युम्) प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुषों को (शोचिषा) अपने तेज से (पात्रं न) हंड़िया को आग के समान (ओषः) संतप्त कर । (२) सर्वत्र व्यापक होकर रमण करने, दुष्टों का नाशक होने से परमेश्वर 'शूर' है । सर्वत्र लोकविभाजक सर्वैश्वर्य दाता होने से 'सनिता' है । वह मनुष्यों और उनके देह या आत्मा को सन्मार्ग में चलाता, वह पापियों को भी हँडिया को आग के समान संतप्त करता, पीड़ित करता और पश्चात्ताप से दुःखी करता है ।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! विद्वन् ! तू (ईशानः) सबका सामर्थ्यवान् स्वामी है । तू (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (सूर्यम्) सूर्य के समान समृद्धियुक्त, बलवान् , अन्धकार नाशक, (चक्रम्) राज्य चक्र, बलचक्र, मण्डल तथा शस्त्र बल को (मुषाय) अप्रत्यक्ष रूप में धारण कर । और (वातस्य) वायु के समान बलवान् सैन्य के (अश्वैः) तीव्र घुड़सवारों के द्वारा (शुष्णाय) प्रजा के रक्तशोषण करने वाले आतङ्ककारी दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये (कुत्सं) उनको काट २ कर नाश कर देने वाले (वधं) वध अर्थात् शस्त्र बल और राजदण्ड को (वह) धारण कर । (२) परमेश्वर महान् सामर्थ्य से (सूर्यं चक्रम्) सूर्य को चक्र के समान घुमा रहा है । वह (वातस्याश्वैः) प्राण के अधीन इन्द्रियों द्वारा दुःखदायी पाप के नाश के लिये (वधं) मृत्यु और (कुत्सं) शस्त्र को काटने फाटने वाले छेद भेद के कष्टों को प्राप्त कराता है । हम लोग दैहिक दुःखों से पीड़ित होकर पाप छोड़ देते हैं ।

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (मदः) दमन का सामर्थ्य, राज्य प्रबन्ध (हि) निश्चय से (शुष्मिन्तमः) अतिअधिक बलशाली, (उत) और तेरा (क्रतुः) कर्म और ज्ञान का सामर्थ्य भी (द्युम्निन्तमः) सबसे अधिक यश, अन्न और तेज से युक्त है । (वृत्रघ्ना) बढ़ते हुए और नगर को घेरने वाले दुष्ट शत्रु को नाश करने और (वरिवोविदा) धनैश्वर्य प्राप्त कराने वाले उसी दमनसामर्थ्य से तू (अश्वसातमः) समस्त अश्व सैन्य को राष्ट्र के भिन्न २ भागों में विभक्त करता हुआ (मंसीष्ठाः) सबको अच्छी प्रकार जान । (२) हे प्रभो ! तेरा परम

आनन्द अति बल और ऐश्वर्य से युक्त है। आवरक अज्ञान के नाशक और परिचर्या से प्राप्त होने वाले उस आनन्द से तू ही भोक्ता आत्मा को तृप्त करता और सब कुछ जानता और सबको वश कर रहा है।

यथा॒ पूर्वे॑भ्यो जरि॒तृभ्य॑ इन्द्र॒ मय॑ इ॒वापो॒ न तृष्य॑ते ब॒भूथ॑।
तामनु॑ त्वा नि॒विदं॑ जोहवीमि वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ६।१८

भा०—हे राजन्! (आपः न तृष्यते) जिस प्रकार प्यासे को जल अति सुखदायी होते हैं उसी प्रकार (पूर्वेभ्यः) पूर्व के, अपने से बड़े (जरितृभ्यः) विद्वान् विद्योपदेष्टाओं के लिये तू भी (मय इव) अत्यन्त सुख कल्याणकारी के समान (यथा) यथावत् (बभूथ) हुआ कर। (त्वा अनु) तुझे लक्ष्य करके ही मैं (ताम् निविदं) उस नित्य विद्या वेद का (जोहवीमि) प्रदान करता हूं। जिससे हम सब (इषं वृजनं जीरदानुं च) अन्न, प्रेरणा, उत्तम शिक्षा, पाप निवारक बल और जीवन (विद्याम) प्राप्त कर लें। (२) परमेश्वर पूर्ण स्तोताओं को सुखदायक है, ऐसा शान्तिप्रद है जैसा प्यासे को जल। उसी को लक्ष्य कर 'निविद्' गुह्य उपनिषत्, गुरुविद्या का मैं उपार्जन करूं, जिसे हम प्रेरणा, स्फूर्ति, आत्मिक बल, शारीरिक बल और जीवन प्राप्त करें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१७६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप् ३ विराडनुष्टुप्। ५ भुरिगुष्णिक्। त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

मत्सि॑ नो॒ वस्य॑ इष्टय॒ इन्द्र॑मिन्दो॒ वृषा वि॑श।
ऋ॒घा॒यमा॑ण इन्वसि॒ शत्रु॒मन्ति॒ न वि॑न्दसि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे दयार्द्रस्वभाव! प्रेमयुक्त! तू (वस्यः इष्टये) उत्तम ऐश्वर्य धन के प्राप्त करने के लिये (नः) हम

प्रजाजनों को आनन्दित कर, सदा प्रसन्न रख। (वृषा) सुखों का वर्षाने वाला, मेघ के समान दयालु एवं बैल के समान बलवान् प्रजाओं के प्रति उत्तम कामनावान् होकर (इन्द्रम् आविश) ऐश्वर्य का प्रदान कर, या ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में प्रवेश कर। तू (ऋवायमाणः) शत्रुओं का हनन और अपनी वृद्धि करता हुआ (इन्वसि) सर्वत्र फैल, खूब राज्य बढ़ा। और (अन्ति) समीप में, आस पास कहीं भी (शत्रुम्) प्रजा के शातन या नाशकारी शत्रु को (न विन्दसि) कहीं भी प्राप्त न कर। (२) हे (इन्दो) परमानन्द तू ही परमेश्वर्य को लाभ कराने के लिये (इन्द्रम् आविश) आत्मा में प्रवेश कर। अथवा हे (इन्दो) जीव ! तू ही उस परम प्रभु के भीतर प्रवेश कर उसमें रम। तू महान् होकर बाधाओं को नाश करता हुआ अपने से पराये को न पायेगा, प्रत्युत अपने ही आत्मा को प्राप्त करेगा।

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (एकः) एक अद्वितीय (चर्षणीनाम्) सब देखने वाले विद्वान् मनुष्यों के बीच सर्वद्रष्टा है, तू (तस्मिन्) उसको लक्ष्य करके ही (गिरः आवेशय) अपनी स्तुति वाणियों का प्रयोग कर। उसी की निरन्तर स्तुति किया कर। वह अकेला अद्वितीय परमेश्वर है (यम् अनु) जिसको लक्ष्य करके स्तुति करने से (स्वधा) हल खेंचने वाले बैल के प्रयत्न के अनन्तर या मेघ के वर्षण के बाद खेत में अन्न के समान (स्वधा) आत्मा की वास्तविक शक्ति, परम अमृत रस (उप्यते) बोया जाता और उत्पन्न होता है। वह (वृषा) समस्त सुखों का वर्षक, मेघ के समान और बलवान् बलीवर्द के समान आत्मा या अन्तःकरण रूप क्षेत्र में (यवं न) खेत में जौ के समान (यवं) दुखों से छुड़ा देने हारे ज्ञान रूप अन्न की (चर्कृषत्)

कृषि करता, कराता है। वह भव बन्धन काटने का साधन ब्रह्मज्ञान को उत्पन्न करता है।

यस्य॒ विश्वा॑नि॒ हस्त॑यो॒ः पञ्च॑ क्षि॒तीनां॒ वसु॑।
स्पा॒शय॑स्व॒ यो अ॑स्म॒ध्रुग्दि॒व्येवा॒शनि॑र्जहि ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य हस्तयोः) जिसके हाथों में (पञ्च क्षितीनां) पांचों राष्ट्रवासी प्रजाजनों के (विश्वानि वसु) सब प्रकार के धन और समस्त जन हैं, वह तू (यः अस्मध्रुग्) जो हम से द्रोह करे उस दुष्ट पुरुष को (दिव्या इव अशनिः) आकाश की बिजुली के समान उसको (स्पाशयस्व) पीड़ित कर और (जहि) दण्डित कर।

पञ्च क्षितयः—पांच प्रकार के प्रजाजन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निषाद, अथवा देव, मनुष्य, पितृ, पशु और पक्षीगण। (२) अध्यात्म में पाचों क्षिति, पञ्च प्राण, 'वसु'–संविद् आदि विभूति, अस्मध्रुग् अज्ञान।

अ॒सुन्व॑न्तं स॒मं ज॑हि दू॒णाशं॒ यो न ते॒ मय॑ः।
अ॒स्मभ्य॑मस्य॒ वेद॑नं द॒द्धि सू॒रिश्चि॑दोहते ॥ ४ ॥

भा०—(असुन्वन्तं) यज्ञ आदि न करनेहारे, या ऐश्वर्य की वृद्धि न करने वाले, (समं) समस्त (दुःनशं) बड़ी कठिनता से नाश होने वाले उस दुष्ट पुरुष को (जहि) नाश कर (यः) जो (ते मयः न) तुझे सुखकारक नहीं होता। (अस्मभ्यम्) हमें (अस्य) उसका (धनं) धन (दद्धि) प्रदान कर या हमारे हित के लिये उसका धन तू धारण कर। (सूरिः चित्) सूर्य के समान विद्वान् पुरुष ही (ओहते) उस धन को प्राप्त करे। अथवा (सूरिःचित् ओहते) जो सूर्य के समान तेजस्वी होकर ऐश्वर्य को धारण करता है परन्तु वह यज्ञ नहीं करता, वह तुझे सुख दायक न हो तो उस दुष्ट पुरुष को दण्ड देकर उसका समस्त धन हर। हम प्रजाओं के निमित्त लगा। जैसा मनु लिखते हैं।

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥ १५ ॥
योनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ । अ० ११ ॥

आ॒वो यस्य॑ द्वि॒बर्ह॑सो॒ऽर्केषु॑ सानु॒षगस॑त् ।
आ॒जावि॒न्द्र॑स्येन्दो॒ प्रा॒वो॒ वाजे॑षु वा॒जिन॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(द्विबर्हसः) विद्या और पुरुषार्थ कर्म या राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों से बढ़ने वाले (यस्य) जिसकी (अर्केषु) अन्नों के प्राप्ति कार्य में (सानुषक्) सदा अनुकूलता (असत्) रहती है हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू उसकी (आअवः) रक्षा कर । तू (आजौ) संग्राम के लिये (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (वाजेषु) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (वाजिनम्) बलवान्, वेगवान् सैन्य या पुरुष की (प्र अवः) अच्छी प्रकार रक्षा कर ।

यथा॒ पूर्वे॑भ्यो जरि॒तृभ्य॑ इन्द्र॒ मय॑ इ॒वापो॒ न तृष्य॑ते ब॒भूथ॑ ।
तामनु॑ त्वा नि॒विदं॑ जोहवीमि वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ६।१६

भा०—व्याख्या देखो (सूक्त १७५, मन्त्र ६) इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१७७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—४ धैवतः । ५ पञ्चमः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ च॑र्षणि॒प्रा वृ॑ष॒भो जना॑नां॒ राजा॑ कृष्टी॒नां पु॑रुहू॒त इन्द्रः॑ ।
स्तु॒तः श्र॑व॒स्यन्नव॒सोप॑ म॒द्रिग्यु॒क्त्वा हरी॒ वृष॒णा या॑ह्य॒र्वाङ् ॥१॥

भा०—(चर्षणिप्राः) मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य से पूर्ण करने

वाला (वृषभः) मेघ के समान सबको विद्या और ऐश्वर्यों का देने वाला बलवान्, (जनानां) सब मनुष्यों का (राजा) राजा, स्वामी, (कृष्टीनां) सब प्रजाओं के बीच में (पुरुहूतः) सबसे सत्कार करने योग्य पुरुष ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' है, वह (आ) प्राप्त हो। हे राजन्! तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर (श्रवस्यन्) यश और धन का अभिलाषी होकर (अवसा) अपने रक्षणसमर्थ्य से (मद्रिक्) समस्त कामनाओं को प्राप्त कराने और स्वयं करने वाला (वृषणा) बलवान् (हरी युक्ता) घोड़ों को जोड़कर (अर्वाङ्) हमारे समीप (उपयाहि) आ।

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! हे विद्वन्! (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (वृषभासः) प्रजाओं में श्रेष्ठ और प्रजा और शत्रुओं पर मेघों के समान सुखों और शस्त्रों वर्षा करने वाले, दानवीर और युद्धवीर, (ब्रह्मयुजः) महान् ऐश्वर्य और अन्न से युक्त और उच्च उत्तम पदों पर नियुक्त, (वृषरथासः) बैल गाड़ियों या बलवान् अश्वों से युक्त रथों पर सवार (अत्याः) वेग से गमन करने वाले हों। हे राजन्! तू (तान् आ तिष्ठ) उन पर शासक होकर विराज। (तेभिः) उनके साथ ही (अर्वाङ्) सबके समक्ष (आयाहि) प्रकट हो। (सुते सोमे) अभिषेक द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं। मरुतों के पक्ष में—मरुद् गण वेगवान् होने से 'अत्य' हैं। वर्षण शील होने और प्रति बन्धकारी होने से 'वृषभ' हैं। वर्षणकारी मेघों में वेग से गमन करने से या मेघरूप रथ वाले होने से वे 'वृषरथ' हैं। (इन्द्र) विद्युत् सोमादि ओषधिवर्ग के उत्पन्न हो जाने पर आवे और जल वर्षा कर उनको बढ़ावे। (३) विद्युत् पक्षमें—(ब्रह्मयुजः) वेद का अभ्यास और परमात्मा में योगाभ्यास करने वाले।

(वृषरथासः) आनन्द वर्धक धर्ममेघ में रमण करने वाले। इन्द्र, आचार्य विद्वान् ।

आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक्॥२॥

भा०—हे राजन् ! तू (वृषणं) दृढ़, बलवान् , शत्रुओं के प्रबल आक्रमण को रोकने में समर्थ (रथम्) रथ और रथ सैन्य को (आ तिष्ठ) अपने अधीन रख, उस पर नायक बनकर रह । (ते) तेरे ही कार्य के लिये (वृषा) बलवान् , शत्रुबल को बांधने और अपने सैन्य का प्रबन्ध करने हारा (सोमः) सबको ठीक २ प्रेरने और सञ्चालन करने वाला (सुतः) अभिषिक्त पुरुष सेना नायक हो । जिस प्रकार (मधूनि परिषिक्ता) अभिषेक काल में जलों को परिसेचन किया जाता है उसी प्रकार (मधूनि) शत्रु को व्यथित और संतप्त करने वाले नाना सैन्यांग भी (परि सिक्तानि) खूब परिपुष्ट हों । हे (वृषभ) नरश्रेष्ठ ! तू (मद्रिक्) हमें प्राप्त होकर (वृषभ्यां हरिभ्यां) बलवान् अश्वों से या अश्व सैन्य के दो दलों से (वृषणं रथं युक्त्वा) बलवान् रथ और पूर्वोक्त रथ-सैन्य को जोड़कर, अश्व सैन्यों से रथ-सैन्य को सुरक्षित करके (प्रवता) बड़े वेग से (उपयाहि) प्रयाण कर । (२) अध्यात्म में—बलवान् 'रथ' देह है । 'सोम' वीर्य है । रक्तादि रस 'मधु' हैं । प्राण और अपान दो 'हरि' हैं । वह चित्त भूमियों के विजय के लिये (मद्रिक्) आत्मवशी होकर प्रस्थान करता है ।

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह॥४॥

भा०—(अयं यज्ञः) यह 'यज्ञ' अर्थात् सबका उचित आदर सत्कार, सज्जनों का सत्संग और उत्तम व्यवस्था करने हारा राजा और राज्य (देवयाः) देवों, दिव्य गुणवान् विद्वानों, दिव्य गुणों को प्राप्त कराने और उनको

उचित मान, दान देने हारा है। (अयं) यह शस्त्रादि फेंकने योग्य आयुधों, अस्त्रों से अति प्रदीप्त होने वाला, सेनापति है। (इमा) ये (ब्रह्माणि) नाना धनैश्वर्य हैं। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (अयम् सोमः) यह महान् ऐश्वर्य, या उत्तम ओषधि रस या सबको सन्मार्ग में चलाने हारा ब्राह्मण-वर्ग है। यह (बर्हिः) राज्यवृद्धि करने वाला प्रजाजन (स्तीर्णम्) दूर तक फैला हुआ अथवा यह बिछा हुआ उत्तम आसनवत् है। हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! तू (नि सद्य) इस पर विराज कर (प्र याहि) आगे बढ़ और (प्र पिब) अच्छी प्रकार इसका पालन कर और उपभोग कर। (इह) इसी राष्ट्र में (हरी) रथ के दो अश्वों के समान राष्ट्र को वहन करने वाले, योग्य कार्यसञ्चालक सेनापति और न्यायाधीश दोनों को (विमुच) विविध, भिन्न२ क्षेत्र में युक्तकर, उनको स्वतन्त्रता से कार्य करने दे। (२) आत्मा सर्वोपास्य होने से 'यज्ञ' है। विद्वानों द्वारा या प्राणों से संगत होने से 'देवयाः' है। प्राणबलों से शरीरको धारण करने वा अति पवित्र होने से वह 'मियेध्य' है। ये अन्न 'ब्रह्म' है। यह उनसे उत्पन्न 'सोम' वीर्य है। अन्न से बढ़ने हारा शरीर बर्हि है। शक्तिमान् आत्मा उसका उपभोग करता है। वह इस देह में प्राण अपान दोनों को स्वतन्त्रता से गति करने देता है।

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ५।२०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सुस्तुतः) उत्तम रीति से स्तुति को प्राप्त होकर (ब्रह्माणि) वेद ज्ञानों को विद्वान् के समान समस्त ऐश्वर्यों को (उप याहि) प्राप्त कर। हम लोग (मान्यस्य) मान करने योग्य (कारोः) कार्यकर्त्ता, शिल्पी, विद्वान् के (अवसा) ज्ञान और रक्षा साधन से सुरक्षित रहकर (ब्रह्माणि गृणन्तः) उत्तम विद्याओं का उपदेश करते हुए (वस्तोः) प्रतिदिन (विद्याम) उत्तम ज्ञान और

उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करें। और (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीरदानुम्) जीवन भी (विद्याम) प्राप्त करें। इति विंशो वर्गः ॥

[१७८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे आचार्य ! अज्ञानान्धकार के नाशक ! हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! (ते) तेरी (यत्) जो (स्या) वह प्रसिद्ध (श्रुष्टिः) अन्न समृद्धि के समान सबके श्रवण करने योग्य गर्जना, घोषणा, श्रवण करने योग्य ज्ञान और ख्याति है और (यया) जिस रक्षण और ज्ञान के सामर्थ्य से तू (जरितृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टा और स्तुतिशील प्रजा जनों की (ऊती) रक्षा करने में (बभूथ) समर्थ होता है उसी शक्ति या अधिकार से तू (नः) हमारे (कामं) कामना करने योग्य, (महयन्तम्) हमें उत्तम बना देने वाले इच्छा शक्ति या मनोरथ को (मा धक्) भस्म मत कर, समूल नष्ट मत कर। मैं (ते) तेरी (आयोः) मनुष्यों के योग्य (विश्वा) समस्त (आपः) प्राप्त सम्पत्तियों को, मेघ से प्राप्त जलों और अन्न समृद्धियों के समान (परि अश्याम्) सब प्रकार से प्राप्त करूं। (श्रुष्टिः = श्रुतिः । सकारोपजनः) (२) हे इन्द्र परमेश्वर जो तेरी श्रुति वेद है जिससे तू विद्वानों को ज्ञान देता है। उससे हमारे मनोरथ को विफल न कर। हम जीवन के सब प्राण वा भोगों और बलों को प्राप्त करें।

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥

भा०—(राजा) बल और विद्या से प्रकाशमान, सब का स्वामी, राजा (इन्द्रः) सूर्य और विद्युत् के समान तेजस्वी होकर भी (नः) हम (न आदभत्) उन प्रजाओं को पीड़ित न करे (या) जो प्रजाएं (स्वसारा) उसकी बहनों के समान उसकी बन्धु होकर वा उसकी शरण में स्वयं आकर (योनौ) एक ही स्थान या देश में (कृणवन्त) नाना कार्य व्यवहार करती हैं। (अस्मै) इस राजा के हित के लिये ही (आपः चित्) शरीर या आत्मा के लिये प्राणों के समान प्रिय होकर (सुतुकाः) उत्तम पुरुष के लिये उत्तम केश वाली स्त्रियों के समान, उत्तम सुख भोग देने हारी प्रजाएं (अवेषन्) देश भर में व्यापें, फैलकर रहें। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, देह में आत्मा और घर में पति के समान, हमारे प्रति (सख्या) मित्र भाव से और (नः) हमें (वयः च) अन्न और बल आदि प्रदान करे। (२) अध्यात्म में 'योनि' देह। प्राणगण स्वयं अनायास वा आत्मा के बल से चलने वाले होने से 'स्वसा' हैं। वेही आपोमय होने से 'आपः' हैं। उत्तम देह पालक होने से 'सुतुक' हैं।

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥

भा०—(नाधमानस्य) शरण याचना करने वाले (कारोः) कार्य कर्त्ता विद्वान् जनों के (हवं) ग्रहण करने योग्य वचनों का (श्रोता) सुननेवाला (पृत्सु) संग्रामों में (शूरः) शूरवीर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा सदा (नृभिः) अपने नायकों सहित (जेता) विजय करने वाला होकर (यदि च) जब भी (त्मना) अपने सामर्थ्य से (दाशुषः) दानशील, करप्रद राष्ट्र के (उपाके) समीप (गिरः उद्यन्ता) उत्तम आज्ञाओं को उठाने में समर्थ होता है तभी वह (रथं) रथ सैन्य को लेकर (प्रभर्त्ता स्यात्) शत्रु पर प्रहार करने वाला भी हो। अथवा

(दाशुषः प्र भर्त्ता भूत्) देने वाले राष्ट्र का उत्तम भरण पोषण करने में समर्थ होता है ।

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इष स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४॥

भा०--(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा (नृभिः)अपने नायकों के साथ मिलकर(सुश्रवस्या)उत्तम यश प्राप्त करने की इच्छा से (मित्रिणः) सहायवान् मित्रवान् पुरुष के (पृक्षः)सम्पर्क करने योग्य, भोग्यप्रद ऐश्वर्य को (प्रखादः) खाजाने वाले शत्रुओं को (अभि भूत्) पराजित करे । अथवा (पृक्षः प्रखादः मित्रिणः) अपने से सम्पर्क करने वाले सुसम्बद्ध, उत्तम राष्ट्र के भोक्ता, सहायवान् मित्र, बल से बलवान् शत्रुओं को भी पराजित करने में समर्थ हो। वह (यजमानस्य) कर देने वाले राष्ट्र का (शंसः) उत्तम उपदेष्टा के समान आज्ञापक, शासक होकर (सत्राकरः) सत्य २ न्याययुक्त आचरण करने वाला, न्यायाधीश होकर (विवाचि) विपरीत एक दूसरे के विरुद्ध वादिप्रतिवादी की वाणियों से युक्त (समर्ये) संग्राम अर्थात् परस्पर विवाद या कलह के अवसर में (इषः) उत्तम अन्नों के समान ग्राह्य बातों की ही स्तुति करे, उसको निर्णय रूप से प्रस्तुत करे और अग्राह्य बातों को नहीं । अर्थात् छाज जिस प्रकार तुष को दूर फेंक कर अन्नों को ग्रहण करता है उसी प्रकार विवादों में न्यायाधीश ग्राह्य सत्यों के ले लेवे असत्यों को नहीं। अथवा-(इन्द्रः सुश्रवस्या पृक्षः प्रखादः सन् मित्रिणः नृभिः अभिभूत्) राजा उत्तम और सम्पर्क या ग्रहण योग्य अन्न के समान सारभूत सत्य का 'प्रखाद' अर्थात् उत्तम भोक्ता होकर अधिक२ सहायक वाले विरुद्धकारियों को भी उत्तम पुरुषों की सहायता से दबालेवे और राष्ट्र का सत्यप्रतिज्ञ, उत्तम शासक होकर संग्राम में (इषः) अपनी सेनाओं को आज्ञा दे ।

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक! नायक! हे (मघवन्) उत्तम पूज्य धनाध्यक्ष (त्वया) तेरे सहाय से (वयं) हम (महतः) बड़े २ (मन्यमानान्) अभिमान करने वाले (शत्रून्) शत्रुओं को भी (अभि स्याम) पराजित करें। (त्वं त्राता भूः) तू हमारा रक्षक हो और (त्वम् उ) तू ही (नः) हमारी (वृधे भूः) वृद्धि के लिये हो। हम प्रजागण (इषं) अन्न (वृजनं) शत्रु को पराङ्मुख कर देने वाला बल और (जीरदानुम्) जीवन (विद्याम) प्राप्त करें। एक विंशो वर्गः॥

[१७९]

लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषिः॥ दम्पती देवता॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृद्बृहती॥ षडर्चं सूक्तम्॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥१॥

भा०—गृहस्थ्य पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (दोषावस्तोः) दिन और रात, और (जरयन्तीः उषसः) आयु को निरन्तर न्यून २ करते जाने वाले उषाकालों में भी प्रतिदिन (शश्रमाणा) निरन्तर श्रमशील होकर गृह कार्य करती और करता हुआ (अहं) मैं गृह पत्नी और गृहपति (पूर्वीः शरदः) अपनी आयु के पूर्व के वर्ष व्यतीत करें, बाद में (जरिमा) वृद्धावस्था (तनूनां श्रियं) देहों के सौन्दर्य को (मिनाति) नष्टकर देती है। (अपि उ नु) इसलिये ही (वृषणः) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष अपने यौवन काल में ही (पत्नीः) अपनी धर्म पत्नियों को (जगम्युः) प्राप्त करें: बाद में, वार्धक्य में स्त्री पुरुष दोनों ही सन्तान उत्पत्ति में असमर्थ हो जाते हैं। अच्छा हो उसके पूर्व ही दोनों गृहस्थ कर्मों को यौवन काल में ही श्रम पूर्वक कर लिया करें।

'शश्रमाणा'–सुप आकारः। इत्युभयलिङ्गयोरुपयुज्यते॥

ये चिद्धि पूर्वं ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

भा०—(ये चित् हि) जो भी (पूर्वे) पूर्व के, अपने से बड़े, पूर्ण विद्यावान् , (ऋतसापः) ऋत, सत्य ज्ञान, वेद को समान रूप से प्राप्त करने हारे (आसन्) हों (ते) वे भी (देवेभिः) ज्ञान प्रदान करने वाले उत्तम विद्वानों के साथ मिलकर (ऋतानि) सत्य ज्ञानों की (अवदन्) चर्चा करते हैं। (ते चित्) वे भी (अव-असुः) अपना देह गिरा देते हैं और (अन्तम्) अन्त अर्थात् जीवन का परम प्राप्य फल (न आपुः) नहीं प्राप्त करते, इसलिये हे स्त्री पुरुषो ! जब बड़े २ ब्रह्मचारियों तक के देह अस्थिर हैं तब वे भी अपने छोटे जीवन में अपना उद्देश्य नहीं प्राप्तकर सके तो फिर गृहस्थियों को अपने गृहस्थ जीवन का उद्देश्य उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिये विलम्ब न करना चाहिये, प्रत्युत (उ नु) अवश्य (पत्नीः) गृहस्थ का पालन करने में समर्थ स्त्रियां यौवन काल में ही (वृषभिः) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुषों के साथ (सं जगम्युः) संगति लाभ करें और उत्तम सन्तान प्राप्त करें। अपने यौवन को पारस्परिक कलह और प्रवास और विलास आदि सन्तान-रोधक कुमार्गों में व्यतीत न करें।

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) क्योंकि (देवाः) विद्वान् पुरुष और दिव्य अग्नि जल, पृथिवी, वायु आदि तत्त्व पदार्थ भी, (मृषा श्रान्तं) व्यर्थ मार्ग में बिना उद्देश्य के श्रम करने वाले की (न अवन्ति) रक्षा नहीं करते। इस लिये हे प्रियतम ! हे प्रियतमे ! हम दोनों मिलकर (विश्वाः इत् स्पृधः) सभी अपने से स्पर्धा वा संघर्ष करने वालों का (अभि अश्नवाव) मुकाबला करें। (अत्र) इस गृहस्थ में रहकर (शतनीथं) शतवर्षों में व्यतीत

करने योग्य जीवन रूप (आजिम्) संग्राम को (जयाव इत्) परस्पर मिलकर विजय करें। और (सम्यञ्चौ) एक दूसरे को अच्छी प्रकार प्राप्त करते और एक दूसरे का अच्छी प्रकार आदर करते हुए (मिथुनौ) दोंनों स्त्री पुरुष, पति पत्नी (अभि अजाव) एक दूसरे को प्राप्त करें, गृहस्थ कार्य निभावें।

नदस्य मा रुधतः काम आगन्निति आजातो अमुतः कुतश्चित्।
लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४॥

भा०—(रुधतः नदस्य) रुके हुए नद अर्थात् नाले का जिस प्रकार जल का वेग बड़ा अदम्य होता है उसी प्रकार (रुधतः) वीर्य का निरोध करने हारे (नदस्य) वेदाध्ययन करने वाले, विद्याध्ययनशील ब्रह्मचारी का (कामः) काम, गृहस्थ करने की इच्छा, या संकल्प (मा) मुझ स्त्री वा पुरुष को भी (आगन्) प्राप्त होता है। वह (इतः) इस शरीर के स्वाभाविक कारण से और (अमुतः) अन्य वाह्य कारणों से (कुतः चित्) और अन्य भी किसी अवर्णनीय परस्पर प्रेम आदि कारण से भी (आजातः) और अधिक प्रकट हो जाता है। ऐसी दशा में स्त्री स्वभावतः (लोपामुद्रा) इच्छा के कारण अपने को छुपाने की चेष्टा में ही सब प्रकार के सुख प्रतीत करने, वा हर्षित होने वाली अथवा (लोपे आ–मुद्–रा) छुपे स्थान पर प्रियतम से अति प्रमोद पूर्वक रमण करने की उत्सुक होकर (वृषणं) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष को (निर् रिणाति) सब प्रकार से प्राप्त होती है। और वह (अधीरा) धैर्य रहित या (अधि-इरा) अति कामना युक्त या (अधि-इरा = इला) अति उत्तम भूमि या क्षेत्र होकर [जिस प्रकार भूमि (धीरम् = अधि-इरम् श्वसन्तम् धयति) अति जल युक्त वायुवेग से चलने वाले मेघ के जल का पान करती है उसी प्रकार] (धीरम्) धैर्यवान् (श्वसन्तम्) अपने प्राण देने वाले, अति प्रिय या (श्वसन्तम् = विश्वसन्तं) आश्वासन देने और विश्वास दिलाने वाले प्रेमवश

गंभीर श्वास लेने वाले पुरुष को (धयति) धारण करे, पान करे, उसका उपभोग करे। उससे संगति कर पुत्र लाभ करे।

इमं नु सोमम॑न्तितो हृत्सु पीतमुप॑ ब्रुवे।
यत्सी॒माग॑श्चकृ॒मा तत्सु मृ॑ळतु पुलु॒कामो॒ हि मर्त्यः॑ ॥ ५ ॥

भा०—मैं स्त्री (इमं सोमम्) इस चन्द्र के समान आल्हाद जनक, उत्तम सन्तान के प्रसव करने में समर्थ पुरुष को (अन्तितः) अति निकट तम (हृत्सु पीतम्) हृदय की गहरी तहों में मानो रसवत् पिये हुए के समान ही (उपब्रुवे) कहूं, जानूं और अनुभव करूं। हम स्त्री जन (यत्) जो भी (आगः) परस्पर का अपराध, या अप्रिय दैहिक और मानसिक आघात (चकृम) करें उसको (पुलुकामः = पुरुकामः) बहुत सी कामनाओं और इच्छाओं, कामना योग्य पदार्थों को चाहने वाला (मर्त्यः) मनुष्य ही (तत्) अप्रियता आदि अपराध को (सु मृळतु) दूर करके, पुनः सुखी करे।

अ॒गस्त्यः॑ खन॑मानः ख॒नित्रैः॑ प्र॒जाम॑प॑त्यं बल॑मि॒च्छमा॑नः।
उ॒भौ वर्णा॒वृषि॑रु॒ग्रः पु॑पोष स॒त्या दे॒वेष्वा॒शिषो॑ जगाम ६।२२ ॥

भा०—(खनित्रैः खनमानः) खोदने के साधन कुद्दाल, हल आदि से खेत को खोदता हुआ किसान या माली जिस प्रकार क्षेत्र से उत्तम फल प्राप्त करता है उसी प्रकार (अगस्त्यः) सैकड़ों दुर्गम अविचल संकटों को दूर फेंक देने में समर्थ, अथवा अप्रिय, कुवचनादि अपराधों को दूर करने वाला, क्षमाशील पुरुष, (खनित्रैः) अवदारण अर्थात् भेदन करने वाले, संकटों को तोड़ने वाले उपायों से (खनमानः) खनन करता हुआ, विघ्नों को दूर करता हुआ पुरुष (प्रजाम्) उत्तम प्रजा (अपत्यम्) उत्तम पुत्र, और (बलम् इच्छमानः) बल को प्राप्त करना चाहता हुआ (ऋषिः) विद्वान् (उभौ वर्णौ) एक दूसरे के वरण करने

वाले सुन्दर वर वधू दोनों को (पुपोष) पुष्ट करता है और वह (देवेषु) ज्ञान धन के देने वाले उत्तम और विद्वानों के आश्रय पर ही (सत्या) सच्ची २ आशा और कामनाओं को (जगाम) प्राप्त करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ।

[१८०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ७ निचृत् ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ९ भुरिक् ॥ पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) वेगवान् रथ (अर्णांसि) जल पूर्ण समुद्रों और रमण करने योग्य उत्तम२ स्थल प्रदेशों को और (रजांसि) मनोरंजन करने वाले स्थानों को (परि दीयत्) जावे तो (युवोः) तुम दोनों के (अश्वाः) घोड़े भी (सुयमासः) उत्तम रीति से वश किये हुए होने चाहिये । इसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! (यत् वां रथः) जब तुम दोनों का रमण करने हारा देह या गृहस्थ रूप रथ, या रमण करने वाला पारस्परिक आनन्द रस भी (रजांसि अर्णांसि परिदीयत) मनोरंजन करने वाले, अति रमणीय विषयों को प्राप्त हो तब तुम्हारे (अश्वाः सुयमासः) भोग करने वाले इन्द्रियगण उत्तम संयम का पालन करने वाले हों । तुम दोनों जितेन्द्रिय होकर रहो । (हिरण्ययाः पवयः) लोह की बनी चक्रधाराएं जिस प्रकार मार्ग को काटती हुई जाती हैं उसी प्रकार (वां) तुम दोनों के (पवयः) पवित्र आचार (हिरण्ययाः) परस्पर के हितकारी और रमणीय, सुन्दर होकर (प्रुषायन्) एक दूसरों को पुष्ट करें और सब संकटों को काटें । तुम दोनों गृहस्थरूप रथ में बैठे हुए (मध्वः पिबन्ता) जल के समान मधुर २ जीवन के

आनन्द रसों को आस्वाद लेते हुए (उषसः सचेथे) सब दिनों का उत्तम सेवन किया करे। या दोनों (उषसः सचेथे) परस्पर की कामना करने वाले एक दूसरे का सेवन करो। एक दूसरे से प्रेम पूर्वक मिलकर परस्पर प्रेमासक्त होकर रहो। दोनों एक दूसरे के आश्रय होकर, मिलकर रहो एक दूसरे के लिये उषा अर्थात् प्रभात के समान सदा नवीन, सुप्रसन्न और हँसमुख, उज्वल होकर रहो।

युवमत्य॒स्याव॑ नक्षथो॒ यद्विप॑त्मनो॒ नर्य॑स्य॒ प्रय॑ज्योः।
स्वसा॒ यद्वां॑ विश्वगूर्ती॒ भरा॑ति॒ वाजा॒येट्टे॑ मधुपा॒विषे च॑ ॥ २ ॥

भा०—(युवम्) तुम दोनों (विपत्मनः) विविध विद्या विज्ञानों से युक्त, (नर्यस्य) सब मनुष्यों के हितकारी, उनमें सब से श्रेष्ठ और कुशल (प्रयज्योः) उत्तम विद्यादि देने वाले, सत्संगति करने योग्य (अत्यस्य) अश्व के समान भ्रमणशील, विद्वान् , परिव्राजक के समीप (अव नक्षथः) बड़े विनय से जाया करो। और हे (विश्वगूर्ती) सब प्रकार के उद्यम करने में लगे हुए स्त्री पुरुषो ! और हे (मधुपौ) भौंरा भौंरी के समान मधुवत् मधुर ज्ञान अन्न, जलादि पदार्थों का उपयोग और संग्रह करनेहारे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो भी विद्वान् (वां स्वसा) तुम्हारे पास स्वयं प्रेम से आकर भाई या बहिन के समान (वां) तुम दोनों को (वाजाय) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के सम्पादन करने के लिये (भराति) तुम्हें अधिक पुष्ट, शक्ति शाली बनाता और उत्तम मार्ग पर अग्रणी अश्व के समान ले जाता है (इषे च) और उत्तम अन्न के उपयोग के लिये (ईट्टे) तुम्हें उपदेश करता है तुम उसको (अव नक्षथः) विनय से प्राप्त होवो, उसका सदा आदर सत्कार करो।

युवं पय॑ उ॒स्रिया॑यामधत्तं प॒क्वमा॒माया॒मव॒ पूर्व्यं॒ गोः।
अ॒न्तर्यद्व॒निनो॑ वामृतप्सू ह्वा॒रो न शुचि॒र्यज॑ते ह॒विष्मा॑न् ॥ ३ ॥

भा०—जब (वनिनः ह्वारः न) सूर्य के ताप और प्रकाश के समान (शुचिः) शुद्ध अन्तः करण और आचारवान् (हविष्मान्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (ऋतप्सू वाम्) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के अभिलाषी आप दोनों के (अन्तः यजते) भीतर ज्ञान का प्रदान करे, तब (युवं) तुम दोनो, हे स्त्री पुरुषो ! (आमायाम्) अपक्व, कच्ची, कम अनुभववाली (उस्रियायाम्) स्वयं उन्नति की तरफ़ जाने वाली बुद्धि में (गोः) वेद-वाणी का (पूर्व्यं) पूर्व विद्वानों द्वारा साक्षात् किया, उत्तम रीति से विचारित, (पक्वम्) पक्व, सत्य, दृढ़, (पयः) सारभूत ज्ञान को (अधत्तम्) धारण करो ।

युवं ह॑ घ॒र्मं मधु॑मन्त॒मत्र॑ये॒ऽपो न क्षोदो॑ऽवृणीतमे॒षे ।
तद्वां॑ नरावश्विना प॒श्वइ॑ष्टी॒ रथ्ये॑व च॒क्रा प्रति॑ यन्ति॒ मध्वः॑॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (युवं) तुम दोनों (एषे अत्रये) इच्छावान्, कामनायुक्त अत्रि अर्थात् ऐश्वर्य के भोग करने वाले वा तीनों प्रकार के दुखों से निवृत्त पुरुष या अपने आत्मा के लिये ही (मधुमन्तं घर्मं) जलों की वृष्टि सहित घाम के समान, अन्न से युक्त घृत और (अपः क्षोदः न) जलों के समान प्राणों को (अवृणीतम्) प्राप्त कराओ अथवा-हे स्त्री पुरुषो । तुम दोनो (एषे) सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने और सब प्रकार के अन्न प्राप्त करने के लिये इसी प्रकार (अत्रये) तीनों दुखों मे रहित होने और देह के भोजनादि भोग प्राप्त करने के लिये (मधुमन्तं घर्मं) वृष्टि जल सहित सूर्यताप या अन्नसहित घृत-द्रव्य और शत्रु पीड़ा का बल सहित तेज प्राप्त करो और (क्षोदः न अपः) जलों के निरन्तर बहने वाले शान्तिदायक, प्रतिरोधी बाधक कारणों को समूल उखाड़ देने वाले प्राणों, कर्मों, और ज्ञानों को (अवृणीतम्) प्राप्त करो । हे (नरा) नायक पुरुषो ! मनुष्य रूप स्त्री पुरुषो ! हे नर नारियो ! (वां) आप दोनों को (पश्वः इष्टिः) सम्यग्दर्शन करने वाले विद्वान् का

सत्संग और (मध्वः इष्टि) मधुर अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति दोनों (रथ्या चक्रा-इव) रथ के चक्रों के समान परस्पर एक साथ और एक मार्ग पर चलने पर आप दोनों को (प्रति यन्ति) स्वयं एव प्राप्त होवें अर्थात् रथ के चक्रों को चलाने के लिये जिस प्रकार पशु जोड़ना और मधु घृतादि चिकना पदार्थ लगाना भी आवश्यक होता है उसी प्रकार स्त्री पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाने के लिये सद्द्रष्टा का संयोग और उत्तम अन्नादि ऐश्वर्य दोनों आवश्यक हैं।

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा॥५॥२३

भा०—(न) जिस प्रकार (तौग्र्यः) शत्रु बलों का नाश करने वाले बलशाली पुरुषों में श्रेष्ठ, (जिव्रिः) विजयशील पुरुष (गोः ओहेन) गमनशील सवारी के वहन करने या चलाने से या (गोः ओहेण) पृथ्वी के भार को अपने ऊपर धारण करने से (दस्रा दानाय आवर्तते) नाशकारी शत्रुओं के खण्डन करने के लिये प्रवृत्त होता है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! मैं (तौग्र्यः) आदान अर्थात् प्रतिग्रह करने योग्य पात्रों में उत्तम (जिव्रिः) विद्या वृद्धपुरुष (गोः-ओहेण) वाणी के तर्क वितर्क, ऊहापोह द्वारा (दानाय) तुम दोनों से धन दान रूप में लेने के लिये और तुमको सब प्रकार का उत्तम ज्ञान देने के लिये (दस्रा वां) दुखों के नाशक तुम दोनों को (आ ववृतीय) प्राप्त होता हूं। और जिस प्रकार (माहिना क्षोणी-अपः सचते) बड़े होने के कारण जल, नदी आदि पृथ्वी में ही आश्रय पाते हैं इसी प्रकार (अपः) आप्तजन (माहिना) आप दोनों की महानुभावता से (क्षोणी) सूर्य और पृथिवी के समान स्तुति के योग्य (वां) आप दोनों को (सचते) प्राप्त हों और (अक्षुः) सब तत्वों का द्रष्टा विद्वान् (जूर्णः) ज्ञान, और वयस में वृद्ध, उपदेष्टा

(यजत्रा वाम्) परस्पर संगत और दान शील और यत्नशील आप दोनों को (अहंसः) पाप से (आ ववृतीय) परे रखे इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुदानू) उत्तम रीति से जल देने वाले अन्तरिक्ष और द्यौ, या विद्युत् और सूर्य दोनों (नियुतः युवेथे) वेगवान् वायुओं को परस्पर मिलाते हैं तब वे दोनों (स्वधाभिः पुरन्धिम्) जलों से पृथिवी को बरसा देते हैं । तब (वातः सूरिः न) वायु भी सूर्य के समान ही (प्रेषत् वेषत्) सबकी तृप्ति करता और व्यापता है और (सुव्रतः वाजम् आददे) उत्तम उद्योगी कृषक अन्न प्राप्त करता है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! उत्तम नायक नायिक-जनो ! (यत्) जब तुम दोनों (नियुतः) अपने अधीन वेग से चलने वाले अश्वों, सेनाओं और नियुक्त भृत्यों को (नि युवेथे) नियुक्त करते हो तब आप दोनों (सुदानू) उत्तम दानशील और बाधक विघ्नों के नाश करने में चतुर होकर (स्वधाभिः) अपने प्रजा धारण के सामर्थ्यों, अन्नों, से (पुरन्धिम्) पुर को धारण करने वाले उत्तम शासक को, या उत्तम पुत्र के धारण पालन योग्य सामर्थ्य को (निसृजथः) उत्पन्न करते हो । उस समय वह (सूरिः) तेजस्वी विद्वान् (वातः न) वायु के समान सबका जीवनप्रद होकर (प्रेषद्) सबको उत्तम मार्ग में चलावे, सबको प्रसन्न करे और (वेषत्) सर्वत्र सुख सौभाग्य द्वारा व्यापे, सर्वत्र रेख देख रखे । और वह (सुव्रतः न) उत्तम कर्मसम्पादन करता हुआ (महे) बड़े भारी प्रयोजन के लिये (वाजम् आददे) ऐश्वर्य, बल को अपने हाथ में लेवे ।

वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ७

भा०—हे (अश्विनौ) ऐश्वर्यों के भोग करने वाले, स्त्री पुरुषो ! (वयं चित्) हम (जरितारः) उत्तम स्तुति करने हारे (सत्याः) सज्जनों में उत्तम सत्य वचन कहने वाले (वां) तुम दोनों की (विपन्यामहे) विविध प्रकार की स्तुति करते हैं और तुमसे नाना प्रकार के व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार (हितवान्) हित चाहने वाला (पणिः) विद्वान् पुरुष भी (वि) विविध प्रकार से उपदेश दे। इसी प्रकार (पणिः) व्यवहारवान् वैश्य जन भी (हितवान्) बहुत धनसंग्रहवान् होकर (वां वि) तुम लोगों से नाना प्रकार के व्यवहार किया करें। (अध चित् ह स्म) और इसी प्रकार आप दोनों (अनिन्द्या) कभी निन्दा योग्य न होकर सदा (वृषणौ) बलवान् और जल वृष्टि करने वाले सूर्य वायु के समान सब पर सुखों की वृष्टि करने वाले होकर (अन्ति देवम् पाथः) देव परमेश्वर और विद्वानों के समीप रहकर विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी वर्ग और देव के समीप स्थित, भक्त ईश्वरोपासक जन को भी (पाथः) पालन किया करो।

युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) सूर्य चन्द्र, या वायु और सूर्य के समान, व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री पुरुषो ? जिस प्रकार (विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ) विशेष गर्जनशील मेघ और जल से पूर्ण नद या झरनेके बहा देने के लिये (अगस्त्यः सहस्रैः) वृक्षों को उखाड़ फेंकने वाला वायु सहस्रों गर्जनों से (काराधुनीव) नक्कारे के समान सब स्त्री पुरुषों को सचेत करता है उसी प्रकार (विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ) विविध उपदेशों से युक्त, उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान प्राप्त कराने के लिये (अगस्त्यः) अज्ञान और पाप अपराधों को उखाड़ फेंकने वाला, (नरां) नायक पुरुषों में से (नृषु) उत्तम नेताओं में (प्रशस्तः) प्रशंसा को प्राप्त सर्वश्रेष्ठ

पुरुष (कारधुनि इव) शब्द ध्वनि करने वाले मेघ या नक्कारे के समान (सहस्रैः) हज़ारों उपदेशों या बलवान् उपायों से (युवां चितयत्) तुम दोनों को सचेत, प्रबुद्ध और ज्ञानवान् करे ।

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

भा०—(होता न मनुषः) धनी दानशील पुरुष जिस प्रकार अन्य मनुष्यों को रथ के बल से प्राप्त होता है उसी प्रकार (यत्) जब तुम दोनों (स्पन्द्रा) आगे बढ़ने में समर्थ होकर (रथस्य) रथवान् के समान रमण करने योग्य ऐश्वर्य रथादि के (महिना) महान् सामर्थ्य से (प्र वहेथे) आगे बढ़ो वा उत्तम रीति से विवाहित होवो, और (प्र याथः) सब से आगे बढ़ जाओ तब आप दोनों क्या करो ? तब आप दोनों (नासत्या) कभी भी असत्या-चरण और अशिष्टता का व्यवहार न करते हुए (सूरिभ्यः धत्तं) विद्वानों के हित के लिये (स्वश्व्यं) उत्तम वेगवान् अश्व आदि साधनों को भी (धत्तं) रखो, जिससे हम प्रजावर्ग (रयि-साचः) ऐश्वर्यों से सम्पन्न (स्याम) होवें ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १०।२४

भा०—हे (अश्विना) उत्तम गुणवान् पुरुषो ! (वयम्) आज हम (वां) आप दोनों के अधीन (तं रथं) उस रमण करने योग्य रथ के समान समस्त संकटों से पार ले जाने वाले, (नव्यं) नये से नये, अद्भुत (अरिष्टनेमिम्) दुःखों के निवारक, (द्याम् इयानम्) आकाश में जाते सूर्य के समान 'द्यौः' अर्थात् ज्ञान वाले विद्वानों की सभा को प्राप्त होने वाले साधन, या तुम में से ऐसे श्रेष्ठ पुरुष को (सुविताय) सुख से समस्त दुर्गम मार्गों को तय करने के लिये (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों और अधिकारसूचक, मानवर्धक पदों से (हुवेम)

पुकारें। और हम प्रजाजन (इषं वृजनं जीरदानुम् विद्याम) अन्न, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः— १, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६, ७, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम्॥१॥

भा०—हे उत्तम स्त्री और पुरुषो ! राष्ट्र सम्पत्ति और व्यापक अधिकार का भोग करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इषां) उत्तम अन्न आदि अभिलाषा योग्य (रयीणां) धनैश्वर्यों के लिये (प्रेष्ठौ) अति लोकप्रिय होकर (अध्वर्यन्ता) यज्ञ करने की इच्छा करते हुए (कत् उ) कभी (अपाम्) सूर्य चन्द्र, या वायु सूर्य के समान जलकणों के सदृश तुच्छ प्रजाजनों को (यत्) जब भी (उत्निनीथः) उन्नत करते हो (अयं) यही (वां) आप दोनों का (यज्ञः) बड़ा भारी दान है जो तुम दोनों की बड़ी कीर्त्ति (अकृत) उत्पन्न करता है। क्योंकि तुम दोनों ही (वसुधिती) सबको बसाने वाले राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होकर (जनानाम्) मनुष्यों के (अवितारौ) रक्षा करने हारे हो। राजा, रानी, सभा सभाध्यक्ष, सेना, सेनापति आदि युगल 'अश्विनौ' हैं।

आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्वों और विद्वानों के स्वामी राजस्त्री-पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों के अधीन (शुचयः) शुद्ध पवित्र, आचार वाले, (पयस्पाः) शुद्ध जल और पुष्टि कारक दुग्ध आदि पान करने हारे, (वातरंहसः) वायु के समान वेग से जाने वाले,

(दिव्यासः) दिव्य, विजयशील, (अत्याः) शत्रु की सीमा को अतिक्रमण कर वेग से आक्रमण करने वाले, (मनोजुवः) मन के वेग के समान वेग वाले, (वृषणः) बलवान् (वीतपृष्ठाः) सुरक्षित पीठ वाले, कवचधारी, वीर और विद्वान् पुरुष (स्वराजः) स्वयं सूर्य समान प्रकाशमान होकर, (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा रानी या राजा राजसभा उनको (इह) इस राष्ट्र में (आ वहन्तु) धारण करें, वे अश्वों के समान उन दोनों को सन्मार्ग पर ले जावें (२) अध्यात्म में—अश्वी मन और आत्मा हैं। उनके अश्व प्राण गण हैं। वे मन के वेग से चलते और स्व = आत्मा की चेतना से प्रकाशित हैं।

आ वां रथो॒ऽवनि॒र्न प्र॒वत्वा॑न्त्सृ॒प्रव॑न्धुरः सुवि॒ताय॑ गम्याः।
वृष्णः॑ स्थातारा॒ मन॑सो॒ जवी॑यानहम्पूर्वो य॑ज॒तो धि॑ष्ण्या॒ यः ३

भा०—(रथः) रथ जिस प्रकार (प्रवत्वान्) नाना वेगों से युक्त, (सुविताय) सुख पूर्वक देशान्तर में गमन करने के लिये उपयोगी होता है उसी प्रकार हे (स्थातारा) एक स्थान पर स्थिर होकर रहने वाले वीर, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! गृहस्थो ! हे (धिष्ण्या) उत्तम आधार वा धारण करने योग्य एवं बुद्धि और विवेक से कार्य करने हारो ! (वां) तुम दोनों में (यः) जो पुरुष रथ के समान रमण करने और अन्यों को रमण कराने या अपने आश्रय रखकर ले जाने हारा, (अवनिः) पृथ्वी के समान पालन करने हारा, (प्रवत्वान्) उत्तम वेगयुक्त साधनों का स्वामी, (सृप्रबन्धुरः) वेगवान् पदार्थों और वीर पुरुषों के बीच में व्यवस्थित, (वृष्णः) बलवान् (मनसः) मन से भी अधिक (जवीयान्) वेग और बल वाला, जितचित्त, (अहम्पूर्वः) अपने को ही सबसे प्रथम रखने हारा, (यजतः) सबसे अधिक पूज्य सत्संगयोग्य पुरुष है, वही (सुविताय) सुखसे लोक यात्रा के लिये (आ गम्याः) हमें प्राप्त हो।

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान अश्वि नामक विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आपदोनों (इह-इह जाता) इस इस अमुक २ कुल में उत्पन्न हुए (तन्वा) शरीर और (स्वैः नामभिः) अपने गुणों, नामों से (अरेपसा) निष्पाप होवो । आप दोनों (सम् अवावशीताम्) पर संगत होकर एक दूसरे को चित्त से चाहो । (वाम् अन्यः अन्यः) तुम दोनों में से एक एक अर्थात् प्रत्येक (जिष्णुः) विजयशील, एक दूसरे से गुणों में उत्कृष्ट, (सुमखस्य) उत्तम गृहस्थ यज्ञ का (सूरिः) करने वाला, (दिवः) तेजस्वी माता पिता का (सुभगः) उत्तम भाग्यवान् (पुत्रः) पुत्र होकर (ऊहे) गृहस्थ को धारण करे ।

प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः॥५।२५

भा०—हे (अश्विना) एक दूसरे के हृदय में व्यापक स्त्री पुरुषो ! हे अश्वादि सैन्य के स्वामियो ! जिस प्रकार (ककुहः वशां अनु) वृषभ गौ के पीछे कामनावश जाता है उसी प्रकार (वां) तुम दोनों में से जो (निचेरुः) भोगों का भोक्ता और (ककुहः) सर्वश्रेष्ठ और (पिशङ्गरूपः) सूर्य या सुवर्ण के समान पीले, उज्वल, काञ्चनगौर सुन्दर रूप का है वह (वशान् अनु) कामना करने योग्य उत्तम २ पुत्र आदि पदार्थों को लक्ष्य करके (सदनानि) गृहस्थ आदि आश्रमों को (गम्याः) जाता है । (वाम् अन्यस्य) तुम दोनों में से प्रत्येक के (हरी) मन और इन्द्रिय रूप अश्वों को (रजांसि) मनोरञ्जन करने वाले नाना राजस भोग और नाना लोक भी (वाजैः) ऐश्वर्यों से (मथ्ना) हृदय को मथन कर देने वाले आकर्षण से और (घोषैः) उत्तम २ वाद्य आदि संगीतों स्वरों से (वि पीपयन्त) विविध प्रकार से तृप्त करें और उनकी

वृद्धि करें। (२) सूर्य के पक्ष में—सूर्य सब दिशाओं में जाने वाला, पीला, तेजस्वी, (सदनानि) राशि गृहों को संक्रमण करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

प्र वां॑ श॒रद्वा॑न्वृष॒भो न नि॒ष्षाट् पू॒र्वीरिष॑श्चरति॒ मध्व॑ इ॒ष्णन्। एवै॑र॒न्यस्य॑ पी॒पय॑न्त॒ वाजै॒र्वेष॑न्तीरू॒र्ध्वा न॒द्यो॑ न॒ आगुः॑ ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य या मेघ और पृथिवी के समान हे स्त्री और पुरुषो! जिस प्रकार (वृषभः निः षाट् मध्व इष्णन् पूर्वी इषः चरति) मेघ या सूर्य वर्षणशील होकर सबको व्यापता हुआ मधु अर्थात् जलों को लेना या अन्नों को उत्पन्न करना चाहता हुआ (पूर्वीः इषः) पूर्व प्राप्त जलों को ग्रहण करता है और वह (शरद्वान्) प्रति ऋतु का स्वामी है। उसी प्रकार (वां) तुम दोनों में से (शरद्वान्) शरत् आदि उत्तम रमण करने योग्य ऋतुओं का स्वामी, (वृषभः) बल वीर्यवान्, निषेकादि करने में समर्थ, हृष्ट पुष्ट, (निः-षाट्) सब विघ्नों पर विजय पाने वाला, (मध्वः इष्णन्) मधुर अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों और पुत्रादि फलों की कामना करता हुआ, (पूर्वीः इषः) प्रथम मन से चाही, इष्टतम, दाराओं को प्राप्त करता है। वे (वेषन्तीः) हृदय में व्यापने वाली पत्नियां भी (अन्यस्य) उन दोनों में से एक की (एवैः) सुख प्राप्त कराने वाले कामनाओं और उपायों से (वाजैः) नाना भोग्य ऐश्वर्य सौभाग्यों, बलवान् पुत्रों से (पीपयन्त) उसको तृप्त और पुष्ट करती हैं। वे उसे (ऊर्ध्वाः) ऊपर से पड़ने वाली या उमड़ती हुई, चढ़ी (नद्यः) जल धाराओं या नदियों के समान (ऊर्ध्वाः) उत्तम कोटि की (नद्यः) गुणों से समृद्ध होकर उसे प्राप्त हों। (२) राजा के पक्षमें—(मध्वः इष्णन्) ऐश्वर्यों को चाहता हुआ वह (इषः) प्रजाओं का भोग करता है। वह बलवान् और शत्रु पराजयकारी होता है। (वेषन्तीः) राष्ट्र भर में फैली हुई प्रजाएं

(ऊर्ध्वाः नद्यः न) चढ़ती नदियों के समान स्वयं सम्पन्न होकर राजा को भी (पीपयन्त) पुष्ट करती हैं और (आगुः) उसी के शरण में आती हैं। (३) विद्वान् परिव्राजक के पक्षमें—(मध्वः इष्णन्) अन्न की भिक्षा चाहता हुआ (पूर्वीः इषः चरति) पूर्ण, सम्पन्न प्रजाओं में विचरता है। (वेषन्तीः उर्ध्वाः नद्यः न) प्रेम युक्त या फैली प्रजाएं भी उमड़ती नदियों के समान उसे कामनानुकूल अन्नों से भर देती हैं। (४) अध्यात्म में सौ वर्ष जीने से 'शरद्वान् वृषभ' आत्मा है। वह मधुर फलों की इच्छा से पूर्व विद्वानों की (इषः) आदेश व वाणियों पर आचरण करता है। और वे (वेषन्तीः) व्यापक सत्य वाली वाणियां उसको प्राप्त होतीं और अपने ज्ञानों से भर देती है। 'इषः' स्त्री पुरुष पक्षमें—दारावत् बहुवचनम्। जातौ वोभयम् बहुचनैकवचने।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

भा०—हे (वेधसा) विद्वान् पुरुषो ! या स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) विद्याओं और ऐश्वर्यों के पारंगत ! (वां) आप दोनों की (स्थविरा) स्थिर, अनुभव युक्त (गीः) उपदेश वाणी (बाढे) गुरु द्वारा दिये और शिष्य द्वारा प्राप्त किये जाते समय (त्रेधा क्षरन्ती) तीनों प्रकारों से बहती हुई (असर्जि) रची जाय। आप दोनों (उपस्तुतौ) खूब प्रशंसित और गुरु के समीप विद्या प्राप्त करके (नाधमानं) संताप करते हुए दुःखी, ऐश्वर्यवान् यजमान और विद्या याचना करने वाले शिष्य और आशीर्वाद देने वाले वृद्ध पुरुष को (यामन्) उत्तम मार्ग में रह कर (अवतम्) प्राप्त होवो। (अयामन्) न जाने योग्य मार्ग के सम्बन्ध में (मे) मेरा (हवं) वचन (श्रृणुतम्) श्रवण करो। अपथ में पैर रखते समय शिष्य गुरु का वचन सुने और गुरु शिष्य की पुकार सुने। वाणी का तीन प्रकार से क्षरण—मुख से, चक्षु से और हाथों से। अथवा अभिधा, लक्षणा और

व्यंजना रूप से। या आकांक्षा योग्यता आसत्ति से। अथवा वेदवाणी मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प भेद से, शब्द वा अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध से।

उ॒त स्या वां॒ रुश॑तो॒ वप्स॑सो॒ गीस्त्रि॒ब॒र्हिषि॒ सद॑सि पिन्वते॒ नॄन्।
वृषा॑ वां मे॒घो वृ॑षणा पीपाय॒ गोर्न सेके॒ मनु॑षो दश॒स्यन्॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों में से (रुशतः) तेजस्वी और (वप्ससः) उत्तम रूपवान् पुरुष की (स्या) वह उत्तम (गीः) वाणी (त्रि-बर्हिषि) त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान आसनस्थ वेदवेत्ताओं के बने (सदसि) धर्म सभा के बीच में (नॄन्-पिन्वते) सब मनुष्यों को सन्तुष्ट करे। (वृषा गोः सेके न) बलवान् सांढ जिस प्रकार गौ के ऊपर वीर्य सेचन करने के अवसर में (पीपाय) अति प्रसन्न होता है और जिस प्रकार (वृषा मेघः) वर्षण शील मेघ (गोः सेके न) पृथ्वी पर जल वर्षाने में (पीपाय) सब को तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार (वां) तुम दोनों में से (मेघः वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ वीर्यवान् बलवान् (मनुषः) मनुष्य (दशस्यन्) [वीर्य] दान देता हुआ (पीपाय) स्वयं प्रसन्न हो और सहचरी को भी तृप्त करे, अथवा वीर्यवान् बलवान् पुरुष (मनुषो दशस्यन्) उत्तम मनुष्यों को ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (पीपाय) स्वयं भी हृष्ट पुष्ट बना रहे (२) इसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी योग्यता से व्यवरा में उत्तम वाणी द्वारा लोगों को ज्ञान से तृप्त सन्तुष्ट करने वाला हो और मेघ के समान ज्ञान प्रदान करता हुआ (गोः सेके न) वाणी के द्वारा ज्ञान वर्षण के अवसर पर सब को तृप्त करे। सब के ज्ञान की वृद्धि करे।

यु॒वां पू॒षेवा॑श्विना॒ पुर॑न्धिर॒ग्निमु॒षां न ज॑रते ह॒विष्मा॑न्।
हु॒वे यद्वां॑ वरि॒व॒स्या गृ॑णा॒नो वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम्॥६।२६॥

भा०—हे (अश्विना) एक दूसरे के आत्मा के स्वामी स्त्री पुरुषो! (युवां) तुम दोनों (हविष्मान्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (पूषा) सब के

पोषक सूर्य के समान और (पुरन्धिः) राष्ट्र को धारण करने वाले राजा के समान जानकर और (अग्निम्) अग्नि अर्थात् तेजस्वी और अग्रणी सूर्य और(उषां) कमनीय प्रभात वेला के समान (जरते) स्तुति करता है। (यत्) जो (वां) तुम दोनों को (वरिवस्या) सेवा आदि कर्त्तव्यों का भी पूर्ववत् (गृणानः) उपदेश करता हुआ (वां हुवे) तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करे। इस प्रकार हम सभी प्रजाजन (इषं वृजनं जीरदानुम् विद्याम) अन्न बल और दीर्घायु प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१८२]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवता ॥ छन्दः—१,५,७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराट् जगती। २ स्वराट्। त्रिष्टुप्। ६, ८ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः। धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

भा०—(ओ मनीषिणः) हे बुद्धिमान् पुरुषो ! (इदं) यह (वयुनम्) सब से उत्तम देह है, इसमें (वृषण्वान्) बलवान् पुरुषों के समान बलवान् प्राणों का स्वामी (रथः) रमण करने और चलाने हारा, सर्वत्र रमने हारा एवं रस रूप से (अभूद्) है। उसको (सु भूषत) उत्तम रीति से अलंकृत करो। उसमें उत्तम गुण और बल धारण कराओ (मदत) उसको अच्छी प्रकार प्रसन्न करो। उससे स्वयं भी आनन्द लाभ करो। (दिवः नपाता) सूर्य के समान तेजःस्वरूप उस आत्मा के पुत्र के समान उसको न गिरने देने हारे, उसको देह में सदा बनाये रखने हारे (धियञ्जिन्वा) ज्ञान कर्म दोनों को प्रेरने वाले, (धिष्ण्या) सर्वोत्तम, उत्तम प्रज्ञा को उत्पन्न करने वाले, (विश्पलावसू) प्रजाओं को पालने वाले, धन बल से सम्पन्न, (सुकृते) उत्तम कर्म और आचारण में सदा

(शुचिव्रता) पवित्र व्रत का पालन करने वाले, देह में सदा शुद्धि बनाये रखने वाले, दो प्रधान पुरुषों के समान देह में प्राण और अपान हैं। उनको (आ भूषत) उत्तम सामर्थ्यवान् करो और (आ मदत) सब प्रकार से अन्नादि द्वारा हृष्ट पुष्ट करो और तृप्त होवो।

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना॥२

भा०—हे (अश्विना) उत्तम विद्याओं या राष्ट्र व्यापक अधिकार वाले अश्वरथादि सेना के नायको! आप दोनों (इन्द्रतमा) सब से अधिक ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक, (धिष्ण्या) उत्तम आसन के योग्य एंव निर्भीक, प्रगल्भ, (मरुत्तमा) समस्त शत्रुमारक वीर भटों में और विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ, (दस्रा) शत्रुओं और विघ्नों के नाश करने हारे, (दंसिष्ठा) उत्तम कर्मकुशल, (रथ्या) रथसञ्चालन में चतुर, (रथीतमा) उत्तम महारथी होकर (मध्वः) मधुर अन्नादि पदार्थों से पूर्ण रथ को (वहेथे) धारण करो और (तेन) उसी रथ से (आचितं दाश्वांसम्) सब तरफ़ से धन सञ्चय करने वाले दानशील राष्ट्र को भी (उपयाथः) प्राप्त करो और उसे वश करो (२) इसी प्रकार जो स्त्री पुरुष (रथं) रमणयोग्य गृहस्थरूप रथ को (मध्वः पूर्णं) मधुर अन्न और आमोद प्रमोद और स्नेह से पूर्ण धारण करते हैं और जो अपने देहरूप रथ (मध्वः) बलवीर्य से पूर्ण रखते हैं वे उत्तम इन्द्रतम अर्थात् पूज्यतम, उत्तम विद्वान्, दुखों के नाशक, कर्मकुशल, उत्तम रथी के समान और देह रथ में लगे उत्तम घोड़ों के समान हों, वे (आचितं दाश्वांसम्) सब प्रकार से प्रबुद्ध, ज्ञानवान्, ज्ञानप्रद गुरु को उसी रम्य गृहस्थ व्रत से प्राप्त हों। (३) अध्यात्म में वे इन्द्र आत्मा के प्रमुख बल होने से 'इन्द्रतम' हैं। मुख्य प्राण होने से मरुत्तम, दुःखनाशक होनेसे 'दस्र', देह में हित होने से 'रथ्य', देह में आश्रित होने से रथीतम हैं। (मध्वः

पूर्णं) अन्न पालित देह का वहन करते हैं। उसी देह से वे (आचितं दाश्वासं) सब प्रकार से चेतनावान् ज्ञानी आत्मा को प्राप्त हैं।

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३॥

भा०—(यः) जो (कश्चित्) कोई (जनः) जन अर्थात् जन पद (अहविः) देने लेने योग्य अर्थात् व्यापार योग्य पदार्थों या भोजन करने योग्य अन्नादि पदार्थों से रहित है वह भी (महीयते) बड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त हो जाता है। इसलिये हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! व्यापक विस्तृत विद्या वाले विद्वानो ! आप बतलाओ कि (अत्र) ऐसे देश या जनपद में आप दोनो ही (दस्रा) सब प्रकार दुःख संकट और विघ्नों के नाश करने वाले हैं, आप दोनों (किं कृणुथः) वहां व्यवसाय और भोजनादि द्वारा जनपालन का क्या उपाय करते हैं ? और वहां आप दोनों (किम् आसाथे) किस प्रकार रहते हैं ? आप दोनों (पणेः) असत् व्यवहार करने वाले दुष्ट पुरुष के (असुं) प्राण को (अति क्रमिष्टम्) नाश करते, (जुरतं) और पीड़ित करते हो और (वचस्यवे) उत्तम वाणी बोलने वाले (विप्राये) विद्वान् पुरुष के लिये (ज्योतिः कृणुतम्) नाना ऐश्वर्य प्रदान करते हो। (२) गुरुजनों के पक्षमें—(पणेः असुं अतिक्रमिष्टं जुरतं) विद्या का प्रक्रम करने वाले (असुं) प्रज्ञा या मति को तुम पार करते और उसे बहुत तप द्वारा पीड़ित करते हो और (वचस्यवे विप्राय) वेद वाणी के इच्छुक विद्वान् जो कोई भी (अहविः) बिना दान भेट के भी आता है (महीयते) आदर योग्य गुणों को धारता है उसके लिये तो (किम् आसाथे) क्या आप दोनों उदासीन रहते हैं ? या (किम् अत्र करतः) क्या करते हैं ? उदासीन नहीं रहते, प्रत्युत (ज्योतिः कृणुतम्) ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हो। तो (३) प्राणापान इस देह में कैसे रहते हैं ? क्या करते हैं ? जो पुरुष अन्न

नहीं खाता और जीता रहता है उस जीव के 'असु' क्रिया शक्ति और प्रज्ञा को न्यून कर देते और पीड़ित कर देते हैं। जो वाणी को बोलने वाला 'विप्र' अर्थात् विविध उपायों से शक्ति को अन्नादि से पूर्ण करता है उसको वे प्रकाश, तेज देते हैं।

जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४॥

भा०—(अभितः) सब ओर से (रायतः) निन्दा करने वाले, भौंकते और भयंकर चीत्कार आदि करते हुए (शुनः) कुत्ते के स्वभाव के जन्तुओं और शत्रुओं को (जम्भयतम्) अच्छी प्रकार नाश करो। (मृधः हतम्) संग्राम कारी पुरुषों को मारो। हे (अश्विना) विद्या और बल से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (तानि) उक्त कर्मों के करने के नाना साधनों को (विदथुः) प्राप्त करो और जानो ! और आप लोग ही (जरितुः) उत्तम उपदेष्टा से विद्या प्राप्त करके (वाचं वाचं) हरेक वाणी को (रत्निनीम्) उत्तम रमणीय गुणों से अलंकृत, रत्नों से जड़ी लड़ी के समान (कृतम्) बनाओ। ऐसे आप दोनों ही (नासत्या) कभी असत्याचरण न करते हुए (मम शंसम्) मेरी उत्तम प्रशंसनीय गुण और स्तुति और उपदेश को (अवतम्) जानो और उसका पालन करो। (२) अध्यात्म में—श्ववृत्ति, कुत्सित वचन कहने वाली, पाप सिखाने वाली इन्द्रियों को दमन करो, बाधाओं को दूर करो, उन २ उत्तम उपायों को जानो, वाणी को सुन्दर मोतियों से जड़ लो। विद्वान् के कहे उत्तम उपदेश का पालन करो।

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः॥५॥२७

भा०—(युवम्) आप दोनों स्त्री पुरुष वर्ग मिलकर (सिन्धुषु) समुद्रों में (एतं) ऐसे २ (आत्मन्वन्तं) अपने जनों से युक्त या दृढ़

(पक्षिणं) पक्षों और पतवारों वाले (प्लवम्) जहाज़ को (तौग्र्याय) बलशाली, शत्रुनाशकारी वा लेन देन करने वाले व्यापारी पुरुषों के उपयोग के लिये (चक्रथुः) बनाओ । (येन) जिससे (देवत्रा) विद्वानों के बीच में विद्यमान (मनसा) ज्ञान के द्वारा (सुपप्तनी) सुख से गमन करने में समर्थ होकर (निः ऊहथुः) दूर २ तक पहुंचो और (महः क्षोदसः) बड़े भारी जल सागर के भी (पेतथुः) पार करने में समर्थ होवो (२) अध्यात्म में—यह देह (सिन्धुषु) प्राणों के आश्रय पर बना संसार सागर से पार उतरने का 'प्लव' है, आत्म युक्त होने से 'आत्मन्वान्' है। वाम, दक्षिण पार्श्व समान होने से पक्षी के तुल्य है । वह इस निकेतन या गृह रूप देह में रहने वाले जीव के लिये प्राण और अपान धारण करते चलाते हैं । वे दोनों मन के बल से इन्द्रियों के बल पर चलाते हैं । बड़े भारी काल या जीवन को पार कर जाते हैं । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥६॥

भा०—(जठलस्य) समुद्र के मध्य भाग में भी (जुष्टाः) साथ लगी (चतस्रः नावः) चार २ नौकाएं हों, जो (अप्सुः अन्तः) समुद्रों के बीच में (अनारम्भणे) आलम्बन रहित, भयजनक (तमसि) अन्धकार के समान गभीर जल में या दुःखदायी विपत्ति में (प्र-विद्धम्) फंसे और (अव-विद्धं) निराश हुए (तौग्र्यम्) व्यापारी जन को भी (अश्विभ्यां) जल अग्नि से युक्त अश्व अर्थात् ऐंजिनों के दो दो स्वामियों से (इषिताः) सञ्चालित होकर (उत्पारयन्ति) उसे पार पहुंचा देवें । (२) अध्यात्म में—'जठल' मध्यस्थ मुख्य चित्त में लगी चार नावें चार अन्तः करण हैं । वे भी प्राण अपान के बल से चलते हैं चिन्तन, संकल्प विकल्प, मनन और धारणा किया करते हैं । देह रूप गेहधारी यह 'तौग्र्य', जीव है । जो 'अनारम्भण तमस्' अर्थात् आलम्बनरहित, निरुपाय

अविद्यान्धकार में फंसा और (अप्सु अवविद्धं) प्राणों में या लिङ्ग शरीरों में फंसा रहता है। उक्त चारों नौकाएं उस आत्मा को ऊपर परमेश्वर तक पहुंचा देती हैं। अथवा जग्ध अर्थात् भुक्त को धारण करने वाला भुक्त भोगी 'जठल' यह आत्मा स्वयं जल के समान है। उस द्वारा सेवित चार नौका चार वेद हैं, जो अज्ञान में फंसे को तारते हैं। 'जठलं, जलं, ठकारोपजनःश्छान्दसः। जग्धं राति इति जठरम्।'

कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत्। पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥

भा०—(अर्णसः मध्ये) जल के बीच में (कः स्वित् वृक्षः) कौनसा वह वृक्ष (निष्ठितः) खूब अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित है (यं) जिसको (तौग्र्यः) उत्तम बलवान् पुरुष भी (नाधितः) जल के बीच अति दुःखी संतप्त होकर एवं आशावान् होकर (परि असस्वजत्) खूब अच्छी प्रकार पकड़ लेता है ? (पतरोः इव मृगस्य) गिरते हुए वानर के लिये (पर्णा) जिस प्रकार पत्ते ही (आरभे) उसको सम्भालने के लिये पर्याप्त होते हैं उसी प्रकार (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुष भी (पतरोः) गिरने वाले, (मृगस्य) आश्रय की खोज लगाने वाले पुरुष के (आरभे) आलम्बन के लिये (पर्णानि) पालन करने वाले साधन बनकर (श्रोमताय) अपने कीर्त्ति के लिये उसे (उद् ऊहथुः) ऊपर उठा लिया करें। पूर्व प्रश्न का उत्तर है—जिस प्रकार जल से भरे सागर के बीच आलम्बन के लिये वह वृक्ष की बनी नौका ही है जिसे व्यापारी वा परराष्ट्र विजयी आश्रय के लिये पकड़ता है।

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन्। अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥२८॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यभाषण, मनन और आचरण

करने वाले हे (नरा) नर नारी जनो ! (वां) तुम दोनों के (मानासः) ज्ञानवान् माननीय पुरुष जो (उचथम्) वेदोपदेश (अवोचन्) करें। (वां तद्) वह तुम दोनों को (अनु स्यात्) सदा अनुकूल हो । (अस्मात्) इस (सौम्यात्) विद्वानों की (सदसः) सभा से (अद्य) आज अर्थात् अभी (आ) तुम निर्णय, व्यवस्था आदि प्राप्त करो । इस प्रकार हम सब लोग (इषं) उत्तम मनोकामना और (वृजनं) बल और (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन (विद्याम) प्राप्त करें । इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

[१८३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५, ६ निचृत् पङ्क्तिः । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो मन से भी अधिक (जवीयान्) वेगवान् है, जो (त्रिबन्धुरः) तीन बन्धनों वाला, और जो (त्रिचक्रः) तीनों चक्रों वाला है (तम्) उसके साथ (वृषणा) बलवान् दो अश्व (युञ्जाथाम्) जोड़ो । (त्रिधातुना येन) तीन धातुओं के बने जिस द्वारा (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष के (दुरोणं) गृह को (पर्णैः विः न) पंखों से पक्षी के समान (उप याथः) प्राप्त होवो । उसी प्रकार मन से भी अधिक वेगवान् बलवान् उनका भी प्रेरक आत्मा है उसकी तरफ (वृषणा) बलवान् प्राण और अपान दोनों का योग करो । योगाभ्यास के बल से उनको वश करो । आत्मा युक्त देह तीन गुण सत्व, रजस्, तमस् तीनों से बन्धा होने से 'त्रिबन्धुर' है और मन, वाणी और काय इन तीन कारकों से युक्त होने से 'त्रिचक्र' है । वह वात, पित्त कफ से युक्त होने से त्रिधातु है । इसी द्वारा मन आत्मा दोनों उसका योग

द्वारा (तं) उस प्रभु परमेश्वर का साक्षात् और ज्ञानों मे सुकृत के आश्रय उत्तम लोक व प्रभु को प्राप्त करें ।

सुवृद्रथो॑ वर्तते॒ यन्न॒भि क्षां यत्तिष्ठ॑थः॒ क्रतु॑म॒न्तानु॑ पृ॒क्षे ।
वपु॑र्वपु॒ष्या स॑चतामि॒यं गीर्दि॒वो दु॑हि॒त्रोषसा॑ सचेथे ॥ २ ॥

भा०—(सुवृत् रथः क्षाम् अभि यन् वर्त्तते) जिस प्रकार उत्तम रीति से, सुख से चलने हारा, रमण साधन यान आदि रथ, पृथिवी के चारों ओर जाया करता है (यत् अनु पृक्षे क्रतुमन्तौ तिष्ठथः) जिस पर अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के प्राप्त करने के लिये काम काज वाले आदमी बैठते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो जो (सुवृत्) उत्तम रीति से वर्त्तने वाला, सत्-आचार युक्त (रथः) रमण करने और कराने वाला, (क्षाम् अभियन्) निवास योग्य भूमि के समान अपने आश्रय पर बसाने वाली स्त्री को प्राप्त होकर (वर्त्तते) रहता है (यत् अनु) जिस में (पृक्षे) परस्पर के सम्पर्क, संग अनुराग और प्रेम या अन्न के आधार पर रहकर (क्रतु-मन्ता) दोनों कार्य कुशल स्त्री पुरुष (तिष्ठथः) विराजते हैं । हे स्त्री पुरुषो ! (इयं) यह (वपुष्या) देह में उत्तम रीति से उत्पन्न होने वाली 'स्वयं' या देह में उत्पन्न अन्य गुणों को (वपुः) और उत्तम रूप को भी (सचताम्) प्राप्त करे । (दिवः दुहित्रा) सूर्य की कन्या (उषसा) उषा अर्थात् प्रभात वेला के सदा नये रूप में प्रकट होने वाले (दिवः दुहित्रा) कामनाओं को पूर्ण करने वाले और कान्तियुक्त रूप से युक्त होकर, सुप्रसन्न वदन होकर तुम दोनों स्त्री पुरुष परस्पर (सचेथे) मिलकर रहो । अथवा (इयं गीः) यह वाणी प्रेम वृद्धि करने वाली बात चीत (वपुष्या) बीज वपन और सन्तान वृद्धि के निमित्त होकर (वपुः) उत्तम सन्तति वपन या उत्तम स्वरूप या परिणाम को प्राप्त करे । अर्थात् इसका उत्तम फल हो ।

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥

भा०—हे (नरा) नरनारी जनो ! आप दोनों (सुवृतं आतिष्ठतं) उत्तम रीति से चलने वाले रथ के समान उत्तम आचरवान् पुरुष या सदाचार युक्त गृहस्थाश्रम रूप-रथ पर आकर स्थित होवो । (यः रथ) जो तुम दोनों को रमाने हारा (हविष्मान्) अन्न ज्ञान और बल से युक्त (व्रतानि अनु वर्त्तते) तुम्हारे कर्तव्य कर्मों के अनुकूल ही रहता है, हे (नासत्या) कभी परस्पर असत्य व्यवहार न करने हारो ! आप दोनों (येन) जिस द्वारा (वर्त्तिः) गृह और लोकयात्रा तथा अपनी स्थिति, सत्ता को (एषयध्यै) प्राप्त करने या निबाहने के लिये और (तनयाय) पुत्रलाभ या और (त्मने) अपने आत्मा या देह के सुख के लिये भी (याथः) प्राप्त होते हो उस रथस्वरूप गृहस्थाश्रम पर आरूढ़ होवो ।

मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ४

भा०—हे स्त्री पुरुषो (वां) तुम दोनों को या तुम दोनों में से कोई (वृकः) भेड़िये के समान कुटिलाचारी हिंसक या चोर स्वभाव वाला पुरुष होकर (मा आदधर्षीत्) एक दूसरे को अपमानित न करे । और तुम में से किसी को (वृकीः) चोरस्वभाव की हिंसाशील स्त्रियें भी (मा आदधर्षीत्) तुम्हें अपमानित न करें । तुम दोनों (मा परि वर्क्तम्) एक दूसरे का कभी त्याग न करो । (मा अति धक्तम्) एक दूसरे को मर्यादा अतिक्रमण करके कभी मत जलाओ, एक दूसरे के दिल को मत दुखाओ । (वां) तुम दोनों का (अयं भागः) यह परस्पर सेवन करने योग्य पृथक् २ भाग है । (इयं गीः) यह वेद वाणी व्यवस्था करने वाली है । हे (दस्रौ) एक दूसरे के दुःखों का नाश करने वालो ! (इमे) ये

(मधूनां) मधुर अन्नों, जलों, उत्तम फलों के (निधयः) ख़ज़ाने सब (वां) तुम्हारे ही उपभोग के लिये हैं।

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान्।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (दस्रा) दुःखों और दुःखदायी कारणों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो ! जो पुरुष (गोतमः) किरणों वाले सूर्य के समान तेजस्वी वा उत्तम वेद वाणी का विद्वान् , बलवान् (पुरुमीढः) बहुतों को दान देने वाला, बहुत से ऐश्वर्य से स्वयं समृद्ध, (अत्रिः) भ्रमणशील, परिव्राजक या (अत्रिः) त्रिविध दुखों से रहित, (हविष्मान्) उपादेय ज्ञान, बल और ऐश्वर्यादि से युक्त होकर (अवसे) रक्षा के लिये (युवां हवते) तुम्हें पुकारता या अपनी शरण में लेता है या उपदेश प्रदान करता है और जो (दिष्टा दिशम् न) नियत निश्चित दिशा के समान पूर्वाचार्यों और उपदेशों द्वारा निर्दिष्ट और उपदिष्ट दिशा की ओर (ऋजूया इव) अत्यन्त सरल मार्ग से (यन्ता) लेजाने हारा हो वही (युवां) तुम दोनों के लिये (गोतमः) ज्ञानवान् , रथ में लगे वृषभ के समान, तुमको सन्मार्ग पर लेजाने वाला (पुरुमीळहः) बहुत से ऐश्वर्य देने वाला और वही (अत्रिः) त्रिविध संकटों से पार करने वाला हो । हे (नासत्या) सदा सत्य व्यवहार वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मे) मेरे (हवं) वचन को (उप यातम्) श्रवण करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥२१॥४॥

भा०—हम लोग (अस्य) इस (तमसः) दुःखदायी अविद्या अन्धकार के (पारम्) पार (अतारिष्म) पहुंचें और पहुंच गये हैं। (वां प्रति स्तोमः) आप दोनों के प्रति यह बहुत से कर्त्तव्यों का उपदेश (प्रति अधायि) प्रत्येक को पृथक् भी कह दिया जाता है। आप दोनों (देवयानैः पथिभिः) विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्गों से जीवन

यात्रा करो। हम लोग भी इसी प्रकार से (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) उत्तम अन्न, कामना, बल, और उत्तम जीवन प्राप्त करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[१८४]

अगस्त्य ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः। ४ भुरिक् पङ्क्तिः। ५, ६, निचृत् पङ्क्तिः। २, ३, विराट् त्रिष्टुप्॥ षडर्चं सूक्तम्॥

ता वा॒मद्य ताव॑प॒रं हु॑वेमो॒च्छन्त्या॑मु॒षसि॒ वह्नि॑रु॒क्थैः।
नास॑त्या॒ कुह॑ चि॒त्सन्ता॑व॒र्यो दि॒वो नपा॑ता सु॒दास्त॑राय॥ १॥

भा०—हे (नासत्यौ) असत्याचरण से रहित विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (कुह चित् सन्तौ) चाहे कहीं भी रहें, तो भी (वह्निः) ज्ञान का वहन करने या दूसरों तक पहुंचाने वाला विद्वान् व हम लोग (उच्छन्त्याम् उषसि) प्रभात वेला के खुल जाने पर (ता वाम् अद्य) तुम दोनों को आज (हुवेम) नित्य उत्तम उपदेश दें। (तौ) उन तुम दोनों को ही (अपरम्) अगले दिन भी (हुवेम) प्रेम से उपदेश करें। अथवा (ता वाम् अद्य तौ अपरं हुवेम) हम विद्वान् जन तुम दोनों को आज और आगे भी यही उपदेश देते हैं कि (वाम्) तुम दोनों में से (उच्छन्त्याम् उषसि वन्हिः उक्थैः) उषा के समान नित्य अपने रूप को उज्ज्वल प्रसन्न दिखाने वली कमनीय स्त्री के निमित्त (वन्हिः) विवाह करने वाला पुरुष (ऊक्थः) उत्तम वचनों से बोले। (कुह चित् सन्तौ) चाहे तुम दोनों किसी भी दशा या देश में रहो, पर (नासत्या) असत्य

व्यवहार कभी न करने वाले होकर रहो। (अयं सुदास्तराय दिवः नपाता) और जिस प्रकार वैश्य अपना माल सब से उत्तम मूल्य देने वाले को देता है उसी प्रकार (वां अर्यः) तुम दोनों में जो स्वामी है वह (सुदास्तराय) अधिक सुख देने वाले दूसरे अंगके लिये (दिवः नपाता) परस्पर की कामना या प्रेम को कभी नीचे न गिरने देना वाला ही रहे।

अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२॥

भा०—हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग (अस्मे-पणीन् उ सु मादयेथाम्) व्यवहार करने में कुशल हम लोगों को प्रसन्न, आनन्दित रक्खो। (ऊर्म्या) रात्रि काल में या हृदय की प्रेम तरंग या उमंग से दोनों (मदन्ता) सुप्रसन्न रहते हुए (पणीन्) उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों तक उठकर (उत् हतम्) उनको आदर से प्राप्त करो, उन तक उत्साह युक्त होकर पहुंचो। हे (नरा) उत्तम नायको ! (निचेतारा) प्राप्त संपदाओं, ज्ञानों का संचय करने वाले और अच्छी प्रकार ज्ञान संग्रह करने वाले स्त्री पुरुषो ! (मतीनाम्) मननशील विद्वान् पुरुषों की (अच्छोक्तिभिः) उत्तम२ सुप्रशस्त वचनों से (एष्टा) मैं आप दोनों को प्राप्त करता हूं। आप दोनों (मे) मेरे वचनों को (कर्णैः) कानों से (श्रुतम्) श्रवण किया करो। (२) हे दो वीर नायको ! राजन् ! सेनापते ! आप दोनों बलवान् होकर हम राष्ट्र वासियों में प्रसन्न रहें। (पणीन्) असुरों को (ऊर्म्या) उठती सेना से (उत् हतम्) उखाड़ दो। (मे) मुझ से ज्ञान के मनन शील विद्वानों की उत्तम वचनावलियें (निचेतारा) संञ्चयशील होकर कानों से सुनो, (श्रुतं मे) मुझ प्रजा की बात ध्यान से सुनो।

श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३॥

भा०—हे (पूषन्) पालन पोषण करने वाले वर वधू के माता

पिता जन ! (इषुकृता इव) जिस प्रकार कोई जन्तु बाण से बिंध कर तन्मय होजाता है इस प्रकार एक दूसरे के प्रति उत्पन्न अनुराग, प्रबल मिलने की (इषु) इच्छा या मनोकामना रूप बाण से आहत हुए, अति अनुरक्त (देवा) एक दूसरे की कामना करने और एक दूसरे का हृदय जीतने वाले स्त्री और पुरुष दोनों यदि (नासत्या) कभी परस्पर असत्य आचरण असत्य भाषण चोरी आदि न करके धर्म पूर्वक रहने वाले हों तो वे दोनों (श्रिये) एक दूसरेकी शोभा और एक दूसरे के आश्रय के लिये होते हैं। जिस प्रकार (अप्सु जाताः ककुहाः सूर्यायाः भूरेः वरुणस्य च वहतुं वच्यन्ते) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के स्थूल रूप धारण करलेने पर उनके बीच उत्पन्न या प्रकट हुई दिशाएं सूर्य की कान्ति और बड़ेभारी वरुण अर्थात् व्यापक जलके धारण करने के कार्य को स्पष्ट बतलाती हैं और जिस प्रकार (जूर्णा इव युगाः) ये दिशाएं ही अतीत वर्षों की गाथाएं बतलाते हैं उसी प्रकार (अप्सुजाताः ककुहः) प्रजाओं में प्रसिद्ध २ विद्वान् वाग्मी पुरुष भी (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति या उषा के समान सूर्यवत् तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करने वाली वधू और (भूरेः) बहुत से सामर्थ्यों से युक्त महान् (वरुणस्य) स्वयंवृत पति इन दोनों के (वहतुं) परस्पर के धारण रूप विवाह को लक्ष्य करके (जूर्णा इव युगा) गुजरे हुए अतीत काल के जोड़ों की भी (वच्यन्ते) प्रशंसा किया करते हैं। अर्थात् उत्तम वर वधू का उत्तम जोड़ा बना देख कर प्रायः लोग विद्वान्, कविजन, ऐतिहासिक उत्तम रामसीता, शंकरपार्वती, नलदमयन्ती आदि का भी वर्णन किया करते हैं और उनकी याद करते हैं। इसलिये उत्तम माता पिताओं को चाहिये कि वे अपने बालक बालिकाओं के विवाह, स्वयंवर द्वारा अच्छे जोड़े बना कर ही किया करें।

अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो! हे (सुदानू) उत्तम दानशील, एक दूसरे को अच्छी प्रकार समर्पण करने वाले वर वधू! (चर्षणयः) विद्वान् पुरुष (श्रवस्या) यश की कामना से ही (सुवीर्याय) उत्तम वीर्यवान् पुत्र को प्राप्त करने के लिये अथवा (वां) तुम दोनों में से (सुवीर्याय) उत्तम वीर्यवान् पुरुष के उत्साह वृद्धि के लिये ही (वां अनुमदन्ति) तुम दोनों को देख २ कर प्रसन्न होते हैं, तुम दोनों की खुशी के साथ लोग खुशी मनाते हैं। हमारी कामना है। कि (वां) तुम दोनों की (सा) वह उत्तम (रातिः) दानशीलता या परस्पर समृद्धि (अस्मे) हमारे बीच में हमारे लिये (माध्वी) मधुर, रम्य और उत्तम फलजनक (अस्तु) हो। आप दोनों (मान्यस्य) प्रमाण भूत, ज्ञानमय शास्त्रों में प्रवीण और माननीय आप्त, (कारोः) क्रिया कुशल, अनुभवी पुरुष के (स्तोमम्) कहे उपदेशों को (हिनोतम्) प्रसन्नता से प्राप्त करो।

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

भा०—माननीय लक्षण-प्रमाणज्ञ, वेदज्ञ विद्वान् का क्या उपदेश है सो बतलाते हैं। हे (अश्विनौ) स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों को (मानेभिः) ज्ञानवान् पुरुषों ने (सुवृक्ति) पाप के मार्ग से बचाने के लिये (एषः) यह (स्तोमः) वेदमन्त्रों द्वारा उपदेश (अकारि) किया है। हे (मघ-वाना) ऐश्वर्ययुक्तो! आप दोनों (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करते हुए (अगस्त्ये) पाप या विघ्न बाधाओं को दूर करने में समर्थ पुरुष के अधीन या विघ्नादि से रहित मार्ग में (मदन्ता) अति प्रसन्न होते हुए (तन-याय) अपने सन्तान और (त्मने) अपने आपकी उन्नति के लिये (सुवृक्ति) उत्तम, दुःख से रहित (वर्तिः) मार्ग और गृह या शरण को (यातम्) प्राप्त करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त १८३। मन्त्र ६ ॥ इति प्रथमो वर्गः ॥

[१८५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ७, ८, १०, ११ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ९ निचृत् त्रिष्टुप् एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१॥

भा०—द्यावा पृथ्वी रूप से माता पिता के कर्त्तव्यों का वर्णन। (अयोः) माता और पिता इन दोनों में से (कतरा पूर्वा) पहले कौन उत्पन्न हुई और (कतरा अपरा) बाद में कौन उत्पन्न हुई अथवा (पूर्वा कतरा और अपरा कतरा) मुख्य कौन और गौण कौन ? या पहले मातृ रूप या जनक रूप से कौन और 'अपर' अर्थात् पीछे कार्य रूप से कौन है ? और यह भी बतलाओ कि (कथा जाते) वे दोनों क्यों, किस प्रयोजन से उत्पन्न हुए हैं ? हे (कवयः) दीर्घदर्शी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग बतलावें कि इस तत्व का रहस्य (कः विवेद) कौन भली प्रकार से जानता है यह तत्व किसने साक्षात् किया है, वस्तुतः ये दोनों ही स्त्री पुरुष माता और पिता (त्मना) स्वयं अपने आप अपने देह से और अपनी आत्मा से (विश्वं) सब जगत् को या समस्त 'विश्व' अर्थात् जीव-मात्र को (बिभृतः) विविध प्रकार से धारण पोषण करते हैं। और जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी (त्मना विश्वं नाम बिभृतः) अपने सामर्थ्य से समस्त जल को धारण करती हैं उसी प्रकार, (अहनी) रात और दिन के समान और (चक्रिया-इव) रथ के दो पहियों के समान (वि वर्त्तेते) विविध प्रकार से वर्त्तते हैं।

भूरिं द्वे अर्चरन्ती चरन्तं पद्वन्तँ गर्भमपदीं दधाते।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (द्वे) दोनों (अचरन्ती) विचलित न होते हुए (अपदी) स्वयं पादों से रहित स्थावर होकर भी सूर्य पृथ्वी दोनों (चरन्तं) विचरणशील जंगम, (पद्वन्तं) ज्ञान साधनों या चरणों से युक्त जीव संसार को (गर्भम्) अपने भीतर (दधाते) धारण करते हैं उसी प्रकार (द्वे) दोनों माता पिता भी (अचरन्ती) अधर्म पथ पर न चलते हुए और धर्म मार्ग या गृहस्थ में स्थिर रहते हुए (अपदी) स्वयं विशेष पद या महत्वाकांक्षा या सुखों से रहित होकर भी (चरन्तं) स्पन्दनशील (पद्वन्तं) विशेष चेतना युक्त चरणों से युक्त (गर्भम्) गर्भ को (दधाते) धारते हैं। और (पित्रोः) माता पिताओं के (उपस्थे) गोद में (सूनुं न) पुत्र के समान ही पृथिवी और आकाश दोनों (नित्यं) स्थायी (सूनुं) सर्वप्रेरक सूर्य को धारण करते हैं। वे दोनों आकाश और पृथ्वी, उनके समान माता और पिता दोनों (नः) हमें (अभ्वात्) असत्याचरण से उत्पन्न दुःख तथा (अभ्वात्) असामर्थ्य, उत्तम योनि में और उत्तम संस्कारों के न उत्पन्न होने आदि बुरे भाग्य से (रक्षतम्) हमें बचावें।

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत्।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥३॥

भा०— जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों का (दात्रं) जीवों के प्रति प्रकाश, वायु, जल, जीवनोपयोगी अन्नादि का दान (अदितेः) उस अखण्ड आकाश, सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी से ही उत्पन्न होता और वह (अनर्वं) अविनाशी, (अवधं) पीड़ा न देने वाला, (नमस्वत्) अन्नादि से सम्पन्न, (स्वर्वत्) सुखजनक, (अनेहः) निष्काम, निष्पाप होता है उसी प्रकार (अदितेः) अखण्ड शासन,

अखण्ड चरित्रवान् माता पिता का भी (दात्रम्) दिया हुआ जीवन और धन (अनेहः) निष्पाप, (अनर्वम्) अक्षय, (अवधं) वध आदि द्वारा जीवन नाश के संकटों से रहित, बिना किसी का वध किये ही प्राप्त होने वाला, (नमस्वत्) अन्न, शस्त्रास्त्र बल से युक्त, (स्वर्वत्) अति सुख-कारी हो। (तत्) वैसे सभी ग्राह्य पदार्थों को (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान माता पिता (रोदसी) उपदेश दाता होकर (जरित्रे) गुण स्तुति या परोपदेश करने वाले पुत्र के हितार्थ ही उसको (जनयतम्) उत्पन्न करें। (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान माता और पिता दोनों (नः अभ्वात्) हमें बड़े अपराध से (रक्षतं)बचावें।

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अवसा) अन्नादि पालन सामर्थ्य से (रोदसी) द्यौ और पृथ्वी, आकाश या सूर्य और पृथ्वी, दोनों (देवपुत्रे) प्रकाशवान् सूर्य को पुत्र के समान धारण करते हुए या देव अर्थात् परमेश्वर के पुत्र के समान रह कर या देव विद्वानों और सूर्यादि लोकों को पुत्र के समान रखते हुए, (अवन्ती) सब का पालन करते हुए भी (अतप्यमाने) कभी पीड़ित होकर अपने कार्य से शिथिल नहीं होते। उसी प्रकार आकाश और पृथ्वी के समान ही माता और पिता भी (अवसा) अन्न आदि पालन और रक्षा के सामर्थ से पुत्रों और प्रजाओं की (अवन्ती) पालना और रक्षा करते हुए (अतप्यमाने) कभी संताप और दुख अनुभव करने वाले न हुआ करें। वे दोनों (रोदसी) सन्तानों को उपदेश करने और कुपथों से रोक थाम करने वाले हुआ करें। वे दोनों (देवपुत्रे) विद्वान् पुत्रों के माता पिता बनें, अर्थात् उत्तम सन्तानों को जनें। जिस प्रकार (उभे द्यावापृथिवी) पूर्व कहे दोनों आकाश और पृथ्वी (देवानां अह्नाम्) सूर्य से प्रकाशमान दिन और चन्द्र के प्रकाश वाली रात्रि दोनों

के, (उभयेभिः) दोनों रूपों से (अभ्वात् रक्षतः) जीवों की कष्ट से रक्षा और पालन करते हैं उसी प्रकार (उभे) दोनों माता पिता भी (देवानाम अह्नाम्) प्रकाशवान् दिनों के दिन रात्रि दोनों रूपों से (नः) हमें (अभ्वात्)उत्तम योनि में न होने रूप महान् कष्ट से (रक्षतं)बचावें, वे सन्तानों को उत्तम रीति से पैदा और पालन करें ।

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों परस्पर (संगच्छमाने) एक दूसरे से सदा मिली हुई (युवती) अति बलशालिनी, (समन्ते) सीमा भागों में मिले हुए, (स्वसारा) बहनों या भाई बहन के समान, या (जामी) एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धु होकर (भुवनस्य नाभिम्) संसार के केन्द्र को सब प्रकार से धारण करती हैं । इसी प्रकार पिता और माता दोनों भी (संगच्छमाने) परस्पर एक घर में संगत होकर (युवती) युवा अवस्था में विद्यमान (स्वसारा) स्वयं एक दूसरे को प्राप्त होने वाले (पित्रोः) अपने माता पिताओं के (उपस्थे) समीप (जामी) अति बन्धुवत् बालक बालिका के समान (समन्ते) उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले होकर भी (भुवनस्य नाभिम्) उत्पन्न बालक की नाभि को (अभि जिघ्रन्तौ) प्रेम वश बार २ सूंघते या चुम्बन करते हुए (नः) हमें (अभ्वात्) असामर्थ्य से उत्पन्न दुःखों से मुक्त करे । इति द्वितीयो वर्गः ॥

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और पृथिवी, (उर्वी) बहुत दूर तक फैली हुई, (सद्मनी) समस्त लोकों और जनों का आश्रय देने वाली

(बृहती) बहुत बड़ी, (ऋतेन) जल और अन्न के द्वारा और (अवसा) तेज और रक्षण, तृप्ति आदि नाना साधनों से (देवानां) उत्तम पुरुषों उत्तम दिव्य पदार्थों को (जनित्री) उत्पन्न करने वाली और (सुप्रतीके) उत्तम ज्ञान, चेतना देने वाली होकर (अमृतं दधाते) जल और तेज को धारण करती हैं उसी प्रकार स्त्री पुरुष, पति पत्नी या माता पिता भी (उर्वी) बड़ी विशाल हृदय वाले, (सद्मनी) घरके समान सबको अपनी शरण में लेने वाले, (बृहती) प्रजाओं को बढ़ाने वाले, (ऋतेन) धन अन्न और सत्य ज्ञान से (देवानाम्) विद्वानों और उत्तम गुणों, पदार्थों और प्रिय बन्धुजनों की (अवसा) तृप्ति, इच्छा पूर्त्ति, प्रेमालिंगन, अवगम, प्रवेश, स्वाम्य, रक्षण आदि द्वारा (जनित्री) माता के समान उनको उत्पन्न करने हारे हों। उनको मैं (हुवे) आदर पूर्वक स्वीकार करता हूं। (ये) जो वे दोनों (अमृतं) पुत्र, प्रजा आदि को और अन्न जल आदि को (दधाते) धारण करते हैं वे (सुप्रतीके) उत्तम सुख और ज्ञान प्रतीति वाले (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान होकर (नः) हमें (अभ्वात्) कष्ट से (रक्षतं) रक्षा करें।

उ॒र्वी पृ॒थ्वी ब॑हु॒ले दू॒रेअ॑न्ते॒ उप॑ ब्रु॒वे नम॑सा य॒ज्ञे अ॒स्मिन्।
द॒धा॒ते॒ ये सु॒भगे॑ सु॒प्रतू॑र्ती॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अभ्वा॑त्॥ ७॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता, राजा और राज सभा (उर्वी) बड़े, (पृथ्वी) अति विस्तृत, यशस्वी, (बहु-ले) बहुत से पदार्थों के ला देने वाले, (दूरे अन्ते) दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान हैं और जो (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सुप्रतूर्त्ती) अति वेगवान्, कार्य कुशल होकर बिना विलम्ब के (दधाते) हमारा पालन पोषण करते हैं, मैं उनको (अस्मिन् यज्ञे) इस सत्संग और आदर सत्कार के अवसर पर (नमसा) बड़े आदर भाव से (उप ब्रुवे) बुलाऊं। वे ही

(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान माता पिता (नः अभ्वात् रक्षतम्) हमें दुःख से बचावें ।

देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८॥

भा०—हमलोग (देवान्) विद्वानों के प्रति (यत् वा) जो भी (कत् चित् आगः) किसी प्रकार का, कभी भी अपराध करें, और कोई भी अपराध (सखायं वा) मित्र के प्रति या (जास्पतिम् वा) पत्नी पति, जामाता या किन्हीं भी वर वधू के प्रति कोई अपराध करे (एषाम्) उन सब अपराधों को (अवयानम्) दूर करने का उपाय (सदम् इत्) सदा ही (इयं) यह (धी) धरणा, कर्म, यह दृढ़ व्रत हो । (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान माता पिता गुरु आचार्य राजा प्रजा आदि सभी (नः) हमें (अभ्वात् रक्षतम्) पाप से बचावें ।

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

भा० - पूर्वोक्त आकाश और पृथिवी के समान (उभा) दोनों माता पिता, राजा प्रजा, गुरु या गुरुपत्नी या सावित्री, दोनों (शंसा) स्तुतियोग्य और (नर्या) मनुष्यों की हितकारक होकर (माम अविष्टाम्) मेरी रक्षा करें । मुझे प्राप्त हों, मुझे प्रसन्न, तृप्त करें और मुझ से प्रेम करें । और (उभे) वे दोनों (ऊती) उत्तम रक्षक शत्रुनाशक प्रजा तर्पक, वृद्धिकारक होकर (अवसा) रक्षण, ज्ञान, कान्ति आदि गुणों से (सचेताम्) हमें प्राप्त हों (अर्यः) वणिग् जन जिस प्रकार उत्तम धन देने वाले को (भूरि) अधिक पदार्थ प्रसन्न होकर देता है उसी प्रकार हम (अर्यः) स्वामी, ऐश्वर्यवान् होकर (इषा) अन्नादि से यथेच्छ (मदन्तः) तृप्त, प्रसन्न होकर (भूरि चित् इषयेम) बहुत अधिक धन और ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा और यत्न करें ।

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१०॥

भा०—मैं (सुमेधाः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (दिवे) सूर्य के समान तेजस्वी राजवर्ग (पृथिव्यै) पृथ्वी के समान उसके आश्रय प्रजागण के हित के लिये ही (प्रथमं) सब से प्रथम और सबसे उत्तम (तत्) उस (ऋतम्) सत्य ज्ञान, सत्य व्यवस्था वा वेद वचन का (अवोचम्) उपदेश करता हूं जो (अभि श्रावाय) सबको श्रवण करने योग्य है । दोनों ही (अभीके) परस्पर प्रेम युक्त होकर हमें (अवद्यात् दुरितात्) निन्दा योग्य पाप से (पाताम्) पालन करें । और (अवोभिः) नाना रक्षण तर्पण, गृहप्रवेश, प्रसादन, शत्रुवध आदि उपायों से (पाताम्) पालन करें और वेही दोनों (रक्षताम्) हम सब की रक्षा करें ।

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥३॥

भा०—हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी और उनके समान (पितः मातः) पिता और माता ! (यत् इह) जो भी मैं यहां इस लोक में (वाम् उप ब्रुवे) आप दोनों के सम्बन्ध में अन्यों को उपदेश करूं या आप दोनों को जो कुछ कहूं (इदं) वह (सत्यम् अस्तु) सत्य ही हो । आपके प्रति और आपके विषय में असत्य न कहूं । आप दोनों सदा (देवानाम्) विद्वानों और उत्तम गुणों के (अवोभिः) रक्षण आदि साधनों और गुणों से (अवमे) सदा समीप और आश्रयरूप होकर (भूतम्) रहो । जिससे हम सब लोग (इषं वृजनं जीरदानुम् विद्याम) अन्न, उत्साह, बल, और जीवन प्राप्त करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ विश्वेदेवा ॥ छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृद् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७ भुरिक् पङ्क्तिः ६ पङ्क्ति । १० स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एका दशर्चं सूक्तम् ॥

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥

भा०—समस्त विश्व के प्राणियों को सन्मार्ग पर लेजाने वाला (सविता) सूर्य के समान सबका उत्पादक, प्रेरक और प्रकाशक परमेश्वर (देवः) सब सुखद पदार्थों और ज्ञानों का दाता, प्रकाशस्वरूप, (अभिपित्वे) सब प्रकार और सर्वत्र प्राप्त करने योग्य, व्यापक (विदथे) ज्ञान के स्वरूप में (विश्वं जगत्) समस्त संसार को व्यापता है । वह (सुशस्ति इळाभिः) उत्तम स्तुतियों और स्तुत्य विभूतियों से उत्तम, मुक्त प्रभु (नः आ एतु) हमें भी प्राप्त हो । हे (युवानः) बलवान् युवा पुरुषो ! आप लोग भी (मनीषा) उत्तम मन की प्रेरणा, प्रबल इच्छा शक्ति और प्रज्ञा द्वारा (विश्वं जगत्) समस्त जगत् को और (नः) हमें भी (मत्सथ) आनन्द प्रसन्न करो । (२) इसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् या राजा भी उत्तम (इळाभिः) विद्याओं से (विदथे) ज्ञान यज्ञ अर्थात् ब्रह्मदान के लिये हमें प्राप्त हो । विद्वान् होकर हमारे युवक जन सब को आनन्दित करे ।

आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥२॥

भा०—(मित्रः) न्यायाधीश, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, (वरुणः) अति श्रेष्ठ राजा (विश्वे) सभी (आस्क्राः) शत्रुओं पर

आक्रमण करने वाले अन्य भी जो (देवाः) उत्तम विद्वान् और तेजस्वी, विजयेच्छुक पुरुष हों वे (सजोषाः) सभी समान प्रेम से युक्त होकर (नः आगमन्तु) हमें प्राप्त हों। हम प्रजाजनों के बीच में रहें, (यथा) जैसे भी होवे हर प्रकार से (विश्वे) सब (नः) हमें बढ़ाने वाले हों। वे (शवः) बल और अन्न को उत्तम रीति से शत्रु विजय और दुष्टों को दमन करने वाला (करन्) बनावें। वे उस साम्राज्यपालक बल को (विथुरं) प्रजा को व्यथा, पीड़ा देने वाला, दुःखदायी (न करन्) न बनावें। मित्रः सत्यानामधिपतिः। वरुणोऽपामधिपतिः। अर्यमा यमः पृथिव्या अधिपतिः। देवाः मरुतो गणानामधिपतयः।

प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः॥ ३॥

भा०—हे विद्वन्! उत्तम जन! तुम लोग (तुर्वणिः) शीघ्र सन्मार्ग पर जाने हारे, या चारों पुरुषार्थों का स्वयं सेवन और अन्यों को ऐश्वर्यादि का अविलम्ब से विभाग करने हारे (सजोषाः) प्रेम से युक्त होकर (वः) आप लोगों में से (प्रेष्ठं) सबसे अधिक प्रिय (अग्निं) अग्रणी, अग्नि या दीपक के समान सबके आगे चलने और मार्ग दिखाने वाले, सर्व प्रकाशक, (अतिथिं) अतिथि के समान पूज्य, या सबसे से बढ़कर उच्च पद पर स्थित विद्वान् एवं प्रभु की भी (गृणीषे) स्तुति करो। (यथा) जिससे (वरुणः) वह सर्वश्रेष्ठ (नः) हममें रहकर (सुकीर्त्तिः) उत्तम कीर्त्तिमान् (असत्) हो। वह (नः) हमारी (इषः च) अन्नादि समृद्धियों, और हमारी इच्छाओं को (पर्षत्) पूर्ण करें और मेघ के समान वर्षावे। (अरिगूर्त्तः) शत्रुओं पर उद्यत होकर (सूरिः) सूर्य के समान सर्वप्रेरक, सञ्चालक होकर (इषः पर्षत्) आयुधों और सेनाओं को भी प्रेरित करे।

उप॑ व॒ एषे॒ नम॑सा जिगी॒षोषासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः ।
स॒मा॒ने अह॑न्वि॒मिमा॑नो अ॒र्कं विषु॑रूपे॒ पय॑सि॒ सस्मि॒न्नूध॑न् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (उषासा नक्ता) प्रातः और सायं दोनों काल (सस्मिन् ऊधनि) उस ही अन्तरिक्ष में (विषुरूपे) नाना रूप के जलों के वर्षण के निमित्त (समाने अहन्) एक जैसे दिन में भी (अर्कं विमिमाना उ) सूर्य को विपेश २ रूपों का बना देते हैं और कालपर्यंय से (नमसा उपेतः) अन्न सस्यादि सहित प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार (सुदुधा इव धेनुः) उत्तम दोहने योग्य गौ (सस्मिन् ऊधनि) अपने एकही स्तन मण्डल में (विषुरूपे पयसि) नाना रूप में बदलने वाला दूध प्रदान करने के लिये (समाने अहन्) एकही दिन में (अर्कं विमिमाना उ) सूर्य से युक्त दिन को व्यतीत करके (नमसा उप एति) विनय भाव से घर को आजाती है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (सस्मिन् ऊधनि) एक समान अन्तरिक्ष के नीचे (विषुरूपे पयसि) नानारूप के पुष्टिकारक अन्न के निमित्त (समाने अहनि) एक समान दिन में ही (अर्कं विमिमानः) अर्चना करने योग्य पूज्य विधान्, वाणी, या तेजस्वी पद, उत्तम अन्नादि ऐश्वर्य, या उत्तम उपदेश प्रकट करता हुआ (नमसा) सब शत्रु और मित्र प्रजाओं को नमाने वाले शस्त्र बल और विद्याबल या विनय से और (जिगीषा) विजय करने की इच्छा से (वः उप एषे) आप प्रजाजन और विद्वान् लोगों के समीप राजा वा शिष्य के समान प्राप्त होता हूं ।

उ॒त ना॑ऽहि॑र्बु॒ध्न्यो॒३॒॑मय॑स्कः॒ शिशुं॒ न पि॒प्युषी॑व वेति॒ सिन्धुः॑ ।
येन॒ नपा॑तम॒पां जु॒नाम॑ मनो॒जुवो॒ वृष॑णो॒ यं वह॑न्ति ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और जिस प्रकार (पिप्युषी) दूध आदि से बढ़ाने वाली माता (शिशुं न) बालक के समीप आती है उसी प्रकार (सिन्धुः) वेग से बहने वाली जलधारा, नदी, प्रजागण, या लेटी हुई

इसी भूमि को मानो तृप्त करने वाली होकर (वेति) आती है। और (येन) जिस मेघ के द्वारा (अपां) जलों के (नपातं) न गिरने देने वाले या व्यर्थ न बहने देने वाले, बन्ध, सेतु आदि को (जुनाम) जलों से भर कर प्राप्त हों उसका सेवन करते हैं अथवा- (येन) जिसके वरस जाने पर (अपां मध्ये नपातम्) जलों से हमें न गिरने देने वाले नाव आदि को (जुनाम) जल में चलाते हैं और (यं) जिस मेघ को (वृषणः) वृष्टि करने वाले बलवान् (मनोजुवः) मन के समान वेग वाले वायुगण (वहन्ति) आकाश में उड़ा ले जाते हैं वह (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में स्थित (अहिः) मेघ (नः) हमें (मयः कः) सुख प्रदान करें। इसी प्रकार (बुध्न्यः) सब के परम मूल में स्थित, सर्वाश्रय (अहिः) वह अविनाशी, सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर (नः मयः कः) हमें सुखी करे। जो (सिन्धुः) सब को व्यवस्था में बांधने वाला, परमेश्वर (पिप्युषी इव शिशुं न) दूध पिलाने वाली माता के समान हम सुख की नींद सोने वाले बालकों को (वेति) सदा प्राप्त होता वा रक्षा करता है। (येन) जिसके बल से (अपां नपातम्) प्राणों को न गिरने देने वाले देह को, या प्रजाओं को न गिराने वाले राजा को हम (जुनाम) अपने वश करते और (यं) जिसको (वृषणः) बलवान् (मनोजुवः) मन की गति से चलने वाले जीवगण या इन्द्रियगण आत्मा रूप से अपने ऊपर धारण करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (त्वष्टा सूरिभिः) सूर्य अपनी किरणों सहित (अभिपित्वे स्मत्) व्यापने के कार्य में उत्तम है और जिस प्रकार (वृत्रहा इन्द्रः) मेघों को आघात करने वाला सूर्य या विद्युत् (चर्षणिप्राः) क्षेत्र कर्षण करने वाले किसानों के मनोरथों को पूरा कर देता है

इसी प्रकार (त्वष्टा) शत्रुओं का नाश करने वाला तेजस्वी पुरुष (सजोषाः) प्रजा के प्रति अति स्नेहवान् होकर (अभिपित्वे) राष्ट्र पर सब प्रकार से व्यापने और (अभि-पित्वे) सब प्रकार से उसकी रक्षा और पालन करने के लिये (सूरिभिः) विद्वान् पुरुषों सहित (नः) हमारे (ईं) इस राष्ट्र को (स्मत्) अच्छी प्रकार, प्रशंसनीय रूप से (अच्छ आ गन्तु) प्राप्त हो। वह ही (चर्षणिप्राः) प्रजाजनों और विद्वानों को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से पूर्ण करता हुआ, (वृत्रहा) बढ़ते और घेरते हुए विघ्नकारी शत्रु और दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नरां) सब नायकों में से (तुविस्तमः) बहु विध शक्तियों और ऐश्वर्यों से सब से महान्, बलवान् होकर (नः इह आगम्याः) हमारे इस राष्ट्र में आवे, हमें प्राप्त हो। (त्वष्टा) सब विश्व का कर्त्ता परमेश्वर विद्वानों के उपदेशों द्वारा हमें प्राप्त हो। वह सब विघ्नों का नाशक, सर्वकामनापूरक है।

उ॒त न॑ ईं म॒तयोऽश्व॑योगाः॒ शिशुं॒ न गाव॒स्तरु॑णं रिहन्ति ।
तमीं॒ गिरो॒ जन॑यो॒ न पत्नीः॑ सुर॒भिष्ट॑मं न॒रां न॑सन्त ॥ ७ ॥

भा०—(नरां) समस्त नायकों में से (सुरभिस्तमं) उत्तम प्रशंसनीय, सब से अधिक बलवान् पुरुष को जिस प्रकार (अश्वयोगाः) घोड़ों को रथों में जोतने वाले और (मतयः) बुद्धिमान्, सारथी या अश्वों के साथ सेना में योग देने वाले (मतयः) वा शत्रुस्तम्भनकारी वीर प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार (गावः) गौवें (शिशुं तरुणं रिहन्ति) नन्हे बच्चे को प्रेम से चाटती हैं और जिस प्रकार (गावः) गौवें (तरुणं) तरुण, युवा (सुरभिस्तमम्) सर्वोत्तम, सुगन्धयुक्त, वीर्यवान् सांड को (रिहन्ति) कामना वश चाटती हैं और जिस प्रकार (जनयः पत्नीः) सन्तानाभिलाषी स्त्रियां (नरां सुरभिस्तरं) सब मनुष्यों में सब से उत्तम काम करने या आलिङ्गनादि चतुर, सुदृढ़ पुरुष को (नसन्त) प्राप्त होती व संग रहती हैं

उसी प्रकार (नः) हमारे (मतयः) मनन शील मनुष्य भी (अश्वयोगाः) शीघ्रगामी अश्व आदि साधनों से युक्त होकर (तरुणं) कष्टों से पार करने वाले (नरां) सब मनुष्यों में (सुरभिस्तमं) उत्तम से उत्तम कार्य करने वाले नायक पुरुष को (नसन्त) प्राप्त होते हैं। (तम् ईं) उसको ही (गिरः) सब स्तुति वाणियां भी (नसन्त) प्राप्त होती हैं। (२) परमेश्वर के पक्ष में—(नः अश्वयोगाः मतयः) हमारी मन और आत्मा से युक्त बुद्धियां और वाणियां, बच्छे के प्रति गौवों के समान (तं रिहन्ति) उसीका आस्वाद लेती, उसीको लक्ष्य कर उस तक पहुंचती हैं। प्रभु सब से बड़ा, बलवान् , सृष्टिकर्त्ता होने से 'सु-रभिस्तम' है।

उत नं ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥

भा०—(वृद्ध-सेनाः) खूब सैन्य बल को बढ़ा कर (मरुतः) मनुष्य गण या सैनिकों के अधिपति नायक लोग (समनसः) एक समान मन वाले, एक चित्त होकर, आकाश और पृथ्वी के बीच वायुगण के समान (रोदसी) राजा और प्रजावर्ग दोनों के बीच में निष्पक्ष रह कर (नः) हमारे (ईम्) इस राष्ट्र को अवश्य (सदन्तु) प्राप्त हों। (अवनयः न) भूमियों के समान देश की रक्षा करने वाली (रथाः) रथसेनाएँ (पृषदश्वासः) हृष्टपुष्ट प्रबल अश्वों से युक्त होकर और शत्रु को नाश करने वाले, (मित्र-युजः देवाः न) सूर्य के साथ लगे किरणों के समान (देवाः) अन्धकार वत् शत्रु पर विजय की इच्छा करने वाले राजा लोग और (देवाः) प्रजा को ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य लोग (नः ईं सदन्तु) हमारे राष्ट्र को प्राप्त हों।

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जो (एषां) इन वीरों और विद्वानों के बीच में

(महिना) अपने बड़े विज्ञान और बल के सामर्थ्य से (चिकित्रे) विशेष ज्ञान प्राप्त करते और रोग और शत्रुओं को दूर करने का उपाय करते हैं (ते) वे (प्रयुजः) उत्तम प्रयोगों में कुशल पुरुष (सुवृक्ति) शत्रुओं को अच्छी प्रकार दूर करने के बल और साधन का (प्रयुञ्जते) प्रयोग करते हैं। (अध) और (सुदिने शरुः न) उत्तम सुप्रकाश-युक्त दिन में जिस प्रकार हिंसक व्यक्ति शिकार को अच्छी प्रकार मार लेता है उसी प्रकार (यत्) जो (एषां) इनकी (सेनाः) नायक सहित सेनाएं हैं वे (इरिणं) अन्न से युक्त (विश्वम्) समस्त देश को (आप्रुषाय-न्त) मेघों के समान सींचते और उनका उपयोग करते हैं। इसी प्रकार (इरिणं) भय से कांपते हुए शत्रु को (आ प्रुषायन्त) सब ओर से शस्त्रास्त्रों से बरसते मेघ के समान निरन्तर प्रहार करते हैं।

प्रो अ॒श्विना॒वव॑से कृणुध्वं॒ प्र पू॒षणं॒ स्वत॑वसो॒ हि सन्ति॑।
अ॒द्वे॒षो विष्णु॒र्वात॑ ऋभु॒क्षा अच्छा॑ सु॒म्नाय॑ ववृतीय दे॒वान् ॥१०॥

भा०—हे राजा, प्रजा जनो! आप सब लोग (अश्विनौ) राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले सभापति, सेनापति, राजा प्रजा, एवं उत्तम स्त्री पुरुषों को (अवसे) राष्ट्र के पालन आदि कार्यों के लिये (प्रो कृणुध्वम्) उत्साहित करें। (पूषणं) सब प्रजा को पोषण करने वाले राजा को और जो (स्वतवसः हि सन्ति) स्वयं बलशाली हैं और (अद्वेषः विष्णुः) द्वेष रहित व्यापक, बलवान् और पर्वतों व देश के प्रकोटों का स्वामी, (वातः) वायु के समान बलवान् (ऋभुक्षाः) ज्ञानवान् पुरुष इन सभी को (प्रो कृणुध्वं) आगे २, उत्तम पदों पर रखो। इन सब (देवान्) देव अर्थात् विद्वान् पुरुषों को मैं राष्ट्रपति (सुम्नाय) प्रजा के सुख की वृद्धि के लिये (अच्छा ववृतीय) राष्ट्र कार्य में लगाता हूं।

इ॒यं सा वो॑ अ॒स्मे दीधि॑तिर्यजत्रा अपि॒प्राणी॑ च॒ सद॑नी च भूयाः।
नि या दे॒वेषु॒ यत॑ते वसू॒युर्वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥११॥५॥

भा०—हे (यजत्राः) दानशील, यज्ञ, सत्संगति और ईश्वरोपासना करने वाले पुरुषो! (इयं) यह (सा) वह परमेश्वरी वाणी और शक्ति (वः अस्मे) तुम्हारी और हमारी सब की (दीधितिः) सूर्य की किरण के समान अज्ञान को दूर करने और ज्ञान का प्रकाश करने वाली, (अपिप्राणी) सब से उत्कृष्ट प्राण और बल देने वाली और (सदनी च) सबको शरण देने वाली, सर्वाश्रय, सर्वव्यापक (भूयाः) हो। (या) वह जो (देवेषु) विद्वानों, विजयेच्छु जनों और अग्नि आदि समस्त लोकों में (वसूयुः) वसूयु होकर (नि यतते) गूढ़ रूप से चेष्टा करती, गति देती है। विद्वान् लोग 'वसूयु' अर्थात् परमेश्वर और आचार्य के अधीन रहते हैं। उनमें उसकी और उसके गुणों को प्राप्त करने की इच्छा 'वसूयु' है। विजयार्थियों में धन की ऐषणा 'वसूयु' है। गृहस्थों में वसने वाले पुत्र कलत्रादि वसु हैं, उनकी इच्छा, कामना 'वसूयु' है। लोकों में 'वसु' समस्त लोक हैं, उनकी स्वामिनी शक्ति 'वसूयु' है। हम उसी शक्ति की उपासना कर (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और जीवन प्राप्त करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१८७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ ओषधयो देवता ॥ छन्दः— १ उष्णिक् । ६, ७ भुरिगुष्णिक् । २, ८ निचृद् गायत्री । ४ विराट् गयात्री । ९, १० गायत्री च । ३, ५ निचृदनुष्टुप् । ११ स्वराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

भा०—मैं (पितुं) अन्न के समान पालक (महः) महान् (धर्माणम्) समस्त जगत् को धारण करने वाले (तविषीम्) बल, शक्ति स्वरूप परमेश्वर की (नु) निरन्तर (स्तोषं) स्तुति करूं (यस्य) जि-

सके (ओजसा) बल पराक्रम से (त्रितः) वाक्, काय, मन तीनों के किये कर्मों में फंसा यह जीव (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को (विपर्वम्) एक २ पोरु २ छिन्न भिन्न करके (विअर्दयत्) विविध रूप से नाश करने में समर्थ होता है। अथवा (त्रितः) तीनों प्रकार के कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों और बलों से पुरुष (विपर्वं वृत्रम्) विविध अंगों से पूर्ण और पालन करने में समर्थ धनैश्वर्य को (विअर्दयत्) विविध उपायों से प्राप्त करता है।

स्वादो॑ पितो॒ मधो॑ पितो व॒यं त्वा॑ ववृमहे।
अ॒स्माक॑मवि॒ता भ॑व ॥ २ ॥

भा०—हे (पितो) सबके पालक अन्न के समान (स्वादो) स्वादु आनन्द देने वाले और 'स्वादु' अर्थात् स्वयं अपने आत्मा द्वारा स्वीकारने और अनुभव करने योग्य, अन्तरात्म-प्रत्ययवेद्य, स्वानुभूतिमात्र एक प्रमाण से जानने योग्य! हे (मधो पितो) अन्न के समान मधुर एवं (मधो) अति आनन्ददायक! (त्वा) तुझे (वयं) हम (ववृमहे) वरण करते हैं। तुझे ही हम सब से श्रेष्ठ जानकर उपास्य रूप से चुनते हैं। तू ही (अस्माकम्) हमारा (अविता) रक्षक, प्रकाशक, प्रिय, तृप्तिकारक, वृद्धिकारक, शरण में लेने हारा स्वामी (भव) हो। 'अविता'—अव रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, स्वाम्यर्थयाचन, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्ति, आलिंगन, हिंसा, दान, भाग, वृद्धिषु ॥ भ्वादिः ॥

उप॑ नः पित॒वा च॑र शि॒वः शि॒वाभि॑रू॒तिभिः॑।
म॒यो॒भुर॑द्वि॒षेण्यः॒ सखा॑ सु॒शेवो॒ अद्व॑याः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पितो) पालक! तु (शिवः) अति कल्याणकारी होने से 'शिव' है, तू (शिवाभिः) सुखदायी (ऊतिभिः) रक्षा, तृप्ति, प्रीति, कान्ति, दीप्ति, वृद्धि, श्रुति, आदि उपायों से (नः आचर) हमें प्राप्त होता। कैसा है? तू (मयोभुः) सुख आनन्द का एक मात्र उत्पत्तिस्थान,

आनन्द की जननी है। तू (अद्विषेण्यः) कभी द्वेष न करने हारा और द्वेष न करने योग्य, सबका प्यारा (सखा) मित्र (सुशेवः) उत्तम सुखस्वरूप (अद्वयाः) दो के भेद से रहित अर्थात् अनन्य, अद्वितीय है।

तव॒ त्ये पि॑तो॒ रसा॒ रजां॒स्यनु॒ विष्ठि॑ताः।
दि॒वि वाता॑ इव श्रि॒ताः ॥ ४ ॥

भा०—हे (पितो) अन्न के समान सर्वपालक! अन्न के नाना प्रकार मधुर आदि रस जिस प्रकार सब पदार्थों में विद्यमान हैं और जिस प्रकार (दिवि वाताः इव) आकाश में वायु स्थित हैं उसी प्रकार (रजांसि अनु) समस्त लोकों में (तव) तेरे (त्ये) वे नाना प्रकार के अद्भुत २ (रसाः) रस, बल और आनन्द धाराएं (वि स्थिताः) विविध रूपों में स्थित हैं और (श्रिताः) उनमें शोभा रूप से विद्यमान हैं।

तव॒ त्ये पि॑तो॒ दद॑त॒स्तव॑ स्वादिष्ठ॒ ते पि॑तो
प्र स्वा॒द्मानो॒ रसा॑नां तुवि॒ग्रीवा॑ इवेरते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (पितो) सर्वपालक प्रभो! (ददतः तव) तेरे प्रदान करते हुए (त्ये) वे नाना रस (ते) तेरेही अलौकिक स्वरूप हैं। हे (स्वादिष्ठ) सब से अधिक स्वादु, अन्तःकरण से जानने योग्य! हे (पितो) पालक! (रसानां स्वाद्मानः) रसों का स्वाद लेने वाले (तुविग्रीवाः) प्रबल गर्दन वाले होकर, उसको उत्सुकता से ऊपर उठाए हुए वे मानों (प्र ईरते) तेरी नित्य स्तुति किया करते, तेरे रसों का वर्णन करते, गर्दन उठा 'उद्ग्रीव' होकर, मानो तेरे रसों का ग्रहण करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

त्वे पि॑तो म॒हानां॑ दे॒वानां॒ मनो॑ हि॒तम्।
अका॑रि॒ चारु॑ के॒तुना॒ तवाहि॒मव॑सावधीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (पितो) अन्न के समान पालक! परमेश्वर! जिस प्रकार (देवानां मनः त्वे हितम्) ग्राह्य विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का 'मन' अर्थात् ज्ञान कराने वाला साधन अन्तःकरण या समस्त बल इस

अन्न में स्थित है इसी के आधार पर वह पुष्ट होता है और जिस प्रकार अन्नके (केतुना चारु अकारि) विज्ञानप्रद शक्ति से मन देह भर में सञ्चरण शील होता है और जिस प्रकार अन्न के (अवसा) तृप्ति करने वाले गुण से यह जीव (अहिम्) सर्प के समान मूर्छित करने वाले, अमिट भूख प्यास को नाश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! (त्वे) तुझमें ही (महानां) बड़े २ (देवानां) प्रकाशमान लोकों का (मनः) स्तम्भनबल और ज्ञान (हितम्) धरा है। (केतुना) तेरेही ज्ञान से यह जगत् (चारु) सुन्दर, गतिमान् (अकारि) बना है। (तव अवसा) तेरी शक्ति से ही सूर्य (अहिम् अवधीत्) मेघ को छिन्न भिन्न करता है, तेरेही दिये ज्ञान से जीव अज्ञान का नाश करता है।

यद॒दो पि॑तो॒ अज॑गन्वि॒वस्व॒ पर्व॑तानाम् ।
अत्रा॑ चिन्नो मधो पि॒तोऽरं॑ भ॒क्षाय॑ गम्याः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पितो) पालक प्रभो ! तू (पर्वतानां) पालन करने वाले मेघ, विद्युत्, पर्वत, अन्न, आदि सभी पदार्थों में (वि वस्व) अन्न के समान विविध रूपों में विद्यमान है। इसी लिये हे प्रभो ! (अदः) उस अदृश्य, सर्वव्यापक तुझको (अजगन्) उन पदार्थों में तुझे ही भी प्राप्त करते हैं। हे (मधो) आनन्दमय ! हे प्रकृति मधुर ! हे (पितो) पालक अन्न के समान हृदय के तृप्तिकारक ! तू (अत्र चित्) यहां इस लोक में, इस जन्म में, इस हृदय में भी (नः) हमारे (भक्षाय) खाने वा तृप्ति के लिये (अरं गम्याः) खूब पदार्थ प्राप्त करा। अथवा तू स्वयं (भक्षाय) उपभोग या सेवन के लिये खूब हमें प्राप्त हो। हम तेरा नित्य सेवन और भजन करें।

यद॒पामोष॑धीनां परि॒शमा॑रि॒शाम॑हे ।
वाता॑पे पीव॒ इद्भ॑व ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो हम (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्)

अन्न और सोम आदि ओषधियों का (परिंशम्) शरीर में सर्वत्र व्यापने वाला अंश (आरिशामहे) रचा लेते हैं इसलिये हे (वातापे) वात अर्थात् प्राण से बलवान् , पुष्ट होने वाले तू (पीवः इत्) पुष्ट ही (भव) रह । अथवा (ओषधीनाम्) देह की उष्मता को धारण करने वाले (अपाम्) प्राणों के व्यापक अंश को सर्वत्र फैलाते हैं अतः हे प्राण से पुष्ट देह ! तू दृढ़ बना रह (२) अथवा (अपाम् ओषधीनाम्) हे राजन् ! तू प्रजाओं और संतापक अस्त्रों के धारक सैनिकों के राष्ट्र में व्यापक भाग को हम सर्वत्र स्थापित करें, तो हे राजन् ! हे (वातापे) वायु के समान बलवान् ! तू (पीवः इद् भव) सुदृढ़ बना रह और हमारा पुष्टि कर हो ।

यत्ते॑ सोम॒ गवा॑शिरो॒ यवा॑शिरो॒ भजा॑महे । वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥९॥

भा०—हे (सोम) सोम ! ओषधे ! (यत्) जो (ते) तेरा (गवाशिरः) गौ के दूध से मिला और (यवाशिरः) जौ आदि से मिला रस है उसको हम (भजामहे) सेवन करें हे (वातापे) हे वायु अर्थात् प्राण से पुष्ट होने वाले देह ! तू (पीवः इत् भव) परिपुष्ट हो । अथवा हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो ! तू (पीवः इत्भव) हमारा पोषक हो । (२) हे (सोम) राजन् ! (गवाशिरः, यवाशिरः) भूमि और अन्नादि के बल से शत्रुओं का नाश करने वाले सैन्य बल को हम विभक्त करते हैं अतः तू पुष्ट हो, राष्ट्र को पुष्टिकारक हो । अथवा गौ आज्ञा, वाणी, और यव अर्थात् छेदक भेदक अस्त्र इनके बल से शत्रु के हिंसक बल का सेवन करते हैं ।

क॒र॒म्भ ओ॑षधे भव॒ पीवो॑ वृ॒क्क उ॑दार॒थिः ।
वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥ १० ॥

भा०—हे (ओषधे) ओषधे ! अन्नादि ! तू (करम्भः) शरीर का रचने हारा है । तू (पीवः) स्वयं पुष्टिकारक और स्वयंपरिपुष्ट (वृक्कः) रोगों को दूर करने वाला, शक्तियों और वीर्य आदि धातुओं का (उदारथिः)

उद्दीपक है। हे (वातापे) वायु या प्राण के समान देह में फैलने हारे ओषधे! तू (पीवः भव) पुष्टि कारक हो। अथवा, हे प्राण से पुष्ट होने वाले देह! तू पुष्ट हो। इसी प्रकार राज्यादि का कर्त्ता राजा 'करम्भ' है। तेज धारण करने से वह 'ओषधि' है। शत्रु वर्जक होने से 'वृक्क' है। सब को उत्तेजना देने से 'उदारथिः' है। वायु के समान बलवान् पुरुषों से परिपुष्ट होने से, या वायु के समान व्यापक बल होने से 'वातापि' है। वह स्वयं पुष्ट हो और राष्ट्र को भी पुष्ट करे।

तं त्वा॑ व॒यं पि॑तो॒ वचो॑भि॒र्गावो॒ न ह॒व्या सु॑षू॒दिम।
दे॒वेभ्य॑स्त्वा सध॒माद॑म॒स्मभ्यं॑ त्वा सध॒माद॑म् ॥ ११ ॥७॥

भा०—हे (पितो) पालक अन्न के समान राजन्! प्रभो! (गावः-हव्या न) गौएं या बैलगण जिस प्रकार खाने योग्य दूध और अन्न आदि पदार्थ (सूदयन्ति) बहाते और खूब अधिक मात्रा में उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार हम लोग (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों और (अस्मभ्यम्) अपने लिये भी अन्न को (वचोभिः) उत्तम वाणियों सहित (सुषूदिम) प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे स्वामिन्! (वयं) हम (वचोभिः) उत्तम वाणियों और स्तुतियों से (तं त्वा) उस उपास्य तुझको (सुषूदिम) प्राप्त होते हैं, तुझे द्रवित करते हैं, प्रेम और दया से पूर्ण करते हैं। (त्वा) तुझको (देवेभ्यः) उत्तम गुणों को प्राप्त करने और (अस्मभ्यम्) अपने हित के लिये (सधमादं) एक साथ संयोग से अति आनन्द देने वाला जान कर (त्वा सुषूदिम) तुझे प्राप्त होते हैं। इति सप्तमो वर्गः॥

[१८८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६, ७, १० निचृद्गायत्री। २, ४, ८, ९, ११ गायत्री॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।
दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥

भा०—(समिद्धः दैवैः) खूब तेज से युक्त होकर सूर्य और अग्नि जिस प्रकार किरणों से युक्त होकर सहस्रों को अपने वश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तू भी (देवः) स्वतः प्रकाशमान् , तेजस्वी, दानशील, (समिद्धः) अति तेजस्वी होकर (दैवैः) ज्ञानी और वीर, विजयोत्सुक पुरुषों द्वारा (सहस्रजित्) सहस्रों शत्रुओं को जीत कर (राजसि) सब से अधिक प्रकाशित हो । तू (दूतः) दुष्टों का सन्ताप देने हारा, मित्रों से प्रशंसित, (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (हव्या वह) उत्तम खाद्य पदार्थों को प्राप्त करा ।

तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते ।
दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

भा०—(ऋतं यते) अन्न प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाले पुरुष का (यज्ञः) 'यज्ञ' अर्थात् जीवनमय श्रेष्ठ कर्म (सहस्रिणीः) सहस्रों सुखैश्वर्यों के देने वाले (इषः) अन्नों को (दधत्) अपने में धारण करता हुआ (तनूनपात्) देह को न गिरने देने वाला होकर (मध्वा) मधुर अन्न और जल से (समज्यते) अच्छी प्रकार कान्तिमान् , उज्वल, होजाता है इसी प्रकार (तनूनपात्) देह का न गिरने देने वाला आत्मा और राष्ट्र विस्तार को कम न होने देने वाला (यज्ञः) प्रजापति, राजा (ऋतंयते) वेद और ऐश्वर्य को प्राप्त होने वाले के लिये (मध्वा) मधुर अन्न, जल तथा आनन्द से अच्छी प्रकार चमकता है । वह (सहस्रिणीः) हज़ारों की (इषः) सेनाओं को और आध्यात्म में सहस्रों इच्छाओं और वासनाओं को (दधत्) धारण करता है ।

आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् ।
अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! अग्रणीनायक ! तू (आजुह्वानः) यज्ञाहुति करता हुआ, या आमन्त्रण पाकर, (ईड्यः) स्तुति पात्र होकर (यज्ञियान्) यज्ञ अर्थात् राष्ट्र पालन करने वाले (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (नः आवक्षि) हमें प्राप्त करा । तू (सहस्रसाः असि) सहस्रों का देने और विभाग करने वाला है ।

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् ।
यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जहां (ओजसा) बल से, पराक्रम से (प्राचीनं) आगे की ओर बढ़ने वाले (सहस्र-वीरम्) सहस्रों, बलवान् वीरों से युक्त (बर्हिः) वृद्धि शील राष्ट्र वा प्रजाजन को (आदित्याः) तेजस्वी पराक्रमी पृथिवी के स्वामी नरपति जन (अस्तृणन्) विस्तृत करते, उस पर शासन करते हैं, हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग वहां (विराजथ) अच्छी प्रकार रहो ।

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च याः । (भूयसी)
दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(विराट्) विविध गुणों, कर्मों से प्रकाशमान, (सम्राट्) जो चक्रवर्त्ती के समान सर्वत्र अच्छी प्रकार प्रकाशित है वह सूर्य के समान तेजस्वी राजा और (विभ्वीः) राष्ट्र भर में फैली हुई, (बह्वीः) बहुत सी, (याः च भूयसीः) और जो बहुत बहुत होकर (दुरः) द्वारों के समान शत्रुओं को वारण करने हारी प्रजाएं और सेनाएं हैं वे (प्रभ्वीः) उत्तम सामर्थ्य वाली होकर (घृतानि) बलप्रद, दुग्धादि खाद्य पदार्थों और तेजों को भी (अक्षरन्) प्रवाहित करें, अधिक मात्रा में उत्पन्न करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः ।
उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥

भा०—(उषासौ) दिन रात्रि के समान हे राजा प्रजावर्गो !

शासक शास्य प्रजाओ ! आप दोनों (इह सीदताम्) इस देश में एक साथ रहो । आप दोनों (सुरुक्मे) उत्तम कान्तिमान् , एक दूसरे की रुचि वाले, प्रेमयुक्त (सपेशसा) उत्तम सुवर्णादि ऐश्वर्यवान् , या पति-पत्नी के समान उत्तम रूप और अंगसौष्ठव से युक्त होकर (श्रिया) लक्ष्मी से खूब शोभा को प्राप्त होवो । इसी प्रकार गृह में स्त्री पुरुष परस्पर कान्तिमान् शोभा युक्त होने और नित्य सदा प्रसन्न, नवीन प्रभातमुख के समान आकर्षक हों । वे (सुरुक्मे) उत्तम सुवर्णालंकार धारण करने वाले, उत्तम रूप रंग, अवयवों वाले, होकर शोभायमान हों ।

प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥

भा०—(हि) जिस कारण से (दैव्या) विद्वानों में उत्तम, ज्ञानादि में कुशल, (कवी) बुद्धिमान् , दीर्घदर्शी, (होतारा) दान शील और गुणग्राही, (सुवाचसा) उत्तम वाणी बोलने वा (प्रथमा) विद्या बल के विस्तार करने वाले, या सर्वोत्तम स्त्री पुरुष, राजा प्रजा या उत्तम नायक विद्वान् जन (नः) हमारे (इमम् यज्ञं) इस सकल अभीष्ट फलदायक गृहस्थ, प्रजापालन आदि कार्य को (यक्षताम्) सम्पादन करें ।

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे ।
ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥

भा०—हे (भारति) भरत अर्थात् पालन पोषण करने वाले मनुष्यों की सभे ! हे (इळे) भूमि सम्बन्धी प्रबन्ध करने वाली धर्मसभे ! हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभे ! और भी जो नाना प्रकार की सभा समितिएं हैं (सर्वाः वः उपब्रुवे) मैं तुम सबको प्रार्थना करता हूं कि (ताः) वे आप सब (नः) हमारी (श्रिये) राज्य लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (चोदयत) हमें सदा सन्मार्ग में प्रेरणा करती रहो । (२) इसी प्रकार बालकों को पोषण करने में

कुशल स्त्री 'भारती', उत्तम ज्ञान निष्ठ वा कर्मनिष्ठ स्त्री 'इळा' और उत्तम ज्ञान विज्ञान का व्याख्यान करने वाली 'सरस्वती' इत्यादि नाना गुणवती स्त्रियां भी हमारे राष्ट्र और गृह की शोभा की वृद्धि के लिये पुरुषों को प्रेरित किया करें। ऐसा उनको मैं उपदेश करूं।

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे।
तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन्! (त्वष्टा) समस्त संसार का निर्माता परमेश्वर जिस प्रकार (प्रभुः) सबको उत्पन्न करने में समर्थ, प्रभु होकर (रूपाणि) समस्त रूपों को, रुचिकर पदार्थों और (विश्वान् पशून्) समस्त पशुओं को (सम् आनजे) अच्छी प्रकार प्रकट करता है और जिस प्रकार (त्वष्टा) सूर्य समस्त (रूपाणि) रूपों को और (पशून्) रूप दिखाने वाली किरणों को भी (आनजे) प्रकट करता है और दोनों ही (तेषां स्फातिम् आ यजति) उनको प्रचुर वृद्धि प्रदान करते हैं उसी प्रकार तू भी (त्वष्टा) शिल्पकार पदार्थों को गढ़ने में कुशल होकर (रूपाणि) नाना रुचिकर, सुन्दर पदार्थों और (पशून्) नाना प्रकार के उपयोगी पशुओं को भी वैज्ञानिक उपायों से (सम्आनजे) प्रकट कर और (तेषां स्फातिम्) उनकी प्रचुर समृद्धि को (नः) आयज हमें प्रदान कर।

उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज।
अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार जलों और प्रकाशों या रश्मियों का पालक सूर्य ही (पाथः) पान करने योग्य जलों को मेघ द्वारा उत्पन्न करता है। (अग्निः) सूर्य का ताप और अग्नि परिपाक करके (हव्यानि) अन्नों और खाने योग्य फलों को स्वाद युक्त करता है उसी प्रकार हे (वनस्पते) वनों और जलों और ऐश्वर्यों के पालक पुरुष! तू (देवेभ्यः)

विद्वानों, करप्रद प्रजाजनों के हित के लिये (त्मन्या) अपने सामर्थ्य से (पाथः) उत्तम जल, उत्तम अन्न और उत्तम पालन का उपाय (उप-सृज) किया कर । (अग्निः) अग्रणी नायक और विद्वान् पुरुष (हव्यानि) खाने योग्य पदार्थों को (सिष्वदत) उत्तम स्वाद युक्त बनावे ।

पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते ।
स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः गायत्रेण समज्यते) अग्नि, ज्ञानवान् परमेश्वर जिस प्रकार गायत्री मन्त्रों से अच्छी प्रकार से प्रकट होता है और अग्नि जिस प्रकार (स्वाहाकृतीषु) स्वाहाकारों और स्तुतियों में (रोचते) अच्छी प्रकार प्रकट होता है । उसी प्रकार (अग्निः) सबका अग्रणी नायक विद्वान् (पुरोगाः) सबके आगे चलने हारा, (देवानां) देव अर्थात् विद्वानों और वीर विजेता पुरुषों के बीच (गायत्रेण) वेद ज्ञान से (सम् अज्यते) भली प्रकार प्रकाशित होता है और वही (स्वाहाकृतीषु) उत्तम वचन, भाषण, उत्तम हव्यादि पदार्थों के उपयोगों में (रोचते) नियुक्त होकर भला और शोभा युक्त प्रतीत होता है । इति नवमो वर्गः ॥

[१८९]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१,४,८ निचृत् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ५, ६ विराट् पङ्क्तिः ॥ ७ पङ्क्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! तू विद्वान् मार्गदर्शक के समान (अस्मान्) हमें (राये) ऐश्वर्य और आनन्द को प्राप्त करने के लिये (सुपथा) उत्तम धर्मानुसार, सुखप्रद मार्ग से (नय) ले चल, हे (देव) सर्वप्रकाशक ! तू (विश्वानि वयुनानि) सब ज्ञानों, जानने

योग्य विद्याओं को (विद्वान्) जानने हारा है। तू (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिल कर्मों से उत्पन्न (एनः) पाप को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे लिये हम (भूयिष्ठां) बहुत २ (नमः-उक्तिम्) नमस्कार वचन, सत्कार सहित उत्तम गुण स्तुति (विधेम) करें। (२) (अग्नि) विद्वान् पुरुष भी सब विद्याओं को जाने, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार मार्ग पर चले। पापों, कुटिल वृत्तियों को दूर करे, सब लोग उसका अधिकाधिक आदर और उसे नमस्कार किया करें।

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! परमेश्वर! तू (नव्यः) सदा नवीन, कभी पुराना न होने हारा, सदा स्तुतियोग्य है। तू (विश्वा) सब (दुर्गाणि) दुःखों से पार जाने योग्य संकटों को (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी, सुखदायक मार्गों और उपायों से (अस्मान्) हमें (अति पारय) पार कर। तू (बहुला) बहुत से सुखों को देने वाली (पूः) नगरी के समान पालक, (पृथ्वी न) पृथ्वी के समान आश्रय और (उर्वी) विस्तृत (भव) हो। और हमारे (तोकाय) नन्हे २ बच्चों और (तनयाय) बड़े पुत्रों को भी (शं) सुख और शान्तिदायक (योः) सब कष्टों का निवारक हो। अथवा (शं योः) शान्ति सुख का प्राप्त कराने वाली हो।

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः।
पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! हे परमेश्वर! (त्वम्) तू उन (अमीवाः) रोगकारी, पीड़ादायक रोगों और दुष्ट पुरुषों को(अस्मत) हमसे (युयोधि) पृथक् कर। जो (अनग्नित्राः) विपत्तियों, ऊपर से

अप्रकट ज्वर को रखते हुए भीतरी ज्वर से (कृष्टिः) मनुष्यों को (अभि॰ भमन्त) सब प्रकार से पीड़ित करते हैं । इस प्रकार वे दुष्ट पुरुष जो (अनग्नित्राः) अग्नि अर्थात् विद्वान् पुरुष और नायक द्वारा सुरक्षित न रह कर उच्छृखलता से (कृष्टीः) कृषक प्रजाओं को लूटमार और अपने अनाचारों से सताते हैं । (पुनः) और हे (देव) सर्वप्रकाशक, सर्व सुख प्रद ! हे (यजत्र) दानशील ! हे सत्संग योग्य, सुसंगतिकारक उत्तम स्नेही ! तू (सुविताय) हमें उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम गति प्राप्त करने के लिये (विश्वेभिः) समस्त (अमृतेभिः) अमृतस्वरूप, प्राणप्रद, जीवन-दाता औषधियों से (अस्मभ्यम्) हमारे (क्षाम्) निवास भूमि को हमारे उपयोग के लिये पूर्ण कर ।

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुकान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशक विद्वन् ! परमेश्वर ! राजन् ! तू (नः) हमें (अजस्रैः) निरन्तर, कभी नाश न होने वाले, स्थायी (पायुभिः) पालन करने के नाना उपायों से (पाहि) पालन कर (उत) और तू (शुशुक्वान्) अग्नि के समान कान्ति और शुद्ध तेज से चमकता हुआ हमारे (प्रिये सदने) प्रिय गृह में और देश में (आ) आ । हे (यविष्ठ) दुखों से छुड़ाने हारे ! हे बलवन् ! (नूनं) निश्चय से(जरितारं) स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को (ते भयं) तेरा भय (मा विदत्) न प्रतीत हो और हे (सहस्वः) सहनशील ! बलवन् ! और (अपरम्) अन्य भी किसी प्रकार का उसको (भयं मा विदत्) भय न प्राप्त हो ।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥५॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! शत्रु और दुष्ट पुरुषों को अग्नि के समान संताप देने हारे राजन् ! परमेश्वर !

तू (नः) हमें (अघाय) पापाचारी हत्यारे (अविष्यवे) हिंसा करने की इच्छा करने वाले, (रिपवे) शत्रु और (दुच्छुनायै) दुःख-दायी, सुखनाशक (दत्वते) दांत वाले, व्याघ्र आदि और (दशते) काटने वाले सर्प, वृश्चिक आदि (अदते) खाजाने वाले और (रिषते) हिंसा करने वाले, इनके लिये (नः) हमें (मा अवसृज) कभी न छोड़ और इनके सुख के लिये, हे (सहसावन्) बलवन् ! हमें (मा परा दाः) कभी मत त्याग कर। जैसे अग्नि के समीप रहते हुए, चौर, सर्प, व्याघ्र आदि से भी कोई भय नहीं रहता उसी प्रकार उत्तम नायक और विद्वान् वैद्य तथा बलशाली रक्षक के रहते हुए भी इन सब कष्टदायी पदार्थों से भय नहीं रहता।

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम्।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६॥

भा०—हे (ऋतजात) सत्यज्ञान, धनैश्वर्य और बल में विशेष रूप से प्रसिद्ध ज्ञानवन् ! ऐश्वर्यवन् ! हे अग्ने ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (त्वावान्) तुझ सहायक को प्राप्त होकर तेरे समान बलवान् पुरुष (गृणानः) स्तुति या उपदेश करता हुआ (तन्वे) शरीर की रक्षा के लिये (वरूथं) वरण करने योग्य, आच्छादन करने योग्य कवच को (वि यंसत्) विशेष रूप से बांधता है और वह (विश्वात्) सब प्रकार के (रिरिक्षोः) हिंसाकारी शत्रु (उत वा) और (निनित्सोः) निन्दक पुरुष से (वि यंसत्) बचाता है। हे (देव) देव ! विद्वन् ! विजय शील ! तू (अभि ह्रुताम्) कुटिलाचारी लोगों का (विष्पट् असि) विविध उपायों से बाधक है।

त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! शासक ! हे (यजत्र) दानशील एवं सत्कार, मान पूजा के योग्य (त्वं) तू (तान्)

उन (उभयान्) दोनों प्रकार के अच्छे और बुरे ज्ञानी और अज्ञानी छोटे और बड़े (मनुषः) सब मनुष्यों को (विद्वान्) जानता हुआ (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (विवेषि) विवेक पूर्वक न्याय करता है और (अभिपित्वे) सब तरफ़ से प्राप्त होने वाले देश में या अधिकार प्राप्त होजाने पर (मनवे) तू मनुष्यों के हित के लिये (शास्यः भूः) शासन करने योग्य और 'शास' अर्थात् खड्ग आदि शस्त्र धारण करने में कुशल हो। और (उशिग्भिः) तुझे चाहने वाले अपने प्रिय सहयोगियों से (मर्मृजेन्यः) सजाने योग्य, अलंकारों से सुभूषित करने योग्य होकर तू (न अक्रः) मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर ।

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥११

भा०—जो (मानस्य) ज्ञानवान् पुरुषों और शत्रुनाशक सैन्यों का (सूनुः) संचालक है (अस्मिन्) उस (अग्नौ) अग्रणी, ज्ञानवान् नायक के निमित्त हम (निवचनानि) निश्चित सत्य वचनों का (अवोचाम) उपदेश करें और उस (सहसाने) शत्रु पराजयकारी पुरुष के अधीन रहकर (वयम्) हम लोग (ऋषिभिः) विद्वान् वेदमन्त्रार्थ-द्रष्टा पुरुषों और वेदमन्त्रों से (सहस्रम्) सहस्रों ज्ञान और ऐश्वर्य (सनेम) प्राप्त करें और हम (इष.) अन्न, (वृजनं) पाप निवारक बल और (जीरदानुम्) उत्तम जीवन (विद्याम) प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१९०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्, त्रिष्टुप् । ४,८ त्रिष्टुप् ।५, ६, ७ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ धैवतः स्वरः ॥

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः॥१॥

भा०—हे विद्वान् ! तू (अनर्वाणम्) अश्वादि से रहित होकर भी (वृषभं) जो मेघ के समान शस्त्रादि वर्षण करने में चतुर, (मन्द्रजिह्वं) हर्षोत्पादक, गम्भीर वाणी बोलने हारे, (बृहस्पतिम्) बड़े शास्त्रज्ञान और वेदवाणी और बड़े राष्ट्र के पालक, (नव्यं) स्तुति योग्य, ज्ञानी और वीर पुरुष को (अर्कैः वर्धय) अन्नों द्वारा बढ़ा, उसका पालन कर। (गाथान्यः) 'गाथा' अर्थात् उत्तम वेदादि शास्त्र की कथा या ज्ञानवाणी को दूसरों तक पहुंचाने वाले, और स्वामि की वाणी को धारण करने वाले वीर (सुरुचः) उत्तमकान्तिमान् ! तेजस्वी, (नवमानस्य) मान करने योग्य पुरुष की (देवाः मर्ताः) विद्वान् और साधारण पुरुष भी (आशृण्वन्ति) सब प्रशंसा करते और कीर्त्ति सुनते हैं। (३) परमेश्वर पक्ष में—परमेश्वर अन्य पर आश्रित न होने से 'अनर्वा' है या उससे बढ़ कर व्यापक दूसरा न होने से भी वह 'अनर्वा' है, समस्त सुखों की वर्षा करने मे 'वृषभ' है उसकी वेदवाणी कृषकों को मेघ ध्वनि के समान हर्षजनक होने से वह 'मन्द्रजिह्व' है महान् ब्रह्माण्ड या पालक होने से 'बृहस्पति' है। हे विद्वन् ! तू उसको (अर्कैः) उत्तम अर्चना करने वाले वेदमन्त्रों से (वर्धय) बढ़ा। उसके गुणों को प्रचारित कर। वह आचार्य के समान वेदवाणी को हम तक पहुंचाने वाला, सूर्य के समान उत्तम कान्तिमान् स्तुति करने योग्य है। उसकी सब लोग कथा को रुचि करके सुनें। बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः। वेद का पालक 'बृहस्पति' है।

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (सर्गः देवयताम्) जल की कामना करने वाले कृषकों के लिये जल बड़ा हर्षकारी होता है और (ऋत्विया वाचः तम् उप सचन्ते) या पावस ऋतु की वाणियां उस मेघ को लक्ष्य करके उपस्थित होती हैं और जिस प्रकार (मातरिश्वा ऋते विभ्वा वरांसि अञ्जः

सम् अभवत्) वायु या आकाशस्थ मेघ जल या अन्न के निमित्त बड़ा बल-शाली होकर, उत्तम जलों को देकर अन्न उत्पन्न करता, या उत्तम जलों को ही प्रकट करता है। उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (सर्गः न) जलों के समान या उत्पन्न सृष्टि या सन्तति के समान (देवयताम्) विद्या आदि की कामना करने वाले या अपने को 'देव' विद्वान् बनाना चाहने वाले, या 'देव' परमेश्वर की उपासना करने वालों को हर्ष जनक (असर्जि) होता है (तम्) उसको (ऋत्वियाः) ज्ञानवान् सदस्य पुरुषों की सभी (वाचः) वाणियां (उप सचन्ते) प्राप्त होती हैं। वह ही (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र और वेद के पालक आचार्य ब्रह्मवेत्ता है। (सः हि) वही निश्चय से (मात-रिश्वा) वायु में श्वास के समान निरन्तर चलने वाले वायु के समान (मातरिश्वा) ज्ञान करने वाले प्रमाता आत्मा वा परमेश्वर के अधीन गति करने वाला विद्वान् (ऋते) उस सत्य स्वरूप परमेश्वर में (विभ्वा)उसी विभु परमेश्वर के साथ (सम् अभवत्) जा मिलता है। (२) इसी प्रकार राजा को (ऋत्वियाः वाचः) सदस्यों की सभी वाणियां (तम्) उसी सभापति को लक्ष्य करके प्रस्तुत होती हैं, जो विधाता के समान विद्वानों के बीच सभापति बना दिया जाता है। वह राजा या सभापति बड़े भारी ज्ञान से(ऋते)राष्ट्रैश्वर्य और सत्य न्याय के बलपर (सम् अभवत्) अच्छी प्रकार अधिकार करे वह ही (वरांसि अञ्जः) उत्तम बातों को प्रकट करने वाला कान्तिमान् होकर वरने योग्य उत्तम वचनों, ज्ञानों और कर्मों को प्रकट करे। (३) सूर्य के समान परमेश्वर भी सृष्टि कर्त्ता होने से 'सर्ग' है। सब ऋतुओं से युक्त सूर्य के सब प्राणों के नाम भी उस पर संगति खाते हैं। वह सब श्रेष्ठ पदार्थों को प्रकट करता है वह बड़े सामर्थ्य से ज्ञान में एक अद्वितीय है।

उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू।
अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (मृगः न) सिंह के समान (भीमः) भयंकर (तुविष्मान्) बहुत से बलों और बलवान् पुरुषों का स्वामी और (यः) जो (अहन्यः) कभी किसी से मारा नहीं जा सके (अस्य) उस (अरक्षसः) बाधक शत्रुओं से रहित पुरुष के (क्रत्वा) उत्तम कर्म और ज्ञान बल से मनुष्य (सविता इव) सूर्य के समान तेजस्वी और पराक्रमी होकर (बाहू) अपनी दोनों बाहुओं द्वारा ही (उपस्तुति) प्रशंसा और (नमसः) शस्त्र बल के (उद्यतिं) उत्थान और (श्लोकञ्च) वेदादि योग्य वाणी अर्थात् ब्रह्मज्ञानी लोगों को भी (प्रयंसत्) अच्छी प्रकार अपने वश करता है। (२) परमेश्वर अमर होने से 'अहन्य' है। खोजने योग्य और शुद्ध होने से 'मृग', दुष्टों के प्रति भयकारी होने से 'भीम' है। विघ्ननाशक होने से 'अरक्षस' है। उसके ज्ञान बल से मनुष्य भी स्तुति पावे, अन्नादि बल का अभ्युदय और वेद ज्ञान प्राप्त करे।

अ॒स्य श्लोको॑ दि॒वीय॑ते पृथि॒व्यामत्यो॒ न यं॑सद्यक्ष॒भृद्विचे॑ताः।
मृ॒गा॒णां न हे॒तयो॒ यन्ति॑ चे॒मा बृह॒स्पते॒रहि॑मायाँ अ॒भि द्यून् ॥४॥

भा०—(श्लोकः दिवि) जिस प्रकार मेघ की गर्जना अन्तरिक्ष में होती है उसी प्रकार (अस्य बृहस्पतेः) इस वेद पालक विद्वान् पुरुष की (श्लोकः) वेदवाणी, वेदोपदेश भी (यक्षभृत) उपासना करनेवालों को अधिक पालन पोषण करने वाला और (विचेताः) विविध ज्ञानों से युक्त होकर (पृथीव्याम् अत्यः न) पृथिवी में वेगवान् अश्व के समान (दिवि) ज्ञान की कामना करने वाले और (पृथिव्याम्) पृथिवी के समान ज्ञानरूप जल को धारण करने वाले शिष्य की चित्त भूमि में (ईयते) प्राप्त होता है। और (द्यून्) दिनों दिन (बृहस्पतेः) वेदज्ञ विद्वान् की (इमाः) ये वेदवाणियां (मृगाणां हेतयः न) ढूंढ २ कर शिकार करने वालों का वाणों के समान (अहिमायान्) सर्प के समान कुटिलाचारों तथा मेघ के समान चेष्टा वाले, आत्मा को ढक लेने वाले

अज्ञानी पुरुषों को भी (यन्ति) पहुंचती है और इनकी कुटिलता और अज्ञान का नाश करती हैं। (२) अथवा छान्दसो वर्णविपर्ययः। (अहिमायान् अधिमायान्) उस परमेश्वर की वेद वाणियां अधिक बुद्धिमान् पुरुषों को प्राप्त होती हैं। उसका वेद ज्ञान (दिवि) ज्ञानवान्, विद्वान् और इस भूलोक में वेगवान् अश्व के समान ज्ञानप्रदान करता है। वह उपासकों का पालक, विशेष ज्ञानप्रद है।

ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवंति पज्राः।
न दूढ्ये३अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम्॥५॥१२॥

भा०—जैसे कृषक वा शकट के स्वामी सांड को या बैल को आदर से देखकर उसपर आजीविका करते हुए भी (पज्राः) पैदल चलते २ लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं उसी प्रकार हे (देव) दानशील ब्रह्मदान के देने वाले विद्वन्! (बृहस्पते) वेदज्ञ! (ये) जो (पापाः) पापी जन भी (त्वा) तुझ को (उस्रियम्) गौओं के साथ विचरने वाले सांड के समान ज्ञान प्रदान करने वा वेद वाणियों के साथ विचरने वाले ज्ञानवर्षक, गोतम, विद्वान् (मन्यमानाः) जानते हुए आदरपूर्वक (भद्रम्) सुखकारी तेरे (उप जीवन्ति) समीप आकर रहते हैं, तेरी ही उपासना करते हैं वे भी (पज्राः) ज्ञानवान् हो जाते हैं और उत्तम पद तक पहुंच जाते हैं। परन्तु हे (बृहस्पते) विद्वन्! तू भी (वामम्) उत्तम ज्ञान को (दूढ्ये) दुष्ट चित्त वाले पुरुष में (न अनु दासि) अनुकूल, सुखप्रद रूप में प्रदान नहीं करता है। प्रत्युत (पियारुम्) हिंसक दुष्ट पुरुष को (चयसे इत्) नाश ही कर देता है। अथवा (पियारुम्) ज्ञान रस के पान करने वाले को भी (चयसे इत्) तू प्राप्त होकर ज्ञान का पान करा देता है। (२) हे परमेश्वर जो पापी जन भी तुझे गौ के समान समझ तेरी सेवा करते हैं वे भी तुझे प्राप्त होते हैं, दुर्बुद्धियों को तू सुख नहीं देता। दुष्ट को तू नाश कर डालता है।

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ।
शश्वद्भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥गीता॥ इति द्वादशो वर्गः॥

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः॥६॥

भा०—हे विद्वन् ! हे परमेश्वर ! (पन्थाः न) मार्ग जैसे (सुप्रैतुः सूयवसः) उत्तम साधन रथ आदि से जाने वाले और उत्तम अन्नादि साथ लेकर चलने वाले को सुख पूर्वक उद्देश्य तक पहुंचा देता है उसी प्रकार तू भी (सुप्रैतुः) उत्तम सदाचार से, सत्कर्म से आगे बढ़ने वाले और (सुयवसः) उत्तम अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों को उपभोग करने वाले को या उत्तम रीति से विषयों को त्याग करने का साधन करने वाले वैराग्य वान् को लक्ष्य तक पहुंचा देता है । (मित्रः न) मित्र जिस प्रकार (परिप्रीतः) अति प्रसन्न होकर (दुर्नियन्तुः) दुःख से शासन करने वाले, अन्याय मार्ग मे जाने वाले राजा को भी हित से बुरे मार्ग से हटाकर न्याय मार्ग में चलाता है उसी प्रकार तू भी (परिप्रीतः) अपनी इन्द्रिय आदि को नियम में रखने से असमर्थ स्खलित पुरुष को सन्मार्ग में चलाता है । (ये) जो (अनर्वाणः) उत्तम धर्म मार्ग से जाने वाले, तेरा साक्षात् करते हैं या (अभि चक्षते) अन्यों को उपदेश करते हैं वे (अपीवृताः) सत्य मार्ग में स्थिर होकर या उत्तम वस्त्रादि से ढके रहकर भी (अप-ऊर्णुवन्तः) किसी सत् तत्व को आच्छादित न करते हुए हमारे सामने (अस्थुः) रहें । वे सब तत्व खोल २ कर कहें ।

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

भा०—जिस विद्वान् के पास (स्तुभः) ब्रह्मचर्य से वीर्य

का स्तम्भन करने वाले ब्रह्मचारी गण, (स्तुभः अवनयः न) उत्तम भूमियां जिस प्रकार स्वामी को प्राप्त होती हैं और (स्रवतः) बहती हुई (रोधचक्राः) तटों और भंवरों वाली नदियां (समुद्रं न) समुद्र को जिस प्रकार आप से आप पहुंच जाती हैं उसी प्रकार (अवनयः) विद्या दान के लिये उत्तम भूमि, व्रत और ज्ञान के पालक, (स्तुभः) वीर्य का स्तम्भन करने हारे विद्यार्थी (स्रवतः) उदार हृदय, आगे बढ़ने वाले, प्रगति शील (रोधचक्रः) निरोध, इन्द्रिय संयम के करने वाले होकर (यं) जिस (समुद्रं) विद्या के अगाध सागर रूप प्रजापति, आचार्य विद्वान् को (यन्ति) प्राप्त करते हैं। (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र के स्वामी के समान वेद वाणी या ब्रह्म ज्ञान का पालक (गृध्रः) विद्यार्थियों को हृदय से चाहता हुआ, या उपदेश योग्य ज्ञान को धारण करने हारा होकर (उभयं) ऐहिक पारमार्थिक विज्ञान दोनों का (चष्टे) उपदेश करता है। वह स्वयं विद्वान् अज्ञानी विद्यार्थियों के लिये (तरः) ज्ञान बढ़ाने और अज्ञान से पार ऊतारने वाला होने से 'तर' अर्थात् नौका के समान है और (आपः च) आप्त और जलों के समान उनके आचार चरित्र शुद्ध करने हारा होने से 'आपः' है। (२) राजा के पक्ष में—(अवनयः न स्तुभः) भूमियों के समान स्तुति शील बली और हिंसाकारी सेनाएं और (दोधचक्राः स्रवतः न) बहती नदियों के समान वे वेग से जाने वाले पर राष्ट्र चक्र को रोकने वाली आप से आप प्राप्त होती हैं वह विद्वान् राजा, (गृध्रः) लक्ष्मी का आकांक्षी, (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी (उभयं अन्तः) स्वपक्ष और परिपक्ष दोनों के बीच खड़ा देखता है। वह स्वयं शत्रुनाशक होने से संग्राम के पार पहुंचाने से दूर है और (आपः च) जलों के समान शत्रु दल के हाल जानने और वज्र समान होने से 'आपः' है। आपो वै वज्रम्। शत० ॥ (३) परमेश्वर को (स्तुभः) सब स्तुति शील एवं स्तुतियां भी स्वामि को भूमियों के समान और समुद्र को बहती नदियों के

समान पहुंचाती हैं। स्तुतियां भी कैसी? जो बहती हुई और 'चक्र' अर्थात् कर्त्तापन को निरोध करती हुई। सर्वज्ञ प्रभु सब लोकों का स्वामी स्वयं तराने वाला स्वयं जलों के समान शान्ति कर एवं प्राप्त करने योग्य परम वैद्य है वह दोनों ही भीतर अन्तः करण में दिखाई देते हैं। अथवा (तरः आपश्च) वही समुद्र और वही नाव है।

एवा म॒हस्तु॑विजा॒तस्तुवि॑ष्मा॒न्बृह॒स्पति॑र्वृष॒भो धा॑यि दे॒वः।
स नः॑ स्तु॒तो वी॒रव॑द्धातु॒ गोम॑द्वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम्॥८॥१३॥

भा०—वह (महः) महान्, (तुविजातः) अपने से बड़े विद्या-वृद्ध से उत्पन्न, (तुविष्मान्) शरीर आत्मा से बलवान्, (बृहस्पतिः) वेदज्ञ विद्वान् (देवः) विद्यादाता होकर (वृषभः) वर्षणशील मेघ के समान एवं सर्व श्रेष्ठ रूप से (धायि) धारण किया जाता है। (सः) वह (स्तुतः) प्रशंसायोग्य पुरुष (नः) हमें (वीरवत्) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त और (गोमत्) उत्तम भूमि, वाणी और पशुओं से युक्त ज्ञान और ऐश्वर्य (धात्) स्वयं धारण करे और हमें प्रदान करे। हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न या मनोकामना, बल, और जीवन प्राप्त करें। (२) परमेश्वर के पक्षमें—(तुविजातः) बहुत से ज्ञानों से प्रसिद्ध या बलशाली, सुखों का वर्षक, दाता, प्रकाशक, धारण किया जाता है। इति त्रयोदशो वर्गः।

[१९१]

अगस्त्य ऋषिः॥ अबोषधिसूर्या देवताः॥ छन्द—१ उष्णिक्। २ भुरिगुष्णिक् ३, ७ स्वराडुष्णिक्। १३ विराडुष्णिक् ४, ९, १४ चिराडनुष्टुप्। ५, ८, १५ निचृदनुष्टुप्। ६ अनुष्टुप्। १०, ११ निचृत् ब्राह्मयनुष्टुप्। १२ विराड् ब्राह्मयनुष्टुप्। १६ भुरिगनुष्टुप्॥ षोडशर्चं सूक्तम्॥

कङ्क॑तो न क॑ङ्क॒तोऽथो॑ स॒तीनक॑ङ्कतः।
द्वावि॑ति॒ प्लुषी॒ इति॒ न्य१॒॑दृष्टा॑ अलिप्सत॥१॥

भा०—(कंकतः न) अति चञ्चल के समान (कंकतः) विष वाला जीव होता है। (अथो) और (सतीन कङ्कतः) वह विषैला जीव जल धारा के समान कुटिल चाल से चलने वाला होता है। (द्वौ इति) इन दोनों ही प्रकारों के जीव देखे जाते हैं। और वे दोनों (प्लुषी) काटने पर भिन्न २ प्रकार से दाहकारी होते हैं। वे जीव (अदृष्टाः) प्रायः देखने में नहीं आते तो भी (नि अलिप्सत) वे छुपे रूप से अपने शिकार को पकड़ते हैं और काट लेते हैं। डांस आदि उड़ने और फुदकने वाले जानवर और जल के समान तरल वा कुटिल गति से जाने या सरकने वाले सांप गोह आदि विषैले जन्तु छुपे ही रहते हैं, वे काट भी लेते हैं।

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥

भा०—विषनाशक ओषधि कई प्रकार की होती है, कई प्रकार के गुण रखती है। जैसे ओषधि (आयती) समीप आती हुई (अदृष्टान्) न दीखने वाले विष जन्तुओं को (हन्ति) नाश कर देती है। (अथो) और (परायती) दूर जाती हुई भी वह (हन्ति) अपने पूर्व प्रभाव या मादकता से उनका नाश कर देती है। (अथो) और वह उनको (अवघ्नती हन्ति) ऐसे मारती है जैसे मानो कूट कूट कर आघात करती है। वे उसके प्रभाव से तड़प २ कर मरते हैं। अथवा औषधि (अवध्नती) कूटी जाती हुई भी अपने उग्र गन्धों से विषैले जन्तुओं को (हन्ति) नाश कर देती है और (पिंशती) पीसी जाकर, और भी सूक्ष्म होकर वह (पिनष्टि) विष जन्तु को मानो पीस डालती है। उनका सर्वथा नाश कर देती है।

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥

भा०—(शरासः) शर अर्थात् सरकण्डे के समान, (कुशरासः) छोटी जात के सरकण्डे के समान, (दर्भासः) दाभ या कुशा घास के

समान, (सैर्या उत) नदियों, तालाबों के तटों में उत्पन्न घासों के बीच, (मौञ्जाः) मूंजों में रहने वाले (बैरिणाः) वीरण नाम तृणों में रहने वाले ये नाना प्रकार के (अदृष्टाः) उनके बीच न दीखने वाले विषैले जन्तु (सर्वे) सब (साकं) उन २ तृण आदि पदार्थों के साथ ही (नि अलिप्सत) चिपटे रहते और उनमें छुपे रहते और घात लगाये रहते हैं।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥

भा०—(गावः) गौएं जिस प्रकार (गोष्ठे) गोशाला में (नि असदन्) शान्त होकर खड़ी रहती हैं। (मृगासः) हिंसक जन्तु जिस प्रकार वन में (नि अविक्षत) छुपे २ घुसे रहते हैं (केतवः जनानां) जिस प्रकार मनुष्यों के बीच में ज्ञान या ज्ञानी पुरुष शान्त भाव से रहते हैं उसी प्रकार विषैले जीव भी अपने २ स्वभाव अनुसार (अदृष्टाः) छुपे रहकर (नि अलिप्सत) पड़े रहते हैं।

एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—ये सभी विषधारी जीव जो दिन को छुपे रहते हैं (एते उ त्ये) वे पूर्वोक्त सब (प्रदोषं) रात्रि के प्रारंभ समय में (तस्कराः इव) चोरों के समान (प्रति अदृश्रन्) प्रत्यक्ष रूप में दीखा करते हैं। (अदृष्टाः) जो जीव प्रायः नहीं भी दीखते, वे भी (विश्वदृष्टाः) सब की दृष्टि में आकर या स्वयं सब कुछ देखते हुए (प्रतिबुद्धाः) खूब अपने तई साव-धान, सचेत (अभूतन) होकर रहते हैं। अथवा रात्रि में न दीखने वाले जीव भी सबको नहीं दीखते, इसलिये हे पुरुषो ! आप सब सचेत होकर रहो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

भा०—(द्यौः) सूर्य या आकाश, मेघादि वृष्टि द्वारा पालक होने से (वः पिता) तुम जीवों का पालक, पिता के समान है। (पृथिवी माता) यह पृथिवी सबकी माता के समान है। (सोमः भ्रातः) ओषधि गण और चन्द्रमा भरण करने वाला होने से सबके भ्राता के समान है। (अदितिः) ये सब उत्पन्न जीव जन्तु (स्वसा) सब अपने २ सामर्थ्य से चलने, सरकने वाले या सुख से रहने वाले होने से 'स्वसा' अर्थात् भगिनी के समान हैं। ये (अदृष्टाः) कुछ जो देख नहीं पड़ते, दूसरे (विश्व दृष्टाः) जो सबको देख पड़ते हैं वे सभी (तिष्ठत) हे जन्तु गणो ! तुम रहो और (सुकम् इळयत) अच्छी प्रकार सुख पूर्वक विचरो।

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (अंस्या) कन्धों के बल सरकने वाले, (ये अंङ्ग्या) जो अंग अर्थात् पावों के बल चलने वाले, (सूचीका) सूई के समान कांटे से काटने वाले और (ये) जो (प्रकङ्कताः) अति चंचल, अति वेगवान्, अति तीव्र वेदना देने वाले हैं जो (किंचन) कुछ भी (इह) यहां (अदृष्टाः) दिखाई नहीं पड़ते, हे (सर्वे) सब जीवो ! (वः) तुम सब (साकं) एक साथ ही (नि जस्यत) हमें छोड़ जाओ या नष्ट हो जावो।

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥

भा०—(विश्वदृष्टः) सबके देखने योग्य, (अदृष्टहा) न दीखने वाले दोषों को भी नाश करने वाला, (सूर्यः) सूर्य (पुरस्तात्) आगे, पूर्व की ओर (उत् एति) उदय होता है। वह (सर्वान्) सब (अदृष्टान्) न दीखने वाले प्राणियों और (सर्वाः च) सब प्रकार की (यातुधान्यः) पीड़ा देने और कुटिल चाल धारने वाली जीव जातियों को भी (जम्भयन्) दूर करता हुआ प्रकट होता है।

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (सूर्यः) सूर्य (पुरु) नाना बहुत से विषों और (विश्वानि) सभी अन्धकारों को (जूर्वन्) नाश करता हुआ (उत् अपप्तत्) ऊपर उठता है । उसी प्रकार (पर्वतेभ्यः) पर्वतों से (आदित्यः) नाना प्रकार के रस ओषधियों का संग्रह करने वाला विष वैद्य (विश्वदृष्टः) सब प्रकार जन्तुओं और ओषधियों के गुण दोषों को प्रत्यक्ष परीक्षण से देखने हारा होकर (अदृष्टहा) न देखे हुए विषों और रोगों को भी नाश करने में समर्थ होता है ।

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०— सुरावतः) सुरा अर्थात् आसव बनाने वाले के घर में (दृतिं) पात्र जिस प्रकार रखा रहता है और उसमें भाप बना आसव बूंद २ टपकता है, उसी में सब समाता जाता है उसी प्रकार मैं भी (विषम्) विष को (सूर्ये) सूर्य में (आ सजामि) विलीन करता जाऊं (सो चित्) वह जिस प्रकार (न मराति) नहीं नष्ट होता और (नो वयं मराम) न हम ही प्राण त्याग करते हैं । (अस्य योजनं) इसका लगाना विष को (आरे) दूर करता है । (हरिष्ठाः) विष हरने के कार्य में यह पदार्थ बड़ा उपयोगी होकर हे पुरुष ! या हे विष ! (त्वा) तुझको भी (मधु चकार) मधुर, सह्य कर देता है । इसी प्रकार हे मनुष्य रोगिन् ! (मधुला) यह मधु देने वाली ओषधि या यह विष वैद्य भी तुझे सुख दे । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥

भा०—(इयत्तिका) इतनी छोटी सी (शकुन्तिका) पंख वाली (सका) वह चिड़िया (ते विषम्) तेरे विष को खा जाती है। (सो चित् नु) वह भी तो (न मराति) नहीं मरती है। (नो वयं मराम) इसी प्रकार हम भी न मरें। (अस्य योजनम्) इस जन्तु का योग भी (आरे) विष को दूर करता है (हरिष्ठाः) वह भी विष को हरने वाले पदार्थों के आश्रय है। उसी प्रकार हे विष ! 'मधुला' विष को मधुर करने वाली ओषधि ही (त्वा मधु चकार) तुझे मधुर या सह्य कर देती है।

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
ता श्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥

भा०—(त्रिः सप्त) २१ प्रकार की (विष्पुलिङ्गकाः) विष खा जाने वाली छोटे पक्षियों की जातियां हैं जो (विषस्य) विष के (पुष्पम्) अति पुष्ट या प्रबल अंश को (अक्षन्) खा जाते हैं। और वे भी नहीं मरतीं। इसी प्रकार के विष नाशक कारण के विद्यमान रहते हुए भी हम नहीं मर सकते। अस्य योजनं इत्यादि पूर्ववत्।

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥

भा०—मैं (नवतीनां नवानां) ९० + ९ = ९९ निन्यानवे (विषस्य) विष को (रोपुषीणाम्) हरने वाली (सर्वासाम्) समस्त ओषधियों का (नाम) नाम और स्वरूप (अग्रभम्) लूं, उनको जानूं, उनका अन्यों को उपदेश करूं। (आरे अस्य योजनम्) इत्यादि पूर्व वत्! विष के ९९ प्रकार और उनके ९९ ही प्रकार के प्रतिबन्धक उपाय हैं।

त्रिः स॒प्त म॑यू॒र्यः॑ स॒प्त स्वसा॑रो अ॒ग्रुवः॑ ।
तास्ते॑ वि॒षं वि ज॑भ्रिर उद॒कं कु॒म्भिनी॑रिव ॥ १४ ॥

भा०—(त्रिः सप्त मयूर्यः) ३ × ७ = २१ प्रकार के मयूर जाति के पक्षि हैं और (सप्त स्वसारः) सात प्रकार की स्वयं गति करने वाली (अग्रुवः) नदियां या नाड़ियां होती हैं। वे सब (विषं विजभ्रिरे) विशेष रूप से विष का ऐसे दूर करती हैं, जैसे कहारियां या नदियां जल को हर ले जाती हैं। उनके पुनः स्पर्श से विष दूर हो जाता है। मुर्गी की जातियों का गुदा भाग सर्प के काटे के विष को बार २ लगाने से चूस लेता है। क्रम से एक के बाद एक लगाने से २१ मुर्गियों के बाद विष शमन हो जाता है। ऐसे पक्षियों की २१ प्रकारें होना सम्भव हैं।

इ॒य॒त्त॒कः कु॑षु॒म्भ॒कस्त॒कं भि॑न॒द्म्यश्म॑ना ।
ततो॑ वि॒षं प्र वा॑वृ॒ते परा॑ची॒रनु॑ सं॒वतः॑ ॥ १५ ॥

भा०—(कुसुम्भकः) वहने वाला भी (इयत्तकः) इतना छोटा सा होता है। (तकं अश्मना भिनद्मि) उसके विष के प्रस्तर या शस्त्र से छेद दूं। (ततः) उससे (विषम्) विष (पराचीः संवतः अनु) दूर २ तक जाने वाली धाराओं में (प्र वावृते) फूट निकलता है।

कु॒षु॒म्भ॒कस्तद॑ब्रवीद् गि॒रेः प्र॑व॒र्तमा॑न॒कः ।
वृश्चि॑क॒स्या॒र॒सं वि॒षम॑र॒सं वृ॑श्चिक ते वि॒षम् ॥१६॥१६॥२४॥१॥

भा०—(कुषुम्भकः) छोटा सा नेवला ही जो (गिरेः प्रवर्त्तमानकः) पर्वत से ही पला हुआ आता है वह (तत् अब्रवीत्) यह उपदेश करता है। (वृश्चिकस्य) वृश्चिक का (विषम्) विष उससे (अरसम्) निर्बल है। तो फिर हे (वृश्चिक) काटने वाले जन्तु ! बिच्छू ! (ते विषम् अरसम्) तेरा विष अब प्रबल विष नहीं है। तेरी भी ओषधि नकुल आदि प्राणियों में विद्यमान है। इस सूक्त के ८वें मन्त्र में सूर्य को जहां विष नाशक बतलाया है वहां सूर्य वर्ग में पठित अर्क पत्री, आदित्यभक्ता

आदि ओषधियों का भी उपदेश विष प्रयोग पर जानना चाहिये। 'अर्क' के अनुभूत चिकित्सा सागर में नीचे लिखे गुण प्राप्त होते हैं—

(१) सर्प का विष उतारने के लिये उसके दंश पर आकड़े का दूध टपकाता रहे जब तक शरीर में विष रहेगा तब तक दूध सुखता रहेगा जब विष का दोष शरीर में न रहेगा तब दंश पर भी दूध न सूखेगा।
(अनु० चि० २८। ७६।)

(२) अर्क की तीन कोंपलें गुड़ में लपेट, खिलाकर ऊपर घी पिलाने से सांप का विष उतरता है। अनु० चि० २८। ७८॥

(३) विच्छू के दंश पर अर्क का दूध लगाने से उसका विष उतर जाता है। अनु० चि० २८। ७९॥

इसकी जड़ पानी के साथ पीसकर पिलाने से सांप का विष उतरता है। (अनु० चि० २८। ८०)

(४) अर्कपत्री—इसको घिस कर लगाने से विच्छू का विष उतरता है।

(५) इसको सर्पदंश पर लगाने और खिलाने से सर्प का विष उतरता है (अनु० चि० ३०। ३, ७)

मन्त्रों में 'हरिष्ठाः' शब्द है। कदाचित् वह हरीठा हो। हरीठा के गुण—इसकी गिरी को पानी में पीसकर पिलाने से विष उतर जाता है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के निम्न लिखित सूक्त भी विशेष प्रकाश डालते हैं। अथर्व० (५। १३। १-११), (५। २३। १-१३), (४। ३१। १-१२), (२। २३। १-६) (६। १२। १-३) (६। ५२। १-३) (७। ५६। १८) (१०। ४। १-२६) इनमें सर्प विष के प्रकार, अन्य विषैले जन्तु, उनकी ओषधियों, सर्पों की जातियों, वृश्चिक, तथा विश्वदृष्ट, सूर्य आदि का प्रकारान्तर से न्यूनाधिक वर्णन है।

इति षोडशो वर्गः॥ इति चतुर्विंशोऽनुवाकः॥

*** इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ***

❀ ओ३म् ❀

अथ द्वितीयं मण्डलम्

[१]

आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥छन्दः—१ पङ्क्तिः । ९ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिः । २, १५ विराड् जगती । १६ निचृज्जगती । ३, ५, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६, ११, १२, १४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी ! हे (नृपते) मनुष्यों और नायकों के भी पालक ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (द्युभिः) प्रकाशों से सूर्य या अग्नि के समान, अपने सद् व्यवहारों और उत्तम कमनीय गुणों, तेजस्वी कर्मों से (जायसे) प्रसिद्ध हो । (त्वम्) (आशुशुक्षणिः) जिस प्रकार अग्नि शीघ्र सहसा दीप्ति से अन्धकार को नाश करता और गृह को चमका देता है उसी प्रकार तू भी अतिशीघ्र, दीप्ति युक्त तीक्ष्ण शस्त्रों, अस्त्रों और उपायों से दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा और सब प्रकार से तेजस्वी हो । (त्वम् अद्भ्यः) जलों से जिस प्रकार मेघ सब पर बरसता है या मेघ के जलों में अग्नि जिस प्रकार विद्युत् रूप से उत्पन्न होता है या समुद्र के जलों से जिस प्रकार वाड़वानल उत्पन्न होता है, वह जलों के नीचे भी शान्त नहीं होता, उसी प्रकार तू भी आप्त पुरुषों से और प्रजा जनों से अधिक शक्ति शाली रूप से प्रकट हो । (त्वम् अश्मनः परि) जिस प्रकार अग्नि पत्थरों की रगड़ से उत्पन्न या प्रकट होता है उस प्रकार

पत्थर से रत्न के समान हे राजन् ! विद्वन् ! तू (अश्मनः परि) 'अश्मा' अर्थात् वज्र, शास्त्रास्त्र बल से उसके भी ऊपर अध्यक्ष रह कर प्रकट हो। (त्वं वनेभ्यः) वनों, जंगलों से, उनके वृक्षों से जिस प्रकार महान् दावानल उत्पन्न होता है और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् जलों से, विद्युत् उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी वन अर्थात् सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से या बहुत सी संख्या में विद्यमान सेना दलों से प्रकट या प्रसिद्ध हो। (त्वम् ओषधीभ्यः) जिस प्रकार अग्नि ओषधियों के तापधारी रसों, तेज़ाबों आदि से उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी रोगों को ओषधि से वैद्य के समान 'ओषधि' अर्थात् शत्रु को संताप देने वाले वीर पुरुषों की सेनाओं से राष्ट्र के कण्टक, स्वरूप रोगों केसमान पीड़ा दायक जनों को दूर करने हारा हो। हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नृणां) मनुष्यों के बीच (शुचिः) शुद्ध मन, वाणी और काय, तीनों में पवित्र हो। दण्ड नीति के अनुसार चार प्रकार से शुचि रहने का उपदेश है धर्म, अर्थ, काम और भय में राजा को चारों में शुद्ध रहना चाहिये। वह अधर्म से किसी को न सतावे, अन्याय से धन न छीने, दूसरों की स्त्रियों, कन्याओं का कामी होकर अपहरण न करे, शत्रुओं से संग्राम काल में भयभीत न हो। इसी प्रकार ज्ञानवान् ब्राह्मण भी ज्ञान प्रकाशों से प्रकाशित हो। शीघ्र अज्ञानों को नाश करने वाला, प्राणवत् प्रजाओं से शास्त्र बल से, ऐश्वर्यों से और ओषधियों से ज्ञानवान् हो, सब के बीच धर्मात्मा और पवित्र हो।

तवा॑ग्ने हो॒त्रं तव॑ पो॒त्रमृ॒त्वियं॒ तव॑ ने॒ष्ट्रं त्वम॒ग्निदृ॑ताय॒तः ।
तव॑ प्रशा॒स्त्रं त्वम॑ध्वरीयसि ब्र॒ह्मा चासि॑ गृ॒हप॑तिश्च नो॒ दमे॑॥२॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! (तव होत्रम्) दान देने योग्य उत्तम सत्कार भी तेरा ही है, (पोत्रम् तव) यज्ञ के समान पवित्र कार्य तेरा है। (ऋत्वियं) प्रति ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाले ऋत्विजों के योग्य आदर सत्कार और (नेष्ट्रम्) यज्ञ में नेष्टा के समान नायकपन अर्थात्

अन्यों को सन्मार्ग में ले चलने का कार्य (तव) तेरा ही हो। और (त्वम् अग्नित्) तू ही अग्नि को प्रकाशित करने वाला, अपने समान अन्य विद्वान् और तेजस्वी को उत्पन्न करने वाला अग्नियों को प्रज्वलित एवं उनसे यज्ञ करने हारा हो। (ऋतायतः) सत्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, अन्न और वेदानुकूल न्याय व्यवस्था को कहने वाले (तव) तेरा ही (प्रशास्त्रम्) सबसे उत्तम सर्वोपरि प्रधान शासन हो। (त्वम् अध्वरीयसि) तू अध्वर अर्थात् प्रजाओं की पीड़ा का नाश और अहिंसा का पालन करना चाहता है। तू राष्ट्र पालन के कार्य को यज्ञ के समान करना चाहता है। तू ही (ब्रह्मा च असि) चारों वेदों के जानने वाले ब्रह्मा के समान सबका स्वामी हो। (दमे) घरों में (नः) हमारे बीच (गृहपतिः) गृहस्वामी के समान राष्ट्रका घर के समान पालक हो।

त्वम॑ग्न इन्द्रो॑ वृष॒भः स॒ताम॑सि॒ त्वं विष्णु॑रुरुगा॒यो न॑म॒स्यः॑ ।
त्वं ब्र॒ह्मा र॑यि॒विद्ब्र॑ह्मणस्पते॒ त्वं वि॑धर्तः सचसे॒ पुर॑न्ध्या ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशमान ? (त्वम्) तू (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (वृषभः) बलवान् सब उत्तम सुखों को देने हारा, (सताम् नमस्यः) समस्त सत्पुरुषों के बीच नमस्कार और पूजा करने योग्य है। (त्वं) तू (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान्, (उरुगायः) बहुतों से स्तुति किया जाय। (त्वं) तू (ब्रह्मा) मुख्य २ कार्य करने हारा, वेदों का विद्वान् (रयिवित्) सब पदार्थों का जानने हारा हो। हे (ब्रह्मणः पते) वेद, महान् राष्ट्र, अन्न धन आदि के पालक ! हे (विधर्त्तः) विविध धर्मों और उत्तम गुणों, विविध उपायों से राष्ट्र के धारण करने हारे ! तू (पुरन्ध्या) पूर्ण विद्या और पुर, राष्ट्र को धारण करने वाली बुद्धि और राजनीति के साथ, स्त्री के साथ गृहपति के समान रहता हुआ (सचसे) बलवान्, समवाय बना कर रह। (२) परमेश्वर ब्रह्म अर्थात् वेद का

पालक और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली शक्ति से युक्त है। वह स्वयं 'ब्रह्मा' सब से महान्; ऐश्वर्यवान्, व्यापक, सर्वस्तुतियोग्य सबका उपास्य है।

त्वमंग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! सब पदार्थों के प्रकाशक! विद्वन् राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (राजा) गुणों से प्रकाशमान, राजा, (वरुणः) सबसे श्रेष्ठ, सब दुःखों के वारक! (धृतव्रतः) सत्य कर्मों के धारण करने वाला, (मित्रः) सब का स्नेही, प्राणवत् प्रिय, (दस्मः) दुःखों और दुष्टों का नाशक और (ईड्यः) सबके स्तुति करने और सबसे चाहने योग्य (भवसि) है। (त्वम्) तू (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी, बहुत अधिक दानशील, (सत्पतिः) सज्जनों का प्रतिपालक, और (यस्य) जिस राष्ट्र के (संभुजं) उत्तम रीति से भोग और पालन करने के लिये (त्वम्) तू (अंशः) प्रेरक, मुख्य आज्ञापक होता है, हे (देव) राजन्! विजिगीषो! उसी के (विदथे) संग्राम, परस्पर विवाद या ज्ञानपूर्वक धनादि प्राप्त करने के निमित्त (भाजयुः) न्यायपूर्वक विभाग करने हारा (भवसि) हो। (२) परमेश्वर (यस्य संभुजं) जिसकी रक्षा के लिये उद्यत होता है उसके (विदथे भाजयुः) हृदय में ज्ञान प्रदान करने हारा होता है। वही उसके ज्ञान में (अंशः) प्रेरक होता है। वही (भाजयुः) 'भाज' अर्थात् भजन, सेवन की आकांक्षा करता और उसका पात्र होता है।

त्वमंग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः॥५॥१७

भा०—हे (अग्ने) अग्नि, विद्युत् और सूर्य के समान तेजस्विन्! प्रभो! (त्वम्) तू (त्वष्टा) सबको बनाने हारा तीक्ष्ण, काटने वाले

कुल्हाड़े या शस्त्र के समान (विधते) काम करने वाले विद्वान् को (सु-वीर्यम् ररिषे) उत्तम बल प्रदान करता है । हे (ग्नावः) स्तुति वाणियों के स्वामिन् ! विद्यावन् ! हे (मित्रमहः) मित्र के समान सबका आदर करने वाले ! और मित्र, प्राण और सूर्य के समान तेजस्विन्, उनके समान दातः ! उस कार्य कर्त्ता के साथ (तव सजात्यम्) तेरा ही बन्धुभाव है । तू ही उसका बन्धु है । (त्वम्) तू (आशुहेमा) बहुत शीघ्र ऐश्वर्य आदि से बढ़ाने वाला, होकर (सु-अश्वयम्) उत्तम अश्वादि रथादि सैन्य और वाहनों से युक्त ऐश्वर्य को (ररिषे) प्रदान करता है । (त्वं) तू (पुरुवसुः) बहुत सी, अनेक, प्रजाओं का बसाने वाला, तू (नरां) मनुष्यों का, उनके बीच में (शर्धः) शत्रुनाशकारी शस्त्रास्त्रों का धारण करने वाला, बल स्वरूप, (असि) है । (२) अध्यात्म में आत्मा (विधते) काम करने वाले मन, प्राण आदि को बल देता, उनसे प्रेम करता, उनको अति वेग से चलाता, (स्वश्व्यं) उत्तम प्राण बल देता, प्राणों के बीच (शर्धः) स्वयं बल स्वरूप है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्वम॑ग्ने रु॒द्रो असु॑रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे ।
त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शङ्ग॒यस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॑सि॒ नु त्मना॑ ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) आग के समान जलाने हारे ! तेजस्विन् राजन् ! प्रभो ! तू (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने हारा, शिष्टों को उपदेश करने हारा, मेघ के समान गर्जन करने हारा, (असुरः) 'असुर' अर्थात् शत्रुओं का उखाड़ फेंकने वाले वीर पुरुषों के बीच प्राणों के बीच आत्मा के समान मुख्य भोक्ता होकर रमण करने वाला, वा मेघ के समान बल, प्राण, जीवन देने वाला, (महः) महान् है । (त्वम्) तू (दिवः) सूर्य के (मारुतः पृक्षः शर्धः) वायुओं के वर्षाकारी बल के समान ही (दिवः) विजय करने वाले विजिगीषु के (मारुतम्) शत्रुमारक सैनिकों के (पृक्षः) परस्पर सम्मिलित या शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाले (शर्धः) बल का (ई-

शिषे) स्वामी, प्रभु हो। जिस प्रकार अग्नि (अरुणैः वातैः) वेगवान् वायुओं से बढ़ता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू (वातैः) वायु के समान वेग से जाने वाले (अरुणैः) अश्वों से (यासि) प्रयाण कर। (त्वं शंगयः) तू सबको शान्ति सुख पंहुचाने वाला, शान्ति सुख, कल्याण का गृह स्वरूप (पूषा) सबका पोषक, होकर (त्मना) आत्मसामर्थ्य से (विधतः पासि नु) सेवा करने वाले, कार्य कर्त्ताओं की रक्षा करता है। (२) परमेश्वर भक्त व्रत नियमादि के अनुष्ठान करने वालों की रक्षा करता है। वह सूर्य, वायु, अन्न, वर्षा आदि सब के बलों का स्वामी, सूर्य वायु आदि से, व्यापक शान्तिदायक, पोषक, होकर सब भक्तों का पालक है।

त्वम॑ग्ने द्रविणोदा अ॑र॒ङ्कृते॒ त्वं दे॒वः स॑वि॒ता र॑त्न॒धा अ॑सि।
त्वं भगो॑ नृपते॒ वस्व॑ ईशिषे॒ त्वं पा॒युर्दमे॒ यस्तेऽवि॑धत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशक, सब सुखों के देने हारे ! (त्वं) तू (अरंकृते) खूब पुरुषार्थ करने वाले को (द्रविणोदाः) धनों, ऐश्वर्यों का देने वाला है। (त्वं देवः) तू देव, सर्वप्रद, (सविता) उत्पादक, (रत्नधा असि) सब रमणीय रत्न आदि पदार्थों को धारण करने वाला (असि) है। हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! (त्वं) तू (भगः) सब ऐश्वर्यों का स्वामी, सुख और कल्याणकारी, होकर (वस्वः ईशिषे) समस्त ऐश्वर्यों का और बसी प्रजा का स्वामी हो। (यः) जो (ते) तेरे (दमे) दमनकारी शासन में, गृह में (अविधत्) काम करता, तेरी सेवा परिचर्या करता है तू उसका (पायुः) पालन करने हारा है।

त्वाम॑ग्ने॒ दम॒ आ वि॒श्पतिं॒ विश॒स्त्वां राजा॑नं सुवि॒दत्र॑मृञ्जते।
त्वं विश्वा॑नि स्वनीक पत्यसे॒ त्वं स॒हस्रा॑णि श॒ता दश॒ प्रति॑ ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! सूर्य के समान तेजस्वी राजन् !

(विशः) प्रजाएं (त्वां) तुझको (दमे) दमन कार्य में (विश्पतिं) प्रजा पालक (ऋञ्जते) बनाती हैं। और वे ही (त्वां) तुझको (सुविदत्रम्) उत्तम दानशील, उत्तम प्राप्त ऐश्वर्य का रक्षक, उत्तम ज्ञान का रक्षक (राजानं) राजा (ऋञ्जते) बनाती हैं। हे (स्वनीक) सौम्य मुख ! हे उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! (त्वं) तू (विश्वानि) सब पदार्थों का (पत्यसे) स्वामी है। और तू (सहस्राणि दशशता प्रति) दस सौ हज़ार अर्थात् दस लाख १००००००, सैन्यों पर भी (पत्यसे) स्वामी है।

त्वाम॑ग्ने पि॒तर॑मि॒ष्टिभि॒र्नर॒स्त्वां भ्रा॒त्राय॒ शम्या॑ तनू॒रुच॑म्।
त्वं पु॒त्रो भ॑वसि॒ यस्तेऽवि॑ध॒त्त्वं सखा॑ सु॒शेवः॑ पास्या॒धृषः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! हे राजन् ! (नरः) लोग (इष्टिभिः) यज्ञों और सत्कारों से (त्वां) तुझको (पितरम्) पालक माता पिता जानकर तेरी सेवा करते हैं। (तनूरुचम् त्वां) अग्नि के समान प्रत्येक देह में कान्ति स्वरूप तेरी (शम्या) उत्तम कर्मानुष्ठान से (भ्रात्राय) भाई के समान बन्धुता उत्पन्न करने के लिये सेवा करते हैं। (यः ते अविधत्) जो तेरी अच्छी प्रकार से सेवा करता है तू उसका (पुत्रः भवसि) पुत्र के समान, बहुतों का पालक, आश्रय, प्रिय और सहायक हो जाता है। (त्वं सखा) तू ही सखा (सुशेवः) तू ही उत्तम सुख देने वाला, होकर (आधृषः) तिरस्कार और बलात्कार करने वालों से उसकी (पासि) रक्षा करता, उसे बचाता है। और राजा देह में तेजस्वी या विस्तृत राष्ट्र राष्ट्र में शोभायमान होने से 'तनूरुच' है।

त्वम॑ग्ने ऋ॒भुरा॒के न॑म॒स्य१॒स्त्वं वाज॑स्य क्षु॒मतो॑ रा॒य ई॑शिषे।
त्वं वि भा॑स्यनु॑ दक्षि दा॒वने॒ त्वं वि॒शिक्षु॑रसि य॒ज्ञमात॑निः॥१०॥१८

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! प्रतापिन् ! ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वन् ! वा परमेश्वर ! राजन् ! (त्वम्) तू (ऋभुः) सूर्य के समान खूब प्रकाशमान् तेजस्वी, सत्य के बल से चमकने वाला,

महान् सामर्थ्यवान् है। तू (आके) समीप विद्यमान और (नमस्यः) सबके नमस्कार करने योग्य है। (त्वं) तू (क्षुमतः) प्रचुर अन्न आदि भोग्य सामग्री से युक्त (वाजस्य) बल और विज्ञान तथा (रायः) ऐश्वर्य का (ईशिषे) स्वामी है। (त्वं विभासि) तू विशेष रूप से चमकता है, शोभा पाता है, (त्वं) तू (अनु धक्षि) क्रम से अपने शत्रुओं को भस्म कर देता है। और (दावने) शिष्य या सम्पन्न जिज्ञासु के समान दानशील, वा आत्मसमर्पक पुरुष के हित के लिये (विशिक्षुः) विविध विद्याओं को सिखाने वाला, और (विशिक्षुः) विविध उपायों से दण्ड द्वारा, दमन करने वाला (असि) होता है। तू (यज्ञम्) यज्ञ, विद्या और धन प्राण आदि के दान कार्य को (आतनिः) सदा करता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्वम॑ग्ने॒ अदि॑ति॒र्दे॑व दा॒शुषे॒ त्वं होत्रा॒ भार॑ती वर्धसे गि॒रा।
त्वमिळा॑ श॒तहि॑मासि॒ दक्ष॑से॒ त्वं वृ॑त्र॒हा व॑सुपते॒ सर॑स्वती ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रकाशस्वरूप! हे (देव) सब सुखों के दातः। हे तेजस्विन्! कान्तिमन्! (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिये (त्वम्) तू (अदितिः) सूर्य के समान अक्षय शक्ति, जीवन और ऐश्वर्य का भण्डार है। (त्वं) तू ही (होत्रा) सब सुखों और ज्ञानों को देनेवाली वाणी, (भारती) मनुष्यों की या सूर्य की दीप्ति के समान सब तत्व को प्रकाशित करने वाली वाणी होकर (गिरा) वेद वाणी से (वर्द्धसे) उसे बढ़ाता है। (त्वम्) तू (दक्षसे) बल और क्रिया शक्ति को बढ़ाने के लिये (शतहिमा इडा असि) सौ बरसों की आयु तक प्राप्त होने वाली, भूमि, या स्तुति योग्य, अक्षय अन्नसम्पदा के समान जीवनप्रद है। (त्वं) तू हे (वसुपते) ऐश्वर्य के पालक! हे बसे प्रजाजन के पालक! अन्तेवासि के पति, आचार्य विद्वन्! तू (वृत्रहा) शत्रु, विघ्नकारी तथा अज्ञान के नाश करने हारा और (सरस्वती) नदी

के समान उत्तम ज्ञान जल से सब को पवित्र करने हारा, स्त्री के समान हृदय को आश्वासन देनेवाला है!

त्वम॑ग्ने सु॒भृ॑त उत्त॒मं वय॒स्तव॑ स्पा॒र्हे वर्ण॒ आ सं॒दृशि॒ श्रियः॑ ।
त्वं वाजः॑ प्र॒तर॑णो बृ॒हन्न॑सि॒ त्वं र॒यिर्ब॑हु॒लो वि॒श्वत॑स्पृ॒थुः ॥१२॥

भा०— हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! बलवन्! (त्वं सुभृतः) तू सुख से बालक के समान धारण करने योग्य, एवं अपने आश्रितों का उत्तम रीति से पोषक है। (तव) तेरे (संदृशि) अच्छी प्रकार दर्शनीय, उत्तम, (स्पार्हे वर्णे) चाहने योग्य वरण करने में ही (उत्तमं वयः) उत्तम बल और उत्तम (श्रियः) शोभाएं और लक्ष्मी (आ) प्राप्त होती हैं। (त्वं) तू (वाजः) ज्ञान और ऐश्वर्य का साधक अथवा (वाजः प्रतरणः) संग्रामों से पार तराने वाला, नौका के समान है। तू (बृहन् असि) सदा बढ़ने वाला, और प्रजा को बढ़ाने वाला, महान् है। (त्वं रयिः) द्रव्यसम्पदा के समान अपने में सबको रमाने वाला है। तू (बहुलः) बहुत से सुख ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला और (विश्वतः-पृथुः) सब प्रकारों से विस्तृत, महान् और अति विस्तारवान् है।

त्वाम॑ग्न आदि॒त्यास॑ आ॒स्यं१ त्वां जि॒ह्वां शुच॑यश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रा॑ति॒षाचो॑ अध्व॒रेषु॑ सश्चिरे॒ त्वे दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम् ॥१३॥

भा०— हे (अग्ने) अग्ने! विद्वन्! (आदित्यासः) अदिति माता पृथिवी के पुत्र प्रजागण, पृथिवी के स्वामी तेजस्वी राजा गण, और 'अदिति' अखण्ड ब्रह्म और अविनाशिनी वेद वाणी के उपासक जन (त्वाम्) तुझको (आस्यं चक्रिरे) अपना मुख बना लेते हैं, तुझे अपना प्रमुख, अपना प्रतिनिधि और आदेश देने वाला नियत कर लेते हैं और (शुचयः) शुद्ध चित्त वाले जन, हे (कवे) विद्वन्! मेधाविन्! (त्वां जिह्वां चक्रिरे) तुझे अपनी जिह्वा, अर्थात् वाणी बना लेते हैं। अर्थात् तेरी ही

वाणी उनके अभिप्राय को स्पष्ट करे यह उनको अभिमत होता है। राजा लोगों के मुख और वाणी विद्वान् दूत होते हैं। (रातिषाचः) दान आदि सत्कर्मों में स्थित लोग भी (अध्वरेषु) हिंसादि से रहित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्यों में, यज्ञों में अग्नि के समान तेजस्वी (त्वां) तुझको ही (सश्चिरे) प्राप्त होते हैं और (देवाः) विद्वान् लोग (त्वे) तेरे अधीन रहकर ही (आहुतम्) सब प्रकार से प्राप्त (हविः) अन्न धन ऐश्वर्यादि का ही (अदन्ति) भोग करते हैं। यज्ञ पक्ष में अग्नि, जल आदि दिव्य पदार्थ अग्नि में आहुति किये पदार्थ को सूक्ष्म रूप से ग्रहण करते हैं। आदित्य की किरणें भी अग्नि (अर्थात् ताप) के द्वारा ही जल सुखाने या पी जाने का कार्य करती हैं और उसी के द्वारा (जिह्वा) जलको ले लेने का कार्य करती हैं। वे शुद्ध होने से 'शुचि' हैं।

त्वे अ॑ग्ने॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑सो अ॒द्रुह॑ आ॒सा दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम्। त्वया॒ मर्ता॑सः स्वदन्त आ॒सु॒तिं त्वं गर्भो॑ वी॒रुधां॑ जज्ञिषे॒ शुचि॑ः ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशवन्! विद्वन्! राजन्! प्रभो! (त्वे) तेरे अधीन रहकर (विश्वे) समस्त (अमृतासः) अविनाशी, चिरंजीवी, (अद्रुहः) परस्पर द्रोह न करते हुए, (आसा) तुझ अपने प्रमुख पुरुष के साथ या तुझ द्वारा (आहुतम्) प्राप्त हुए (हविः) अन्नादि ग्राह्य उपात्त पदार्थों का (अदन्ति) भोग करते हैं। और (त्वया) तेरे द्वारा ही (मर्त्तासः) सब मनुष्य (आसुतिं) ऐश्वर्य का (स्वदन्त) भोग करते हैं। (त्वं) तू ही (वीरुधां) लता वनस्पति आदि के बीच में अग्नि के समान (वीरुधां गर्भः) विशेष रूप से, विविध रूप से शत्रु दलों को आक्रमण करने से रोकने वाली तथा (वीरुधां) बलवीर्य धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं का (गर्भः) ग्रहण, स्वीकार और वश करने हारा होकर (शुचिः) शुद्ध पवित्र, रूप में

(जज्ञिषे) प्रकट हो । (२) हे परमेश्वर ! (त्वया मर्त्तासः आसुतिं स्वदन्तः) तेरे द्वारा जीवगण व्यवस्थित होकर नाना ऐश्वर्य या (आसुतिं) जन्म लेकर जीवन धारण के सुख दुख का भोग करते हैं । (वीरुधां गर्भः) बलवीर्य धारक सूर्यादि के बीच में बल रूप से व्यापक, या विविध रूपों में उत्पन्न होने वाले जीवों में व्यापक, या उनको अपने शरण में लेने हारा है । शेष पूर्ववत्—

त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे॥१५॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, सब ज्ञानों के प्रकाशक ! (त्वं) तू (तान्) उन सबके (सम् असि च) साथ मिलने पर भी सबके समान है और (प्रति असि च) प्रत्येक के भी बराबर है । और (मज्मना) बल से हे (सुजात) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध ! हे (देव) दान शील ! तेजस्विन् ! कमनीय ! तू सबसे (प्र रिच्यसे च) अधिक बढ़ जाता है । तू सबसे अधिक शक्तिशाली है । (यत् अत्र) और जो (पृक्षः) पृथ्वी पर अन्न आदि नाना भोग्य पदार्थ विरुद्ध स्वभाव के जनों और पञ्च भूतों का परस्पर सम्पर्क, संगति भी इस लोक में (ते महिना) तेरे महान् सामर्थ्य से ही (वि भुवत्) विविध रूपों में उत्पन्न होता है । और (ते अनु) तेरे ही वश में (उभे) ये दोनों (रोदसी) सब दुष्टों को रुलाने वाले, एक दूसरे की मर्यादा को सीमित करने वाले और सर्वोपदेशप्रद (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी या सूर्य पृथिवी के समान राजा, प्रजा वर्ग या माता पिता और गुरु शिक्षक वर्ग हैं । वे भी (ते अनु) तेरे ही अधीन तेरे से उतर कर पूज्य हैं । तू सब से अधिक पूज्य है । (२) परमेश्वर उत्तम गुणों और महान कर्मों से प्रसिद्ध होने से 'सुजात' है ।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१६॥१६

भा०—(ये) जो (सूरयः) विद्या जल से स्नान करने के इच्छुक विद्यार्थी जन, और विद्वान् पुरुष (स्तोतृभ्यः) स्तोता, नाना विद्याओं को उपदेश करने वाले विद्वानों के हित (गो-अग्राम्) अपनी उत्तम वाणी वा चक्षु आदि इन्द्रियों को आगे किये, सावधान, (अश्वपेशसम्) आशुगामी मन के उत्तम रूप वाली, मनन क्रिया से युक्त, (रातिम्) चित्त वृत्ति का दान (उपसृजन्ति) गुरुओं के अति समीप आकर करते हैं उनके प्रति सब कुछ समर्पण करते हैं और जो विद्वान् (सूरयः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (स्तोतृभ्यः) विद्वानों को (गो-अग्राम्) उत्तम सत्कार युक्त वाणी को आगे रखकर (अश्वपेशसम्) अश्व अर्थात् राजसी सम्पति का (रातिम् उपसृजन्ति) दान करते हैं। या जो यजमान दानी उत्तम विद्वान् भूमि, गौ, अश्व, आदि रूप दान करते हैं, हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! (अस्मान् च) हमें और (तान् च) उन प्रतिग्रह देने और लेने वाले दोनों को (हि) निश्चय से (वस्यः) उत्तम ऐश्वर्य, आवास आदि, (प्र नेषी) प्रदान कर। हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् वीर पुत्र आदि से सम्पन्न होकर (विदथे) ज्ञानयज्ञ, अध्ययन, अध्यापन और संग्राम और यज्ञ के अवसर में भी (बृहत्) बड़े महत्त्व पूर्ण, वृद्धिकारी वचन और वेदमन्त्र रूप बृहती वेद वाणी का भी (आ वदेम) कहें, उच्चारण करें। अभ्यास करें और उपदेश करें। एकोनविंशो वर्गः।

[२]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, १२ विराट् जगती । ४ जगती । ५, ६, ६, १३ निचृज्जगती । ३, ८, १० ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

यज्ञेन॑ वर्धत जा॒तवे॑दसम॒ग्निं य॑जध्वं ह॒विषा॒ तना॑ गि॒रा ।
स॒मि॒धा॒नं सु॑प्र॒यसं॒ स्व॑र्णरं द्यु॒क्षं होता॑रं वृ॒जने॑षु धू॒र्षद॑म् ॥ १ ॥

भा०—(यज्ञेन समिधानं अग्निम् यजध्वम् हविषा तना गिरा)

जिस प्रकार यज्ञ अर्थात् आहुति दान से, हवि से और वेद मन्त्र द्वारा प्रदीप्त अग्नि में यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! प्रजाजनो ! आप लोग भी (जातवेदसम्) ज्ञान और धनैश्वर्यों में विख्यात (सम् इधानं) अति प्रदीप्त, अति तेजस्वी, (सु-प्रयसम्) उत्तम अन्न सम्पदा से पूर्ण, सबको प्रसन्न करने हारे, (स्वर्णरं) सुख के मार्ग में और सुख से उद्देश्य तक ले जाने वाले, (द्युक्षं) प्रकाशमान् , (होतारं) सबको अपनी शरण लेने और सबको अन्न वेतनादि देने हारे, (वृजनेषु) जाने योग्य मार्गों में और शत्रु को वर्जन करने में समर्थ सैन्य बलों के बीच में (धूर्षदम्) समस्त धुरा के भार को उठाकर ले चलने वाले वृषभ के समान समस्त राष्ट्र के कार्य भार को उठाने वाले और (धूर्षदं) 'धुर्' अर्थात् मुख्य पद पर विराजने वाले (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, वीर, विद्वान् नायक पुरुष को (यज्ञेन) परस्पर प्रेम सत्संग, संगठन से, (हविषा) ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न और कर से, (तना) विस्तृत राष्ट्र और (गिरा) वाणी से (यजध्वम्) उसका सत्कार करो । ये सब पदार्थ उसको प्रदान करो । (२) सर्वैश्वर्यमान् सर्व ज्ञानमय होने से परमेश्वर 'जातवेदाः' है, वह प्रकाश स्वरूप होने से 'अग्नि' सबका तृप्तिकारी होने से 'सुप्रया', सुखप्रद आनन्दमय परम पुरुष होने से स्वर्णर, सब बलों और लोकों का धारक होने से 'धूर्षद्' है ।

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२॥

भा०—(धेनवः स्वसरेषु वत्सं न) गौएं जिस प्रकार गोशालाओं में बछड़ों के प्रति प्रेम से बद्ध होकर हंभारती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! मनुष्य प्रजाजन भी (नक्तीः उषसः) सब दिन रात (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य करके (ववाशिरे) नाना स्तुति करते, तेरे प्रति अपने निवेदन और प्रार्थनाएं किया करते हैं । हे (पुरुवार)

बहुतों से वरण करने योग्य और बहुत से संकटों और शत्रुजनों के दारण करने में समर्थ, तू (अरतिः) सब ऐश्वर्यों का स्वामी (संयतः) अच्छी प्रकार दृढ़ होकर (मानुषा युगा) मनुष्यों के जीवन के वर्षों तक (दिवः इव क्षणः) दिनों के समान रात के समयों में भी (भासि) चमकता है। राजा का प्रबन्ध दिन के समान रात्रि में भी बराबर रहे। नगर में प्रकाश का प्रबन्ध करे। (२) परमेश्वर (संयतः) अच्छी प्रकार उत्तम नियन्ता है। (अरतिः) अति ज्ञानवान्, स्वामी है। (३) ध्यानी विद्वान् (संयतः) उत्तम जितेन्द्रिय होकर (अरतिः) भोगों में दत्तचित्त न होकर दिन रात्रि मनुष्य जीवन के पूर्ण १०० वर्षों तक, जीवन भर तेजस्वी होकर रहता है।

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योरर॒तिं न्येरिरे।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥

भा०—(देवाः रजसः बुध्ने सुदंससं रथम् इव न्येरिरे) विद्वान् लोग लोकों के आश्रय भूत पृथिवी पर उत्तम क्रिया, गति करने वाले रथ को जिस प्रकार चलाते हैं और जिस प्रकार वे (सुदंससं शुक्रशोचिषं अग्निम् नि एरिरे) उत्तम कर्म, गति और क्रियाओं को उत्पन्न करने वाले, शीघ्र वेग के उत्पादक तेज से युक्त अग्नि को यन्त्रों से प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार (तं) उस (सुदंससं) उत्तम कर्म करने वाले, क्रिया-कुशल (बुध्ने) अन्तरिक्ष में (रजसः) इस लोक के बीच में और (दिवः पृथिव्योः मध्ये अरतिम्) आकाश या सूर्य और भूमि के बीच में व्यापक शक्तिशाली सूर्य या वायु के समान (दिवः पृथिव्योः) तेजस्वी राजा और आश्रय रूप पृथ्वी के प्रजाजनों के बीच में (अरतिं) अतिमतिमान् सामर्थ्यवान् (रथम् इव वेद्यम्) रथ के समान सन्मार्ग से ले जाने वाले उत्तम धन और ज्ञान से युक्त उसके प्राप्त करने योग्य, (शुक्रशोचिषम्) वीर्य की रक्षा ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी,

अति कान्तिमान् (क्षितिषु) भूमियों में सूर्य के समान भूमि निवासी प्रजाओं के बीच (मित्रम् न) मित्र के समान स्नेहवान् दयाशील (प्रशंस्यं) सबसे श्रेष्ठ, (अग्निम्) ज्ञानी, नायक को (रजसः मूले) सब लोकोंके आश्रय भूत परम पद पर (न्येरिरे) नियत करते हैं, उसको उत्तम पद प्रदान करते हैं। (२) परमेश्वर समस्त उत्तम कर्मों का कर्त्ता होने से 'सुदंसा' है। व्यापक ईश्वर और असंग होने से 'अरति' है। रसमय होने से 'रथ' है। तेज स्वरूप होने से 'शुक्रशोचिः' है। उसी के। (रजसः बुध्नः) राजस भाव के बांधने के निमित्त या समस्त लोकों के आश्रय में स्थित (नि एरिरे) निरन्तर कहा करते, उसी की स्तुति किया करते हैं।

तमुक्षमा॑णं रज॑सि॒ स्व आ दमे॑ चन्द्रमि॑व सु॒रुचं॑ ह्वार आ द॑धुः।
पृश्न्याः॑ पत॒रं चि॒तय॑न्तम॒क्षभिः॑ पा॒थो न पा॒युं जन॑सी उ॒भे अनु॑ ४

भा०—(तम् उक्षमाणं, सुरुचम् ह्वारे आदधुः) जिस प्रकार बड़े भारों को दूर तक ढो ले जाने में समर्थ, अतिकान्तिमान् अग्नि को 'ह्वार' अर्थात् गुप्त स्थान में रखते हैं और (पृश्न्याः पतरं अक्षभिः चितयन्तम् पायुं) पृथ्वी पर वेग से चलने वाले अग्नि या तप्त (गैस) आदि पदार्थ को (अक्षभिः) नाना धुरों से गति देने वाले, सुरक्षित अग्नि को विद्वान् लोग यन्त्र में स्थापित करते हैं उसी प्रकार (तम्) उस (उक्षमाणं) राष्ट्र के कार्यभार को उठाने में समर्थ और (उक्षमाणं) मेघ के समान समृद्धि की वर्षाओं से सबको सींचकर पुष्ट करने हारे पुरुष को (स्वे दमे) अपने गृह में आहवनीय, या गार्हपत्य या गृहपति के समान (रजसि) प्रजाजनों के हितार्थ या सबके रंजन करने वाले (स्वे दमे) अपने निजु शासन कार्य में (आदधुः) विद्वान् लोग स्थापित करते हैं। उसी प्रकार (सुरुचं) उत्तम कान्तिमान्, उत्तम रुचि वाले, सुस्वभाव, उत्तम प्रकृति के (चन्द्रम् इव) चन्द्र या सुवर्ण के समान सबके आल्हादक पुरुष को (ह्वारे) कुटिल कार्यों के दमन करने के लिये (आदधुः) स्थापित करें। (पाथः न पायुं)

जल पान का इच्छुक पुरुष जिस प्रकार जल को पान कर लेता है उसी प्रकार (पृश्न्याः पतरं) पृथ्वी को ऐश्वर्य युक्त करने वाले और (अक्षभिः) इन्द्रियों से ज्ञान करने वाले आत्मा के समान (चितयन्तम्) अध्यक्षों द्वारा प्रजाजन को ज्ञानवान्, सदा सावधान करने वाले (पाथः न पायुं) जलके समान ऐश्वर्य के भोक्ता, एवं जल के रक्षक बन्ध या सेतु के समान (पाथः पायुम्) राष्ट्रपालक बल को पालन करने वाले (तम्) उस नायक पुरुष को (उभे जनसी अनु) दोनों राजा और प्रजा वर्ग के जनों के अनुकूल अभिमत करके (आदधुः) विद्वान् लोग स्थापित करें ।

स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु॥५।२०

भा०—(होता अध्वरं परि) होता नाम ऋत्विक् जिस प्रकार यज्ञ को सब प्रकार से सम्पादन करता है (मनुषः गिरा हव्यै) और उसको अन्य सहायक जन वाणी और हव्य चरुओं से सुशोभित करते हैं उसी प्रकार (सः) वह परमेश्वर (विश्वं) समस्त विश्वरूप (अध्वरं) कभी नाश न होने वाले, अनादि काल से वर्त्तमान सनातन शाश्वत, यज्ञ को (परि भूत) सब प्रकार से सम्पादन कर रहा है । उसे चला रहा है । (मनुषः) मननशील मनुष्य, (तम् उ) उस ही परमेश्वर को (हव्यैः) ग्रहण करने योग्य उत्तम गुणों और ज्ञानों से तथा (गिरा) वेद वाणी या स्तुति द्वारा (ऋञ्जते) सुभूषित करते हैं । वह (हिरिशिप्रः) हरणशील, नाश करने या खा जाने वाले दाढ़ों से युक्त पुरुष के समान समस्त जगत् को प्रलयकाल में परमाणु २ करके ग्रस जाने वाला अथवा अति प्रकाशमान् स्वरूप वाला वह प्रभु (वृधमानासु) बढ़ती हुई नाना लोकों की प्रजाओं में (जर्भुरत्) सबका पालन पोषण करता है । (द्यौः न) आकाश या सूर्य जिस प्रकार (स्तृभिः रोदसी चितयत्)

नक्षत्रों से या विस्तृत प्रकाशोंसे आकाश और पृथिवी दोनों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर (द्यौः) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्य के समान होकर (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (अनु-चितयत् न) मानो चेतना से युक्त कर रहा है उनमें जानसी डाल देता है। उनको अपने वश में संचालित करता है। (२) इसी प्रकार उत्तम विद्वान् राजा शिल्पादि यज्ञको करे, विचारवान्, मननशील विद्वान् विद्योप-देश उत्तम साधनों और द्रव्यों से उसे सहायता करें। वह उत्तम साधनों वाला होकर वृद्धि शील प्रजाओं में (रोदसी) स्त्री पुरुषों को सूर्य के समान (स्तृभिः) विस्तृत उपायों से (जर्भुरत्) पुष्ट करे और (चितयत्) उनको ज्ञानवान् बनावे।

स नो॑ रे॒वत्स॑मिधा॒नः स्व॒स्तये॒ सन्द॒दस्वा॒न्रयिम॒स्मासु॑ दीदिहि। आ नः॑ कृणुष्व सुवि॒ताय॒ रोद॑सी॒ अग्ने॑ ह॒व्या मनु॑षो देव-वी॒तये॑ ॥ ६ ॥ to attain

भा०—(समिधानः) प्रदीप्त होता हुआ अग्नि विद्युत् जिस प्रकार (अस्मासु रयिम्) हममें बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! हे प्रभो ! (सम् इधानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ (रेवत्) बहुत ऐश्वर्य युक्त (रयिम्) धन सम्पदा को (नः) हमें हमारे कल्याण के लिये (संददस्वान्) प्रदान करता हुआ (अस्मासु) हमारे बीच (दीदिहि) प्रकाश कर। और (रोदसी) आकाश और पृथ्वी, माता पिता तथा राजा प्रजावर्गों को (नः) हमारे (सुविताय) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने और जन्म लाभ करने के लिये (आ कृणुष्व) हमारे अनुकूल बना। और हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशक ! हे (देव) सब सुखों के देने वाले ! तू (मनुषः) मनुष्यों को (हव्या नाना भक्ष्य और ग्राह्य पदार्थों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (आ कृणुष्व) समर्थ कर।

दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि । प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! विद्वन् ! प्रभो परमेश्वर एवं राजन् ! तू हमें (बृहतः) हमारी वृद्धि करने वाले बड़े २ अक्षय भोग्य पदार्थ बड़े २ पुरुष भी (दाः) प्रदान कर । तू हमें (सहस्रिणः दाः) सहस्रों, अनेक, सुखों के देने वाले पदार्थ और दानी पुरुष भी दे । (श्रुत्यै) श्रवण करने के लिये हे विद्वन् ! (नः) हमारे लिये (दुरः न) द्वारों के समान (वाजं अपा वृधि) ज्ञान के पट खोल दे । और (ब्रह्मणा) ऐश्वर्य, धन ज्ञान और महान् सामर्थ्य से (द्यावापृथिवी) राजा प्रजा, गुरु शिष्य, आकाश और भूमि इनको (प्राची) उत्तम प्रेम युक्त, ज्ञानवान्, पूजनीय और उत्तम प्रकाश से युक्त (कृणुष्व) कर । (शुक्रम् स्वः न) शुद्ध सूर्य का प्रकाश को जिस प्रकार (उषसः विदिद्युतः) प्रभात वेलाएं विशेष रूप से प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार (उषसः) कमनीय गुणों से युक्त प्रजाएं भी सूर्य के समान ही (विदिद्युतः) विशेष तेजस्वी बनें । अथवा (उषसः शुक्रं स्वः न) जिस प्रकार उषाएं तेजस्वी सूर्य को प्रकट करती हैं उसी प्रकार उत्तम प्रजाएं तुझ तेजस्वी को चमकावें ।

स ईधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (स्वः न) सूर्य (इधानः) स्वयं प्रकाशित होता हुआ (राम्याः अनु उषसः) रात्रियों के पीछे आने वाली उषा वेलाओं को (अरुषेण भानुना) अति उज्ज्वल प्रकाश से (दीदेत्) प्रकाशित करता है और (न) जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि (उषसः राम्याः अनु) दिन और रात अपने (अरुषेण भानुना) उज्वल, सुन्दर प्रकाश से (स्वः

दीदेत्) सब प्रकार सुखों को तथा ताप शक्ति को (दीदेत्) प्रकट करता या चमकाता है वह विद्वान् पुरुष (उषसः राम्या अनु) सब दिन और रात अपने (अरुषेण) क्रोध आदि कुटिल भाव से रहित (भानुना) ज्ञान के तेज से (स्वः) समस्त सुख तथा (स्वः) उत्तम उपदेश (दीदेत्) प्रकट करे। (२) इसी प्रकार (इधानः अग्निः) तेजस्वी राजा अपने उज्ज्वल तेज से दिन रात (स्वः) प्रजा के सुख को चमकाता रहे, बराबर बढ़ाता रहे। (स्वध्वरः) उत्तम पूजनीय प्रजा को पालन करने हारा, प्रजा की हिंसा न करने वाला (राजा) राजा (विशाम्) समस्त प्रजाओं में (अतिथिः) अतिथि के समान पूजनीय तथा सब को लांघकर सर्वोपरि बैठने वाला (आयवे चारुः) गमनागमन के लिये उत्तम चलने वाले रथ या रथादि चलाने वाले अग्नि के समान (आयवे चारुः) मनुष्य मात्र के लिये उत्तम, सञ्चालक (अग्निः) अग्रणी विद्यावान्, तेजस्वी पुरुष (होत्राभिः) कर आदि लेने के कार्य और उत्तम आज्ञा वाणियों से (मनुषः) मनुष्यों को उत्तम मार्ग पर ले चले।

एवा नो॑ अग्ने अमृते॑षु पूर्व्य धीष्पी॑पाय बृहद्दि॑वेषु मानु॑षा।
दुहा॑ना धेनुर्वृजने॑षु कारवे॒ त्मना॑ शतिनं॑ पुरुरूप॑मिषणि॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन्! तेजस्विन्! हे (पूर्व्य) पूर्व विद्वानों से विद्वान् हुए तू (नः) हमारे (अमृतेषु) तपाने वाले, दीर्घ जीवी (बृहद्-दिवेषु) बड़े भारी ज्ञान और प्रकाश से युक्त और (वृज-नेषु) बलशाली जीवों में तू (मनुषा) मनुष्योचित नाना सुखों और ऐश्वर्यों और (धीः) कर्मों और बुद्धियों की (पीपाय) वृद्धि कर। (त्मना) स्वयं आत्म सामर्थ्य से (दुहाना धेनुः) दूध देने वाली गाय के समान तू (कारवे) पुरुषार्थ करने वाले पुरुष के हित की (इषणि) उसकी इच्छा होने पर (शतिनं) सैकड़ों सुखों वाले (पुरुरूपम्) बहुत से रूपों के ऐश्वर्य की भी (पीपाय) वृद्धि कर। (२) परमेश्वर सबसे

पूर्व और पूर्ण होने से 'पूर्व्य' है। वह (अमृतेषु) अमृत, अविनाशी (बृहद्-दिवेषु) बड़ी कामना वाले जीवों में ज्ञान और कर्मों का उपदेश करता, पुरुषार्थी को उसकी वित्तेषणा, लोकेषणा आदि होने पर (त्मना) कर्त्ता के आत्म-सामर्थ्य के अनुसार नाना रूप ऐश्वर्य प्रदान करता है।

व॒यम॑ग्ने॒ अर्व॑ता वा सु॒वीर्यं॒ ब्रह्म॑णा वा चितयेमा॒ जना॒ँ अति॑ ।
अ॒स्माकं॑ द्यु॒म्नमधि॒ पञ्च॑ कृ॒ष्टिषू॒च्चा स्व१र्ण शु॑शुचीत दु॒ष्टर॑म् ॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक ! अग्रणी पुरुष ! नेतः ! (वयम्) हम (अर्वता) अश्वों और विद्वान् पुरुषों के बल से, (ब्रह्मणा) अन्न और धनैश्वर्य और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान से भी (जनान् अति) सब मनुष्यों को अतिक्रमण करके, बल, बुद्धि, ज्ञान, ऐश्वर्य में उनमें अधिक होकर अपने (सुवीर्यम्) अपने उत्तम बल, वीर्य, और ज्ञान का अन्यों को (चितयेम) ज्ञान करावें, उसका अन्यों के उपकार में प्रयोग करें, उनको बढ़ावें। (अस्माकं) हमारा (द्युम्नम्) तेज और बल तथा ऐश्वर्य, यश (कृष्टिषु) मनुष्यों के बीच (दुस्तरम्) अपार होकर (स्वः न) सूर्य के समान (शुशुचीत) प्रकाशित हो। और (पञ्च) पांचों जनों को (उच्चा स्वः न पञ्च कृष्टिषु अग्निः अस्माकं द्युम्नं दुस्तरं शुशुचीत) सूर्य के समान ऊपर स्थित होकर नायक हमारे पाचों प्रकार के प्रजाजनों के बीच अपार अन्न, यश, बल को प्रकाशित करे। (२) परमेश्वर विद्वान् और वेद द्वारा सबको चेतानावान् वा ज्ञानवान् करता। वह हमें अक्षय अन्न और तेज आदि देता है।

स नो॑ बोधि सहस्य प्र॒शंस्यो॒ यस्मि॑न्त्सु॒जा॒ता इ॒षय॑न्त सू॒रयः॑ ।
यम॑ग्ने य॒ज्ञमु॑प॒यन्ति॑ वा॒जिनो॒ नित्ये॑ तो॒के दी॑दि॒वांसं॒ स्वे दमे॑ ॥११॥

भा०—हे (सहस्य) बल शालिन् ! (अग्ने) विद्वन् ! हे राजन् ! तेजस्विन् ! (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् पुरुष (नित्ये) अविनाशी,

अक्षय, (तोके) अति स्वल्प सूक्ष्म (स्वे दमे) अपने गृह में दीपक के समान अपने दमन करने हारे, वा (दमे = मदे) अति हर्ष जनक, आनन्द मय स्वरूप में (दीदिवांसं) चमकने वाले जिसको (उप यन्ति) प्राप्त होते हैं और (यस्मिन्) जिसमें या जिसके अधीन रहकर (सुजाताः) शम, दम आदि उत्तम कर्मों में प्रसिद्ध, उत्तम (सूरयः) विद्वान् पुरुष (इषयन्त) नाना काम्य सुख प्राप्त करते हैं, वह तू हे (अग्नि) विद्वन् ! (नः) हमें उस यज्ञ का (बोधि) उपदेश कर । (२) अन्तरात्मा ही 'स्व दम' स्वयं आत्मा प्राणों का दमनकारी, वा मद 'हर्ष' आनन्द से युक्त है । दहरा का रशरूप होने से वही 'तोक' या 'दभ्र' या 'दहर' है। वह नित्य है उसमें 'यज्ञ' सर्वोपास्य प्रभु को विद्वान् ज्ञानी प्राप्त करते हैं 'अग्नि', ज्ञानी पुरुष हमें उस उपास्य परमेश्वर का उपदेश करे जिसमें उत्तम विद्वान् गण (इषयन्त) सदा कामनावान् रहते हैं, जिसको प्राप्त करने का वे सदा यत्न करते हैं ।

उभायासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि । वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे (जातवेदः) ज्ञान में प्रसिद्ध ! हम लोग (स्तोतारः) तेरी स्तुति करने वाले और (सूरयः च) अन्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले विद्वान् पुरुष (उभयासः) दोनों ही (ते शर्मणि) तेरे शरण, तेरे सुखमय गृह या आश्रम में (स्याम) रहें । और तू (पुरु-चन्द्रस्य) बहुत सुवर्णादि युक्त (प्रजावतः) उत्तम प्रजा से युक्त (सु-अपत्यस्य) उत्तम सन्तानों से युक्त (वस्वः) बसने योग्य गृह भूमि आदि ऐश्वर्य और (रायः) दान देने योग्य धन को (नः) हमें (शाधि) प्रदान करने में समर्थ हो । (२) परमेश्वर वेदों का और ज्ञानों का उद्भव होने से 'जात-वेदाः' है हम सब उसके (शर्मणि) शरण में

या सुखमय परमानन्द स्वरूप में लीन रहें। वह हमें (पुरुचन्द्रस्य) बहुतों को सुखी करने में समर्थ बहुत से उत्तम प्रजा सन्तान आदि वाले लोकों ऐश्वर्यों और धनों को देने वाला है।

ये स्तोतृभ्यो गोअ॑ग्रामश्व॑पेशसमग्ने रातिमु॑पसृजन्ति॑ सूरयः॑।
अस्माँश्च ताँश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्व॑देम विदथे॑ सुवीराः॥ १३॥ २१॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल २। सू० १। म० १६॥ इत्येकविंशो वर्गः॥

[३]

गृत्समद ऋषिः॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, १० त्रिष्टुप्। ७ जगती॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

समि॑द्धो अग्निर्निहि॑तः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वा॑नि भुव॑नान्यस्थात्।
होता॑ पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्य॑जत्वग्निरर्ह॑न्॥ १॥

भा०—(समिद्धः अग्निः) अति प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी, पुरुष (निहितः) स्थापित होकर (पृथिव्यां) पृथिवी पर (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ पर अपना वश करता हुआ साक्षात् (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोकों पर (अस्थात्) अध्यक्ष रूप में स्थित है। वह विद्वान् तेजस्वी पुरुष (होता) सबको अपने अधीन कर लेने और उनको इष्ट पदार्थ देने वाला, (पावकः) अग्नि और सूर्य के समान पापाचारों से पवित्र करने हारा, (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान, व्यवहार, तेज और रक्षा के साधनों से युक्त होकर (सुमेधाः) उत्तम प्रजावान्, उत्तम शत्रु हिंसाकारी, (देवः) प्रकाशक, विजयेच्छु होकर (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी नायक (अर्हन्) अन्यों का सत्कार करता हुआ (देवान्) अन्य उत्तम विद्वानों का (यजतु) सत्कार करे और उनको अपने साथ मिलावे। (२) परमेश्वर

'प्रत्यक्' सर्व व्यापक होकर सब भुवनों, पदार्थों पर अध्यक्ष है। परम पावन उत्तम ज्ञानमय प्रज्ञावान् दाता, प्रकाशक होकर सब (देवान्) सूर्यादि लोकों और विद्वानों और उत्तम गुणों को प्राप्त है।

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (धामानि अञ्जन्) सब स्थानों को प्रकाशित करता हुआ (स्वर्चिः) उत्तम ज्वाला वाला अग्नि (मन्हा) अपने महान् सामर्थ्य से (तिस्रः दिवः) तीनों प्रकार की, अग्नि, विद्युत्, सूर्य, या आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिण अग्नियों को प्रकट करता हुआ (घृत प्रुषा मनसा) घृत से युक्त मन्त्र या तेज से युक्त विज्ञान से (हव्यम् उन्दन्) हव्य चरु को युक्त कर (यज्ञस्य मूर्धनि देवान् सम् अनक्ति) यज्ञ के मूर्धा भाग कुण्ड में उत्तम प्रकाशमय किरणों को प्रकट करता है। और जिस प्रकार (नराशंसः) सबसे स्तुति किया गया सूर्य (तिस्रः दिवः धामानि मन्हा स्वर्चिः अंजन्) पृथिवी, अन्तरिक्ष, और आकाश तीनों लोकों को और सब स्थानों को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ और (घृतप्रुषा) उदक को वर्षाने वाले (मनसा) स्तम्भक मेघ से (हव्यम्) अन्न उत्पन्न करने वाले क्षेत्र को (उंदन्) सींचता हुआ (यज्ञस्य मूर्धन्) महान् जगत् के मूर्धास्थान आकाश में (देवान् सम् अनक्ति) दिव्य प्रभावों, किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार (नरा-शंसः) सब मनुष्यों से स्तुति करने योग्य आत्मा और परमात्मा और विद्वान् पुरुष (धामानि) अपने धारण सामर्थ्यों और तेजों को और (तिस्रो दिवः) तीनों प्रकार के तेजों एषणाओं और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि व्यवस्थाओं को (मन्हा) अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ, (स्वर्चिः) उत्तम दीप्तिमान्, (घृतप्रुषा मनसा) दीप्तियुक्त ज्ञान और मननकारी अन्तः करण से (हव्यम् उन्दन्) ज्ञान के योग्य आत्म

भूमि को आर्द्र करता हुआ, उसपर स्नेह धाराएं बरसाता हुआ (यज्ञस्य मूर्धनि) जगत् के प्रजा पालक सर्वोच्च स्थान में स्थित होकर (देवान् सम् अनन्तु) दिव्य पदार्थों, प्राणों, ज्ञानों, गुणों, किरणों और विद्वानों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करे ।

**ई॒ळि॒तो अ॑ग्ने॒ मन॑सा नो॒ अर्ह॑न्दे॒वान्य॑क्षि॒ मानु॑षा॒त्पूर्वो॑ अ॒द्य ।
स आ व॑ह म॒रुतां॒ शर्धो॒ अच्यु॑त॒मिन्द्रं॑ नरो ब॒र्हि॒षदं॑ यजध्वम् ॥३॥**

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, तेजस्विन् ! तू (मानुषात्पूर्वः) स्वयंभू मनुष्यों से पूर्व, सब से अधिक पूजनीय, सब से अधिक पूर्ण, सब का पालन करने हारा, (ईळितः) सब से वन्दना करने योग्य है । तू (मनसा) मन से और ज्ञान से (अद्य) आज के समान सदा ही (देवान्) सब देवों, विद्वानों को (यक्षि) सत्कार योग्य पदार्थ देता है और इसीलिए (अर्हन्) तू अन्यों का सत्कार करनेहारा है । (सः) वह तू (मरुतां) सब मनुष्यों वीर पुरुषों और वेगवान् वायु के समान पदार्थों के (शर्धः) बल को और (अच्युतम्) कभी परास्त न होनेवाले, दृढ़, समस्त प्रजा पर और उत्तम राज्यासन पर बैठने वाले, अध्यक्ष (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति और जल या रस में स्थित विद्युत् को (आ वह) धारण कर । हे (नरः) विद्वान् नायक पुरुषो! आप लोग उस उत्तमासन पर विराजे ऐश्वर्यवान् पुरुष की (यजध्वम्) उपासना और आदर सत्कार करो । (२) परमेश्वर सर्व स्तुति योग्य, विज्ञान से हमें योग्य बनावे । वह हमें सब सुख दे । वह (देवान्) सूर्यादि लोकों को भी शक्ति देता है । वह वायुओं के बल और सूर्य विद्युत् आदि को भी धारण करता है । उस महान् विश्व में व्यापक ऐश्वर्यवान् की उपासना करो ।

**दे॒वं ब॒र्हिर्वर्ध॑मानं सु॒वीरं॑ स्ती॒र्णं रा॒ये सु॒भरं॒ वेद्य॑स्याम् ।
घृ॒तेना॒क्तं व॑सवः सीदते॒दं विश्वे॑ देवा आदित्या य॒ज्ञिया॑सः ॥४॥**

भा०—हे (देव) कर आदि देने वाले, और अपने नाम को हृदय से चाहने और कमनीयगुणों से युक्त (बर्हिः) वृद्धिशील, स्वामी को बढ़ाने हारे प्रजाजन ! तू (वर्धमानम्) बढ़ता हुआ (सुवीरम्) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर (स्तीर्णं) खूब विस्तृत (अस्यां वेद्याम्) इन सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली पृथ्वी में (सुभरं) उत्तम रीति से सब का भरण पोषण करता हुआ (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए यत्नवान् हो। यज्ञ में बिछे हुए और जल से प्रोक्षित कुशासन पर जिस प्रकार वेदी में विद्वान् जन विराजते हैं उसी प्रकार हे (वसवः) राष्ट्रनिवासिजनो ! हे (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् पुरुषो और हे (आदित्याः) हे तेजस्वी राजा गणों और ज्ञान धनैश्वर्यादिके दान प्रति दान करने हारो ! 'अदिति' भूमि के शासक, और अखण्ड ब्रह्म के पालक और उपासको ! और हे (यज्ञियासः) यज्ञ करने और यज्ञ प्रजापति राजा और परमेश्वर की सेवा करने हारो ! आप सब लोग (घृतेन अक्तं बर्हिः) जल से सिंचे इस राष्ट्र में (सदत) विराजो, तेज और अन्नादि पुष्टिकारक पदार्थों से सम्पन्न प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजो।

वि श्र॑यन्तामुर्वि॒या हू॒यमा॑ना॒ द्वारो॑ दे॒वीः सु॑प्राय॒णा नमो॑भिः।
व्यच॑स्वती॒र्वि प्र॑थन्तामजु॒र्या वर्णं॑ पुना॒ना य॒शसं॑ सु॒वीर॑म् ५।२२

भा०—(द्वारः उर्विया सुप्रायणाः) जिस प्रकार बड़े बड़े द्वार सुख से आने जाने योग्य हों उसी प्रकार विद्वान् पुरुषो ! आप लोग द्वारों के समान ही (सुप्रायणाः) सुख से उत्तम गृहस्थ कार्य में प्रगति करने वाली, (उर्विया हूयमाना) पृथ्वी के साथ स्पर्श में आने वाली अर्थात् भूमि के समान उदार एवं सन्तति उत्पन्न करने में समर्थ, घर गृहस्थ का आश्रय, (देवीः) उत्तम कमनीय, हृदय से अपने पुरुषों को चाहने वाली स्त्रियों को (नमोभिः) अन्न आदि सत्कारों, और नियमों आदि गुणों सहित (विश्रयन्ताम्) विशेष रूप से प्राप्त करो। उनका सेवन करो।

(व्यचस्वतीः) विविध पदार्थों सुखों को प्राप्त करने कराने वाली और विविध प्रकार से पूजा सत्कार योग्य हे (अजुर्याः) ज्वरादि रोगों से रहित रहती हुई (वर्णं) अपने वर्ण, कुल, वृत पति और अपने स्वरूप को, (यशसं) कीर्ति और अन्न और (सुवीरम्) अपने उत्तम पुत्र से युक्त गृह को (पुनाना) पवित्र करती हुईं और भी उत्तम बनाती हुईं उत्तम स्त्रियों को (विप्रथन्ताम्) विशेष ख्याति लाभ करावो और आदर दो। (२) इसी प्रकार प्रजाजन और सेनायें भी (द्वारः) शत्रुओं को वरण करने में समर्थ हों। (सुप्रायणाः) उत्तम प्रयाण करने उत्तम 'अयन' अर्थात् पदों से युक्त हों । वे (नमोभिः) शस्त्रों द्वारा (उर्विया विश्रयन्तां) पृथ्वी पर विशेष शोभा पावें। वे (व्यचस्वतीः) विविध राष्ट्रों पर अधिकार करती हुईं शत्रु से नाश न की जाकर (वर्णं यशसं सुवीरं) अपने क्षात्र पेशे को, यश को और उत्तम वीर सेनापति और वीरों से युक्त सैन्य को पवित्र करती हुई और उत्तम बनाती हुई (वि श्रयन्ताम्) यशस्विनी हों। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन और रात्रिकाल जिस प्रकार (साधु-अपांसि) उत्तम कर्मों को करवाती हैं। (उक्षिते) जलादि से सींचती रहती हैं। (रण्विते) नाना शब्दों से गुंजित रहती हैं। दोनों ही (यज्ञस्य पेशः संवयन्ती) यज्ञ का स्वरूप बनाती हुई पट बुनने वाली (वय्या इव) बरणी के समान चलती है उसी प्रकार घर में स्त्री और पुरुष, पति पत्नी दोनों (उषासानक्ता) उषा काल के समान कान्ति युक्त, एक दूसरे के लिये कमनीय गुण और कामना योग्य कर्मोंवाले और नक्त अर्थात् रात्रिकाल के समान एक दूसरों को सुख-निद्रा, रति आदि देनेवाले हों। वे दोनों (नः) हमें (सं-नता) अच्छे विनय युक्त उत्तम (अपांसि) कर्मों को

(साधु) भली प्रकार से करावें और स्वयं भी करें । वे दोनों (उक्षिते) सुखों के वर्षाने वाले एक दूसरे के प्रेम से सिक्त, हृष्टपुष्ट, निषेक करने और धारने में समर्थ हों। वे दोनों (रण्विते) रमणीय मनोहर शब्दों को बोलते हुए (यज्ञस्य) एक दूसरे के प्रति आत्मदान एवं सुसंगति जनक गृहस्थ यज्ञ के (पेशः) स्वरूप को और (ततं तन्तुं) विस्तृत प्रजातंतु को भी (वय्या इव) बुनने के यन्त्र बरणियों के समान (समीची) परस्पर मिलकर (संवयन्ती) बुनती हुईं, उत्पन्न करती हुईं, (सुदुघे) परस्पर की कामना और इच्छाओं को भली प्रकार से पूर्ण करती हुईं (पयस्वती) पुष्टि कारक अन्न और दुग्धादि से भरपूर होकर रहें ।

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा । देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥

भा०—(दैव्या) विद्वानों, देव तुल्य पूज्य पुरुषों के प्रति उत्तम सत्कार करने और परस्पर की कामना करने में कुशल, (होता) एक दूसरे को इच्छा पूर्वक स्वीकार करने वाले (प्रथमा) उत्तम कोटि के (विदुस्तरा) अति विद्वान् (वयुन्तरा) सुन्दर शरीर वाले, रूप लावण्य युक्त (ऋचा) एक दूसरे का सत्कार करने वाले, होकर (ऋजु) सरल निष्पक्ष होकर (सं यक्षतः) एक दूसरों को समर्पण करें और परस्पर संगत होंवे । वे दोनों स्त्री पुरुष (ऋतुथा) ऋतु २, प्रत्येक उपयुक्त अवसर में, समय समय पर (देवान् यजन्तौ) विद्वानों का सत्संग करते हुए (पृथिव्या नाभौ) पृथिवी के बीच (त्रिषु सानुषु) तीनों सेवने योग्य धर्म, अर्थ, और काम तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के निमित्त (ऋतुथा) प्रति ऋतु के अवसर में (सम्-अञ्जतः) परस्पर एक दूसरे की चाहना करें और संग करें ।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती देवी (नः धियं) हमारी बुद्धि और कर्म को (साधयन्ती) सत्कर्म में प्रवृत्त कराती हुई और (इळा देवी) अभिलषित सुख देने वाली इडा देवी (विश्वतूर्त्तिः भारती) समस्तों को अति शीघ्र लेजाने या कार्य करने वाली और स्वयं शीघ्र कार्य करने वाली 'भारती' (तिस्रः देवीः) ये तीनों देवियें (स्वधया) स्वधा अर्थात् अन्न के द्वारा (शरणं निषद्य) आश्रय को प्राप्त करके (अच्छिद्रं) त्रुटिरहित, सावधानता से (इदं बर्हिः) इस वृद्धिशील गृहस्थ को (आ पान्तु) अच्छी प्रकार पालन करें । 'सरस्वती'—उत्तम ज्ञान वाली विदुषी, 'इळा' अन्न दात्री, भूमि के समान सब सुखों को उत्पन्न करने वाली, 'भारती' मनुष्यों को सुख और आश्रय देनेवाली अर्धांगिनी, स्त्री ही के तीनों गुण हैं विदुषी, अन्न साधिका और गृहस्थ सुख देनेवाली इन तीनों गुणों में स्थित तीनों गुणों से युक्त की स्त्रियाँ गृहस्थ बसा कर घर का पालन करें । राष्ट्र पक्ष में विद्वत्सभा, भूमि या अन्न की उपज आदि की प्रबन्ध कर्त्री 'सभा और समाज की सुव्यवस्था करने वाली सभा क्रम से सरस्वती (Legislative) इळा (Revnue) भारती (Municipality) वे तीनों ही राष्ट्र में अपना स्थान पाकर दोष रहित कार्य सम्पादन करें और प्रजा की रक्षा करें ।

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९॥

भा०—(पिशंगरूपः) सुवर्ण के समान उज्ज्वल, गौर वर्ण का, (सुभरः) अच्छी प्रकार भरण पोषण करने में समर्थ, (वयोधाः) वीर्य, बल और अन्न को धारण करने वाला, वा उत्तम प्रजनन या संता-

नोत्पादन के सामर्थ्य को धारने वाला, (देवकामः) विद्वानों और उत्तम गुणों की कामना करनेहारा (वीरः) वीर्यवान्, विद्यावान्, पूर्णयुवा पुरुष और स्त्री (श्रुष्टी) अति शीघ्र ही (जायते) उत्तम सन्तान रूप से उत्पन्न हो। अथवा—उक्त गुण विशिष्ट (वीरः) वीर पुत्र उत्पन्न हो। (त्वष्टा) जगत् कर्त्ता परमेश्वर (अस्मे) हमें (नाभिम्) कुल सन्तति को बांधने वाली (प्रजाम्) उत्तम सन्तान (वि ष्यतु) प्रदान करे। (अथ) और वह सन्तति (देवानाम्) देवों, इन्द्रियों, अग्नि जल वायु आदि जीवनोपयोगी, कामना करने योग्य अपने माता पिता आदि विद्वानों के लिये (पाथः) रक्षा करने वाले साधन अन्न आदि ऐश्वर्य को (अप्येतु) प्राप्त करे।

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम्॥१०॥

भा०—(वनस्पतिः) जलों का पालक मेघ जिस प्रकार (अवसृजन् उपस्थात्) वृष्टि रूप में जल धाराएं छोड़ता हुआ उपस्थित होता है और (वनस्पतिः) जिस प्रकार रश्मियों का पालक सूर्य (अव सृजन् उपस्थात्) रश्मियों द्वारा प्रकाश दान देता हुआ उपस्थित होता है और जिस प्रकार (वनस्पतिः) 'वन' अर्थात् सैन्यदल का पति (अव सृजन् उपस्थात्) शरवर्षण करता हुआ उपस्थित है और जिस प्रकार (वनस्पतिः) वट आदि महा वृक्ष (अवसृजन्) अपने फलों को दूसरों के उपकारार्थ प्रदान करता हुआ (उप स्थात्) खड़ा रहता है उसी प्रकार गृहस्थ पुरुष (वनस्पतिः) नाना भोग और संविभाग करने योग्य दाय धन का स्वामी (अवसृजन्) अगले पुत्र, पौत्रादि तथा पात्र, ब्राह्मण, अतिथि आदि को अपना अन्न धन आदि (अवसृजन्) त्याग करता हुआ (उप स्थात्) सदा उपस्थित है। और (अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (धीभिः क्रियाओं से (हविः सूदयति) अन्न को अच्छी प्रकार पका देता और

दूसरों के खाने योग्य बना देता है, सिजा देता है, उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (धीभिः) ज्ञानों उत्तम कर्मों के द्वारा (हविः) ग्रहण करने योग्य अन्न और गूढ़ ज्ञानों को भी (प्र सूदयति) अच्छी प्रकार अन्यों को प्रदान करे। (सः) वह (प्रजानन्) अच्छी प्रकार स्वयं ज्ञानवान् होकर उस ज्ञान आदि पदार्थ को (त्रिधा) तीनों प्रकार से अर्थात् वाणी द्वारा, क्रिया द्वारा और उपयोग व व्यवहार द्वारा (सम् अनक्तु) अच्छी प्रकार प्रकाशित करे। और (दैव्यः) विद्वानों का हितैषी (शमिता) दोषों को शान्त करनेहारा योग्य पाचक पुरुष (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (हव्यं) भोग्य अन्नादि पदार्थ को (उप-नयतु) प्राप्त करावे। अथवा—(शमिता) यज्ञों द्वारा दैवी विघ्नों और उपद्रवों को शान्त करने में कुशल पुरुष (देवेभ्यः) अग्नि जल वायु आदि पदार्थों का (हव्यं) आवश्यक पदार्थ आहुतिद्वारा प्राप्त करावे।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥२३

भा०—जिस प्रकार (घृतं मिमिक्षे) अग्नि में घृत का सेचन किया जाता है (अस्य योनिः घृतम्) बढ़ने का आधार घृत है। (घृते श्रितः) घृत अर्थात् स्निग्ध पदार्थ पर ही वह आश्रित है। (घृतं उ अस्य धाम) स्निग्ध पदार्थ से उत्पन्न तेज ही अग्नि का तेज है। वह (अनुस्वधं माद-यति) अन्न के साथ घी को प्राप्त कर तृप्ति करता घृत के साथ ही स्वाहा किये चरु को जलादि पदार्थों तक पहुँचा देता है उसी प्रकार यह प्रजा-पति, मेघ (घृतं) जल को (मिमिक्षे) भूमि पर सेचन करता है। और (अस्य) इस मेघ का (योनिः) उद्भवस्थान भी (घृतम्) जल ही है। वह मेघ भी (घृते श्रितः) जल के रूप में ही स्थित है। (अस्य धाम) उसकी स्थिति, उत्पत्ति, लय तीनों (घृतम् उ) जल ही है। हे मेघ! तू

(अनु-स्वधम्) अन्न को उत्पन्न करने के लिये (घृतम् आवह) जल को ही प्राप्त करा और (मादयस्व) समस्त प्रजावर्ग को हर्षित कर और (स्वाहा कृतम्) उत्तमरूप से प्रदान किये इस प्रकार के (हव्यम्) अन्न को जल के रूप में तू हे (वृषभ) वर्षणशील मेघ ! तू सर्वत्र (वक्षि) प्राप्त कराता है। तू धन्य है। इसी प्रकार हे (वृषभ) वीर्य सेचन में और गृहस्थ धारण करने में बलवान् युवक पुरुष ! तू (घृतं) सेचन करने योग्य वीर्य का (मिमिक्षे) सेचन कर। (अस्य) इस पुरुष का (योनिः) मूल उत्पादक कारण (घृतम्) वीर्य ही है। यह पुरुष (घृते श्रितः) उस निषेक योग्य वीर्य ही के आश्रय में स्थित है। इस पुरुष शरीर का (धाम) धारण करने वाला तेज, ओज या जन्म, स्थिति और स्वरूप तीनों 'घृत' अर्थात् यह वीर्य ही है। तू उस ओज, वीर्य को (अनुस्वधम्) उत्तम अनुकूल अन्न खाकर, अन्न के अनुरूप ही (आवह) धारण कर और (मादयस्व) अन्य संगिनी को भी तृप्त, सुप्रसन्न कर। हे (वृषभ) वीर्य सेचन में समर्थ तू उस (हव्यम्) धारण करने योग्य वीर्य को (स्वाहाकृतं) उत्तम रीति से प्रदान करने की विधि से यथाविधि (वक्षि) धारण करा। इति त्रयोविंशोवर्गः ॥

[४]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ स्वराट् पङ्क्तिः । २, ३, ५, ६, ७ आर्षी पंक्तिः । ४ ब्राह्म्युष्णिक् । ९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (आदेवे) अल्प व्यवहारज्ञ, स्वल्पविद्या प्रकाश से युक्त (जने) मनुष्यों के हितार्थ (मित्रः इव) सूर्य के समान या स्नेही सखा के समान सहायक, (जातवेदाः) सब उत्पन्न पदार्थों का

जानने वाला और (दिधिषाय्यः) उनके अपने आश्रय धारण करनेवाला (देवः) विद्या और ऐश्वर्य का देनेवाला (भूत्) होता है। (वः) आप लोगों के बीच (सुद्योत्मानं) उत्तम रीति से प्रकाशित होने वाले (सुवृक्तम्) पापों और दुराचारों को अच्छी प्रकार से वर्जने और छुड़ाने हारे, (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, सब से उच्च अध्यक्ष पद पर स्थित, (सुप्रयसम्) अच्छी प्रकार सब को प्रसन्न करने वाले, उत्तम अन्नादि सामग्री और विद्या और प्रेमादि सद्गुणों से युक्त (विशाम्) प्रजाओं के बीच में (अग्निम्) अग्रणी, नायक, प्रमुख, आचार्य को (वः) आपके हित के लिये (हुवे) प्रशंसा करता हूँ। (२) अग्नि, विद्युत्, उत्तम प्रकाशवान् होने से 'सुद्योत्मा' है। रोगहारी और तमोनाशक होने से 'सुवृक्ति', (आ देवे जने जातवेदाः) अति विद्वान् पुरुषों के बीच नाना प्रयोगों में आकर बहुत ऐश्वर्य के उत्पादक मित्र के समान सबका पालक पोषक हो जाता है। (३) परमेश्वर प्रकाशस्वरूप, पापहारी, पूज्य, आनन्दमय, मित्र, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सब को धारण करने वाला है।

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्विता दधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निरर्तिर्जीराश्वः ॥ २ ॥

भा०—(भृगवः) विद्युत् या अग्नि विद्या के विद्वान् लोग जिस प्रकार (इमं) इस अग्नि को (विधन्तः) विशेष उपाय करते हुए (अपां सधस्थे) जलों के स्थान और (आयोः) वेगवान् पदार्थ (द्विता) इन दोनों स्थानों से ही (विक्षु) प्रजाओं के हितार्थ (अदधुः) प्राप्त करते हैं (एषः) यह अग्नि, विद्युत् (भूमा) बहुत से पदार्थों में व्यापक होकर (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (विश्वानि) प्रायः सभी कार्यों में (अभि अस्तु) प्रयुक्त हो। वह (अग्निः) प्रकाशमान् (अरतिः) कार्यों में शक्ति स्वरूप, गति-उत्पादक, (जीराश्वः) वेगवान् व्यापक

गुणों वाला है। (२) उसी प्रकार (भृगवः) तपस्वी लोग (विक्षु) प्रजाओं के बीच (आयोः) मनुष्य के लिये (इमं) इस विद्वान् की (विधन्तः) परिचर्या करते हुए इसको (अपां सधस्थे) प्रजाओं के समीप (द्विता अदधुः) दोनों रूप धारण करें। एक विद्यादाता का दूसरा आचार शिक्षक का। वह (भूमा) बहुत सामर्थ्यवान् (विश्वानि अभि अस्तु) सब प्रकार की विपत्तियों और शत्रुओं को वारण करने में समर्थ हो। वह (देवानाम्) विद्वानों के बीच (अरतिः) ऐश्वर्यवान्, या निःसंग (जीराश्वः) वेगवान् अश्वों से युक्त हो। (३) (भृगवः) तपस्वी लोगों ने इस आत्मा की सेवा करते हुए इसे व्यक्त और अव्यक्त, जीव और ईश्वर दोनों रूपों में जाना। एक जीव (अपां सधस्थे आयोः) आवागमन करने वाले मनुष्य के प्राणों, लिंग शरीरों के सदा साथ रहता है, वही (भूमा) भूमा है। वह (विश्वानि अभि अस्तु) सब इन्द्रियों में व्यापक है। वह (देवानान् अरतिः) इन्द्रियों का स्वामी, (जीराश्वः) वेगवान् मन का भी स्वामी है। (४) दूसरा रूप आत्मा का परमेश्वर है। वह भी (अपां सधस्थे) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं में व्यापक, (विक्षु आयोः सधस्थे) प्रजाओं, जीवों के भीतर 'भूमा' है, वह सर्व पदार्थों में व्यापक, सब जलादि देवों का स्वामी, वेगवान् सूर्यादि में भी व्यापक है।

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम्।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३॥

भा०—(क्षेष्यन्तः) सुख से निवास करने की इच्छा करते हुए (देवासः) विद्वान् लोग (मानुषीषु विक्षु) मननशील प्रजाओं में (अग्निं) अग्रणी नायक और ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को (मित्रं न प्रियम्) प्राण और मित्र के समान अतिप्रिय बनाकर (धुः) रखें। (यः) जो (दास्वते) दानशील पुरुष के (दमे)गृह में (दक्षाय्यः) बलवान्,

विपत्तियों का नाशकारी, विरोधियों को भस्म करने वाला, सब समृद्धियों का बढ़ाने हारा है। (सः) वह (ऊर्म्याः) रात्रियों को दीपक के समान (उशतीः) कामना वाली, प्रजाओं को भी (दीदयत्) प्रकाशित करता है। (२) परमेश्वर को मित्र के समान प्रिय जानकर उसकी उपासना करते हैं। वह शक्तिमान् सत्रियों को चन्द्र, सूर्य या अग्नि के समान (दास्वते) अपने आत्मसमर्पक के (दमे) हृदय में सब (उशतीः) शुभ कामनाओं को प्रकाशित कर देता है।

अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः। वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥

भा०— अग्नि जिस प्रकार (ओषधीषु) ओषधि वनस्पतियों में अपनी (जिह्वाम्) ज्वाला को (भरिभ्रद्) पुष्ट करता है, काष्ठादि प्राप्त कर अधिक बढ़ता है और बालों को घोड़े के समान (वारान् दोधवीति) आवरण करने वाले किरणों या ज्वालाओं को कंपाता है उसी प्रकार (यः) जो नायक (ओषधीषु) पर सैन्य को भस्म करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले सैन्यों और प्रजाओं के बीच (जिह्वाम्) वाणी को (वि भरिभ्रत्) विविध प्रकार से धारण करता है, विविध आज्ञाएं धारण करता है और घेरने वाले शत्रुओं को कंपाता है। और जो विद्वान् (ओषधीषु) तेज को धारने वाली प्रजाओं और विद्वानों और ब्रह्मचारिगण के बीच उनमें (जिह्वाम्) वाणी विविध रूपोंमें या विशेष रूप से (भरिभ्रत्) धारण कराता है उनके बीच वेद पाठ आदि करता, वेद वाणी की शिक्षा देता और (वारान् दोधवीति) आवरणकारी दोषों को दूर करता या घेरने वाले प्रिय शिष्यों को (दोधवीति) स्वच्छ, शुद्ध, पवित्र बनाता है। और (रथ्यः अश्वः न) जिस प्रकार रथ में लगने योग्य, हृष्ट पुष्ट, सुशिक्षित अश्व (वारान् दोधवीति) पूंछ और गर्दन के बालों को कंपाता है और (ओष-

धीषु जिह्वाम् विभरिभ्रत्) ओषधि, घास आदि पर विशेष रूप से जीभ चलाता है और उसे तृप्त करता है, उसी प्रकार जो पुरुष (ओषधीषु) अन्नादि ओषधियों पर ही (जिह्वाम् वि भरिभ्रत्) अपनी रसना को तृप्त कर लेता है, हिंसा पूर्वक मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों पर मन नहीं चलाता और (वारान्) सत्त्व को आवरण करनेवाले राजस और तामस आवरणों को (दोधवीति) कंपा कर धूल के समान झाड़ देता है उसी प्रकार (अस्य पुष्टिः) इस अग्रणी, नायक एवं विद्वान् पुरुष का पोषण करना और पुष्ट होना भी (स्वस्य पुष्टिः इव) अपने देह के पोषण के समान (रण्वा) सबको अति रमणीय, सुन्दर, एवं प्रिय, सुखप्रद होनी चाहिये । और जिस प्रकार (दक्षोः) जलते हुए और (हियानस्य) बढ़ते हुए अग्नि में (संदृष्टिः) अपने प्रकाश से अच्छी प्रकार मार्ग आदि दिखाने का विशेष गुण सबको प्रिय होता है इसी प्रकार (दक्षोः) अपने विरोधी जनों को भस्म करने वाले, अति तेजस्वी (हियानस्य) बल और ऐश्वर्य में निरन्तर बढ़ते हुए, (अस्य) उस नायक पुरुष की (सम्-दृष्टिः) सम्यक् दृष्टि अर्थात् तत्त्व दर्शन करने वाली बुद्धि ही सबको (रण्वा) प्रिय लगती है । ऐश्वर्य सम्पन्न और शत्रुनाशक राजा प्रतापी होकर भी यदि मूर्ख और अविवेकी हों तो वह अपनी शक्ति और ऐश्वर्य से प्रजा का पीड़न करता है और सबको प्रिय नहीं लगता ।

आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत्॥४॥

भा०—(वनदः) जिस प्रकार जलों के देने वाले मेघ भी (मे) मुझ विद्युत् रूप अग्नि के (यत्) जिस (अभ्वं) जलमय या महान् स्वरूप को (आ पनन्तः) बतलाते हैं (उशिग्भ्यः) अग्नि की इच्छा करने वालों के लिये मेरा वह (वर्णं) स्वरूप (न अमिमीत) कभी भी प्रतीत नहीं होता । (यः) जो (जुजुर्वान्) जीर्ण होकर भी (मुहुः) वार २

(युवा अभूत्) युवा व पुनः पुनः बलशाली हो जाता है । (सः) वह अग्नि अपने (रंसु) रमणीय स्वरूप को (चित्रेण) अद्भुत (भासा) दीप्ति से (चिकिते) प्रकट करता है । उसी प्रकार यह जीव भी है । (यः) जो (जुजुर्वान्) एक शरीर में वृद्ध होकर भी (मुहुः युवा अभूत्) वार २ युवा हो जाया करता है (मे) जिस 'अहं' पदवाच्य आत्मा के (अभ्वं) अव्यक्त महान् रूप को (वनदः) ज्ञानप्रद गुरु या (वनदः) स्तोता लोग (उशिग्भ्यः) ज्ञान के जिज्ञासुओं को (आ पनन्तः) बराबर बतलाते हैं पर तो भी (वर्ण न अमिमीत) उसका स्वरूप नहीं प्रतीत होता । वह आत्मा (रंसु) अपने अति मनोहर स्वरूप को (चित्रेण) आश्चर्य जनक या चित् स्वरूप में रमण करने वाले (भासा) तेज से (चिकिते) जनाता है । (३) इसी प्रकार नायक की बड़ाई को कविजन श्रोतृ जनों को वर्णन करते हैं तो भी उसका गूढ़रूप नहीं पता चलता । वह अनुभवी वृद्ध होकर भी कार्य करने में सदा युवा रहता है, वह अद्भुत तेज से अपने रम्य रूप प्रजामनोहारी रूप को प्रकट करता है, वही नायक होने योग्य है । अथवा—सूर्य के समान (रंसु) रमणीय चमकीले तेजस्वी पदार्थों या कार्यों में वह अपने रूप को प्रकट करता है । चतुर्विंशो वर्गः ॥

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥

भा०—(तातृषाणः वना न) जिस प्रकार पियासा जीव जलों को चाहता है उसी प्रकार (यः) जो अग्नि अति बुभुक्षितसा होकर (वना) वनों को (भाति) चमकाता, उनको खाजाना चाहता है, उनको प्रज्वलित कर देता है । (वाः न) जिस प्रकार मार्ग से जाता हुआ जल-प्रवाह घरघराता हुआ आगे बढ़ता है और (रथ्यः इव) जिस प्रकार रथ में जुता हुआ अश्व (पथा) मार्ग से जाता हुआ (स्वानीत्) ध्वनि करता, हिनहिनाता या पैरों की पटपट ध्वनि करता है उसी प्रकार (अग्नि) भी आगे बढ़ता

चला जाता है। (स्वानीत्) चटचट ध्वनि किया करता है। (नमोभिः द्यौ इवः) चमकते अन्धकारों या आकाश प्रदेशों या मेघ खण्डों सहित सूर्य जिस प्रकार मानों (स्मयमानः) मुस्कराया करता है उसी प्रकार यह अग्नि भी (नमोभिः) नील आकाश प्रदेशों से या जलों से (स्मयमानः) विशेष स्फुलिंगों द्वारा मुस्कराता सा है। वह (कृष्णाध्वा) काले रंग के धूआं रूप मार्ग से जानेवाला, (तपुः) सब को तपाने वाला, (रण्वः) रमणीय रूपवान् होता है उसी प्रकार वह नायक भी (वना) संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों के प्रति (ततृषाणः) पियासे के समान सदा अर्थ लिप्सु होकर ही (भाति) प्रकाशित हो। (वाः न) वह जल प्रवाह के समान अदम्य वेग से प्रयाण करे। वह (रथ्यः इव स्वानीत्) रथ में लगे अश्व के समान शब्द करे, उसके समान रम्य लक्ष्मी को देखकर स्वयं (रथ्यः) रथसेना का स्वामी होकर हर्ष सूचक शब्द करता हुआ (पथा) मार्ग से जावे। सूर्य के समान या नक्षत्रों से मण्डित आकाश के समान अपने (नभोभिः) बन्धुजनों से मुस्कराता, सुप्रसन्न होता रहे। वह (कृष्णाध्वा) चित्ताकर्षक, या शत्रु को काट गिरा देनेवाले मार्ग पर चलता हुआ और (तपुः) शत्रुजनों के संताप जनक और स्वयं भी तपस्वी होकर भी (रण्वः) अतिरम्यरूप में (चिकेत) जाना जावे। अग्नि जिस पदार्थ पर से गुजर जाता है वह कोयल होकर या धूआं लगकर काला हो जाता है। और राजा नायक चित्ताकर्षक या शत्रु-निकृन्तन के मार्ग से जाने से 'कृष्णाध्वा' है। वह दुष्टों का संताप दायी होकर भी रमणीय रहे। अर्थात् जैसे रघुवंश में लिखा है—

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥ रघुवंशे॥

रघु भयानक और सुन्दर गुणों से असह्य और जल जन्तुओं और रत्नों से समुद्र के समान शरणीय हो गया था।

स यो व्यस्थाद॒भि दक्ष॑दु॒र्वीं प॒शुर्नैति॑ स्व॒युरगो॑पाः ।
अ॒ग्निः शो॒चिष्माँ॑ अत॒सान्यु॒ष्णन्कृ॒ष्णव्य॑थिरस्वदय॒न्न भूम॑॥७॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (वि अस्थात्) विविध दिशाओं में लग जाता है, (उर्वी अभि दक्षत्) पृथिवी पर के पदार्थों को जलाता है और (स्वयुः) स्वच्छन्दचारी (अगोपाः) बिना गवाले के (पशुः न) पशु के समान (वि, अभि एति) विविध दिशाओं में जा पहुँचता है। वह (शोचिष्मान्) ज्वालाओं से युक्त हो (अतसानि) सूखे काष्ठों, नाना झाड़ीदार वृक्षों को (उष्णन्) जलाता हुआ (भूम) अपने बड़े सामर्थ्य से (कृष्णव्यथिः) सब व्यथाकारी कण्टकों को काला कोयला करता हुआ (अस्वदयत् न) मानों स्वयं सब खा जाता है। उसी प्रकार (यः) जो उत्तम नायक, सेनापति (उर्वीम् अभि दक्षत्) पृथ्वी पर पराक्रम करता, शत्रु की बड़ी भारी सेना को भस्म कर दे, जो (स्वयुः) स्वयं प्रयाण करनेहारा, (अगोपाः) अपने से अन्य किसी रक्षक की अपेक्षा न करता हुआ, (पशुः) स्वयं सब को भली प्रकार देखता हुआ, (वि अस्थात्) विविध देशों में ठहरता (अभि एति) शत्रु पर अभियोक्ता या आक्रमक होकर चढ़ाई करता है और जो (शोचिष्मान्) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अतसानि) निरन्तर आक्रमण करने वाले सैन्यों को (उष्णन्) अपने तेज से संतप्त करता हुआ (भूम) बड़े सामर्थ्य से (कृष्णव्यथिः) अपने व्यथादायी शत्रुओं को उच्छिन्न करता हुआ (भूम अस्वदयत् न) बड़े भारी ऐश्वर्य, या राज्य को मानो भोग करने में समर्थ होता है। (सः) वही तेजस्वी पुरुष (अग्निः) यथार्थ में 'अग्नि' कहाने योग्य है।

नू ते॒ पूर्व॒स्याव॑सो॒ अधी॑तौ तृ॒तीये॑ वि॒दथे॒ मन्म॑ शंसि ।
अ॒स्मे अ॑ग्ने सं॒यद्वी॑रं बृ॒हन्तं॑ क्षु॒मन्तं॒ वाजं॑ स्वप॒त्यं र॒यिं दाः॥८॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (नु) अब (पूर्वस्य) हमसे पूर्व

विद्यमान (ते) तेरे (अवसः) व्रत या रक्षण कार्य के (अधीतौ) अधीन, अध्ययन अनुशीलन में (तृतीये) तृतीय संख्या के (विदथे) यज्ञ या सवन काल में तू हमें (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का (शंसि) उपदेश कर। और (अस्मे) हमें (संयत्-वीरं) संयमशील वीरों और पुत्रों शिष्यों से युक्त (बृहन्तं) बड़े भारी (क्षुमन्तं) उत्तम अन्नादि समृद्धि से युक्त (वाजं) बल और ज्ञान और (सु अपत्यं) उत्तम संतान या उत्तराधिकारी से युक्त (रयिं) गृह, पशु, धनधान्य सुवर्णादि स्थायी सम्पत्ति (दाः) हमें प्रदान कर। राजा आदि शासक वर्ग अपने तीसरे सवन अर्थात् नौकरी के काल के उपरान्त अपने पहले प्राप्त शासन के अनुभव अन्यों को दें। अन्य जो उसका अध्ययन शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं उनको वे विचारपूर्ण अनुभव प्रदान करें। इसी प्रकार आचार्य आदि भी तीसरे वानप्रस्थकाल में अपने पूर्व के प्राप्त ज्ञान के अनुशीलन कार्य में नयों के मननयोग्य विज्ञान प्रदान कर इसी तीसरे काल में 'संयत्' सुप्रबन्ध से युक्त बड़ा राज्यैश्वर्य अपने से अगले को दें और आगे आने वालों को अपना समस्त धन उत्तराधिकारी सहित त्याग कर पृथक् हो जावें।

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभिष्युः।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः॥६॥२५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (यथा) जिस प्रकार से (गुहा) आकाश में वायु गण या सूर्य की किरणें (वन्वन्तः) मेघों को और जलों को छिन्न-भिन्न करते हुए (उपरान् अभि स्युः) मेघों को भी निर्बल कर आप उन से प्रबल हो जाते हैं, उनको परास्त कर देते हैं। उसी प्रकार (गृत्समदासः) विद्वानों के समान ज्ञान और मनन में आनन्द लेनेहारे उत्तम पुरुष (गुहा) अपनी बुद्धि में ही (वन्वन्तः) ज्ञानों का विभाग अर्थात् पृथक् विवेचन करते हुए (उपरान्, उपरतान्)

अपने से पूर्व के जो लोग उस कार्य से उपरत हो चुके हैं उनसे भी (अभि स्युः) अधिक विद्वान् हों। वे (गृत्समदासः) रथों पर आनन्द से युद्ध करने हारे वीरों के समान (स्मत्) ही (सुवीरासः) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रु को पराजित करनेवाले हों। जो पुरुष (गृणते) उपदेश करते हैं तू उन (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (तत्) वह नाना प्रकार का (वयः) कामना करने योग्य ऐश्वर्य वा दीर्घ जीवन (धाः) प्रदान कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृदनुष्टुप् २, ४, ५ अनुष्टुप्। ८ विराडनुष्टुप्। ७ भुरिगुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥

भा०—(चेतनः) ज्ञानवान् पुरुष (पितृभ्यः) अपने पालक मा बाप, गुरु, आचार्य आदि पितृतुल्य जनों से (होता) धनैश्वर्य और विद्या को प्राप्त करके स्वयं (ऊतये) उनकी भी रक्षा करने के लिये (पिता अजनिष्ट) उनका भी पिता हो जाता है और (चेतनः) स्वयं ज्ञानवान् पुरुष (होता) ज्ञानदान करने वाला होकर (ऊतये) ज्ञान से तृप्त करने के कारण (पितृभ्यः पिता) अपने पालक पिता तुल्य पुरुषों का भी पिता (अजनिष्ट) होता है वह उनको (जेन्यं वसु) सब दुखों पर विजय करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, विद्याधन का प्रदान करता है इसी कारण हम लोग (वाजिनः) इन्द्रियों और शत्रुओं पर ज्ञान और ऐश्वर्य सेसम्पन्न होकर (यमं) संयम या वश करने में समर्थ, (जेन्यँ) विजय करने वाले (वसु) ऐश्वर्य और क्षात्र बल को (प्र यक्षन्) जिस प्रकार विद्वान्

जन प्रदान करते हैं उसी प्रकार हम भी (शकेम) दान देने में समर्थ हों। (२) रात्रिः पितरः। श० २।१।३।१॥ (पितृभ्यः पिता होता ऊतये अजनिष्ट) रात्रि से सर्वपालक सूर्य दीप्ति वा रक्षा के लिये उत्पन्न होता है। (३) ओषधिलोको वै पितरः श० १३।८।१।२०॥ ओषधि में से जीवों की रक्षा के लिये 'पिता' पालक अन्न उत्पन्न होता है। (४) यमो वैवस्वतो राजा इत्याह तस्य पितरो विशः। श० ३।४।३।६॥ क्षत्रंवै यमो विशः पितरः। श० ७।१।१।४॥ प्रजाओं में ही पालक क्षत्र बल या राजा उत्पन्न होता है। (५) उसी प्रकार (पितृभ्यः) पालक प्राणों में के बीच उनके पालन, चेतन, दीप्ति, तृप्ति आदि के लिये (चेतनः होता) चेतन जीव सब शरीर का बलदाता और 'मैं' करके स्वीकर्त्ता प्रकट होता है। जिस (यमं जेन्यम्) देह के नियन्ता विजयशील, (वसु) देह में बसने वाले चेतन की (प्र यक्षन्) उपासना करते हुए हम (वाजिनः) ज्ञानी लोग (शकेम) आनन्द लाभ कर सकें। (६) अवान्तर दिशः पितरः (श० १।८।१।४०॥) इन समस्त दिशाओं में सब के पालक सर्वचेतन, सर्वप्रद प्रभु विद्यमान है। हम (यमं) सर्वनियन्ता सर्वत्र वासी, सर्वोपरि विजयी की (प्र यक्षन्) खूब उपासना करें और (शकेम) सब कार्य करने में समर्थ हों।

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस (यज्ञस्य नेतरि) यज्ञ के नायक में (सप्त रश्मयः) सात रश्मिएं (आ ततः) जुड़े हैं वह (मनुष्वत्) मनुष्य के समान ही स्वयं (अष्टमं दैव्यम्) आठवां, देवों में देव, परम देव है। (तद्) वह (पोता) सबको पवित्र करने और प्रेरनेवाला होकर (विश्वम् इन्वति) समस्त जगत् में व्यापक है। यज्ञ में सात ऋत्विजों पर एक 'पोता' उसी प्रकार देह में सात प्राणों पर उनका

प्रेरक आत्मा या मन। संसार में सात ऋतुओं पर एक सूर्य उसमें आठवां परमेश्वर परम पावन सर्वत्र व्याप्त है।

दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत्।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत्॥ ३॥

भा०—(यत्) जो (ईम्) इस समस्त विश्व को सूर्य के समान धारण सामर्थ्य से (दधन्वे) धारण करता है और जो भी विद्वान् जन (ब्रह्माणि अनु वोचत्) वेदादि सत् शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञानों का उपदेश करता है वह (तत्) उन सब को (वेः उ) निश्चय से व्यापता और जानता है। वह (विश्वानि) समस्त (काव्यानि) विद्वान्, मेधावी, क्रान्तदर्शी, तत्वज्ञानी पुरुषों के जानने और करने योग्य कार्यों और ज्ञातव्य ज्ञानों के (परि) ऊपर (चक्रम् इव नेमिः) चक्र पर चढ़े हाल के समान (परि अभवत्) विद्यमान है। वह सब में व्यापक है सबको अपने भीतर लिये हुए हैं, या सब को (नेमिः) अपने अधीन वश करने वाला, सब का प्रापक, नायक है।

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते॥ ४॥

भा०—(हि) जिस कारण (शुचिना) पवित्र (क्रतुना साकं) ज्ञान और कर्म के साथ वह (प्रशास्ता) सर्व श्रेष्ठ शासनकर्त्ता परमेश्वर (शुचिः अजनि) सब प्रकार से पवित्र है। इसलिये (अस्य) उस परमेश्वर के (ध्रुवा व्रता) नियत, स्थिर सनातन से चले आये, शाश्वत व्रतों, धर्मों को (विद्वान्) जानने पौर पालन करने वाला पुरुष (वयाः इव) वृक्ष की शाखाओं के समान (अनु रोहते) बराबर वृद्धि को प्राप्त होता और यथाक्रम से बराबर ऊंचे ही ऊंचे चढ़ता है।

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः॥ ५॥

भा०—(याः) जो (स्वसारः) बहिनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली, 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को प्राप्त करने वाली प्रजाएं (तिसृभ्यः) तीनों प्रकार की भूमियों, जलस्थ, पर्वत, या पृथिवी-अन्तरिक्ष, आकाश, तीनों से (कुवित्) बहुत प्रकार के (इदं) इस (वरं) वरणीय, उत्तम धन को (आ ययुः) प्राप्त करती हैं (ताः) वे (आयुवः) मनुष्य प्रजाएं (अस्य नेष्टुः) इस अपने नायक के ही (वर्णं) स्वीकार्य धन को (धेनवः) दुधार गौ के समान (सचन्ते) प्राप्त करती हैं। प्रजाएं जो भी धन मिलकर प्राप्त करती हैं वह एक प्रकार से राजा का ही ऐश्वर्य है। (२) जो (स्वसारः) 'स्व' आत्मा की तरफ जाने वाली प्रजाएं या चित्त वृत्तियाँ (तिसृभ्यः) कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों से (वरं) श्रेष्ठ इस आत्म तत्व को प्राप्त करती हैं या (तिसृभ्यः) वेदत्रयी से इस श्रेष्ठ आत्म ज्ञान को प्राप्त करती हैं वे (आयुवः) आत्मा को प्राप्त होने वाली वाणियों या गौत्रों के समान, (अस्य नेष्टुः वर्णं) इस नायक, सर्व प्रणेता, परमेश्वर के ही श्रेष्ठ स्वरूप को (सचन्ते) प्राप्त करती और अन्यों को प्राप्त कराती हैं। (३) लोक में—(स्वसारः) तीनों बहनें (तिसृभ्यः) तीन भिन्न २ गोत्रों से जब वर को प्राप्त करती हैं तो वे भी अपने नायक, वृत पति के वर्ण को ही प्राप्त करती हैं। अर्थात् एक ही कुल की बहनें भिन्न २ स्वभाव और पेशों के पति को पाकर फिर तदनुरूप हो जाती हैं।

यदी॑ मा॒तुरुप॒ स्वसा॑ घृ॒तं भर॒न्त्यस्थि॑त ।
तासा॑मध्व॒र्युराग॑तौ॒ यवो॑ वृ॒ष्टीव॑ मोदते ॥ ६ ॥

भा०—(घृतं भरन्ती) जल को धारती मेघमाला को पृथ्वी के समीप आते देख जिस प्रकार कृषक प्रसन्न होता है (यदि) जब (मातुः उप) माता के समीप (स्वसा) स्वयं पति को प्राप्त होने वाली स्वयंवरा कन्या (घृतं) ब्रह्मचर्य द्वारा तेज और वीर्य तथा घृत को

(भरन्ती) धारती हुई (अस्थित) प्राप्त हों तो (तासाम्) ऐसी कन्याओं में से किसी के (आगतौ) आ जाने पर (अध्वर्युः) अहिंसा शील, प्रेम युक्त पुरुष, गृहस्थ यज्ञ का कर्त्ता (वृष्टि इव यवः) वर्षा पाकर जौं के समान (मोदते) अति प्रसन्न होता है। (२) (स्वसा) आत्मा की तरफ जाने वाली चित्त वृत्ति जब (मातुः) प्रमाता आत्मा के समीप (घृतं) वीर्य या तेज को धारती हुई पहुंचती है तो उन वृत्तियों के उदय होने पर (अध्वर्युः) अविनाशी आत्मा (यवः) सब संग दोषों से दूर रहता हुआ, वृष्टि से यव क्षेत्र के समान खूब प्रसन्न हो आनन्द लाभ करता है।

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम्।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥

भा०—(स्वः) स्वयं मनुष्य (ऋत्विक्) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले ऋत्विज के समान (स्वाय धायसे) अपने ही धारण पोषण करने वाले की (ऋत्विजम्) प्रति समय सत्संगति, (यज्ञं) उपासना और (स्तोमं) स्तुति (कृणुताम्) करे, अथवा वह (स्वाय धायसे) अपने ही को पुष्ट करने के लिये (ऋत्विग् कृणुताम्) ऋत्विक् बनावे स्तुति और यज्ञ को करे। (आत् च) और अनन्तर इस प्रकार (वयम्) हम (स्तोमं) उस स्तुति योग्य (ऋत्विग) सदा संगति योग्य (यज्ञं) उपास्य परमेश्वर को (आ वनेम) खूब भजन करें और (ररिम) उसके प्रति दान और अपने को समर्पण करें।

यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (अयं विद्वान्) यह विद्वान् पुरुष (विश्वेभ्यः) सब (यजतेभ्यः) उपासना सत्कार और दान करने योग्य आदरणीय पुरुषों के लिये (अरं करत्) खूब अन्न आदि प्रदान

करता है उसी प्रकार (यं) जिस भी (यज्ञं) यज्ञ, उपासना आदि कर्म को (वयम्) हम (चकृम) करते हैं वह सब हे (अग्ने) परमेश्वर ! (त्वे अपि) तेरे ही निमित्त करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[६]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८ गायत्री । २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः ।
इमा ऊ षु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (समिधम्) प्रदीप्त होने के लिये समिधा, काष्ठ जो उसके अति समीप रख दी जाती है को ले लेता है और जला देता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! गुरो ! ईश्वर ! आप भी (इमाम्) इस (समिधम्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली समिधा को जो (उपसदं) शिष्य रूप से आपके समीप प्राप्त है उसे (वनेः) स्वीकार करें प्रेम पूर्वक अपनावें उसे ज्ञान अग्नि से प्रज्वलित करें। और हे शिष्य! (इमाः गिरः) इन वेद वाणियों को (उ) भी तू (सु श्रुधि) उत्तम रीति से श्रवण कर।

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे ।
एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्वमिष्टे) शीघ्रगामी साधनों में वेग देने वाले (अग्ने) अग्नि पदार्थ ! तू (ते) तेरा (अया) इस क्रिया से (विधेम) यन्त्र बनावें और हे (ऊर्जा नपात्) बल शक्ति को न गिरने देने वाले । हे (सुजात) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध ! तेरा हम (एना सूक्तेन) इस सूक्त अर्थात् अग्नि विद्या के उपदेश से (विधेम) सम्पादन, संचालन, और प्रयोग करें।

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः ।
सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥

भा०—हे (द्रविणोदः) द्रविण, ऐश्वर्य या जल को देने वाले ! विद्युत् ! अग्ने ! (द्रविणस्युं) द्रुत गमन करने वाले (गिर्वणसं) वाणी या विशेष शब्द के साथ विभक्त होने वाले (त्वा तं) उस तुझको हम (सपर्यवः) उत्तम सपर्या, सेवा या प्रतिष्ठा चाहने वाले (गीर्भिः) वाणियों से (सपर्येम) सेवा करते हैं ।

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।
युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसुपते) अपने अधीन बसने वाले शिष्यों और प्रजाजनों के पालक ! हे (वसुदावन्) उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले ! (सः) वह तू (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् और (सूरिः) विद्वान् होकर (बोधि) ज्ञान सम्पादन कर और औरों को ज्ञान सम्पादन करा । (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेष युक्त धर्मों और व्यवहारों को (युयोधि) पृथक् कर और करा । (२) इसी प्रकार शिष्य भी ज्ञानवान् तेजस्वी होकर गुरु जनों से द्वेष न रखें ।

स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् ।
स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् रूप अग्नि (दिवः परि वृष्टिम्) आकाश से वृष्टि देता है । और (अनर्वाणम् वाजम्) बिना अश्व के वेगवान् रथ देता है और (सहस्रिणी इषः) सहस्रों सुखप्रद अन्न और कामनाएं पूर्ण करता है इसी प्रकार (सः) वह विद्वान् (नः) हमें (दिवः) अपने ज्ञान प्रकाश से (वृष्टिम्) सुखों का वर्षण करे, (अनर्वाणम् वाजम्) दोष रहित ऐश्वर्य और ज्ञान और हिंसक योद्धा से रहित संग्राम का

विजय प्राप्त करावे, बिना अश्व के वेगवान् रथ को संचालित करे और (सः नः) वह हमें (सहस्रिणीः) सहस्रों सुख देनें वाली (इषः) अन्नों, कामनाओं और सेनाओं को भी प्रेरित करे।

ईळा॑नायाव॒स्यवे॒ यवि॑ष्ठ दूत नो गि॒रा।
यजि॑ष्ठ होत॒रा ग॑हि ॥ ६ ॥

भा०—(दूत, यविष्ठ यजिष्ठ, होतः) जिस प्रकार अग्नि सूर्य तापवान् होने से 'दूत' है, जल कणों को पृथक् करनेसे 'यविष्ठ' है। वृष्टि अन्न आदि देनेसे 'यजिष्ठ' और प्रकाश आदि देने और जल आदि लेने से 'होता' है। वह (ईळानाय) इळा अर्थात् अन्न के इच्छुक (अवस्यवे) अपनी रक्षा चाहनेवाले को (गिरा) पर्जन्य वाणी के साथ प्राप्त हो। उसी प्रकार हे (दूत) दुष्टों के संतापक, हे (यविष्ठ) बलशालिन्! अति युवा! हे (यजिष्ठ) दानशील! हे (होतः) अधिकार आदि देने वाले! तू (ईळानाय) अपनी स्तुति करने, चाहने और (अवस्यवे) रक्षा, ज्ञान हर्ष आदि के इच्छुक पुरुष और (नः) हमको भी (गिरा) वाणी सहित (आ गहि) प्राप्त हो।

अ॒न्तर्ह्य॑ग्न ईय॑से वि॒द्वाञ्जन्म॒ोभया॑ कवे।
दू॒तो जन्ये॑व॒ मित्र्यः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! तू (दूतः) दुष्टों को संतापकारी (जन्य इव) सर्वजनों के हितकारी के समान, (मित्र्यः) मित्रों का भी हितकारी, मित्रों में सर्वश्रेष्ठ (विद्वान्) विद्वान् होकर हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू (उभया अन्तः) दोनों पक्षों के बीच में (जन्म) मनुष्यों को या कारणों को प्राप्त हो। (२) परमेश्वर हम इस और उस दोनों जन्मों के बीच को जानता है।

स वि॒द्वाँ आ च॑ पिप्रयो यक्षि॑ चिकित्व आनु॒षक्।
आ चा॒स्मिन्त्स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ८ ॥ २७ ॥

भा०—हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! विद्वन्! ईश्वर! (सः) वह

(विद्वान्) विद्वान् सब कुछ जानता हुआ तू (अपिप्रयः) सबको प्रसन्न और पूर्ण करता और (आनुषक्) सबके अनुकूल पदार्थ निरन्तर (आ यक्षि) देता है। तू (अस्मिन् बर्हिषि) इस महान् ब्रह्माण्ड और पृथ्वी लोक में और उत्तमासन पर (आ सत्सि) आकर विराजता है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृद् गायत्री । ४ त्रिपाद्गायत्री । ५ विराट् पिपीलिका मध्या । ६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर ।
वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (यविष्ठ) अति युवा पुरुष हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (वसो) गृहस्थ में बसने और बसाने हारे, विद्वन् ! हे (भारत) पालन पोषण करने हारे उत्तम मनुष्य ! राजन् ! मनुष्यों में श्रेष्ठ ! तू (श्रेष्ठं) सर्वोत्तम (पुरुस्पृहं) बहुतों के चाहने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) सब तरफ से प्राप्तकर और ला। बहुतों का पालन करने वाले पुरुष को सबके अभिमत पदार्थ सब स्थान से मंगाकर रखने चाहिये।

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च ।
पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! हे भारत! सबके पालक पोषक, प्रजाजनों के स्वामिन्! प्रभो! (नः) हमारे (देवस्य) ज्ञानप्रकाशक और धन ज्ञान के दाता ज्ञानी और दानी पुरुष तथा (मर्त्यस्य) साधारण प्रजाजन पर (अरातिः) शत्रु (मा ईशत) अपना स्वामित्व प्राप्त न करे। (उत) प्रत्युत तू ही (तस्याः द्विषः) उस शत्रु से हमें (पर्षि) पारकर, उस पर विजयी बना।

विश्वा॑ उ॒त त्वया॑ व॒यं धारा॑ उद॒न्या॑ इव ।
अति॑ गाहेमहि॒ द्विषः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! विद्वन् ! (त्वया) तेरे द्वारा (वयं) हम लोग (उदन्या धारा इव) जल की धाराओं के समान (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रुओं और अप्रियों को (अति गाहेमहि) पार कर जावें ।

शुचि॑ः पावक॒ वन्द्यो॒ऽग्ने॑ बृ॒हद्वि रो॑चसे ।
त्वं घृ॒तेभि॒राहु॑तः ॥ ४ ॥

भा० —हे (पावक) पवित्र करने हारे ! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! संतापजनक ! पश्चात्ताप अनुभव कराने हारे विद्वन् ! (घृतेभिः आहुतः) घृतों से आहुति किये अग्नि के समान अति तेजों से युक्त होकर तू (शुचिः) पवित्र, शुद्ध आचारवान् (वन्द्यः) स्तुतियोग्य, सत्कार योग्य होकर (बृहत्) बड़े रूप में (वि रोचसे) विविध दिशाओं में प्रकाशित हो ।

त्वं नो॑ असि भार॒ताग्ने॑ व॒शाभि॑रु॒क्षभिः॑ ।
अ॒ष्टाप॑दीभि॒राहु॑तः ॥ ५ ॥

भा०—हे (भारत) मनुष्यों के हितकारक ! सबके पालक पोषक ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! (त्वं) तू (नः) हमारी (वशाभिः) सुन्दर मनोहर गौओं, (उक्षभिः) सांडों तथा (अष्टापदीभिः) बछड़े सहित आठ पैर की गौओं द्वारा (आहुतः) आदर पूर्वक सत्कार युक्त होकर (असि) रह । (२) राजा (वशाभिः) उत्तम पृथिवियों से (उक्षभिः) मेघों से, (अष्टापदीभिः) आठ सचिव रूप पदाधिकारी लोगों से बनी राजसभाओं से (आहुतः) सभापति रूप से स्वीकृत हो । परमेश्वर (वशाभिः) दिव्य वाणियों और उत्तम स्त्रियों, (उक्षभिः) वीर्यवान् पुरुषों, (अष्टापदीभिः) आठों प्रमाणों से युक्त या आठों उच्चारण स्थानों वाली सत्य वाणियों से उपासित, पूजित है ।

द्रुन्नः सुर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—अग्नि विद्वान् के समान है । अर्थात् जिस प्रकार अग्नि (द्रु-अन्नः) काष्ठ को अन्न के समान खाता है । उसी प्रकार विद्वान् भी (द्रु-अन्नः) वृक्ष वनस्पति के ही अन्न अर्थात् वानस्पतिक भोजन करनेवाला हो । जिस प्रकार अग्नि (सर्पिरासुतिः) घृत से सब प्रकार सेंचा जाकर खूब बढ़ता है इसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (सर्पिरासुतिः) घृत, दुग्ध आदि सारवान् पदार्थों का आसेचन, सेवन करनेवाला हो । वह अग्नि (प्रत्नः) अतिपुरातन, अविनाशी है तो विद्वान् भी (प्रत्नः) दीर्घजीवी, सर्वश्रेष्ठ हो । (होता) अग्नि सब को भस्म करने वाला हो । विद्वान् (होता) उत्तम पदार्थों को लेने और विद्यादि को देने वाला हो । (वरेण्यः) अग्नि सदा स्वीकारने योग्य, श्रेष्ठ है । विद्वान् (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ और श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाला हो । (सहसः पुत्रः) अग्नि बलवान् वायु से उत्पन्न होने और अरणियों द्वारा बल पूर्वक मथन करने पर उत्पन्न होने से बल का पुत्र है । विद्वान् (सहसः पुत्रः) बलवान्, वीर्यवान् माता पिता का पुत्र हो । (अद्भुतः) अग्नि विद्युत् आदि अद्भुत गुणों वाला है । विद्वान् (अद्भुतः) आश्चर्यकारी विद्या और चमत्कारी गुणों से युक्त ऐसा हो जैसा पहले कोई न हुआ हो । (२) इसी प्रकार परमेश्वर संसार वृक्ष को अन्न के समान प्रलयाग्नि में खाजाने से 'द्रु-अन्न' है । (सर्पिः-आसुतिः) सर्पणशील सूर्यआदि लोकों को प्रेरने वाला है । शेष विशेषण स्पष्ट हैं । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २ निचृत् पिपीलिकामध्या गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री । ४ विराड् गायत्री । ६ निचृदनुष्टुप् ॥
षड्ऋचं सूक्तम् ॥

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि ।
यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥ १ ॥

भा०—जो अग्नि (रथान्) रथों के प्रति (वाजयन् इव) अश्व के समान आचरण करने वाले (रथान्) रमणीय, आनन्दप्रद मेघों या रसों, जलों को (वाजयन् इव) प्रचुर अन्न उत्पन्न कराने में समर्थ हो उस (यशस्तमस्य) जल से युक्त, या अति प्रचुर अन्न देने वाले (मीळ्हुषः) अति जल वर्षाने वाले विद्युत् या अग्नि के (योगान्) अनुकूल अवसरों का (उप स्तुहि) वर्णन कर ।

यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिं चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥

भा०—(यः) जो सूर्य (ददाशुषे) दानशील मेघ को (सुनीथः) उत्तम रीति से लाने में समर्थ होता है वह स्वयं भी (अजुर्यः) नाश न होकर तीव्रता से (अरिम्) जल को (जरयन्) वाष्प के रूप में जीर्ण करता हुआ, जठर में अन्न के समान वायु में विलीन करता हुआ, (आहुतः) प्रदीप्त अग्नि के समान (चारुप्रतीकः) उत्तम उपक्रम वाला होता है । इसी प्रकार नायक और विद्वान् भी कर और वृत्ति आदि देने वाले या आत्म समर्पक पुरुष को (सुनीथः) सन्मार्ग में लेजाने वाला, हो वह (अजुर्यः) स्वयं युवा, सदा दृढ़ चित्त, (अरिम्) शत्रुको (जरयन्) नाश करता हुआ (आहुतः) अहुति से तीव्र अग्नि के समान (चारु-प्रतीकः) उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों से, उत्तम रीति से कर्य्यारम्भ करने वाला, उत्तम गुणों से प्रतीत, प्रसिद्ध हो ।

य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते ।
यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, सूर्य, विद्युत् आदि (दमेषु) घरों में, गृहकार्यों में (श्रिया) अपनी कान्ति से (दोषा उषसि) दिन रात उत्तम ही कहा जाता है (यस्य व्रतं न मीयते) जिसका व्रत, कर्म और

स्वभाव, प्रकाश दाह आदि कभी नष्ट नहीं होता है। उसी प्रकार (यः उ) जो पुरुष (दमेषु) गृहों में, गृहस्थों में (दोषा उषसि) दिन और रात (श्रिया) उत्तम लक्ष्मी, धनैश्वर्य सम्पदा से रहता है और (यस्य व्रतं न मीयते) जिसका व्रत, नित्य धर्माचरण कभी खण्डित नहीं होता है वह ही (प्रशस्यते) प्रशंसा के योग्य होता है। उसी प्रकार जो राजा (दमेषु) प्रजा और शत्रुओं के दमन कार्यों में (श्रिया) शोभा, शान या बड़ी राजलक्ष्मी सहित समर्थ रहे और जिसका (व्रतं) आज्ञा या नियम, कानून न टूटें वह दिन रात प्रशंसनीय है। (३) परमेश्वर का व्रत, नियम कभी नहीं टूटता वह (दमेषु) हर्षावसरों में (श्रिया) सेवा भजन द्वारा दिन रात (प्रशस्यते) स्तुति किया जाने योग्य है।

आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा।
अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (स्वः न) सूर्य के समान (भानुना) तेज़ से (अर्चिषा) ज्वाला से (विभाति) चमकता है और (अजरैः अभि अञ्जानः) अपने अविनाशी गुणों से चमकता रहता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (स्वः न) सूर्य के समान ही (चित्रः) अति आश्चर्य-कारी, (अर्चिषा) तेज से और (भानुना) प्रकाश से (अजरैः) अपने स्थायी गुणों से (अञ्जानः) अपने को प्रकट और सब के प्रति प्रिय रूप प्रकट करता हुआ (आ विभाति) सर्वत्र प्रकाशित होता है वह प्रशंसा योग्य है। (३) परमेश्वर (चित्रः) आर्यश्चमय है। सब के चित्तों और आत्माओं में रमण करने हारा होने से 'चित्र' है। वह अपने अजर, अविनाशी गुणों से प्रकाश से सूर्य के समान प्रकट होता है।

आश्चर्य-
मय है

अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः।
विश्वा अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (अत्रिम्) सब पदार्थों में विद्यमान्, स्वयं-

प्रकाश, अग्नि को लक्ष्य कर (उक्थानि) यज्ञादि में उत्तम वचन बढ़ते हैं और वह (विश्वाः श्रियः दधे) शोभा कान्तियों को धारता है उसी प्रकार यह जो (विश्वा श्रियः) समस्त राज्य लक्ष्मियों को (अभि दधे) अपने वश में रखता है। उस ही (अत्रिम्) ऐश्वर्य के भोक्ता (स्वराज्यम्) अपनी राजसत्ता के स्वामी, (अग्निम्) अग्रणी नायक को (अनु) लक्ष्य करके (उक्थानि) नानास्तुति वचन (वावृधुः) बढ़ते हैं। यहां, हृदय में सर्वत्र विद्यमान् होने से परमेश्वर 'अत्रि' है। वह स्वयंप्रकाश होने से 'स्वराज्य' है। उस अग्रणी अनादि प्रभु को लक्ष्य करके सब (उक्थानि) वेद वचन उसको बढ़ाते, स्तुति करते हैं। वह सब विभूतियों को धारण करता है।

अ॒ग्नेरिन्द्र॑स्य॒ सोम॑स्य दे॒वाना॑मू॒तिभि॑र्व॒यम्।
अरि॑ष्यन्तः सचेमह्य॒भि ष्या॑म पृतन्य॒तः ॥ ६ ॥ २९ ॥ ५ ॥

भा०—(वयम्) हम (अग्नेः) ज्ञानमय प्रभु, विद्वान्, अग्नि, सूर्य (इन्द्रस्य) आचार्य, ऐश्वर्यवान् (सोमस्य) शान्त, ओषधि के समान दुःखों के नाशक राजा इन (देवानाम्) दानशील तेजस्वियों के (ऊतिभिः) रक्षाओं, ज्ञान के प्रकाशकों, विद्वानों, ज्ञानों और सत्कारों, आशीर्वादों से (अरिष्यन्तः) कभी नाश को न प्राप्त होते हुए (सचेमहि) हम संघ बना कर सब कार्यों में समर्थ हों। और (पृतन्यतः) सेवा की इच्छा वाले शत्रुओं को भी हम (अभि स्याम) पराजित कर लें। इत्येकोनत्रिंशद्वर्गः ॥

[६]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । २ पङ्क्तिः ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

निः होता॑ होतृ॒षद॑ने॒ विदा॑नस्त्वे॒षो दी॑दि॒वाँ अ॑सदत्सु॒दक्षः॑ ।
अद॑ब्धव्रतप्रमति॒र्वसि॑ष्ठः सहस्रम्भ॒रः शुचि॑जिह्वो अ॒ग्निः ॥१॥

भा०—(होतृसदने होता) होता आदि ऋत्विजों के बैठने के स्थान, वेदि में (होता) चरु आदि का ग्रहण करने वाला अग्नि जिस प्रकार (दीदिवान्) प्रकाशित होकर विराजता है उसी प्रकार (होतृसदने) शासन के अधिकार देने और लेनेवाले विद्वानों के विराजने के स्थान, सभाभवन में (होता) सब राज्यभार को स्वीकार करने वाला (अग्निः) ज्ञानी और तेजस्वी, अग्रणी नायक पुरुष (विदानः) विद्वान् (त्वेषः) तेजस्वी, (दीदिवान्) प्रकाश करता हुआ, (सुदक्षः) उत्तम बल से युक्त, कार्यकुशल, (अदब्ध-व्रतप्रमतिः) अपने कर्त्तव्य कर्मों और उत्तम शील, आचार के नाश न होने से उत्तम बुद्धि और ज्ञान से युक्त सदाचारी, उत्तम मननशील, (वसिष्ठः) राष्ट्र वासियों में सब से श्रेष्ठ और अन्यों को सुख से बसाने वाला, (सहस्रम्भरः) सहस्रों का भरण पोषण करने में समर्थ, (शुचिजिह्वः) पवित्र, सत्य वाणी बोलने हारा, होकर वेदी में होता या अग्नि के समान (असदत्) मुख्य आसन पर विराजे।

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ २॥

भा०—अग्नि, सूर्य जिस प्रकार (दूतः) संतापकारी, (वृषभः) वर्षणशील, (प्रणेता) सब कार्यों का प्रवर्त्तक, दीपक के समान सन्मार्ग में ले जानेवाला, (गोपाः) किरणों और भूमियों का रक्षक है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! और विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू ही (नः) हमारा (परः-पाः) परम पालन पोषण करने और रक्षा करनेहारा है और हे (वृषभ) समस्त समृद्धियों को मेघ के समान वर्षा करने हारे निष्पक्षपात ! दयालो ! तू ही (वस्यः) सब से श्रेष्ठ वसु, सब का बसाने हारा और (प्रणेता) सन्मार्ग में प्रजाओं को चलानेहारा है। हे (अग्ने) अग्रणी ! तू ही (नः) हमारे (तने) विस्तृत राष्ट्र में

(तोकस्य) पालकों के और (नः) हमारे भी (तनूनाम्) शरीरों का (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित होकर (गोपाः) रक्षक और (दीद्यद्) प्रकाशक हो और हमें (बोधि) ज्ञान प्रदान कर।

वि॒धेम॑ ते पर॒मे जन्म॑न्नग्ने वि॒धेम॒ स्तोमै॒रव॑रे स॒धस्थे॑।
यस्मा॒द्योने॑रु॒दारि॑था॒ यजे॒ तं प्र त्वे ह॒वींषि॑ जुहुरे॒ समि॑द्धे ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! नायक! हम (ते) तेरे (परमे) सर्वोत्कृष्ट (जन्मन्) विद्या सम्बन्धी जन्म के निमित्त (ते विधेम) तेरा विशेष आदर करें और (सधस्थे) तेरे साथ रहते हुए सभा आदि स्थानों में तेरे (अवरे जन्मन्) उससे कम महत्व के जन्म अर्थात् माता पिता से हुए जन्म के सम्बन्ध की भी (स्तोमैः) स्तुति युक्त वचनों से (विधेम) चर्चा करें। उस सम्बन्ध में भी तेरी मान हानि न करें। तू (यस्मात्) जिस (योनेः) योनि अर्थात् गृह या मातृकुल से (उत् आरिथाः) उत्पन्न हो (तं यजे) उसका भी आदर करूँ। (समिद्धे हवींषि) खूब प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार चरु घृत आदि की आहुति देते हैं उसी प्रकार (समिद्धे) खूब तेजस्वी (त्वे) तुझ में प्रजाजन (हवींषि) अन्न और कर आदि उपादेय पदार्थ (प्र जुहुरे) अच्छी प्रकार प्रदान करें।

अग्ने॒ यज॑स्व ह॒विषा॒ यजी॑याञ्छ्रु॒ष्टी दे॒ष्णम॒भि गृ॑णीहि॒ राधः॑।
त्वं ह्यसि॑ रयि॒पती॑ रयी॒णां त्वं शु॒क्रस्य॒ वच॑सो म॒नोता॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! नायक! विद्वन्! (यजीयान्) तू दानशील होकर (हविषा) अन्न आदि देने और विद्वानों से स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (यजस्व) दान दे और उसके द्वारा अन्यों से मैत्री भाव उत्पन्न कर। (श्रुष्टी) शीघ्र ही, (देष्णम्) देने योग्य (राधः) धन को (अभि गृणीहि) देने का आदेश कर। (त्वं हि) निश्चय तू ही (रयीणां) ऐश्वर्यों का (रयिपतिः) स्वामी (असि) है।

(त्वं) तू (शुक्रस्य वचसः) शीघ्र कार्य कराने में समर्थ, अति तेजस्वी वाणी का (मनोता) आज्ञापक, प्रवक्ता है ।

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! नायक ! (हे दस्म) दर्शनीय ! हे प्रजा के दुःखों को नाश करने वाले ! (दिवे दिवे) प्रति दिन (जायमानस्य) उत्तरोत्तर प्रकट करने वाले, बढ़ते हुए (ते) तेरा (उभयं) दोनों प्रकार का, इस पृथिवी और आकाश का (वसव्यं) ऐश्वर्य कभी (न क्षीयते) क्षीण नहीं होता है । तू (जरितारम्) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष को (क्षुमन्तं) अन्न आदि से युक्त (कृधि) कर और उसको (सु-अपत्यस्य) उत्तम पुत्र वाले (रायः) धन का (पतिम्) स्वामी (कृधि) कर ।

सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥१॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, सेनानायक ! तू (सः) वह (एना) इस (अनीकेन) ज्ञान और सैन्य बल से (सु विदत्रः) उत्तम ज्ञानवान् और उत्तम रीति से प्राप्त धन की रक्षा करने हारा, (आ यजिष्ठः) सब से सत्संगति और मैत्रीभाव रखता हुआ, (देवान्) विद्वानों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों को (यष्टा) मिलाता और वेतनादि देता हुआ (अदब्धः) कहीं भी हिंसित न होकर, (नः) हमारा (गोपाः) रक्षक और (परस्पाः) संग्राम आदि संकटों से पार करने वाला एवं (द्युमत्) तेजस्वी और (रेवत्) ऐश्वर्यवान् होकर (दिदीहि) प्रकाशित हो और ऐश्वर्य का दान कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट् त्रिष्टुप् ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ पङ्क्तिः ॥ षड्‌चं सूक्तम् ।

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी॥१॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (मनुषा) मननशील पुरुष द्वारा (इडस्पदे) पृथ्वी पर (समिद्धः) प्रज्वलित किया जाकर (जोहूत्रः) नाना सुख देने वाला, नाना कार्यों में प्रयोग करने योग्य, (प्रथमः) विस्तृत गुणशाली (पिता इव) पिता के समान पालता है । वही (श्रियं वसानः) कान्ति, शोभा को धारण करता हुआ, (अमृतः) नित्य (विचेताः) ज्ञान चेतना से रहित, जड़ अग्नि भी (मर्मृजेन्यः) सब पदार्थों को स्वच्छ करने हारा (वाजी) वेगवान् (श्रवस्यः) अन्नों को उत्तम खाने योग्य बना देता है । उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी विद्वान्, नायक (जोहूत्रः) नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों का देनेवाला, युद्ध में शत्रुओं को ललकारने वाला विपत्ति-कालों में प्रजाओं द्वारा, उत्सवों में मित्रों द्वारा पुकारे जाने और निमन्त्रित किये जाने योग्य, (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ, अति प्रसिद्ध है, (यत्) जब (मनुषा) मननशील गुरु, वा मनन करने योग्य सचिवादि के गुप्त मन्त्र द्वारा (समिद्धः) बल और ज्ञान में खूब प्रदीप्त, प्रचण्ड होता है तब (इड़-पदे) इस पृथिवी पर, राजा और (इडः-पदे) अन्नादि के लाभ में पिता और (इड़ः-पदे) वाणी, वेद विद्या के प्राप्त कराने में आचार्य (पिता इव) पालक पिता के समान हो जाता है । वह (अमृतः) कभी न मरने वाला, स्थायी, चिरजीवी (श्रियं) राज्यलक्ष्मी को (वसानः) वस्त्रों के समान बाह्य शोभा रूप से धारण करता हुआ या (श्रियं वसानः) लक्ष्मी को स्वयं आच्छादन अर्थात् उसकी रक्षा करता

हुआ (वि-चेताः) विविध ज्ञानों से युक्त (मर्मृजेन्यः) न्याय व्यवहारों द्वारा विवेकशील और दुष्टों से राष्ट्र को कण्टक शून्य करता हुआ (श्रवस्यः) श्रवण करने योग्य, ज्ञानवान् और यश का पात्र और (वाजी) बलवान् हो।

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥

भा०—यह भौतिक अग्नि (चित्रभानुः) अद्भुत कान्ति वाला, (अमृतः) नित्य, (वि-चेताः) विविध पदार्थों का ज्ञान कराने वाला है। उसके (रथं) रमणीय या वेगवान् स्वरूप, (श्यावा) जामनी रंग के किरण और (रोहिता) लाल रंग के और (अरुषाः) अति दीप्ति वाले, चमकीले किरण, रथ को अश्व के समान (वहतः) धारते हैं वह नाना कार्य करता और (विभृत्रः) विविध रूप में विचरता और विविध पदार्थों को पुष्ट करता है। इसी प्रकार हे विद्वन् ! तू (मे हवं श्रूयाः) तू मेरे ग्राह्य उपदेश का श्रवण कर। (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (चित्रभानुः) व चित्र दीप्तिवाले सूर्य या अग्नि के समान तेजस्वी होकर (विश्वाभिः गीर्भिः) सब प्रकार की वाणियों से (वि-चेताः) विविध ज्ञानों का देने वाला (अमृतः) शिष्य और पुत्र परम्परा से नित्य, सदा अमर हो जाता है। वह (विभृत्रः) विविध विज्ञानों को धारण करने हारा, विविध विद्यार्थियों का और प्रजाओं का पालक पोषक होकर (चक्रे) कार्य सम्पादन करता है। उसके (रथं) रथ को (श्यावा रोहिता उत अरुषा) 'श्याव' जामनी, लाल या चमकीले श्वेत अश्वों के जोड़े (वहतः) ढो ले जाते हैं। आर्य विद्वान् का रमणीय, ज्ञानप्रद उपदेश रूप 'रथ' को धारण करने वाले, (अरुषा) रोष, हिंसादि से रहित (रोहिता) आदित्य के समान तेजस्वी, (श्यावा) वृद्धिशील या ज्ञानवान् स्त्री पुरुष धारण करते हैं। अथवा 'श्याव' अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मण, 'रोहित'

लाल, क्षत्रिय, 'अरुष' अहिंसक वैश्य स्त्री पुरुष धारण करते हैं। ये ही उक्त प्रकार के स्त्री पुरुष (रथं) रमण करने योग्य राज्य रूप रथ को धारण करते हैं।

उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार लोग (उत्-तानायाम्) 'उतान' पत्नी में (सुसूतम्) उत्तम रीति से उत्पन्न होने योग्य पुत्र को (अजनयन्) उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार विद्वान् जन (उत्-तानायां) 'उतान' पड़ी अरणि में (सुसूतम्) उत्तम रीति से प्रकट होने वाले अग्नि को भी (अजनयन्) उत्पन्न करते हैं। (अग्निः) यह अग्नि (पुरुपेशासु) बहुत सी रूपवती स्त्रियों में (गर्भः) गर्भ के समान (पुरुपेशासु) नाना रूप की ओषधियों में (गर्भः) गुप्त रूप से (भुवत्) रहता है। वह (शिरिणायां) अग्नि रात्रि में (अक्तुना) अपने प्रकाश के कारण (महोभिः) बहुत से अन्धकारों से (अपरीवृतः) न घिरता और (प्रचेताः वसति) अन्धकारों में भी अन्यों को भली भांति ज्ञान कराता रहता है। उसी प्रकार विद्वान् लोग नायक को (उत्तानायां) ऊपर उठने वाली, अभ्युदय शालिनी प्रजा के बीच (सुसूतं) उत्तम रीति से ऐश्वर्य युक्त और अभिषिक्त (अजनयन्) करते हैं। और वह (पुरुपेशासु) बहुत से सुवर्ण वाली, ऐश्वर्य से सम्पन्न प्रजाओं के बीच (गर्भः) उनका भी वश करने हारा होकर (भुवत्) रहे। (शिरिणायां चित्) शत्रुओं द्वारा पीड़ित हुई प्रजा में भी वह अपने (अक्तुना) तेज के कारण (महोभिः अपरीवृतः) बहुत बड़े २ बलों और सहायकों से न घिरा रहकर भी स्वयं (प्रचेताः सन्) उत्तम चित्त वा उत्तम ज्ञान वाला तथा अन्यों को उपाय बतलाने वाला होकर (वसति) रहता है।

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वा भुवनानि) समस्त प्राणियों में जाठर रूप से और समस्त लोकों में अग्नि रूप से या व्यापक रूप से (प्रतिक्षियन्तं) विद्यमान, (तिरश्चा वयसा) तिरछे जाने वाले धूम से (पृथुं) फैलने वाले, (व्यचिष्ठं) और खूब फैलनेवाले, (अन्नैः रभसम्) खाद्य, काष्ठ आदि पदार्थों से वेग से बढ़ने वाले, (दृशानं) दीप्ति से दिखाई देने वाले अग्नि को (हविषा) चरु से और (घृतेन) घी से (जिघर्मि) सीचकर बढ़ाता हूं । उसी प्रकार (विश्वा भुननानि प्रतिक्षियन्तं) समस्त प्राणियों में रहने वाले (तिरश्चा) तिर्यग् योनि में व्यापक (वयसा) जीवन रूप से (पृथुं) और भी अधिक विस्तृत (बृहन्तं) सदा बढ़नेवाले (वि-अचिष्ठं) विविध रूपों में व्यापक (अन्नैः) अन्नों द्वारा (रभसं) कार्य करने वाले (दृशानं) द्रष्टृशक्ति, जीवात्मा रूप अग्नि को हम (हविषा) अन्न से और (घृतेन) जल से (जिघर्मि) सींचते, पुष्ट करते हैं । नायक जो सर्वत्र रहता है, बड़े व्यापक बल युक्त सैन्य से महान् है, खाद्य पदार्थों ऐश्वर्यों से विस्तृत, तेजस्वी बलवान् है उसको हम प्रजाजन कर और जल से अभिषिक्त करें ।

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥ ५ ॥

भा०—(अग्निः) यह भौतिक अग्नि (मर्यश्रीः) मनुष्यों के लिये श्री अर्थात् शोभा और लक्ष्मी को उत्पन्न करने वाला या मनुष्य के समान ही कान्ति वाला या, उनसे सदा सेवने योग्य, (स्पृहयद्-वर्णः) दीप्ति के कारण मन लुभालेने वाले रूप वाला, (तन्वा जर्भुराणः) विस्तृत रूप से खूब पुष्ट होकर (न अभिमृशे) किसी के स्पर्श को नहीं सहता है । जिस प्रकार उच्च जाति का पुरुष सुन्दर स्वच्छ रहकर किसी के मलिन स्पर्श को नहीं सहता उसी प्रकार अग्नि भी किसी के स्पर्श को नहीं सहता ।

ताप की अधिकता से उसे कोई छू नहीं सकता। उसी प्रकार (अग्निः) नायक अग्रणी पुरुष (मर्यश्रीः) साधारण मनुष्यों से आश्रय करने योग्य (स्पृहयद्-वर्णः) चाहने योग्य वर्ण रूप रंग और उद्योग वाला (तन्वा) अपने शरीर से (जर्भुराणः) खूब हृष्ट पुष्ट (न अभिमृशे) पर शत्रु को कभी सह नहीं सकता। उस (प्रत्यञ्चं) प्रति देश में व्यापक शक्तिशाली को (विश्वतः) सब प्रकार से (आ जिघर्मि) मैं प्रजाजन अभिषिक्त करता हूं और वह (अरक्षसा) दुष्ट, राक्षसों से भिन्न उत्तम भद्र पुरुष के से (मनसा) चित्त से (तत्) उस मेरे दिये ऐश्वर्य को (जुषेत) प्रेम से सेवन करे।

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वा दूतासो मनुवद्वदेम।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥२॥

भा०—(वचस्या जुह्वा मधुपृचं) शब्द करने या गर्जने वाली, अन्तरिक्ष में प्रकट वाणी विद्युद् गर्जना से जल और अन्न को देने वाली है और यज्ञ में जुह्वा-नाम पात्र से अग्नि मधुर अन्न, घृत आदि को लेता है। उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! नायक! तू (वरेण) श्रेष्ठ एवं शत्रु के निवारण करने वाले बल से (सहसानः) शत्रुओं का विजय करता हुआ (भागं) अपने सेवनीय अंश राष्ट्र को (ज्ञेयाः) जान, प्राप्त कर। हम लोग (त्वा दूतासः) तुझको अपने प्रमुख मानने वाले अथवा (दूतासः) हम दूत गण (त्वा) तुझको (मनुवत्) विचारने योग्य मन्त्र के समान यह हित उपदेश करते हैं। (वचस्या जुह्वा) उत्तम वचनों से युक्त वाणी से तुझको मैं (धनसाः) ऐश्वर्य का विभाग करने हारा विचारपति, (अनूनं) न्यून भाग न लेने वाले (मधुपृचं) अन्न से सम्पर्क रखने हारे अर्थात् भोग्य पदार्थ का भागी (जोहवीमि) स्वीकर करता हूं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[११]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८, १०, १३, १०, २० पङ्क्तिः। २, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ११, १२, १४, १८ निचृत् पङ्क्तिः । ७ विराट् पङ्क्तिः । ५, १६, १७ स्वराड् बृहती भुरिक् बृहती १५ बृहती । २१ त्रिष्टुप् ॥ एकाविंशर्चं सूक्तम् ॥

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! शत्रुहन्तः । तू (हवम्) हमारे पुकार या निवेदन को सुन । (मा रिषण्यः) हमें पीड़ा मत दे। हम (ते) तुझे (वसूनां दावने) ऐश्वर्यों के दान देने के लिये (स्याम) सदा उद्यत रहें। (इमाः) ये (हि) निश्चय से (वसूनाम्) बसे प्रजाजनों के बीच (ऊर्जः) अन्न और बल-पराक्रम और उनसे युक्त (वसूयवः) धनों के स्वामी (क्षरन्तः) बहते हुए (सिन्धवः) महा नदों के समान (त्वाम् वर्धयन्ति) समुद्र के समान तुझ को बढ़ाते हैं। अथवा (वसूयवः) धनाभिलाषी सेवक वीर पुरुष तेरी वृद्धि करते हैं।

सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अहिना परिस्थिताः) मेघ द्वारा धारण की गयी और (पूर्वीः) अन्तरिक्ष में पहले से भी विद्यमान सभी जलों को (इन्द्रः पिन्वति) सूर्य ही प्राप्त करता है और फिर वही इन्द्र मध्य-स्थानीय विद्युत् उस मेघ को (अवाभिनत्) छिन्न भिन्न कर देता है। उन ही जलों को (महीः सृजः) भूमियों पर बहा देता है। उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हे (शूर) शूरवीर ! तू (याः)

जिन (पूर्वीः) पूर्व से विद्यमान् और पूर्वजों से शासित (महीः) भूमियों को स्वयं (सृजः) प्राप्त हुआ और जिनकी (अपिन्वः) मेघ के समान सिंचाई करता रहा है वे भूमियां यदि (अहिना) मुकाबले पर मारने योग्य शत्रु ने (परि स्थिताः) घेर ली हों तो उस (अमर्त्यं चित्) न मरने हारे आत्मा के समान अपने को अमर अविनाशी मानते हुए शत्रु को तू (उक्थैः वावृधानः) उत्तम विद्योपदेशों से बढ़ता हुआ अवश्य (अव अभिनत्) छिन्न भिन्न कर नीचे गिरा डाल।

उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! निर्भय सेनापते ! (येषु) जिन (उक्थेषु) उत्तम वचनों में और (रुद्रियेषु) उत्तम उपदेष्टाओं के (स्तोमेषु) स्तुति वचनों या उपदेशों में तू (चाकन्) कामनावान् हो और (यासु मन्दसानः) जिन प्रजाओं में खूब हर्ष लाभ करता है (एता) वे सब (शुभ्राः) उत्तम शुभ फल देने वाले, उत्तम वचन, उपदेश और वे सब उत्तम प्रजाएं दीप्ति वाली विद्युतों के समान भी (वायवे तुभ्य इत्) वायु के समान बलशाली तेरे उपकार के लिये ही (सिस्रते) फैलती हैं।

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (शुभ्रम्) अति तेजस्वी, चमचमाते (शुष्मं) बल को (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए और (बाह्वोः) बाहुओं में (शुभ्रं) शुभ्र, चमचमाते (वज्रं) शस्त्र समूह को (दधानाः) धारण करने वाला शूरवीर पुरुष तुझे प्राप्त हो। और तू उनसे (शुभ्रः) अति तेजस्वी सूर्य के समान (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (अस्मे) हमारी (विशः) प्रजाओं को (दासीः) नाश करने वाली

शत्रु सेनाओं को (सूर्येण) सूर्य के समान संतापदायी नायक द्वारा (सह्याः) पराजित कर । अथवा (अस्मै विशः दासीः च सह्याः कुरु) हमारी प्रजाओं और सेविका भृत्याओं को भी (सह्याः) शत्रु बल को पराजित करने योग्य बना ।

गुहा॑ हि॒तं गुह्यं॑ गू॒ळ्हम॒प्स्वपी॑वृतं मा॒यिनं॑ क्षि॒यन्त॑म् ।
उ॒तो अ॒पो द्यां त॑स्त॒भ्वांस॒मह॒न्नहिं॒ शूर वी॒र्ये॑ण ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (वीर्येण) अपने बल से (गुहा-हितम् अन्तरिक्ष में स्थित, (गुह्यं) छुपने में कुशल, (अप्सु गूढं) जलों में छुपे (द्यां तस्तभ्वांसम्) आकाश को घेरने वाले, (अहिं) मेघ को (अहन्) छिन्न भिन्न करता है । उसी प्रकार हे (शूर) निर्भय वीर ! तू (वीर्येण) अपने बल पराक्रम से (गुहा हितम्) गुहा अर्थात् छुपने के स्थान में स्थित, (गुह्यं) अपने को छिपा लेने में कुशल (गूढम्) गुप्त और (अप्सु अपीवृतं) प्रजाओं के बीच ढके (मायिनं) मायावी (उत अपः क्षियन्तं) और प्रजाओं को ही क्षीण करते हुए या (अपः क्षियन्तं) प्रजाओं में घर किये हुए (द्यां तस्तभ्वांस) प्रकाश युक्त प्रजा के ज्ञानी, दानशील और व्यवहारशील भाग को स्तम्भित अर्थात् विघ्नों से कार्य करने में असमर्थ बनाने वाले (अहिं) अवश्य हन्तव्य, दण्डनीय शत्रु को (अहन्) विनाश कर ।

स्तवा॒ नु त॑ इन्द्र पू॒र्व्या म॒हान्यु॒त स्त॑वाम॒ नूत॑ना कृ॒तानि॑ ।
स्तवा॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोरु॒शन्तं॒ स्तवा॒ हरी॒ सूर्य॑स्य के॒तू ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रशंसा युक्त ! ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (पूर्व्या) प्राचीन, पहले किये (महानि) बड़े, पूज्य कार्यों की हम स्तुति करें (उत) और (नूतना) नये (कृतानि) किये गये कार्यों की भी स्तुति करें । (बाह्वोः) बाहुओं में (वज्रं) वज्र, शस्त्रास्त्रसमूह (उशन्तं) धारण करना चाहते हुए आपकी या बाहुओं में (उशन्तं) चमकते हुए

शस्त्र की हम (स्तवा) स्तुति करें । (सूर्यस्य) सूर्य के (हरी) धारण और आकर्षण या ताप और प्रकाश दोनों प्रकार के (केतू) किरणों के समान तेरे भी (केतू) शौर्य को बतलानेवाले (हरी) दोनों अश्वों की हम (स्तवा) स्तुति करते हैं ।

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् के (हरी) ताप और प्रकाश या धारण और आकर्षणशील दोनों प्रकार के किरण (वाजयन्ता) अन्न उत्पन्न करने की इच्छा वाले, (घृतश्चुतं) जल को लानेवाले, (स्वारं) ताप और गर्जन को (अस्वार्ष्टाम्) उत्पन्न करते हैं और उस समय (समना) समस्थलवाली भूमि (वि अप्रथिष्ट) खूब फैली रहती है और (पर्वतः) मेघ (सरिष्यन्) दौड़ता हुआ (अरंस्त) विहार करता है । उसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्विन् ! (वाजयन्ता ते हरी) वेगवान्, संग्राम में प्रयाण करने की इच्छावाले तेरे दोनों अश्व (घृतश्चुतं) बहते जल से निकलते, या तेज, प्रताप को दर्शानेवाले (स्वारं) शब्द को या गर्जन को (अस्वार्ष्टाम्) करते हैं । मनुष्यों सहित (भूमिः) भूमि (वि अप्रथिष्ट) विशेष रूप से विस्तृत हो, तेरा राष्ट्र बढ़े, (अरंस्त) वह खूब प्रसन्न हो, तू (सरिष्यन्) शत्रु पर चढ़ाई की इच्छा करता हुआ (पर्वतः चित्) मेघ के समान प्रजा पालन करनेहारा (समना) संग्राम कर और (अरंस्त) राष्ट्र में रमण कर, उसका सुख से उपभोग कर ।

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (पर्वतः) मेघ (नि सादि) आकाश में ठहरता है । और (मातृभिः) शब्द करनेवाली गर्जती हुई विजु-

लियों से (वावशानः) शब्द करता हुआ (अक्रान्) जाता है। और कृपकगण (दूरे पारे वाणीं वर्धयन्तः) दूर दूर तक वाणी बोलते हुए (इन्द्रेषितां धमनिं) इन्द्र-मेघ या विद्युत् की गर्जना को (नि पप्रथन्) और विस्तृत करते हैं। उसी प्रकार (पर्वतः) पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शत्रुओं पर और अपनी प्रजाओं पर शरों और ऐश्वर्य, सुखों की वर्षा करनेहारा तथा (पर्वतः) पालन करने के साधनों से सम्पन्न पुरुष सदा (अप्रयुच्छन्) अप्रमादी रहता हुआ (नि सादि) निरन्तर उच्च आसन पर बैठे। वह (मातृभिः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों से और माता के समान पालन पोषण करनेवाली प्रजाओं और घोर गर्जन करनेवाले तोप आदि साधनों से (वावशानः) राष्ट्र को निरन्तर वश करता हुआ (सम् अक्रान्) एक साथ अच्छी प्रकार आक्रमण करे। (दूरे पारे) बहुत दूर दूर तक (वाणीं वर्धयन्तः) वेद वाणी की वृद्धि करते हुए विद्वान् पुरुष (इन्द्रेषिताम्) परमेश्वर, गुरु की प्रेरित, उपदिष्ट वेदशास्त्र या राजा से प्रोक्त वाणी आज्ञा को (नि पप्रथन्) निरन्तर विस्तृत करें।

इन्द्रो॑ म॒हां सिन्धु॑मा॒शया॑नं माया॒विनं॑ वृ॒त्रम॑स्फुर॒न्निः।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी भिया॒ने कनि॑क्रदतो॒ वृष्णो॑ अस्य॒ वज्रा॑त् ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य या वायु या विद्युत् जिस प्रकार (महाम् सिन्धुम् आशयानं) बड़े भारी अन्तरिक्ष में छोटे (वृत्रम्) मेघ को (निः अस्फुरन्) बढ़ाता या आघात करता और (कनिक्रदतः) ध्वनि करनेवाले (अस्य वृष्णः) इस वर्षणशील मेघ के (वज्रात्) विद्युत् प्रताप से (भियाने) भयभीत से होकर (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों (अरेजेताम्) कापते हैं उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा यहां बड़े भारी (सिन्धुम्) वेग से जाने वाले अश्वसैन्य का आश्रय लेकर (आशयानं) आलस्य प्रमाद में पड़े हुए, (मायाविनं)

मायावी, छली कपटी, (वृत्रम्) बढ़ते हुए शत्रु को (निः अस्फुरत्) सर्वथा विनाश करे। और (कनिक्रदतः) सिंह गर्जना करनेवाले (अस्य-वृष्णः वज्रात्) इस बलवान् पुरुष के वज्र या शस्त्रास्त्र बल से (रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग स्वसैन्य और शत्रुसैन्य दोनों (भियाने अरेजेताम्) भय से कांपें। (२) अध्यात्म में सिन्धुप्राणमय कोश उसमें व्यापनेवाला मायावी बुद्धि का स्वामी (वृत्रम्) बलवान् मन है इसको (इन्द्रः) आत्मा ही (निः स्फुरत्) प्रेरित करता है। धर्ममेघ समाधि में आनन्द वर्षा करनेवाले इस आत्मा के ज्ञानवज्र या चेतना से प्राण अपान दोनों चलते हैं।

अरो॑रवी॒द्वृष्णो॑ अस्य॒ वज्रोऽमा॑नुषं॒ यन्मा॑नुषो नि॒जूर्वी॑त्।
नि मा॒यिनो॑ दान॒वस्य॑ मा॒या अपा॑दयत्पपि॒वान्त्सु॒तस्य॑ ॥१०॥४॥

भा०—(वृष्णः वज्रः) जिस प्रकार बरसते मेघ का विद्युत् वज्र (अरोरवीत्) घोर गर्जन करता है। और (यत्) मानो जिस प्रकार (अमानुषं) मनुष्य के बल से अधिक शक्तिशाली पशु को (मानुषः) मनुष्य (निजूर्वीत्) अपने बुद्धि के बल से मार डालता है और जिस प्रकार (सुतस्य पपिवान्) जल का पान करनेवाला वायु (मायिनः) घोर गर्जते (दानवस्य) दानशील मेघ की (मायाः) मायाओं, गर्जनाओं को (निः अपादयत्) उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अस्य) इस (वृष्णः) बलवान्, शस्त्रवर्षणकारी पुरुष का (वज्रः) शस्त्रास्त्रबल (अरोरवीत्) घोर गर्जन करे और (यत् मानुषः) जो मननशील ज्ञानवान् है वह (अमानुषम्) मनुष्य से अधिक, या उससे भिन्न पाशव बल को (निजूर्वीत्) विनाश करे। (मायिनः) दुष्टभाषण करनेवाले (दानवस्य) व्रतादि खण्डन करनेवाले कुटिल की (मायाः) समस्त मायाओं को वह (सुतस्य) ओषधिरस और अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य का (पपिवान्) पान एवं पालन करनेवाला वीर (निः अपादयत्) विनाश करे, नीचे गिरावे। इति चतुर्थो वर्गः ॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! जिस प्रकार (सोमं) सोम, ओषधिरस या प्राणवायु का पान किया जाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमं) ऐश्वर्य का (पिब पिब इत्) बराबर उपभोग कर, या बराबर पालन किया कर । (सुतासः) उत्पन्न सोमरसों के समान या (सुतासः) उत्पन्न अपने पुत्रों के समान (मन्दिनः) अति हर्षजनक (सुतासः) अभिषेक प्राप्त अधीन अध्यक्ष जन (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करें । (कुक्षी पृणन्तः) कोखें पूरनेवाले प्राण वायु गण भोजनों के समान (ते) वे सभी अध्यक्ष जन (ते कुक्षी) तेरी कोखों, या दलों को पूर्ण करें अर्थात् दांये बांये रह कर तेरे बल को बढ़ावें । (इत्था) इस प्रकार (सुतः) अभिषिक्त (पौरः) पुर का अध्यक्ष पुरुष (इन्द्रम्) राजा और समृद्ध राज्य दोनों की (आव) रक्षा करें और तुझे बढ़ावें ।

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्यावन् ! प्रभो ! (त्वे) तेरे अधीन रहकर हम (विप्राः) विविधविद्या और धनों को पूर्ण करनेवाले विद्वान् मेधावीजन (ऋतया सपन्तः) सत्य वाणी से सम्बद्ध, एक भाव होते हुए (अभूम) रहें । (धियं) उत्तम कर्म और ज्ञान का (वनेम) सेवन और आचरण करें । (अवस्यवः) ज्ञान रक्षा और उत्तम आनन्द लाभ की इच्छा करते हुए हम (ते प्रशस्तिम्) तेरी उत्तम स्तुति को धारण करें और तेरे उत्तम शासन को बनाये रखें । (ते दावने) तेरे दान की वृद्धि के लिये हम प्रजाजन (सद्यः) शीघ्र ही (ते रायः) तेरे ऐश्वर्य रूप (स्याम) हों । (२) विद्वान् परमेश्वर में रहकर उसका ध्यान धरें । (ऋतया) वेदवाणी से उसका भजन करें ।

रक्षार्थी, शरणार्थी होकर उसकी (प्रशस्ति) उत्तम स्तुति करें, उसके दिये ऐश्वर्य दान में सन्तुष्ट रहें।

स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥

भा०—जिस प्रकार मेघ (शुष्मिन्तमं वीरवन्तं रयिं रासि) सब से अधिक बल वीर्य से युक्त अन्न देता है और प्रजागण (अवस्यवः) अन्न की कामना करते हुए (ऊती) जल द्वारा की गयी तृप्ति से (ऊर्जं वर्धयन्तः) अन्न की वृद्धि कृषि से करते रहते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो हम लोग (ते) (ऊती) तेरी शक्ति, पालनसामर्थ्य से (अवस्यवः) रक्षा, ज्ञान, प्रीति, शत्रुनाश, वृद्धि आदि की कामना करते हुए (ऊर्जं वर्धयन्तः) बल पराक्रम को बढ़ाते रहते हैं (ते) वे हम (ते स्याम) तेरे होकर रहें। (यं) जिस (शुष्मिन्तमं) बहुत अधिक बलवाले, (वीरवन्तम्) वीर्यवान् पुत्र भृत्य मित्रादि से युक्त, (रयिम्) ऐश्वर्य को (चाकनाम) चाहते हैं, हे (देव) राजन् ! तू वही (अस्मे) हमें (रासि) प्रदान करता है।

रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! देव ! तू हमें (क्षयं रासि) निवास करने योग्य घर दे। (अस्मे) हमें (मित्रम्) मित्र (रासि) प्रदान कर, (नः) हमें (मारुतं शर्धः) वायुओं का सा प्रबल वृक्षों की तरह से शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ सैनिकों और विद्वानों का बल (रासि) प्रदान कर। (ये च) और जो (मन्दसानाः) मेघयुक्त वायुओं के समान सब को सुप्रसन्न हर्षदायक, (सजोषसः) समान रूप से परस्पर प्रेम करने वाले हैं और जो (अग्रणीतिम्) सर्व श्रेष्ठ नीति और युद्ध

में आगे बढ़ती सेना की (प्र पान्ति) रक्षा करते हैं वे (वायवः) विज्ञानवान् और बलवान् होने से 'वायु' नाम से कहाने योग्य हैं ।

व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥ ५ ॥

भा०—(येषु) जिन पूर्व कहे विद्वानों और वीर पुरुषों के आश्रय होकर प्रजाजन (सोमं) ऐश्वर्य की (व्यन्तु) कामना करते और उसको प्राप्त करते और भोग करते हैं । उन पर ही निर्भर रह कर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू भी (तृपत्) पूर्ण तृप्त और (द्रह्यत्) दृढ़ होकर (सोमं पाहि) उस ऐश्वर्य की रक्षा कर । हे (तरुत्र) संकटों और अविद्या से पार उतारने हारे ! सूर्य जिस प्रकार (बृहद्भिः अर्कैः) बड़े २ प्रकाशों से और अन्नों से (द्यां अवर्धयः) भूमि और आकाश को बढ़ाता, समृद्ध करता है, उसी प्रकार हे विद्वन् ! राजन् ! तू (अस्मान्) हमें (पृत्सु) संग्रामों के बीच (बृहद्भिः अर्कैः) बड़े उत्तम २ विचारों और तेजस्वी पूज्य वीर पुरुषों से (आ अवर्धयः) बढ़ा । इति पञ्चमो वर्गः ॥

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! हे (तरुत्र) दुःखों से पार उतारने वाले ! (ये) जो पुरुष (उक्थेभिः) उत्तम वेदोक्त वचनों से (सुम्नम्) सुख स्वरूप तेरी (आविवासान्) सेवा करते, तेरी उपासना करते तेरे सुख का आनन्द अनुभव करते हैं (ते) वे (बृहन्तः इत् नु) निश्चय से बहुत बड़े आदमी हो जाते हैं । (ते) वे (त्वा ऊताः) तेरी रक्षा में रहते हुए, (पस्त्यावत्) गृह के समान (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र को (स्तृणानासः) विस्तृत करते या (पस्त्यावत् बर्हिः) उत्तम प्रजा से सम्पन्न बड़े राष्ट्र या इस लोक को आसन के समान (स्तृणानासः) विस्तृत करते हैं वे भी

(वाजम्) ज्ञान और ऐश्वर्य को (अग्मन्) प्राप्त होते हैं अथवा वे (वाजम् अग्मन्) संग्राम में जाने में समर्थ होते हैं ।

उ॒ग्रेष्विन्नु शू॑र मन्द॒सान॒स्त्रिक॑द्रुकेषु पाहि॒ सोम॑मिन्द्र ।
प्र दोधु॑व॒च्छ्मश्रु॑षु प्रीणा॒नो या॑हि॒ हरि॑भ्यां सु॒तस्य॑ पी॒तिम् १७

भा०—हे (शूर) शूरवीर पुरुष ! तू (उग्रेषु) तेजस्वी वीर पुरुषों के बीच (मन्दसानः) अति प्रसन्न होता हुआ (त्रिकद्रुकेषु) तीनों प्रकार के कष्टों में, तीनों लोकों में सूर्य के समान (सोमं) ऐश्वर्य का ओषधिरस के समान पान या उपभोग कर । हे विद्वन् ! आचार्य ! तू (उग्रेषु) तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों पर (मन्दसानः) प्रसन्न होकर (त्रिकद्रुकेषु) शरीर, आत्मा और मन तीनों की तपस्याओं, वा तेजस्विता, वेदवाणी, और दीर्घ आयु इन तीनों के प्राप्त करने के लिये (सोमं पाहि) वीर्य की रक्षा कर, अथवा (सोमं पाहि) 'सोम' अर्थात् विद्या के इच्छुक शिष्य की रक्षा कर । हे शूरवीर ! तू (श्मश्रुषु) शरीर में स्थित बालों के समान अपने शरीर पर आश्रित जनों के अधीन या उनपर (प्रीणानः) अति प्रसन्न होकर उनके ही बल पर अपने शत्रुओं को (प्र दोधुवत्) खूब अच्छी प्रकार कंपा, भयभीत कर । और (हरिभ्यां अश्वों के द्वारा (सुतस्य) ऐश्वर्य या राष्ट्र की अपने पुत्र के समान (पीतिम्) पालना कर और अन्नरस के समान भोग को (याहि) प्राप्त कर ।

धि॒ष्वा शवः॑ शूर॒ येन॑ वृ॒त्रम॒वाभि॑न॒द्दानु॑मौर्णवा॒भम् ।
अपा॑वृणो॒र्ज्योति॒राया॑य॒ नि स॑व्यतः सा॑दि॒ दस्यु॑रिन्द्र ॥ १८ ॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र वायु या विद्युत् (दानुम्) जल देने वाले (वृत्रम्) मेघ को (और्णवाभम्) आच्छादन करने वाले मकड़ी के जाले के समान (अव अभिनत्) छिन्न भिन्न कर देता है और (आर्याय)

मनुष्य के लिये (ज्योतिः अपावृणोत्) सूर्य के प्रकाश को खोल देता है और वह मेघ (दस्युः) प्रकाशों का विघ्नकारक मेघ (सव्यतः) एक ओर हट जाता है उसी प्रकार हे (शूर) वीरपुरुष ! (येन) जिस बल से (दानुम्) अपने बल, सैन्य आदि काटने वाले (वृत्रम्) बढ़ते हुए शत्रु को (दस्युः) शत्रु का नाशकारी पुरुष (और्णवाभस्) मकड़ी के जाले के समान (अव आभिनत्) छिन्न भिन्न कर नीचे गिरा देता है तू उस (शवः) बल को (धिष्व) धारण कर । और तू (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (ज्योतिः अपावृणोः) प्रकाश को प्रकट कर उनको ज्ञान प्रदान कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वह तू संकटों को नाश करने हारा होकर (सव्यतः) दक्षिण हाथ (नि सादि) विराज अर्थात् सब का पूज्य होकर रह । वा वह प्रजानाशक पुरुष बायें हट कर बैठे ।

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ १६ ॥

भा०—(ये) जो पुरुष (ते) तेरे (ऊतिभिः) रक्षा आदि साधनों से (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धा करने ललकारने वाली शत्रु सेनाओं और (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को (तरन्तः) पार करते हुए विनाश करते हैं हम उनको (सनेम) प्राप्त करें और सूर्य जिस प्रकार (त्वाष्ट्रं विश्वरूपं) अपना तेजस्वी प्रकाश प्रकट करता है हे राजन् ! तु (अस्मभ्यम्) हमारे उपकार के लिये (त्रिताय) तीनों पुरुषार्थों के प्राप्त करनेवाले पुरुष के लिये (साख्यस्य) सखिभाव या मित्रता के कारण हमें (तत्) वह उत्तम (त्वाष्ट्रम् विश्वरूपम्) शिल्पि लोगों से प्राप्त होने योग्य सब प्रकार के रुचिकर रूप (अरन्धयः) हमें प्राप्त करा । (२) विद्वान् गुरु पक्ष में—(विश्वाःस्पृधः) जो समस्त तृष्णाओं और (दस्यून्) दुष्ट नाशकारी भावों को तरते हैं हम उनको प्राप्त करें । वह गुरु या प्रभु हमारे लिये (त्वाष्ट्रं विश्वरूपं) उस जगन्निर्माता का ही

मन, वचन, कर्म तीनों को वश करनेवाले शिष्य के प्रेम भाव के कारण परमेश्वरीय, सर्वदेवमयरूप का उपदेश करें।

अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥

भा०—(इन्द्रः सूर्यः) तेजस्वी सूर्य और विद्युत् जिस प्रकार (अंगिरस्वान्) तेज, ताप और वायु से युक्त होकर (बलम् भिनत्) मेघ को छिन्न भिन्न करता है और (चक्रम् अवर्तयत्) चक्र, दिक्चक्र को कपांता या विद्युत् यन्त्र के चक्र को चलाता है, इस उत्पन्न सुप्रसन्न जगत् के उपकारार्थ (वावृधानः) बढ़ता हुआ (अर्बुदं) मेघ को (नि अस्तः) उत्पन्न करता और फैलाता है। उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशकारी (अङ्गिरस्वान्) अंगारों के समान दाहकारी, शत्रुओंको भस्म कर देनेवाले, वीर पुरुषों का स्वामी होकर (अस्य) इस (सुवानस्य) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले या अभिषेक करने वाले (मन्दिनः) अति हर्ष से युक्त (त्रितस्य) संघ बल, सैन्य बल और धन बल तीनों प्रकार के साधनों से सम्पन्न राष्ट्र के हित के लिये (अर्बुदं) लक्षों सैन्य को (वावृधानः) बढ़ाता हुआ उसको (नि अस्तः) खूब विस्तृत करे। वह (सूर्यः न) सूर्य के समान (चक्रं) द्वादश राज चक्र को (अवर्तयत्) संचालित करे और (वलम्) घेरने वाले शत्रु को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥२१॥६॥१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सा) वह (ते) तेरी (दक्षिणा) बल और उत्साह उत्पन्न करने वाली (मघोनी) प्रभात वेला, उषा के समान अति ऐश्वर्यवती, प्रकाशमयी होकर (जरित्रे) स्तुति कर्ता पुरुष को (वरं) श्रेष्ठ ज्ञान (प्रति दुहीयत्) प्रत्यक्ष में प्रदान करती है।

हे परमेश्वर! तथा हे ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमारे वीच में विद्यमान (भगः) ऐश्वर्यवान् होकर (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले, विद्वान् उपदेशकों को (शिक्ष) दान दे। और (मा अति धक्) उनको अति क्रमण कर अपमानित करके संतप्त, दुःखित मत कर। हम लोग (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर (विदथे) ज्ञान प्राप्त कराने के लिये (बृहद्) बहुत उत्तम एवं बड़े ज्ञान वेद का (वदेम) उपदेश करें। इति सप्तमो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१२]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः–१—५, १२—१५ त्रिटुष्प्। ६–८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ भुरिक् त्रिष्टुप्। पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः १

भा०—(यः) जो (जातः एव) अपनी शक्तियों से प्रकट होकर (प्रथमः) सबसे आदि में विद्यमान और सबसे महान्, (मनस्वान्) विज्ञानवान्, मननशील, ज्ञानमय, (देवः) सूर्य के समान सबका प्रकाशक, (क्रतुना) अपने ज्ञान और कर्म के बल से (देवान्) समस्त देवों, पृथिवी आदि पदार्थों और विद्वान् पुरुषों को (परि अभूषत) सब प्रकार सुशोभित करता और उनको व्यापता है। (यस्य) जिसके (शुष्मात्) बल से (रोदसी) देह में प्राण और अपान के समान, प्रबल राजा से स्वपक्ष परपक्ष के समान, बलवान् नद से उसके दोनों तटों के समान आकाश और पृथिवी दोनों (अभ्यसेताम्) कांपते भयभीत होते और चल रहे हैं। हे (जनासः) मनुष्यो! (नृम्णस्य) उस ऐश्वर्य के (मन्हा) महान् ऐश्वर्य से (इन्द्रः) 'इन्द्र' परमैश्वर्यवान् है। (२) इसी प्रकार जो पुरुष गुणों से प्रकट होकर ज्ञानवान् विजिगीषु, अन्य

राजाओं को अपने ज्ञान और बल से पराजित करता है, जिसके बल से दोनों पक्ष कांपें, वह महान् पुरुष ऐश्वर्य के कारण 'इन्द्र' कहाता है।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२॥

भा०—हे (जनासः) विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो (व्यथमानाम्) चलायमान, अति विरल और तरल पदार्थों से बनी, भूकम्पों से कांपती हुई (पृथिवीं) पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ करता है। और जो (प्रकुपितान्) खूब भड़कते हुए, आग उगलते हुए तपे पर्वतों को (अरम्णात्) रम्य बनाता है या सूर्य जिस प्रकार (पर्वतान्) मेघों को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार जो अग्निमय पर्वतों को जो शमन करता है। और (यः) जो (वरीयः) बहुत बड़े (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष अर्थात् बीच के आकाश प्रदेश को (वि ममे) बनाता है (द्याम् अस्तभ्नात्) जो सूर्य आदि लोकों से मण्डित ऊपर के आकाश को थाम रहा है (सः इन्द्रः) वह परमैश्वर्यवान् होने से परमेश्वर ही 'इन्द्र' कहाता है। (२) इसी प्रकार जो राजा (व्यथमानाम् पृथिवीं) बलवान् उपद्रवकारियों से पीड़ित पृथिवीनिवासिनी प्रजा को दृढ़, मजबूत उपद्रवियों का दमन करने में समर्थ, व्यवस्थित करता है और जो (प्रकुपितान् पर्वतान्) खूब कोपयुक्त पर्वत के समान अचल प्रजापालक अन्य शत्रु राजाओं को (अरम्णात्) दण्डित करता है, जो अन्तरिक्ष के समान अपने हृदय और राष्ट्र को बहुत विशाल कर लेता है, जो (द्याम्) अपने भीतर विद्यमान कामना या तृष्णा को या (द्याम्) पृथिवी को या विद्वत् सभा को अपने वश करता है वह राजा 'इन्द्र' है।

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या वायु (हत्वा) आघात कर (अहिम्)

मेघ को (अरिणात्) चलाता, (सप्त सिन्धून्) वेग से बहन वाले जलों को (अरिणात्) वेग से बहाता है (गाः) जीवों के निवास योग्य भूमि, मङ्गल आदि लोकों को (उद् आजत्) ऊपर आकाश में चला रहा है और (वलस्य अपधा) आकाश में स्थित, घेरने वाले वलयाकार आवरण को या मेघ को दूर हटा देता है, (अश्मनो अन्तः अग्निं जजान) घर्षण से पाषाणों के बीच अग्नि को उत्पन्न करता है वा व्यापक दो मेघों के बीच में वैद्युत् अग्नि को उत्पन्न करता है, (संवृक्) प्रतिद्वन्द्वी अन्धकार को दूर करता है उसी प्रकार (यः) जो (अहिम्) सर्वत्र व्यापक प्रकृति के जड़ परमाणुमय स्वरूप को (हत्वा) व्यापकर उनमें आघात या गति, या प्रथम स्पन्दन उत्पन्न करके (अरिणात्) उनमें गति या क्रिया उत्पन्न करता है और (यः) जो (सप्त) निरन्तर गति करने वाले (सिन्धून्) प्रकृति के त्रसरेणुमय अवयवों और प्राणों को भी (अरिणात्) चलाता है (यः) जो (गाः) वेद वाणियों को (उत् आज) उत्तम रीति से प्रकट करता है या (गाः) जो गौ, अर्थात् सूर्यों और पृथिवी आदि लोकों को (उत् आजत्) ऊपर आकाश में चला रहा है जो (वलस्य अपधा) घेरने वाले अज्ञान आवरण को दूर हटाता, (यः) जो (अश्मनोः अन्तः) परस्पर उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष, नर मादा दोनों के बीच (अग्निं) अग्नि, जीव, चेतन को उत्पन्न करता है (यः समत्सु) जोएक साथ जीव परमेश्वर के सहयोग से उत्पन्न हर्षावसर में (संवृक्) समस्त दुखों को दूर करता है हे (जनासः) विद्वान् जनो, वह (इन्द्रः) इस समस्त संसार का संचालक, द्रष्टा 'इन्द्र' है। इसी प्रकार जो राजा (अहिम्) मुकाबले पर आये शत्रु का नाश करे, वेगवान् (सिन्धून्) अश्वों को संचालित करे, भूमियों को शासन करे, शत्रु के घेरे को दूर करे (अश्मनोः) शस्त्रों से सुसज्जित सेनाओं के बीच में अपने (अग्निम्) अग्रणी नायक या ज्ञानवान् दूत को प्रकट करे, भेजे, जो

(समत्सु) संग्रामों के बीच में (संवृक्) अच्छी प्रकार शत्रुओं को परास्त करे वह राजा 'इन्द्र' कहाने योग्य है । (३) अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा (अहिं) शरीर को चलाता, (सिन्धून्) प्राणों और देहगत रुधिर नाड़ियों को चलाता, इन्द्रियों को प्रेरित करता, तामस आवरणों को जेर के समान दूर करता, (अश्मनोः अन्तः अग्निम्) दोनों प्रकार के इन्द्रियों के बीच उनके नायक रूप मन को प्रकट करता वह अच्छा, बाधक कारणों को दूर करने वाला है ।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहा कः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

भा०—(येन) जिसने (इमा) ये (विश्वा) समस्त (च्यवना) गतिशील पदार्थ, सूर्य आदि लोक (कृतानि) बनाये । या, जिसने इन सबको गतिमान् किया है । (यः) जो (दासं वर्णम्) देने योग्य रूप को प्रथम (अधरम्) नीचे (गुहायाम्) बुद्धि में (कः) उत्पन्न करता है । या जो (दासं वर्णम्) देने योग्य वर्ण अर्थात् रूपवान् देह को (अधरम्) शरीर के अधो भाग में (गुहा) संवृत गर्भाशय में उत्पन्न करता है । (श्वघ्नी इव) व्याध जिस प्रकार (लक्षम् आदद्) निशाने को नहीं चुकाता उसी प्रकार (यः) जो (जीगीवान्) सर्व विजयी, सर्वोत्कृष्ट होकर (पुष्टानि) पोषण योग्य (लक्षम्) लाखों देहों को (अर्यः) सब का स्वामी होकर (आदत्) अपने वश में रखता है, हे (जनासः) लोगो ! (सः इन्द्रः) वही परमेश्वर है । (२) वही राजा इन्द्र है (येन) जिसके भय से (विश्वा) शत्रुदल कांपते हैं । (दासं वर्णम्) प्रजा के नाशक वर्ण अर्थात् घातक पेशे वालों को नीचे खोह में रखें । जो लक्ष को न चूकने वाले व्याध के समान (पुष्टानि लक्षम् आददः) लाखों हृष्ट पुष्ट सैन्यों को रखता है वह (अर्यः) स्वामी 'इन्द्र' कहाता है ।

यं स्मा॑ पृ॒च्छन्ति॒ कुह॒ सेति॑ घो॒रमु॒तेमा॑हु॒र्नैषो अ॒स्तीत्ये॑नम् ।
सो अ॒र्यः पु॒ष्टीर्विज॑ इ॒वा मि॑नाति॒ श्रद॑स्मै धत्त॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥५॥७

भा०—(यं) जिस परमेश्वर के विषय में (स्म) प्रायः लोग (पृच्छन्ति) पूछा करते हैं बतलाओ (कुह सः इति) वह कहां है ? (उत) और (ईम्) इस परमेश्वर को कुछ लोग (घोरम्) घोर, सब का हनन करने वाला, भयानक काल (आहुः) बतलाते हैं और कुछ लोग (एनम्) इसके विषय में कहा करते हैं कि (न एषः अस्ति इति) वह है ही नहीं, परमेश्वर की कोई सत्ता नहीं । (सः) वह (अर्यः) सब का स्वामी (विजः इव) भयदायक व्याध के समान (पुष्टीः) समस्त हृष्ट पुष्ट जीवों को (आमिनाति) विनाश करता है (अस्मै) इसके विषय में (श्रत्) सत्य ज्ञान प्राप्त करो, विश्वास पूर्वक यह सत्य जानो कि हे (जनासः) विद्वान् लोगो (सः इन्द्रः) वही 'इन्द्र' सर्वैश्वर्य-वान् परमेश्वर है । (२) जिस प्रसिद्ध राजा के विषय में लोग सदा पूछते रहते हैं वह कहां है ? शत्रु उसे घोर हत्याकारी कहते, विपक्षी अभिमानी उसकी सत्ता से इन्कार करते और वह दुष्ट शत्रुसेनाओं को भयभीत पशुओं को व्याघ्र के समान मारता है । सच जानो वही वीर 'इन्द्र' कहाने योग्य है । इति सप्तमो वर्गः ॥

यो र॒ध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒ यो ब्र॒ह्मणो॒ नाध॑मानस्य की॒रेः ।
यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शि॒प्रः सु॒तसो॑मस्य॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥६॥

भा०—(यः) जो (रध्रस्य) उत्तम रीति से आराधना करने वाले उपासक और दुष्टों को दण्ड देनेवाले, दयाशील वीर पुरुष को (चोदिता) सत् शास्त्रानुकूल प्रेरणा करनेहारा है । और (यः) जो (कृशस्य) कृश, निर्बल और स्वल्प धन और शक्ति वाले को (चोदिता) साहस पूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा करने वाला है, (यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्म, वेद और वेदज्ञ को, प्रेरनेवाला है, वेद का ऋषियों के हृदय में

प्रकाश करने वाला, वेदज्ञ विद्वानों को उपदेश द्वारा अन्यों पर अनुग्रह करने के लिये प्रेरित करने वाला है, जो (नाधमानस्य) हृदय में पाप कर्मों के लिये पश्चात्ताप करने वाले को पुनः सन्मार्ग में सदाचार पूर्वक रहने की प्रेरणा करने हारा है, और जो (कीरेः) स्तुति करनेवाले और उत्तम कार्य करने वाले को उत्तम कार्य करने की प्रेरणा करता है, (यः) जो (सुशिप्रः) उत्तम ज्ञानों वाला, उत्तम शक्तिशाली होकर (युक्तग्राव्णः) 'ग्रावा' अर्थात् उपदेश करनेवाले विद्वान् पुरुषों के सत्संग करने वाले का (अविता) रक्षक और (सुत-सोमस्य) उत्तम ऐश्वर्यों, ज्ञानों और उत्तम शिष्यों को उत्पन्न करने वाले वैश्य विद्वान्, शिष्य और आचार्य इनका जो व्यक्ति (अविता) रक्षक और उनकी इच्छा पूर्त्ति करने और आनन्द देने हारा है हे (जनासः) विद्वान् पुरुषो ! वस्तुतः (सः इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' है। (२) इसी प्रकार वह राजा जो (रध्रस्य चोदिता) दुष्ट पीड़क वीर को आज्ञा देनेवाला, कृश, निर्बल का रक्षक, (ब्रह्मणः) वेद, ज्ञान, धन, अन्न का दाता, याचक, ऐश्वर्य की कामना वाले, स्तुतिशील का प्रेरक, (युक्त-ग्राव्णः) ग्रावा अर्थात् शस्त्रास्त्र के बांधने में वीर सैनिक को उत्तेजित करने वाला, उत्तम बलवान् है जो (सुतसोमस्य) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले या ईश्वर का भजन करने वाले का रक्षक है वह ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' राजा है।

यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः। यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां ने॒ता स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर की (प्रदिशि) उत्कृष्ट रचना कौशल को अच्छा कर दर्शाने के निमित्त (अश्वासः) समस्त अश्व, शीघ्रगामी और व्यापक पृथिवी सूर्य आदि और विद्युत् आयु आदि हैं। (यस्य प्रदिशि-गावः) जिसके उत्तम कौशल दर्शाने के निमित्त (गावः) गौएं, वेद

वाणियें और देह में इन्द्रियें और इस लोक की उत्तम भूमियें और जन्तु उत्पन्न करने वाली मादायें, तथा गतिमान् सभी लोक हैं। (यस्य प्रदिशि) जिसके उत्तम रूप को दर्शन के लिये (विश्वे ग्रामाः) समस्त 'ग्राम' पदार्थों जनों पशु पक्षि आदि के सब संघ है और (यस्य प्रदिशि) जिसको उत्तम रीति से दर्शाने के लिये रमणकारी साधन, वेग से जाने वाले भूगोल और वायु आदि तथा सब उत्तम रस हैं। और जो प्रभु परमेश्वर (सूर्यम्) सब के प्रेरक सूर्य और उसके समान उत्पादक वीर्यवान् पुरुष को और (यः) जो (उषसं) कमनीय कान्तिवाली प्रभात वेला और, कमनीय उत्तम गुणों से युक्त स्त्री, और सूर्य के दाह करने वाली शक्ति को (जजान) उत्पन्न करता है (यः) जो (अपां) समस्त नदियों, प्रकृति के परमाणु, कारण दशा में स्थित तत्वों, लिङ्ग शरीरों, लोकों आदि का भी (नेता) नायक, संचालक है हे (जनासः) मनुष्यो! (सः) वही (इन्द्रः) इन्द्र है। (२) राजा जिसके (प्रदिशि) शासन में, प्रदेश या राज्य में, अश्व, गौ, नानाग्राम, सर्व प्रकार के यातायात के लिये रथ हैं, जो तेजस्वी पुरुष तथा कमनीय उत्तम स्त्री को राष्ट्र में उत्पन्न करता है, अर्थात् जिसके राष्ट्र में नपुंसक और बन्ध्यायें उत्पन्न नहीं होतीं, जो प्रजाओं का नायक है वह राजा 'इन्द्र' है।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः॥८॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर को (क्रन्दसी) दुखों के कारण रोने वाले (संयती) उत्तम मार्ग में यत्नशील पश्चात्तापकारी स्त्री पुरुष (विह्वयेते) विविध प्रकार से पुकारते हैं। और जिसको (परे) उत्तम कोटि के और (अवरे) निकृष्ट कोटि के, बड़े छोटे, ऊँचे नीचे (उभयाः) सभी (अमित्राः) शत्रु गण भी (विह्वयन्ते) विविध प्रकार से बुलाते हैं और (समानं चित्) एक ही (रथम्) रथ पर (आतस्थिवांसा)

बैठे हुए स्त्री पुरुष भी जिसको (नाना) भिन्न २ नामों से (हवेते) याद करते हैं हे (जनासः) मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही परमेश्वर 'इन्द्र' है। (२) जिस राजा को (क्रन्दसी) आकाश और पृथिवी के समान (संयती) परस्पर मिलनेवाली या (क्रन्दसी) परस्पर को ललकारनेवाली (संयती) युद्ध में संयत, सुसज्ज दोनों ओर की सेनाएँ (विह्वयेते) विविध प्रकार से अर्थात् एक नायक रूप से दूसरी प्रति पक्ष के नायक रूप से पुकारें। इसी प्रकार (परे अवरे उभया अमित्राः) छोटे बड़े सभी परस्पर मित्र भाव से न रहनेहारे जिसको अपनी सहायता के लिये बुलाते हैं। और (समानं रथं आतस्थिवांसा) एक समान रथ सैन्य के आश्रय पर बैठे, दोनों पक्ष के लोग भी जिसको (नाना) विविध उपायों से (हवेते) अपने २ पक्ष के विजय के लिये बुलाते हैं (सः इन्द्रः) वह 'इन्द्र' है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः॥९॥

भा०—(यस्मात् ऋते) जिस परमेश्वर और वीर नायक के विना (जनासः) मनुष्य (न विजयन्ते) विजय प्राप्त नहीं करते और युद्ध में एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लोग भी (यं) जिसको अपने (अवसे) रक्षा के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं और (यः) जो (विश्वस्य) समस्त विश्व का (प्रतिमानं) मापनेवाला, नपैना के तुल्य सब को अपने ही भीतर ले लेनेवाला (बभूव) है, जो सब से बड़ा, सब के मुकाबले पर आने में समर्थ है और (यः) जो (अच्युतच्युत्) दृढ़ से दृढ़ पदार्थों और दुर्गों और शत्रुगण को भी गिरा देने और भय से विमुख कर देनेहारा है. हे (जनासः) पुरुषो ! (सः इन्द्रः) वह 'इन्द्र' है। परमेश्वर सब नित्य, ध्रुव पदार्थों को भी अपने अधीन चलाने वाला होने से परमेश्वर 'अच्युतच्युत्' है।

यः शश्व॑तो मह्येनो दधा॑नानम॑न्यमानाञ्छर्वा॑ ज॒घान॑ । यः शर्ध॑ते नानु॒ददा॑ति शृ॒ध्यां यो दस्यो॑र्ह॒न्ता स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥१०॥८॥

भा०—(यः) जो (महि) बड़ा भारी (एनः) पाप (दधानान्) करनेवालों, (शश्वतः) सदा से चले आये या वंश परंपरा से उस में फंसे हुओं को और (अमन्यमानान्) शासन को न मानने और उत्तम मार्ग को न जानने वाले उच्छृङ्खलों और अज्ञानियों को (शर्वा) बाणों और शासनरूप दण्ड से (जघान) नाश करता है। परमेश्वर पापियों के पाप को और अज्ञानियों के अज्ञान को (शर्वा) उसके नाश करनेवाले 'शरु' प्रायश्चित्त, पश्चात्ताप और ज्ञान से दूर करता है। और (यः) जो (शर्धते) कुत्सित, निन्दित वाणी बोलने और निन्दित कर्म करनेवाले की (शृध्यां) निन्दित वाणी को (न अनुददाति) अनुसार कभी फलने नहीं देता, अर्थात् दूसरे के बुरे भले कहे को फलने नहीं देता, और (यः) जो (दस्योः) नाशकारी दुष्ट पुरुष का (हन्ता) नाशक है हे (जनासः) विद्वान् पुरुषो ! (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष राजा और उन ही गुणों वाला परमेश्वर 'इन्द्र' पद से कहाता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

यः शम्ब॑रं॒ पर्व॑तेषु क्षि॒यन्तं॑ चत्वारि॒ंश्यां श॒रद्य॒न्ववि॑न्दत् । ओ॒जा॒यमा॑नं॒ यो अहिं॑ ज॒घान॒ दानुं॒ शया॑नं॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥११॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (पर्वतेषु क्षियन्तं) पर्व वाले मासों में विद्यमान (शम्बरं) चन्द्र को (चत्वारिंश्यां शरदि) चालीसवें वर्ष में (अनु अविन्दत्) पुनः पूर्व स्थान पर ही प्राप्त कराता है या सूर्य जिस प्रकार (पर्वतेषु) अभ्र अर्थात् सूक्ष्म मेघों के रूप में रहने वाले (शम्बरं = संवरम्) जल को वर्षा रूप में गिरने से रोक रखनेवाले बाधक पदार्थ को भी (चत्वारिंश्यां शरदि) चालीसवें वर्ष में, अर्थात् लम्बी से लम्बी चालीस वर्ष की अनावृष्टि के बाद भी (अनु अविन्दत्) प्राप्त कराता है अथवा (पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं अनुअविन्दत्) जिस प्रकार

मेघों में विद्यमान जल को इन्द्र अर्थात् विद्युत् प्राप्त कर लेता है और जिस प्रकार (पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं चत्वारिंश्यां शरदि अनुअविन्दत्) ४० वें वर्ष के उपरान्त पालन शक्ति या पूर्ण ज्ञान से युक्त विद्वानों या देह के पोरुओं में विद्यमान 'शम्बर' अर्थात् 'संवर' अच्छी प्रकार से गोपनीय या वरण करने योग्य ज्ञानराशि वेद या ब्रह्मज्ञानमय शब्दब्रह्म या ब्रह्मचर्य के पूर्ण बल को युवा पुरुष प्राप्त करता है, उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (पर्वतेषु) प्राणिवर्ग को पालन करने वाले जल, वायु, अग्नि आदि तत्वों में (क्षियन्तं) विद्यमान (शम्बरं) शान्ति प्रदान करनेवाले एवं सबको वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ स्वरूप को (अनु) निरन्तर (अविन्दत्) स्वयं धारता और अन्यों को प्राप्त करता है और (यः) जो परमेश्वर (ओजायमानं) बल पकड़नेवाले (अहिम्) सर्प के समान कुटिल, मेघ के समान हृदयाकाश पर आजानेवाले, (दानुं) मर्मच्छेदी, (शयानं) हृदय में अव्यक्त रूप से रहने वाले अज्ञान को भी विद्युत् के समान (जघान) नष्ट करता है हे (जनासः) पुरुषो ! (सः इन्द्रः) वही सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' है । (२) जो राजा (पर्वतेषु) प्रजा के पालक अध्यक्षों के आश्रय या उनके आधीन रहने वाले (शम्बरं) शत्रुगण और प्रजागण को शमन करने वाले, शान्तिदायक बल को अपनी ४० वर्ष में अपने अनुकूल रूप से यथावत् प्राप्त करलेता है और जो बल पराक्रमशील अपने वध्य या आक्रमणकारी, अपनी प्रजा के नाशक, छुपे भीतरी और बाहरी शत्रु और काम वेग को भी नाश कर लेता है वह पुरुष पुंगव 'इन्द्र' कहाता है ।

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर सूर्य के समान (सप्तरश्मिः) सात रश्मियों वाला, (वृषभः) मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने

वाला, (तुविष्मान्) वायु के समान बहुत बलवान् होकर (सर्तवे) सर्वत्र गति करने, सब जगत् के संचालन करने के लिये (सप्तसिन्धून्) गति स्वभाव के नदियों तथा प्राणों के समान सात प्रकृति विकृतियों को (अवासृजत्) रचता है। (यः) जो (वज्रबाहुः) सशस्त्र वीर पुरुष के समान (द्याम् आरोहन्तं) आकाश में वृद्धि पाते हुए वट के समान फैलते हुए (रौहिणम्) संसार को (अस्फुरत्) ज्ञान वज्र से विनाश करदेता है हे (जनासः) पुरुषो ! (सः इन्द्रः) वह परमैश्वर्यवान् 'इन्द्र' है। (२) राजा राज्य के सात अंगों से युक्त होकर 'सप्त रश्मि' है। सूर्य के समान तेजस्वी, वायु के समान बलवान्, राज्य भार को उठाने में वृषभ के समान अथवा प्रजाओं पर ऐश्वर्य की वृष्टि करने वाला होने से मेघ के समान अपने सातों (सिन्धून्) स्रोतों उक्त ऐश्वर्यों को बढ़ाने के लिये ही उत्पन्न करता है। वह (वज्रबाहुः) खड्ग हाथ में लेकर (द्याम् आरोहन्तं) आकाश में फैलते वट के समान (रौहिणं) क्रम से अपनी जड़ें फैलाने वाले शत्रु को (अस्फुरत्) विनाश करता है वह विद्युत् या वायु के समान तेजस्वी होने से 'इन्द्र' है। प्रबल राजा का वायु और कुटिल, गर्वी बलवान् शत्रु राजा का शाल्मलि वृक्ष के दृष्टान्त से वर्णन देखो (महा० शान्ति पर्व अ० १५३, १५४)। अथवा—वराहवः स्वतपसो विद्युन्महसो धूपयः। स्वापयो गृहमेधाश्चेत्येते ये च मे शिमि विद्विषः। पर्जन्याः सप्त पृथिवीमभिवर्षन्ति वृष्टिभिः ॥ अथर्व० ॥ उत्तम वाणी, तप, कीर्त्ति, बल, और बन्धुता, वाले तथा गृहस्थ, और अनाचार के शत्रु ये सात मेघ के समान उपकारी जन प्रजा पर सुखों की वर्षा करते हैं।

द्यावा॑ चिदस्मै पृथि॒वी न॑मेते॒ शुष्मा॑च्चिदस्य॒ पर्व॑ता भयन्ते।
यः सो॑म॒पा नि॑चि॒तो वज्र॑बाहु॒र्यो वज्र॑हस्तः॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ १३

भा०—(द्यावापृथिवी चित्) आकाश और पृथिवी दोनों भी लोक (अस्मै नमेते) इसके आगे झुकते हैं। (अस्य शुष्मात्) इसके बल से

(चित्) ही (पर्वताः भयन्ते) पर्वत और मेघ भी भयभीत से होकर कांपते हैं। (यः) जो (सोमपाः) समस्त जगत् का पालक और समस्त ऐश्वर्यों का पालक, (निचितः) सर्वत्र व्यापक, (वज्र-बाहुः) वज्र के समान सब पापों को वर्जन करने में समर्थ बलशाली, और (वज्रहस्तः) उस वर्जनकारी बल से ही सबको दण्ड देने वाला है। हे (जनासः) मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही परमेश्वर्यवान् 'इन्द्र' परमेश्वर है। (२) राजा के पक्ष में—(द्यावापृथिवी) राज वर्ग और प्रजावर्ग या नर नारी जिसके आगे झुकें, (पर्वताः) पालन शक्ति से युक्त पर्वत के समान ऊंचे दृढ़ राजा भी जिसके बल से कांपे, वह (सोमपाः) राष्ट्रैश्वर्य का भोक्ता, वज्र, शस्त्रास्त्र युक्त सैन्य रूप बाहुओं को धारण करने वाला, स्वयं भी शस्त्रास्त्र धारण किये हुए, शासन दण्ड को हाथ में लिये (निचितः) सुदृढ़ शरीर, संचित ऐश्वर्यवान् और बलवान् राजा 'इन्द्र' है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः॥१४॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (सुन्वन्तं) सवन, अर्थात् यज्ञ, प्रार्थना, उपासना, ज्ञानसम्पादन, ऐश्वर्य वृद्धि आदि करते हुए पुरुष की (अवति) रक्षा करता है। (यः पचन्तम् अवति) जो परमेश्वर विद्या और बल को परिपक्व करने और तपस्था से आत्मा को परिपक्व करने वाले की रक्षा करता है। (यः) जो (ऊत्या) अपनी रक्षाकारिणी शक्ति से (शंसन्तं) स्तुति करने और अन्यों को ज्ञानोपदेश करने वाले की और (यः शशमानं) जो ऊंचे गति करने वाले, अधर्म को लांघकर धर्म मार्ग में जाने वाले धर्मात्मा पुरुष की रक्षा करता है (यस्य वर्धनम् ब्रह्म) जिस को ब्रह्म, वेद, और ब्राह्म बल बढ़ाता, या जिसके गुणों का महान् स्वरूप प्रकट करता है, (यस्य सोमः वर्धनम्) और जिसकी महिमा को सोम, ओषधिवर्ग, वीर्य और क्षात्र बल बढ़ा रहा है (यस्य इदं राधः) जिसकी

यह समस्त आराधना और ऐश्वर्य है हे (जनासः) पुरुषो ! (सः) वही परमेश्वर (इन्द्रः) 'इन्द्र' है । (२) जो राजा (सुन्वन्तं) अपने अभिषेक करने वाले प्रजागण की रक्षा करता, रिपु गण को प्रताप से तपाने वाले की रक्षा या धन से तृप्ति करता, स्तुति या ज्ञानोपदेश करने और अधर्म मार्ग को लांघने वाले को पालता है । ब्राह्म बल और सोम क्षात्र बल, अथवा ब्रह्म-धन और अन्न और सोम ऐश्वर्य जिसका बढ़ाते, जिसका यह राष्ट्र ऐश्वर्य है वह राजा 'इन्द्र' है ।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥१५॥६

भा०—(यः) जो परमेश्वर (दुध्रः) दुर्धर्ष और अजेय होकर भी (सुन्वते) सवन, यज्ञ, प्रार्थना उपासना करने वाले के लिये और (पचते) बल, ज्ञान, और वीर्य को ब्रह्मचर्य और तपस्या से परिपक्व करने वाले पुरुष को (वाजं आददर्षि) सब प्रकार का ज्ञान, धन अन्न और बल प्रदान करता और संग्रामों को छिन्न भिन्न करता है । (सः) वह तू (किल) निश्चय से (सत्यः असि) सत्य स्वरूप, बलवान् , सत् पुरुषों और सत् कारण में विद्यमान है, तेरी सत्ता में वस्तुतः कोई संदेह नहीं । हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (विश्वह) नित्य प्रति दिन, (वयं) हम लोग (ते प्रियासः) तेरे प्रिय और (सुवीरासः) उत्तम वीर्यवान् एवं वीर, पुत्र भृत्यादि युक्त होकर (विदथम् आवदेम) तेरे विषयक ज्ञान का उपदेश करें । (२) जो राजा अभिषेक और शत्रु पीड़न करने के लिये शस्त्रादि बल और अधिकार देता है । वही निश्चय सत्य न्यायकारी और बलवान् है । हम उसके प्रेम पात्र, वीर होकर संग्राम और ज्ञान लाभ की चर्चा करें । विशेष देखो (अथर्ववेद भाष्य का० २० । सू०३४।१–१८)

इति नवमो वर्गः ॥

[१३]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, १०, ११, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ९, १३ त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती । ५, ६ विराट् जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतुः जनित्री) ऋतुमती स्त्री पुत्र उत्पन्न करने हारी होती है, और (तस्याः परि जातः) उससे उत्पन्न हुआ पुत्र (यासु वर्धते) जिन जलों के भीतर लिपटा हुआ बढ़ता है वह उन (अपः आ अविशत्) जलों के भीतर प्रविष्ट होकर रहता है। (आहनाः) वह प्रेममयी माता ही (तत् अंशोः) उस अपने से उत्पन्न पुत्र को (पयः पिप्युषी) दूध पिलाने वाली (अभवत्) होती है। वही प्रेम वश उसको दूध पिलाया करती है। (अंशोः) किरण के समान सुन्दर उस बालक के लिये (प्रथमं) सब से प्रथम (तत्) वह (पीयूषं) दुग्ध ही पान योग्य होने से 'पीयूष' है और वह (उक्थ्यम्) अति उत्तम, प्रशंसा योग्य होता है। और जिस प्रकार (ऋतुः जनित्री) सब ओषधियों को उत्पन्न करने वाला मौसम ही उन ओषधियों की माता है। जिनमें वह वृद्धि पाता है उन जलों में भी वह ओषधि (तस्याः जातः) उस ऋतु से उत्पन्न होकर उन जलों में प्रविष्ट होता है वही 'ऋतु' ही उसमें व्यापक रहकर अपने (पयः) रसका पान कराती है वह ऋतु का जल ही उस सोम आदि ओषधि के लिये उत्तम जल है। ठीक इसी प्रकार (ऋतुः) ज्ञानवान् पुरुषों की बनी सभा ही (अंशोः जनित्री) राष्ट्र के भोक्ता या तेजस्वी उदीयमान राजा को उत्पन्न करने वाली है। (तस्याः परि जातः) उससे प्रकट होकर वह उन (अपः आ अविशत्) आप्त पुरुषों और

प्रजाओं में प्रवेश करे (यासु वर्धते) जिनमें वह बढ़ता है। (आहना) प्रेम से प्राप्त होकर वह उत्पादक माता रूप राष्ट्र प्रजा (पयः पिप्युषी) पुष्टि कारक पदार्थों को पान करा करा उसकी वृद्धि करती है। (अंशोः) सूर्य के समान तेजस्वी और व्यापक राजा के लिये वह ही प्रजा का दिया (पीयूषं) नये पौधे के लिये जल के समान पुष्टि कारक अंश या भाग (प्रथमं) सब से उत्तम (तत् उक्थ्यम्) अति प्रशंसनीय है।

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम्। समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः॥ २॥

भा०—(सध्री) एक स्थान पर (पयः बिभ्रतीः) जलों को धारण करती हुई (ईम् परियन्ति) जल धाराएं सब तरफ़ बहती हैं और वे ही (विश्वप्स्न्याय) समस्त विश्व को पालन करने के लिये (भोजनम् प्रभरन्त) खाने योग्य पदार्थ को खूब अधिक मात्रा में प्राप्त कराती हैं। (प्रवताम्) वेग से जाने वाली उन सब का (अनुस्यदे) अनुकूलता से बहने के लिये (समानः) एक जैसा (अध्वा) मार्ग है। (यः) जो तू (ताः) उन जल धाराओं को (प्रथमं) सबसे प्रथम (अकृणोः) मेघ, सूर्य या विद्युत् के समान बनाता है (सः) वह तू (उक्थ्यः) उत्तम स्तुति योग्य (असि) है। (२) इसी प्रकार (पयः परि बिभ्रतीः) दूध को स्तनों में धारण करती हुई (सध्रीः) सहवासिनी होकर (ईम्) सर्व प्रकार से इस पति को प्राप्त हो। सब प्रजा को पालने के लिये भोजन उपस्थित करें (अनुस्यदे) अनुकूल होकर चलने में सब (प्रवता) उत्तम आचार से रहने वालों का यही एक जैसा मार्ग है। जो (ता) उन नाना व्यवस्थाओं को, बालकों की जननियों या माताओं या देवियों को (प्रथमं) सबसे प्रथम या मुख्य रूप से उत्पन्न करता है, वही प्रशंसनीय है।

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो एक परमेश्वर (ददाति) समस्त पदार्थ प्रदान करता है वही (एकः) एक (अनुवदति) समस्तपदार्थों के उत्तम अनुकूल वेदनीय सुखकारी उपयोग का उपदेश करता है। (तत्) वह (रूपं) नाना रूपों को मूर्त्तिमान् और रुचि कर पदार्थों को (मिनन्) विनष्ट करता है और (तद् अपाः) उन २ नाना कर्मों को करने वाला भी वह (एकः) एक अकेला ही (ईयते) जाना जाता है। (एकस्य) उस एक अद्वितीय परमेश्वर की ही (विश्वा) ये समस्त (विनुदः) विविध प्रेरणाएं हैं, वही एक (तितिक्षते) सब संसार-सञ्चालन आदि की पीड़ाओं को सह रहा है। (यः ता अकृणोः जो परमेश्वर उन सब क्रियाओं को (प्रथमं) पहले ही से कर रहा है और करता है, (सः उक्थ्यः असि) वही सबसे अधिक स्तुति योग्य है।

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥

भा०—(प्रजाभ्यः) अपनी प्रजाओं के हित के लिये प्रजापति या गृहपति जन जिस प्रकार (पुष्टिं विभजन्तः) पोषणकारी पशु, अन्न, भूमि आदि समृद्धि को विभाग करते हुए (आसते) राजा का आश्रय लेकर बैठते हैं उसी प्रकार लोग जिस परमेश्वर को (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के हित के जिये (पुष्टिं) समस्त समृद्धिमय जानकर (विभजन्तः) विविध प्रकार से भजन करते, उसकी भक्ति करते हैं और जिस प्रकार (आयते) आगामी काल, भविष्य के लिये लोग (रयिम्) ऐश्वर्य को (असिन्वन्) गांठते हैं और जिस प्रकार लोग भविष्य के लिये (पृष्ठं असिन्वन्)

अपनी पीठ, या आधार को पक्का, मजबूत बनाते हैं (इव) उसी प्रकार जिस परमेश्वर को (रयिम्) सर्वस्व धन, बल रूप (पृष्ठं) देह में पीठ के समान संसार भर को थामने वाला और (प्रभवन्तं) सब का प्रभु होने वाले को (असिन्वन्) बांधते, हृदय में गांठते, उसके साथ प्रेम बना कर उसको अपने से जोड़ते हैं। और मनुष्य जिस प्रकार (दंष्ट्रैः भोजनं अत्ति) अपनी दांढों से भोजन चबाकर खाता है उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (पितुः) सब संसार का पालक होकर भी दाढ़ों से भोजन के समान ही समस्तजगत् को (अत्ति) प्रलय काल में ग्रास कर जाता है और (यः) जो (ता अकृणोः) तू हे परमेश्वर ! उन नाना कर्मों को सब से पहले से ही करता आ रहा है (सः) वह तू (उक्थ्यः) वेदों द्वारा प्रशंसा के योग्य (असि) है।

अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—हे (अहिहन्) मेघ के नाशक सूर्य या विद्युत् के समान अज्ञान आवरण के नाशक या प्रकृति के अविकृत तमस को दूर करनेवाले ! परमेश्वर ! तू (दिवे संदृशे) सूर्य के प्रकाश के द्वारा अच्छी प्रकार से देखने के लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (अकृणोः) बनाता है। और (यः) जो तू (धौतीनाम्) दौड़ती हुई, वेग से जाती हुई, भूमियों, नदियों और लोक प्रजाओं के (पथः) मार्गों को (आरिणक्) स्वच्छ, प्रकट और बेरोक कर देता है। (उदभिः वाजिनं) जलों से सींच- कर जिस प्रकार अन्न से युक्त क्षेत्र गत ओषधिवर्ग को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं उसी प्रकार (देवाः) विद्वान् पुरुष (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुति यों से (देवं) सर्वप्रकाशक, सर्वदानी (वाजिनम्) बलवान् (त्वा)

तुझ को (अजनन्) प्रकट करते हैं (सः उक्थ्यः असि) वह तू सब से प्रशस्त वचन वेद वाक्यों से स्तुति के योग्य है । इति दशमो वर्गः ॥

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ । सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (विवस्वति) सूर्य के ऊपर निर्भर कर परमेश्वर (भोजनं) भोजन (च) और (वर्धनं) श्रेष्ठ वृद्धिकर धन का (दयसे) प्रदान करता है और जो परमेश्वर (आर्द्रात्) गीले वृक्ष से (शुष्कं) सूखे फल या काष्ठ के समान (आर्द्रात्) गीले जल-मय मेघ से (मधुमत्) अन्न से युक्त (शुष्कं) बलकारी, परिपक, सूखा, पका, खेत (दुदोहिथ) प्राप्त कराता है वही परमेश्वर (विवस्वति) सूर्य में ही (शेवधिं) अपार खजाना (निदधिषे) गुप्त रूप से स्थापित करता है और जो (विश्वस्य) समस्त संसार का (एकः) अकेला ही (इशिषे) ईश्वर, स्वामी, उस पर शासन करता है । (सः उक्थ्यः असि) वह तू प्रशंसनीय वचनों के योग्य है ।

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः । यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वा अभितः सास्युक्थ्यः॥७॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (धर्मणा) अपने धारण सामर्थ्य या ईश्वरीय नियम से जगत् को पालन करने के हेतु (पुष्पिणीः च) फूलों वाली (प्रस्वः च) उत्तम फल उत्पन्न करने वाली और (अवनीः) सब प्राणियों को रोगादि से बचानेवाली, नाना ओषधि लताओं को, भूमियों और नारियों को (दाने) रोगों को काटने और खेत बनाने और धर्मपूर्वक सन्तानोत्पत्ति के लिये अन्यों को दान देने के निमित्त (अधारयः) धारण करता है । और (यः) जो (दिवः) सूर्य, अन्तरिक्ष

और पृथिवी में (असमाः द्युतः) एक से एक भिन्न, नाना विचित्र चमकानेवाले और पृथिवी आदि पदार्थ (अजनः) उत्पन्न करता है, और जो (उरुः) स्वयं महान् होकर (ऊर्वान्) नाना विनश्वर पदार्थों को भी रचता है (सः उक्थ्यः असि) वह तू स्तुति करने योग्य है ।

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरि विष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (पुरुकृत्) बहुत पदार्थों और लोकों को बनानेहारा है । जो (सहवसुं) वसने वाले प्रणियों और लोकों के साथ, विद्यमान या बसाने, जीवन देने वाले पदार्थों के साथ २ विद्यमान (नार्मरं) मनुष्यों को मारने वाले घातक कारण को (निहन्तवे) विनाश करने, और (पृक्षाय) अन्नादि के प्राप्त करने और (दासवेशाय च) प्राण नाशक पदार्थों के नाश करने के लिये या (दासवेशाय) दास, सेवक भृत्यादि पर अनुग्रह करने के लिये (ऊर्जयन्त्याः) अन्न उत्पन्न करने वाली भूमि के (आस्यम्) मुख को (उत एव अद्य) सदा (अपरिविष्टम्) किसी पदार्थ से आच्छादित नहीं (अवहः) रखता, सदा खुला रखता है (सः उक्थ्यः असि) वह ही तू स्तुति के योग्य है । (२) राजा जो (नार्मरं सहवसुं) मनुष्यों के घातक धनाढ्य पुरुष को नाश करने के लिये और अन्न और दस्युनाशक, भृत्युपोषक धन की वृद्धि के लिये (ऊर्जयन्त्याः अपरिविष्टम् आस्यम्) पराक्रम शील सेना के मुख को सदा अनावृत या खुला रखता है । अथवा (निहन्तवे) शत्रु नाश के लिये (नार्मरं सहवसुं च अवहः) कोश के समान शत्रु बल के नाशक सैन्य को भी धारण करता वह वीर राजा सदा प्रशंसनीय है ।

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (दश शतं) दस गुणा सौ, १००० अर्थात् सहस्रों (साकम्) साथ हैं, जिसकी सहस्रों योगादि द्वारा उपासना करते हैं (यत् ह) और जिस (एकस्य श्रुष्टौ) एक अद्वितीय परमेश्वर के गुण श्रवण और आनन्द लाभ करने के लिये (चोदम्) गुरु द्वारा उपदेश करने योग्य प्रभु प्रेरित वाक्य, वेद को (आविथ) ज्ञान करते और धारण करते हो, और जो (अरज्जौ) बिना रस्सी के ही (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को (सम् अनप्) अच्छी प्रकार बांध लेता है। और जो (दभीतये) विनाश से बचने के लिये (सु प्र-अव्यः) उत्तम रीति से रक्षा करने में कुशल (अभवः) रहा करता है। (सः उक्थ्यः असि) वह तू हे परमेश्वर ! सबसे प्रशंसा करने योग्य है। (२) जिस राजा के साथ सहस्रों वीर हों, जो तू (एकस्य श्रुष्टौ) प्रजा के एक २ व्यक्ति के सुख के लिये भी (चोदम् आविथ) आज्ञा या कानून की रक्षा करता है। रस्सी आदि बन्धन के स्थान कैद आदि के विना ही केवल तेज से दुष्टों को दमन करता है वही विनाशकारी शत्रु के आक्रमण को रोकने और उससे बचने के लिये उत्तम रक्षक है वही प्रशंसनीय है।

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं दुदुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम्।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च सन्दृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (पौंस्यम् अनु) महान् पुरुषत्व के अधीन ही (विश्वा इत् रोधना) सब प्रकार की रुकावटें या नियम व्यवस्थाएं हैं। वे (अस्मै) उसके (पौस्यं अनु ददुः) पुरुषत्व का हमें प्रदान करती। हमें बतलाती हैं। सब मनुष्य (कृत्नवे) सब कर्मों को करने वाले विश्वस्रष्टा की आराधना के निमित्त ही (धनम् दधिरे) उत्तम ऐश्वर्य को धारण करते हैं। वह परमेश्वर ही (षट्) छहों (विष्टिरः) ऋतुओं को सूर्य के समान छहों विस्तृत दिशाओं को अथवा, द्यौ, पृथिवी,

दिन रात्रि, और आपः, ओषधि इन छहों को और (पञ्च) पांच (संदृशः) देखने वाली इन्द्रियों को देहवान् आत्मा के समान पांचों प्रकार के सम्यग् दृष्टि वाले तत्वज्ञ विद्वान् पुरुषों को (तथा) अच्छी प्रकार दिखाने वाले पांचों प्रकार के प्रकाशक अग्नियों को (अस्तभ्नाः) धारण करता है और जो तू (परः) सबका पालक, पूरक और सबसे उत्कृष्ट है (सः उक्थ्यः असि) वह तू सबसे श्रेष्ठ प्रशंसनीय है। (२) राजा की सब राज्य व्यवस्थाएं या (रोधनाः) शत्रु को थाम करने वाली सेनाएं उसको अधीन रहकर उसके बल प्रदान करती हैं उसी कर्त्ता के लिये प्रजाएं सब धन राष्ट्र रखती हैं। वह छहों दिशाओं को या अपने से अतिरिक्त प्रकृतियों को, ६ हों अमात्य, सुहृद, कोश दुर्ग और बल इन पांचों तत्वदर्शी साधन, ४ वेद और पांचवां आत्मानुभव इनको निषाद सहित पांचों वर्णों को धारण करता है या अपने वश करता है। वह सर्वोत्कृष्ट पालक होता है। वही प्रशंसा के योग्य है।

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु। जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ११

भा०—हे (वीर) विविध लोकों, पदार्थों को विविध रूपों से चलाने हारे! परमेश्वर! (तव) तेरा (वीर्यं) बल पराक्रम (सु-प्रवाचनम्) उत्तम रीति से आदर पूर्वक गुरु जनों से उपदेश किया जाने योग्य है। (यः) जो तू (एकेन) एक ही समान महान् (क्रतुना) कर्म और ज्ञान के बल से (वसु) समस्त वसे जगत् को (प्रविन्दसे) अच्छी प्रकार धारण कर रहा है। यह सब (जातु-स्थिरस्य) प्रत्येक उत्पन्न एवं नश्वर पदार्थ में कारण रूप से स्थिर रहने वाले और (सहस्वतः) बलवान् तेरा ही (वयः) ज्ञान और बल (प्र) सर्वोत्कृष्ट है। (सः) वह तू (या) जिन (विश्वा) इन सब कार्यों को (चकर्थ) करता है वही तू (उक्थ्यः) प्रशंसनीय है। जो राजा एक ही कर्म से या प्रज्ञा

के बल से बहुत सा 'वसु' राष्ट्र और ऐश्वर्य प्राप्त करता है वह स्थिर और बलवान् उत्तम है। वही सब कार्यों को करता और प्रशंसा योग्य होता है।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः॥१२

भा०—हे परमेश्वर! तू (सरपसः) पापों से युक्त पुरुषों को या कर्म फल को छोड़ देने वाले कर्मबन्धन से रहित पुरुषों को इस संसार के कष्टमय महासागर से (कं) सुख पूर्वक (तराय) तर जाने के लिये (तुर्वीतये च) बाधक कारण, कर्म बन्धनों को नाश करने और शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराने के लिये और (वय्याय च) तन्तु के समान शिष्य परम्परा और पुत्र परम्परा बनाये रखने के लिये भी (स्रुतिम्) ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग को (अरमयः) रमणीय कर देता है। (नीचा सन्तम्) नीच पथ में रहते हुए को भी (उत् अनयः) तू ऊपर उठाता है। (परावृजं) दूर त्याग किये, जिसको बन्धु बान्धव जन छोड़कर चले गये ऐसे अनाथ को भी (उत् अनयः) ऊपर उठाता है। (अन्धम्) अन्धे, ज्ञान हीन और (श्रोणम्) बहरे, उपदेश विहीन पुरुष को भी (श्रयवसि) वेद ज्ञान के उपदेश से युक्त करता है। (सः असि उक्थ्यः) वह तू प्रशंसनीय है। (२) राजा पापियों के लिये भी उनको पाप से पार होने, पाप के नाश करने और यज्ञ या उत्तम सन्तति लाभ करने के लिये सन्मार्ग प्रदान करे। नीचे गिरे और अनाथों को दया पूर्ण हाथ से उठावे, अन्धों, बहरों को भी ज्ञान और श्रवण शक्ति देने का उद्योग करे। वह उत्तम है।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (ते) तेरा (बहु) बहुतसा (वसव्यं) बसे प्राणिजनों और लोकों के हित के लिये (राधः) धन है। (यत् चित्रं) जो बहुत ही अद्भुत है, हे (वसो) सबको बसाने हारे ! (तत्) वह (अस्मभ्यं) हमें (दानाय) दान देने के निमित्त (समर्थयस्व) दो। और हम (श्रवस्याः सुवीराः) यश कीर्त्ति और ज्ञान में कुशल, (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर (अनुद्यून्) सब दिनों (विदथे) यज्ञों, ज्ञान योग्य शास्त्रों और युद्ध में राजा का (बृहत् वदेम) बहुत गुण कहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१४]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, १२ त्रिष्टुप्। २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। निचृत्पङ्क्तिः। ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) अध्वर अर्थात् हिंसा रहित, परस्पर प्रेम, सत्संग, प्रजापालन के कार्यों की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (अमत्रेभिः सोमम्) पात्रों से जिस प्रकार ओषधिरस निर्बलों को दिया जाता और उससे उनको पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार (अमत्रैः) साथ रहकर रक्षा करने वाले या एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य का भोग करनेवाले सहयोगियों द्वारा (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष या राष्ट्र के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को ही (भरत) प्राप्त कराओ। और (मद्यम्) हर्ष और तृप्ति को देनेवाले (अन्धः) अन्न को (सिञ्चत) नहरों और वृष्टियों से खूब सेंचो अन्न की खूब खेती करो। (वीरः) वीर पुरुष (सदम्) सदा ही (अस्य) इस ऐश्वर्य उत्तम अन्न, भक्ष्य, पेय सामग्री की (कामी)

कामना करता रहता है। (वृष्णः पीतिम्) वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार (अस्य पीतिम्) इस जल का पान करना चाहता है उसी प्रकार (वृष्णोः) राष्ट्र का प्रबन्ध करने और उसको बढ़ाने वाले राजा के उपभोग के लिये (अस्य) इस ऐश्वर्य और अन्न को (पीतिम्) पान, उपभोग (जुहोत) प्रदान करो। (तत् इत्) वह ही (एषः) यह (वष्टि) चाहता है।

अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) पूर्वोक्त विद्वान् पुरुषो! (अशन्या इव वृक्षम्) विद्युत् जिस प्रकार वृक्ष को भस्म कर देता है उसी प्रकार (यः) जो ऐश्वर्यवान् उस (अपः) ज्ञान और प्रजा के सब कामों को (वव्रिवांसं) घेरनेवाले विघ्नकारी (वृत्रं) बढ़ते हुए शत्रु को (जघान) नाश करता है (तद् वशाय) उन २ नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को चाहने वाले (तस्मै) इसके लिये (एतं) इस ऐश्वर्य को (भरत) लाओ पूर्ण करो। (एषः इन्द्रः) यह शत्रुहन्ता वीर पुरुष ही (अस्य पीतिम् अर्हति) इस राष्ट्र के उपभोग करने के योग्य है।

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) हिंसा रहित प्रजापालन के कार्यों को चाहने वाले विद्वान् पुरुषो! (यः) जो शत्रुहन्ता वीर पुरुष (दृभीकं) प्रजा को त्रास देने वाले को (जघान) नाश करता है, (यः) जो (गाः) गौओं को गोपाल के समान (गाः) भूमियों और प्रजाओं को (उत्-आजत्) उत्तम मार्ग से चलावे, (वलं) नगर, पुर आदि को घेरलेने वाले शत्रु को (अप वः) मेघ को वायु के समान छिन्न भिन्न कर दूर करे। (तस्मै) उस पुरुष के लिये अन्तरिक्ष में वायु के समान (एतम्) यह

समस्त ऐश्वर्य प्रदान करो (जूः न वस्त्रैः) उत्तम वस्त्रों से जिस प्रकार वृद्ध या विद्योपदेष्टा गुरु को आदर पूर्वक सुशोभित करते हैं उसी प्रकार (इन्द्रं) उस शत्रुघातक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को (आ ऊर्णुत) अच्छी प्रकार उत्तम वस्त्रादि से आच्छादित अलंकृत करो।

अध्व॑र्यवो॒ य उर॑णं ज॒घान॒ नव॑ च॒ख्वांसं॑ नव॒तिं च॑ बा॒हून्।
यो अर्बु॑द॒मव॑ नी॒चा ब॑बा॒धे तमिन्द्रं॒ सोम॑स्य भृ॒थे हि॑नोत ॥४॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजा का हिंसा कार्य न हो ऐसा प्रबन्ध करनेवाले विद्वान् शासक पुरुषो ! (यः) जो वीर पुरुष (उरणम्) दूसरे के माल को या सत्य को छुपाने, या मेघ के समान प्रतिस्पर्द्धा से मुकाबले पर डटने और राष्ट्र पर आक्रमण करने वाले प्रतिद्वन्द्वी और (चख्वांसं) प्रतिघात करने वाले या बदलालेने वाले शत्रु को भी नाश करने में समर्थ है, और जो (नव नवतिं च) अकेला सौ के बीच में अपने आप एक रहकर भी शेष ९९ (बाहून्) शस्त्रधारी हाथों को रण में (जघान) पछाड़ सके। (यः) जो (अर्बुदम्) मेघ को वायु या विद्युत् के समान (अर्बुदम्) जल के समान शान्त, सब के पान करने या उपभोग करने योग्य प्रजा के नाश करने वाले या (अर्बुदं) अरबों शत्रुगण को (नीचा) नीचे दबाकर (अव बबाधे) पीड़ित कर सके (तम्) इस (इन्द्रं) सेनापति को (सोमस्य भृथे) ऐश्वर्य के धारण और राष्ट्र के पालन करने के लिये (हिनोत) आगे बढ़ाओ। उसको राज्य का सर्वोत्तम पद प्रदान करो।

अध्व॑र्यवो॒ यः स्वश्नं॑ ज॒घान॒ यः शुष्ण॑म॒शुषं॒ यो व्यं॑सम्।
यः पिप्रुं॒ नमु॑चिं॒ यो रु॑धि॒क्रां तस्मा॒ इन्द्रा॒यान्ध॑सो जुहोत ॥५॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजा में परस्पर के नाश को न चाहने वाले व्यवस्थापक लोगो ! (यः) जो (अश्नं) प्रजा को खाजानेवाले दुष्ट पुरुष को (जघान) नाश या दण्डित करता है (यः शुष्णम्) जो प्रजा के

रक्त शोषण करने वाले और (अशुषं) स्वयं किसी से शोषण या निर्बल न किया जा सकने योग्य अदम्य शत्रु को भी मार सके, (यः वि-अंसं) जो विविध अंसों, प्रजा पीड़क उपायों वाले दुष्ट को दण्डित करता है। (यः) जो (पिप्रुम्) अपना ही पेट भरने वाले, (नमुचिं) अधर्म को न त्यागने योग्य, अथवा जिसे दण्ड दिये बिना कभी न छोड़ा जा सके उस अवश्य दण्ड योग्य को दण्डित करे। (यः) जो (रुधिक्राम्) रुधि अर्थात् प्रजाओं को पाप करने से रोकने वाली नियम, मर्यादाओं, तथा, जल के सेतु बन्ध, बाड़, खाई परकोट, आदि को भी लांघ जाने वाले का नाश करे (तस्मै इन्द्राय) उस शत्रुनाशक वीरपुरुष के लिये (अन्धसः) समस्त अन्न आदि नाना उपभोग योग्य पदार्थ (जुहोत) प्रदान करो।

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥१३

भा०—हे (अध्वर्यवः) युद्ध यज्ञ के सिद्ध करने में कुशल पुरुषो ! (यः) जो (शम्बरस्य) प्रजा की शान्ति और सुख को रोकने वाले दुष्ट पुरुषों की (पूर्वीः) पहले से ही विद्यमान (शतं पुरः) सैकड़ों नगरियों या पलने के स्थानों, या अड्डों को (अश्मना इव) पत्थर से ढेले के समान अपने शस्त्र बल से (बिभेद) तोड़ डाले, और (यः) जो पुरुष (वर्चिनः) अति तेजस्वी, शस्त्रास्त्रों से युक्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रु के (शतम्) सैकड़ों नगर तोड़े और (सहस्रम्) हजारों को (अपावपद्) छुरे से बालों के समान काट २ कर साफ़ करदे (अस्मै) ऐसे बहादुर पुरुष के लिये (सोमम्) राष्ट्र का ऐश्वर्य प्रदान करो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यवृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) युद्ध यज्ञ के कर्त्ता और राष्ट्र की हिंसा न चाहने वाले विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो (भूम्याः उपस्थे) भूतल पर

स्वयं (जघन्वान्) शत्रुहन्ता होकर (कुत्सस्य) निन्दित आचरण करने वाले (अतिथिग्वस्य) अतिथिवत् अपने से ऊंचे पद पर स्थित पूज्य पुरुषों पर आक्रमण करने वाले (आयोः) मनुष्य के अधीन (शतम् सहस्रं) सैकड़ों, हजारों (वीरान्) वीरों को (निअवृणक्) एक दम दूर करे (अस्मै सोमं भरत) यह ऐश्वर्य या अभिषेक योग्य पद उसको प्रदान करो।

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ, प्रजापालन आदि उत्तम काम करने के अभिलाषी (नरः) जनो ! नायक पुरुषो ! आप लोग (यत्) जो कुछ भी स्वयं (कामयाध्वे) प्राप्त करना चाहें, उसे (श्रुष्टी) शीघ्र (वहन्तः) धारण करते हुए (इन्द्रे नशथाः) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होकर रहो और उसे भी प्राप्त कराओ। और (श्रुताय) जगत् प्रसिद्ध और विद्वान् (इन्द्राय) सेनापति या राजा के लिये (गभस्तिपूतं) बाहुबल से पवित्र हुआ (सोमं) ऐश्वर्य (भरत) लाओ। हे (यज्यवः) उसके साथ संगति और मैत्री करने या ऐश्वर्य देने वाले पुरुषो ! उसको उत्तम प्रकार का ऐश्वर्य ही (जुहोत) निःस्वार्थ भाव से प्रदान करो।

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम्।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) पूर्वोक्त प्रकार के विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अस्मै) उसके लिये (श्रुष्टिम् कर्त्तन) शीघ्र कार्य करो, (श्रुष्टिम् कर्त्तन) पक्व अन्न और सुखकारी समृद्धि उत्पन्न करो। (वने) वनमें (निपूतं) अच्छी प्रकार पवित्र, स्वच्छ किये पदार्थ के समान (वने निपूतम्) सैन्य दल के आधार पर प्राप्त ऐश्वर्य (वने) सेवन

करने के निमित्त (उत् न यध्वम्) उत्तम रीति से लाओ। वह (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (वः हस्त्यम्) तुम्हारे हाथों से तैयार किये (सोमम्) ऐश्वर्य और अभिषेक आदि कार्य को (अभिवावशे) सब प्रकार से चाहता है। इसलिये (इन्द्राय) शक्त, इन्द्र पद पर स्थित सभापति, सेनापति के लिये (मदिरं सोमं) अति हर्ष जनक ओषधि रस के समान पुष्टि प्रद एवं स्वच्छ पवित्र ऐश्वर्य (जुहोत) प्रदान करो।

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजा पालन रूप यज्ञ की इच्छा करने हारे शासक विद्वान् पुरुषो ! (यथा) जिस प्रकार (पयसा) दूध से (गोः) गौ का (ऊधः) उथान पूर्ण रहता है उसी प्रकार (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से (ईम्) सब प्रकार (भोजम्) पृथिवी के भोक्ता और पालक (इन्द्रम्) शत्रु और दुष्ट पुरुषों के नाशक राजा को (पृणत) खूब पूर्ण करो। (मे) मुझ (अस्य) इस राष्ट्र प्रजाजन के (निभृतम्) भरण पोषण के सामर्थ्य को (अहम्) मैं राष्ट्र और प्रजा जन ही (वेद) जाने और प्राप्त करे। (यजतः) दान का पात्र, पुरुष भी (एतत्) इस (दित्सन्तं) देने वाले को (चिकेत) जाने। करादि देने वाली प्रजा स्वयं अपने सामर्थ्य को जाने कि वह कितना राजा को दे सकती है और राजा भी इस बात को ध्यान में रखे कि प्रजा कितना दे सकती है। अर्थात् प्रजा की आर्थिक दानशक्ति कितनी है। दानशक्ति अधिक होने पर यह राजा को खूब पुष्ट करे, और दरिद्र होने पर राजा भी प्रजा को पीड़ित न करे।

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजा पालन को चाहने और परस्पर हिंसा को न चाहने के इच्छुक पुरुषो ! (यः) जो (दिव्यस्य) व्यवहार योग्य व्यापार

से प्राप्त (वस्वः) धन का, और (यः) जो (पार्थिवस्य) पृथिवी से प्राप्त होने वाले अन्न, सुवर्ण आदि और (क्षम्यस्य) क्षमा अर्थात् भूमि से प्राप्त होने वाले क्षेत्र, सेना, पशु हस्ति आदि का भी (राजा) राजा स्वामी है । उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यवेन ऊर्दरं न) यव या अनाज से भड़ोले के समान (सोमेभिः) नाना ऐश्वर्यों से (पृणात) पूर्ण करो । (वः) हे नायको ! नाना अध्यक्ष जनो ! (वः) तुम्हारा (अपः) कर्म ही (तत् अस्तु) वह रहे ।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१२॥१४

भा०—व्याख्या देखो सू० १३ । मन्त्र १३ ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ।

[१५]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ स्वराट् पङ्क्तिः । २, ४, ५, ६, ६, १० त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् । पञ्च दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र घान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

भा०—(अस्य महान्) उस महान् (सत्यस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर, न्यायशील राजा, और सूर्य के (महानि सत्या करणानि) बड़े २ सच्चे २ कार्यों और साधनों का (प्रवोचम् घ) अच्छी प्रकार वर्णन करता हूं । वह (त्रिकद्रुकेषु) परमेश्वर तीनों लोकों में अथवा सूर्य आदि और पृथिवी आदि लोकों और मनुष्य आदि प्राणियों में (सुतस्य उत्पन्न जगत् सर्व प्रेरक बल और प्राणों की (अपिबत्) रक्षा करता है । सूर्य तीनों प्रकार की किरणों से जल को पान करता है । राजा

तीनों प्रकार के राष्ट्र जन में ऐश्वर्य का या प्रत्येक उत्पन्न प्राणि की रक्षा करता और उसका उपभोग करता है। (अस्य मदे) इसके अति आनन्द-मय स्वरूप में (अहिम्) प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म रूप को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (जघान) विनष्ट करता अर्थात् विकृत करता उसमें व्यापता है। राजा उस ऐश्वर्य के (मदे) दमन करने के लिये (अहिम्) हनन करने योग्य शत्रु या दुष्ट पुरुष का नाश करे। सूर्य जल के निमित्त मेघ का आघात करता है।

अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ २॥

भा०—(अवंशे) बांस या स्तम्भ के बिना ही जो अवलम्ब रहित आकाश में (बृहन्तम् द्याम्) बड़े भारी नक्षत्र आदि से भरे, ऊपर के महान् आकाश को (अस्तभायत्) ऐसे स्थिर कर रहा है जैसे स्तम्भ के आश्रय पर तम्बू तान दिया जाता है। इसी प्रकार बिना आश्रय के ही (रोदसी) सूर्य पृथिवी दोनों लोक, (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष, (पृथिवीं) और पृथिवी को भी (धारयत्) धारण कर रहा है। और पृथिवी को (पप्रथत् च) विस्तृत बनाता है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर यह (ताः) सब (सोमस्य मदे) जगत् के सञ्चालक बल के (मदे) अति हर्ष, या अधिक होने के कारण ही (चकार) करता है।

सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥३॥

भा०—(मानैः सद्म-इव) माप २ कर जिस प्रकर घर बनाया जाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) प्रभु परमेश्वर (मानैः) अपने निर्माण साधनों से और विज्ञान युक्त नियमों से (प्राचः) अति वेग से चलने वाले या प्राचीन कल्प और वर्त्तमान के भी समस्त लोकों को (वि मिमाय) विशेष रूप से रचता है। वह (वज्रेण) ज्ञान रूप वज्र से (नदीनां) नदियों

की (खानि) खुदी नहरों जल मार्गों को इञ्जिनीयर के समान (अतृणत्) काटता है। और (दीर्घयाथैः) दूर तक जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से वह उन सबको (वृथा) अनायस ही (असृजत्) रचता है। वह (सोमस्य) सर्व प्रेरक और उत्पादक बल के (मदे) अपने वश में रखने के कारण ही (ता) ये सब कर्म (चकार) करता है।

स प्रवोळ्हॄन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४॥

भा०—(सः इन्द्रः) समस्त पदार्थों का संयोग और विभाग करने में समर्थ प्रकृति के परमाणु २ तक को छिन्न भिन्न करने हारा वह 'इन्द्र' परमेश्वर (दभीतेः) विनाश या प्रलय के (प्रवोढॄन्) अच्छी प्रकार लाने वाले अग्नि जलादि तत्वों को (परिगत्य) व्यापकर स्वयं (अग्नौ इद्धे) अग्नि तत्व के खूब प्रज्वलित हो जाने पर (आयुधम्) एक दूसरे पर आघात प्रतिघात करने वाले (विश्वम्) समस्त संसार को (अधाक्) युद्धाग्नि के चमक जाने पर आग्नेयास्त्र को एक महारथी के समान भस्म कर देता है। और वही (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु (विश्वम्) इस जगत् को (गोभिः अश्वैः रथेभिः) गौओं अश्वों और रथादि साधनों से विश्वकर्मा शिल्पी के समान (असृजत्) रच देता है। इसी प्रकार (विश्वम्) विश्व अर्थात् शरीर में प्रवेश करने वाले आत्मा को भी (दभीतेः प्रवोढॄन् परिगत्या) मृत्यु लाने वाले कारणों में व्यापक ज्वरादि से अग्नि के देह में भड़कने पर प्रभु खूब संतप्त करता है और वही (विश्वम् गोभिः अश्वैः रथेभिः) आत्मा या जीव को ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और रमण योग्य देहों सहित (असृजत्) उत्पन्न कर देता है। यह सब परमेश्वर कैसे करता है ? (सोमस्य ता) उत्पन्न होने वाले जगत् के उन २ नाना कर्मों को वह परमेश्वर (मदे चकार) अति आनन्द में मग्न रहता २ ही करता है। अथवा (ता) उन २ कर्मों को वह प्रभु (सोमस्य) उत्पादक और

प्रेरक बल के (मदे) हर्ष या उत्कर्ष होने से ही करता है। (३) राजा के पक्ष में (सः) वह राजा (प्रवोढ़न् परिगत्य) उत्तम कार्य निर्वाहकों को प्राप्त करके (दभीतेः विश्वम् आयोधम् इद्धे अग्नौ अधाक्) अग्नि अर्थात् प्रचण्ड युद्धाग्नि में या राजा रूप अग्र नायक के पद पर स्थित होकर स्वयं हिंसक शत्रु का सर्वस्व भस्म करदें। और (सोमस्य) विद्वान् सौम्य पुरुष के गृह को (गोभिः अश्वैः रथेभिः समसृजत्) 'गौ, अश्वों रथों से युक्तकरे। वह यह सब काम (सोमस्य मदे) राष्ट्र के दमन करने के बल पर करे।

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥५॥१५

भा०—(सः) वह परमेश्वर (धुनिम्) चलने वाले जल और (धुनिम् महीम्) चलने वाली इस बड़ी भारी पृथ्वी को भी (एतोः) बराबर चलते रहने के लिये (अरम्णात्) प्रहार करता है। उसको गति देता रहता है। और (सः) वह (ईम्) इस (महीम् धुनिम्) बड़ी भारी नदी के समान बराबर चलने वाले प्रवाह से अनादि संसार या तृष्णा रूप नदी को (एतो) पार होने के लिये (अरम्णात्) इस नदी का नाश कर देता है। उसकी सत्ता को नष्ट कर देता है और साथ ही (अस्नातॄन्) उस भोग तृष्णा से पूर्ण नदी में स्नान न करने वालों, उसमें न डूबने वालों या, उसमें मज्जन न करने वालों को (स्वस्ति) बड़े कल्याण और सुख के साथ (अपारयत्) पार कर देता है। (ते) वे (उत् स्नाय) उस नदी से पार निकल कर (रयिम्) महान् ऐश्वर्य को (प्रतस्थुः) लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (ता) ये सब कार्य (सोमस्य) संसार के दमन में या अपने महान् उत्पादक सामर्थ्य के सर्वातिशायी होने के कारण (चकार) करता है।

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (उदञ्चं) ऊपर की तरफ जाने-वाले (सिन्धुम्) जल को (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से (अरिणात्) प्राप्त कर लेता हो, और जिस प्रकार सूर्य (वज्रेण) अपने प्रकाश से (उषसः) प्रभात वेला का (अनः) आगे बढ़ने का साधन, सवारी रूप रात्रिकाल को (सं पिपेष) अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न कर देता है । और जिस प्रकार सूर्य (अजवसः) वेगरहित होकर अपने (जवनीभिः) वेगवती तीव्र क्रियाओं से (विवृश्चन्) विवध रूप से छिन्न भिन्न करता है, तो वह सब (सोमस्य मदे) उत्पन्न हुए संसार के आनन्द के निमित्त ही करता उसी प्रकार (सः) वह परमेश्वर (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (सिन्धुम्) बन्धन में पड़े (उद्-अञ्चं अरिणात्) उन्नत मार्ग पर चलने वाले जीव को स्वयं प्राप्त करता । उस पर अनुग्रह करता है । (वज्रेण) अपने ज्ञान वज्र से (उषसः अनः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती चेतना के शकट रूप इस देह को (संपिपेष) अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है अर्थात् विदेह मुक्ति प्राप्त होती है । स्वयं वह प्रभु निर्वेग, निष्क्रिय रहकर भी (जवनीभिः) वेग वाली ज्ञान क्रियाओं से क्लेशों को काट डालता है । यह सब वह प्रभु (सोमस्य मदे) सोम अर्थात् उत्पन्न होने वाले एवं प्रभु के उपासना करने वाले जीव के आनन्द के निमित्त ही (चकार) करता है ।

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार (कनीनाम्) दीप्ति करने वाली किरणों के (अपगोहं) आच्छादन करने वाले अन्धकार को (परावृक्) दूर कर देता है और (आविर्भवन् उत् अतिष्ठत्) स्वयं तेजस्वी

रूप में उदय को प्राप्त होता है वह स्वयं (श्रोणः = शोणः) कन्तिमान्, तेजस्वी होकर (प्रति स्थात्) प्रतिष्ठित होता (वि अनक्) विविध पदार्थों को प्रकट करता, (अचष्ट) सबको पदार्थ दिखाता है उसी प्रकार (सः विद्वान्) वह परमेश्वर और विद्वान् (कनीनाम् अपगोहं) दीप्ति वाले लोकों या प्रकाशों के आच्छादक घोर तमको और ज्ञान के प्रकाशक सुन्दर वाणियों को (अपगोहं) आच्छादक मौन या अज्ञान को भी (परावृक्) दूर करे। और स्वयं (आविः भवन्) प्रकट होकर (उत् अतिष्ठत्) उच्च पद पर स्थित हो। वह परमेश्वर (श्रोणः) सबकी प्रार्थनाओं को सुनने वाला, होकर (प्रति स्थात्) प्रत्येक स्थान में विद्यमान है। वह (वि अनक्) विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होता है और विविध ज्ञानों को प्रकाशित करता है। वह (वि अचष्ट) विविध कर्मों का उपदेश करता है। (सोमस्य मदे) महान् ऐश्वर्य के अति उत्कर्ष के कारण या सोम अर्थात् उत्पन्न संसार, और जीव गण के (मदे) आनन्द लाभ के निमित्त (इन्द्रः ता चकार) परमेश्वर यह नाना कार्य करता है। इसी प्रकार विद्वान् (श्रोणः) श्रवण शील बहुश्रुत होकर (प्रतिस्थात्) प्रतिष्ठा प्राप्त करे। (वि अनक्) विविध विज्ञानों को प्रकट करे, (वि अचष्ट) विविध उपदेश करे (सोमस्य मदे) सोम-शिष्य के हर्ष या आनन्द या प्रसन्नता के लिये या 'सोम' अपने आत्मा के हर्ष के लिये (ता) ये सब कार्य करे। (३) गृहस्थपक्ष में—(कनीनाम् अपगोहं विद्वान्) मनुष्य कन्याओं के लज्जाशील स्वभाव को जानकर भी उनके संकोच को (परावृक्) अपने से दूर करे। अपने गुणों को प्रकट करता हुआ सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो। स्वयं बहुश्रुत होकर विविध गुणों को दिखावे और उत्तम वचन कहे। वीर्य और बल और ऐश्वर्य के (मदे) आनन्द में (इन्द्रः) संयमी पुरुष इस प्रकार के कर्म करे। इससे वह स्वयंवरा कन्याओं द्वारा वृत होकर गृहस्थ बने।

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत्।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥८॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (अङ्गिरोभिः वलम् भिनत्) अङ्गारों के समान दिप्तिमान् किरणों से आवरणकारी मेघ या अन्धकार को छिन्न भिन्न करता है और जिस प्रकार सूर्य या वायु (पर्वतस्य) मेघ के नाना प्रकार के बढ़े हुए विस्तृत भागों को (वि ऐरत्) विविध दिशा में संचालित करता है जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (एषां) इन मनुष्यों के (कृत्रिमाणि रोधांसि रिणक्) बनाये कृत्रिम बंधों को और रोकों को जल के प्रवाह से तोड़ फोड़ देता है वह सब 'इन्द्र' सूर्य, वायु, विद्युत् (सोमस्य मदे) जीव संसार के हर्ष या तेज, वेग और जल की प्रचुरता के कारण करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) परमेश्वर (अंगिरोभिः) विद्वान् ऋषियों द्वारा, और तेजस्वी सूर्य आदि लोकों द्वारा (सोमस्य वलम्) जगत् के ज्ञान को घेरने वाले अज्ञान और चक्षु आदि को घेरने वाले अन्धकार को (भिनत्) नष्ट करता है। वह (गृणानः) स्तुति किया जाता है और वही (पर्वतस्य) पोरु पोरु से बने हुए देह के (दृंहितानि) दृढ़ २ अंगों को (वि-ऐरत्) विविध शक्तियों से संचालित करता है। (एषां) इन प्राणियों के (कृत्रिमाणि) भिन्न २ निमित्तों में उत्पन्न (रोधांसि) रुकावटों को (रिणक्) दूर कर देता है। वह प्रभुः (सोमस्य मदे) जीवों को आनन्द देने या सर्वैश्वर्यवान् होने से (ता चकार) ये सब कार्य करता है (२) योगी पुरुष (अंगिरोभिः) प्राणों के बल से (वलम्) घेरने वाले देह बन्धन को और विद्वानों द्वारा अज्ञान को नष्ट करे। पर्वत के विशाल भागों या बढ़ी चोटियों में (वि ऐरत्) विचरे अथवा (पर्वतस्य) सबके पालन कर्त्ता प्रभु के (दृंहितानि) महान् कार्यों को (वि ऐरत्) विविध रूपों से कहे। (कृत्रिमाणि) इन जीवों (कृत्रिम रोकों) मर्यादाओं को अपने लिये शिथिल करदे।

स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (स्वप्नेन) आलस्य के द्वारा (चुमुरिम्) दूसरों के ऐश्वर्य पर मुंह लगाने वाले और (धुनिम्) अन्यों को त्रास देने वाले (दस्युं) दुष्ट पुरुष को (अभि उप्य जघन्थ) उखाड़ कर नष्ट कर देता है । इसी प्रकार (दभीतिम् प्र आवः) हिंसक जन्तु सिंहादि को भी नाश करता है । ये आलस्य के समय ही मारे जाते हैं । वह (रम्भी) समस्त विश्व का बनाने वाला प्रभु या उत्तम कर्म करने वाला जीव (अत्र) इस लोक में (हिरण्यं) हित और रमणीय वस्तु को (विविदे) प्राप्त कराता और करता है । सोमस्य मदे इत्यादि पूर्ववत् ! (२) योगी पुरुष (चुमुरिं) मुख द्वारा खाने की लालसा और (धुनिम्) दूसरे को त्रास देने की प्रवृत्ति को (स्वप्नेन = सु-अप्नेन) उत्तम कर्म के आचरण से दस्यु के समान नाश करे इसी प्रकार (दभीतिम् प्र आवः) हिंसा वृत्ति को भी दूर करे । वह (अत्र) इस लोक में (रम्भी) क्रिया कुशल होकर (हिरण्यं) सुवर्ण के समान कुन्दन, केवल शुद्ध आत्मा का ज्ञान प्राप्त करे । (सोमस्य मदे) सर्वोत्पादक प्रभु के परमानन्द में वह ये सब कार्य कर सकता है । (३) राजा परद्रव्य भोक्ता और नाशकारी और हिंसक पुरुषों को उनके स्वप्न या आलस्य द्वारा पकड़कर विनाश करे । वह (रम्भी) उद्योगी होकर ही सुवर्ण धन प्राप्त करता है । जगत् के सुख के लिये अथवा आज्ञाकारी बल, ऐश्वर्य शासन के दमन बल के कारण वह यह सब करे । 'प्रावः—अवधातुरत्र हिंसार्थः । भ्वादि ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहियदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१०॥१६

भा०—व्याख्या देखो सू० २ । १ २१ ॥ हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी (सा) वह (दक्षिणा) उत्साह, उत्पन्न करने वाली

(मघोनी) धनैश्वर्यवती दान क्रिया (जरित्रे) उत्तम उपदेश करने वाले विद्वान को (नूनं) निश्चय से (वरं) श्रेष्ठ उत्तम अभिलषित फल (दुहीयत्) प्राप्त करावे। हे ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हममें से (भगः) ऐश्वर्यवान् होकर (स्तोतृभ्यः) विद्वान्, ज्ञानोपदेष्टा लोगों को (शिक्ष) दान कर (मा अतिधक्) उनका अति क्रमण या तिरस्कार करके उनको दग्ध या संतप्त न कर। हम (सुवीराः) उत्तम पुत्र और भृत्यवान् होकर (विदथे) ज्ञानादि के अवसर पर (बृहद् वदेम) वृद्धिकर वचन और स्तुति कहें और उपदेश करें। इति षोडशो वर्गः ॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ जगती। विराड् जगती ४, ५, ६, ८ निचृज्जगती च। २ भुरिक्त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (सतां वः) आप समस्त सत्पुरुषों के बीच में (ज्येष्ठतमाय) सबसे अधिक स्तुतियोग्य, विद्या, ऐश्वर्य और आयु में सबसे बड़े के लिये, यज्ञ में (समिधाने अग्नौ इव ज्येष्ठतमाय सु स्तुतिम्, हविः) अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर जिस प्रकार सर्वोपरि स्तुतियोग्य परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति और अग्नि में अन्नादि चरु दिया जाता है उसी प्रकार (सुस्तुतिम् हविः प्र भरे) मैं उत्तम स्तुति और उत्तम अन्नादि पदार्थ प्रस्तुत करूं। हम (अजुर्यं) कभी नाश न होने वाले, कभी जरावस्था को प्राप्त न होने वाले, अपरिणामी, नित्य, (जरयन्तम्) कालक्रम से अन्य सब स्थावर और जंगम सबको जीर्ण करते हुए, (उक्षितम्) मेघ के समान सबके सेचक, सबको उत्पन्न

और वृद्धि करने हारे (सनात् युवानम्) सदा से बलवान् को हम (अवसे) रक्षा आदि कार्यों के लिये (हवामहे) पुकारें उसका स्मरण करें ।

यस्मा॒दिन्द्रा॑द् बृह॒तः किं च॒नेमृ॒ते विश्वा॑न्यस्मि॒न्त्सम्भृ॒ताधि॑ वी॒र्या॑ । ज॒ठरे॒ सोमं॑ त॒न्वी॒३॒॑ सहो॒ महो॒ हस्ते॒ वज्रं॒ भर॑ति शी॒र्षणि॒ क्रतु॑म् ॥ २ ॥

भा०—(यस्मात्) जिस (बृहतः) बड़े भारी, महान् (इन्द्रात्) 'इन्द्र', परमेश्वर से (ऋते) भिन्न, अन्यत्र (किं च-न ईम्) कुछ भी अन्य पदार्थ नहीं। (अस्मिन्) इसके आश्रय ही (विश्वानि वीर्या) समस्त बल, वीर्य (सम्भृता) एक स्थान पर एकत्र हो गये हैं। वह परमेश्वर (जठरे) अपने पेट में (सोमं) अन्न ओषधि रस के समान (सोमं) समस्त जगत् और ऐश्वर्य को (भरति) धारण करता है। (तन्वि) अपने विस्तृत व्यापक रूप में भी (महः) बड़े भारी (सहः) बलको (भरति) धारण करता और वह (हस्ते) हाथ में खड्ग के समान ज्ञान वज्र को (भरति) धारण करता और वह (शीर्षणि) शिर या मस्तक भागों में सर्वोपरि, (क्रतुम्) प्रज्ञा और उत्तम विज्ञान धारण करता है ।

न क्षो॒णीभ्यां॑ परि॒भ्वे॑ त इन्द्रि॒यं न स॑मु॒द्रैः पर्व॑तैरिन्द्र ते॒ रथः॑ । न ते॒ वज्र॒मन्व॑श्नोति॒ कश्च॒न यदा॒शुभिः॒ पत॑सि॒ योज॑ना पु॒रु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (आशुभिः पुरु योजना पतति) तीव्र चलने वाले अश्वों द्वारा कोई पुरुष बहुत से योजनों चला जाता है उसी प्रकार हे परमेश्वर (आशुभिः) शीघ्रगति करने वाले तत्वों, विद्युत् , ताप, प्रकाश आकाश और सूर्य आदि लोकों, प्रकृति के भौतिक परमाणुओं से भी तू (पुरु योजना) बहुत से योजन अर्थात् योगों से बने पदार्थों में व्यापता वा उन्हें (पतसि) बनाने में समर्थ है। (ते इन्द्रियम्) तेरा ऐश्वर्य (क्षोणीभ्यां) आकाश और पृथिवी दोनों से भी (न परिभ्वे) नहीं नापा जा सकता । वह उन

दोनों से भी कहीं अधिक है। और (ते रथः) तेरा रथ अर्थात् रमण करने योग्य आनन्द रस भी न (पर्वतैः परिभ्वे) मेघों से भी कम नहीं, उनसे भी कहीं बढ़कर है (न समुद्रैः) वह समुद्रों से भी कम नहीं है। समुद्रों और मेघ का जल रूप रस भी उस आनन्द रस कहीं न्यून है। (ते वज्रम्) तेरे बलवीर्य को (न कश्चन अश्नोति) कोई पा नहीं सकता।

विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना॥४॥

भा०—(अस्मै) इस (यजताय) दानशील, आदर सत्कार, सत्संग, मान और पूजा के योग्य (धृष्णवे) सबको पराजित करने हारे, (वृषभाय) सब सुखों की वृष्टि करने वाले (सश्चते) सर्वत्र व्यापक (अस्मै) उस प्रभु परमेश्वर के प्राप्त करने और जानने लिये (विश्वे हि) सब ही और सर्वत्र ही, (क्रतुं भरन्ति) यज्ञ करते और अपनी बुद्धि को दौड़ाते और यत्न करते हैं। हे प्रभो! तू (वृषा) सब सुखों का वर्षण, और समस्त संसार का प्रबन्ध करने वाला, दुष्टों का दमन करने हारा (विदुस्-तरः) सबसे बड़ा विद्वान्, (वि-दुस्तरः) विशेष रूप से अलंघनीय, है। तू ही (हविषा) अन्नादि पदार्थों से (यजस्व) हमें समस्त सुख प्रदान कर और (वृषभेणभानुना) वर्षा करने वाले, प्रकाशमान सूर्य और विद्युत् द्वारा हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (सोमं पिब) इस जगत् का पालन करते हो।

वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति॥५॥१७

भा०—जिस प्रकार (वृष्णः) जल सेचन करनेवाले सूर्य से उत्पन्न (मध्वः ऊर्मिः) जल के तरंग के समान ऊपर को उठने वाला (कोशः) गर्जता हुआ मेघ (वृषभान्नाय) सुखों के देने वाले अन्न की उत्पत्ति और वृद्धि के लिये और (वृषभाय) वर्षने वाले विद्युत् या श्रेष्ठ पुरुष के (पातवे)

पालन करने के लिये (पवते) आता है, जल प्रदान करता है उसी प्रकार (कोशः) उपदेश करनेवाला शब्दमय और वेदमय ज्ञानकोश ब्रह्म, परमेश्वर (वृष्णः) सुखों और आनन्दों के वर्षक (मध्वः) मधुर ज्ञान की (ऊर्मिः) दीप्ति (वृषभान्नाय) सुखों के वर्षक प्रभु के आनन्द को अन्न के समान उपभोग करने वाले (वृषभाय) बलवान् आत्मा के (पातवे) पालन करने के लिये (पवते) भीतर व्यापती है। (अध्वर्यू) हिंसा, आत्मविनाश न चाहने वाले, अविनाशी दोनों आत्मा, या यज्ञशील स्त्री पुरुष (वृषणौ) एक दूसरे को बांधने वाले, अखण्डित तपस्वी ब्रह्मचर्य के पालक हों लोग भी पर्वतों और मेघों के समान (वृषभासः) बलवान्, दृढ़ और ज्ञान जलों के वर्षक हों। वे पर्वतों और मेघों के समान (वृषणं) बल पुष्टिकारक (सोमं) ओषधिरस और जल के समान ज्ञान और ऐश्वर्य को (सुष्वति) उत्पन्न करें और प्रदान करें।

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ते वज्रः) वज्र, बलवीर्य (वृषा) सुखों का वर्षक और शत्रुओं की शक्ति का प्रतिबन्धक हो। (ते रथः,) तेरा रथ, या रथों का बल (वृषा) दृढ़, वेगवान् शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रवर्षी हो। (ते हरी) तेरे दोनों अश्व (वृषणा) बलवान् हों। (ते आयुधा) तेरे शस्त्रास्त्र (वृषभा) दृढ़ हों। हे (वृषभ) सर्वोत्तम! (वृष्णः) बलशाली (मदस्य) हर्ष और दमन का और (वृषभस्य सोमस्य) सुखों के वर्षक ऐश्वर्य का (त्वम्) तू ही (ईशिषे) स्वामी हो सकता है। उससे तू (तृप्णुहि) सदातृप्त हो।

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ७

भा०—(सवनेषु) ऐश्वर्यों के बीच में या शासन कार्यों के बीच में (दाधृषिः) प्रतिपक्षियों को पराजय करने में समर्थ होकर हे राजन् ! मैं (समने) संग्राम या नदियों के संगम पर में (नावं न) नाव के समान (वचस्युवं) उत्तम आज्ञावचन के स्वामी जानकर (ते) तुझको ही (ब्रह्मणा) धन सहित (यामि) प्राप्त होता हूं। तू (नः अस्य वचसः) हमारे इस वचन को ही (कुवित्, नि बोधिषत्) बहुत समझता है। हम तो (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुझको (उत्सं न) जल के कूप के समान (वसुनः उत्सं) ऐश्वर्य का अक्षय कूप जान कर (सिचामहे) रात दिन अपने क्षेत्र सीचते हैं, अपना कारवार पुष्ट करते हैं। परमेश्वर भी (समने नावं न) जीवन संग्राम में नाव के समान है। वेद वचनों का स्वामी होने से 'वचस्यु' है। उसको मैं (दाधृषि) काम क्रोध आदि को दवा कर (सवनेषु) उपासना के अवसरों में (ब्रह्मणा यामि) वेद मन्त्र से प्रार्थना करूं। वह हमारे इस थोड़े से वचन को बहुत करके लेता है। उसको हम परमैश्वर्य का अक्षय कूप जान कर उससे अपने क्षेत्र आत्मा को ही निरन्तर से सेचें।

पुरा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी। सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥

भा०—(यवसस्य) घास चारे के ऊपर (पिप्युषी) परिपुष्ट होने वाली गाय जिस प्रकार (वत्सं न) बछड़े के पास प्रेम से उस पर किसी प्रकार संकट आने के पूर्व बन से घर लौट आती है उसी प्रकार (सम्बाधात् पुरा) पीड़ा या विपत्ति होने के पूर्व ही तू (नः) हमें (अभि आ ववृत्स्व) प्राप्त हो। हे (शतक्रतो) अपरिमित ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से युक्त ! (पत्नीभिः वृषणः नः) स्त्रियों से जिस प्रकार उन के इच्छुक पुरुष मिल जाते हैं उसी प्रकार (ते सुमतिभिः) तेरे

उत्तम ज्ञानों से हम (सकृत्) एक वार (सु नसीमहि) अच्छी प्रकार व्याप जावें ।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ६।१८

भा०—व्याख्या देखो सू० २ । १५ । १० ॥ अष्टादशो वर्गः ॥

[१७]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराड् जगती । २, ४ निचृज्जगती । ३, ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् । ८ निचृत्पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यत्) (अस्य) इस सूर्य के (सोमस्य) उत्पादक प्रेरक शक्ति के अंश ही (प्रत्नथा) ओषधिगण के पूर्व मूल कन्दलों के समान पहले से ही वर्त्तमान रहते हुए पुनः (उद् ईरते) उदय को प्राप्त होते हैं, प्रकट होते हैं । और (यत्) जो भी (विश्वा) समस्त (गोत्रा) गोत्र, अर्थात् नाना बीज, परमात्मा के उत्पादक शक्ति के अंकुर जो बीजों के समान गौ, अर्थात् भूमि में सुरक्षित रहते हैं वे जब (सहसा) एक साथ ही (परीवृता) अंकुर रूप में परिवर्तित होकर, (दृंहितानि) बाद में और भी पुष्ट हो जाते हैं उन सब को वह परमेश्वर (मदे) आनन्द विकास के लिये ही (सोमस्य) जगत् के उत्पादक सामर्थ्य या जगत् के हर्ष के लिये ही (ऐरयत्) बढ़ाता, प्रेरित करता और व्यक्त जगत् को बड़े २ कार्यों के रूप में संचालित करता है । इस लिये (अस्मै) उस परमेश्वर के (तत्) उस सामर्थ्य को (अङ्गिरस्वत्) प्राण, जीवन, या ओषधि अग्नि या सूर्य के समान (नव्यम्) स्तुति या वर्णन योग्य जान कर (अर्चत) उसको स्वीकार और उपासना करो ।

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥

भा०—(सः भूतु) वह परमेश्वर ही होना सम्भव है (यः ह) जो निश्चय से (प्रथमाय धायसे) सब से प्रथम २ इस समस्त संसार के धारण पोषण करने के लिये (ओजः) बड़ा बल पराक्रम (मिमानः) प्रकट करता हुआ (महिमानम् आ आतिरत्) अपने महान् सामर्थ्य और स्वरूप का सर्वत्र प्रकट करता है, व्याप लेता है । (युत्सु शूरः तन्वं परिव्यत) युद्धों में शूर वीर जिस प्रकार अपने शरीर को सब तरफ से कवच आदि से सुरक्षित कर लेता है उसी प्रकार मानो जगत् में व्यापक परमेश्वर भी अपने (तन्वं परिव्यत) अपने शरीर को सब ओर से ढंक सा लेता है । यह जगत् मानो भगवान के देह के समान है । यद्यपि परमात्मा का शरीर नहीं तो भी उपमा बल से अपेक्षित है । वस्तुतः वह (तन्वं परिव्यत) अपने विस्तृत सामर्थ्य को सर्वत्र चमकाता है । और जिस प्रकार (शीर्षणि) सिर पर वीर पुरुष (द्याम्) उजली पगड़ी या मुकटादि पहरता है उसी प्रकार परमेश्वर (महिमा) अपने महान् सामर्थ्य से (द्याम्) तेजस्वी सूर्य या नक्षत्रादि मण्डित आकाश को धारण किये हुए है ।

यस्य द्यौ मूर्धा० इत्यादिछान्दोग्य० उप । दिवं यश्चक्रे मूर्धानं । अथर्व० सू० १० । ८ । २ ॥ ३ ।

अध क्रुणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्य१क् पृथक् ॥ ३ ॥

भा०—(अध) और हे परमेश्वर ! तू (प्रथमं) सबसे प्रथम, सबसे आदि में (महद् वीर्यम्) बड़े जगत् को उत्पन्न करने और चलाने मेंसमर्थ बल, वीर्य को (अकृणोः) प्रकट करता है, (यत्) और जो आप (अस्य) इस जगत् के (अग्रे) भी पूर्व (ब्रह्मणा) अपने महान्

सामर्थ्य से या ज्ञान के अनुसार (शुष्मम्) बल को (ऐरयः) प्रकट करता, संञ्चालित करता है तब जिस प्रकार (रथेष्ठेन) रथ में स्थित (हर्यश्वेन) तीव्र अश्वों के स्वामी सारथि द्वारा (विच्युताः) विशेष रीति से चलाए गये (जीरयः) वेगवान् अश्व (सध्रयक् पृथक् प्र सिस्रते) एक साथ और पृथक् २ भी वेग से दौड़ते हैं। उसी प्रकार हे परमेश्वर (रथेष्ठेन) रथ अर्थात् अति वेग से चलने वाले रथ अर्थात् सूर्य में स्थित (हर्यश्वेन) हरणशील, गतिमान् अश्व अर्थात् व्यापक सामर्थ्य से (विच्युताः) विविध दिशाओं में चलाये गये (जीरयः) वेगवान् सूर्य आदि महान् २ लोक और ब्रह्माण्ड गण सध्रयक् सब एक स्थान, आकाश में रहकर भी (पृथक्) पृथक् अपनी २ गति मार्ग या क्रान्ति मार्गों पर (प्र सिस्रते) खूब वेग से दौड़ लगा रहें हैं।

अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनैशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत्॥ ४॥

भा०—(अध) और (यः) जो (विश्वा भुवना) समस्त उत्पन्न लोकों और पदार्थों में भी (अभि) व्याप कर (मज्मना) अपने महान् बल से (ईशानकृत्) अपने को सबका ईश्वर स्वामी, प्रकट करता हुआ, (प्रवयाः) सबसे उत्कृष्ट बलशाली, होकर (अभि-अवर्धत) बहुत बड़ा हो जाता है। (वन्हिः) अग्नि या सूर्य जिस प्रकार (ज्योतिषा) तेज से (रोदसी आतनोत्) आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी अनन्तर (ज्योतिषा) अपने तेज से या सूर्यादि द्वारा (रोदसी) आकाश और पृथ्वी दोनों को दो पक्षों के समान मानो (सीव्यन्) सीकर (आतनोत्) फैला देता या व्यापता है। और (दुधिता) दूर २ तक स्थित (तमांसि) अन्धकारों को सूर्य के समान (सम् अव्ययत्) अच्छी प्रकार नाश कर देता है।

स प्राचीनान्पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः। अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः॥५॥१६

भा०—सूर्य (प्राचीनान्) जिस प्रकार सूर्य से ही वेग से इधर उधर जाने या दूर २ तक फैलने वाले (पर्वतान्) मेघों को (ओजसा दृंहत्) अपने तेज से और वायु अपने वेग से दृढ़ करता कठिन या स्थूल रूप में करता और बढ़ाता है उसी प्रकार (सः) वह परमेश्वर (पर्वतान्) समस्त जीवों का पालन पोषण करने वाले तत्व वायु, जल अग्नि आदि पदार्थों को (ओजसा) अपने पराक्रम से (दृंहत्) दृढ़ करता उनको विरल रूप से घनी भाव करके उनके स्थूल और कठिन रूप उत्पन्न करता है। और (प्राचीनान्) बहुत काल से चले अति पुरातन (पर्वतान्) पर्वपर्व अर्थात् तह पर तह जमने से बने पर्वत आदि पदार्थों को काल क्रम से और भी दृढ़ करता है और (अपाम् अपः) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलमय मेघों के 'अपः' जलों को (अधराचीनम् अकृणोत्) नीचे गिरा देता है उसी प्रकार परमेश्वर भी (अपाम् अपः) जलों के भी सार भाग अन्न को (अधराचीनम्) नीचे भूमि पर तल (अकृणोत्) उत्पन्न करता है। वह (विश्वधायसं) समस्त विश्व या जगत् को पोषण करने वाली पृथिवीं (पृथिवीं) को (अधारयत्) मेघ के समान धारण कर रहा है। और (मायया) अपनी निर्मात्री व्यापक शक्ति से (द्याम्) आकाश मण्डल और उसमें स्थित ग्रह तारा सूर्य जगत् को (अवस्रसः) नीचे गिरने या स्थान भ्रष्ट होने से (अस्तभ्नात्) थामे रहता है।

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि। येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः॥६॥

भा०—जिसको जो पुरुष (आजनुषः) जन्म से लेकर (वेदसः परि) ज्ञान और धन प्राप्ति के काल तक अपने बाहु बल से (विश्वस्मात्) सब प्रकार से (अरम् अकृणोत्) पर्याप्त समर्थ कर देता है और जो (तुविष्वणिः) बहुत से ऐश्वर्य कर देने वाला होकर (येन) जिस पुत्र के द्वारा (क्रिविम् वज्रेण हत्वी) कूप के समान हथियार से खोदे जाकर (पृथिव्यां शयध्यै) पृथिवी में सो जाने के लिये (नि अवृणक्) पुनः अपने को (वज्रेण) ज्ञान मार्ग या त्याग, वैराग्य से सर्वथा पृथक् कर लेता है (सः) वह (अस्मै) इस दूसरे व्यक्ति का (पिता) पिता पालक है। इसी प्रकार जो वीर पुरुष (आजनुषः परिवेदसः) राष्ट्र के जन्म से लेकर धनैश्वर्य से सम्पन्न हो जाने तक बाहुबलों से उस राष्ट्र के प्रजाजन को (विश्वस्मात्) सबसे उत्तम (अरम् अकृणोत्) खूब बलवान् समर्थ बना देता है, और (येन) जिसके बल से वह राष्ट्र या राष्ट्रपति (वज्रेण) शास्त्रास्त्र के बल से (क्रिविं) कूप के समान नीच या प्रजा के हिंसक, पीड़ाजनक दुष्ट पुरुष को (वज्रेण हत्वी) शस्त्र द्वारा मारकर (पृथिव्यां शयध्यै) पृथिवी पर सुला देने के लिये (तुविष्वनिः) विद्युत् के समान अति गर्जनाशील या अति ऐश्वर्य दानी होकर (निअवृणक्) उस कंटक को सर्वदा दूर करदे (सः) वह वीर पुरुष ही (अस्मै) इस राष्ट्र का (पिता) उत्तम पालक पिता के समान है इसी प्रकार परमेश्वर उसके जन्म होने से प्रकट होने तक सब प्रकार पुत्र को पिताके समान खूब अलंकृत करता है। वह परमेश्वर बहुत ऐश्वर्य के देने से 'तुविष्वनि' है। वह (क्रिविम्) हिंसाकारी दुष्ट पुरुष को शस्त्र से आहत पुरुष के समान उसको भी नीचे गिरा कर पृथक् करे। वह (तुविस्वनिः) बड़ा गर्जने हारा होता है। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष जिस ज्ञान वज्र से दुष्ट पुरुष को भी पृथिवी पर झुका देने के लिये उसको प्राप्त होकर पाप मार्ग से निवृत्त को वह बहु ज्ञान उपदेष्टा

गुरु भी उसका पिता है, जिसको वह जन्म से बड़ा होने तक ज्ञान से अपने हाथों से सुभूषित करता है।

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्। कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३येन मामहः ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! (अमाजूः इव) गृह में ही बूढ़ी हो जाने वाली कन्या जिस प्रकार (पित्रोः सचा सती) माता पिता के सदा साथ रहती हुई (समानात् सदसः) एक ही घर से (भगम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार हे प्रभो ! मैं (पित्रोः सचा) माता पिता के साथ रहता हुआ, (अमाजूः) अज्ञान में ही अपना जीवन व्यतीत करता हुआ (समानात् सदसः) एक समान आश्रय से (त्वाम् भगम् इये) तुझ ऐश्यर्यवान् को प्राप्त होकर याचना करता हूं तू (प्रकेतं कृधि) उत्तम ज्ञान प्रदान कर (मासि) प्रतिमास (उप आभर) उत्तम वस्तुएं उपस्थित कर, (येन) जिस से सब को (मामहः) तृप्त करता है उस (तन्वः भागं) शरीर के सेवन करने योग्य उसी भाग को (दद्धि) हमें दें।

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दुदिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान्। अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयम्) हम लोग (त्वाम्) तुझको ही (भोजम्) सबका पालक और ऐश्वर्यों का भोक्ता (हुवेम) कहते हैं, वैसा जानकर तुझको पुकारते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अपांसि) समस्त कर्मों का (ददिः) फल देने वाला और तू (वाजान् ददिः) समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (चित्रया ऊत्या) नाना प्रकार के रक्षा आदि कार्यों से (नः) हमारी (अविड्ढि) रक्षा कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे

(वृषन्) सब सुखों के वर्षक ! तू (नः) हमें (वस्यसः) खूब ऐश्वर्यवान् (कृधि) कर ।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२०

भा०—व्याख्या देखो सू० १७ । ९ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[१८]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः । ४, ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ५, ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ निचृत् पङ्क्ति २, ३, ९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (नवः रथः) नया, उत्तम, अद्भुत प्रकार का रथ (योजि) ऐसा जोड़कर बनाया जाय जो (सस्निः) सब सुखों का देने वाला, जिसमें अच्छी प्रकार लेटते सोते भी रह सकें, (चतुर्युगः) जिसमें घोड़े के जोड़ने के चार स्थान हों, (त्रिकशः) तेज़, मध्यम और मन्द तीनों प्रकारों की गति से चलने वाला, तीनों गतियों पर शासन या वश करने के यन्त्र से युक्त हो, (सप्तरश्मिः) उसको वश करने की सात रस्सियां या घोड़े के मुख में लगने वाली रासों के समान सात वश करने के साधन लगे हों, या उसमें सात चमकने के दीपक हों । जिसमें (दशारित्रः) दश थामने और चलाने के यन्त्र हों, (स्वर्षाः) सुख का देने वाला हो ऐसा रथ जिस प्रकार (इष्टिभिः) शक्ति देने वाली या साथ जुड़ी (मतिभिः) स्तम्भ करने वाली मुट्ठियों से (प्रातः) प्रभात में, (रंह्यः) वेग से चलाने योग्य होता है उसी प्रकार (मनुष्य) यह मनुष्य भी रथ के समान ही (प्रातः) प्रभात काल में

(इष्टिभिः) इच्छाओं से और (मतिभिः) भजन क्रियाओं से अर्थात् ज्ञान पूर्वक मनःप्रेरणाओं से (रंह्यः) रमण करने योग्य (भूत्) होता है। वह (रथः) रमणकारी और रसरूप होने से 'रथ' है। (नवः) सदा नित्य होने से 'नव' है। (सस्निः) शुद्ध, संगदोष से रहित, (चतुर्युगः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों में संलग्न रहता है। अथवा चारों वेदों से संदेह समाधान करने वाला या चारों अन्त करणों से युक्त हो वह (त्रिकशः) तीनों वेद वाणियों को धारण करने हारा, मन वाणी काय तीनों पर शासन करने वाला, (सप्तरश्मिः) मूर्धागत सात प्राणों से सात रश्मि वाला है। (दशारित्रः) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दश उसके नाव में लगे चप्पुओं के समान जीवन यात्रा करने में साधन है (सः) वह मनुष्य का आत्मा, (स्वर्षाः) परम सुख का अभिलाषी होकर (इष्टिभिः मतिभिः) यज्ञादि साधनों और उत्तम विचार योग्य बुद्धियों से (रंह्यः भूत्) प्राप्त होता है। परमात्मा पक्ष में—परमात्मा रस रूप एवं रमण योग्य होने से 'रथ' है। स्तुति योग्य और अद्भुत होने से 'नव' है। शुद्ध होने से 'सस्नि' है। अन्तःकरण-चतुष्टय से समाहित हो कर जानने योग्य होने से 'चतुर्युग' है, तीनों लोकों पर शासक होनेसे या वैखरी या वेदत्रयी तीनों प्रकार की वाणियों को धारने हारा होने से 'त्रिकश' है सप्तलोकों का शासक होने से 'सप्तरश्मि' है। दशों दिशाओं को स्वामी के समान त्राण करनेवाला होने से 'दशारित्र' है। वह सुख देने वाला होने से 'स्वर्ष' है। वह यज्ञों और उत्तम मननों द्वारा (रंह्यः) प्राप्त करने योग्य है। वही (योजि) योगभ्यास द्वारा एकाग्रचित्त से प्राप्त किया और ध्यान किया जाता है।

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता। अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह रथ जिस प्रकार (प्रथमं द्वितीयं तृतीयं अरं सचते) पहले,दूसरे और तीसरे स्थल, जल और वायु तीनों में अच्छी प्रकार जाने में समर्थ हो, वह (मनुषः होता) मनुष्यों के, सभी सुख धैर्य देता, उस रथ को (अन्ये उ जनन्त) कोई और पैदा करते हैं (अन्यस्याः गर्भम्) वह किसी और ही काष्ठ आदि प्रकृति के बीच में रहता है और यह (अन्येभिः) सारथि आदि अन्यों से (सचते) संचालित होता है। इसी प्रकार (सः) वह प्रभु परमेश्वर (प्रथमं द्वितीयम्, उतो तृतीयं) पहले, दूसरे और तीसरे, भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौः तीनों में (अरं सचते) खूब समवेत है। वह (मनुषः) मननशील एवम् मनुष्यों के हितार्थों का देने वाला है। (जेन्यः) सब से उत्कृष्ट, (वृषा) सब से अधिक बलवान् अपने बलवीर्य को अन्यों में भी संक्रमित करने वाला, होकर (अन्यस्याः) अपने से भिन्न प्रकृति के (गर्भम्) गर्भ, हिरण्यगर्भ या ब्रह्माण्ड आदि विकारों को (सचते) उत्पन्न करता, धारण करता है, (अन्ये उ) इस संसार को फिर अन्य उस परमेश्वर से भिन्न महत् आदि एवं पृथ्वी आदि प्रकृति विकृति पदार्थ ही (जनन्त) प्रकट करते हैं और वह परमेश्वर (अन्येभिः) अपने से भिन्न उपासक जीवों से (सचते) साक्षात् प्राप्त किया जाता है। (२) राजा, मानुष ऐश्वर्यों का देने वाला है। पहले दूसरे, तीसरे, उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के राष्ट्रों के लिये पर्याप्त हो, वह विजयशील और बलवान् (अन्यस्याः अन्यस्य वा) शत्रु की भूमि का ग्रहण, (अन्ये) और ही वीर भट करते हैं वह राजा (अन्येभिः) अन्य मित्र राजाओं से मिल जाता है।

हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये॥३॥

भा०—(रथे आयै हरी योजम् नवेन सूक्तेन वचसा) नये उत्तम वेद वचन या गुरु उपदिष्ट ज्ञान के अनुसार जिस प्रकार शिल्पीजन रथ में

वेगवान् वायु अग्नि दोनों को वेग से जाने के लिये अश्वों के समान जोड़ लेता है उसी प्रकार मैं (नवेन) नये से नये स्तुति करने वाले (सूक्तेन) उत्तम रीति से कथित (वचसा) वचन, वेद मन्त्र से (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (रथे) रमणयोग्य परमानन्दमय स्वरूप में (आयै) आने या (कं) सुख को प्राप्त करने के लिये (हरी) दुःखों के दूर करने वाले (हरी) मन और आत्मा दोनों को (योजं नु) योग द्वारा जोड़ दूं। हे परमेश्वर ! (अत्र) इस लोक में (त्वाम्) तुझे प्राप्त करके (बहवो हि विप्राः) बहुत से विद्वान् जन (निरीरमन्) रमण करते हैं (अन्ये) और दूसरे (यजमानासः) केवल यज्ञ करते हुए भी (त्वाम् मो सु न निरीरमन्) तुझे अच्छी प्रकार प्राप्त न कर आनन्द लाभ नहीं भी कर पाते।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई ऐश्वर्यवान् राजा द्वाभ्यां चतुर्भिः, षड्भिः, अष्टाभिः दशभिः) दो, चार, छः, आठ या दश अश्वों से (सोमपेयम्) ऐश्वर्य भोग या पालन करने योग्य पद को प्राप्त होता है और वह राज्यैश्वर्य का पद प्राप्त करके युद्धादि नहीं करता उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू भी (स्तूयमानः) स्तुति द्वारा अभ्यर्थना किया जाकर (द्वाभ्याम् हरिभ्याम्) प्राण अपान रूप दो साधनों से (चतुर्भिः) चार वेदों से, (षड्भिः) षड् दर्शनों से अथवा ४ चार अन्तः करणों और मन सहित इन्द्रियों से (अष्टाभिः) आठों प्रमाणों और (दशभिः) दश यमों और नियमों से (सोमपेयम्) ब्रह्मास्वाद में ईश्वर के ऐश्वर्यवान् करने लिये ही (आयाहि) प्राप्त हो, साक्षात् हो, हम तेरा पुनःअभ्यास करके साक्षात् करें। हे (सुमख) उत्तम धनैश्वर्य के स्वामिन् ! (अयं सुतः) समस्त अग्नि के द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य तुझे ही दिया जाता है (तू मृधः) संग्रामों

को (माः कः) मत कर (२) राजा दो, चार छः, आठ, दश विद्वानों से मिलकर पालनीय ऐश्वर्य पद को प्राप्त हो। तब वह युद्ध न करे।

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (विंशत्या) बीस, (त्रिंशता) तीस, (चत्वारिंशता) चालीस, (हरिभिः) अश्वों और उनके समान तीव्र बुद्धि वाले विद्वानों से (युजानः) मिलकर, जुड़ कर उनको नियुक्त करता हुआ (अर्वाङ् आयाहि) हमें प्राप्त हो। और इसी प्रकार (पञ्चाशता) पचास, (षष्ट्या, सप्तत्या) साठ और सत्तर (रथेभिः) रथ सैन्यों से या ब्रह्म में रमण करने के सुख साधनों से (सोमपेयम्) ऐश्वर्य पालक के पद को (आयाहि) प्राप्त हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (अशीत्या, नवत्या, शतेन) ८०, ९०, १०० (हरिभिः) घोड़ों या तीव्र बुद्धिमान् विद्वानों से (ऊह्यमानः) अपने ऊपर धारण किया जाकर तू (अर्वाङ्) हमें साक्षात् प्राप्त हो। अर्थात् इतने २ वीरों घुड़सवारों या विद्वानों का नायक होकर अपने अभिमत देश को जा। (अयं हि सोमः) यह सोम, ऐश्वर्य तो तेरे अधीन (शुन होत्रेषु) सुख देनेवाले स्थानों और कार्यों में (त्वाया) तेरी ही कामना से (मदाय) तेरे ही हर्ष और आनन्द लाभ के लिये जलों से अन्नप्रद क्षेत्रों में ओषधिगण के समान (परिसिक्तः) परीलेचन किया गया है, बढ़ाया गया है। (२) ८०, ९० १०० इत्यादि नाना संख्या में (हरिभिः) किरणों से सूर्य के समान दुःखहारी सुखदायक साधनों से या जीवन के वर्षों से धारण किया जाता हुआ आत्मा आगे बढ़े। (अयं सोमः) आनन्द

रस सुखोत्पादक प्राणों में उसी की इच्छानुसार अति हर्ष लाभ के लिये परिसेचित या परिवर्धित हो।

मम॒ ब्रह्मे॑न्द्र या॒ह्यच्छा॒ विश्वा॒ हरी॑ धु॒रि धि॑ष्वा॒ रथ॑स्य।
पु॒रु॒त्रा हि वि॒हव्यो॑ ब॒भूथा॒स्मिञ्छू॑र॒ सव॑ने मादयस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! हे विद्वन्! तू (मम) मेरे मुझ राष्ट्र के (ब्रह्म) शक्तिवर्धक धन को (अच्छ याहि) स्वतः प्राप्त कर और (विश्वा) विविध गतियों से जानेवाले (हरी) दो २ अश्वों को (रथस्य धुरि) रथ के धुरा अर्थात् धारनेवाले युग भाग में (धिष्व) लगा। तू पुरुत्र) बहुत से स्थानों में बहुतों द्वारा (विहव्यः) विविध पदार्थों के देने और लेनेहारा, विविध प्रकार से मान आदर द्वारा सत्कार करने योग्य (बभूथ) हो। और (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य में या शासन के पद पर हे (शूर) वीरपुरुष! तू (मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हो और अन्यों को आनन्दित कर। (परमेश्वर) हमारे (ब्रह्म) स्तुतियों को स्वीकार कर। (रथस्य) रमण करने योग्य आनन्द के (धुरि) धारण करने कार्य में (हरी) स्त्री पुरुषों को धारण कर नियुक्तकर, सर्वत्र विविध स्तुतियोग्य हों। हे वीर पुरुष तू (सवने) ईश्वर भजन में सुख प्राप्त कर।

न म॒ इन्द्रे॑ण स॒ख्यं वि यो॑षद॒स्मभ्य॑मस्य॒ दक्षि॑णा दुहीत।
उप॒ ज्येष्ठे॒ वरू॑थे॒ गभ॑स्तौ प्रा॒येप्रा॑ये जिगी॒वांसः॑ स्याम ॥ ८ ॥

भा०—(मे) मेरी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा और ज्ञानवान् गुरु और परमेश्वर से (संख्य) मैत्री भाव (न वि योषत्) कभी न टूटे। (अस्य) उसका दिया, (दक्षिणा) धन, ज्ञान, और आप्त वर्धक देन (अस्मभ्यम्) हमें (दुहीत) गौ के समान नाना सुख प्रदान करे। (ज्येष्ठे) अपने से बड़े, ज्येष्ठ भाई के समान प्रिय, (वरूथे) दुःखों के दूर करने और करने योग्य (गभस्तौ) सूर्य, रश्मि के समान

प्रकाशकः बाहु के समान अवलम्बदायक (प्राये-प्राये) उत्तम-उत्तम फलदायकः अतिकमनीय, उत्तम २ पद को प्राप्त पुरुष या उपास्य (उप) अधीन रहकर (जिगीवांसः) विजयशील स्याम होवे ।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥२२

भा०—व्याख्या देखो सू० १७।९॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ३ पङ्क्तिः । ४, ७ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत् पङ्क्तिः ॥

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥

भा०—हे (मनीषिणः) मन को वश करनेवाले विद्वान् पुरुषो ! हे (ब्रह्मण्यन्तः नरः) वेद ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के चाहनेवाले नायक पुरुषो ! (यस्मिन्) जिसके आश्रय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, आत्मा (वावृधानः) शक्ति में बढ़ता हुआ (प्रदिवि) उत्तम ज्ञानमय प्रकाश में (ओकः दधेः) स्थान प्राप्त करे (अस्य) उस (अन्धसः) जीवन धारण करानेवाले, सुवानस्य) ज्ञान और शक्ति उत्पन्न करने या देनेवाले (प्रयसः) प्रीतिकर अन्न, ज्ञानमय प्रभु के आनन्द रस का (अपायि मदाय) हर्ष, आत्म संतोष प्राप्त करने के लिये पान किया जावे । इसी प्रकार उस ऐश्वर्य का भोग करो जिसमें (इन्द्रः) राजा (प्रदिवि) उत्तम विजय कार्य में या उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की राज सभायें स्थान प्राप्त करे ।

अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य (वज्रहस्तः) सूर्य के दूर करनेवाले प्रकाश को ही हनन साधन बनाकर जिस प्रकार (मध्वः मन्दानः) जल से तृप्त होकर, खूब जल खेंचकर (अर्णोवृतं) जल से भरे पूरे (अहिम्) व्याप्त मेघ को (विविश्चत्) विविध प्रकार से विद्युत् रूप से छिन्न-भिन्न करता है और जिस प्रकार (वयः न स्वसराणि) किरणें दिनों को और जिस प्रकार (वयःस्वसराणि न) पक्षीगण अपने आश्रय स्थानों को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (नदीनां) वेग से बढ़नेवाली नदिओं के (प्रयांसि) उत्तम मनोहर स्रोत (चक्रमन्त) चलने लगते हैं उसी प्रकार (अस्यमध्वः मन्दानः) इस मधुर आनन्द रस और इस मधुर अन्न और भोग्य ऐश्वर्य को खूब प्राप्त करता हुआ (वज्रहस्तः इन्द्रः) ज्ञान वज्र और शस्त्रास्त्र को धारण करता हुआ विद्वान् पुरुष और राजा, (अर्णोवृतं) विश्व महागर में विद्यमान, या जल दुर्ग में स्थित (अहिं) विघ्नकारी प्रबल अज्ञान और अक्षीण जटिल बध्य शत्रु को (विवृश्चत्) विविध उपायों से कुठार से वृक्षवन के समान काट गिरावे तब (नदीनां) समृद्ध और कलरव करनेवाली प्रसन्न और उत्साहित प्रजाओं के (प्रयांसि) जलवत् तृप्तिकर, मनोहर, अन्नादि ऐश्वर्य (वयः न स्वसराणि) घोंसलों को पक्षियों के समान, और दिनों को सूर्य की किरणों के समान (चक्रमन्त) आप से आप प्राप्त हो जाते हैं।

स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत्, या वायु, (अहिहा) मेघ पर आघात करनेवाला होकर (अपां अर्णः) अन्तरिक्ष के जल के (समुद्रम् अच्छ प्रेरयत्) समुद्र की तरफ नीचे फेंकता है और (अपां अर्णः समुद्रम् अच्छ प्रेरयत्) जलों के सागर के जल को समुद्र अर्थात् आकाश की

ओर ले जाता है वही विद्युत् या वायु मेघ को छिन्न भिन्न करके (सूर्यं अजनयत्) सूर्य को प्रकाशित करता और (गाः विदत्) किरणों और भूमियों को प्राप्त कर (अक्तुना) प्रकाश से (अह्नः वयुनानि साधत्) दिनों के सब कामों को करवाता है। उसी प्रकार (सः) वह परमेश्वर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (माहिनः) गुणों और कर्मों में महान्, होकर ही (अहिहा) अव्यक्त तम, प्रलय दशा में अविकृत प्रकृति तत्व में व्याप्त होकर (इह) इस लोक में (समुद्रम् अच्छ) समस्त आकाश में (अपां) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच में (अर्णः) विशेष वेग या स्पन्दन को (प्र ईरयत्) अच्छी प्रकार उत्पन्न करता है। तब वह (समुद्रम्) महान् आकाश को और (सूर्यम्) सूर्य या प्रकाश को (अजनयत्) प्रकट करता है। और (अक्तुना) सब पदार्थों को प्रकट करनेवाले तेजस्तत्व से (गाः विदत्) सब किरणों को प्रदान करता, (अह्नां) दिनों और दिनों के समान न नाश होकर भी पुनः उत्पन्न और अस्त होनेवाले जीवों के ज्ञानों और कर्मों को (साधत) साधता है। (२) (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा महाशक्तिशाली होकर (अपां) आप्त प्रजाजन के (अर्णः) जल प्रवाह के समान बल को संचालित करे, समुद्र और सूर्य के समान गम्भीर सेनापति को प्रकट करे, (गाः) भूमियों को प्राप्त करे। रात्रि के समय भी दिनों के समान सब कर्म और विज्ञान कार्य साधे। दिन रात समान रूप से यत्नवान् रहे।

सो अ॑प्रती॒नि मन॑वे पु॒रूणीन्द्रो॑ दाश॒द्दा॒शुषे॒ हन्ति॑ वृ॒त्रम्।
स॒द्यो यो नृभ्यो॑ अत॒साय्यो॒ भूत्प॑स्पृधा॒नेभ्यः॒ सूर्य॑स्य सा॒तौ ॥४॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) परमेश्वर, सूर्य, विद्युत् आदि जिस प्रकार (पुरूणि अप्रतीनि) बहुत से पालनकारी साधन अन्न, जल, तेज आदि प्रदान करता है उसी प्रकार (दाशुषे मनवे) अपने को उसके अधीन सेवक भक्त और उपासक रूप से सौंप देनेवाले, या पात्र में

दान करनेवाले (मनवे) मनुष्य को (अप्रतीनि) अद्भुत २ और बे-जोड़, अनुपम (पुरूणि) बहुत से ऐश्वर्य अथवा (अपतीनि पुरूणि) अप्रतिम, अनुपम शक्तिशाली दिव्य इन्द्रियें (दाशत्) प्रदान करता है और वह सूर्यादि के समान (वृत्रम् हन्ति) विघ्नकारी, दुष्ट पुरुष को, या जगत् के आच्छादक अन्धकार, अज्ञान को नाश करता है (सूर्यस्य सातौ) सूर्य के समान तेजस्वी पद या प्रकाशवान् आत्मस्वरूप के प्राप्त करने के लिये (पस्पृधानेभ्यः) एक दूसरे से अधिक तेजस्वी होने में स्पर्धा करनेवाले (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (यः) जो (सद्यः) सब दिन समान रूप से (अतसाय्यः भूत्) आश्रय करने योग्य और निरन्तर सहायक होता है। (२) राजा अपने अधीन कर प्रजा-जनों को बहुत से ऐश्वर्य दे, तेजस्वी पद के लिए स्पर्धाशील पुरुषों के लिये सदा सहायक हो।

स सु॑न्वत इन्द्रः॒ सूर्य॒मा दे॒वो रि॑णङ्मर्त्या॑य स्त॒वान् ।
आ यद्र॒यिं गु॒हद॑वद्यमस्मै॒ भर॒दंशं॒ नैत॑शो दश॒स्यन् ॥ ५ ॥२३॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) विद्युत् (देवः) प्रकाशमान् होकर (सुन्वते मर्त्याय) उत्पन्न करनेवाले वैज्ञानिक मनुष्य के लिये, (सूर्यं स्तवान्) सूर्य को लक्ष्य करके कहे गये समस्त गुण वर्णनों को (अरिणक्) प्राप्त कर उससे भी अधिक कार्य क्षम हो जाता है और जो वह (अस्मै) इस मनुष्य को (गुहद्-अवद्यं) गुप्त, अति पवित्र (रयिम्) ऐश्वर्य, खजाना भी (भरत्) प्रदान करता है और निर्दोष (अशं दशस्यन्) अपना भाग नष्ट करता हुआ वह फिर (एतशः न भवति) प्राप्त नहीं होता। बिजली का अपना 'अंश' अन्यत्र निकल जाने पर फिर वह मनुष्य के उपयोग में नहीं आता। ठीक इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा (देवः) दानशील, तेजस्वी होता है, वह (सुन्वते मर्त्याय) अपने अभिषेक्ता प्रजाजन के लिये (सूर्यम् आरिणक्) तेज में सूर्य को भी

मात करे। और वह (गुहत्-अवध्यम्) छुपा और निष्पाप धनैश्वर्य राष्ट्र को प्राप्त करावे। परन्तु वह यदि (अंशं दशस्यन्) अपना अंश षष्ठ भाग, कर स्वयं नष्ट करे तो (न एतशः) तब वह उसे प्राप्त न कर सके। (२) परमेश्वर देव (सुन्वते मर्त्याय) उपासक जन के लिये (सूर्यम् स्तवान् आरिणक्) सूर्य के गुणों से भी बढ़कर तेजस्वी, दाता, प्रकाशक और पूज्य है। (यत्) जो यह उसको गुणों को भी छुपा निष्पाप (रयिं) रयि, धन, आत्मा को ही प्राप्त करा देता है। जो पुरुष (दशस्यन्) अपने व्रत का नाश कर ले वह उस (अंशं) व्यापक प्रभु को (नः एतशः) नहीं प्राप्त कर सकता। अथवा (स्तवान् देवः) स्तुति किया गया प्रभु, सूर्य से भी बढ़कर है। वह (दशस्यन् एतशः) दानशील सूर्य या मेघ के समान (अंशं)) उसका भोग्य और पवित्र ऐश्वर्य (भरत् हरत्) प्राप्त करता है। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

स र॑न्धयत्स॒दिवः॒ सार॑थये॒ शुष्ण॑म॒शुषं॒ कुय॑वं॒ कुत्सा॑य।
दिवो॑दासाय नव॒तिं च॒ नवेन्द्रः॒ पुरो॒ व्यैर॒च्छम्ब॑रस्य॥ ६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (कुत्साय) धान काटकर लाने-वाले कृषक के हित के लिये (अशुषं) न सूखे, गीले २ (कुयवं) सामान्य जौ आदि धान्यकों भी (शुष्णम्) सूखा (रन्धयत्) कर देता है और (दिवः दासाय) प्रकाश देने के लिए (शम्बरस्य) आवरण करनेवाले मेघ के (नव च नवतिं च) ९९ (पुरः) खण्डों को (वि ऐरत्) विशेष रूप से संचालित करता है उसी प्रकार (सः) वह परमेश्वर (सदिवः) स्वयं तेज से युक्त और कामनावान् होकर (कुत्साय सारथये) स्तुति करनेवाले एवं समान रूप के 'रथ' अर्थात् रमण साधन आत्मा को तन्मय करनेवाले, रथस्वामी के साथ सारथि के समान, एक रथ में दो जवान, एक देह में दो जानों के समान जाननेवाले उपासक के हित के लिए (अशुषं) कभी न सूखनेवाले, सदा हरे भरे, (कुयवं)

कदन्न के समान कुत्सित आचारणवाले (शुष्णम्) बलशाली काम वेग को भी (रन्धयत्) विनाश कर देता है। और (दिवः दासाय) इच्छानुसार दानशील, पुरुष के लिये वह परमेश्वर (शम्बरस्य) शान्ति के नाशक, आत्मा को घेरनेवाले अज्ञान के (पुरः) पालन करनेवाली वासनाओं या वासनाओं के उदय होने की नाड़ियों को (वि ऐरत्) विशेष रूप से छिन्न-भिन्न करता है।

एवा ते इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः॥ ७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! हम (त्मना) स्वयं अपने आत्मा से (वाजयन्तः) अपने आपको बलवान् और ज्ञानवान् करते हुए (ते) तेरे (श्रवस्या न) श्रवण करने योग्य गुणों के समान ही (उचथम्) तेरे कहने योग्य स्तुति वचन को (एव) भी (अहेम) प्राप्त करें। और हम (तत्) तेरी उस (साप्तम्) परम मैत्री भाव का (अश्याम) सुख पूर्वक उपयोग करें और (आशुषाणः) उसका उपभोग करते हुए या अति शीघ्रता से कार्य्य करते हुए, अप्रमादी रहकर हम (अदेवस्य) अदानशील (पीयोः) हिंसक, पुरुष के (वधः) हिंसाकारी कृत्य को (ननमः) विनाश करें। अथवा हे इन्द्र ! (ननमः) उसके हिंसा कृत्य को दबावें।

एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः॥ ८॥

भा०—(अवस्यवः वयुनानि न) गमन करने वाले जिस प्रकार मार्गों को बना लेते हैं और जिस प्रकार (अवस्यवः) अन्यों को ज्ञान देने की इच्छा करने वाले पुरुष (वयुनानि) नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं उसी प्रकार हे (शूर) शूर ! शूर पुरुष के समान सब संकटों से बचाने हारे ! प्रभो ! (अवस्यवः) ज्ञान और शरण के इच्छुक

(गृत्समदाः) आनन्द को चाहने वाले और सब की आकांक्षा के पात्र परम मेधावी परमेश्वर ही में हर्ष प्राप्त करने वाले योगि जन (एव) तेरे ही मननीय, ज्ञानमयस्वरूप और (वयुनानि) नाना ज्ञानों और कर्मों, उत्तम आचरणों को (तक्षुः) स्वयं आचरण करते, और उसका अन्यों को उपदेश करते हैं। वे (ब्रह्मण्यन्तः) परम ब्रह्म ज्ञान या साक्षात् कार की अभिलाषा करते हुए हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तेरी (नवीयः) नये से नये अनुपम (इषम्) प्रेरणा, (ऊर्जं) सर्वोत्तम बल और (सुक्षितिम्) तेरे में उत्तम निवास और तेरे (सुम्नम्) परम सुख को (अश्युः) प्राप्त करते हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १८ । ९ ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२०]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । २ बृहती । ३ पङ्क्तिः । ४, ५, ७ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥

भा०—(वाजयुः रथं न) संग्राम की कामना करने वाला वीर पुरुष जिस प्रकार रथ को शास्त्रास्त्रों से भरता, या खूब पूर्ण करलेता है, और (वाजयुः न रथम्) अन्न को ढोलेना चाहने वाला मनुष्य जिस प्रकार रथ, शकटादि को भरता है और (वाजयुः न रथम्) वेग से या शीघ्रता से जाना चाहने वाला जिस प्रकार रथ का आश्रय लेता है

और (वाजयुः न रथम्) ऐश्वर्य चाहने वाला जिस प्रकार 'रथ' अर्थात् युद्ध विजयी रथ को चाहता है। उसी प्रकार (वयम्) हम लोग हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (विपन्यवः) स्तुतिकर्त्ता, (दीध्यतः) प्रकाशित होते हुए और (मनीषा) बुद्धि से (त्वावतः) तेरे जैसे, या तुझे अपनानेवाले (नृन्) नायक, उत्तम पुरुषों से (सुम्नम्) सुख (इयक्षन्तः) याचना करते हुए तेरे भक्त सज्जनों का आदर सत्कार करते हुए (वयं) हम (ते वयः) तेरे ज्ञान ऐश्वर्य को (आ भरामहे) पुष्ट करें। अथवा, हे (वयः इन्द्र) कमनीयगुणों से युक्त हे कान्तिमन् ! (ते सुम्नं प्रभरा महे) तेरे सुख को हम अच्छी प्रकार प्राप्त करें। इसी प्रकार हम (विपन्यवः) विविध पदार्थों के व्यापारी, (दीध्यतः देवयन्तः) व्यापार व्यवहार करते हुए (त्वावतः नृन् इयक्षन्तः) तुझ से नायकों का आदर करते हुए (ते) (सुम्नम्) तुझे सुख (प्रभरामहे) प्राप्त करावें। तू (नः) हमें (सुविद्धि) भली प्रकार जाने।

त्वं न॑ इन्द्र॒ त्वाभि॑रू॒ती त्वा॑य॒तो अ॑भिष्टि॒पासि॒ जना॑न् ।
त्वमि॒नो दा॒शुषो॑ वरू॒तेत्थाधी॑र॒भि यो नक्ष॑ति त्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! (त्वं) तू (त्वाभिः (ऊतिभिः) अपने रक्षा, ज्ञान, बल आदि से (त्वायन्तः) तेरे प्रेमी, तुझे चाहने वाले (नः) हमारे बीच में विद्यमान (जनान्) मनुष्यों को (अभिष्टिपा असि) आने वाली विपत्तियों से बचाने वाला है। (त्वम्) तू (दाशुषः) अपने को तेरे तई समर्पण करने वाले उस पुरुष का स्वामी और (वरूता) उसको विपत्तियों से बचाने वाला और अपनी शरण में स्वीकार करने वाला, उसके प्रति (इत्थाधीः) सत्य बुद्धि और सत्य कर्म वाला है। (यः) जो (इत्थाधीः) सत्य बुद्धि होकर (त्वा अभि) तुझे ही अपना एकमात्र जान (नक्षति) तेरे पास आता, तुझ में व्याप्त हो जाता है। इसी प्रकार राजा भी अपनी रक्षा में आये

अपने प्रति प्रेमी प्रजाजनों को विपत्ति से बचाने वाला हो, कर प्रदों का स्वामी, दुःखकारक और अपनानेवाला हो, शरणागत के प्रति (इत्थाधीः) सत्य बुद्धि, सत्यकर्मा न्यायशील हो।

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्र णेषत् ॥३॥

भा०—(सः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और उत्तम राजा (नः) हमारे बीच (शंसन्तं) उत्तम उपदेश करने वाले और (स्तुवन्तं) स्तुति करने वाले हैं। (ऊती) रक्षा और दीप्ति या प्रकाश के द्वारा (प्र नेषत्) उत्तम मार्ग से लेजाता है, और जो (शशमानम्) धर्म मर्यादाओं को लांघकर चलने वाले और (पचन्तं) अन्यों को सन्ताप देने वाले को (ऊती) दण्ड द्वारा (प्र नेषत्) उत्तम मार्ग में लेजाता है अथवा (शशमानं) प्लुतगति अर्थात् सब धर्मों को लांघ कर संन्यास मार्ग से जाने और (पचन्तं) अपने आत्म बल को तपस्या द्वारा परिपक्व करने वाले को सन्मार्ग से लेजाता है (सः) वह (युवा) सुखों से जोड़ने और दुःखों से दूर रखने वाला, (युवा) नित्य तरुण, सदा बलवान्, (जोहूत्रः) निरन्तर उत्तम पदार्थ देने वाला, अथवा भक्त, प्रेमी जनों से नित्य स्मरण किया और पुकारे जाने वाला, (सखा) मित्र, (शिवः) कल्याणकारी है वह (नः) हमारे (नराम्) पुरुषों और प्राणों का भी (पाता अस्तु) पालक और रक्षक हो।

तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (तम् इन्द्रं) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु की ही (स्तुषे) स्तुति कर (तम् गृणीषे) उसी की चर्चा कर (यस्मिन्) जिस की शरण में रहकर (पुरा) पहले भी लोग (वावृधुः) वृद्धि पाते रहे, (शाशदुः च) शत्रुओं का नाश करते रहे। (सः) वह

(ब्रह्मण्यतः) ज्ञान और धन और वृद्धि की कामना करने वाले (नूतनस्य) नये ही (आयोः) शरण में आये (वस्वः) अपने अधीन बसे जीव या, शिष्य या प्रजाजन की (कामं) कामना या अभिलाषा को (इयानः) स्वयं प्राप्त होकर या याचना किया जाकर (पीपरत्) पूर्ण करता है। अथवा, (आयोः वस्वः कामं पीपरत्) मनुष्य की धन की आकांक्षा को भी पूर्ण करता है। (२) जिसके अधीन रहकर लोग वृद्धि प्राप्त करें शत्रु नाश कर सके जो अधीनस्थ जन की धनाभिलाषा पूर सके वही स्तुति कथा, चर्चा करने योग्य है।

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥५॥२५॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) परमेश्वर (अङ्गिरसाम्) विद्वान् ज्ञानवान् पुरुषों को और तेजस्वी अग्नि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों और लोकों को (गातुम्) उनके उत्तम मार्ग की (इष्णन्) प्रेरणा करता या देता हुआ उनके (उचथा) कथन करने योग्य (ब्रह्मा) बड़े २ ऐश्वर्यों और बलों को भी (जुजुष्वान्) स्वयं धारण करके और वही परमेश्वर (सूर्येण) सूर्य के समान (उषसः) प्रभात वेलाओं को और (स्तवान्) स्तुतियों को (इष्णन्) करता हुआ, (अश्नस्य) सब को खाजाने या अपने पेट में धर लेने वाले अन्धकार के समान लोभ, मोह या अज्ञान सम्बन्धी (पूर्व्याणि) पूर्व जन्म के बन्धनों को भी (शिश्नथत्) शिथिल कर देता है (अर्थात्) सूर्य जिस प्रकार उदय होकर प्रभात वेलाओं को हर लेता है उसी प्रकार प्रभु भी उदय होकर स्तुतियों को प्राप्त करता और सच्ची स्तुतियां हृदय से निकलने पर हृदय में से लोभ और अज्ञान की पूर्व वासनाएं भी शिथिल होजाती हैं। (२) ऐश्वर्यवान् राजा (अंगिरसा उचथा जुजुष्वान्) विद्वानों के वचनों का प्रेम से सेवन करता हुआ, (गातुम् इष्णन्) सन्मार्ग और उत्तम भूमि राज्य को चाहता हुआ

(ब्रह्मा तूतोत्) अपने धनों और बल वीर्यों को बढ़ावे । वह (सूर्येण समं उषसः इव स्तवान् मुष्णान्) सूर्य के समान प्रभातों के सदृश उज्वल स्तुतियों को प्राप्त करता हुआ (अश्नस्य चित्) लोभ और लोभी शत्रु के (पूर्व्याणि) पूर्व के किये दुष्ट कर्मों को, दुष्ट नियम विधानों को (शिश्नथत्) शिथिल करदे । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

स ह॑ श्रुत इन्द्रो॒ नाम॑ दे॒व ऊ॒र्ध्वो भु॑व॒न्मनु॑षे द॒स्मत॑मः ।
अव॑ प्रि॒यम॑र्श॒सा॒नस्य॑ सा॒ह्वाञ्छिरो॑ भरद्दा॒सस्य॑ स्व॒धावा॑न् ॥६॥

भा०—(सः) वह (श्रुतः) सर्व प्रसिद्ध, श्रुति अर्थात् वेदों में आचार्य मुख से श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने योग्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, वह परमेश्वर (देवः) सब पदार्थों का प्रकाशक है । वह (मनुषे) मननशील ज्ञानी पुरुष के (दस्मतमः) सब कष्टों को सर्वोत्तम नाश करने वाला और (ऊर्ध्वः) सब से ऊपर, सब से अधिक पूज्य और शक्तिशाली (भुवत्) है । वह (साह्वान्) सब शत्रु और विघ्नों को परास्त करने हारा (स्वधावान्) स्वयं संसार भर को धारण पोषण करने वाले सामर्थ्य, अन्नादि ऐश्वर्यों का स्वामी है । वह (अर्शसानस्य) शरण में प्राप्त हुए (दासस्य) दास, सेवक के (प्रियम् शिरः) प्रिय शिर के समान पूजनीय, सिर आखों रह कर (अव भरत्) अपने अधीनस्थ को भरण पोषण करता, पालता है । अथवा वह (अर्शसानस्य) लोकों को पीड़ा देनेवाले (दासस्य) विनाश कारी, दुष्ट दस्यु पुरुष के (प्रियं शिरः अव भरत् हरत्) सबसे प्रिय सिर को अर्थात् बुद्धि को हर लेता है । (२) इसी प्रकार राजा प्रसिद्ध दानी, सर्वोपरि, दर्शनीय शत्रु विपत्ति का नाशक हो । पास आये सेवक का सिरमौर होकर अन्नवान् होकर दास सेवक का भरण पोषण करे । अथवा लोकपीड़क दस्यु पुरुष का प्रिय शिर काट दे ।

स वृ॑त्र॒हेन्द्रः॑ कृ॒ष्णयो॑नीः पुरन्द॒रो दासी॑रैरय॒द्वि ।
अज॑नय॒न्मन॑वे॒ क्षाम॒पश्च॑ स॒त्रा शंसं॒ यज॑मानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (कृष्णयोनीः दासीः वि ऐरयत्) काले अन्धकार की उत्पादक, नेत्रों की शक्ति का लोप करने वाली रात्रियों को दूर करता और वही वायु, सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार (कृष्णयोनीः दासीः) कर्षणशील कृषकों के एक मात्र आश्रय (दासीः) जलों के देने वाली मेघमालाओं को (वि ऐरयत्) विशेषरूप से प्रेरित करता है उसी प्रकार (सः) वह परमेश्वर (वृत्रहा) विघ्नों और आवरणकारी मोह आदि का नाशक, (पुरन्दरः) इस देहपुरी के बन्धन का तोड़ने वाला होकर (कृष्णयोनीः) कृष्ण अर्थात् पापयुक्त कर्मों को उत्पन्न करने वाली (दासीः) लौकिक सुख के देने वाली और ज्ञान और पुण्य का नाश करने वाली चित्तवृत्तियों को (वि ऐरथत्) विच्छिन्न, तितिर वितिर कर दे। जिस प्रकार सूर्य (मनवे) मनुष्य को (क्षाम् अपः च) भूमि, निवास योग्य और जल दोनों ही प्रदान करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी (मनवे) मननशील मनुष्य के भोग और उपकार के लिये (क्षाम्) भूमि और जल, क्षेत्र और उत्पादक बल या वीर्य भूमि स्वरूप नारी और रस रूप वीर्य दोनों ही (अजनयत्) उत्पन्न करता है। और वह (यजमानस्य) दानशील मनुष्य की (शंसं) स्तुति या कीर्त्ति को (सत्रा) सत्य के बल से (तूतोत्) बढ़ाता है। (२) शत्रुघाती राजा, (पुरन्दरः) शत्रुगण को भेदन करने वाला, (कृष्णयोनीः दासीः) काले कर्म, अत्याचार पापादि के करने वाली प्रजानाशक शत्रु सेनाओं को तितिर वितिर करे। प्रजा के जन को भूमि, जल प्रदान करे। कर दाता की स्तुति कीर्ति या आवेदन को सुनकर (सत्रा) न्यायानुसार वृद्धि दे।

तस्मै॑ त॒वस्य१॒॑मनु॑ दायि स॒त्रेन्द्रा॑य दे॒वेभि॒रर्ण॑सातौ ।
प्रति॒ यद॑स्य॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोर्धुर्ह॒त्वी दस्यू॒न्पुर॒ आय॑सी॒र्नि ता॑रीत् ॥८॥

भा०—(अर्णसातौ) जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार (सत्रा) सत्र अर्थात् यज्ञ में (इन्द्राय) जलप्रद मेघ की वृद्धि के लिये (तवस्यम्)

उस वृष्टिकारक बल का बढ़ाने वाला चरु ही (अनुदायि) निरन्तर दिया जाता है उसी प्रकार (अर्णसातौ) अभीष्ट अर्थात् पाने योग्य फल प्राप्त करने के लिये ही (सत्रा) सत्याचरण और मिथ्याचार से रहित सत्य उपासना द्वारा (तस्मै इन्द्राय) उस परमेश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त (देवेभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (तवस्यं) आत्मा की शक्ति को बढ़ाने वाला दान, वचन स्तवन आदि कर्म फल (अनुदायि) निरन्तर देते या त्यागते रहना चाहिये। (यत्) जब (अस्य) इस जीव के (बाहोः) अज्ञान को बांधने वाले ज्ञान और कर्म रूप दोनों बाहुओं से (वज्रं धुः) अज्ञान नाशक बल को धारण कर लेते हैं तब वह (दस्यून् हत्वी) आत्मा के नाशकारी अन्तः शत्रुओं को नाश करके (आयसीः) आवगामन सम्बन्धी (पुरः) देहबन्धनों को (नितारीत्) पार कर जाता है। जैसा उपनिषत् ऐतरये में लिखा है—तदुक्तमृषिणा।—

गर्भेनु सन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्॥
स एवं विद्वानस्मात् शरीरभेदादूर्ध्वमुतक्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्। एत० उप० २।४॥

(२) धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (देवेभिः) विजयेच्छुक सैनिक और दानशील धनाढ्यजन भी (सत्रा) एक साथ ही ऐश्वर्यवान् शत्रु-हन्ता राजा 'इन्द्र' को अपना (तवस्य) बल वर्धक वीर्य, धन, शस्त्रास्त्रादि सब निरन्तर दें। जब उसके बाहुओं में या बाजुओं पर, अगल बगल शत्रुवारक शस्त्रास्त्र और सैन्यबल प्रदान करते हैं तो वह दुष्ट शत्रुओं को नाश करके उनके (आयसीः पुरः) फौलादी, दृढ़ या शस्त्रास्त्र सैन्य से पूर्ण नगरियों को भी मात कर देता है। असुरों की तीन प्रकार की पुरी या किलें हैं एक सोने की, दूसरी चांदी की, तीसरी लोहे की अर्थात् ज्ञान और नीति कुशलता या उत्तम व्यवस्था यह सुवर्ण का गढ़ है, धन

वैभव समृद्धि अर्थात् आर्थिक दृढ़ता चांदी का गढ़ है। और शस्त्रास्त्र सैन्य बल फौलादी गढ़ है। अध्यात्म में आवागमन का बन्धन आत्मा के लिये आयसी पुर या फौलादी गढ़ है। वही यह भौतिक देह है। प्राणमय, विज्ञानमय मनोमय, कोश तीनों 'राजसी पुर' हैं, और आनन्दमय हिरण्ययीपुर या हिरण्ययकोश है। सभी प्राणों पर आश्रित होने से आसुर कहाती हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी। शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त। म० ९ ॥ इति षड्विंशो वर्गः ॥

[२१]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३, ६ त्रिष्टुप् । ४ विराट् जगती । ५ निचृज्जगती ॥षड्टचं सूक्तम् ॥

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते। अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१॥

भा०—हे पुरुष ! (विश्वजिते) जो समस्त विश्व को जीतने वाला, सब से उत्कृष्ट है, जो (धनजिते) धन, ऐश्वर्य द्वारा भी सब को जीतने वाला, सब से अधिक धनी है, जो (स्वर्जिते) सुख में भी सब को जीतने वाला, सब से अधिक सुखप्रद, आनन्दमय है, (सत्राजिते) जो निरन्तर, सत्य के बल से सब को जीतने, अपने अधीन करने वाला सत्यमय, सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला है, जो (नृजिते) समस्त मनुष्यों को जीतने, अधीन रखने वाला सबसे बड़ा प्रधान नायक है, (उर्वराजिते) सस्यादि उत्पन्न करने में श्रेष्ठ भूमि के समान और (उरु-वरा)

बड़े बड़ों से वरण करने योग्य, अति उत्तम 'प्रकृति' को भी अपने वश करने वाला है, (अश्वजिते) अश्व अर्थात् व्यापक पदार्थों और भोक्ता जीवों को भी अपने अधीन रखने वाला, उनका भी विजेता है, (गोजिते) गमनशील पृथ्वी सूर्य आदि का भी जीतने वाला, उनका भी स्वामी है, (अब्जिते) जलों, प्राणों प्रजाओं और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का जेता, उनको भी वश करने वाला, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, ऐसे (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (यजताय) सर्वोपास्य दानशील परमेश्वर के प्राप्त करने के लिये (हर्यतम्) अति कमनीय, अति प्रिय आत्मा को (भर) उसके समीप तक लेजा और अर्पित कर ।

अ॒भि॒भुवे॑ऽभिभ॒ङ्गाय॑ वन्व॒तेऽषा॑ळ्हाय॒ सह॑मानाय वे॒धसे॑ ।
तु॒वि॒ग्रये॒ वह्न॑ये दु॒ष्टरी॑तवे सत्रा॒साहे॒ नम॒ इन्द्रा॑य वोचत ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जो (अभिभुवे) सर्वत्र व्यापक, (अभिभंगाय) समस्त जगत् का भंग, नाश, प्रलय करने वाले, (वन्वते) समस्त ऐश्वर्य को उचित रूप से विभाग करने वाले, (अषाढाय) किसीसे और कभी भी उल्लंघन न करने योग्य, सर्वोपरि, रह कर (सहमानाय) सब को सहन करते सब को नाश करने वाले (वेधसे) विश्व के विधाता (तुविग्रये) बहुत ज्ञानोपदेश करने वाले आदि गुरु, (वन्हये) सब जगत् को उठाने वाले, जगत् को धारण और संचालन करने वाले, (दुस्तरीतवे) दुस्तर, अपार सामर्थ्य वाले, (सत्रासाहे) सत्य से विजयशाली, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (नमः वोचत) सदा नमस्कार युक्त वचन का प्रयोग करो ।

स॒त्रा॒सा॒हो ज॑नभ॒क्षो ज॑नंस॒हश्च्यव॑नो यु॒ध्मो अनु॒ जोष॑मुक्षि॒तः ।
वृ॒त॒ञ्च॒यः सहु॑रिर्वि॒क्ष्वा॑रि॒त इन्द्र॑स्य वोचं॒ प्र कृ॒तानि॑ वी॒र्या॑ ॥३॥

भा०—(सत्रासाहः) सत्य को सहन करने वाला, सत्य से शत्रु का पराजय करने वाला, (जनभक्षः) सब मनुष्यों को सेवन करने योग्य

या सब प्रजाजन का भोक्ता, (जनंसहः) सब जन्तुओं को सहन करने अपने अधीन रखने में समर्थ, (च्यवनः) सब में व्यापक, दुष्टों प्रतिपक्षियों को रण में भगाने और राज्य से च्युत करने वाला, (युध्मः) दुष्टों पर विपत्ति वज्र का प्रहार करने वाला, युद्धशाली, (जोषम् अनु उक्षितः) प्रेम और सेवा को देखकर मेघ के समान बरसने वाला, (वृतञ्चयः) विद्यमान धन का संचय करने वाला, ऋत, सत्य का एकमात्र पुञ्ज, सत्यमय या बढ़ते शत्रु की लक्ष्मी को फूल के समान चुन लेने वाला, (सहुरिः) सहनशील, (विक्षु आरितः) प्रजाओं में व्यापक शासन वाला है। मैं ऐसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर और राजा के (कृतानि) किये गये (वीर्या) समस्त वीर्य, बल पराक्रम आदि (प्रका वोचम्) अन्यों को उपदेश करूं।

अ॒ना॒नु॒दो वृ॑ष॒भो दोध॑तो व॒धो ग॑म्भी॒र ऋ॒ष्वो अस॑मष्ट का॒व्यः।
र॒ध्र॒चो॒दः श्नथ॑नो वीळि॒तस्पृ॒थुरिन्द्रः सु॒य॒ज्ञ उ॒षसः॒ स्व॑र्जनत् ॥४॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (अनानुदः) किसी अन्य से प्रेरित न होने वाला, स्वयं सबका सञ्चालक, (वृषभः) सबसे उत्तम, काम्य सुखों का वृषभ, (दोधतः वधः) हिंसक दुष्टों का हिंसक, (गम्भीरः) गम्भीर, गहरा, अपार बल सामर्थ्यवान् , (ऋष्वः) महान् ज्ञाता है। (असमष्टकाव्यः) उसके क्रान्त दर्शिता और बुद्धिमत्ता के कार्य का कोई पार नहीं पा सलता, वह (रध्रचोदः) आगे आये बाधक, हिंसकों को दूर करने और उत्तम ऐश्वर्यवान् समृद्ध पुरुषों को भी प्रेरणा करने वाला, (श्नथनः) दुष्टों को शिथिल करने वाला, (वीडितः) वीर्यवान् बलवान् , (पृथुः) महान् (सुयज्ञः) उत्तम उपास्य है। वह ही (उषसः) पापनाशक तेज और (स्वः) सुख को (जनत्) उत्पन्न करता अथवा वह सुखजनक प्रकाशस्वरूप होने से 'स्वः' और सर्व जगत् का उपन्न करने हारा होने से 'जनत्' है।

य॒ज्ञेन॑ गा॒तुम॒प्तुरो॑ विविद्रि॒रे धियो॑ हिन्वा॒ना उ॒शिजो॑ मनी॒-

षिणः । अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥

भा०—(यज्ञेन) उपासना, सत्संगति और यज्ञरूप दान आदि श्रेष्ठ कर्म और उपास्य परमेश्वर से (असुरः) कर्मों और बुद्धियों को प्राप्त करने वाले, (उशिजः) कामनावान् , (मनीषिणः) मेधावी, बुद्धिमान् , मनस्वी पुरुष (धियः) अपनी बुद्धियों और उत्तम कर्मों की (हिन्वानाः) वृद्धि और उन्नति करते हुए (गातुम् विविद्रिरे) उत्तम ज्ञान मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं अथवा वे (गातुम् असुरः धियः) सत् ज्ञान मार्ग प्राप्त करके प्रज्ञानों और उत्तम कर्मों का (विविद्रिरे) ज्ञान लाभ करते हैं। वे (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् साक्षात् द्रष्टा प्रभु या आचार्य के अधीन ही शिष्य के समान (हिन्वानाः) अपनी वृद्धि और उन्नति करते हुए (अभिस्वरा) सब प्रकार का उपदेश देने वाली, वेदवाणी, (निषदा) समीप बैठकर प्राप्त करने योग्य उपनिषद् ब्रह्मविद्या से (अवस्यवः) अपनी रक्षा, ज्ञान, सद्गति आत्मतृप्ति आदि की आकाक्षा करते हुए (गाः) उत्तम वाणियों और (द्रविणानि) उत्तम ऐश्वर्यों बलों और ज्ञानों को (आशत) प्राप्त करते हैं।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ६।२७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! गुरो ! राजन् ! आप (अस्मे) हम में (श्रेष्ठानि) सर्वोत्तम (द्रविणानि) ज्ञान और धन और बल वीर्य, (धेहि) धारण करो प्रदान करो, (दक्षस्य) बल और क्रिया सामर्थ्यवान् पुरुष की (चित्तिम्) सुचित्तता, चेतना, सावधानता और (सुभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। (रयीणां पोषं) ऐश्वर्यों की वृद्धि, (तनूनां अरिष्टिम्) शरीरों की रोगरहितता, और (वाचः स्वा-

ध्मानं) वाणी की मधुरता वा जिह्वा के लिये उत्तम भोजन और (अन्हां सुदिनत्वम्) दिनों का सुदिन पन (धेहि) प्रदान कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[२२]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ अष्टिः। २ निचृदतिशक्वरी। ४ भुरिगतिशक्वरी। ३ स्वराट् शक्वरी॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ १॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (महिषः) पृथ्वी को प्रकाश देने और उसका रस लेने वाला, महान् सूर्य (तुविशुष्मः) बहुत बल वाला होकर (त्रिकद्रुकेषु) तीन रूप ज्योतिः, गौ और आयु अथवा सूर्य पृथ्वी और प्राणी तीनों रूपों में स्थित (यवाशिरं) यव आदि ओषधि अन्नादि में प्राप्त होने वाले (सोमम्) जल और औषधि रस को (विष्णुना) व्यापक तेज से (अपिबत्) पान करता है और (तृपत्) तृप्त होजाता या वायु मण्डल को जल से तृप्त या पूर्ण कर देता है। (सुतं) उत्पन्न चर अचर, जगत् को (अवशत्) भली प्रकार वश करता है। उसी प्रकार (महिषः) महान् परमेश्वर (त्रिकद्रुकेषु) तीनों लोकों में व्यापक (तुविशुष्मः) सर्वशक्तिमान्, (विष्णुना) अपने सर्वव्यापक सामर्थ्य से (यवाशिरं) यवादि ओषधियों पर आश्रित रहने वाले (सोमम्) जीव जगत् को (अपिबत्) पालन करता है, (तृपत्) उसे खूब तृप्त कर देता है। और (सुतं) उत्पन्न हुए जगत् को (यथा अवशत्) भली प्रकार वश करता है। जिस प्रकार सूर्य (ईम्) जल से या जल प्राप्त वर्षण कर्म से (ममाद) स्वयं तृप्त होकर जगत् को भी हर्षित करता है उसी प्रकार परमेश्वर (ईम्) इस जीव संसार के पालन

करके सब प्रकार से (ममाद) स्वयं हर्षमय और जीव जगत् को हर्षित और सुखी करता है। और उसको (महि कर्म कर्त्तवे) बड़े २ भारी काम करने के समर्थ करता है। (इन्दुः इन्द्रं) जिस प्रकार चन्द्र सूर्य को प्राप्त होता, उसी के आश्रय बढ़ता है और गति करता है उसी प्रकार (सः) वह (देवः) नाना कामनावान् (सत्यः) नाशरहित, अनादि सत्कारणों में स्थित (एनं) इस (महाम्) बड़े (उरुं) विशाल, शक्तिमान् (देवं) सर्वैश्वर्यदाता (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रं) परमेश्वर को (सश्चत्) प्राप्त होता है, उसी में समवेत या आश्रित होकर रहता है।

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (त्विषीमान्) कान्तिमान् विद्युत् (ओजसा) बल से और (युधा) और आघात से (क्रिविम् अभि अभवत्) कुए के समान बहुत जल सेचने वाले मेघ को भी दबाता है या स्वयं वह विद्युत् जल देने के कार्य में कूप को भी मात् करती है (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को पालन, पूर्ण करता और (मज्मना प्र वावृधे) यह लोक उसके बल से ही बढ़ता है। वह मेघ भी (अन्यं) अपने से अतिरिक्त विद्युत् को अपने (जठरे अधत्त) भीतर रखता, (ईम् प्र अरिच्यत) जल को पृथ्वी पर त्याग देता है। (सः देवः सत्यः इन्दुः) वह जलप्रद बलशाली, जल से आर्द्र, मेघ (एनं देवं सत्यं इन्द्रं सश्चत्) उस देदीप्यमान, बलवान् नित्य विद्युत् को प्राप्त होता है। (अध) इसी प्रकार (त्विषीमान्) सब कान्तियों और दीप्तियों का स्वामी परमेश्वर (ओजसा) अपने बल से और युधा दुष्टों के ताड़न से (क्रिविम्) हिंसाशील सभी को (अभि भवत्) दबा देता है, वह सब से बलशाली होता है। वह प्रभु (रोदसी अपृणत्) द्यौ और पृथिवी दोनों को पूर्ण और पालन कर रहा

है। (अस्य मज्मना) उस परमेश्वर के बल से ही यह संसार (प्र वावृधे) खूब बढ़ता है। वह परमेश्वर (अन्यं जठरे अधत्त) एक अंश को अपने जठर में प्रलीन कर धर लेता है (ईम् प्र अरिच्यत) एक अंश को व्यक्त रूप में उत्पन्न करता है। (सः इन्दुः) वह यह जीव या ओषधिगण, (देवः) जीवन का इच्छुक (सत्यः) नित्य उस (देवं सत्यम् इन्द्रं सश्चत्) सत्यमय दाता परमेश्वर को प्राप्त होता है।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ ३॥

भा०—हे परमेश्वर! (ओजसा) तू बल वीर्य, पराक्रम के साथ ही प्रसिद्ध है। जो (क्रतुना साकं जातः) कर्मशक्ति और ज्ञानशक्ति के साथ ही प्रकट हुआ है। (ओजसा) बल, दीप्ति, के साथ ही समस्त संसार को (ववक्षिथ) धारण कर रहा है। तू वीर्यैः (साकम्) संसार के उत्पादक सामर्थ्यों सहित (वृद्धः) महान् है। (सासहिः) बड़ा सहनशील, (विचर्षणिः) सब का द्रष्टा, (काम्यं वसु) अभिलषित ऐश्वर्य और (राधः) धन (सुवते) स्तुति शील पुरुष को (दाता) देने हारा है। (सः एनं० इत्यादि) पूर्ववत्॥ (२) इन्हीं विशेषणों से युक्त राजा भी राज्य का शासन करे।

(१-३) देखो अथर्व भाष्य का० २। सू० ९५। १-३॥

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्। यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः। भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम्॥४॥२८॥२

भा०—सूर्य का जिस प्रकार (दिवि) प्रकाश के आधार पर (इदं प्रथमं नर्यं प्रवाच्यं कृतम् अपः भवति) यह सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों का उपका-

रक, प्रशंसनीय कर्म हुआ करता है कि (देवस्य शवसा) जलप्रद मेघ, या देदीप्यमान विद्युत् या तेज के बल से (अपः रिणन्) वृष्टि द्वारा जल को लाकर (असुं प्र अरिणाः) समस्त जीवों को जल प्राप्त कराता है। अथवा (देवस्य शवसा) सूर्य के प्रकाश के बल से (असुं रिणन्) मेघों को इधर उधर फैंकने वाले वायु को चलाकर (अपः अरिणाः) मेघस्थ जलों को प्रदान करता है। और (अदेवं) देव, जलप्रद मेघ से रहित (विश्वं) समस्त संसार को (ओजसा) बल पराक्रम, से (अभि भुवत्) अपने वश करता, उसमें सर्वोपरि रहता है। सूर्य ही (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्म करने वाला होकर (ऊर्जम्) बल कारक (इषम्) अन्न (विदात्) विशेष रूपों से प्रदान करता या स्वयं (विदात्) लाभ कराता है। उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे (नृतो) समस्त संसार को अपनी शक्ति से नचाने हारे, अपनी इच्छानुसार चलाने हारे हे (इन्द्र) सर्वैश्वर्य वन् ! (तव) तेरा ही (त्यत्) वह (नर्यं) समस्त नरों और विश्व देह और नर समाज के नायकों, सूर्यादि, लोकों, प्राणों और विद्वानों का हितकारी, (प्रथमम्) सब से प्रथम, अतिविस्तृत, सर्वश्रेष्ठ (पूर्व्यम्) सब से पूर्व, सब से पूर्ण, सब का पालक (कृतम्) कार्य (दिवि) ज्ञान, में और प्रकाश के आश्रय पर, या आकाश में (प्रवाच्यं) अच्छी प्रकार वर्णन करने और प्रवचन द्वारा शिष्यों को उपदेश करने योग्य है (यत्) कि (देवस्य) देदीप्यमान सूर्य या अग्नितत्व के बल से (असुं) प्राण या वायु तत्व को (रिणन्) गति देता हुआ (अपः प्र अरिणाः) जल तत्व में गति उत्पन्न करता है अथवा अग्नि तत्व के बल से (अपः रिणन् असुं प्रारिणाः) जलों में व्यापकर प्राण तत्व को प्रकट करता है। (अदेवम् विश्वम्) देव रहित प्रकाश रहित, समस्त संसार को अपने (ओजसा) तेजः पराक्रम, शक्ति से (अभि भवत्) व्याप रहा है, उसको अपने अधीन चला रहा है। तू (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्म और ज्ञानों का स्वामी होकर

(ऊर्जम्) बल (विदात्) देता और (इषम्) प्रेरणा को भी (विदात्) प्रदान करता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[२३]

गृत्समद ऋषिः ॥ देवताः—१, ५, ६, ११, १७, १६ ब्रह्मणस्पतिः । २—४, ६—८, १०, १२—१६, १८ बृहस्पतिश्च ॥ छन्दः—१, ४, ५, १०, ११, १२ जगती । २, ७, ८, ६, १३, १४ विराट् जगती । ३, ६, १६, १८ निचृज्जगती । १५, १७ भुरिक् त्रिष्टुप् । १६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकोनविंशर्चं सूक्तम् ॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् । ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् १

भा०—हे (ब्रह्मणः) महान् ऐश्वर्य, महान् संसार और वेद ज्ञान के (पते) पालक ! परमेश्वर ! (गणानाम्) गणना योग्य प्रमुखों में सब के प्रमुख, अग्रगण्य व (गणपति) उनके पालक (कावीनाम् कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ कवि, क्रान्तदर्शी और मेधावी, और (उपमश्रवस्तमम्) सर्वोपमायोग्य, श्रवण करने योग्य कीर्त्ति विद्या और बल में सर्वश्रेष्ठ, (ज्येष्ठराजं) बड़े बड़े लोकों में भी सब से अधिक दीप्तिमान्, उनको भी प्रकाशित करने वाले (त्वा) आपको हम (हवामहे) पुकारते हैं । तू (नः) हमारी स्तुति (शृण्वन्) श्रवण करता हुआ (ऊतिभिः) रक्षा आदि शक्तियों सहित (सादनं) विराजने योग्य प्रत्येक स्थान पर (सीद) विराजमान है ।

देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः । उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि २

भा०—हे (असुर्य) बलवानों में भी बलवान् ! हे (बृहस्पते) बड़े २ लोकों और वेदवाणी के पालक ! प्रभो ! (प्रचेतसः) सब से

उत्कृष्ट ज्ञान वाले (ते) तेरा (यज्ञियं भागम्) यज्ञ सम्बन्धी भाग अर्थात् उपासना करने योग्य, परम भजन करने योग्य स्वरूप को (देवाः चित्) विद्वान् जन ही (आनशुः) प्राप्त करते हैं। आप (उस्राः इव सूर्यः) किरणों से सूर्य के समान (ज्योतिषा) परम ज्योति से (महः) महान् और (विश्वेषाम्) समस्त (ब्रह्मणाम्) बड़े २ लोकों और समस्त ऐश्वर्यों, बल वीर्यों और वेदमय ज्ञानों के (जनिता असि) उत्पादक एवं प्रकट करने वाले हो। (२) राजा महान् राष्ट्र का पालक होने, बड़े २ ऐश्वर्यों का स्वामी होने से 'बृहस्पति' और 'ब्रह्मणस्पति' है। विजयेच्छु वीर पुरुष उसके (यज्ञियं भागम् आनशुः) परस्पर संगति योग्य राष्ट्र के ऐश्वर्य का अंश प्राप्त करे। वही सब ऐश्वर्यों का उत्पादक और सूर्य के समान तेजस्वी हो।

आ वि॒बाध्या॑ परि॒राप॒स्तमां॑सि च॒ ज्योति॑ष्मन्तं॒ रथ॑मृ॒तस्य॑ तिष्ठसि। बृह॑स्पते भी॒मम॑मित्र॒दम्भ॑नं र॒क्षोहणं॑ गो॒त्रभिदं॑ स्व॒र्विद॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! विद्वन्! आप सूर्य के समान (परि रपः) पापों से पूर्ण कर्म को और (तमांसि) अज्ञानमय अन्धकारों को (विबाध्य) विविध उपायों से नाश करके (ज्योतिष्मन्तं) ज्योतिर्मय, प्रकाशवान्, (भीमम्) दुष्ट पुरुषों को भय देनेवाले, (अमित्रदम्भनम्) शत्रुओं के नाश करने वाले, (रक्षोहणं) दुष्ट, राक्षस स्वभाव विघ्नकारी पुरुषों के नाशक (गोत्रभिदं) मेघों को विद्युत् या सूर्य के समान, पर्वत के समान दुर्गम बाधाओं को भी नाश करने वाले, (स्वर्विदम्) जलों को मेघ के समान (स्वः) सुख के देने वाले, (रथम्) रथ में महारथी के समान रमणीय स्वरूप में (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के कारण (तिष्ठसि) विराजते हैं। (२) राजा पापों, अज्ञानों को दूर करे। तेजस्वी भयंकर शत्रुनाशक, दुष्टनाशक, शत्रुदेश के उच्छे-

दक, प्रजा सुखकारक, सत्यन्याय और धन के उत्पादक (रथम्) रथ पर विराजे ।

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े राष्ट्रों, व्रतों और बड़े लोकों के पालक! राजन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! तू (सुनीतिभिः) उत्तम न्याययुक्त मार्गों, नीतियों से जाता है । (जनं) सब मनुष्यों, प्राणियों को (नयसि) सन्मार्ग पर चलाता और उनकी रक्षा करता है, (यः) जो (तुभ्यं) तेरे को (दाशात्) अपने तईं सौंप देता है (तम्) उसको (अंहः) पाप, कष्ट, (न अश्नवत्) कभी नहीं व्यापता । तू (ब्रह्मद्विषः तपनः) वेद, वेदज्ञ, और ईश्वर के विरोधी पुरुषों को तपाने वाला, दण्ड देने वाला और (मन्युमीः) क्रोध आदि अन्तः शत्रुओं और अभिमानियों को नाश करने हारा (असि) है । (ते) तेरा (तत्) वह अवर्णनीय, जगत् प्रसिद्ध (महि) बड़ा भारी (महित्वनम्) महिमा, महान् सामर्थ्य है । 'मन्युमीः'—बड़े को देखकर अल्प बल वाले का क्रोध उतर जाता है । सोम्य, न्यायशील और विद्वान् भी सामादि उपायों से क्रोध को दूर करता है । परमेश्वर पर किसी का क्रोध नहीं चलता ।

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) महान् राष्ट्र के पालक राजन् ! ब्रह्म, वेद के पालक विद्वन् ! महान् विश्व के पालक प्रभो ! परमेश्वर ! तू (सुगोपाः) उत्तम रक्षक होकर (यं रक्षसि) जिसकी रक्षा करता है (तम्) उसको (कुतः चन) किसी भी प्रकार से (नः अंहः) न कोई, पाप, अपराध, (न दुरितं) न दुराचार, दुर्गति, (न अरातयः) न शत्रुजन और (न

द्वयाविनः) न दोनों पक्षों के भेदू लोग या दोनों तरह धर्म अधर्म से मारने वाले जन (तितिरुः) उसको मार सकते हैं। तू (अस्मात्) उससे (विश्वा इत्) सब (ध्वरसः) नाशकारी कारणों को (वि बाधसे) से विनाश कर देता है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नो॑ गो॒पाः प॑थि॒कृद्वि॑चक्ष॒णस्तव॑ व्र॒ताय॑ म॒तिभि॑र्जरामहे।
बृह॑स्पते॒ यो नो॑ अ॒भि ह्वरो॑ द॒धे स्वा तं म॑मर्तु दु॒च्छुना॒ हर॑स्वती६

भा०—हे (बृहस्पते) महान् विश्व के पालक ! प्रभो ! सत्य वेद के पालक विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हमारा (गोपाः) रक्षक (पथिकृत्) उत्तम मार्ग बनाने वाला, (विचक्षणः) विविध सत्योपदेशों का उपदेष्टा, सब का विशेष रूप से सर्वोपरि द्रष्टा है। (तव व्रताय) तेरे महान् कार्य के लिये हम (मतिभिः) उत्तम मनन करने वाली बुद्धियों और मन्त्रों सहित (तब) तेरी (जरामहे) स्तुति करते हैं। (नः) हमपर (यः) जो भी कोई (ह्वरः) कुटिलता या क्रोध आदि (दधे) करे (तं) उसको (स्वा) अपनी (दुच्छुना) दुःखदायिनी प्रकृति (हरस्वती) वेगवती सेना या तलवार होकर (ममर्तु) नाश करे। मनुष्य को अपनी कुटिलता ही उसका नाशकारी हो। राष्ट्रपक्ष में दुष्ट शत्रु को (स्वा) हमारी अपनी सेना जाकर मारे।

उ॒त वा॒ यो नो॑ म॒र्चया॒दना॑गसोऽराती॒वा मर्तः॑ सानु॒को वृकः॑।
बृह॑स्पते॒ अप॒ तं व॑र्तया प॒थः सु॒गं नो॑ अ॒स्यै दे॒ववी॑तये कृधि॥७॥

भा०—हे (बृहस्पते) परमात्मन् ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! (यः) जो (नः) हम (अनागसः) अपराध रहितों को भी (मर्चयात्) पीड़ित करे और (अरातिवा) अदानशील, और शत्रु पुरुषों का संगी (मर्त्तः) मनुष्य (सानुकः वृकः) अपने साथी संगी लोगों सहित, वा (सानुकः) पर्वत शिखरों में विचरने वाले 'वृक' भेड़िये के समान हिंसक, डाकू है (तं) उसको (नः पथः) हमारे मार्ग से (अप वर्त्तयः)

दूर कर। (अस्यै) इस (देववीतये) विद्वानों और उत्तम गुणों को प्राप्त करने और परमेश्वर के ज्ञान और विद्वानों की रक्षा करने के लिये (नः) हमारे लिये (सुगं) सुख से गमन करने योग्य उपाय और मार्ग (कृधि) बना, उपदेश कर।

त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम्।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े लोकों और राष्ट्रों के रक्षक परमेश्वर! और राजन्! हम (त्वा) तुझ को (तनूनां) अपने शरीरों और विस्तृत सुखदायक पदार्थों का (त्रातारं हवामहे) पालक मानते हैं। तुझे ही त्राता जानकर तेरी पुकार करते हैं। हे (अवस्पर्त्तः) अपने रक्षक, शत्रुनाशक बल से संकटों से पार उतारने वाले हम! तुझे (अधिवक्तारं) सब पर अध्यक्ष रूप से आज्ञा देनेवाला और (अस्मयुम्) हमें चाहने वाला हमारा प्रिय स्वामी स्वीकार करते हैं। तू (देवनिदः) दिव्य गुणों और उत्तम विद्वानों और परमेश्वर की निन्दा करने वालों का (नि बर्हय) विनाश कर जिससे (दुरेवाः) दुष्ट आचरण वाले, दुर्बुद्धि लोग हमारे (उत्तरं) भविष्य में प्राप्त होने वाले या उत्कृष्ट (सुम्नम्) सुख को (मा उत् नशन्) न प्राप्त करें, न विनष्ट करें।

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) हे महान् विश्व, ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर! हे महान् राज्य के पालक राजन्! (त्वया सुवृधा) उत्तम वृद्धि करने वाले तुझ सहायक से (वयं) हम (मनुष्याः) मननशील पुरुषों के हितकारी लोग (स्पार्हा) चाहने योग्य (वसु) धन (आददीमहि) प्राप्त करें। (नः) हम से दूर (या) जो (तडितः) आघात करने वाली

(अरातयः) अदानशील, शत्रुरूप (अनप्रसः) उत्तम कर्म और उत्तम रूप से रहित दुष्ट प्रजाएं, सेनाएं, (अभि सन्ति) हमपर आक्रमण करती हैं (ता) उनको (अभि जंभय) नाश कर।

त्वया॑ व॒यमु॑त्त॒मं धी॑महे॒ वयो॒ बृह॑स्पते॒ पप्रि॑णा॒ सस्नि॑ना यु॒जा। मा नो॑ दुः॒शंसो॑ अभिदि॒प्सुरी॑शत॒ प्र सु॒शंसा॑ म॒तिभि॑स्तारिषी-महि ॥ १० ॥ ३० ॥

भा०—हे (बृहस्पते) परमात्मन् ! हे विद्वन् ! राजन् ! (त्वया) तुझ (पप्रिणा) पालन करने और सब ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले, (सस्निना) शुद्ध पवित्र आचारवान्, (युजा) सहायक से (वयं) हम (उत्तमं) उत्तम (वयः) ज्ञान, बल और दीर्घजीवन (धीमहे) धारण करें। (दुःशंसः) कुख्याति वाला, और दुष्ट शासन करने वाला, बुरे २ उपदेश देने वाला दुष्ट पुरुष (अभिदिप्सुः) सब को मारने और ठगने वाला वञ्चक पुरुष (नः) हम पर (मा ईषत) कभी प्रभुता न करे। हम लोग (सुशंसाः) उत्तम कीर्त्तिवाले, उत्तम उपदेष्टा होकर (मतिभिः) उत्तम वुद्धियों से युक्त होकर (तारिषीमहि) स्वयं तरें और अन्यों को संकटों से पार उतारें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

अ॒ना॒नु॒दो वृ॑ष॒भो जग्मि॑राह॒वं निष्ट॑प्ता॒ शत्रुं॒ पृत॑नासु सास॒हिः। असि॑ स॒त्य ऋ॑ण॒या ब्र॑ह्मणस्पत उ॒ग्रस्य॑ चिद् दमि॒ता वी॑ळुह॒र्षिणः॑ ११

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् राज्य और वेद ज्ञान के पालक राजन् ! तू (अनानुदः) अनुपम दानशील है। तेरे दान के पश्चात् भी उतना दान कोई देने में समर्थ नहीं होता। तू (वृषभः) बलवान्, (आहवं जग्मिः) युद्ध में जाने वाला, (शत्रुं निस्तप्ता) शत्रु को खूब पीड़ित करने वाला, (पृतनासु) सेनाओं और संग्रामों में (सासहिः) शत्रु को पराजित करने हारा, (सत्यः) न्यायशील, (ऋणयाः) ऋण चुकाने वाला, और (उग्रस्य) तीव्र, स्वभाव के (वीळुहर्षिणः) वीर्य के मद

से अति प्रसन्न, गर्वीले वीरों और शत्रुओं का भी (दमिता) दमन करने हारा (असि) हो। (२) परमेश्वर सब से बड़ा दानी, मेघ के समान सुखों का वर्षक, (आहवं जग्मिः) उपासना को प्राप्त, (शत्रुं निस्तप्ता) अन्यों के पीड़क को सन्ताप देनेवाला, (पृतनासु) मनुष्यों, जीवों के बीच में भी (सासहिः) सब से बड़ा सहनशील, सत्यस्वरूप (ऋणयाः) सब के अन्त में भी प्राप्त होने वाला, सब का दमनकारी है।

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः॥१२॥

भा०—(यः) जो जीव (अदेवेन) देव, अर्थात् उत्तम भाव से रहित, अशुद्ध चित्त से (रिषण्यति) दूसरे की हिंसा करता है, और (शासाम्) अन्य शासन करने वालों में या शस्त्रों हथियारों के कारण (उग्रः) अतिभयंकर प्रजा का उद्वेजक (मन्यमानः) गर्वी होकर (जिघांसति) हनन करना चाहता है। हे (बृहस्पते) बड़े राज्य के पालक! हे (बृहस्पते) बृहती वेदवाणी के पालक न्यायकारिन्! (तस्य वधः) उसका हथियार (नः मा प्रणक्) हमें स्पर्श न करे, अथवा (नः) हमारे हित के लिये (तस्य वधः) उसका न्यायोचित वध आदि दण्ड (मा प्रणक्) कभी नष्ट न हो। वह दण्ड उसको अवश्य प्राप्त हो। उस (दुरेवस्य) दुःखदायक चेष्टा वाले (शर्धतः) बलवान् पुरुष के भी (मन्युं) क्रोध और अभिमान को हम (नि कर्म) तिरस्कार करें, तुच्छ समझें, और नहीं सा करदें।

भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम्।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव॥१३॥

भा०—(सः) वह (बृहस्पतिः) वेद, न्याय और राज्य का पालक राजा और संसार का पालक बृहस्पति परमेश्वर (भरेषु) संग्रामों में, यज्ञों में और प्रजा के पालन पोषण के कार्यों में (हव्यः) सदा आदर पूर्वक

स्वीकार करने और स्तुति करने योग्य, (नमसा) विनय और आदर से (उपसद्यः) प्राप्त करने योग्य (वाजेषु गन्ता) संग्राम कार्यों, में जानेवाला, [परमेश्वर, (वाजेषु गन्ता) ज्ञान और बलों में व्यापक,] (धनंधनं सनिता) बहुत प्रकार के और बहुत से धनैश्वर्य को प्रजाओं में विभक्त करने वाला, (अर्यः) प्रजाओं का स्वामी (विश्वाः) समस्त (अभिदिप्स्वः) नाश करने की इच्छुक (मृधः) नाशकारिणी शत्रु सेनाओं या युद्धों को (रथान् इव) शत्रु के रथों के समान (वि ववर्ह) संहार करे।

तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम्।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय१४

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े बड़ों के मालिक ! (ये) जो दुष्ट पुरुष (दृष्टवीर्यं) अपने बल को ठीक २ प्रकार के युद्ध आदि अवसरों में दिखा कर कीर्त्ति प्राप्त करलेने वाले, सत्य पराक्रमी (त्वा) तुझे (निदे दधिरे) निन्दा का पात्र बनाते हैं अर्थात् तेरी निन्दा करते हैं तू उन (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (तेजिष्ठया) अति तेजस्विनी, खूब तीखी (तपनी) संताप और पीड़ा देने वाली व्यवस्था, शक्ति या सेना से (तप) पीड़ित कर। (यत्) जो (तेरा) (उक्थ्यं) प्रशंसा करने योग्य ज्ञान और बल (असत्) है (तत्) उसको (आविः कृष्व) प्रकट कर। और (परिरापः) पाप से परिपूर्ण पुरुष को (वि अर्दय) विविध उपायों से पीड़ित कर।

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् १५।३१

भा०—हे (बृहस्पते) बड़ों के भी पालक ! (यत्) जिस तेज और ऐश्वर्य को (अर्यः) सर्व श्रेष्ठ स्वामी और उत्तम व्यवसायी (अर्हात्) पाने योग्य है, वही प्राप्त कर सके, जो (द्युमत्) प्रकाश युक्त, (जनेषु) मनुष्यों के बीच (क्रतुमत्) कर्म और ज्ञान उत्पन्न करनेहारा होकर (विभाति) विशेष रूप से प्रकाशित होता है, (यत्) जो अन्य को भी

(दीदयत्) चमकाता है, हे (ऋतप्रजात) वेद ज्ञान, सत्य, न्याय और धर्म से प्रसिद्ध पुरुष ! तू (अस्मासु) हम में (तत्) वही सर्वोत्तम (चित्रं) अति अद्भुत, अलौकिक (द्रविणं) ऐश्वर्य, ब्रह्मतेज, (धेहि) स्थापना करदे ।

बृहस्पते ! अति यदर्यो अर्हात् इत्येतया ऋचा परिदध्यात्तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामः अतीववा अन्यान् ब्रह्मवर्चसमर्हति । द्युमदिति द्युमदिव वै ब्रह्मवर्चसं विभाति । यद् दीदयत् शवस ऋत प्रजातेति, दीदायेव वै ब्रह्मवर्चसं । तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् इति । चित्रमिव वै ब्रह्मवर्चसं । ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवतीति । ऐतरेय ब्राह्मणे ४।११॥ इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः । आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़ों के भी पालक ! राजन् ! प्रभो ! (ये) जो (द्रुहः) द्रोही शत्रु होकर (पदे) प्राप्त करने योग्य प्रत्येक स्थान और पदार्थ में (निरामिणः) नित्य स्वयं ही रमण करने वाले विलासी होकर (अन्नेषु) अन्न आदि भोग्य पदार्थों में (अभि जागृधुः) आक्रमण करके पदार्थ हर लेना चाहते हैं उन (स्तेनेभ्यः) चोर पुरुषों से (नः) हमें (मा) भय न हो । और जो (देवानाम्) देव, विद्वानों के या विजयी पुरुषों या पदार्थों की आकांक्षा करने वाले पुरुषों के बीच में भी (व्रयः) त्याग, या विघ्न वर्जन के बल को (हृदि) हृदय में (आ ओहते) धारण करते हैं, हे (बृहस्पते) बड़े बड़ों के भी पालक ! वे (साम्नः) शान्तिमय, सुखकारी वचन से (परः) श्रेष्ठ, दूसरे उपाय को (न विदुः) नहीं जानते । वे त्यागशील जन 'साम' उपाय को ही सर्वश्रेष्ठ जानते हैं ।

विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः । स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि १७

भा०—सब विषम दशाओं के उपस्थित रहने पर भी (साम्नः साम्नः) साम ही साम उपाय को (कविः) सबसे उत्तम रूप से पार दर्शी होकर देखने वाला विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष है। वही (त्वष्टा) तेजस्वी सूर्य के समान विद्वान् पुरुष (त्वा) तुझ प्रजाजन या राजा को (विश्वेभ्यः) समस्त (भुवनेभ्यः परि) लोकों और उत्पन्न पदार्थों से (परि अजनत्) परि पूर्ण और श्रेष्ठ बना देता है। (सः) वही (ऋण-चित्) धनों को संग्रह करने वाला, वही (ऋणया) धनों को लेने और देने में समर्थ, वही (ब्रह्मणः पतिः) बड़े राज्यैश्वर्य का पालक, वही (द्रुहः हन्ता) द्रोही पुरुषों को नाश करने और दण्ड देने में समर्थ और वही (महः) बड़े (ऋतस्य) सत्य वेद ज्ञान, और न्याय व्यवस्था के (धर्त्तरि) धारण करने वाले के पदपर स्थित होने योग्य है।

तव॑ श्रि॒ये व्य॑जिहीत॒ पर्व॑तो ग॒वां गो॒त्रमु॒दसृ॑जो॒ यद॑ङ्गिरः।
इन्द्रे॑ण यु॒जा तम॑सा॒ परी॑वृत॒ बृह॑स्पते॒ निर॒पामौ॑ब्जो अर्ण॒वम् १८

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े राष्ट्र के पालक ! हे (अंगिरः) तेजस्विन् ! जिस प्रकार (पर्वतः गवां गोत्रम् विजिहीते उत्सृजति च) मेघ किरणों के समूह को प्रथम रोक लेता है और फिर छिन्न भिन्न होकर जल त्याग देता है तो यह सब सूर्य की शोभा के लिये ही होता है इसी प्रकार (पर्वतः) पालन सामर्थ्य से युक्त शासक (यत्) जो (गवां गोत्रन्) भूमियों के समूहों या क्षेत्रों को (वि अजिहीत) विशेष रूप से प्राप्त करता और फिर तेरे लिये (उत् असृजः) कर रूप से अन्न प्रदान करता है तो वह (तव श्रिये) तेरी ही लक्ष्मी के वृद्धि के लिये हो। और (इन्द्रेण युजा) विद्युत् के योग से (तमसा) अन्धकार या श्यामपन से (परी-वृतम्) घिरे हुए (अपाम् अर्णवम्) जल के सागर अर्थात् प्रचुर जल को जो बृहस्पति प्राणों का पालक वायु पुनः नीचे गिरा देता है उसी प्रकार (इन्द्रेण युजा) वीर सेना पति के साथ मिलकर (तमसा) शत्रु के

दुःख शोकादि से घिरे हुए (अपाम् अर्णवम्) सैनिकों के महासागर के समान अपार सैन्य बल को (निर् औब्जः) नीचे गिरा देता, मारकर भूमि में गिरा देता है।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९॥३२॥६॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्माण्ड, प्रकृति और ज्ञानमय वेद के पालक परमेश्वर! विद्वन्! हे बड़े राज्य के पालक राजन्! (त्वम् अस्य) तू इस संसार और राष्ट्र का (यन्ता) नियामक, है। तू (सु-उक्तस्य बोधि) हमें उत्तम वचनों, वेदों का ज्ञान करा। (तनयं च) हमारे पुत्रपौत्र आदि को ज्ञान ऐश्वर्यादि से तृप्त और पूर्ण कर। (देवाः) देव, विद्वान् गण (यत् अवन्ति) जो पदार्थ प्रदान करते हैं (तद्) वह (विश्वं) सब (भद्रं) कल्याणकारी होता है। हम (सुवीराः) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर (विदथे) संग्राम में और ज्ञान सभाओं में (बृहत्) बहुत उत्तम वचन (वदेम) कहें जिससे श्रोताओं को सुख, तृप्ति और ज्ञान प्राप्त हो। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

[२४]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—११, १३—१६ ब्रह्मणस्पतिः। १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च देवते ॥ छन्दः—१, ७, ६, ११ निचृज्जगती। १३ भुरिक् जगती। ६, ८, १४ जगती। १० स्वराड् जगती। २, ३ त्रिष्टुप्। ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। १२, १६ निचृत् त्रिष्टुप्। १५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा। यथा नो मीढ्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥

भा०—हे गुरो (बृहस्पते) बृहती नाम वेद वाणी के पालक विद्वन् ! तू (अया) इस (नवया) नवीन अर्थात् शिष्यों ने जिसको पहले नहीं जाना ऐसी या सदा नवीन, सत्य (महागिरा) पूज्य वाणी द्वारा ही (प्रभृतिम्) सबसे उत्कृष्ट भृति, उत्तम आजीविका धारण पोषण को प्राप्त करने में समर्थ या अधिकारी है। (सः) वह तू (इमाम्) इसको (अविविढि) प्राप्तकर और (वयं विधेम) हम तेरी उत्तम उत्तम भरण पोषण की सेवा को सम्पन्न करें। हे बृहस्पते ! विद्वन् ! जिससे कि (तव सखा) तेरा मित्र तेरे समान नाम वाला दूसरा अध्यापक भी (मीढ्वान्) मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करने वाला होकर (नः) हमारी स्वल्पमति को बढ़ाता और सधाता है (उत) और उसी प्रकार तू भी (नः मतिम्) हमारी बुद्धियों को (सीषधः) सिद्ध, निश्चित, ज्ञानवान्, परिपक्व कर।

यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् २

भा०—(यः) जो (नन्त्वानि) दबाने योग्य भीतरी और बाह्य शत्रु सैन्यों को (ओजसा) बल पराक्रम से (अनमत्) दबा लेता है, (मन्युना) क्रोध या ज्ञान से (शम्बराणि) शान्तिनाशक शत्रुओं के कृत्यों, विघ्नों को (वि अदर्दः) मेघों के जलोंको सूर्य या विद्युत् या वायु के समान छिन्न भिन्न कर देता है, (अच्युता) स्थिर राजवंशी शत्रुओं और अविद्यादि दोषों को भी (प्र अच्यावत्) अच्छो प्रकार नष्ट कर देता है वही 'ब्रह्मणस्पति' वेद का पालक, बड़े राष्ट्र का पालक भी है और वही (वसुमन्तं पर्वतम्) वसु, २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य और प्राणों और वीर्य के पालक, पर्वत के समान अचल, एवं व्रत पालक शिष्य के भीतर भी (आ अविशत्) प्रवेश करता है।

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥३॥

भा०—(देवानां) तेजस्वियों में (देवतमाय) जो सबसे अधिक तेजस्वी होता है उसका (तत् कर्त्वम्) यह अलौकिक कर्म होता है कि उसके समक्ष (दृढा अश्रथ्नन्) दृढ़ पदार्थ भी उसके लिये शिथिल हो जाते हैं और (वीडिता) बलशाली भी (अव्रदन्त) कोमल होकर झुक जाते हैं। वह विद्वान् और राजा (ब्रह्मणा) बड़े बल से (गाः उत् आजत्) किरणों को सूर्य के समान भूमियों और भूमिवासी प्रजाओं को (उत् आजत्) उत्तम मार्ग में चलता और (गाः उत्आजत्) उत्तम २ ज्ञान वाणियों का उपदेश करता है (वलम्) मेघ को सूर्य के समान स्वबल और शत्रु बल को (अभिनत्) भेद डालता और (तमः) अज्ञान अन्धकार को (अगूहत्) छिपा देता, और (स्वः वि अचक्षयः) प्रकाश के समान सुख और तेज को प्रकट करता और नाना प्रकार से सन्मार्ग बतलाता है।

अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत्।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः) बड़े भारी बल का पालक सूर्य या वायु जिस प्रकार (अवतं) नीचे की ओर फैले हुए, जल के भार से नीचे को झुके हुए, (मधुधारम्) जल को धारण करने वाले (यम् अश्मास्यम्) जिस व्यापक विद्युत् को फेंकने वाले वा स्वयं फैलने और जल धाराओं से बहने वाले मेघ को (ओजसा) बल से (अतृणत्) आघात करता है (तम् एव) उस मेघ को (विश्वे स्वर्दृशः) सब आदित्य के किरण ही (पपिरे) पान किया करते हैं। और वे किरण ही (उद्रिणं उत्सम्) जल से भरे कूप के समान जल से पूर्ण मेघ को (साकं) एक साथ ही बहुतसा (सिसिचुः) सेच लेते हैं। इसी प्रकार (ब्रह्मणः पतिः)

बड़े बल के पालक शक्तिमान् पुरुष (अवर्तं) अपने आगे झुके हुए (अश्मास्यम्) शस्त्र-बल से नीचे गिराये हुये, पराजित, (मधुधारम्) अन्नादि सुखजनक भोग्य पदार्थों को धारण करने वाले (यं) जिस परराष्ट्र को (ओजसा) अपने बल से (अतृणत्) छिन्न भिन्न कर देता है (तम् एव) उसको (विश्वे) सब (स्वर्दृशः) सुख, प्रकाश के देखने वाले विद्वान् जन (पपिरे) उपभोग और पालन करें, (उद्रिणम् उत्सम्) जल वाले कूप के समान उसको (बहु सिसिचुः) बहुत वार सींचते हैं, उससे नाना ऐश्वर्य प्राप्त करते और उससे अपने आप समृद्ध होते हैं ।

सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः॥५॥

भा०—(ब्रह्मणः पतिः) वेदविद्या रूप धन का पालक परमेश्वर या विद्वान् पुरुष (या वयुना) जिन ज्ञानों और कर्मों का (चकार) प्रकाश करता है (ता सना) वे सब सनातन हैं । उनमें से (काचित्) कुछ (वः) आपके (भुवना) भूत कालिक (भवित्वा) भावी पदार्थों और कार्यों के (दुरः) द्वारों को (माद्भिः) मासों और (शरद्भिः) वर्षों में (वरन्त) खोलते हैं । तब स्त्री पुरुष दोनों ही (अयतन्ता) विशेष प्रयत्न न करते हुए ही, अनायास (अन्यत्-अन्यत्) अन्यान्य नाना फलों का (चरतः) उपभोग करते हैं । अर्थात् ज्ञानी पुरुष के अविष्कार किये ज्ञान मनुष्यों के आगे भूत और भविष्यत् काल की समस्याओं के द्वार खोला करते हैं । उनके द्वारा ज्ञानवान् होकर स्त्री पुरुष अनायास नाना सुख भोगते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (अभिनक्षन्तः) सर्वत्र ज्ञानबल

से पहुंचते हुए, खोजी लोगों के समान (गुहाहितम् पणीनां निधिम्) गुफा या गुप्त स्थान में रखे व्यापारी धनाढ्यों के धन के समान ही (गुहाहितम्) बुद्धि में रखे (तम्) उस (पणीनां) पूर्व के व्यवहारज्ञ, विद्योपदेष्टा पुरुषों के (परमं) सर्वोत्कृष्ट (निधिम्) शिष्य को समीप बैठाकर देने या धारण करने योग्य ज्ञान कोश को (अभि आनशुः) प्राप्त कर लेते हैं (ते) वे (विद्वांसः) विद्वान् लोग (अनृता प्रति चक्ष्य) अनृत, असत्य बातों को परित्याग करके (पुनः) फिर वे (यतः आविशम् आयन्) जहां से वे उस गुरुगृह में आये थे (तत् उत् ईयुः) फिर उसी अपने पितृगृह में चले जाते हैं। अर्थात् खजाना खोदने वाले पहले जिस द्वार से घुसते हैं फिर खजाना लेकर उसी द्वार से गुफ़ा से ऊपर निकल आते हैं उसी प्रकार विद्वान् जन भी खोजते २ वे जिस स्थान पर भी विद्या का खजाना पाते हैं वहां से लेते और फिर जिस पितृगृह से आते हैं स्नातक होकर फिर वहीं चले आते हैं।

ऋ॒तावा॑नः प्रति॒चक्ष्यानृ॑ता पुन॒रात॒ आ त॑स्थुः क॒वयो॑ म॒हस्प॒थः। ते बा॒हुभ्यां॑ धमि॒तम॒ग्निमश्म॑नि॒ नकिः॒ षो अ॒स्त्यर॑णो ज॒हुर्हि तम् ॥ ७ ॥

भा०—(ऋतावानः) सत्य ज्ञान, वेद का सेवन करने वाले (कवयः) क्रान्तदर्शी ज्ञानी लोग (अनृता) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान से अविद्या के कार्यों को (प्रति चक्ष्य) विवेक पूर्वक त्याग करके (पुनः) वार वार (अतः) इस लोक से (महः पथः) बड़े धर्मयुक्त मार्गों को (आ तस्थुः) प्रस्थान करते हैं। (ते) वे (बाहुभ्यां) बाहुओं के बल से (धमितम्) जलाई (अग्निम्) अग्नि को (अश्मनि) जैसे पत्थर पर वैसे ही व्यापक परमेश्वर के आधार पर ही जानकर (सः अरणः नकिः अस्ति) वह स्थूल यज्ञाग्नि रमण करने योग्य सुखद या ज्ञानवान् चेतन नहीं है यह देखकर (तम्) उस यज्ञाग्नि को (जहुः) त्याग देते हैं।

ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (ब्रह्मणः पतिः) बड़े बल का पालक, बलवान् पुरुष (क्षिप्रेण ऋतज्येन धन्वना) तेज़ चलने वाले उत्तम डोरी के धनुष से (यत्र वष्टि तत् अश्नोति) जिस प्रदेश में चाहे वहां ही भोग्य सुख ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है (तस्य इषवः) उसके बाण भी (साध्वीः) उत्तम, निशाने पर लगने वाले (कर्णयोनयः) कान तक पहुंचने वाले होते हैं (याभिः) जिन से वह (अस्यति) शत्रुओं को उखाड़ फेंकता है इसी प्रकार (ब्रह्मणस्पतिः) बड़े राष्ट्र का पालक राजा, वेद विद्या का पालक विद्वान् पुरुष (यत्र वष्टि) जिस प्रदेश या पदार्थ में भी चाहता है (तत्) उस स्थान में या उस पदार्थ को वह (ऋतज्येन) सत्य बचन और व्यवहार रूप डोरी से कसे, (क्षिप्रेण) विना विलम्ब के कार्य करने वाले (धन्वना) ज्ञान रूप धनुष से (तत् प्र अश्नोति) उस २ अभिलषित पदार्थ को भी प्राप्त कर लेता है। वहां (तस्य) उसकी (साध्वीः इषवः साध्वीः इषवः) उसकी उत्तम इच्छाएं ही उत्तम बाण के समान हैं। (याभिः) जिनसे वह (अस्यति) अपने सब संकटों और दुष्ट भावों को उखाड़ फेंकता है। वे (कर्ण-योनयः) कान में स्थान प्राप्त करके अर्थात् वे दूसरे के कर्ण गोचर होकर (नृचक्षसः) मनुष्यों को उत्तम उपदेश कहते हुई (दृशये) उनको सन्मार्ग दिखाने के लिये होते हैं।

स संनयः स विनयः पुरोहितः ससुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥

भा०—जो (ब्रह्मणस्पतिः) बड़े राष्ट्र का पालक, बड़े विद्या विज्ञान का पालक विद्वान् है (सः) वह (सन्नयः) उत्तम मार्ग से प्रजा को लेजाने वाला, (संनयः) उत्तम नीतिमान् हो। (सः विनयः) वह विनीत, विनयशील, राज्य कार्यों को विविध रीति से चलाने में समर्थ है। (सः

पुरोहितः) वह यज्ञ में पुरोहित के समान सबके सामने अध्यक्ष या मार्ग दर्शक, दीपक के समान मुख्य भाग पर नियत हो। (सः सुस्तुतः) वह उत्तम स्तुतियुक्त, सुशिक्षित हो। (सः युधि) वह युद्ध में भी कुशल हो। वह (वाक्मः) सबको स्पष्ट आज्ञा देने वाला, उत्तम वाणी से उपदेश देने वाला, (यत्) जब (मती) अपनी मनन और शत्रुस्तंभन या प्रहार की शक्ति से (वाजं भरते) युद्ध और ज्ञानयज्ञ या अन्नादि प्राप्त करता है (आत्-इत्) तभी वह (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (वृथा तप्यतुः) व्यर्थ निष्प्रयोजनों को सन्तप्त करने हारा होकर (तपति) तपता है।

वि॒भु प्र॒भु प्र॑थ॒मं मे॒हना॑वतो बृह॒स्पतेः॑ सुवि॒दत्रा॑णि॒ राध्या॑। इ॒मा सा॒तानि॒ वे॒न्यस्य॑ वा॒जिनो॒ येन॒ जना॑ उ॒भये॑ भुञ्ज॒ते विशः॑॥ १०॥ २॥

भा०—(मेहनावतः) वृष्टि करने वाले या सूर्य के जल और प्रकाश आदि पदार्थ जिस प्रकार (सुविदत्राणि) सुख प्राप्त कराने वाले, (राध्या) अन्नादि उत्पत्ति, पिपासाशमन आदि नाना कार्यों के साधक होते हैं और उसके (विभु प्रभु प्रथमं) बड़ा उत्तम विस्तृत सामर्थ्य होता है जिसे (उभये जनाः भुञ्जते) मनुष्य और तिर्यक्, चर और अचर दोनों भोगते हैं। उसी प्रकार (मेहनावतः) सब सुखों को वृष्टि और वृद्धि करने वाले (बृहस्पतेः) बड़े बल और ज्ञान के स्वामी के (सुविदत्राणि) प्रदान किये उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान (राध्या) सब कार्यों को सिद्ध करने वाले होते हैं। (वेन्यस्य) सबके चाहने योग्य (वाजिनः) ज्ञान ऐश्वर्य के स्वामी प्रभु के (इमानि) ये सब (सातानि) दिये दान हैं और उसका ऐश्वर्य भी (विभु) व्यापक, (प्रभु) सर्वोपरि सामर्थ्यवान् (प्रथमम्) सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध है (येन) जिससे (उभये जनाः) दोनों प्रकार के विद्वान् और अविद्वान् जन (विशः भुञ्जते) नाना धनों का भोग

करते हैं। अथवा दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग उसकी प्रजा होकर भोग करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ। स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः॥११॥

भा०—हे परमेश्वर ! (यः) जो तू (अवरे) बाद में उत्पन्न (वृजने) विनाशशील, अनित्य कार्य जगत् में (विश्वथा) सब प्रकार से (विभुः) व्यापक सामर्थ्य वाला होकर (रण्वः) अति रमणीय, सर्वत्र रमनेहारा, (शवसा) अपने बल से (महाम् उ) इस महान् संसार को (ववक्षिथ) धारण कर रहा है (सः) वह तू (देवः) सबका प्रकाशक, (परिभूः) सर्वव्यापक, (ब्रह्मणः पतिः) ब्रह्माण्ड का पालक है। वह तू ही (देवान्) सब प्रकाशमान सूर्यादि को और (विश्वा इत् उ ता) उन समस्त बड़े २ लोकों को (प्रति पप्रथे) प्रत्यक्ष में विस्तृत करता है और प्रकट करता है। (२) इसी प्रकार बड़े बल का और ज्ञान का स्वामी भी (अवरे वृजने) थोड़े बल में स्थित और (महाम्) बड़े २ जनों को ही (शवसा) अपने बल से (रण्वः) सब का प्रिय होकर धारण करे। वह सर्वोपरि सामर्थ्यवान् होकर स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी होकर विद्वानों के प्रति (पृथु पप्रथे) बड़ा यश प्राप्त करे।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम्। अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् १२

भा०—हे (मघवाना) उत्तम धन और उत्तम पद वाले (इन्द्र-ब्रह्मणस्पती) ऐश्वर्यवान् और वेद ज्ञान और वृहत् राज्य के पालक राजा और सभापति (युवोः इत्) तुम दोनों का (विश्वं) सब कुछ (सत्यं) सत्य होना चाहिये। और (वाम् व्रतं) तुम दोनों के कर्त्तव्य और नियम को (आपः च) सभी आप्तजन, या प्रजाएं (न प्रमिनन्ति) कभी नष्ट नहीं करते। (युजा वाजिना इव) रथ में लगे दोनों वेगवान्

अश्व जिस प्रकार देशान्तर पहुंचाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (नः) हमारे (हविः अन्नम्) स्वीकार करने योग्य अन्न को (अच्छ जिगातम्) प्राप्त करो।

'चन' इत्येकपद्यं त्वध्यापकसाम्प्रदायिकमिति सायणः ।

अथवा—चाहे लोग तुम्हारे सत्य व्यवहार को और व्रतव्यवस्था नियम को (चन) भी नाश करें तो भी आप दोनों राजा सेनापति या सभापति (हविः अन्नं जिगातम्) ग्रहण करने योग्य अन्न रूप कर ही प्रजा से लें, अधिक नहीं। प्रजा के उच्छृंखल हो जाने पर शासकों को अमर्यादित नहीं होना चाहिये।

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना। वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥

भा०—(उत) और (आशिष्ठाः वह्नयः) शीघ्र वेग से जाने वाले, रथ को ढो ले जाने वाले घोड़ों के समान राज्यकार्य को धारण करने वाले उत्तम २ शासक भी जिसकी आज्ञा को (अनु शृण्वन्ति) विनय से श्रवण करते हैं जो (सभेयः) सभा में उत्तम पदपर स्थित, (विप्रः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला, होकर (मती) उत्तम बुद्धि से (धना) नाना ऐश्वर्यों को (भरते) धारण करता और प्राप्त कराता है। जो (वीळु-द्वेषाः) बलवान् शत्रुओं को भी दबाने वाला होकर (वश अनु) अपने वश हुई पृथ्वी के अनुसार ही (ऋणम् आददिः) ऋण, धन या कर लेता है, (सः ह) वह ही निश्चय से (वाजी) बलवान् और ऐश्वर्यवान् होकर (समिथे) संग्राम में और यज्ञादि में भी (ब्रह्मणः पतिः) बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान का या बड़े भारी सेनाबल का पालक होता है।

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसाऽसरत्पृथक् ॥ १४ ॥

भा०—(महि कर्म) बड़ा काम (करिष्यतः) करने की इच्छा करते हुए (ब्रह्मणः पते) बड़े भारी धन, जन राष्ट्र के स्वामी का (मन्युः) क्रोध भी (यथावशं) उसके अपने वश, अधिकार और विशेष जितेन्द्रियता के अनुसार ही (सत्यः अभवत्) सत्य अर्थात् उचित फलदायक हुआ करता है। (यः) जो पुरुष (गाः उद् आजत्) किरणों को सूर्य के समान अपनी वाणियों या आज्ञाओं को अन्यों के ऊपर चलाता है या (गाः उद् आजत्) जो भूमियों पर शासन करता है वह उन अधीनों को (दिवे) ज्ञान प्रकाश और व्यवहार ज्ञान और विजय के लिये (वि अभजत्) विभक्त करता, या प्रदान करता है। और वह स्वयं या उसकी रीति, गति या नीति या आज्ञा (मही रीतिः इव) बड़ी भारी बहती नदी के समान (शवसा) बड़े अदम्य बल से (पृथक्) स्वतन्त्र ही (असरत्) निकलती है।

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३वयस्वतः।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् १५

भा०—(ब्रह्मणस्पते) बड़े ऐश्वर्य के पालक ! हम (सुयमस्य) उत्तम नियम व्यवस्था के करने वाले (वयस्वतः) दीर्घजीवन और बल के उत्पादक (रायः) ऐश्वर्य के ही (विश्वहा) सब दिनों (रथ्यः) रमण करने योग्य पदार्थों के स्वामी या रथ द्वारा विजयी (स्याम) हों। (त्वं) तू (नः) हम (वीरान्) वीर पुरुषों को (वीरेषु) वीर पुरुषों के बीच में या उनके अधीन ही (उप पृङ्धि) जोड़ रख। (त्वं) तू ही (यत्) जब (ईशानः) सब का स्वामी होकर (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान

के अनुसार ले (मे) मेरी (हवम्) पुकार या आवेदन या ग्रहण योग्य अन्नादि कर को (वेषि) प्राप्त कर ।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः १६।३॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञान और ऐश्वर्य के पालक ! (त्वं यन्ता) तू उत्तम नियामक, व्यवस्थापक है । तू (अस्य सूक्तस्य बोधि) इस वेद वचन का ज्ञान कर और (तनयं जिन्व च) पुत्र और शिष्य को सुखी कर, दान कर, (यद् देवा अवन्ति तत् विश्वं भद्रं) जिस की विद्वान् जन रक्षा करते हैं वह समस्त जगत् सुखकारक होता है । (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर (विदथे) यज्ञ और संग्रामादि में (बृहत् वदेम) हम बहुत उत्तम उपदेश करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[२५]

गृत्समद ऋषिः ॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ जगती । ३ निचृज्जगती ४, ५ विराड् जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

भा०—(जातेन जातम्) जिस प्रकार अन्नपति पिता अपने पुत्र से ही उसके भी पुत्र अर्थात् पौत्र को प्राप्त कर वंश में आगे बढ़ता है और जिस प्रकार ब्रह्मविद्या का पालक (जातेन जातम्) अपने विद्यासम्पन्न शिष्य से अन्य शिष्य को विद्यासम्पन्न बनाकर वह (अति प्र सर्सृते) और आगे बढ़ता है । (ब्रह्मणस्पतिः) बड़े ऐश्वर्य और राष्ट्र का पालक राजा (यं-यं) जिस जिस पुरुष को (युजं) अपना सहोयोगी या राष्ट्र-कार्य में नियुक्त (कृणुते) करता है उस (जातेन) अपने बने हुए मित्र वा भृत्यजन के द्वारा (जातम्) अन्य गुणवान् व्यक्ति को भी प्राप्त कर

(अति प्र सर्सृते) बहुत आगे बढ़ता है, या एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को विजय कर लेता है। वह (अग्निम् इन्धानः) अग्नि, अर्थात् अग्रणी-नायक को अति प्रदीप्त, उत्साहित और उत्तेजित करता हुआ (वनुष्यतः वनवत्) हिंसा करने वाले शत्रुओं को नाश करे। और (कृतब्रह्मा) धनों और वेद ज्ञानों को प्राप्त करके (वनुष्यतः रातहव्यः इत्) याचनाशील, अधीनों को अन्न-भृति देता हुआ ही (शूशुवत्) बढ़े अथवा (वनवत् वनुष्यतः अग्निम् इन्धानः शूशुवत्) वन के समान शत्रुदल को भस्म करने वाले अग्रणी सेनानायक को प्रदीप्त करके बढ़े। (२) ज्ञानीपक्ष में—(ब्रह्मणस्पतिः) वेद का ज्ञाता पुरुष जिस २ को भी अपना सहयोगी शिष्य बनाता है उस २ सत्पुत्र के समान शिष्य द्वारा ही वह दूसरे शिष्य को (अति) आगे अति क्रमण करके (प्र) शिष्य परम्परा से (सर्सृते) आगे बढ़ता है। उस समय वह (अग्निम् इन्धानः) अग्नि को जलाने वाले के समान ही होता है। (वनवत्) जैसे मनुष्य न चमकते हुए काठ को प्रज्वलित करता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी (अग्निम्) अंग २ में विनयशील शिष्य को (वनवत् इन्धानः) काष्ठ के समान जानकर उसको विद्या की दीप्ति से चमकता हुआ (कृतब्रह्मा) वेद ज्ञान का संस्कार करके, (वनुष्यतः) याचनाशील शिष्य को (रातहव्यः) उत्तम ब्रह्मज्ञान का दान करके (स्वयं शूशुवत इत्) स्वयं ही बढ़ता है। इस प्रकार (सः जातेन जातम् इन्धानः अति प्रसर्सृते) वह पुत्र से पौत्र के समान शिष्य प्रशिष्य को विद्यावान् करके गुरुपरम्परा और वंशपरम्परा से आगे बढ़ता है।

वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥२॥

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः) महान् ऐश्वर्य, और समृद्ध राष्ट्र का पालक (यं-यं युजं कृणुते) जिस २ को अपना सहयोगी साथी, या नियुक्त भृत्य बना

लेता है (तस्य तोकं तनयं च) उस के पुत्र और पौत्र को भी (बर्धते) बढ़ाता है। और (वनुष्यतः गोभिः) हिंसाकारी शत्रु की भूमियों से (रयिं पप्रथत्) अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करता है। अथवा (वनुष्यतः) याचनाशील प्रजाजन के (रयिं) ऐश्वर्य को (गोभिः) भूमियों से बढ़ाता है। और (त्मना) स्वयं (बोधति) सब का ज्ञान रखता है। (त्मना पप्रथत्) स्वयं भी प्रसिद्ध होता है (त्मना वर्धते) स्वयं भी बढ़ता है अथवा (वनुष्यतः वीरान् वीरेभिः वनवत्) हिंसाशील शत्रु के वीरों को अपने वीरों से मारता है।

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः) धनैश्वर्य का पालक स्वामी राजा, (यं-यं युजं कृणते) जिस २ को भी अपना साथी बना लेता है (अग्नेः) आग की (प्रसितिः) ज्वाला के समान (अग्नेः) उस अग्रणी नायक पुरुष की (प्रसितिः) बन्धन, उत्तम पद पर नियुक्ति (वर्त्तवे न) फिर निवारण करने या टूटने योग्य नहीं होती। वह स्थिरता से नियुक्त कर दिया जाता है। (सिन्धुः क्षोदः न) नदी या समुद्र जिस प्रकार जल को अपने भीतर लेलेना चाहता है और (वृषा इव वध्रीन्) जिस प्रकार वलवान् सांढ़ निर्वीर्य वधिया बैलों को (अभि वष्टि) धर दबाता है उसी प्रकार वह (शिमीवान्) उत्तम कार्यकुशल पुरुष (ओजसा) अपने बल, पराक्रम से (ऋघायतः) सत्य के हनन करने वाले, या शस्त्र से आघात करने वाले शत्रु जनों को भी (अभि वष्टि) मुकावला करके अपने वश कर लेता है। (२) अथवा नकारोऽत्रैवार्थस्तदनुवादी। ब्रह्मणस्पति वेदविज्ञानी जिसको अपना शिष्य बनाता है यह उसके गार्हपत्य अग्नि की ज्वाला के समान ही गुरु शिष्य का बन्धन भी (वर्त्तवे अह) स्थिर बनाये रखने के लिये ही होता है। वह कर्मनिष्ठ विद्वान्

जलों को नदी के समान निर्बलों को बली के समान (ऋधायतः = ऋतं हन्तुं गन्तुंमिच्छतः) सत्य ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पुरुषों को (अभिवष्टि) सब प्रकार से चाहता है।

यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम्।
एवं मां ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः ॥ तैत्ति० उप० ४ । ३ ॥

जिस प्रकार जल निम्न देशों में आते हैं, जैसे मास गण सूर्य को प्राप्त हों उसी प्रकार हे प्रभो ! मुझे ब्रह्मचारी प्राप्त हों।

तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥

भा०—(ब्रह्मणः पतिः) महान् ऐश्वर्य और राज्य का पालक राजा (यं-यं युजं कृणुते) जिस २ को अपना सहायक, बनाता और राज्यकार्य में नियुक्त करता है (तस्मै) उसके लिये (दिव्याः) कामनायोग्य (असश्चतः) अन्यों से अप्राप्त विभूतियां प्राप्त होती हैं। (सः) वह (सत्वभिः) वीर पुरुषों और बलों सहित (प्रथमः) सब से श्रेष्ठ हो कर (गोषु) पृथिवियों, सब की भूमियों में (गच्छति) भ्रमण करता है, वह (अनिभृष्टतविषिः) सेना, बल आदि से कभी च्युत नहीं होकर (ओजसा) पराक्रम से शत्रु का नाश करता है। (२) इसी प्रकार आचार्य जिसको शिष्य बनाता है परमेश्वर से प्राप्त, (असश्चतः) अन्य मूर्खों से अप्राप्य वेदवाणियां उसे प्राप्त होती हैं, वह वीर्यों से युक्त होकर वेदवाणियों से विचरता है बल से कभी भ्रष्ट न होकर, ओज से पापों का नाश करता है। परमेश्वर अपने अनुग्रह के पात्र जिस पुरुष को योग द्वारा प्राप्त हो जाता है उस अनासक्त को ही विशुद्ध विभूतियां प्राप्त होती हैं, वह सात्विक बलों से इन्द्रियों में और सभी लोकों में विचरता और अनष्ट शक्ति होकर पापों का नाश करता है।

तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ५।४

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः यंयं युजं कृणुते) महान् ऐश्वर्य और बल का पालक जिस २ को अपना सहयोगी बना लेता, और राज्यकार्य में नियुक्त करता है (तस्मै इत्) उसके लिये (विश्वे सिन्धवः) समस्त समुद्र, नदी, जल आदि (धुनयन्त) चलते हैं। या बड़े २ समुद्र भी छोटी नदी के समान हो जाते हैं। वे सब नदी आदि (पुरूणि) बहुत से (अच्छिद्रा) त्रुटिरहित निर्दोष (शर्म) सुख (दधिरे) प्रदान करते हैं। वह (देवानां) विद्वानों और विजयी पुरुषों के योग्य (सुम्ने) सुख में (सुभगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर (एधते) बढ़ता है। इसी प्रकार परमेश्वर और गुरु का जिसपर अनुग्रह होता है सब (सिन्धवः) प्राणगण चलते हुए उसपर सुखबरसाते, सब उत्तम सुख देते वह दिव्य पुरुष इन्द्रियों के सुख में भी सौभाग्यवान् होकर संवित् आदि सिद्धियों में वृद्धि को प्राप्त होता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२६]

गृत्समद ऋषिः॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता॥ छन्दः—१, ३ जगती। २, ४ निचृज्जगती॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत्।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् १

भा०—(ऋजुः) सरल, सब कार्यों के साधन करने में कुशल, कर्मण्य (शंसः) उत्तम उपदेष्टा पुरुष (वनुष्यतः) कार्य नाश करने वालों को (वनवत्) विनाश करे या वह (वनुष्यतः वनवत् अभि असत्) कार्य के नाशक विघ्नों को अन्धकार की किरणों के समान या, वन को कुठार के समान दूर करे। अथवा (शंसः वनुष्यतः वनवत्) उपदेष्टा पुरुष

ज्ञान के याचक विद्यार्थियों को विद्या प्रदान करे। (देवयन्) देवों विद्वानों और देवतुल्य उत्तम गुणों का इच्छुक (अदेवयन्तम्) उससे विपरीत उत्तम गुणों के विरोधी को भी (अभि असत्) तिरस्कार करे। (सुप्रावीः) उत्तम रक्षक (वृत्सु) संग्रामों में भी (दुस्तरं) दुःख से विजय करने योग्य कठिन शत्रु को (वनवत्) विनाश करे। और (यज्वा इत्) यज्ञशील, दान और सत्संगशील पुरुष (अयज्योः) अदानी असंगति के योग्य कुसङ्गी पुरुष के (भोजनं) भोग्य ऐश्वर्य को (वि भजाति) विविध रूपों में विभक्त कर दे।

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ।२॥

भा०—हे (वीर) वीर बलवान्, वीर्यवान्, तथा विविध विद्याओं को कथन करने हारे विद्वन्! तू (यजस्व) उत्तम सत्संग कर, विद्या आदि दान दे। (मनायतः) मननशील पुरुष से (प्र विहि) उत्तम गुण और ज्ञान प्राप्त कर। (मनः) अपने चित्त को (भद्रं) कल्याण विचारवाला (कृणु) बना अथवा, (भद्रं) सुख कल्याणकारक (मनः) ज्ञान और स्तम्भन बल का (वृत्रतूर्ये) विघ्नों के नाश करने के लिये (कृणुष्व) सम्पादन कर और (हविः) उत्तम अन्नादि उपादेय पदार्थ (कृणुष्व) उत्पन्न कर, (यथा) जिससे तू (सुभगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् हो। हम सब (ब्रह्मणस्पतेः) महान् यज्ञ और धन के पालक प्रभु और आचार्य के (अवः) रक्षा, ज्ञान और शत्रु हननकारी सामर्थ्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें।

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ३

भा०—(यः) जो पुरुष (श्रद्धामनाः) सत्य को धारण करने की इच्छा, श्रद्धा से युक्त मन वाला होकर (हविषा) देने योग्य अन्न रत्नादि

और ग्रहण करने योग्य ज्ञान ऐश्वर्यादि के हेतु (देवानां पितरं) विजयी पुरुषों के पालक राजा तथा विद्या के अभिलाषी शिष्यों के पिता के तुल्य पालक आचार्य (ब्रह्मणस्पतिम्) ऐश्वर्य और वेद के पालक प्रभु की (आ विवासति) सब प्रकार से सेवा करता और उसके समीप अन्तेवासी होकर रहता है (सः इत्) वह ही (जनेन) जन से (सः विशा) वही प्रजा से, (स जन्मना) वही उत्तम जन्म, (सः पुत्रैः) वह पुत्रों और (नृभिः) भृत्यादि और नायक पुरुषों सहित (वाजं भरते) संग्राम को विजय करता और (धना भरते) नाना धनों को प्राप्त करता है।

यो अ॒स्मै ह॒व्यैर्घृ॒तव॑द्भि॒रवि॑धत्प्र तं प्रा॒चा न॑यति॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑ः।
उ॒रु॒ष्यती॒मंह॑सो॒ रक्ष॑ती रि॒षो॒३॑ ऽहोश्चि॑दस्मा उरु॒चक्रि॒रद्भु॑तः ॥४॥५॥

भा०—(यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणस्पतिः) धन का उत्तम स्वामी होकर (घृतवद्भिः हव्यैः) घृतों से युक्त अन्नों से (अस्मै अविधत्) उस विद्वान् या प्रभु, की सेवा शुश्रूषा करता है वह (ब्रह्मणस्पतिः) महान् ज्ञान, ब्रह्माण्ड का पालक होकर (तं) उसको (प्राचा) उत्तम पद को जाने वाले या प्राचीन मार्ग में (प्र नयति) ले जाता है। उसको (अंहसः) पाप से बचाता, (रिषः) हिंसक पुरुष (अहोः) महा पातक या दारिद्र्य आदि कष्ट, से भी (अस्मै रक्षति) उसको बचाता है। वह परमेश्वर भी (उरुचक्रिः) बड़ा भारी कारीगर, (अद्भुतः) अद्भुत, आश्चर्य-जनक है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[२७]

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ आदित्यो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, १३, १४, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ८, १२, १७ त्रिष्टुप्। ११, १६ विराट् त्रिष्टुप्। ७ भुरिक् पङ्क्तिः। ९, १० स्वराट् पङ्क्तिः ॥

सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥

भा०—(आदित्येभ्यः राजभ्यः जुह्वा घृतस्नूः इव) प्रकाशमान सूर्य की किरणों के लिये जिस प्रकार 'जुहू' नाम चमसे द्वारा घृत चुआने परिणाम में जल वर्षाने वाली आहुति दी जाती है उसी प्रकार मैं (इमाः) इन (घृतस्नूः) तेजोमय ज्ञान और बल वीर्य को प्रदान करने वाली (गिरः) वेद वाणियों का (राजभ्यः) तेज से चमकने वाले (आदित्येभ्यः) रस को किरणों के समान लेने वाले उत्तम विद्यार्थियों के लिये उत्तम सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों वा राजाओं के लिये (जुह्वा) वाणी द्वारा (जुहोमि) कथन करता हूं। इन शिक्षाप्रद वाणियों, आज्ञाओं को (मित्रः) स्नेही मित्र, प्रजा को मरने से बचाने वाला राजा और वैद्य, (अर्यमा) शत्रुओं को बांधने वाला, स्वामी के तुल्य शासक न्यायकारी, (भगः) ऐश्वर्यवान् आप्तजन, (नः) हम में से (तुविजातः) बहुत से गुणों में प्रसिद्ध, (वरुणः) व्यवहार कुशल, क्रियावान्, और (अंशः) शत्रुनाशक इनमें से प्रत्येक (नः शृणोतु) हमारे निवेदन, कार्य व्यवहार आदि का श्रवण करें।

इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२॥

भा०—(मित्रः) स्नेह करने वाला, मरण संकट से बचाने वाला, (अर्यमा) न्यायकारी प्रजा के नाशक शत्रुओं को दमन करने वाला, (वरुणः) श्रेष्ठ, ये सब (सक्रतवः) समान रूप से उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले, (आदित्यासः) सूर्य के किरणों के समान प्रकाशक और बारहों मासों के समान नाना सुखों के देने वाले, (शुचयः) तेजस्वी, शुद्ध पवित्र आचार वाले, ईमानदार, (धारपूताः) वाणी से पवित्र और अभिषेक धाराओं से पवित्र होकर उत्तम पदों पर स्थित (अवृजिनाः) त्याज्य

पाप कर्मों से रहित, (अनवद्याः) अनिन्दित आचार वाले (अरिष्टाः) अन्यों से न मारने योग्य, अन्यों की हिंसा न करने वाले, ये सब (मे) मेरे (इमं) इस (स्तोमं) स्तुति वचन को (जुषन्त) प्रेमपूर्वक श्रवण करें।

त आ॑दि॒त्यास॑ उ॒रवो॑ गभी॒रा अद॑ब्धासो॒ दिप्स॑न्तो भूर्य॒क्षाः । अ॒न्तः प॑श्यन्ति वृ॒जि॒नोत सा॒धु सर्वं॒ राज॑भ्यः पर॒मा चि॒दन्ति॑ ॥३॥

भा०—(ते) वे (आदित्या सः) सूर्य की किरणों या स्वतः सूर्य के समान प्रकाशमान, प्रजाओं से जलों के समान करों को लेने वाले तेजस्वी, (उरवः) महान् सामर्थ्य वाले, (गभीराः) गम्भीर स्वभाव वाले, (अदब्धासः) अखण्ड शासन करने वाले, शत्रुओं से न मारे जाने वाले और स्वय (दिप्सन्तः) दुष्टों को दण्ड देने वाले, (भूरि-अक्षाः) बहुत से दूतादि रूप चक्षुओं वाले, वा बहुत से अध्यक्षों के स्वामी राजा और ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी, विद्यावान् पुरुष (वृजिना) पापों और (साधु) सत् साधु कर्मों को (अन्तः) अपने भीतर ही (पश्यन्ति) देख लेते हैं, उन (राजभ्यः) स्वयं प्रकाशमान तेजस्वी पुरुषों के लिये (परमा चित्) उत्तम कर्म, परम, दूरस्थ बातें तथा सर्वोत्तम कर्त्तव्य भी (सर्वं) सब (अन्ति चित्) समीप के समान ही होता है।

धा॒रय॑न्त आदि॒त्यासो॒ जग॒त्स्था दे॒वा विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः । दी॒र्घाधि॑यो॒ रक्ष॑माणा असु॒र्यमृ॒तावा॑न॒श्चय॑माना ऋ॒णानि॑ ॥ ४ ॥

भा०—(आदित्यासः) सूर्य की किरणों के समान प्रजाओं से कर लेने वाले (देवाः) उनके हित के लिये जलों को पुनः उन पर वर्षा देने वाले, अतः एव (विश्वस्य भुवनस्य) समस्त भुवन, राष्ट्र के (गोपाः) रक्षक (जगत् स्थाः) जंगम और स्थावर सब को (धारयन्तः) धारण करते हुए, (दीर्घाधियः) दीर्घ बुद्धि और क्रियाशक्ति वाले, दीर्घदर्शी,

(असुर्यम्) प्रजा के प्राणों के रमण करने योग्य उत्तम अन्न, जल तथा धन की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए, (ऋतावानः) सत्य ज्ञान, सत्य आचरण और ऋत अर्थात् धन, और जल अन्न आदि से सम्पन्न होकर भी (ऋणानि) जलों को मेघों के समान ऐश्वर्यों और कर आदि को शनैः २ (चयमानाः) संग्रह करते हुए, (अन्तः वृजिना उत साधु सर्वम् पश्यन्ति) अपने भीतर ही सब पाप और पुण्य का विवेक कर लेते हैं।

विद्यामादित्या अवसो वा अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम्॥५॥६

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश करने वाले और राष्ट्र में कर आदि लेने वाले अध्यक्ष पुरुषो ! और हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ पुरुषों के मान करने और दुष्टों का नियमन करने वाले न्यायकारिन् ! (वः) आप लोग के (अस्य अवसः) इस पालन और करादान का (यत्) जो (चित्) भी (मयोभु) सुखकारी परिणाम हो वह मैं प्रजावर्ग (भये) भय या संकट के अवसर पर (विद्याम्) अवश्य प्राप्त करूं। रक्षक राजा आदि संकटकाल में प्रजा की रक्षा विशेष रूप से करें। हे (मित्रावरुणा) प्रजा को मरण से बचाने और दुष्टों के निवारण करने वाले अध्यक्षो ! (युष्माकं) तुम्हारे (प्रणीतौ) उत्तम न्याय-शासन में (दुरितानि) सर्व दुराचारों और दुःखदायी संकटों को (श्वभ्रा इव) गढ़ों के समान (परिवृज्याम्) दूर से ही त्याग दूं। उत्तम शासन में, भय के कालों को भी प्रजा उत्साह से गढों के समान लांघ लेती है। इति षष्ठोः वर्गः॥

सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म॥६॥

भा०—हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ, स्वामी जनों और वैश्यों के मान करने वाले, उनके धनादि को जानने वाले, शत्रुओं के नियामक न्याय-

कारिन् ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ, दुष्टों के वारण करने हारे ! हे (आदित्याः) उत्तम ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! और कर आदि लेने वाले राज गणो ! (वः) आप लोगों का (पन्थाः) मार्ग (सुगः) सुख से जाने योग्य, (अनृक्षरः) कण्टकरहित, निर्विघ्न, (साधुः) उत्तम, दूर तक पहुंचाने और कार्य साधने वाला (अस्ति) है। (तेन) उसी मार्ग से (नः) हमें (अधि वोचत) अध्यक्ष रूप से आज्ञा दो। (नः) हमें (दुष्परिहन्तु) कभी नाश न होने वाला (शर्म) सुख (यच्छत) प्रदान करो।

पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः॥ ७॥

भा०—(राजपुत्रा) राजा को पुत्र के समान अपने अधीन रखनेवाली, राजमाता के समान राजसभा, न्यायसभा और जनसभा, (अदितिः) अखण्ड शासन वाली और (अर्यमा) न्यायकारी सभापति (सुगेभिः) सुख से जाने योग्य, सुगम उपायों से ही (नः) हमें (द्वेषांसि) परस्पर के द्वेष के भावों और द्वेषकारी पुरुषों से (अति पिपर्त्तु) पार करे। (मित्रस्य) सखा के समान प्रजा के स्नेही और (वरुणस्य) रात्रि के समान सब दुखों के वारण करने वाले शासक का (शर्म) सुखदायी शरण भी (बृहत्) बहुत बड़ा और प्रजा का वर्धक हो। हम भी (पुरुवीराः) बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त (अरिष्टाः) रोगों और शत्रुओं से पीड़ित न होते हुए, सुखी (उप स्याम) होकर रहें।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु॥ ८॥

भा०—आदित्य गण ही (तिस्रः भूमीः) तीनों भूमियों को (त्रीन् द्यून् उत) और तीनों आकाशों को (ऋतेन) ऋत, सत्य बल वा तेज के द्वारा (धारयन्) धारण कर रहे हैं। अर्थात् अग्नि, वायु, और सूर्य तीनों

ही भूमि अन्तरिक्ष और उत्तम आकाश तीनों को धारण करते हैं। उनको (एषान् अन्तः) इन तीनों लोकों में इनके (त्रीणि व्रता) तीन ही प्रकार के मुख्य २ कार्य हैं। हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! लोकों के धारण करने वाले प्रधान पुरुषो ! उनके समान ही (वः) आप लोगों का भी (विदथे) समस्त ज्ञान व्यवहार और परस्पर के राज्य ऐश्वर्य धनादि के प्राप्त करने या लेन देन के व्यवहार में (ऋतेन) सत्य के बल से ही (महित्वम्) महान् सामर्थ्य है। हे (अर्यमन्) न्याय-कारिन् ! हे (वरुण) दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ ! हे (मित्र) सखे ! (तत्) वह (चारु) उत्तम रीति से बना रहे। अर्यमा, वरुण और मित्र क्रम से सूर्य वायु और अग्नि या सूर्य मेघ और अन्न के समान प्रकाशप्रद, प्राण-प्रद और जीवनप्रद होकर राष्ट्रप्रजा का पालन करें।

त्री रो॑च॒ना दि॒व्या धा॑रयन्त हिर॒ण्ययाः॒ शुच॑यो॒ धार॑पूताः।
अस्व॑प्नजो अनिमि॒षा अद॑ब्धा उरु॒शंसा॑ ऋ॒जवे॒ मर्त्या॑य ॥ ६ ॥

भा०—(ऋजवे) कार्यों को साधने वाले, ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग पर चलने वाले, (मर्त्याय) मनुष्य के हित के लिये (हिरण्ययाः) हित और प्रिय वचन बोलने वाले, सूर्य के समान ज्ञान से प्रकाशमान, (शुच-यः) शुद्ध आचार व्यवहार और अन्तःकरण वाले, धार्मिक, (धारपूताः) अभिषेक जलों से पवित्र हुए के समान धारा अर्थात् वेदवाणी द्वारा पवित्र, स्नातक, निष्णात, (अस्वप्नजः) स्वप्न, निद्रा आदि में न फंसे हुए, सावधान, (अनिमिषाः) आंख न झपकने वाले, अर्थात् दृष्टि दोष से रहित, सदा सावधान, एक पल भर भी व्यर्थ न करने वाले, (अदब्धाः) शत्रु से न मारे जाने योग्य, बलवान् , (उरुशंसाः) बहुत प्रशंसनीय वा बहुत उपदेशों से युक्त, बहुश्रुत, विद्वान् पुरुष (त्री) तीनों (दिव्या) दिव्य ज्ञान, कामना और व्यवहारों में उपयोगी, सर्वोत्तम एवं शुद्ध उज्ज्वल, (रोचना) प्रकाशमान तेजों, ज्ञानों, वेदों को (अधारयन्त) धारण करते

हैं। ज्ञान, कर्म, उपासना इन तीनों के प्रकाशक, अग्नि, वायु, सूर्य इन द्वारा प्रकाशित ऋग्, यजुः, साम, स्तुति, कर्म और गान ये तीनों ही ज्ञान के प्रकाशक और हृदय के रुचिकर होने से 'रोचन' हैं।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा १०।७॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ! दुःखों और दुष्टों के वारक हे! (असुर) सुरा आदि मादक पदार्थों से रहित, व्यसनों से मुक्त! वा शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे, वा प्राणप्रिय! (ये च देवाः) जो दानशील, ज्ञान-प्रकाशक सूर्यादि के समान उपकारी जन हैं और (ये च मर्त्ता) जो सामान्य मनुष्य हैं (विश्वेषां) उन सबका (त्वं राजा) तू राजा सब में प्रकाश मान (असि) है। हे विद्वन्! (नः) हमें (विचक्षे) विविध विद्याओं के दर्शन करने के लिये (शतं शरदः) सौ बरस की आयु (रास्व) प्रदान कर, उनके उपायों का उपदेश कर। हम (सुधितानि) सुख पूर्वक धारण करने योग्य (पूर्वा) पूर्ण (आयूंषि) आयुएं (अश्याम) प्राप्त करें, भोगें। इति सप्तमो वर्गः॥

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ११

भा०—(आदित्यः) सूर्य के समान तेजस्वी अदिति अर्थात् अखण्ड ब्रह्म के उपासक, ब्रह्मज्ञानी पुरुष (न दक्षिणा) न दायें, न दक्षिण, दिशा में, (न सव्या) न बायें, न उत्तर दिशा में, (न प्राचीनं) न आगे, न पूर्व दिशा में, (उत न पश्चा) न पीछे, न पश्चिम दिशा में ही (विचिकिते) कभी विचिकित्सा या संदेह को प्राप्त होते हैं। वे कभी और कहीं भी भ्रम में नहीं पड़ते हैं, उनका ज्ञान सर्वगामी होता है। हे (वसवः) प्रजाओं और शिष्यों को बसाने वाले विद्वान् और बलवान् पुरुषो! मैं (पाक्या चित्) परिपक्व ज्ञानवाला और (धीर्या चित्) धीर पुरुषोत्तम के समान होकर भी (न विचिकिते) दक्षिणादि दिशाओं में भी

कभी संदेह में न पड़ूं। प्रत्युत, (युष्मानीतः) आप लोगों से, सन्मार्ग में लेजाया जाकर (अभयं ज्योतिः) भयरहित परम ज्योति, तेज, ज्ञान, ब्रह्मज्ञान को (अश्याम्) प्राप्त करूं और उसका परम आनन्द प्राप्त करूं। (२) राजशासक जन भी अदिति, अखण्ड शासक राजा के अधीन होने और पृथिवी के शासक होने से 'आदित्य' हैं। उनको किसी दिशा में भ्रम न हो, परिपक्व क्षेत्रवाला, धीर पुरुष भी उनके अधीन भयरहित प्रकाश, न्याय को प्राप्त करे।

यो राज॑भ्य ऋ॒तनि॑भ्यो द॒दाश॒ यं व॒र्धय॑न्ति पु॒ष्टय॑श्च॒ नित्याः॑।
स रे॒वान्या॑ति प्रथ॒मो रथे॑न वसु॒दावा॑ वि॒दथे॑षु प्रश॒स्तः ॥१२॥

भा०—(यः) जो (राजभ्यः) राजा, गुणों विद्याओं में प्रकाशित पुरुषों और (ऋतनिभ्यः) सत्य मार्ग में ले जाने वाले उत्तम नायक पुरुषों और यज्ञ में, सत्य वचनानुसार परिणय करने वाली स्त्रियों को भी (ददाश) ज्ञानोपदेश प्रदान करता है (यं) जिसको (नित्याः) सदा स्थिर रहने वाली ज्ञाननीतियें और (पुष्टयः च) समृद्धियां भी (वर्धयन्ति) बढ़ाती हैं। (सः) वह (रेवान्) ऐश्वर्यवान् (वसुदावा) ऐश्वर्यों का देने वाला, (विदथेषु) ज्ञानों, यज्ञों और संग्रामों में (प्रशस्तः) गुण कर्मों द्वारा प्रशंसित (रेवान्) धनसम्पन्न होकर (रथेन) रथ से रथी के समान (रथेन) अपने रमणीण कार्य से (प्रथमः) सब से प्रथम (याति) आगे बढ़ता है।

शुचि॑र॒पः सू॒यव॑सा॒ अद॑ब्ध॒ उप॑ क्षेति वृ॒द्धव॑याः सु॒वीरः॑।
नकि॒ष्टं घ्न॒न्त्यन्ति॑तो॒ न दू॒राद्य आ॑दि॒त्याना॒ं भव॑ति॒ प्रणी॑तौ ॥१३॥

भा०— जो (शुचिः) शुद्ध, पवित्र आचारवान् (अदब्धः) कभी हिंसित और हिंसक न होकर (सुयवसाः) उत्तम अन्नोत्पादक (अपः) जलों को (उप क्षेति) सेवन करता है (सः) वह (वृद्धवयाः) दीर्घजीवी (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान्, उत्तम वीरों और पुत्रों सहित रहता है।

जो (आदित्यानां) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के (प्रणीतौ) उत्तम शासन में (भवति) रहता है (तं) उसको शत्रुगण और विपत्तियां भी (नकिः अन्तितः) न समीप से (न दूरात्) और न दूर से ही (घ्नन्ति) नाश कर सकती हैं।

अदि॑ते॒ मित्र॒ वरु॑णो॒त मृ॑ळ॒ यद्वो॑ व॒यं च॑कृ॒मा कच्चि॒दाग॑ः ।
उ॒र्व॑श्या॒मभ॑यं॒ ज्योति॑रिन्द्र॒ मा नो॑ दी॒र्घा अ॒भि न॑श॒न्तमि॑स्राः॥१४॥

भा०—हे (अदिते) शासन करने वाली विदुषि ! राजसभे ! हे (मित्र) मरण से रक्षा करने वाले ! सुहृत् ! हे (वरुण) श्रेष्ठपुरुष राजन् ! (वयम्) हम (यत्) जब भी (कच्चित्) कोई (वः) आप लोगों के प्रति (आगः) अपराध (चकृम) करें तो भी (मृळ) हमें सुखीकर । मैं (उरु) बहुत बड़ा (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश (अश्याम्) प्राप्त करूं । और (नः) हमारी (दीर्घाः तमिस्राः) लम्बी रातें (मा अभि नशन्) नष्ट न हों । उनका सुख हमें बराबर प्राप्त हो । अथवा, (नः) हमें (दीर्घाः तमिस्राः) लम्बी चौड़ी अन्धकार मय दशाएं (मा अभि नशन्) प्राप्त होकर हमारा नाश न करें, हमें न धर दबावें । हम तामसी दशाओं में न पड़े रहें ।

उ॒भे अ॑स्मै पीपयतः स॒मीची॑ दि॒वो वृ॒ष्टिं सु॒भगो॒ नाम॒ पुष्य॑न् ।
उ॒भा क्षया॑वा॒जय॑न्याति पृ॒त्सूभाव॒र्धौ भ॑वतः सा॒धू अ॑स्मै ॥१५॥

भा०—(अस्मै) उस राजा के लिये (उभे) शासकवर्ग और शास्यवर्ग या स्त्री और पुरुष दोनों (समीची) अच्छी तरह एक दूसरे को प्राप्त होकर (पीपयतः) बढ़ाते हैं । (सुभगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार (दिवः वृष्टिं नाम पुष्यति) आकाश से वृष्टि को अधिक प्रदान करके सब अन्न को पुष्ट करता है इसी प्रकार राजा भी (सुभगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर (दिवः) ज्ञानवान् पुरुषों से (नाम) उत्तम कीर्त्ति (वृष्टिं) सुख वृष्टि को प्रदान करता और प्रजा को पुष्ट करता है । वह (उभौ क्षयौ)

अपने आश्रय भूत राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों गृहों को या स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का (पृत्सु) संग्रामों में (आ जयन्) विजय करता हुआ (याति) प्रयाण करता है। और (उभौ) दोनों ही राजा, प्रजावर्ग या स्त्री पुरुष वर्ग (अर्धौ) समृद्ध होकर (अस्मै) इसके लिये (साधु) उत्तम कर्म साधने वाले (भवतः) होते हैं।

या वो माया अभिद्रुहे यजत्रा पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥ १६ ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी, ज्ञानवन्, हे (यजत्राः) पूजनीय सत्संग योग्य पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (याः) जो (मायाः) अद्भुत बुद्धियें और बुद्धियों द्वारा किये गये कार्य हैं जो (अभिद्रुहे) द्रोह बुद्धि वाले (रिपवे) पापी शत्रु के लिये (विचृत्ताः) गंठे हुए (पाशाः) पाशों के समान हैं मैं (तान्) इनको (अश्वी इव रथेन) अश्व के स्वामी के समान रथ से (अति येषम्) पार कर जाऊँ। हम लोग (अरिष्टाः) कुशलपूर्वक (उरौ) बड़े (शर्मन्) सुखमय गृह में (स्याम) सदा रहें।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः १७।८॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! (अहं) मैं (प्रियस्य) सर्वप्रिय, सब को संतुष्ट करने वाले (मघोनः) उत्तम ऐश्वर्यवान् (भूरिदाव्नः) बहुत दान देने वाले (आपेः) बन्धु के समान सदा प्राप्त होने वाले पुरुष की (शूनम्) सुख समृद्धि को (मा अविदम्) कभी स्पर्धा से न लूं। हे राजन् ! (सुयमात् रायः) उत्तम नियन्त्रण से युक्त ऐश्वर्य से मैं (मा अव स्थाम्) वञ्चित न रहूं। हम (सुवीराः) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर (बृहद् वदेम) तेरे शासन के बहुत २ गुण कहें। राज्य-शासन में सेवकादि अपने उत्तम स्वामी की समृद्धि और

यश की स्पर्धा न करें। अति सुरक्षित धन अर्थात् बैंक आदि में पड़े धन भी प्रजाजन के मारे न जावें। प्रजा उत्तम शासन की दाद दे। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२८]

कूर्मो गार्त्समदो वा ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ७, ११ त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, १० भुरिक् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः १॥

भा०—(इदं) यह समस्त जगत् (कवेः) क्रान्तदर्शी विद्वान्, (आदित्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी, (स्वराजः) स्वयं प्रकाशित होने वाले परमेश्वर से ही प्रकट होता है। जैसे सूर्य से सब जगत् प्रकाशित होता है उसी प्रकार स्वयंप्रकाश परमेश्वर से यह जगत् प्रकट हुआ है। इसी प्रकार विद्वान् से सब ज्ञान प्रकट होता है। वह (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (विश्वानि) समस्त (सन्ति) सत्, व्यक्त पदार्थों को (अभि अस्तु) प्राप्त हो।

तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनुद्यून् ॥ २ ॥

भा०—(गोमतीनां) किरणों वाली (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (उपायने) आने पर (अग्नयः न जरमाणाः) जिस प्रकार अग्नि में जीर्ण या अल्पप्रकाश हो जाते हैं उसी प्रकार हम लोग (अनुद्यून्) दिनोंदिन (गोमतीनाम्) वेदवाणियों से युक्त (उषसां) कान्तिवाली, पापों का नाश करने वाली विवेक प्रज्ञाओं के (उपायने) समीप प्राप्त होने पर (जरमाणाः) आयु व्यतीत करते हुए, वा किरणों से युक्त

प्रभात वेलाओं के आने पर (अग्नयः न) ज्ञानी पुरुषों के समान गवादि समृद्धि से युक्त (उषसां) कान्तिमती, कमनीय गुणों से युक्त गृहपत्नियों के प्राप्त होने पर (जरमाणाः) उनकी गुण स्तुति करते हुए अथवा, कन्याओं के प्राप्ति काल में अग्नियों के समान जलते या चमकते हुए गुणों से प्रकाशित होते हुए हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे परमेश्वर ! हम (स्वाध्यः) उत्तम बुद्धि से युक्त (तुष्टुवांसः) तेरी स्तुति करते हुए (तव व्रते) तेरे उपदेश किये धर्मकार्य में रहकर (सुभगासः स्याम) उत्तम ऐश्वर्यवान् हों। हम गृहस्थ रहकर स्त्रियों की गुणस्तुति करें, उनकी अवहेलना न करें। विद्वान् रहकर वेदवाणियों द्वारा प्रभु की स्तुति करें। योगी होकर विशोका प्रज्ञाओं के उदय होने पर भी प्रभु की स्तुति करें और (स्वाध्यः) आत्मा का चिन्तन करें।

तव॑ स्याम पुरुवीर॑स्य॒ शर्म॑न्नुरुशंस॑स्य वरुण प्रणेतः।
यूयं न॑ः पुत्रा अदितेरदब्धा अ॒भि क्ष॑मध्वं॒ युज्या॑य देवाः ॥३॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! राजन् ! प्रभो ! हे (प्रणेतः) उत्तम नायक ! हम लोग (पुरुवीरस्य) बहुत से वीर पुरुषों के स्वामी (उपशंसस्य) बहुतों से प्रशंसित, बहुत सों को उपदेश देने हारे ! हम (तव) तेरे (शर्मन्) शान्तिप्रद, दुःखनाशक शरण में (स्याम) रहें। हे (देवाः) विद्वान् विजयेच्छु पुरुषो ! आप सब लोग (नः) हमारे बीच (अदब्धाः) कभी पीड़ित न होकर (अदिते) अखण्ड परमेश्वर या राजा के या राष्ट्रभूमि के (पुत्राः) पुत्र के समान होकर (युज्याय) परस्पर के सहायक होने के लिये (अभिक्षमध्वम्) सब प्रकार से समर्थ, सहनशील हो। अथवा (नः पुत्राः) तुम हम लोगों के पुत्र (अदितेः) माता पिता भाई आदि के सहायक होने और अखण्ड परमेश्वर के सखा होने या भोग द्वारा प्राप्त करने के लिये (देवाः) दानशील, अपीड़ित होकर (अभि क्षमध्वं) सदा समर्थ बने रहो।

प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन्॥४॥

भा०—जिस प्रकार (विधर्त्ता) विविध रश्मियों से जल को धारण करने वाला होकर (ऋतं प्र असृजत्) जल को वृष्टिरूप में उत्पन्न करता है, फिर भी (ऋतं प्र असृजत्) उत्तम रूप से अन्न को उत्पन्न करता है। और (वरुणस्य सिन्धवः यन्ति) मेघ की जल धाराएं बहती हैं और समुद्र को जानेवाली जल की (सिन्धवः) नदियां बहती हैं। (न श्राम्यन्ति न विमुचन्ति) वे कभी न थकती हैं, न चलने से रुक सकती हैं इसी प्रकार (आदित्यः) समस्त संसार को अपने भीतर लेलेने वाला, अदिति, अखण्ड, प्रकृति का शासक परमेश्वर, (ऋतम्) 'ऋत' इस गतिशील, व्यक्त संसार को (प्र असृजत्) बहुत ही खूबी से बनाता है। वह स्वयं (विधर्त्ता) इस को विशेष रूप से और विविध उपायों से धारण कर रहा है। (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ उस प्रभु के शासन में ही ये (सिन्धवः) जल धाराओं के समान बन्धन में बंधे जीवगण (ऋतम्) अन्न, जीवन (यन्ति) प्राप्त करते हैं। (एते न श्राम्यन्ति) ये कभी नहीं थकते। (न विमुचन्ति) कभी मुक्त नहीं होते। क्योंकि अन्नादि भोग में लगे रहते हैं। वे (रघुया) वेग से जाने वाले (वयः न) पक्षियों के समान (परिज्मन्) इस भू लोक पर ही (पप्तुः) ऊपर नीचे विचरते रहते हैं।

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः॥५॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ! प्रभो! राजन्! (रशनाम्) बंधी रस्सी के समान (आगः) पाप, और अपराध को आप (मत्) मुझ से (वि श्रथाय) विशेषरूप से ढीली करदो। (ऋतस्य खाम्) मेघ के जल से जिस प्रकार नदी या खुदे हुए तालाब को खूब भर देते हैं,

उसी प्रकार हम भी हे (वरुण) मेघ के समान सर्वश्रेष्ठ, (ते) तेरे (ऋतस्य) धनैश्वर्य और सत्यन्याय के कारण (ऋध्याम) खूब समृद्ध और सम्पन्न हों। (वयतः तन्तुः) बुनने वाले का जिस प्रकार तागा न टूटना चाहिये उसी प्रकार (धियं वयतः) तन्तु अर्थात् प्रजा तन्तु और यज्ञतन्तु के कर्म को विस्तारते हुए (मे) मेरा (तन्तुः) यज्ञ तन्तु और प्रजातन्तु (मा छेदि) न टूटे। और (पुरः ऋतोः) ऋतु के पूर्व (अपसः मात्रा मा शारि) जिस प्रकार अन्न की मात्रा न समाप्त होनी चाहिये उसी प्रकार (ऋतोः = मृतोः पुरः) ठीक प्रयाण काल या मृत्युगति के पूर्व (मे अपसः मात्रा) मेरे कार्यों की मात्रा, अर्थात् कर्मों द्वारा बना शरीर (मा शारि) नष्ट न हो। इति नवमो वर्गः ॥

अपो सु म्य॑क्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ, प्रभो! गुरो! राजन्! (यत्) मुझसे आप (भियसं) भय (अपो सुम्यक्ष) दूर करें। हे (ऋत-वः) सत्य व्यवाहार, न्याय, ऐश्वर्य, और ज्ञान के स्वामिन्! तू (सम्राट्) अच्छी प्रकार प्रकाशमान है। तू (मा अनु गृभाय) मुझ पर अनुग्रह कर। (वत्साद् दाम इव) बछड़े से रस्सी को जिस प्रकार खोलकर पृथक् कर दिया जाता है उसी प्रकार हे प्रभो! तू मुझसे (अंहः) पाप बन्धन को (विमुमुग्धि) छुड़ा दे। (त्वद् आरे) तेरे समीप या दूर (त्वत्) तुझसे दूसरा कोई (निमिषः चन) एक आंख की झपक के काल के लिये वा गतिशील जगत् का भी (न हि ईशे) ईश्वर या संसार का चलाने हारा प्रभु नहीं है। तू ही सदा के लिये सर्वत्र जगत् का प्रभु है।

मा नो॑ व॒धैर्व॑रुण॒ ये त॑ इ॒ष्टावेनः॑ कृ॒ण्वन्त॑मसुर भ्री॒णन्ति॑।
मा ज्योति॑षः प्रवस॒थानि॑ गन्म॒ वि षू मृधः॑ शिश्रथो जी॒वसे॑ नः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! दुष्टों के वारण करने वाले, राजन् ! प्रभो ! गुरो ! हे (असुर) वायु के समान प्राणों के देने वाले ! हे बलवन् ! ये जो तेरे शस्त्रास्त्रधारी पुरुष (एनः कृण्वन्तम्) पाप करने वाले को (श्रीणन्ति) नाश कर देते हैं (ते इष्टौ) तेरी संगति और मैत्री में और उपासना में रहते हुए (नः) हमें उन (वधैः) शस्त्रों या हिंसा कारियों से (मा) मत पीड़ित होने दे । हम लोग (ज्योतिषः) प्रकाश से (प्रवसथानि) दूर के स्थानों को (मा गन्म) न जावें । और (नः जीवसे) हमारे जीवन की वृद्धि के लिये (मृधः) हिंसा कारियोंको (शिश्रथः) विनाश कर ।

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥

भा०—हे (वरुण) प्रशस्त ! सर्वश्रेष्ठ, विघ्नवारक ! वरणीय ! हे (तुविजात) हे बहुतों में प्रसिद्ध ! बहुत से गुणों, बलों से प्रसिद्ध ! (ते) तेरे लिये हम (पुरा) पहले भी (नमः ब्रवाम) नमस्कार और सत्कारादि वचन कहते रहें, (उत) और (नूनं) निश्चय से (अपरम्) बाद में अब भी हम (ते नमः ब्रवाम) तेरे लिये नमस्कार आदि सत्कार योग्य वचन कहें । (पर्वते व्रतानि) मेघ में जलों के समान (पर्वते) पर्वत के समान अचल (त्वे) तुझ में (हि) ही (व्रतानि) सब श्रेष्ठ कर्म (अप्रच्युतानि) दृढ़ता से स्थिर हैं । श्रेष्ठ पुरुष का हम सदा आदर करें । उसी पर सामान्य जनता के सब धर्म कर्म आश्रित हैं ।

परं ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (ऋणानि) ऋण जिनको (मत्कृतानि) मैंने किया या जो मुझ पर अन्यों द्वारा किये हुए प्रमाणित किये

गये हों उनको (परा सावीः) दूर कर, उनको उतरवाने की व्यवस्था कर। और (अहं) मैं प्रजाजन (अन्यकृतेन) दूसरे के किये से, दूसरे की कमाई से (मा भोजम्) भोग न करूं। (नु) क्योंकि हमारी (भूयसीः) बहुत सी (उषासः) प्रभात वेलाएं (अव्युष्टाः इत्) ऋण की चिन्ता से ऐसी होती है जैसी मानों वे प्रभात वेलाएं हुई ही न हों। हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ! (तासु) उन दुःख चिन्ता की घड़ियों में ही (नः) हम (जीवान्) जीवों को (आ शाधि) शिक्षित कर। प्रजा में राजा ऐसी व्यवस्था करे कि कोई किसी का ऋणी न हो। सब अपने परिश्रम का भोग प्राप्त करें। ऋण की चिन्ता में दिनों का सुख नष्ट न करें। राजा ऋणापहारियों को दण्डित करके शिक्षा दे।

यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् १०

भा०—हे (राजन्) राजन्! (यः) जो (मे) मेरा (युज्यः) सहयोगी या (सखा वा) मित्र होकर (मह्यं भीरवे) मुझ भीरु पुरुष को (स्वप्ने) सोते समय में (भयम्) भय (आह) बतलावे (वा) या (याः) जो (स्तेनः) चोर या (वृकः) डाकू हो (नः) हम प्रजाजन को (दिप्सति) मारता, पीड़ित करता है हे (वरुण) दुष्टनिवारक राजन्! (त्वं) तू (तस्मात्) उस भयकारी साथी, मित्र, चोर या डाकू से (अस्मान् पाहि) हमें बचा। प्रजा में मित्र या साथी तथा चोर डाकू भी सोते समय एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं, राजा उस समय पहरे का प्रबन्ध करे।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ११।१०

भा०—व्याख्या देखो सू० २७। मं० १७॥ हे वरुण! राजन्! हम तेरी बड़ी बड़ाई तब करें यदि मैं प्रजाजन बड़े से बड़े प्रिय धन के दानी

और अपने बन्धु जन के सुख सम्पदा को स्पर्द्धा से न हरूं, और उत्तम संयम अर्थात् धर्मोपार्जित धन से भी मैं कभी वञ्चित न रहूं। इत्येकादशो वर्गः ॥

[२९]

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः १, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ६, ७ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१॥

भा०—हे (धृतव्रताः) नियम व्यवस्थाओं के स्थिर करने और प्रजा के रक्षण शिक्षण आदि के व्रतों को धारण और रक्षा करने हारे ! (आदित्याः) तेजस्वी विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (इषिराः) प्रबल इच्छा, ज्ञान और कर्म वाले होकर (रहसूः) एकान्त में सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री के समान (आगः) पाप आदि अपराध को (मत्) मुझ प्रजाजन से (आरे) दूर ही (कर्त्त) करो । हे (वरुण, मित्र, देवाः) सर्वश्रेष्ठ राजन् ! मित्रवद् गुरो ! न्यायकारिन् ! हे विद्वान् पुरुषो ! (शृण्वतः वः) आप लोगों के सुनते हुए मैं (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (वः) आप लोगों को (भद्रस्य अवसे) प्रजा के सुख और कल्याण की रक्षा करने और प्रजा का भद्र, सुख कल्याण, ऐश्वर्य का दान देने के लिये आप से (हुवे) प्रार्थना करता हूं ।

यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥२॥

भा०—हे (देवाः) तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग ही राष्ट्र में (प्रमतिः) सब से उत्तम ज्ञान और (यूयम् ओजः) तुम लोग ही राष्ट्र का ओज, बल, पराक्रम हो । (यूयम्) आप लोग (द्वेषांसि)

परस्पर के द्वेष और अप्रीति के कारणों को (सनुतः) सदा (युयोत) दूर करते रहो। आप लोग ही (अभिक्षत्तारः) सन्मुख मुकाबले पर दुष्टों को पीस डालने में समर्थ होकर (अभि क्षमध्वम्) सब कुछ कर सकते हो। आप ही लोग (नः) हमें (अद्य च अपरं च) वर्त्तमान में और भविष्य में भी (मृळयत) सुखी करो।

किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३॥

भा०—हे (वसवः) सब को बसाने और राष्ट्र में वसने वाले प्रजा जनो! हे वसु नाम के विद्वान् ब्रह्मचारी जनो! कहो, (वः) आप लोगों की (किम् उ) क्या प्रिय सेवा (कृणवाम) हम लोग करें? (अपरेण) और (आप्येन) प्राप्त होने योग्य या बन्धुजनों के योग्य (सनेन) धनादि विभागयोग्य पदार्थ से भी आप लोगों का (किं कृणवाम) क्या आदर सत्कार करें। प्रजाजन राजवर्गों को कहें। हे (मित्र, वरुण, अदिते च) स्नेही पुरुष, हे सर्वश्रेष्ठ! हे अखण्ड विद्या, बल, शासन के कर्त्तः! हे मातः! पितः! पुत्र आदि! हे (इन्द्रामरुतः) ऐश्वर्यवन् सेनापते! हे (मरुतः) शत्रुमारक, वायु के समान तीव्र बलवान् पुरुषो! वा मुख्यधनपते और हे (मरुतः) इतर वैश्यजन और प्रजाजनो! (यूयं) आप लोग (नः) हमारे (सु-अस्तिम्) सुख समृद्धि, कल्याण-समृद्धि धारण करावो।

हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम्।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥

भा०—(हये देवाः) हे विद्वान्, वीर, व्यवहारज्ञ, विजिगीषु पुरुषो! (यूयम् इत्) आप लोग ही (आपयः) विद्या आदि गुणों में व्यापक और धन आदि प्राप्त करने हारे (स्थ) होकर रहो। (मह्यम्) मुझ ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाले राष्ट्र जन को (मृळत) सुखी करो।

(वः) आप लोगों का (रथः) रथ, रमण योग्य साधन (मध्यमवाट्) बीचही में रह जाने वाला (मा भूत्) न हो, प्रत्युत (ऋते) जल, आदि में धनादि प्राप्ति के लिये, या ज्ञान और सत्य व्यवहारादि में सिद्धि तक पहुंचावे। और (युष्मावत्सु) आप लोगों जैसे (आपिषु) बन्धु जनो में हम लोग (मा श्रमिष्म) कभी थके मांदे, दुखित और पीडित, न हों।

प्र व॒ एको॑ मिमय भू॒र्यागो॒ यन्मा॑ पि॒तेव॑ कित॒वं श॑शा॒स।
आ॒रे पाशा॑ आ॒रे अ॒घानि॑ देवा॒ मा माधि॑ पु॒त्रे विमि॑व ग्रभीष्ट ५

भा०—हे (देवः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषो ! (वः) आप लोगों में से (एकः) एक उत्तम शासक ही (भूरि आगः) बहुत से अपराधों को (प्र मिमय) अच्छी प्रकार विनष्ट करने में समर्थ हो। (यत्) जो वह (पिता इव) पालक पिता के समान (कितवं) द्यूत के व्यसनी, अनायास दूसरे के धन को छल पूर्वक हरने वाले को (शशास) शासन करे। (पाशाः) पाश-बन्धन (आरे) दूर रहें (अघानि आरे) और पाप भी हमसे दूर रहें। (अधिपुत्रे) पुत्र आदि के रहते हुए (मा) मुझ पिता को (विम् इव) पक्षी को व्याध के समान निर्दयता पूर्वक (मा ग्रभीष्ट) मत पकड़ो। ऋणादि रहने पर भी पुत्र ऋण चुका सकता है। अतः मुझे दण्ड न देकर पुत्रादि से ऋण लेने की व्यवस्था करो।

अ॒र्वाञ्चो॑ अ॒द्या भ॑वता यजत्रा॒ आ वो॒ हार्दि॒ भय॑मानो व्ययेयम्। त्राध्वं॑ नो देवा नि॒जुरो॒ वृक॑स्य॒ त्राध्वं॑ क॒र्त्ताद॑व॒पदो॑ यजत्राः॥ ६॥

भा०—(अद्य) आज, आप लोग (अर्वाञ्चः) हमारे प्रति आदरणीय और (यजत्राः) अभय आदि देने और सत्संग करने वाले (भवत) होवो। (वः) आप लोगों के (हार्दि) हृदय के प्रेम या अभिप्राय को (आ) मैं प्राप्त करूं, जानूं क्योंकि सम्भव है कि (भयमानः) भयभीत

होकर (वि अयेयम्) नष्ट हो जाऊं। हे (देवाः) विद्वान्, विजयेच्छुक पुरुषो! (निजुरः) अतिहिंसक, छुप कर हिंसा करने वाले (वृकस्य) भेडिये के स्वभाव वाले, चोर डाकू पुरुष के किये (कर्त्तात्) छेदन हिंसन आदि कार्यों से (नः) हमें (त्राध्वं) बचाओ और हे (यजत्राः) दान-शीलो! आप लोग (नः) हमें (अवपदः) आपत्ति काल से भी (त्राध्वं) रक्षा करो।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥७।११

भा०—व्याख्या देखो सू० २७। १७॥ इत्येकादशो वर्गः॥

[३०]

गृत्समद ऋषिः॥ १—५, ७, ८, १० इन्द्रः। ६ इन्द्रासोमौ। ६ बृहस्पतिः। ११ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ३ भुरिक् पङ्क्तिः। २, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ६, ७, ६ त्रिष्टुप्। १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम्॥ १॥

भा०—(ऋतं कृण्वते) जल को उत्पन्न करते हुए (सवित्रे) जलों के उत्पादक (अहिघ्ने) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले (इन्द्राय) सूर्य के लिये (आपः) ये जल (न रमन्ते) क्रीड़ाएं नहीं करते। (अहरहः) दिनों दिन (आसाम्) इन (अपां) जलों का (प्रथमः) सबसे प्रथम (सर्गः) प्रकट हुआ मेघ (कियति) भला कितने देश में (आयाति) आ जाता है यह विचारना चाहिये अर्थात् मेघ आदि का स्थान बहुत स्वल्प है। उत्पादक सूर्य बहुत दूर है। सूर्य के स्वार्थ के लिये ये मेघादि

नहीं उत्पन्न होते प्रत्युत प्राणियों के उपकार के ही लिये होते हैं। उसी प्रकार (ऋतं) सत्यज्ञान वेद और इस ऋत, सत्य जगत् के (कृण्वते) प्रकट करने वाले (सवित्रे) सर्वोत्पादक (अहिघ्ने) प्रकृति के व्यापक स्वरूप में परमाणु २ में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के स्वार्थ के लिये (आपः) ये समस्त प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु सृष्टि रूप होकर (न रमन्ते) क्रीड़ा नहीं कर रहे हैं। (आसां) इन (अपां) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का (प्रथमः सर्गः) प्रथम सर्ग, प्रथम विकार जो (अहरहः) प्रतिदिन (याति) विकृत होता चला जा रहा है वह (आ कियति) भला कितने थोड़े स्थान में परिमित है यह जीवों के लिये है। (२) इसी प्रकार (ऋतं) ऐश्वर्य या राज्य-व्यवस्था, नियमादि उत्पन्न करने वाले शत्रुसंहारकारी राजा के लिये (आपः) प्रजाएं नहीं क्रीड़ा करतीं। उन प्रजाओं का प्रथम उत्तम सर्ग, उत्तम अंश भला कितने स्थान में है। बहुत में है। वह सबको नहीं भोग सकता। उसका यह सब व्यवस्था आदि कार्य अपने स्वार्थ के लिये नहीं, प्रत्युत प्रजोपकार के लिये ही है।

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुषं उवाच।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (अत्र) इस लोक में (सिनम्) अन्न (अभरिष्यत्) प्राप्त कराता है (तं) उस सूर्य को ही मानो (जनित्री) अन्न को उत्पन्न करने वाली भूमि (विदुषे) अन्न प्राप्त करने वाले (वृत्राय) मेघ को उत्पन्न करने या हनन करने के लिये (प्र उवाच) कहा करती है, (अस्मै जोषम् अनु) इस सूर्य के पृथिवी के प्रति सेवन, सन्तापन के पश्चात् ही (अस्मै) इस कार्य के लिये (पथः रदन्तीः) मार्गों को काटती हुईं (धुनयः) नदियों के समान (धुनयः) सूर्य रश्मियें (दिवे दिवे) दिन प्रतिदिन (अर्थम् यन्ति) प्राप्तव्य

जल को प्राप्त करती हैं । इसी प्रकार जो तेजस्वी राजा (अत्र) इस राष्ट्र में (सिनम्) उत्तम राज्यप्रबन्ध और अन्नादि ऐश्वर्य को (अभरिष्यत्) पुष्ट करता है (जनित्री) यह भूमि, और भूमि-वासिनी प्रजा (तं) उस राजा को दो कार्यों के लिये (प्र उवाच) कहती है एक (वृत्राय) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रु के हनन के लिये, दूसरे (विदुषे) विद्वान् पुरुषों की वृद्धि के लिये । उसके पश्चात् राष्ट्र में भी दो ही कार्य प्रारम्भ होते हैं (१) (अस्मै अनु जोषम्) उस राजा के प्रीति या मनो कामना के अनुकूल भी (दिवे दिवे) दिन प्रति दिन (पथः रदन्तीः धुनयः) मार्गों को काटती, नदियों के समान मार्ग लांघती हुई (धुनयः) शत्रु को कंपाती हुई सेनाएं (अर्थम् यन्ति) यातव्य शत्रु पर जा चढ़ती हैं ।

ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण प्रहार के साधन रश्मियों से युक्त होकर (अन्तरिक्षे अधि ऊर्ध्वः अस्थात्) आकाश में ऊपर ठहरता है । (अध) और (वृत्राय वधं प्र जभार) मेघ के लिये हननकारी विद्युत् को प्राप्त करता है । (मिहं वसानः) मेघ को आच्छादित करता हुआ (ईम्) उस जल को (अदुद्रोत्) द्रवित कर देता है उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, विजिगीषु प्रबल राजा (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से बलवान् होकर । (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष अर्थात् दोनों सेनाओं के बीच में या ऊंचे आकाश में (ऊर्ध्वः) सबसे ऊंचे पद या स्थान पर (अस्थात्) स्थित हो (अध) और (वृत्राय) बढ़ते शत्रु के विनाश के लिये (वधं) आघातकारी अस्त्र को (प्र जभार) प्रहार करे । (मिहं वसानः) शस्त्रवृष्टि करने वाले सैन्य पर अधिकार करता हुआ (ईम्) शत्रु को (उप अदुद्रोत्) भगा दे इस प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (शत्रुम् अजयत) शत्रु का विजय करे ।

बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४॥

भा०—जिस प्रकार वायु या सूर्य, (असुरस्य) जल देने वाले मेघ के (वीरान् = वि-इरान्) विशेष जलमय (वृकद्वरसः) छिन्न भिन्न द्वारों को (अश्नाइव तपुषा) तीव्र तापकारी व्यापक विद्युत् से आघात करता है उसी प्रकार हे (बृहस्पते) बड़े सैन्य के स्वामिन् ! (असुरस्य) बलवान् (वृकद्वरसः) विशेष तेजस्वी द्वारों पर खड़े, या शस्त्रास्त्र बल के मुख्य व्यूहद्वारों पर स्थित (वीरान्) वीर पुरुषों को (अश्ना इव) विजुली के समान (तपुषा) तापकारी अस्त्र से (विध्य) ताड़ना कर । (पुराचित्) पूर्व विजेताओं के समान ही (धृषता) शत्रु को धर्षण करने वाले अस्त्र शस्त्र बल से (यथा) ठीक २ प्रकार (जघन्थ) शत्रु सैन्य का हनन कर । हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू इस प्रकार (अस्माकम् शत्रुम्) हमारे शत्रु को (जहि एव) अवश्य विनाश किया कर ।

अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥१२

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (दिवः अश्मानम्) आकाश से विजुली के समान (उच्चा) ऊंचे से (अश्मानम्) शस्त्रास्त्र (अव क्षिप) नीचे की ओर फेंक (येन) जिससे तू (मन्दसानः) उत्तम स्तुतियुक्त होकर (शत्रुं) शत्रु को (नि जूर्वाः) विनष्ट कर सके । (तोकस्य तनयस्य भूरेः सातौ) बच्चों और सन्तानों को बहुतसा ऐश्वर्य देने के लिये (अस्मान्) हमको (गोनाम्) भूमि, गौ आदि पशु और उत्तम वाणियों से (अर्धं) समृद्ध (कृणुतात्) करें । इति द्वादशो वर्गः ॥

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ६

भा०—हे (इन्द्रा-सोमा) इन्द्र ! सेनापति या राजन् ! हे सोम, ऐश्वर्यवन् वैश्यवर्ग ! आप लोग (यं) जिसको (वनुथः) चाहते हो उस (क्रतुं) काम को और उसी ज्ञानयुक्त बुद्धिकौशल को (हि) भी (प्र वृहथः) प्राप्त करने के लिये उद्यम करो। आप दोनों मिलकर (रध्रस्य) वश करने वाले, आराधना वा साधना करने वाले (यजमानस्य) दानशील पुरुष को (चोदौ) चोदना अर्थात् वेदशास्त्र के अनुसार चलाने हारे (स्थ) होकर रहो। (युवम्) तुम दोनों (अस्मान्) हम सामान्य प्रजाओं की (अविष्टं) रक्षा करो और (अस्मिन्) इस (भयस्थे) भय के स्थान, संसार में (लोकम्) प्रकाश, आलोक, (कृणुतम्) करो। अन्धकार में भय होता है। प्रकाश होते समय मिट जाता है। इसी प्रकार अज्ञान में भय-संकट है। हमें ज्ञान-प्रकाश देकर भय से मुक्त करो।

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम्।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ७

भा०—हे मनुष्यो ! (यः) जो (मे पृणात्) मेरे शरीर को पुष्ट करे, (यः मा ददद्) जो मुझे बल, ओज, कान्ति और सुख प्रदान करे (यः निबोधात्) जो मुझे ज्ञान दे, विशेष रूप से जागृत रखे (यः) जो (सुन्वन्तं मा) ओषधि रस निकालते हुए मुझको (गोभिः) उत्तम इन्द्रियों से (उप आयत्) युक्त करता हुआ प्राप्त हो अर्थात् जिसे बनाते २ आंख, नाक मुख आदि की शक्ति बढ़े ऐसे (सोमं) ओषधि आदि पदार्थों को (सुनोत) रस प्राप्त कर सेवन करो और विद्वान् पुरुष जो ओषधि (मा) मुझे (न तमत्) आकर्षित न करे, मुझ में अभिलाषा को न जगावे, देखकर जिससे मन परे हटे, (न श्रमत्) जो ओषधि मुझ में श्रम अर्थात् तप, सहन शक्ति वीर्य उत्पन्न न करे, (उत न तन्द्रत्) और जो तन्द्रा, सुख, उत्पन्न न करे और (न वोचाम) जिसको बनाने में

निषेध कह देवें ऐसी ओषधियों को भी (मा सुनोत) मत तैयार करो ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ८

भा०—(इन्द्रः वृषभं हन्ति चित्) जिस प्रकार विद्युत् या वायु वर्षणशील मेघ पर आघात करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, बलवान् सेनापति या राजा (त्यं) उस (तविषीयमाणं) सेना से आक्रमण करने वाले, (शण्डिकानाम्) शान्ति को भंग करने वाली सेनाओं के बीच में (वृषभम्) बलवान्, (शर्धन्तम्) उत्साहवान् शत्रु को भी (हन्ति) मारे । उसी प्रकार हे (सरस्वति) विदुषि स्त्रि ! प्रचण्ड वेग से जाने वाली सेने ! (त्वम्) तू (अस्मान्) हमारे (अविड्ढि) बीच में आ, प्रवेश कर, और (मरुत्वती) प्राण के बल से बलवती वाणी और वायु के वेग से बलवती विद्युत् के समान, मरुत अर्थात् वायुवत् बलवान् वीर भटों से युक्त होकर (धृषती) शत्रुओं को धर्षण करती हुई (शत्रून् जेषि) शत्रुओं का विजय कर ।

यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥९॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े राज्य के पालक ! (नः) हमारे बीच में (यः) जो (सनुत्यः) छुपा हुआ, (उत वा) और जो (जिघत्नुः) हिंसा करने वाला आततायी हो उसको (अभिख्याय) सब में दण्डनीय रूप से अपराधी घोषित करके (तं) उसको (तिगितेन) तीक्ष्ण शस्त्र से (विध्य) बेंध, दण्डित कर । हे राजन् ! तू (आयुधैः) हथियारों से (शत्रून् जेषि) शत्रुओं का विजयकर और हे (राजन्) राजन् ! तू (द्रुहे) द्रोह के कारण भी (रीषन्तं) प्रजा में एक दूसरे के मारने वाले को भी (परि धेहि) पकड़ और कैद में रख ।

अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर सेनापते ! (अस्माकेभिः) हमारे (सत्वभिः) शत्रुनाशकारी, वेगवान् बलवान्, (शूरैः) शूरवीर पुरुषों से मिलकर (यानि) जो २ (वीर्याणि) बल पराक्रम के कार्य (कर्त्वानि) करने योग्य हों उनको (कृधि) कर। (अनुधूपितासः) सुगंधित) पदार्थों से संस्कार किये गये जन (ज्योक् अभूवन्) चिरंजीवी हों। और जो दुष्ट पुरुष हों (तेषाम्) उनको (हत्वी) मारकर उनके (वसूनि) धन (नः आभर) हमें प्रदान कर। अथवा—जो (ज्योग् अनुधूपितासः अभूवन्) शत्रुगण चिरकाल से सुलगते रहे हों उनको मारकर उनके धन हमें दे।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११।१३॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! मैं (सुम्नयुः) सुख का इच्छुक प्रजाजन (वः) तुम्हारे (मारुतं शर्धं) बलवान् वीर पुरुषों के सैन्य बल और (दैव्यं जनं) विद्वानों और विजयेच्छुक पुरुषों में श्रेष्ठ जनों को (नमसा) अन्न आदि सत्कार द्वारा (उप ब्रुवे) उपदेश करता हूं। (यथा) जिससे हम लोग (सर्ववीरं) समस्त वीर पुरुषों से सम्पन्न, (अपत्यसाचं) उत्तम पुत्र, पौत्रादि सन्तानों से युक्त, (श्रुत्यं) श्रवणयोग्य, कीर्त्ति योग्य, वेदों में वर्णित (रयिं) ऐश्वर्य को (दिवे दिवे) दिनों दिन (नशामहे) प्राप्त करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३१]

गृत्समद ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ जगती । ३ विराट् जगती । ५ निचृज्जगती । ६ त्रिष्टुप् । ७ पङ्क्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः १

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र ! और हे वरुण ! मरण से बचाने वाले और श्रेष्ठ पुरुषो ! (आदित्यैः) आदित्य के समान तेजस्वी ४८ वर्षों तक ब्रह्मचारी, (रुद्रैः) दुष्टों को रुलाने वाले, ३६ वर्ष के ब्रह्मचारी और (वसुभिः) २४ वर्ष के ब्रह्मचारी, विद्वान् पुरुषों सहित (सचाभुवा) सदा साथ रहनेवाले आप दोनों (अस्माकं) हमारे (रथं) रमणसाधन यानों और देहों की (अवतम्) रक्षा कीजिये । (यत्) जो या जिनसे (श्रवस्यवः) अन्न और यश के इच्छुक (हृषीवन्तः) हर्ष के अभिलाषी, और (वनर्षदः) जलों पर बिहार करने वाले प्रजा गण (वयः न) पक्षियों के समान (वस्मनः) गृहों के भी ऊपर (परि पप्तन्) वेग से उड़ा करें, जाया आया करें । या (वस्मनः) गृह निवासी प्रजागण (परिपप्तन्) जाया आया करें ।

अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् । यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः २ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् गुणवान् पुरुषो ! आप लोग (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः) हमारे (वाजयुम्) वेगवान् (रथं) रथ को (अभिविक्षु) प्रजाओं के बीच (उद् अवत स्म) ऊपर २ चलाया करो । (अध) और (यद्) जो (आशवः) आप शीघ्रगामी हो तो आप लोग (पद्याभिः) जाने योग्य गतियों से (रजः) लोकों को (तित्रतः) पार करते हुए (पृथिव्याः सानौ) पृथिवी के उच्च प्रदेश में भी (पाणिभिः) हाथों से (जंघनन्त) यन्त्रों को सञ्चालित किया करें ।

उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३॥

भा०—(इन्द्रः विश्वचर्षणिः) सूर्य जिस प्रकार सब जगत् का दिखानेहारा (मारुतेन शर्धेन) वायु के बल से उत्तम कर्म करने में समर्थ होता है वह (अवृकाभिः ऊतिभिः रथं अनु स्थाति) चन्द्र से रहित दीप्तियों से भी रम्य रूप में प्रति दिन उगता है, वह (महे सनये वाजसातये) बड़े ऐश्वर्य अन्न प्रदान करने के लिये भी होता है उसी प्रकार (स्यः नः इन्द्रः) वह हमारा राजा (दिवः) ज्ञानप्रकाश तेज से या 'व्यवहार' निर्णय द्वारा, (विश्वचर्षणिः) सबका देखनेवाला, (मारुतेन शर्धेन) मनुष्यों के बल से ही (सुक्रतुः) सब उत्तम काम करने में समर्थ होता है। वह (अवृकाभिः) चौर आदि से रहित रक्षादि साधनों से (महे) बड़े (सनये) दान, भृति, वृत्ति आदि देने और (वाजसातये) ऐश्वर्य के स्वयं प्राप्त करने के लिये (रथम् अनु स्थाति नु) रथ पर सवार होता है। विजय करता, रम्य राष्ट्र पर शासन करता है। (२) अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा प्रवेशयोग 'विश्व', देह का द्रष्टा, प्राणों के बल से सब काम करता है। वह पीड़ारहित रक्षादि उपायों से ऐश्वर्य भोग के लिये (रथं) देह का इच्छानुरूप निर्माण करता है।

उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् । इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (स्यः देवः) वह देव, सर्वप्रकाशक, सर्व सुखदाता परमेश्वर (भुवनस्य) उत्पन्न हुए इस संसार का (सक्षणिः) रचने वाला, और इसमें व्यापक, (त्वष्टा) शिल्पी के समान इसको बनाने वाला, (इडा) स्तुति योग्य, अन्न के समान चाहने और शक्ति उत्पन्न करने वाला, वाणी के समान सब अर्थों का प्रकाशक, भूमि के समान सर्वा-

धार, (भगः) ऐश्वर्यवान्, सबके सेवने योग्य, (बृहद्-दिवा) बड़ी भारी कामना, संसार रचने के प्रबल संकल्प से युक्त अति तेजस्वी, बड़ा क्रियावान्, (रोदसी) सूर्य और पृथिवी, माता और पिता, गुरू और जनक के समान समस्त लोकों का धारक, पालक, और ज्ञानदाता, (पूषा) अन्न और पृथ्वी के समान पुष्टि करने वाला, (पुरन्धिः) गृह की स्त्री के समान और पुर के स्वामी राजा के समान ब्रह्माण्ड को व्यवस्थित रखने वाला (अध) और (पती) गृहस्थ धर्म को निभाने वाले एक दूसरे के पालक पतिपत्नी के समान जीव संसार के प्रति अति प्रेममय और (अश्विना) सूर्य-चन्द्र के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला, वह परमेश्वर (सजोषाः) समान रूप से सब पर प्रेम युक्त होकर (आभिः रथम्) गमनशील अश्वाओं से रथ के समान इस (रथम्) रमण करने योग्य देहवत् और वेग से चलने वाले समस्त संसार को (आभिः) गति देने वाली महा शक्तियों से (जूजुवत्) चला रहा है।

उत त्ये देवी सु भगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा। स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषासानक्ता) दिन और रात्रि के समान (सुभगे) उत्तम कल्याण और ऐश्वर्य सुख से युक्त, (मिथू-दृशा) एक दूसरे को स्नेह से देखने वाले, और एक दूसरे के गुणों को दर्शाने वाले, (देवी) परस्पर की कामना करने वाले, परस्पराभिलाषी, और व्यवहार दक्ष, विद्वान्, (जगताम्) जंगम प्राणियों और (स्थातुः च) स्थावर ओषधि वनस्पति और पाषाण आदि को (अपीजुवा) उत्तम रूप से कार्य व्यवहार में लाने वाले होकर रहो। हे (पृथिवी) पृथ्वी के समान एक दूसरे का आश्रय होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो! मैं (यद्) जो (वां) आप दोनों को (नव्यसा वचः) नित्य नूतन, उत्तम से उत्तम वचन द्वारा

(स्तुषे) उपदेश करूं और (त्रिवयाः) मानस, कायिक, वाचिक तीनों प्रकार के बलों और बाल, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्था और ऋग्, यजुः, साम, मन्त्र, कर्म, और उपासना इन तीनों ज्ञानों ओषधि, अन्न, और पशु इनसे प्राप्त होने योग्य औषध, भोजन दुग्धादि खाद्य पदार्थों से सम्पन्न होकर (वां वयः उपस्तिरे) तुम दोनों के ज्ञान, बल, और आयु को मैं विद्वान् गुरु या परमेश्वर अच्छादित, सुरक्षित, और परिवर्धित करता हूं।

उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत। त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (उशिजाम् इव) हमारी शुभ कामना करने वाले प्रेमी सज्जनों के समान (वः) आप लोगों के (शंसम्) वचन, उपदेश की (श्मसि = उश्मसि) सदा कामना किया करें। वह परमेश्वर (अहिः) मेघ के समान फैला हुआ, सर्वत्रव्यापक (बुध्न्यः) आकाश के समान अति सूक्ष्म या सब संसार के आश्रय में स्थित सबको नियम में बांधने वाला, (एकपात्) आनन्दमय, एकमात्र ज्ञान करने योग्य स्वरूप से विद्यमान, (त्रितः) तीनों लोक में व्यापक, तीनों प्रकार के दुःखों से युक्त, (ऋभुक्षाः) मेधावी, महान्, एवं महान् लोकों में भी व्यापक, सत्य, बल से प्रकाशित, विद्वानों के हृदयों में रहने वाला, (सविता) सबका उत्पादक है, वही (अपां नपात्) समस्त प्राणों और प्राण वालों का पालक (चनः) अन्न (दधे) प्रदान करता, वही (आशु-हेमा) शीघ्र गति से चलने वाले सूर्य विद्युत् आदि लोकों और पदार्थों का प्रेरक होकर भी (धिया) बुद्धिपूर्वक (शमि) समस्त कार्यों को (दधे) धारता है। उसी प्रकार मैं भी परमात्मा के गुणों को अपने में धारण करूं अर्थात् मैं भी (अहिः) मेघ के समान दानशील, (बुध्न्यः) ज्ञान पूर्वक आगे बढ़ने वाला, उत्तम प्रबन्ध करने वाला और सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वा-

श्रय, (एकपात्) एक मुख्य आश्रय के समान, (श्रितः) ब्रह्मचर्य बल, अध्ययन, और विचार से युक्त, तीनों वेदों और तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होने वाला, (ऋभुक्षाः) विद्वान् (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी, उत्तम सन्तानों का उत्पन्न करने वाला, (नपात्) वंशों और प्राणों को न गिरने देने वाला, उनका पालक (आशुहेमा) शीघ्रगामी अश्वों यन्त्रों और तटों का सञ्चालक, (धिया) बुद्धि पूर्वक (शमि) काम करने वाले, शान्तिदायक, (चनः दधे) अन्न को धारण करूं ।

एता वो॑ वश्म्युद्य॑ता यजत्रा अत॑क्षन्नायवो॒ नव्य॑से॒ सम् ।
श्र॒व॒स्यवो॒ वाजं॑ चका॒नाः सप्ति॒र्न रथ्यो॒ अह॑ धीतिम॑श्याः ७।१४॥

भा०—जिस प्रकार (यजत्राः) परस्पर मिलकर एक संग काम करने वाले (आयवः) शिल्पी लोग (नव्यसे) स्तुतियोग्य स्वामी के लिये (उद्-यता) उत्तम कोटि के प्रयत्नसाध्य पदार्थ (सम् अतक्षन्) बनाते हैं । और वे उससे (श्रवस्यवः) धन, अन्न और यश की इच्छा करते और (वाजं चकानाः) ऐश्वर्य या बल अधिकार की कामना करते हैं । इसी प्रकार (यजत्राः) यज्ञ, उपासना और दान करने वाले (आयवः) ज्ञानी लोग (नव्यसे) अतिस्तुत्य परमेश्वर के लिये (उद्-यता) उत्तम रूप से हृदय से उठे, भावपूर्ण स्तुति वचनों को (सम् अतक्षन्) प्रकट करते हैं । वे (श्रवस्यवः) ज्ञान की और (वाजं) ऐश्वर्य, और बल की (चकानाः) कामना करते हैं । हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों के (एता) इन उत्तम वचनों उपायनों को स्वामी के समान (वश्मि) नित्य चाहता और स्वीकार करता हूं । (रथ्यः सप्तिः न) रथ में लगा अश्व जिस प्रकार (वाजम्) बड़े वेग को प्राप्त करके मार्ग व्यापता है उसी प्रकार (अह) निश्चय से तुम जीव गण (रथ्यः) रमण योग्य देह में विद्यमान (सप्तिः) देह में देहान्तर जाने वाले होकर (वाजम्) नाना ऐश्वर्य और अन्नादि कर्म फल (अश्याः) भोग करो ।

[३२]

गृत्समद ऋषिः ॥ १, द्यावापृथिव्यौ । २, ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा । ४,५ राका । ६,७ सिनीवाली । लिङ्गोक्ता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । ३ निचृज्जगती । ४, ५ विराड् जगती । २ त्रिष्टुप् ६ अनुष्टुप् । ७ विराडनुटुप् । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी जिस प्रकार (ऋतायतः) जल प्रदान करतीं, (भूतम्) उत्पन्न हुए संसार को (अवित्री) रक्षा करती हुई (सिषासतः) नाना पदार्थ प्रदान करती हैं (ययोः प्रतरं आयुः) जिनसे बहुत अधिक जीवन अन्नादि प्राप्त होता है (ते उपस्तुते) वे स्तुति योग्य हैं । (वसूयुः) ऐश्वर्य का इच्छुक पुरुष उनसे सुख प्राप्त करता है उसी प्रकार हे (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के समान माता पिताओ ! आप दोनों (अस्य मे) इस मुझ पुत्र के लिये (ऋतायतः) सत्यधर्मानुकूल सुख की कामना करने वाले (मे वचसः) मेरा वचन (सिषासतः) ग्रहण करते हो । आप दोनों (अवित्री भूतम्) रक्षा करनेहारे होवो । (ययोः) जिन आप दोनों का (आयुः प्रतरं) बड़ी आयु है । (ते) वे आप दोनों (पुरः) मेरे समक्ष (उपस्तुते) प्रशंसा करने और आदर करने योग्य हैं । (वां) आप दोनों के अधीन (वसूयुः) आपके वसु, धनैश्वर्य आदि का इच्छुक और स्वामी मैं पुत्र (इदं) इस (महः) आदर को (दधे) धारण करूं । अथवा—हे भूमि-सूर्य के समान राजा प्रजा वर्गो ! या राजा-रानी ! (ऋतायतः) सत्य ज्ञान की इच्छा वाले (सिषासतः) आप दोनों का सेवन करने के इच्छुक (वचसः) उत्तम स्तुतिवक्ता (मे) मेरे (अवित्री भूतम्) पालन करने वाले होवो । (ययोः प्रतरं-

आयुः) आप दोनों की आयु बड़ी हो, आप दोनों प्रशंसा योग्य हों। ऐश्वर्य की कामना वाला मैं प्रजावर्ग आप दोनों को आदर से धारण पोषण करूं।

मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः। मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! विद्वन् ! (आयोः) मनुष्य के (गुह्याः) छुपे (रिपः) पाप, हिंसा आदि (नः) हमें (अहन्) किसी दिन भी (मा दभन्) पीड़ित न करें। (आभ्यः) इन (दुःच्छुनाभ्यः) दुःखदायी, सुखनाशक विपत्तियों या परसेनाओं के द्वारा (नः मा रीरधः) पीड़ित न कर, उनके वश न होने दे। (नः सख्या) हमारे परस्पर के मैत्रीभावों को (मा वि यौः) मत टूटने दे, प्रजा में फूट मत पैदा कर। प्रत्युत (नः) हमारे (तस्य) उस मैत्री भाव को तू भी जान और प्राप्त कर। (सुम्नायता मनसा) सुख की इच्छा वाले चित्त से (तत् त्वाम्) तुझ को हम (ईमहे) याचना प्रार्थना करते हैं।

अहेळता मनसा श्रुष्टिमावह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्। पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! हे प्रभो ! तू (अहेडता) क्रोध और अनादर के भाव से रहित (मनसा) मनसे और ज्ञान से (पद्याभिः) ज्ञान कराने वाली उत्तम क्रियाओं से, और (वचसा) उत्तम वचन द्वारा (असश्चतम्) प्रत्येक अवयव, वर्ण २ और पद २ पृथक् २ रूप से प्रकट करनेवाली (पिप्युषीं) स्वयं परिपुष्ट, अन्यों के ज्ञान और बल, चारों पुरुषार्थों को वृद्धि करनेवाली (धेनुं) गौ के समान रस पिलाने वाली (दुहाना) ज्ञान, बल और चारों पुरुषार्थों को पूर्ण करने वाली (श्रुष्टिम्)

श्रवण योग्य वेदवाणी को शीघ्र ही (आ वह) स्वयं धारण कर और अन्यों को धारण करा। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित विद्वन्! (त्वां) तुझ (वाजिनं) ज्ञानवान् को मैं (विश्वहा) सब दिन (हिनोमि) प्रेरित करता, दान आदि से बढ़ाता और प्रेम से प्राप्त होता हूं।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ४

भा०—(अहम्) मैं (सुहवां) उत्तम नाम वाली, और उत्तम रीति से स्पर्धा करने योग्य (राकाम्) सुख देनेवाली, पूर्ण प्रकाशवान् चन्द्रमा से युक्त, चांदनी रात्रि के समान मनोरम, स्त्री की (सुष्टुती) उत्तम गुण स्तुति द्वारा (हुवे) प्रशंसा करूं और उसे अपने समीप आदर से बुलाऊं। वह (नः) हमारे वचन (शृणोतु) सुने। वह (सुभगा) उत्तम भाग्यवती होकर (त्मना) स्वयं (बोधतु) हमारे वचनों को समझे, हमारा अभिप्राय जाने। वह (अच्छिद्यमानया) कभी न टूटने वाली (सूच्या) सूई से जिस प्रकार वस्त्र सिये जाते हैं उसी प्रकार वह अटूट सूई या सी देने वाले साधन से (अपः) उत्तम कर्म और संकल्प या प्राप्त पति को (सीव्यतु) उत्तम वस्त्र के समान अपने साथ जोड़ती रहा करे। अर्थात् वह उत्तम २ कर्मों का तांता लगाये रखे। और वह ही (उक्थ्यम्) प्रशंसा योग्य (शतदायम्) बहुत ऐश्वर्य देने वाले और बहुत से धनों का स्वामी (वीरं) वीर्यवान् पुत्र को (ददातु) दे, उत्पन्न करे।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५॥

भा०—हे (राके) चांदनी रात्रि के समान सुख देने वाली!

स्त्रि ! (याः) जो (ते) तेरी (सुपेशसः) उत्तम रूप वाली दीप्तियां और (सुमतयः) शुभ संकल्पमय मतियां हैं (याभिः) जिनसे तू (दाशुषे) सर्वस्व देने वाले पति के लिये (वसूनि) नाना द्रव्य और अन्नादि बसने योग्य सुख-सामग्री (ददासि) प्रदान करती है (ताभिः) उनसे ही (नः) हमें (अद्य) आज सदा ही (सुमनाः) उत्तम चित्त वाली होकर (उप आगहि) प्राप्त हो । हे (सुभगे) सुभगे ! उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यमयि ! तू (सहस्र-पोषं) असंख्य समृद्धियों को (रराणा) देती और उनमें रमती और रमाती हुई हमें प्राप्त हो ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सिनीवालि) प्रेम-बन्धन से वरण करने वाली, पति द्वारा वरण करने योग्य ! हे (पृथुष्टुके) विस्तृत, विशाल जघन भाग से युक्त या बहुत सुन्दर केशपाश वाली ! (या) जो तू (देवानाम्) तुझे कामना करनेवाले, परस्पर गुणों में एक दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषों के बीच में से (स्वसा) स्वयं अपनी इच्छानुसार एक को प्राप्त होने वाली, (असि) है । तू (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (आहुतं) आदर सन्मान से दिये गये द्रव्य को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर । (नः) हमें हे (देवि) उत्तम स्त्री ! (प्रजां) उत्तम सन्तान (दिदिड्ढ) प्रदान कर ।

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (सुबाहुः) उत्तम बाहुओं वाली, (सु-अङ्गुरिः) उत्तम अंगों और अंगुलियों वाली, (सुसूमा) उत्तम रीति से, सुखपूर्वक सन्तान उत्पन्न करने वाली, (बहु-सूवरी) बहुत से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो, (तस्यै) उस (विश्पत्न्यै) प्रजाओं

की पालक वा अपने में प्रवेश या संवेश अर्थात् सहवास करने वाले पति की पत्नी, धर्मपत्नी, (सिनीवाल्यै) प्रेम से आच्छादित करने वाली, या अन्नादि के बंधन से वरण करने वाली स्त्री के कोश में ही (हविः) उत्तम दानयोग्य द्रव्य के समान उत्तम वीर्य (जुहोतन) पवित्र आहुति के समान प्रदान करो।

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(या) जो (गुंगूः) प्रेमवश अव्यक्त, अस्फुट शब्द कहने वाली, अतिलज्जाशील, (या सिनीवाली) जो अति प्रेम वाली, (या राका) जो सुख देनेवाली, चांदनी रात्रि के समान मनोहर, और (या) जो (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवाली हो उस ऐसी (इन्द्राणीं) ऐश्वर्यवाली, और (वरुणानीं) समस्त दुःख वारने वाली, या स्वतः श्रेष्ठ स्त्री को (ऊतये) आत्मसुख, तृप्ति, और (स्वस्तये) कल्याण, सुख प्राप्त करने के लिये (अह्वे) अपने समीप बुलाऊं। ऐसी स्त्री को स्वीकार करूं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[३३]

गृत्समद ऋषिः॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६, १३, १४, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ८ त्रिष्टुप्। २, ७ पङ्क्तिः। १२, भुरिक् पङ्क्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः॥ १ ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेवाले ! हे (मरुतां पितः) मनुष्यों, वीर पुरुषों, विद्वानों, और वैश्यों तथा उत्तम शिष्यों के पालन करने वाले, राजन् ! सेनानायक ! स्वामिन् ! विद्वन् ! वैद्य ! आचार्य !

(सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी, (संदृशः) अच्छी प्रकार तत्व को देखने और अन्यों को दिखाने वाले, (ते) तुझ से या तेरा (सुम्नम्) उत्तम मनन योग्य, सुख, ज्ञान आदि (नः) हमें (आ एतु) प्राप्त हो। तू (नः) हम से (मा) कभी न (युयोथाः) पृथक् हो। (नः वीरः) हमारे राष्ट्र का वीर पुरुष (अर्वति) अश्व पर सवार होकर (अभि क्षमेत) सब प्रकार से समर्थ हो, हमारा पुत्र (अर्वति) ज्ञानवान् पुरुष के अधीन रहकर (अभि क्षमेत) सब प्रकार से समर्थ बने! हे प्रभो! हम (प्रजाभिः) प्रजाओं और उत्तम सन्तानों से (प्र जायेमहि) सन्तानवान् होकर प्रसिद्ध हों।

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्ट पुरुषों के रुलाने वाले प्रभो! राजन्! दुष्ट रोगों को भगाने वाले वैद्य! हम लोग (त्वादत्तेभिः) तेरे से दिये (शन्तमेभिः) अति शान्तिदायक, सुखकर (भेषजेभिः) रोगनाशक ओषधियों और ओषधियों के समान कष्टों के निवारक उपायों से (शतं हिमाः) सौ बरसों तक (अशीय) जीवन का भोग करें। (द्वेषः) अप्रिय पदार्थों, रोगों और शत्रुजनों को भी (अस्मत्) हमसे (वि चातयस्व) दूरकर। (अंहः) पाप को भी (वितरं चातयस्व) सर्वथा नष्ट कर। (विषूचीः) नाना प्रकारों से आने और सब अङ्गों में व्यापने वाले (अमीवाः) दुखदायी रोगों को (वि चातयस्व) विशेष रूप से नाश कर।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि॥३॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने वाले! दुखों के भगाने वाले! तू (जातस्य) उत्पन्न हुए संसार के बीच में (श्रिया) लक्ष्मी, कान्ति से (श्रेष्ठः) सबसे अधिक प्रशंसायोग्य (असि) है। हे (वज्र-

बाहो) शस्त्रास्त्र के समान रोगों और दुखों के नाना उपायों से दुःख-दायक को बांधने वाले ओषधिरूप बाहु वाले वैद्य ! वा शस्त्रास्त्र से सज्जित बाहु वाले पुरुष ! तू (तवसा) सब बलवालों में (तवस्तमः) सबसे अधिक बलवान् है । (नः) हमें (अंहसः) पाप से (स्वस्ति) कल्याण पूर्वक (पर्षि) पार कर । और (विश्वाः) सब प्रकार की (रपसः) पाप के कारण आने वाली (अभि-इतीः) आपत्तियों को (युयोधि) दूर कर ।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों, कुपथ्यकारियों को रुलाने वाले, तथा दुखों को भगाने वाले, कुकर्मों से रोकने, और उत्तम उपदेश करने वाले ! राजन् ! वैद्य ! आश्रयदातः ! राजन् ! विद्वन् ! गुरो ! प्रभो ! (त्वा) तेरे प्रति हम मा चुक्रुधाम) कभी कोप न करें, तुझे कभी क्रुद्ध न करें । हे (वृषभ) सर्वश्रेष्ठ ! हम तुझे (दुःस्तुती) बुरी निन्दा और (सहूती) समान स्पर्द्धा, और बराबरी के से बुलाने से (मा चुक्रुधाम) कभी तुझे कुपित न करें । प्रत्युत (नमोभिः) नमस्कार और आदरवचनों से सदा सत्कार करें । (नः वीरान्) हमारे वीरों और पुत्रों को (भेषजेभिः) उत्तम रोगनाशक उपायों और ओषधियों से (उत् अर्पय) उत्तम सुख प्रदान कर । मैं (त्वा) तुझ (भिषजां) सब रोग-व्याधिनाशकों में से (भि-षक्-तमम्) सबसे श्रेष्ठ रोगनाशक, चिकित्सक (शृणोमि) सुनता हूं । अथवा—(नमोभिः मा क्रुधाम) हे राजन् ! तुझको हम शस्त्रों से अर्थात् शस्त्रों के दुरुपयोगों से कुपित न करें । वा, (नमोभिः) तेरे शस्त्र या प्रजा को नमाने, वश करने के उपायों से पीड़ित होकर हम प्रजाजन स्वयं कुपित न हों ।

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥

भा०—(यः) जो पुरुष (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य (हवीमभिः) उत्तम अन्न आदि ओषधियों से (हवते) उत्तम सुख देता, और उत्तम उपदेशों से ज्ञान प्रदान करता है, उस (रुद्रम्) दुखों को दूर करने वाले, दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष को (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुति वचनों से मैं (अव दिषीय) धारण करूं या उसके अधीन रहूं । [अथवा 'मा' पद को दीपक-न्याय से उत्तर चरण से लें] (मा अव दिषीय) उसको कभी अनादर पूर्वक खण्डित न करूं, अनादर से उसे क्लेश न दूं । वह (ऋदूदरः) कोमल हृदय वाला, (सुहवः) उत्तम ज्ञान देने वाला, और (सुशिप्रः) उत्तम मुखाकृति से युक्त हँसमुख (बभ्रुः) तेजस्वी, अरुण वर्ण या सर्वपालक होकर (अस्यै मनायै) इस समस्त मनकारिणी, सर्ववश करने वाली शक्ति और सर्वज्ञान करने में समर्थ बुद्धि के बल से (नः) हमें (मा रीरधत्) कष्ट और पीड़ा न दे ।

'अव दिषीय'—दीङ् क्षये। क्षयो निवासः। इत्यस्य रूपम्। छान्दसो-ह्रस्वः। अथवा 'धि धारणे' इत्यस्य वा। दत्वं छान्दसम्। अथवा 'दो अवखण्डने' इत्यस्य रूपम्। तत्र 'मा' पदं उत्तरस्मादाकृष्यते, दीपकवद् वा स्थितमुभयत्र युज्यते। इति षोडशो वर्गः ॥

उन्मा॑ ममन्द वृष॒भो म॒रुत्वा॒न्त्वक्षी॑यसा॒ वय॑सा॒ नाध॑मानम् ।
घृणी॑व छा॒यामर॒पा अ॑शी॒या वि॑वासेयं रु॒द्रस्य॑ सु॒म्नम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुत्वान् वृषभः) वायु से युक्त जलवर्षण करने वाला मेघ (त्वक्षीयसा वयसा) खूब उज्ज्वल अन्न से (नाधमानं) याचनाशील, अन्न के इच्छुक कृषक जन को (उत् ममन्द) खूब तृप्त कर देता है उसी प्रकार (मरुत्वान्) मनुष्यों का स्वामी, (वृषभः) श्रेष्ठ, बलवान् पुरुष (त्वक्षीयसा) शत्रुओं को टुकड़े २ कर देने वाले (वयसा) बल से (नाधमानं) ऐश्वर्य की कामना करने वाले (मा) मुझ राष्ट्र जन को (उत् ममन्द) खूब प्रसन्न तृप्त, और हर्षित करे । (घृणी

इव छायाम्) सूर्य के आतप से सन्तप्त पुरुष जिस प्रकार छाया का सेवन करता है उसी प्रकार हे प्रभो ! हे विद्वन् ! शरणयोग्य ! दुःख दूर करने हारे ! मैं (अरपाः) निष्पाप होकर (रुद्रस्य) सब दुःखों को दूर भगाने वाले तेरी (सुम्नं) सुख शान्तिमय शरण को (विवासेयम्) सेवन करूं।

क्व१स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने और प्राणियों के दुःख दूर करने हारे विद्वन् ! दयालो ! (ते) तेरा (मृडयाकुः) सबको सुख शान्ति देने हारा (स्यः हस्तः) वह हाथ (क्व) कहां है ? (यः) जो स्वयं (भेषजः) सब रोगों और कष्टों का दूर करने वाला, (जलाषः) सन्तप्त पुरुष के ताप शान्ति करने वाले जल के समान सुखदायक (अस्ति) है और जो (देवस्य) देववश या काम्य भोगों से प्राप्त होने वाले (रपसः) व्याधि आदि पीड़ाओं को (अप भर्त्ता) दूर करता है । हे (वृषभ) मेघ के समान जलों और अन्नों के समान काम्य सुखों की वर्षा करने हारे, बलवन् ! (मा) मुझको (नु) सदा (अभि चक्षमीथाः) क्षमा कर, वा सब प्रकार से सहनशील, दृढ़, बलवान् बना ।

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८॥

भा०—(बभ्रवे) सबको पालने पोषने वाले, (वृषभाय) मेघ के समान काम्य सुखों और ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, पापों के प्रतिबन्धक और सर्वश्रेष्ठ, बलवान् बलीवर्द के समान समस्त विश्वरूप रथ को सञ्चालन करने वाले, और संसार के उत्पादक बीजों को वपन करने वाले, सर्व-निषेचक (श्वितीचे) शुद्ध, स्वच्छ उज्ज्वल वेष, कान्ति रूप को धारने वाले, उस (महः) महान् परमेश्वर की मैं (महीम्) बड़ी भारी (सु-

स्तुतिम्) उत्तम स्तुति (ईरयामि) करूं । हे विद्वान् पुरुष ! तू भी (नमोभिः) नमस्कारों से उस (कल्मलीकिनं) मलों को शोधने वाले, उज्ज्वल, अग्नि के समान परम पावन की (नमस्य) नमस्या, वन्दना कर । हम उसी (रुद्रस्य) दुःखहारी, दुष्टदलनकारी के (त्वेषं) अति तेजस्वी (नाम) स्वरूप की (गृणीमसि) स्तुति करते हैं । (२) इसी प्रकार रोग-पीड़ा-हारी वैद्य भी 'बभ्रु' पुष्टिकारक, सर्वश्रेष्ठ, स्वच्छ, श्वेत वस्त्र धरने वाला हो, वह देह के मलों को दूर करने वाला हो ।

स्थि॒रेभि॒रङ्गैः॑ पुरु॒रूप॑ उ॒ग्रो ब॒भ्रुः शु॒क्रेभिः॑ पिपिशे॒ हिर॑ण्यैः ।
ईशा॑नाद॒स्य भुव॑नस्य॒ भूरे॒र्न वा उ॑ योषद्रु॒द्राद॑सु॒र्य॑म् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्रः) वेगवान् वायु (शुक्रैः) जलों और विद्युतों से युक्त होता है उस जगत् के स्वामी सर्वपोषक वायु से (असुर्यम्) मेघ का जल भी पृथक् नहीं रहता उसी प्रकार वह (पुरुरूपः) नाना रूपवान्, रुचिकर पदार्थों का स्वामी, (उग्रः) बलवान् भयानक, (बभ्रुः) उज्ज्वल रक्तवर्ण, सबका पालक पोषक होकर (शुक्रेभिः) शुद्ध तेजोजनक सुरक्षित वीर्यों से ब्रह्मचारी के समान, और (शुक्रैः) तेजो युक्त सूर्यों से और (हिरण्यैः) सुवर्ण के बने आभूषणों से सुसज्जित ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान, (हिरण्यैः) हित और रमणीय रूपों से और (स्थिरेभिः) स्थायी (अङ्गैः) दृढ़ शरीरावयवों वा प्रकाशक गुणों से (पिपिशे) अंग प्रत्यंगों में सुशोभित बना है । (अस्य भुवनस्य) इस संसार के (ईशानात्) वशकर्त्ता महान् प्रभु, (भूरेः) सबके भरण पोषणकारी (रुद्रात्) दुष्टों के रुलाने और दुःखहारी उस परमेश्वर से (असुर्य्यम्) प्राणों में रमण करने वाला, परमानन्द स्वरूप तथा महान् विश्व सञ्चालन बल (न वा उ योषात्) कभी भी नहीं पृथक् होता । (२) इसी प्रकार (भुवनस्य ईशानात्) ईश्वरवत् राजा से (असुर्यम्) असुरों के बधयोग्य बल कभी पृथक् न हो । (३) यह

देहवान् आत्मा उत्तम वीर्यों तेजों और स्थिर अंगों से रूपवान् हो, इस (भुवनस्य) उत्पन्न देह का स्वामी प्राणों के बल से कभी वियुक्त न हो।

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति १०।१७

भा०—हे विद्वन्! (रुद्र) दुःख दूर करनेहारे एवं दुष्टों को रुलाने हारे! तू (अर्हन्) योग्य होकर ही (सायकानि) शत्रुओं का अन्त कर देने वाले शस्त्रास्त्रों को और (धन्व) धनुष आदि अस्त्रों को (बिभर्षि) धारण कर और (अर्हन्) योग्य होकर ही (निष्कं) सुवर्णादि के बने आभूषण तथा (यजतं) प्राप्त करने वा दान देने योग्य (विश्वरूपम्) सब प्रकार के पदार्थों को (बिभर्षि) धारण कर। तू (अर्हन्) योग्य होकर ही (इदं विश्वम् अभ्वम्) इस समस्त महान् राष्ट्र को (दयसे) रक्षा करने में समर्थ है। हे विद्वन्! (त्वत् ओजीयः) तेरे से अधिक पराक्रमी (न वा अस्ति) दूसरा कोई नहीं है। (२) इसी प्रकार परमेश्वर! सर्वपूजनीय, सब गुणों के योग्य होने से 'अर्हन्' है। वही (सायकानि) जगत् के अन्त करने वाले, प्रलयकारी साधनों और (धन्व) अन्तरिक्ष, या जल को वही (निष्कं) सम्पूर्ण सुख समस्त रूप को, वही (यजतं) उपास्य (विश्वरूपम्) विश्वमय विराट् रूप या 'विश्वरूप' अर्थात् जीव जगत् को (बिभर्त्ति) धारण, पालन पोषण करता है। वही इस महान् विश्व की रक्षा करता, उसपर कृपा करता, उससे अधिक बलशाली दूसरा नहीं है। इति सप्तदशो वर्गः॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः॥११॥

भा०—हे विद्वन्! तू (गर्त्तसदं) रथ पर विराजने वाले (श्रुतं) प्रसिद्ध, और ज्ञानवान् (युवानं) युवा, बलवान् (मृगं न भीमं)

सिंह के समान शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाले, (उग्रम्) घोर बलवान् , (उपहत्नु) शत्रुनाशक पुरुष की (स्तुहि) स्तुति कर, हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने वाले ! तू (जरित्रे) स्तुतिशील, विद्वान् पुरुष को सदा (मृड) सुखी कर। (ते सेनाः) तेरे सैन्य (अन्यं) दूसरे शत्रु जन को (अस्मत्) हम से दूर ही (निवपन्तु) छिन्न भिन्न करें।

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्। भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥

भा०—(कुमारः चित्) जिस प्रकार नवयुवक कुमार (वन्दमानं) बन्दना या स्तुति करने योग्य (उपयन्तं) समीप आते हुए (पितरं) पालक आचार्य पिता को (प्रति नानाम) प्रति दिन नमस्कार करता, उसके आगे झुकता है। इसी प्रकार हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले ! या हे नैष्ठिक विद्वन् ! या स्वयं रोने वाले बालकवत् जन ! तू भी (वन्दमानं) वन्दनीय, (उपयन्तम्) समीप आते हुए (भूरेः दातारं) बहुत प्रकार के ज्ञानों और अन्नादि सुख पदार्थों केदेने वाले (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक को (प्रति नानाम) आदर पूर्वक नमस्कार किया कर। (स्तुतः) प्रशंसित या उपदेश प्राप्त करके (त्वं) तू भी (गृणीषे) उपदेश कर। और (अस्मे) अपने इस सन्मुख स्थित को (भेषजा) रोगों और दुःखों के निवारक औषधों और उपायों का (रासि) प्रदान कर। अथवा—हे (रुद्र उपयन्तं त्वां अहं नानाम) दुष्टों के रुलाने वाले दुःखों के भगाने वाले वैद्य ! प्रभो ! तुझको प्रतिदिन नमस्कार करूं। (भूरेः दातारं सत्पतिं त्वां गृणीषे) बहुत सुखों के दाता तुझको स्तुति करता हूं या अपना कष्ट कहता हूं। (स्तुतः त्वं भेषजा अस्मे रासि) प्रशंसित विद्वान् तू हमें दुखों से छूटने के लिये औषध देता है।

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु। यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि॥१३॥

भा०—हे (वृष्णः) सुखों की वृष्टि करने वाले प्राणों और वायुओं के समान (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (या) जो (भेषजा) रोग निवा-राक ओषधियें (शुचीनि) अतिशुद्ध, पवित्र, (या शन्तमा) अति अधिक रोगों को शमन करने वाली, शान्तिदायक, (या मयोभु) सुख कल्याण जनक हैं (यानि) जिनको (नः पिता) हमारा परिपालक वैद्य आदि जन (मनुः) मननशील, ज्ञानवान् होकर (अवृणीत) सबसे उत्तम ग्राह्य जानकर लेता है (ता) वे (नः) हमारे और (वः) तुम्हारे लिये (शं च) शान्तिकर और (रुद्रस्य) रुलाने वाले (योः च) रोग के दूर करने वाली हों। (ता वश्मि) उनको ही मैं भी प्राप्त करना चाहूं। अथवा, (रुद्रस्य) दुःख हारी पुरुष के पास से मैं उनको प्राप्त करूं।

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ १४

भा०—(मीढ्वः) शान्ति जल से स्नान कराने वाले, मेघ के समान सुखों के वर्षक ! सेचक, और वर्धक ! तू (रुद्रस्य) रुलाने वाले दुष्ट या तीक्ष्ण सैन्य जन या दुःखकारी रोग की (हेतिः) शस्त्रास्त्र पीड़ा और आघात (वृज्याः) वर्जने योग्य पीड़ाएं और (त्वेषस्य) अति तीक्ष्ण शस्त्र तथा ज्वरादि की (मही) बड़ी भारी (दुर्मतिः) दुःख संकल्प और दुष्ट ताड़ना पीड़ा आदि (नः परिगात्) हमसे परे ही रहे। और (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के (तोकाय तनयाय च) पुत्रों और पौत्रों के लिये उक्त कष्टों को दूरकर और (मृड) सबको सुखी कर।

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—हे (बभ्रो) लोहितवर्ण ! तेजस्विन् ! वा हे जगत् के भरण पोषण करने वाले ! हे (वृषभ) सर्वश्रेष्ठ ! सुखों के वर्षक ! हे (चेकि-

तान) ज्ञानवन् ! अन्यों को ज्ञान देने वाले ! (यथा) जिस कारण तू (न हृणीषे) न किसी का कोई पदार्थ हर, न कोप या अनादर कर (न हंसि) न किसी को दण्ड, वधादि कर प्रत्युत, (नः) हमारा (हवन श्रुत्) वचन, पुकार, देन लेन व्यवहार को सुनता हुआ, और उत्तम ज्ञान का श्रवण करता हुआ, (नः बोधि) हमारे सुखादि जान, हमें ज्ञान करा। हम (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर (विदथे) ज्ञान प्राप्ति और धन प्राप्ति के संग्राम आदि काम में (बृहत् वदेम) बहुत उत्तम वचन कहें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३४]

गृत्समद ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृज्जगती २, १०, ११, १२, १३ विराड्जगती । ४, ५, ६, ७, १४ जगती । १५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

धारावरा मरुतो धृष्णवोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः) वायु गण (धारावराः) मेघ की जल धारा को आवृत करते हैं उसी प्रकार वीर और विद्वान् भी (धारा-वराः) धार अर्थात् वाणी को धारण करने वाले या वाणियों की प्राप्ति के लिये अपने अधीन 'अवर' अर्थात् नव शिष्यों को धारण करने वाले और वीर पुरुष 'धारा' स्वामी, नायक की आज्ञा के अधीन रहने वाले हों। (धृष्णु-ओजसः) प्रबल वायुओं के समान ही परपक्ष को धर्षण या पराजय करने वाले, तेज और पराक्रम वाले हों, वे (मृगा न भीमाः) सिंहों के समान भयंकर, (तविषीभिः) बलवती बुद्धियों, शक्तियों और सेनाओं सहित (अर्चिनः) सबका आदर सत्कार करने वाले (अग्नयः

न) अग्नियों के समान (शुशुचानाः) दीप्तियुक्त हों । (ऋजीषिणः) वायु जिस प्रकार जलों के सहित होते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (ऋजीषिणः) ऋजु अर्थात् धर्मानुकूल सन्मार्ग पर स्वयं चलने और अन्यों को चलाने हारे, ज्ञानजल को धारण करने वाले हों, (भृमिं धमन्तः) वायु गण जिस प्रकार मेघ को वेग से दूर ले जाते हुए (गाः अप अवृण्वत) सूर्य रश्मियों को प्रकट करते हैं उसी प्रकार विद्वान् जन भी (भृमिं) भ्रम या संशय रूप मेघ को (धमन्तः) दूर करते हुए, (गाः) नाना वाणियों को (अप अवृण्वत) प्रकट करें ।

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य१भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः । रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ २ ॥

भा०—(द्यावः) आकाश के नाना भाग (स्तृभिः न) जिस प्रकार नक्षत्रों से (चितयन्त) जगमगाते हैं उसी प्रकार वीर और विद्वान् पुरुष भी (द्यावः) प्रकाशवान् तेजस्वी होकर (स्तृभिः = अस्तृभिः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले बलों से और (स्तृभिः) आच्छादन या रक्षा करने वाले शरणप्रद उपायों से या (स्तृभिः) फैलने वाले, दूरगामी, व्यापक ज्ञान साधनों से (चितयन्त) स्वयं प्रसिद्ध हों और अन्यों को चेतावें, ज्ञानवान् करें । वे (खादिनः) उत्तम अन्न के खाने वाले, उत्तम अन्नादि भक्ष्य पदार्थों के संग्रही हों और वीर पुरुष (खादिनः) 'खाद' अर्थात् सशस्त्र सेना दल के स्वामी हों । वे (अभ्रियाः वृष्टयः नः) मेघ से उत्पन्न वृष्टियों के समान (विद्युतयन्त) विशेष दीप्ति से चमकें । (२) उसी प्रकार (रुद्रः) उपदेष्टा गुरु भी विद्वान् पुरुषों को जब (पृश्न्याः शुक्रे ऊधनि) वाणी के शुद्ध पवित्र उच्च गुरु पद पर स्थित होकर उनको (रुक्मवक्षसः अजनि) तब प्रकाशवान् हृदयवाला, ज्ञानी बना देता है, वा जिस प्रकार (रुद्रः) गर्जनकारी (वृषा) बरसता मेघ (पृश्न्याः) अन्तरिक्ष के

(शुक्रे) जलमय (ऊधनि) उच्च अन्तरिक्ष के भाग में (मरुतः रुक्मवक्षसः अजनि) वायु गण को चमकती विजुली, को धारण करने वाला बनाता है उसी प्रकार (यत्) जब (रुद्रः) रुद्र सेनापति (पृश्न्याः) पृथिवी (शुक्रे) अति दीप्तियुक्त शुद्ध पवित्र (ऊधनि) उच्च पद पर स्थित होकर (रुक्मवक्षसः) सुवर्ण पदकों को छाती पर धारण करने वाला (वः) तुम लोगों को (अजनि) करता है तब वे भी विद्युत् वाली मेघ की वर्षाओं के समान जगमगाते हैं ।

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः । हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ ३ ॥

भा०—(आजिषु) संग्राम आदि विजय, प्रतिस्पर्द्धा के कार्यों के अनन्तर जिस प्रकार (मरुतः) वायु के समान प्रबल वेग से जाने वाले सवार लोग (अश्वान् अत्यान् इव) निरन्तर वेग से चलने वाले अश्वों को (उक्षन्ते) सेंचते हैं, उनको जल से निहलाते हैं और जिस प्रकार (मरुतः) वायु गण (आजिषु) मेघों के क्षेपण आदि के कार्यों में ही (अश्वान्) व्यापक या विस्तृत देशों को (उक्षन्ते) सींचते हैं उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् पुरुष (अश्वान् उक्षन्ते) वेगवान् पशुओं और पुरुषों को सींचे उनकी वृद्धि करें और उनको पुष्ट करें । जिस प्रकार (मरुतः) वायु गण (नदस्य) गर्जते हुए मेघ के (आशुभिः कर्णैः) वेग से जाने वाले कर्ण अर्थात् अवयवों सहित (तुरयन्ते) अति वेग से चलते और मेघों को वेग से चलाते हैं या वायुगण (नदस्य) नदी के बीच (आशु-भिः कर्णैः तुरयन्ते) वेगवान् साधन पाल, पतवार आदि से चलाते हैं उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् लोग नदी के बीच और समृद्धि से पूर्ण राष्ट्र के बीच (आशुभिः कर्णैः) वेगवान् साधनों, यानों, और रथों से तथा वेगवान् यन्त्रों से (तुरयन्ते) वेग से जाते और नाव तथा मशीनों को वेग से

चलाते हैं। (मरुतः) वायु गण जिस प्रकार (हिरण्यशिप्राः) सुवर्ण के समान चमकने वाले तेज से युक्त होकर (दविध्वतः) मेघों और वनों को कंपित करते हुए (पृषतीभिः) वर्षण करने वाली मेघमालाओं से (पृक्षं) सेचन करने योग्य अन्न से युक्त क्षेत्र या देश को प्राप्त होते उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान, व्यापारी जनो ! और हे (मरुतः) शत्रु गण को मारने वाले वीर पुरुषो ! आप लोग भी (हिरण्य-शिप्राः) हित-कारी और रमणीय एवं सुवर्ण के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख या वाणी और ज्ञान वाले, एवं हिरण्य अर्थात् सुवर्ण या लोहमय शिरस्त्राण, शस्त्रास्त्र पहन कर (दविध्वतः) शत्रुओं को कंपाते हुए (समन्यवः) क्रोध से पूर्ण वीर जन और ज्ञान से युक्त विद्वान् होकर (पृषतीभिः) शस्त्रवर्षी सेनाओं और हृष्ट पुष्ट अश्वाओं, या वायु के समान वेग वाली धारा गतियों से (पृक्षम्) धाराओं से जल सेचनें योग्य क्षेत्र के समान शस्त्र वर्षण योग्य पर-राष्ट्र पर (याथ) प्रयाण करो।

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (जीरदानवः) जीवन देने वाले वायु गण (पृक्षे विश्वा भुवना ववक्षिरे) अन्न या जल वृष्टि के आधार पर समस्त लोकों को धारण करते हैं और (मित्राय वा सदम् आ ववक्षिरे) सब के स्नेह युक्त मित्र के समान प्राणप्रिय के स्थान या पद को धारण करते हैं। उसी प्रकार (जीर-दानवः) अन्यों को जीवन देने वाले, सबके प्रा-णोपकारक विद्वान् पुरुष या स्वयं जीवन धारण करने वाले जीव गण (पृक्षे) परस्पर सम्पर्क, प्रेम और अन्न जल वृष्टि के आश्रय पर ही (ता विश्वा भुवना) उन नाना प्रकार के समस्त भुवनों, लोकों और प्राणियों को (ववक्षिरे) धारण करते, सबका भार अपने पर लेते हैं। (वा) और (मित्राय) स्नेही मित्र के (सदम्) स्थान को (आ ववक्षिरे)

सदा धारण करते हैं, वे सबके मित्र बने रहते हैं। वे (पृषदश्वासः) स्थूल हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, (अनवभ्र-राधसः) अक्षय, नाशरहित धन सम्पदा वाले (ऋजिप्यासः) ऋजु अर्थात् धर्मानुकूल मार्ग को प्राप्त होते हुए, उसकी वृद्धि करते हुए, (वयुनेषु) सब ज्ञानों में (धूर्षदः न) धुरन्धर गाड़ी के भार उठाने वाले वृषभों के समान बलवान् हों। (२) वायुगण के पक्ष में—वर्षणशील मेघ ही उनके अश्व हैं इससे वे 'पृषदश्व' हैं। उनका बल कभी नाश न होने से 'अनवभ्र-राधस्' हैं, सरल सीधे मार्ग से जाने से 'ऋजिप्य' है। 'वयुन' अर्थात् गतिशील चेतन पदार्थों में सबसे मुख्य धारक प्राण रूप से विराजते हैं।

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः। आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (भ्राजत्-ऋष्टयः) चम चमाते शस्त्रों वाले वीरो! और देदीप्यमान ज्ञान प्रकाश सम्यग् दृष्टि वाले से युक्त विद्वानो! हे (समन्यवः) क्रोध से युक्त वीर और हे ज्ञान और स्तम्भन बल से युक्त ज्ञानवान् पुरुषो! हे (मरुतः) शत्रु को मारने वाले वीरो और वायु वेग से जाने वाले विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार वायुगण (भ्राजदृष्टयः) चमचमाते बिजुली से युक्त होकर (रप्शदूधभिः) गर्जते अन्तरिक्षों वाली, (इन्धन्वभिः) प्रकाश करने वाले (धेनुभिः) मध्यम वाणी, मेघस्थ विजुलियों सहित या प्रत्यक्ष जल धारण करने वाले, सब स्थावर जंगम को रस पान कराने वाले मेघों सहित (अध्वस्मभिः पथिभिः) अविनाशी आकाश मार्गों से जाते हैं उसी प्रकार (रप्शद्-उधभिः) बड़े २ दूध से भरे थानों वाली (धेनुभिः) गौओं के समान अपने (रप्शदूधभिः) व्यक्त उपदेश करने वाली, मेघ के समान उदार, गंभीर एवं ज्ञान रस से पूर्ण (धेनुभिः) वाणियों से युक्त होकर (अध्वस्मभिः) विनाशरहित, भय संकट आदि से शून्य (पथिभिः)

मार्गों से (हंसासः न) आकाश से जाने वाले हंसों के समान बन्धनमुक्त परम हंस (मधोः मदाय) अन्नादि मधुर पदार्थों के हर्षकारी उपभोग प्राप्त करने और परम मधुर आनन्दमय प्रभु के परमानन्द प्राप्ति के लिये (स्वसराणि) रात दिन, निरन्तर या (स्व-सराणि) अपने गन्तव्य स्थानों, परलोकों या पदों को (गन्तन) प्राप्त होवो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन । अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्त्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (समन्यवः मरुतः) समान चित्त और उत्तम ज्ञान और क्रोध रोष से युक्त विद्वान् ज्ञानवान् और वीर पुरुषो ! जिस प्रकार (मरुतः ऊधनि ब्रह्माणि) वायु गण ही मेघ के आधार पर अन्नों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी (ऊधनि नः) मेघ के समान निरन्तर ज्ञान प्रदान करने वाले विद्वान् पुरुष के आश्रय होकर (ब्रह्माणि कर्त्त) उत्तम ज्ञान और धनैश्वर्यों को उत्पन्न करो । और (शंसः न) स्तुति वचनों के समान (नराशंसः) मनुष्यों को उपदेश और शासन करने वाले होकर (सवनानि) ऐश्वर्यों और अभिषेकयोग्य पदों को (गन्तन) प्राप्त होवो । और हे वीर पुरुषो ! जिस प्रकार (अश्वाम् इव) अश्वों की सेना को या राष्ट्र की व्यापक शक्ति को (पिप्यत) बढ़ाओ, उसी प्रकार (ऊधनि धेनुम्) दूध देने वाले थन को लक्ष्य कर अर्थात् बहुत अधिक दूध पाने के लिये 'धेनु' अर्थात् गो सम्पदा को बढ़ाओ । हे विद्वान् पुरुषो ! तुम लोग (ऊधनि धेनुम् पिप्यत) उषा काल या रात्रि के पिछले भाग में अपनी ज्ञान रस देने वाली वेद वाणी की वृद्धि करो, उसको मनन और पाठ करो । हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! आप लोग (जरित्रे) स्तुति या उपदेश करने वाले विद्वान् और शत्रु की हानि करने वाले वीर पुरुष की वृद्धि के लिये (वाजपेशसं धियं कर्त्त)

विज्ञान से युक्त रूप वाली बुद्धि अन्न और सुवर्णादि से युक्त धारण शक्ति को उत्पन्न करो उसे बढ़ाओ। (२) वायु गण के पक्ष में—त्रे मरुद् गण (ब्रह्माणि) अन्नों को वृष्टि द्वारा उत्पन्न करते हैं, तीनों कालों में चलते हैं, सूर्य की व्यापक शक्ति के समान (ऊधनि धेनुं पिप्यत) भूमि को मेघ के बल पर तृप्त करते, जरिता सूर्य के अन्न बल देने वाली धारण शक्ति को प्रकट करते हैं।

तं नो॑ दात मरुतो वा॒जिनं॒ रथ॑ आ॒पा॒नं ब्रह्म॑ चि॒तय॑द्दि॒वेदि॑वे।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ वृ॒जने॑षु का॒रवे॑ स॒निं मे॒धामरि॑ष्टं दु॒ष्टरं॒ सहः॑॥७॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो और विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (रथे वाजिनं) रथ में बलवान् अश्व के समान (रथे) वेग में, रमणीय कार्य में (वाजिनं) विज्ञानवान् बलवान् (ते) उस उत्तम पुरुष को (दात) प्रदान करो और (दिवे दिवे) दिन प्रति दिन (आपानं) व्यापक, विस्तृत, (ब्रह्म) ब्रह्म ज्ञान, और बृहत् धनैश्वर्य का (चितयत्) हमें ज्ञान करावे, हे विद्वान् पुरुषो! (स्तोतृभ्यः) विद्वान् स्तुतिशील पुरुषों को (इषं) इच्छानुसार धन, अन्नादि (दात) प्रदान करो। (वृजनेषु) बलयुक्त कर्मों में या संग्रामों में, या जाने योग्य मार्गों में (कारवे) कर्म करने वाले शिल्पी या कर्त्ता पुरुष को (सनिं) उत्तम वेतन (मेधाम्) उत्तम बुद्धि और (अरिष्टम्) हिंसारहित, अभययुक्त सुख, और (दुस्तरं सहः) परायों से न लांघने योग्य बल (दात) प्रदान करो।

यद्यु॒ञ्जते॑ म॒रुतो॑ रु॒क्मव॑क्षसो॒ऽश्वा॒न्रथे॑षु॒ भग॒ आ सु॒दान॑वः।
धे॒नुर्न शिश्वे॒ स्वस॑रेषु पिन्वते॒ जना॑य रा॒तह॑विषे म॒हीमिष॑म्॥८॥

भा०—जिस प्रकार (रुक्मवक्षसः मरुतः) दीप्तिमान् विद्युत को धारण करने वाले वायुगण (सुदानवः) उत्तम जल देने वाले होकर (रातहविषे जनाय महीम् इषम् पिन्वते) क्षेत्र में अन्न डालने वाले कृषक जन के लिये बड़े वृष्टि का सेचन करते और बहुत अन्न की वृद्धि करते हैं

उसी प्रकार (रुक्मवक्षसः) सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित वक्षःस्थल वाले (मरुतः) वायु के समान वेग वाले वीर तथा उत्तम सुवर्ण के समान सुन्दर वक्षःस्थल अर्थात् उत्तम हृदय वाले विद्वान् (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुष (भगे) ऐश्वर्य होने पर और ऐश्वर्य की ही प्राप्ति के लिये (रथेषु) रथो में (अश्वान्) वेगवान् साधनों, अश्वों को (यत्) जब (युञ्जते) जोड़ते हैं तब वे (रातहविषे) देने योग्य अन्नादि कर को देने वाले (जनाय) प्रजा जनको बढ़ाने के लिये (शिश्वे न धेनुः) बछड़े को दुधार गाय के समान (महीम् इषम्) बड़ी भारी पृथ्वी को मेघों के समान उनकी इच्छानुसार अन्नादि बड़ी सम्पदा को (स्वसरेषु) सब दिनों या उनके घरों में ही (पिन्वते) सेंचते हैं, बढ़ाते हैं ।

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्त ना वधः ॥९

भा०—हे (मरुतः) वीर और विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (वृकताति) वज्र के समान कठोर, भेड़िये या चोर के समान प्रजाघातक होकर (नः) हम प्रजाओं को (रिपुः) चोर या शत्रु के समान (दधे) धारण करता, या हमें पकड़े या दबाये रखता है हे (वसवः) राष्ट्र में बसे और राष्ट्र को बसाने वाले, 'वसु' नाम विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (रिषः) हिंसक राजा या चोर पुरुष से (रक्षत) बचाओ । और (तम् अभि) उस पर (तपुषा) संतापजनक क्रोध आदि या (चक्रिया) सैन्य चक्र से (वर्तयत) चढ़ाई करो । हे (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वालो ! तुम लोग (अशसः) उस प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष के (वधः) हनन करने के योग्य साधनों और घातकों को (अव हन्तन) मार गिराओ । अथवा—(अ-शसः) स्वयं अन्यों को न मारने वाले शस्त्ररहित के (वधः) मारने वालों को मार गिराओ । अर्थात् निःशस्त्रों की रक्षा और अत्याचारी का नाश करो ।

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः । यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् और विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह अद्भुत (चित्रम्) विचित्र, आश्चर्यजनक (याम) नियम-व्यवस्थापन का कार्य और शत्रु पर चढ़ाई का प्रयाण मार्ग (चेकिते) जाना जाता है (यत्) जिससे कि जिस प्रकार (आपयः पृश्न्याः ऊधः दुहुः) मेघों को लाने वाले मेघ आकाश या सूर्य के जल-भण्डार को दुहते हैं उसी प्रकार आप्त बन्धुवर्ग, और मित्रवर्ग (पृश्न्याः) पृथिवी के (ऊधः) जलादि के आश्रय स्थानों को (ऊधः) गौ के स्तनमण्डल के समान दोहते हैं । और (यत्) जो आपका अद्भुत कर्म स्वभावतः (नवमानस्य) स्तुतिशील विद्वान् पुरुष के (निदे त्रितं) निन्दा करने वाले का विनाशक होता है और हे (अदाभ्याः) अहिंसनीय, बलवान् (रुद्रियाः) दुष्टों के रुलाने के पदों पर स्थित पुरुषो ! आप लोगों का वह अद्भुत कार्य ही (जुरताम्) अपनी आयु को क्रम से व्यतीत करने वाले जीर्ण प्राणियों के (जराय) स्वयं आयु पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त होने के लिये भी (त्रितं) तीनों अवस्था बाल, यौवन, वार्धक्य या तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इनसे पार पहुंचा देने वाला होता है । विद्वान् समाज की ऐसी व्यवस्था करें कि विद्वानों के निन्दक दण्ड पावें और प्रजा के वृद्ध जन सुखपूर्वक चारों आश्रमों का भोग कर सकें । सभी प्रजाजन परस्पर बन्धु होकर भूमि के सुखों को प्राप्त करें । इति विंशो वर्गः ॥

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे । हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ११

भा०—हे (मरुतः) वीरो और विद्वान् पुरुषो ! (एवयाव्नः)

ज्ञानपूर्वक गमन करने वाले या ज्ञानों को प्राप्त करने वाले (विष्णोः) व्यापक शक्ति वाले (एपस्य) सबके इच्छा के पात्र, सबके संचालक, अर्थ और यश के चाहने वाले, प्रजाप्रिय राजा के (प्रभृथे) उत्तम रीति से भरण-पोषण और प्रजापालन के कार्य में हम लोग (महः) बड़े, अधिक सामर्थ्य वाले, (हिरण्यवर्णान्) सुवर्ण के समान वर्ण वाले, उज्ज्वल, कान्तिमान् स्वरूप वाले, या हित और रमणीय वर्णों या शब्दों का उच्चारण करने वाले, (यतस्रुचः) यज्ञपात्रों को नियम में रखने वाले ऋत्विजों के समान राज्य के प्रजाजनों के और अपने प्राणों और वीर्य आदि को नियम में रखने और पालन करनेवाले (वः तान्) उन आप लोगों को (ककुहान्) महान्, सर्वश्रेष्ठ (हवामहे) स्वीकार करें। और (ब्रह्मण्यन्तः) अन्न की आकांक्षा करने वाले किसान जिस प्रकार व्यापक मेघ के लाने वाले मरुतों को चाहते हैं और उससे उत्तम जल और अन्न चाहते हैं और जिस प्रकार (ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राधः) ब्रह्म ज्ञान के इच्छुक जन उत्तम आराधनीय ज्ञान प्रवचन चाहते और उसके लिये उत्तम विद्वानों को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हम लोग भी (ब्रह्मण्यन्तः) बृहत् ऐश्वर्य की चाहना करते हुए (शंस्यं) प्रशंसनीय (राधः) धन और (शंस्यं राधः) उत्तम कार्यसाधक बल (ईमहे) चाहते हैं।

ते दशंग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गो अर्णसा॥१२

भा०—(उषाः न) जिस प्रकार उषाएं (रामीः) रात्रियों को (अरुणैः) उज्ज्वल प्रकाशों से (अप ऊर्णुते) दूर कर देती है उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष (शुचता) अति देदीप्यमान्, पवित्रकारक (महः ज्योतिषा) बड़े भारी ज्ञानप्रकाश से युक्त (गो-अर्णसा) किरणों और जलों से युक्त सूर्य और मेघ के समान पावन और शान्तिदायक (गो-

अर्णसा) वेदवाणीमय ज्ञान जल से (नः रामीः) हमारी अन्धकार मय रमण विलास आदि युक्त भोगमय अज्ञान रात्रियों को (अप ऊर्णुवते) दूर करते हैं (ते) वे (दशग्वाः) दश इन्द्रियों को वश करने हारे, (प्रथमाः) उच्च कोटि के विद्वान् पुरुष (यज्ञम् ऊहिरे) यज्ञ, उपासना करते और उपास्य परमेश्वर का मननद्वारा साक्षात् ज्ञान करते हैं। (ते) वे (उषसः व्युष्टिषु) उषाकाल के प्रादुर्भावों के अवसरों और विशेष प्रज्ञा के उदय होने के कालों में (नः) हमें (हिन्वन्तु) उत्तम रीति से बढ़ावें, अपना अनुभव हमें बतलावें।

ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् १३

भा०—(रुद्राः) घोर गर्जन करने वाले मेघ या प्रबल वायु गण जिस प्रकार (क्षोणीभिः अरुणेभिः अंजिभिः न) शब्दकारिणी विद्युतों और अरुण अर्थात् सब तरफ चमकने वाले प्रकाशों से (ऋतस्य सदनेषु) जल के स्थानों, मेघों में (वावृधुः) बल प्रकट करते हैं और (सु-चन्द्रं सुपेशसं वर्णं दधिरे) सुखपूर्वक, आल्हादक, उत्तम रूपवान् वरण करने योग्य दृश्य या अन्न आदि सम्पदा को पुष्ट करते और प्रदान करते हैं उसी प्रकार (रुद्राः) उपदेश देने वाले विद्वान् गण और दुष्टों को रुलाने और प्रजाओं को सद्-व्यवस्था द्वारा पाप में गिरने से रोकने वाले शासक और वीर जन (क्षोणीभिः) शब्द करने वाली वाणियों और आज्ञाओं से या भूमियों, और उसमें रहने वाली प्रजाओं सहित और (अरुणेभिः अञ्जिभिः न) प्रकाशों के स्पष्ट रूप, पद आदि दर्शाने वाले नाना प्रकार के उज्ज्वल चिन्हों से और उत्तम गुणों से (ऋतस्य सदनेषु) वेद ज्ञान, सत्य, धर्म-व्यवस्था और राष्ट्र और ऐश्वर्य के सदन अर्थात् स्थानों, विद्या के आश्रमों, राजसभाओं और शासक पदों पर (वावृधुः) वृद्धि को प्राप्त हों। वे (अत्येन पाजसा) बलवान् अश्व सैन्य से, या सबसे बढ़े

चढ़े सर्वातिशायी बल और ज्ञान से (निमेघमाना) मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञान की और शत्रुओं पर शरों की और प्रजाओं पर उत्तम ऐश्वर्यों और सत्य वचनों की वर्षा करते हुए (सु-चन्द्रं) उत्तम, सबको आल्हादजनक, सुवर्ण रजतादि धातुमय, (सुपेशसम्) उत्तम रूप से युक्त सुवर्णादि (वर्णं) वरण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम सुरूप, वर्ण शोभा, और पद को (दधिरे) धारण करें।

ताँ इ॒या॒नो महि॒ वरू॑थमू॒तय॒ उप॒ घेदे॒ना नम॑सा गृणीमसि।
त्रि॒तो न यान्पञ्च॒ होतॄ॑न॒भिष्ट॑य आव॒वर्त॒दव॑राञ्च॒क्रियाव॑से १४

भा०—(त्रितः न) जिस प्रकार शरीर, वाणी, और मन तीनों को वश करने वाला संयमी, या तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त यजमान पुरुष अपने काम्य यज्ञ करने के लिये (पञ्च होतॄन् आववर्त्तत्) पांच होता आदि ऋत्विजों को बैठाता है और (अवरान्) अपने अभि मुख बैठे हुओं को (चक्रिया) यज्ञ रूप रथ के चक्र के समान (अवसे) अपनी रक्षा और यज्ञकर्म-निर्वाह के लिये (आववर्त्तत्) उनको सञ्चालित या प्रेरित करता है, और जिस प्रकार (त्रितः न) तीनों बन्धनों से युक्त, तीनों पर संयम करने वाला पुरुष (पञ्च होतॄन्) यज्ञ के पांच होताओं के समान ही शरीर को धारण करने वाले पांच प्राणों को (अभीष्टये) अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने और (अवसे) रक्षण, गति, व्यापार आदि करने के लिये (अवरान्) अपने अधीन प्राणों को करके (चक्रिया) रथ या यन्त्र में लगे चक्रों के समान यथेष्ट (आववर्त्तत्) घुमाता और चलाता है उसी प्रकार (त्रितः) धन, सैन्य और मन्त्र तीनों प्रकार के बलों को प्राप्त होकर (यान्) जिन (पञ्च) पांच (अवरान्) अपने से छोटे पद पर स्थित, अपने अधीन (होतॄन्) राज्यपदों के धारण करने वाले अधिकारियों को (अवसे) रक्षादि कार्य के लिये (चक्रिया) अपने चारों ओर स्थित चक्रव्यूह या सैन्यमण्डल

के द्वारा (आववर्तत्) सञ्चालित करे वह (तान् इयानः) उनको प्राप्त होता हुआ ही (ऊतये) रक्षा करने के लिये (महि वरूथम्) बड़ा भारी श्रेष्ठ राज्य, गृह और सैन्य को (आववर्त्तत्) सञ्चालित करता और प्राप्त करता है। हम प्रजा लोग भी (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (एना) इस प्रकार के (नमसा) शत्रु को नमाने वाले बल के निमित्त ही उसकी (उप गृणीमसि) विनय से स्तुति प्रार्थना करें कि वह हमारी उस बल से रक्षा करे। (२) अध्यात्म में—देह के पांच होता प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान हैं। संयमी उनको वश करके यन्त्रस्थ चक्रों के समान सञ्चालित करे। उनको वश करके ही बड़ा सुख पाता है। उस प्रभु से ज्ञान प्राप्ति के लिये सादर प्रार्थना करे।

यया॑ र॒ध्रं पा॒रय॒थात्यंहो॒ यया॑ नि॒दो मु॒ञ्चथ॑ वन्दि॒तार॑म्।
अ॒र्वाची॒ सा म॑रुतो॒ या व॑ ऊ॒तिरो षु वा॒श्रेव॑ सुम॒तिर्जि॑गातु॥१५॥२१॥

भा०—हे (मरुतः) हे विद्वान् लोगो! (या वः ऊतिः) जो आप लोगों की रक्षणशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति और सबको तृप्त और प्रसन्न करने की शक्ति है (यया) जिससे (रध्रं) साधक और निर्धन आराधक या उपासक तक को भी (अंहः अति पारयथ) पाप से पार कर देने में समर्थ होते हो और (यया) जिससे (निदः) समस्त निन्दनीय कार्यों को (मुञ्चथ) दूर करते या (निदः) निन्दक जनसे (वन्दितारं) स्तुतिकारी, प्रार्थी पुरुष को (मुञ्चथ) मुक्त करते हो, अर्थात् उसको निन्दकों के जाल में नहीं पड़ने देते (सा) वह आप लोगों की धन, ज्ञान, और मन्त्रमयी पालनकारिणी शक्ति (अर्वाची) अश्वादि सैन्यों को प्राप्त होकर और (सुमतिः) उत्तम ज्ञानमयी प्रज्ञा (वाश्रा इव) उत्तम वाणी या बछड़े के प्रति हंभारती गौ के समान प्रेमवती होकर (सु ओ जिगातु) हमें भली प्रकार सभी कार्यों में प्राप्त हो! इत्येकविंशो वर्गः॥

[३५]

गृत्समद ऋषिः॥ अपान्नपाद्देवता॥ छन्दः—१, ४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् । २, ३, ८ भुरिक् पङ्क्तिः । स्वराट् पङ्क्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

उपे॑मसृक्षि वाज॒युर्व॑च॒स्यां चनो॑ दधीत ना॒द्यो गिरो॑ मे ।
अ॒पां नपा॑दाशु॒हेमा॑ कु॒वित्स सु॒पेश॑सस्करति॒ जोषि॑ष॒द्धि ॥ १ ॥

भा०—(वाजयुः) जो पुरुष अन्न को प्राप्त करना चाहता है वह जिस प्रकार (वचस्याम् ईम् च उप असृक्षि) जल को उत्पन्न और प्राप्त करने की क्रियाको करता और (ईम्) और जलको (उप असर्जि) उपाय द्वारा प्राप्त करता है और वह पुरुष (नाद्यः) नदी के जल को वश करके ही (चनः-दधीत) अन्न को पुष्ट करता और प्राप्त करता है । उसी प्रकार (वाजयुः) ज्ञान और बल की इच्छा करने वाला पुरुष (वचस्यां) वचन, वेदवाणी, और गुरु प्रवचन के योग्य अध्ययन अध्यापन और ऊहापोह आदि क्रिया का (उप असृक्षि) अभ्यास करे। और वह (नाद्यः) उपदेष्टा करने वाले५ विद्या सम्पन्न गुरु का प्रिय हितैषी होकर (मे) मुझ उपदेशक, गुरु या परमेश्वर की (गिरः) वेद वाणियों के (चनः) उपदेश को (दधीत) धारण करे । (अपां नपात्) जिस प्रकार अन्नार्थी कृषक जलों को नहीं गिरने देता हुआ (आशुहेमा) शीघ्र क्रिया करता हुआ (कुवित्) बहुत वारों में (सुपेशसः करत्) अन्नादि की कृषि को और उत्तम बना लेता है, (जोषिषत् हि) उसका सेवन भी कर लेता है । उसी प्रकार (अपां नपात्) अपने प्राणों और वीर्यों को न पतित होने देने वाला वीर्यरक्षक ब्रह्मचारी होकर (आशुहेमा) शीघ्र ही ज्ञान और बल की वृद्धि करता हुआ (कुवित्) बहुत वारों में (सुपेशसः) उत्तम ज्ञान, शारीरीक बल (करति) प्राप्त करता है और (जोषिषत् हि) उसका वह उत्तम रीति से सेवन भी करता है ।

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥

भा०—(अर्यः) समस्त संसार का चलाने वाला, उसमें व्यापक, और उस का स्वामी परमेश्वर (अपां नपात्) प्राणों के बीच आत्मा के समान नाश को न प्राप्त होने वाला और (अपां नपात्) जलों के बीच पादरहित नाव के समान सबको पार उतारने और डूबने से बचाने वाला, सर्वाधार, परमेश्वर (असुर्यस्य) प्राणों में रमण करने वाले जीवों के हितकारी प्राण के (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (विश्वानि) समस्त (भुवना) उत्पन्न होने वाले लोकों और प्राणियों और संसार के समस्त पदार्थों को (जजान) उत्पन्न करता है, वह ही (अस्य) इस महान् प्राण बल को (कुवित्) बहुत रूपों में (वेदत्) जानता, धारता और वश करता है । (अस्मै) उसी परमेश्वर के वर्णन करने के लिये हम लोग (इमं) इस अपने (हृदः) हृदय में स्थित (सुतष्टं) सुख जनक और (सुतष्टं) उत्तम रीति से सु-विचारित (मन्त्रं) विचार को (वोचेम) वाणी द्वारा प्रकट करें ।

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अन्याः) कुछ नदियां (संयन्ति) एक साथ मिलकर चलती हैं । और (अन्याः उपयन्ति) दूसरी नदियां भी अकेली ही जा मिलती हैं और वे सब मिलकर (समानं ऊर्वं) एक समान महान् समुद्र को (पृणन्ति) पूरती हैं और (परि तस्थुः) सब उसके चारों ओर से नदियें आ मिलतीं और चारों ओर जुड़ी रहती हैं । उसी प्रकार (अन्याः नद्यः) कुछ प्रार्थना और स्तुतिशील प्रजाएं (संयन्ति) एक साथ मिलकर प्रभु की उपासना करती हैं और (अन्याः उपयन्ति) दूसरी श्रद्धायुक्त प्रजाएं भी उनके समीप आतीं और सब मिलकर (ऊर्वं)

उस दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को (पृणन्ति) स्तुतियों से पूर्ण करती हैं, उसकी महिमा बढ़ाती हैं। (तम् उ) उस (शुचिं) अति पवित्र (दीदिवांसम्) देदीप्यमान (अपां नपातम्) प्रकृति के परमाणुओं, लोकों और प्रजाओं के बीच स्वयं नाश न होने और उनको भी नाश न होने देने वाले उनके स्वामी परमेश्वर को (शुचयः) शुद्ध पवित्र चित्त होकर (आपः) सब उसको प्राप्त हुई जीव प्रजाएं (परितस्थुः) उसके आश्रय पर स्थित हों, उसकी उपासना करें। (२) जिस प्रकार नदियां परस्पर मिलकर समुद्र को प्राप्त होती हैं, और जिस प्रकार (आपः अपां नपातं) जल मेघ को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (नद्यः) गुणों से समृद्ध स्त्रियां (समानं) अपने गुणों में समान, तुल्य वीर्य, तुल्य विद्यावान्, अनुरूप (ऊर्वं) पालक पति को (पृणन्ति) पूर्ण करें। पुरुष स्वयं आधा है स्त्रियां मिलकर उसको पूर्ण करती हैं। स्त्रियां दो प्रकार से प्राप्त होती हैं (१) (संयन्ति अन्याः) कुछ स्त्रियां स्वयं इच्छापूर्वक संगत हो जाती हैं (अन्याः उपयन्ति) दूसरी स्त्रियां पिता आदि द्वारा पति को प्राप्त होती हैं। दोनों दशाओं में भी वे (समानं) मान आदर सहित, एवं समान कोटि के विद्या बल गुणों से अनुरूप को ही वे प्राप्त हों। पुरुष भी शुचि, अर्थात् पवित्र, धर्मात्मा, ईमानदार (दीदिवांसं) उज्ज्वल रूप यश वाला (अपां नपातम्) वीर्यों और प्राणों को नाश न करने वाला, ब्रह्मचारी, और 'अपः' अर्थात् ज्ञानों का पालक हो। ऐसे पुरुष को ही स्त्रियां (परि तस्थुः) सब प्रकार से अपना आश्रय बनाया करें।

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ४

भा०—(मर्मृज्यमानाः आपः) अति स्वच्छ, शुद्ध जलधाराएं जिस प्रकार विनीत भाव से मेघ में स्थित विद्युत् को प्राप्त होती हैं और वह

विद्युत् रूप अग्नि (अनिध्मः) काष्ठों के विना भी, स्वयं प्रकाशमान (घृत-निर्णिक्) दीप्तियुक्त स्वरूप वाला, या जल को बरसाने वाला होकर (शिक्वभिः शुक्रेभिः सह दीदाय) सेचन करने वाले जलों सहित चमकता है उसी प्रकार (आपः) आप्त या पति को प्राप्त करने वाली (अस्मेराः) गर्वरहित, विनयशील, होकर भी (मर्मृज्यमानाः) अच्छी प्रकार अपने देह पर अलंकार धारण करती हुई और रजोधर्मादि के अनन्तर स्नानादि से अच्छी प्रकार शुद्ध स्वच्छ होकर स्त्रियां (तं) उस अपने वृत (युवानं) जवान, बलवान् पुरुष को (परियन्ति) प्राप्त हों। (सः) वह (अप्सु घृतनिर्णिक्) जलों में तेजस्वी विद्युत् अग्नि के समान स्वयं (अप्सु) जल-मय प्रकृति वाली दाराओं में (घृतनिर्णिक्) सेचन करने योग्य वीर्य को पुष्ट करने हारा, परिपक्व-वीर्यवान् पुरुष स्वयं (शिक्वभिः) सेचन करने योग्य (शुक्रेभिः) शुद्ध वीर्यों सहित (अनिध्मः) विना कित्रिम उपाय के ही स्वभाव से तेजस्वी, कान्तिमान् होकर (अस्मे) हमारे बीच (रेवत्) ऐश्वर्य युक्त होकर (दीदाय) चमके और हमें भी उज्ज्वल करे।

अ॒स्मै ति॒स्रो अ॑व्य॒थ्याय॒ नारी॑र्दे॒वाय॑ दे॒वीर्दि॑धिष॒न्त्यन्न॑म् ।
कृता॑ इ॒वोप॒ हि प्र॑स॒र्स्रे अ॒प्सु स पी॒यूषं॑ धयति पूर्व॒सूना॑म् ॥५॥२२॥

भा०—(अस्मै) उस (अव्यथ्याय) पीड़ा न देने योग्य, कठोर वचन और अपमान आदि न करने योग्य एवं स्वयं भी स्त्रियों को पीड़ा न देने वाले (देवाय) कामना योग्य पुरुष के लिये, या (अव्यथ्याय देवाय) व्यथा, देह और चित्त को पीड़ा और संताप न देने के लिये और चित्त और देह के संताप और पीड़ा को दूर करने के लिये उपयोगी (देवाय) काम्य सुख को प्राप्त करने के लिये (तिस्रः देवीः) तीनों प्रकार की कामनावती, पुरुष एवं संतान को चाहने वाली (नारीः) नारियां (अन्नं दिधिषन्ति) अन्न अर्थात् उपभोग्य पदार्थों को धारण करें, वे (कृताः इव) सन्तानार्थिनी स्त्रियां भी विवाहित स्त्रियों के समान

ही (उप प्रसर्स्रे) समान गुण के पुरुषों को प्राप्त हों। इस प्रकार (सः) वह उत्पन्न सन्तान (पूर्वसूनाम्) पूर्व सन्तान उत्पन्न करने वाली माताओं का भी (पीयूषं) पुष्टिकारक दुग्ध (धयति) पान कर सकता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥

भा०—(अत्र) इस गृहस्थ व्यवहार में या इन पूर्वोक्त दाराओं में ही (अस्य) इस (अश्वस्य) वीर्य सेचन करने में समर्थ बलवान् पुरुष का स्वयं (जनिम) जन्म होता है और उसको ही (स्वः) उत्तम सुख प्राप्त होता है। हे विद्वान् पुरुष ! तू (द्रुहः) द्रोह करने वाले (रिषः) हिंसक पुरुष से (सम्पृचः) सत्संग करने योग्य (सूरीन्) उत्तम विद्वान् पुरुषों को (पाहि) बचा। (पूर्षु) पुरियों या उत्तम पालक नगरियों या किलों में राजा के समान तू भी (पूर्षु) पालन और अपने को पूर्ण करने वाली (आमासु) गृहस्वरूप वा सहचारिणी दाराओं में (परः) तू सर्वोत्कृष्ट पालक होकर ही रह। क्योंकि (अप्रमृष्यं) जिसको शत्रुजन सहन न करसकें ऐसे अधिक बलशाली पुरुष को (अरातयः) शत्रु भी (न विनशन्) नाश नहीं करते, वे उस तक पहुंच नहीं पाते, (न अनृतानि) और न असत्याचरण और असत्यभाषणादि बुरे कार्य ही उस तक पहुंचते हैं, वह सब उससे दूर रहते हैं।

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥७॥

भा०—(यस्य) जिसके (स्वे दमे) अपने घर में (सुदुघा) उत्तम दूध दोहने योग्य (धेनुः) गौ हो और उसके समान ही (यस्य स्वे दमे) जिसके अपने दमन या संयम में (धेनुः) सुशील गौ के समान अपनी वाणी और स्त्री (सुदुघा) उत्तम आनन्द से पूर्ण करने वाली हो वह (स्व-

धां) अन्न, गोदुग्ध और अपने धारण पोषण योग्य ऐश्वर्य तथा आत्म-शान्ति को (पीपाय) जल, अन्न या दूध के समान ही बढ़ाता और उप-भोग करता है और (सुभु) उत्तम, बलकारक तथा उत्तम पाक आदि संस्कारों से संस्कृत (अन्नं) अन्न और कर्म फल का (अत्ति) भोग करता है । (सः) वह (अपां) प्राणों का (नपात्) नाश न करने वाला पुरुष तथा जीव (अप्सु अन्तः) प्राणों के बीच (ऊर्जयन्) बल की वृद्धि करता हुआ (विधते) विशेष सेवा कार्य करने वाले (वसुदे-याय) वास योग्य धन देने योग्य भृत्यादि के लिये भी (वि भाति) विशेष रूप से अच्छा प्रतीत होता है, उनको भी प्रिय मालूम होता है ।

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्त्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥८॥

भा०—(अप्सु ऋतावा) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार जलवान् मेघ या विद्युत् (उर्विया विभाति) बहुत प्रकाश से चमकता है, (अन्या भु-वनानि अस्य वया इत्) सब उत्पन्न होने वाले प्राणी, अन्न, वनस्पति आदि इसकी ही शाखाएं हैं, वे (प्रजाभिः वीरुधः च जायन्ते) सन्तति प्रसन्त-तियों द्वारा लताओं के समान ही विविध रूपों में बीजों द्वारा उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार (यः) जो गृहस्थ गृहपति पुरुष (अप्सु) गृहस्थ धर्म से प्राप्त हुई दाराओं में (ऋतावा) सत्य ज्ञान, यज्ञ और ऐश्वर्य और वीर्य से युक्त (अजस्रः) अविनष्ट होकर (दैव्येन) विद्वानों से उपदेश किये या कामना करने योग्य (शुचिना) पवित्र कर्त्तव्य और तेजादि से (उ-र्विया) खूब (आ विभाति) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है (अस्य) उसके ही (अन्या भुवना) अन्य उत्पन्न होने वाले सन्तान (वयाः इत्) शाखाओं के समान उत्पन्न होते हैं और (प्रजाभिः) और उत्तम सन्त-तियों द्वारा (वीरुधः च) लताओं के समान विविध रूप बीजों को जन्म

देने वाली या गृहस्थ धर्म में विशेष रूप से रुद्ध, सहधर्मिणियें (प्रजायन्ते) उत्तम २ सन्तानों को उत्पन्न करती हैं।

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः॥६॥

भा०—(अपां नपात्) जलों में स्थित विद्युत् या सूर्य जिस प्रकार (जिम्हानाम् उपस्थं) कुटिल, टेढ़े मेढ़े मेघों के समीप या (ऊर्ध्वः) उनके ऊपर वाह्यावरण में रहता हुआ और (विद्युतं) विशेष दीप्ति को (वसानः) धारण करता है और (हिरण्य-वर्णा यह्वीः) बड़ी २ जल धाराएं या बड़ी भारी नदियां (तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीः) उसी के महान् सर्वोत्तम शासन बल को धारण करती हुईं (परियन्ति) सब ओर प्रवाहित होती हैं उसी प्रकार (अपां नपात्) अपने शरीर में स्थित प्राण और वीर्यों को विनाश न होने देने वाला, वीर्यपालक ब्रह्मचारी गृहपति (उपस्थं) अपने मूल को (अस्थात्) स्थिर करे, उपस्थेन्द्रिय का संयम करे, ब्रह्मचर्यपूर्वक वीर्य की रक्षा करे। और वह (जिह्मानाम्) टेढ़ी, कुटिल प्रवृत्तियों वालों के भी (ऊर्ध्वः) ऊपर होकर उनका त्याग करके (विद्युतं वसानः) विशेष तेज को धारण करता हुआ रहे। (यह्वीः) बड़े उत्तम स्वभाव और गुणों वाली (हिरण्यवर्णाः) सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण और रूप वाली स्त्रियें या सन्तानें (तस्य) उस प्रकार के ब्रह्मचारी के (ज्येष्ठं) सर्वोत्तम (महिमानं) बड़े भारी वीर्य या सामर्थ्य को (वहन्तीः) स्वयं भी धारण करती हुईं (परियन्ति) उसे प्राप्त हों। (२) अध्यात्ममें—आत्मा प्राणों का रक्षक होने से 'अपां नपात्' है। कुटिल पथों पर जाने वाले इन्द्रिय गण 'जिह्म' हैं। उन पर वही तेज को धारता है। हिरण्य आत्मा को वरण करने वाली इन्द्रियें ही राजस् बल से बहती नदियों के समान हैं, वे भी उसी के सर्वोत्तम सामर्थ्य को धारण करती हैं।

हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१०॥२३॥

भा०—जिस प्रकार (हिरण्यदाः अस्मै) सुवर्ण के देने वाले या हितकारी और आनन्ददायक रमणीय पदार्थ देने वाले दानी होते हैं वे इस प्रजाजन को (अन्नं ददति) अन्न प्रदान करते हैं । उसी प्रकार (हिरण्यदाः) हित और रमणीय सुख देने वाले अग्नि, जल, मेघ, विद्युत् आदि पदार्थ (अस्मै) इस प्रत्यक्ष बसे लोक को (अन्नम्) अक्षय अन्नादि भोग्य पदार्थ (ददति) देते हैं और (हिरण्ययात्) हित और रमणीय स्वरूप से युक्त या तेजोमय (योनेः) सर्वाश्रय, सर्वोत्पादक सूर्य के (परिनिषद्य) आश्रय पर स्थित रहकर ही करते हैं । (सः) वह सूर्य भी स्वयं (हिरण्यरूपः) सुवर्ण के समान कान्ति वाला, (हिरण्यसन्दृग्) तेज से सबको दिखाने वाला, तेजःस्वरूप, (अपां नपात्) जलों को किरणों द्वारा आकाश में बांधने वाला, (सः इत् हिरण्यवर्णः) वह ही सुवर्ण के समान वर्ण वाला, तेजस्वी या प्रकाश को सर्वत्र फैलाने वाला है । उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी गृहपति भी हो । वह हित रमणीय स्वरूप हो, (हिरण्यसंदृग्) उत्तम रमणीय पदार्थों के देखने वाला या सौम्य दृष्टि हो, प्राणों का रक्षक तेजस्वी हो । (हिरण्ययात् योनेः परि निषद्य) सुवर्णादि ऐश्वर्य से पूर्ण गृह में रहकर प्रकट हो । तब सभी उसको ऐश्वर्य प्रदान करें । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११॥

भा०—जिस प्रकार (अपां नप्तुः) जलों से उत्पन्न, जलों के बीच में भी नाश को प्राप्त न होने वाले विद्युत् का (अनीकं) बल और (नाम) स्वरूप (अपीच्यं) सुन्दर या गुप्त रूप से रहता है । उस (हिरण्यवर्णं) तेजस्वी वैद्युत अग्नि को (युवतयः समिन्धते) मिलने वाली जल धाराएं

या वैद्युतिक धाराएं ही और अधिक चमका देती हैं और उसका (अन्नम् घृतम्) अन्न के समान जीवनप्रद ही जल होता है और जिस प्रकार (अस्य) इस (अपां नप्तुः) जलों के उत्पादक सूर्य का बल और स्वरूप सुन्दर होता है (युवतयः) दूर तक फैली दिशाएं जिस को चमकाती है (घृतम्) तेज और जल जिसके अन्न के समान किरणों से ग्राह्य और तेजोवर्धक हैं। उसी प्रकार (अस्य अपां नप्तुः) इस प्राणों और वीर्यों के न विनाश करने वाले ब्रह्मचारी के (अनीकम्) बल और मुख (उत) और (नाम) स्वरूप और वशकारिणी शक्ति भी (अपीच्यं) सुगुप्त और सुन्दर और स्थिर होकर (वर्धते) बढ़ती है। (यम्) जिस (हिरण्य वर्णं) तेजस्वी स्वरूप को देखकर (इत्था) इसी कारण से (सम् इन्धते) वरण करके और भी अधिक प्रदीप्त करतीं, अर्थात् उसके गुणों की वृद्धि करती हैं (अस्य) उसका (अन्नम्) खाद्य पदार्थ (घृतम्) अग्नि के समान ही घृत से युक्त बल पुष्टिकारक हो।

'युवतयः', दारा शब्द के समान बहुवचन है और पति के लिये सामान्य में एक वचन का प्रयोग जानना चाहिये।

अ॒स्मै ब॑हू॒नाम॑व॒माय॒ सख्ये॑ य॒ज्ञैर्वि॑धेम॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑। सं सानु॒ मार्ज्मि॒ दिधि॑षामि॒ बिल्मै॒र्दधा॒म्यन्नैः॒ परि॑ वन्द ऋ॒ग्भिः॑॥१२

भा०—हम लोग (बहूनाम्) बहुतों के बीच में (अवमाय) सबकी रक्षा करने वाले, सबसे मुख्य, आधार रूप (सख्ये) समान रूप से सबके नाम पदों को धारने वाले, सबके मित्र, (अस्मै) इसकी हम (यज्ञैः) दानों, उत्तम सत्संगों और (हविर्भिः) अन्नों से और (नमसा) नमस्कार द्वारा (विधेम) सेवा करें। (सानु) गिरि शिखर के समान उन्नत उत्तम पद को (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार संशोधित करें। (बिल्मैः) चीरने योग्य काष्ठों से अग्नि के समान इसको (अन्नैः दधामि) अन्नों से पुष्ट करें और (ऋग्भिः) अर्चना करने योग्य गुणों और सत्कारों

और उत्तम वचनों से (परि वन्दे) उसकी स्तुति और वन्दन, अभिवादन करें।

स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३॥

भा०—जिस प्रकार (वृषा तासु गर्भं अजनयत्) वर्षा करने वाला सूर्य उन दिशाओं में 'गर्भ' अर्थात् जल से पूर्ण वायु मण्डल को उत्पन्न करता है। (सः ईं शिशुः धयति) और वही छोटे बालक के समान समुद्रादि से रसका पान करता है (तं रिहन्ति) उसको समस्त दिशाएं बछड़े को गौओं के समान स्पर्श करती हैं (सः अपां नपाद्) वह सूर्य लोकों और वर्षा जलों का उत्पादक होकर भी (अनभिम्लात-वर्णः) क्षीण तेज न होकर (अन्यस्येव तन्वा) मानों दूसरे अग्नि और विद्युत् या प्रकाश रूप से (इह विवेष) इस जगत् में व्यापता है। इसी प्रकार (सः) वह (ईम्) भी (वृषा) वीर्यसेचक पुरुष (तासु) उन वरण करने वाली सह धर्मचारिणी दाराओं में (गर्भम्) गर्भ को (अजनयत्) उत्पन्न करे। (सः) वह (ईं) इस प्रकार (शिशुः) बालक स्वरूप होकर (धयति) दुग्ध पान करता है। (तं रिहन्ति) उसी को मानो माताएं बछड़ों को गौओं के समान चूमती हैं। (सः) वह (अपां नपात्) अपने प्राप्त दाराओं के अपत्य होकर (अनभिम्लातवर्णः) अक्षीण तेज होकर (अन्यस्य इव) मानों दूसरे के (तन्वा) देह से (इह) इस लोक में (विवेष) व्यापता है। अर्थात् वह पति ही पुत्र के देह से पुनः गर्भ में आता है।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ मनु० ९। ८ ॥

पति ही पत्नी में प्रवेश कर गर्भ रूप होकर इस भार्या में उत्पन्न होता है। 'जाया' का जायापन यही है कि उसमें पुरुषः पुनः जन्म लेता है।

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः १४

भा०—जिस प्रकार (यह्वीः) बड़ी नदियां या जलधारायें (अस्मिन् परमे पदे) इस सर्वोच्च परम पद, आकाश में (तस्थिवांसं) स्थित और (अध्वस्मभिः) अविनश्वर तेजों से (दीदिवांसं) दीप्त होते हुए सूर्य का (अत्कैः परि दीयन्ति) जलों के निमित्त आश्रय लेती हैं और (नप्त्रे) जलों के बांधने वाले बल से (घृतम् अन्नं वहन्तीः) जल और अन्न को प्राप्त करती हैं । उसी प्रकार (परमे पदे) सबसे उत्कृष्ट पद पर (तस्थिवांसं) स्थित (अध्वस्मभिः) नाश को प्राप्त न होने वाले, अक्षय और अमोघ वीर्यों से (विश्वहा) सब दिनों (दीदिवांसं) सूर्य के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुष को (आपः) प्राप्त होने वाली, स्वयं वरण करने हारी सहधर्मिणी जलस्वभाव होकर (अत्कैः) उत्तम रूपों से सुसज्जित होकर (स्वयम्) आप से आप (यह्वीः) गुणों में उत्कृष्ट महान् होकर (परि दीयन्ति) उसके पास आती हैं । (नप्त्रे) विवाह बंधन से बांधने वाले उसके लिये (घृतम्) घृतयुक्त पुष्टिकारक (अन्नं) अन्न को (वहन्तीः) प्राप्त करती हैं ।

बहुवचनं दारावत् ज्ञेयम् । एकवचन वहुवचने च बहुलं जात्याख्यायाम् ।

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥२४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! ज्ञानवान् पुरुष ! वा विनीत शिष्य ! (जनाय) जनों के कल्याण करने और सन्तान को उत्पन्न करने के लिये (सुक्षितिं) उत्तम भूमि को (अयांसम्) प्राप्त होने वाले कृषक के समान और (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान्, गुणवान् पुत्रों को प्राप्त करने के लिये (सुवृक्तिम्) उत्तम पापनिवृत्ति के व्रत, ब्रह्मचर्यादि को (अयांसम्) प्राप्त हुए तुझको (यद् देवाः अवन्ति) जो विद्वान्, गुरु आदि

पालन करते और ज्ञान से पूर्ण करते हैं (तत भद्रं) वह तेरे लिये बड़ा ही कल्याण और सुखजनक है। हम (सुवीराः) उत्तम पुत्रों से युक्त गृहस्थ जन भी (विदथे) ज्ञान प्राप्त करने के लिये तुझे (बृहत्) बहुत उत्तम (वदेम) उपदेश करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३६]

गृत्समद ऋषिः ॥ १ इन्द्रो मधुश्च। २ मरुतो माधवश्च। ३ त्वष्टा शुक्रश्च। ४ अग्निः शुचिश्च। ५ इन्द्रो नभश्च। ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च देवताः॥ छन्दः—१, ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ३ जगती॥ षड्र्चं सूक्तम्॥

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राष्ट्र के पालक! (हिन्वानः) शासन किया जाता हुआ और बढ़ता हुआ प्रजाजन (तुभ्यं) तेरी वृद्धि के लिये ही (गाः) भूमियों को (वसिष्ट) बसावे, उनमें बसे। (नरः) नेता लोग (अविभिः अद्रिभिः) प्रजा के रक्षक मेघों के समान जल धाराओं और झरनों के बहाने वाले पर्वतों द्वारा (अपः) जलों को (अधुक्षन्) प्राप्त करें। और (नरः) वीर नायक (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र साधनों से सम्पन्न, (अविभिः) राष्ट्र के पालक अध्यक्षों द्वारा (अपः) प्राप्त प्रजाजनों को, मेघों से जलों के समान और पत्थरों से कुटे ओषधिरसों के समान (अधुक्षन्) दोहन करें उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करें। और इस प्रकार अपनी भूमियों को बसावें, सेंचे, अन्न उत्पन्न करें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! (यः) जो तू (प्रथमः) सबसे प्रथम, मुख्य रूप होकर (ईशिषे) सबका स्वामी है वह तू (प्रहुतम्) उत्तम रीति से प्रदान किये (वषट्कृतम्) छः हिस्सों में किये गये षष्ठांश कर को (सुअहा) उत्तम रीति से या वेदाज्ञा के अनुसार (होत्रात्) कर

लेने वाले अधिकारी या कर देने वाले प्रजाजन या अधिकार प्रदान करने वाले विद्वान् से प्राप्त करके (सोमं) अभिषेक योग्य पद या ऐश्वर्य को ओषधिरस के समान (पिब) प्राप्त कर, उपभोग कर और (सोमं पिब) राष्ट्र का पालन कर।

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत। आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (भरतस्य सूनवः) समस्त संसार का भरण पोषण करने वाले सूर्य से उत्पन्न, या सब के पालक मेघ के (सूनवः) सञ्चालित करने वाले वायुगण (पोत्रात् दिवः सोमं पिबन्ति) सबको स्वच्छ पवित्र करने वाले प्रकाश के बल से सोम का पान करते हैं और वे (यज्ञैः) यज्ञों या जल देने वाले मेघों से (संमिश्लाः) अच्छी प्रकार मिलकर (पृषतीभिः) भूमि को सेचन करने वाली जल धाराओं और (ऋष्टिभिः) वेग से जाने वाली बिजुलियों से (यामनि) अपने जाने के अन्तरिक्ष मार्ग में (शुभ्रासः) शोभायमान होते हुए उत्तम और (अंजिषु) उनको चाहने वाले कृषकों के निमित्त (प्रियाः) उनके अतिप्रिय होते हैं इसी प्रकार हे (नरः) उत्तम पुरुषो! हे नायको! आप लोग भी (भरतस्य) सबको धारण पोषण करने वाले सर्वपालक राष्ट्र के पति, राजा वा राष्ट्र के (सूनवः) पुत्र के समान अधीन, वशवर्त्ती एक राष्ट्र के सञ्चालक हो। आप (बर्हिः आसद्य) उत्तम आसन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर साधिकार विराज कर (पोत्रात्) पवित्र (दिवः) व्यवहार से (सोमं) ऐश्वर्य का (आपिबत) उपभोग करो और (सोमं आपिबत) ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करो। और आप लोग (यज्ञैः) दान, मान, सत्कार, परस्पर सत्संगों से (संमिश्लाः) अच्छी प्रकार मिल जुलकर (पृषतीभिः) नाना शस्त्रवर्षिणी और

(ऋष्टिभिः) शत्रु नाश करने वाली शस्त्रादि शक्तियों और सेनाओं सहित (शुभ्रासः) अति उज्ज्वल, शोभायुक्त (उत) और (अंजिषु) अपने चाहने वाले मित्रों या पद, मान, प्रतिष्ठा सूचक चिन्हों, पदकों के बीच (प्रियाः) अतिप्रिय, मनोहर होकर रहो ।

अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ आ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन ।
अथा॑ मन्दस्व जुजुषा॒णो अन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सुहवाः) उत्तम नाम, ख्याति और प्रशंसा से युक्त (नः) हमें (अमाइव) अपने आश्रय गृह के समान निर्भय होकर (आ गन्तन) आओ । (बर्हिषि) उत्तम आसन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष और उपदेष्टा रूप से (नि सदतन) नियत रूप से विराजो ! और (रणिष्टन) उत्तम उपदेश, आज्ञाएं प्रदान करो । हे (त्वष्टः) सूर्य के समान तेजस्विन् ! अज्ञान के विच्छेदक ! तू भी (सुमद्-गणः) सुख और उत्तम गुणवान् सहयोगी जनों और (जनिभिः) उत्पादक विदुषी स्त्रियों और (देवेभिः) व्यवहारकुशल विद्वान् तेजस्वी पुरुषों सहित (अन्धसः) अन्नों को (जुजुषाणः) सेवन करता हुआ (मन्दस्व) तृप्त, सुप्रसन्न होकर रह ।

आ व॑क्षि दे॒वाँ इ॒ह वि॑प्र॒ यक्षि॑ चो॒शन्हो॑त॒र्नि ष॑दा॒ योनि॑षु त्रि॒षु ।
प्रति॑ वीहि॒ प्रस्थि॑तं सो॒म्यं मधु॒ पिबाग्नी॑ध्रा॒त्तव॑ भा॒गस्य॑ तृप्णुहि ॥ ४ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन् ! मेधाविन् ! हे (उशन्) उत्तम २ पुत्र, यश, और ऐश्वर्य आदि पदार्थों की कामनाओं को करने हारे ! हे (होतः) दानशील ! तू (देवान्) सुख देने वाले, उत्तम ज्ञानप्रकाशक पुरुषों और उत्तम गुणों, और पृथिवी, वायु, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों को (वक्षि) धारण कर, उनके विज्ञान का अन्यों को उपदेश कर । और

(यक्षि च) उनका सत्संग कर और अन्यों को प्रदान कर । तू (त्रिषु योनिषु) तीनों स्थानों में (नि षद) स्थिर होकर विराज, तीन योनि माता, पिता, और आचार्य, उनकी शिक्षा से शिक्षित होकर मातृमान्, पितृमान्, और आचार्यवान् हो । (प्रस्थितं) अपने से उत्कृष्ट पद पर स्थित माननीय पुरुष के (प्रति वीहि) समीप जा, उसके सत्संग से (सोम्यं मधु) ओषधिरसों से युक्त मधु के समान सर्व-भव-रोगहारी सोम अर्थात् विनीत शिष्य को प्राप्त होने योग्य उत्तम ज्ञानरूप मधुर उपदेश का (पिब) पान कर और (अग्नीध्रात्) अग्नि के धरने के स्थान चूल्हे से जिस प्रकार अन्न पकाकर उससे तृप्त होते हैं उसी प्रकार (अग्नीध्रात्) विनीत, प्रति अंग में झुकने वाले शिष्य को धारण करने वाले आचार्य से (तव भागस्य) तेरे अपने सेवन योग्य सेवा शुश्रूषा, और ज्ञानांश से तू (तृप्णुहि) तृप्त हो । प्रसन्न रह और अन्यों को प्रसन्न कर । (२) इसी प्रकार राजा, विविध ऐश्वर्यों से प्रजा-राष्ट्र को भरने से विप्र है । वह (देशान्) विजयेच्छुक वीरों को आज्ञा दे, वेतनादि दे, शत्रु, मित्र, उदासीनों के ऊपर विराजे, (प्रस्थितं) चढ़ कर आने वाले का मुकाबला करे, ऐश्वर्य रूप मधुर फल को भोगे या ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करे । अग्नि के समान तेजस्वी, सेना को धारण करने वाले वीर पुरुष से अपना षष्ठांश प्राप्त करके तृप्त हो ।

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादातृपत्पिब ॥५॥

भा०—(सुतः) उत्पन्न पुत्र जिस प्रकार (तन्वः) अपने शरीर से उत्पन्न होता, (नृम्ण-वर्धनः) धनैश्वर्य को बढ़ाने वाला, माता पिता के (सहः ओजः) बल पराक्रम स्वरूप होकर (बाह्वोः हितः) बाहुओं में या गोद में लिया जाता है, वह पिता के द्वारा (आभृतः) पालित पोषित होता है । पिता उस पुत्र को बड़े यत्न से पालता है उसी प्रकार हे

(मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (एषः स्यः) यह वह (सुतः) पुत्र के समान अभिषेक द्वारा प्राप्त प्रजाजन (ते तन्वः) तेरे शरीर के समान विस्तृत राष्ट्र से उत्पन्न होकर (ते) तेरे (नृम्ण-वर्धनः) धनैश्वर्य को बढ़ाने वाला है । वही (सहः) शत्रुओं को पराजय करने वाला (ओजः) बल पराक्रम स्वरूप होकर (प्रदिवि) सब दिनों, चिरकाल से या तेरी उत्तम कामना को पूर्ण करने के लिये तेरे (बाह्वोः) बाहुओं पर (हितः) पालनीय पुत्र के समान ही रखा जाता है। यह प्रजाजन भी (तुभ्यं-सुतः) माता द्वारा जने गये पुत्र के समान तेरे ही वृद्धि के लिये हो और (तुभ्यम् आभृतः) तेरे ही वृद्धि के लिये यह सब प्रकार भरण पोषण किया जाय । (त्वम्) और तू ही (अस्य) इसके (ब्राह्मणात्) 'ब्रह्म' अर्थात् धन और विज्ञान से उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य, धन और विज्ञान के स्वामी पुरुष वर्ग से इसका (पिब) पालन और उपभोग कर (आ तृपत्) अच्छी प्रकार तृप्त संतुष्ट होकर रह ।

जुषेथां युज्ञं बोधतं हवस्य मे सुत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु। अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥ २५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (राजाना) उत्तम गुणों से चमकने वाले राजा रानी के समान स्त्री पुरुषो ! आप लोग (मे) मेरे (हवस्य) ग्रहण करने योग्य ज्ञान के (यज्ञं) सत्संग योग्य दान का (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन किया करो । जब (होता) ज्ञान का देने वाला विद्वान् (सत्तः) अच्छी प्रकार विराजे तब आप दोनों (नमः अच्छ एत्य) विनयपूर्वक उसके समक्ष आकर (प्रशास्त्रात्) उत्तम प्रवचन करने वाले विद्वान् से (पूर्व्याः निविदः) पूर्व विद्वानों से सेवन की और प्रवचन की गयी वेदवाणियों को (अनु बोधतम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो वा (पूर्व्याः निविदः) पूर्व की पुरातन वेद वाणी से (मे हवस्य) आत्मा के ग्राह्य (यज्ञं) और

उपास्य परम आत्मा के स्वरूप को (अनु बोधतम्) निरन्तर ज्ञान करो । और (सोम्यं) शान्तिदायक (मधु) अन्न के समान ही (आवृतं) सब प्रकार से छुपे, अप्रकट (सोम्यं मधु) उत्तम शिष्यों के योग्य 'मधु' ब्रह्म ज्ञान का (आ पिबतम्) अच्छी प्रकार ग्रहण करो। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[३७]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—४ द्राविणोदाः ५ अश्विनौ । ६ अग्निश्च देवता ॥ छन्दः —१, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड् जगती ४, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम्। तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः॥१॥

भा०—हे (द्रविणोदः) धनों और ज्ञानों के देने हारे ऐश्वर्यवन् ! और विद्वन् ! तू (होत्रात्) उत्तम दानशील से (जोषम् अनु) प्रीतिसहित या (जोषमनु होत्रात्) प्रीति से दिये दान से ही (अन्धसः) अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करके (मन्दस्व) तृप्त और आनन्दित हुआ कर। हे (अध्वर्यवः) अपनी हिंसा न चाहने वाले और प्रजा के पीड़नादि भी न चाहने वाले प्रजास्थ पुरुषो ! (सः) वह ज्ञानैश्वर्य का देने वाला पुरुष, घृत को चाहने वाले अग्नि के समान (पूर्णाम् आसिचम्) पूर्ण आसेचन या पुष्टि और दान (वष्टि) चाहता है। हे प्रजाजनो (एतं) उसको (तत् वशः) उसके अभिलषित कामना योग्य

पदार्थ (भरत = हरत स्म) प्राप्त कराओ । वह (ददिः) दानशील पुरुष है । हे (द्रविणोदः) द्रव्यों के दान देने हारे ! तू: (ददिः) दानशील होकर (होत्रात्) सर्वाधिकार देने वाले विद्वान् से (सोमं) ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करके (ऋतुभिः) विद्वान् राजसभा के सदस्यों सहित ऋतु-अनुसार ओषधि रस के समान (सोमं) ऐश्वर्य का (पिब) पान, उपभोग और पालन कर ।

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते । अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥

भा०—(यम् उ) जिसको मैं प्रजाजन (पूर्वम्) पहले (अहुवे) उत्तम रूप में स्वीकार करूं (तम्) उसको (इदं) यह सब कर, द्रव्यादि (हुवे) प्रदान करूं (सः इत्) वह ही (ददिः) दानशील पुरुष (हव्यः) स्तुति करने योग्य है (यः नाम) जो प्रसिद्ध रूप से (पत्यते) ऐश्वर्यवान् या पालक बनता है । अथवा (स इत् हव्यः अहम् पत्यते ददिः) वह ही मैं दाता प्रभु मुझे अपना पालक स्वीकारने वाले प्रजाजन को देने वाला होऊं । हे (द्रविणोदः) धन और ज्ञान को देने हारे (अध्वर्युभिः) अपना और प्रजा का विनाश न चाहने वाले विद्वान् प्रजाजनों से (प्रस्थितं) उत्तम रूप से प्रस्तुत और नियत किये (सोम्यं मधु) सोम अर्थात् अभिषिक्त राजपद और शिष्य जन के योग्य (मधु) मधु के समान प्रजा गण से संगृहीत (सोमं) ऐश्वर्य और अन्नादि रसको (ऋतुभिः) राजसभा के सदस्य राज-भ्रातरों सहित (पोत्रात्) पवित्र व्रतनिष्ठ पुरुष से ग्रहण करके (पिब) उसका उपभोग और पालन कर । शिष्य (ऋतुभिः) प्राणों से और विद्वानों द्वारा बलवान् रहकर (पोत्रात्) पावन कर्त्ता आचार्य से (सोमं) ज्ञान और परमपावन परमेश्वर से बलवीर्य का पालन करे ।

मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वनस्पते) वनों, सैन्य गणों को, किरणों को सूर्य के समान और जलों को समुद्र के समान और पथिकों को मार्गस्थ आश्रम वृक्ष के समान पालन करने हारे वनस्पते ! सर्वाधार ! विद्वन् ! स्वामिन् ! (ते) तेरे (वह्नयः) शकट में लगे बैलों के समान, राज्य के कार्य भार के उठाने वाले, अग्नियों के समान वे तेजस्वी कार्यकर्त्ता लोग हृदय में राजा और प्रजा दोनों के प्रति (मेद्यन्तु) स्नेह को धारण करें । (येभिः) जिन से तू (अरिषण्यन्) प्रजाओं का नाश न करता हुआ (ईयसे) सर्वत्र व्याप्त शासन युक्त हो सके । तू इसी प्रकार से (वीळयस्व) बराबर दृढ़ हो । हे (धृष्णो) शत्रुओं के धर्षक, उनको पराजित करने में समर्थ (त्वं) तू (आयूय) सबसे मेल करके (अभिगूर्य) सब प्रकार से उद्यम करके राज्य-कार्यभार को अपने ऊपर उठाकर (नेष्ट्रात्) नेता या नायक के कार्य से (ऋतुभिः) ज्ञानवान् राजसभा के सदस्यों सहित (सोमं पिब) ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर ।

अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४॥

भा०—(द्रविणोदाः) राष्ट्र को ऐश्वर्य देने और राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं को वेतन द्रव्य देने और राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करने वाला पुरुष (होत्रात्) अधिकार आदि दान देने और कर आदि लेने के कार्य से (अपात्) राष्ट्र का भोग और पालन करे । (पोत्रात्) कण्टकशोधन और धर्मपालन के पवित्र करने के कार्य व्यवस्था से (अमत्त) स्वयं सुप्रसन्न रहे अन्यों को प्रसन्न करे । और (नेष्ट्रा) नायक बनकर इष्ट पदार्थ प्राप्त करा कर (हितम्) पूर्वनियत या हितकारी (प्रयः) पुष्टिकर, प्रीतियुक्त

अन्न आदि पदार्थ को (अजुषत) स्नेह से सेवन करे और (द्राविणोदसः) ऐश्वर्य और ज्ञान के देने वाले दानशील राजा और आचार्य उसके 'द्रविणोदस्' या ऐश्वर्य के भोगने वालों का हितू स्वामी वा प्रेम पात्र होकर वह (तुरीयं) चतुर्थ, सर्वोपरि विद्यमान एक चतुर्थांश (अमृक्तं) सबसे अधिक शुद्ध (अमर्त्यम्) सर्व साधारण मनुष्यों से अतिरिक्त, सबसे महान् (पात्रम्) पालन कार्य के अंश को (पिबतु) स्वयं भोग वा पालन करे।

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम्। पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥

भा०—हे (वाजिनीवसू) 'वाज' अर्थात् वेग, बल, ऐश्वर्य और संग्राम आदि करने की शक्ति, क्रिया या सेना को बसाने या धारण करने वाले स्वामी जनो ! आप दोनों (अद्य) आज, (अर्वाञ्चम्) वेगवान् अश्वों सहित जाने वाले, (यय्यं) दूर देश में जाने और पहुंचा देने वाले, (नृवाहणं) नायक पुरुषों को ढो ले जाने वाले, (रथं) उत्तम वेगवान् रथ को (युञ्जाथाम्) जोड़ा करो (इह) इसमें ही (वां) आप दोनों का (विमोचनम्) विविध प्रकार के कष्टों से मुक्त होना सम्भव है। आप दोनों (हवींषि) लेने देने योग्य पदार्थों और अन्नों को (मधुना) मधुर पदार्थ से, आनन्दप्रद उपाय से (पृक्तम्) संयुक्त करो। (हि) इसीलिये (कं हि गतम्) इस प्रकार सुखप्रद स्थान को जाया करो (अथ) और इस प्रकार (सोमं) उत्तम ओषधि रस और ऐश्वर्य का (पिबतं) सेवन करो।

जोष्यग्ने सुमिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम्। विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! अग्रणी नायक ! अग्नि के

समान तेजस्विन् ! (समिधं जोषि) जिस प्रकार अग्नि समिधा अर्थात् काष्ठ को सुख से ले लेता, उसको जला देता है उसी प्रकार तू भी (समिधं) उत्तम दीप्ति या कान्ति के उत्पादक साधन या क्रिया को सेवन कर। (आहुतिं जोषि) अग्नि जिस प्रकार घृत आदि की आहुति चाहता है उसी प्रकार तू भी (आहुतिं) आदर पूर्वक सत्कार और दान को स्वीकार कर। तू (जन्यं) जनों के हितकारी (ब्रह्म जोषि) उत्तम अन्न और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान का सेवन कर। और तू (सुस्तुतिम् जोषि) उत्तम स्तुति वचन का सेवन कर उसको प्रीति पूर्वक प्रयोग कर। हे (वसो) अपने अधीन शिष्यों को बसाने और स्वयं विद्या समाप्ति के अनन्तर गृहस्थ आदि आश्रमों में बसने वाले ! विद्वन् ! तू स्वयं (विश्वान् देवान् उशन्) समस्त गुणों, व्यवहारों को और विद्वानों की कामना करता हुआ, उनको चाहता हुआ, (विश्वेभिः) सब विद्वानों सहित (उशतः) कामना करने वाले (महः देवान्) अपने से गुणों और अनुभवों में बड़ों को (ऋतुना) ऋतु अनुसार (हविः) उत्तम अन्नादि पदार्थों का (पायय) उपभोग करा। इति प्रथमो वर्गः ॥

[३८]

गृत्समद ऋषिः ॥ साविता देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् ३, ४, ६, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८ स्वराट् पङ्क्तिः ९ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ एका दशर्चं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ॥१॥

भा०—(स्यः देवः) वह सब जगत् का प्रकाशक, (सविता) सूर्य के समान, सब जगत् का प्रेरक और उत्पादक, परमेश्वर (सवाय) संसार को उत्पन्न करने के लिये ही (तत्-अपाः) उस संसार के अपादान अव्यक्त

सम्बन्धी तथा जगत्सम्बन्धी समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने, करने हारा और (वह्निः) जगत् को उठाने और धारण करने वाला होकर (शश्वत्-तमं) परम अनादि कारण प्रधान तत्व के भी (उत् अस्थात् उ) ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थित है । वह (देवेभ्यः) क्रीड़ाशील जीवों के लिये (रत्नम्) रमण करने योग्य जगत् को (विदधाति हि) विरचता है । (अथ) और स्वयं (वीतिहोत्रम्) उस जगत् को अपनी व्याप्ति, कान्ति और रक्षा में स्वीकार करके (स्वस्तौ) सुख, कुशल क्षेम युक्त दशा में (अभजत्) रखता है । (२) उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी, कार्य भार का वहन करने वाला, उस कार्य को करने और जानने वाला होकर सदा (सवाय उत् अस्थात्) शासन करने के लिये सर्वोपरि विराजे । वह विद्वानों को रत्न, धन, दान करे, उत्तम कार्य करे, (वीतिहोत्रं) रक्षा द्वारा स्वीकार कर राष्ट्र के सुख, कुशल क्षेभ के लिये सुख पूर्वक उसका सेवन करे ।

विश्व॑स्य॒ हि श्रु॒ष्टयै॑ दे॒व ऊ॒र्ध्वः प्र बा॒हवा॑ पृ॒थुपा॑णिः सिस॑र्ति ।
आप॑श्चिदस्य व्र॒त आ निमृ॑ग्रा अ॒यं चि॒द्वातो॑ रमते॒ परि॑ज्मन् ॥ २ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः देवः हि) सबसे ऊपर विराजने वाला, सर्वाध्यक्ष परमेश्वर ही (विश्वस्य) समस्त जगत् के (श्रुष्टये) शीघ्र सञ्चालन और सुख के लिये (पृथुपाणिः) अति विस्तृत हाथों वाले महापुरुष के समान, अति विस्तृत ज्ञान और व्यवहार या व्यापार वाला होकर मानो (बाहवा) अपनी बाहुओं को (प्र सिसर्त्ति) दूर २ तक फैला रहा है । इसी कारण (आपः चित्) जलधाराएं भी (अस्य व्रते) उसके शासन में रहकर सर्वत्र (निमृग्राः) अति शुद्ध करने वाले होकर (आरमन्ते) सब ओर क्रीड़ा कर रहे हैं और उसी के शासन में (अयं वातः चित्) यह गतिमान् वायु भी (परिज्मन्) आकाश में (आ रमते) क्रीड़ा कर रहा है । (२) इसी प्रकार सर्वोपरि शासक पुरुष भी सब राष्ट्र के सुख के लिये

अपनी बाहुएं या (बाहू) शत्रुओं को बाधा या पीड़ा देने वाली सेना की दोनों बाजुओं को आगे बढ़ावे। (आपः) जल धाराओं के समान सेनाएं उसके कार्य में या शासन में रहकर (निमृग्राः) शत्रु दल की सफाई करती हुई आगे बढ़ें और उसी के शासन में (वातः) वायु के समान बलवान् सेनापति (परिज्मन्) प्रयाण करने योग्य देश पर चढ़ाई करे।

आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (आशुभिः) अपनी शीघ्र गामिनी किरणों से (यान्) जिन २ प्रदेशों को (विमुचाति) त्याग देता है (नूनम्) निश्चय से उन २ स्थानों पर (अतमानं) व्यापने वाले अन्धकार के (एतोः) व्यापने के लिये (अरीरमत्) रमने देता है। और वह सूर्य ही (अह्यर्षूणाम्) अहि अर्थात् मेघों को लाने वाले वायुओं की (अविष्याम् नि अयान्) पृथ्वी को तृप्त करने, आने और मेघ लाने की गति को भी नियमित करता और (सवितुः व्रतम् अनु) सूर्य के व्रत या गति के साथ २ उसके अनुकूल ही (मोकी) रात्रि भी (अनु आगात्) आया करती है। (चित्) ठीक उसी प्रकार वह परमेश्वर (यान्) जिन पुरुषों को (आशुभिः) शीघ्र व्यापनशील सब प्रकार से शुद्ध उपायों से (विमुचाति) मुक्त कर देता है उनमें से (नूनम्) निश्चय से अपने समीप (एतोः) आने वाले पुरुष के (अतमानम्) आत्मा को (अरीरमत्) खूब आनन्दित और हर्षित करता है। और (अह्यर्षूणां) अपनी तरफ आने वाले, साक्षात् मेघ के समान दयालु, आनन्दघन प्रभु स्वरूप को प्राप्त होने वाले पुरुषों की (अविष्याम्) आने की या प्रभु को प्राप्त करने की इच्छा को भी यह (नि अयान्) नियम से पूर्ण करता है और (सवितुः व्रतम् अनु) उस सर्वोत्पादक प्रभु परमेश्वर के व्रत उपासना आदि

अनुष्ठान करने के अनन्तर ही (मोकी) सब बन्धनों से छुड़ाने वाली मुक्ति भी (आगात्) प्राप्त हो जाती है ।

पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (विततं) विस्तृत अन्धकार को (वयन्ती) पट के समान बिनती हुई कोरिन के समान (मध्या) दो दिनों के बीच में विद्यमान रहकर (पुनः सम् अव्यत्) वार २ व्याप लेती है । और (धीरः) धीर या बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार (मध्या) बीच ही में (शक्म कर्त्तोः) शक्ति से करने योग्य कर्म को (वि अधात्) वैसे ही विना किये रख छोड़ता है । और (संहाय) प्रातः उठकर (पुनः उत् अस्थात्) फिर उठता है । (ऋतून् वि अदधः) काल के अवयवों को विविध रूप से बांटता है उसी प्रकार (अरमतिः) कभी विराम न लेने वाला (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य (संहाय उत् अस्थात्) उठ कर पुनः उदय होता है (अरमतिः) विराम रहित होकर (सविता) सूर्य पुनः (आगात्) आ जाता है । ठीक इसी प्रकार (विततं) विस्तृत जगत् को (वयन्ती) व्यापने वाली ब्रह्म शक्ति या प्रकृति (पुनः) वार २ इस विस्तृत जगत् को (सम् अव्यत्) अच्छी प्रकार व्यापती है और जगत् को सृजती और संहारती है और (मध्या) उस जगत् के बीच, (धीरः) धारण करने में समर्थ परमेश्वर (शक्म) शक्ति से करने योग्य (कर्त्तोः) कर्म बल को (नि अधात्) सब प्रकार से धारण किये रहता है । अर्थात् सृष्टि और प्रलय के दोनों कालों में प्रभु शक्ति क्रिया को धारण किये रहता है । वह (संहाय) पुनः प्रलय के बाद प्रलयान्धकार को सूर्य के समान पूर्व सन्ध्या के समय दूर करके (उत् अस्थात्) समस्त प्रकृति जन्य संसार के ऊपर शासक रूप से स्थित रहता है । वही (ऋतून्)

४ रर्दरिति सायणाभिमतः पाठः ॥

गतिमान् काल के अंशों और प्राणों को भी (वि अदर्धः) विविध विभागों में बांटता और धारण करता है। वही (देवः) सबका प्रकाशक (सविता) सर्वोत्पादक (अरमतिः) अति अधिक ज्ञानवान् होकर (आ-अगात्) सर्वत्र व्यापक होकर रहता है।

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (दुर्यः) द्वारों में प्रवेश करने वाला (अग्नेः) अग्नि अर्थात् सूर्य का (प्रभवः शोकः) अधिक उज्ज्वल तेज (नाना ओकांसि) नाना घरों और लोकों में और (विश्वम् आयुः) समस्त अन्नों जीवनों को (वितिष्ठते) विशेष रूप से व्यापता है। उसी प्रकार (अग्नेः) अग्नि के तेज से चमकने वाला (प्रभवः) उत्तम, उत्कृष्ट सामर्थ्य से युक्त, समस्त जगत् का उत्पत्ति स्थान और (शोकः) तेज स्वरूप (दुर्यः) सब द्वारों मार्गों में व्यापक, सर्वत्र हितकारी परमेश्वर (नाना ओकांसि) वाला लोंको और (विश्वम् आयुः) समस्त जीवन युक्त जीव संसार को (वितिष्ठते) वश करता है। और जिस प्रकार (माता) माता (सूनवे) अपने पुत्र को (ज्येष्ठं) सबसे उत्तम (भागम्) सेवने योग्य अन्न, दुग्ध आदि पदार्थ (आधात्) देती है और (सवित्रा) उत्पादक पिता द्वारा (अस्य) इस पुत्र का (केतम् अनु इषितं भवति) ज्ञान शिक्षण आदि कार्य उसके बाद देना अभीष्ट होता है। उसी प्रकार (माता) सब जगत् को बनाने वाला परमेश्वर (सूनवे) उत्पन्न जीव संसार को (ज्येष्ठं भागं) सबसे उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करता है। और (सवित्रा) उस सर्वोत्पादक परमेश्वर द्वारा ही (अस्य) इस जीव संसार को (केतम्) ज्ञान भी (अनु इषितम् भवति) निरन्तर अनुकूल रूप से प्रेरित होता है।

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (जिगीषुः) संसार के विषम मार्गों पर विजय करने की इच्छा करता हुआ एक दिग्विजय के इच्छुक वीर राजा के समान (विष्ठितः) विशेष मानआदरपूर्वक स्थित होकर (सम् आववर्त्ति) शिक्षा प्राप्त करके समावर्त्तन द्वारा लौट आता है वह (विश्वेषां) समस्त (चरतां) विचरने वाले प्राणियों और सेवकादि के भी (कामः) कामना करने योग्य सबकी इच्छा प्रेम का पात्र होकर (अमा) घर में (अभूत्) आकर रहे । वह (शश्वान्) नित्य नियम पूर्वक कार्य करने हारा होकर (विकृतं हित्वी) विरुद्ध, धर्म के विपरीत, असत् (अपः) कर्म और ज्ञान को बिगड़े जल के समान त्याग कर (दैव्यस्य) प्रकाश रूप में स्थित तेजस्वी (सवितुः) सूर्य के (व्रतम्) कर्म को (अनु आ) अनुकरण करे । अर्थात् जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य, विजयी के समान प्रति दिन लौट आता है, सब प्राणो का आश्रय और इच्छा का पात्र होता है नित्य नियमपूर्वक आता है और विकृत, मलिन जल को त्यागकर स्वच्छ सूक्ष्म जल लेता है उसी प्रकार विद्वान् भी समावृत्त होकर सबको प्रिय, नियम से रहने वाला, विपरीत अनाचारों को त्यागकर सूर्य के कर्म का अनुकरण करे । अथवा—(दैव्यस्य सवितुः) देव विद्वानों से प्राप्य सर्वोत्पादक परमेश्वर के उपदिष्ट व्रत का या ज्ञान में उत्पादक आचार्य के बताये व्रत का अनुगमन करे ।

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो न किरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ७

भा०—जिस प्रकार सूर्य (अप्सु अप्यं भागं दधाति) अन्तरिक्ष प्रदेशों में किरणों द्वारा जलीय अंश को या जलों में प्राणहितकारी अन्नादि सेव्य अंश को धर देता है और (धन्व) मरु प्रदेश में ही

(मृगयसः) जल एवं खाद्य अंश ढूंढने वाले प्राणि गण (विभ्यः वनानि इव) प्राणियों के निमित्त वनों में शिकारियों, व्याधों के समान (अनु वितस्थुः) ढूंढते फिरते हैं वे भी सूर्य के नियम बद्ध कर्मों को विनाश नहीं कर सकते उसी प्रकार हे राजन् ! हे विद्वन् ! (त्वया) तू भी (अप्सु) समीप प्राप्त प्रजाजनों में (अप्यं) ज्ञान और कर्म के योग्य वा आप्त प्रजाओं के प्राप्त करने योग्य (भागं हितं) सेवनीय ऐश्वर्य को स्थापित कर, (मृगयसः अप्यं भागं धन्व) मृग गण मरु देश में जिस प्रकार जल को ढूंढते २ फिरा करते हैं और (मृगयसः विभ्यः वनानि) जिस प्रकार मृग या व्यसनी लोग पक्षियों के लिये वनों २ भटकते हैं उसी प्रकार (मृगयसः) ऐश्वर्य और ज्ञान की खोज लगाने वाले जिज्ञासु और धनार्थी लोग (धन्व) धन युक्त प्रदेश और ज्ञान-जल से युक्त पुरुष को (वि तस्थुः) विविध प्रकार से प्राप्त हों और (मृगयसः) खोजी लोग ही (विभ्यः) अपने प्राणों और विद्वानों के लिये (वनानि) सेवनीय ज्ञानों और प्रकाशों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त हों। (देवस्य सवितुः) सर्वज्ञान और ऐश्वर्य के दाता, (सवितुः) ऐश्वर्यवान् शासक, ज्ञान गर्भ से उत्पादक विद्वान् पुरुष के (तानि व्रता) उन सभी नाना व्रतों, नियमों को (नकिः मिनन्ति) कोई कभी नाश नहीं करें, नहीं तोड़ें।

याद्राध्यं॒ वरु॑णो॒ योनि॒मप्य॒मनि॑शितं नि॒मिषि॒ जर्भु॑राणः।
विश्वो॑ मार्ता॒ण्डो॑ व्र॒जमा प॒शुर्गा॑त्स्थ॒शो जन्मा॑नि सवि॒ता व्याकः॑ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (वरुणः) सब जगत् को अन्धकार से घेर लेने वाला रात्रिकाल का अन्धकार (निमिषि) सूर्यास्त हो जाने पर (अ-निशितम्) तीक्ष्णता या प्रचण्डता से रहित, शीतल (याद्राध्यं) जल जन्तुओं से सेवनीय, और गतिमान जंगम प्राणियों से सेवन करने योग्य (अप्यम्) जलमय और प्राणों के हितकर (योनिम्) समुद्र और स्थल

भूभाग को भी (जर्भुराणः) घेर लेता है । और (विश्वः मार्ताण्डः) समस्त अण्डों से उत्पन्न पक्षि गण तथा (पशुः) पशु गण भी (व्रजम् आगात्) अपने गन्तव्य गृह या बाड़े में लौट आते हैं तब भी बाद में सविता (स्पशः) सब स्थानों और (जन्मानि) सब प्राणियों को (वि आकः) विशेष रूप से प्रकट कर देता है उसी प्रकार (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, सब दुःखों और अज्ञानों के वारक राजा और आचार्य (निमिषि) अज्ञानमय अन्धकार काल में असावधानता के अवसर में या जब लोग आंख मीचकर सो रहे हों ऐसे रात्रिकाल में भी (जर्भुराणः) अधीनस्थों को पालन करता हुआ, (याद्राध्यं) शरण में आने वाले शिष्यों और प्रजा गणों से आराधना करने योग्य, (अनिशितम्) अतीक्ष्ण, सुखदायी (अप्यम्) प्राणों के और आप्त जनों के हित कर (योनिं) स्थान, गृह और शरण को प्रदान करे । तब (मार्ताण्डः) मृत अर्थात् भिन्न अण्डे से उत्पन्न पक्षी के समान या (पशुः) पालतू पशु के समान स्वयं (मार्त्ताण्डः) 'मार्त्ताण्ड' अर्थात् सूर्य के आश्रय पर जीने वाले (विश्वः) समस्त जन और (पशुः) चक्षुओं से देखने वाले विवेकी पुरुष (व्रजम्) अपने गन्तव्य शरण को (आगात्) प्राप्त होते हैं । और वह (सविता) सबका आज्ञापक सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (स्पशः) सब स्थानों और (जन्मानि) सब उत्पन्न होने वाले अधीन प्राणियों को (विः आ अकः) व्यवस्थित करे । इसी प्रकार परमेश्वर भी प्रलय में सबकी रक्षा करता हुआ सर्गारम्भ में विश्व को प्रकट करता है ।

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (व्रतम्) नियम-व्यवस्था और कर्म को (न इन्द्रः) न विद्युत्, (वरुणः) और जल, मेघ, समुद्र, (न मित्रः) और न वायु, प्राणगण, और (अर्यमा) सबकी नियामक शक्ति सूर्य या धारक

वायु और (न रुद्रः) न जीवगण और (न अरातयः) न शत्रुगण, परस्पर विरोधी शक्ति ही (मिनन्ति) तोड़ सकते हैं (तम्) उस (इदं) इस साक्षात् (सवितारं) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक (देवं) सर्वप्रकाशक परमेश्वर वा राजा को हम (नमोभिः) नमस्कारों से (स्वस्ति) अपने कल्याण के लिये (हुवे) प्रार्थना करें ।

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम १०

भा०—हम (भगं) ऐश्वर्यमय, सुख कल्याण के दाता (धियं) ध्यान करने योग्य, (पुरन्धिं) समस्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर को (वाजयन्तः) स्वयं ज्ञान करने और अन्यों के ज्ञान देने वाले हों । वह (नराशंसः) सब मनुष्यों से स्तुति किया जाने योग्य (पतिः) पालक प्रभु (नः) हम जीवों और (ग्नाः) वाणियों को (अव्याः) जानता और पालता है । अथवा—(ग्नाः-पतिः) समस्त वेद वाणियों का पालक, वह हमें रक्षा करें । और (वामस्य) उत्तम ऐश्वर्य के (आअये) प्राप्त होने और (रयीणां) समस्त पशु आदि सम्पदाओं के (संगथे) प्राप्त होने पर भी हम (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) सर्वप्रकाशक, सर्वप्रद, प्रभु परमेश्वर के (प्रियाः) प्रिय होकर (स्याम) रहें ।

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् । शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥ ३ ॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर ! राजन् ! (त्वया) तूने (अस्मभ्यम्) हमें (दिवः) आकाश से (अद्भ्यः) अन्तरिक्ष से और (पृथिव्याः) पृथिवी से (तत्) वह (काम्यं) कान्तियुक्त तेज, चाहने योग्य जल और अन्न, सुवर्ण रत्नादि (राधः) धनैश्वर्य (दत्तं) दिया है वह (आगात्) हमें प्राप्त हो । (यत्) जो

(स्तोतृभ्यः) विद्वानों को (शं भवाति) शान्तिदायक और कल्याणकारी हो। (आपये) आप्त विद्वान् एवं बन्धुजन के लिये (शं भवाति) शान्तिदायक हो। (उरुशंसाय) बहुत से प्रशंसित (जरित्रे) विद्योपदेश करने वाले गुरुजन को शान्ति सुख देने वाला हो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[३९]

गृत्समद ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ५, ६ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

ग्रावा॑णेव॒ तदिदर्थं॑ जरेथे॒ गृध्रे॑व वृ॒क्षं नि॑धि॒मन्त॒मच्छ॑ ।
ब्र॒ह्माणे॑व वि॒दथ॑ उक्थ॒शासा॑ दू॒तेव॒ हव्या॒ जन्या॑ पुरु॒त्रा ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (ग्रावाणा इव) जिस प्रकार दो बड़ी शिलाएं, चक्की के दोनों पाट, या सिल बट्टा दोनों मिलकर (अर्थं जरेथे) किसी भी पदार्थ को पीस कूट कर नष्ट कर देते हैं या जीर्ण, महीन, सूक्ष्मकर और पचने योग्य कर देते हैं और जिस प्रकार (ग्रावाणा इव) दो महामेघ या मेघ और वायु मिलकर (अर्थं) अर्थ अर्थात् अर्त्ति, ताप, पीड़ा को (जरेथे) नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार आप दोनों (ग्रावाणा) उत्तम वचनों और उपदेशों को कहने वाले होकर (तत् इत्) उसी परम, उपादेय (अर्थं) अर्थ, अर्थात प्राप्त करने योग्य परम तत्व ब्रह्म का (जरेथे) उपदेश करो, वा, (अर्थं जरेथे) अति पीड़ाजनक शत्रु का नाश करो। अथवा मेघों के समान पीड़ा को शान्त करो। (गृध्रा इव वृक्षं) जिस प्रकार गीधों का जोड़ा वृक्ष पर अपनी आयु शेष करता है। उसी प्रकार तुम दोनों (वृक्षं) वृक्ष के समान भूमि को प्राप्त कर स्थित हुए, (निधिमन्तं) कोश, खजाने के स्वामी को (अच्छ) सदा प्राप्त करो। (ब्रह्मणा इव विदथे) यज्ञ में जिस प्रकार दो विद्वान्

ब्राह्मण (उक्थशासा) उक्थ अर्थात् उत्तम वेदों के सूक्तों को कहने वाले होकर (जरेथे) वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (विदथे) ज्ञान उपदेश करने के अवसर में (ब्रह्माणा) वेद के विद्वान् (उक्थशासा) उत्तम वचन कहने वाले होकर (जरेथे) उपदेश करो। (दूता इव) और जिस प्रकार दो दूत (हव्या) हव अर्थात् युद्धों के अवसरों में संधि विग्रह कराने में कुशल (जन्या) जनों के हितकारक होकर (पुरुत्रा) बहुत से पुरुषों के त्राण करने वाले होकर (जरेथे) अपना संदेश कहते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी (हव्या) उत्तम वचनों के योग्य (जन्या) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले और (पुरुत्रा) बहुत सों के रक्षक एवं बहुत पदार्थों के स्वामी होकर (जरेथे) जीवन यापन करो।

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥

भा०—हे वर और वधू! (रथ्या इव) रथ में लगने योग्य दो अश्वों के समान या रथ में लगनेवाले चक्रों के समान एक साथ मिलकर (प्रातः-यावाणौ) प्रातः शीघ्र ही सब कार्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने वाले, (वीरा) वीर्यवान् वीर, विक्रमशील, (अजा इव) बकरा बकरी के समान परस्पर मिलकर रहते हुए या (अजा इव) हानि पहुंचाने वाले, शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली सेनाओं के समान, या (अजा इव) न उत्पन्न, अनादि दो आत्माओं के समान परस्पर उपास्य उपासक रूप से एक दूसरे के ऊपर प्रेमयुक्त, (यमा) यम नियम से रहकर, जितेन्द्रिय होकर (व-रम्) श्रेष्ठ कार्य और धन को (आ सचेथे) प्राप्त करो। और तुम दोनों (मेने इव) एक दूसरे का मान आदर करने वाली दो स्त्रियों या स्त्री पुरुषों के समान या मेना नामक दो पक्षियों के समान (तन्वा) शरीर से (शुम्भमाने) शोभायमान और (दम्पती इव) आदर्श पति, पत्नी

के समान दाम्पत्य सम्बन्ध का पालन करने वाले होकर (जनेषु) सब मनुष्यों के बीच (क्रतु-विदा) यज्ञ आदि उत्तम कर्म और श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ करके (आ सचेथे) परस्पर मिलकर रहो ।

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥

भा०—(शृङ्गा इव प्रथमा) दो सींग जिस प्रकार सबसे आगे बढ़ कर विरोधी को मारते या आगे बढ़े रहते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! वर वधुओ ! तुम दोनों भी (शृङ्गा इव) गिरि शिखरों के समान (नः) हमारे बीच में (प्रथमा) प्रथम, उत्तम, अग्रगण्य होकर (यातम्) जीवन व्यतीत करो । (शफा इव अर्वाक्) दो खुर या दो पैर जिस प्रकार शरीर के नीचे रहकर (तरोभिः जर्भुराणा) वेगों से जाने वाले होते है उसी प्रकार आप दोनों भी (शफौ) परस्पर मिलकर (अर्वाक्) नीचे, आश्रय होकर (तरोभिः) दुःखों के पार जाने के साधनों से (जर्भु-राणा) जाते हुए और सबका पालन पोषण करते हुए (यातम्) आगे बढ़ो । और (प्रतिवस्तोः) प्रति दिन (चक्रवाका इव) चकवा चकवी के समान ही (चक्रवाका) उत्तम सुन्दर वचन बोलने हारे होकर रहो । और (रथ्या इव उस्रौ) रथ में जुड़ने वाले उत्तम बैलों के समान (शक्रा) शक्तिमान् , बलवान् होकर (अर्वाञ्चा) आगे की तरफ बढ़ते (यातम्) जाओ ।

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव । श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हे वर-वधुओ ! वा राजा मन्त्री ! आप दोनों मिलकर (नावा इव) दो नावों के समान (नः) हमारे दोनों कुलों को (पारयतम्) दुःख और कर्त्तव्य सागर से पार करो (युगा इव) रथ

में लगे जूओं के समान या जूओं में जुड़े अश्वों के समान, (नभ्या इव) रथ चक्र के केन्द्र या नाभि में लगे दण्डों के समान, (उपधी इव) रथ के बीच के भाग में भार के सहने वाले, बगलों में लगे दो दण्डों के समान और (प्रधी इव) रथ के ऊपर लगे लोहे के दो हालों के समान (नः) हमें (पारयतम्) संकटों से पार करो । और दोनों (श्वाना इव) दांये बांये चलने वाले दो कुत्तों के समान रक्षक रहकर (तनूनां) हमारे शरीरों का (अरिषण्यौ) कभी हिंसन न करते हुए (खृगला इव) कन्धों पर लगे कवचों के समान (नः) हमारे शरीरों को नाश न होने देते हुए (अस्मान्) हमें (विस्त्रसः) विविध प्रकार के नाशकारी विपदा से (पातम्) बचाओ ।

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् । हस्ताविव तन्वे३ शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥४॥

भा०—आप दोनों (वाता इव) वायुओं या दो प्राणों के समान (अजुर्या) जरा रोगादि से भी नाश न होने वाले, सदा बलवान् और क्रियावान्, (नद्या इव) दो नदियों या दो जलधाराओं के समान (रीतिः) वेग से जाने या परस्पर मिलकर रहने वाले, (अक्षी इव) दो आंखों के समान एक ही पदार्थ को एक रूप से देखने वाले, समान प्रेममय होकर (चक्षुषा) दर्शन शक्ति से युक्त, विवेकी होकर (अर्वाक्) आगे (यातम्) जाओ और हमें आगे ले चलो ! और आप दोनों (हस्ता इव) दो हाथों के समान और (पादा इव) दो पैरों के समान (तन्वे) शरीर के लिये (शम्भविष्ठा) शान्ति कल्याण उत्पन्न करने वाले होकर (नः) हमें (वस्यः अच्छ नयतं) उत्तम २ धनों ऐश्वर्यों को प्राप्त कराओ । (२) इसी प्रकार अग्नि, जल भी प्राणों, जलधाराओं, चक्षुओं, हाथों पैरों के समान कार्यसाधक होकर हमें सुख प्राप्त करावें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

ओष्ठा॑विव॒ मध्वा॒स्ने वद॑न्ता॒ स्तना॑विव पिप्यतं जी॒वसे॑ नः।
नासे॑व नस्त॒न्वो॑ रक्षि॒तारा॒ कर्णा॑विव सु॒श्रुता॑ भूतम॒स्मे ॥ ६ ॥

भा०—(ओष्ठा इव आस्ने) मुख के ओठों के समान (मधु वदन्ता) मधुर, आनन्दप्रद वचन बोलते हुए (स्तना इव) बच्चों को स्तनों के समान (नः) हमें (जीवसे) जीवन वृद्धि के लिये (पिप्यतं) पुष्ट करो। (नासा इव) दोनों नाकों के समान (नः तन्वः रक्षितारा) हमारे शरीर की रक्षा करनेहारे और (कर्णा इव) दो कानों के समान (अस्मे) हमारे बीच (सुश्रुता) उत्तम रीति से श्रवण करने वाले होकर (भूतम्) रहो। (२) उसी प्रकार विद्युत् जलादि भी उत्तम वाद्य के समान बजने और शरीर में बल देने वाले, प्राण शक्ति देनेवाले और उत्तम सूक्ष्म शब्द सुनने के साधन बनें।

हस्ते॑व श॒क्तिम॒भि स॑न्द॒दी नः॒ क्षामे॑व नः॒ सम॑जतं॒ रजां॑सि।
इ॒मा गिरो॑ अश्विना युष्म॒यन्ती॒ः क्ष्णोत्रे॑णेव॒ स्वधि॑तिं॒ सं शि॑शीतम् ॥ ७ ॥

भा०—तुम दोनों (नः) हमारे बीच में (हस्ता इव) दो हाथों के समान (शक्तिम् अभिसन्ददी) शक्ति या दण्ड, या बलकारी साधनों को अपने में धारण करनेवाले रहो। और (क्षामा इव) जिस प्रकार आकाश और भूमि अपने बीच (रजांसि) समस्त लोकों या धूल कणों या जलों को धारते हैं उसी प्रकार आप दोनों आश्रय होकर (रजांसि) ऐश्वर्यों, और बल वीर्यों को (सम् अजतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करो और प्राप्त कराओ। हे (अश्विनौ) उत्तम अश्वों, अश्व सैन्यों के स्वामी राजा सेनापति! वा वायु अग्नि के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो! (युष्मयन्तीः) आप दोनों के कर्त्तव्यों को बतलाने वाली (इमाः गिरः) इन वाणियों को (क्ष्णोत्रेण इव स्वधितिम्) हथियार को शाण के

समान अधिक उज्ज्वल करने वाले गुण और कार्य से आप लोग (संशिशीतम्) और अधिक तीक्ष्ण और उज्ज्वल करो। (२) इसी प्रकार वायु अग्नि आदि भी शक्ति धारक तेजों के देने वाले हों और अपने गुणों को और उज्ज्वल रूप से दिखावें।

एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥५॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वामियो ! (गृत्समदासः) उत्तम हर्षों और सुखों को चाहने वाले, या उत्तम प्रवचनों में हर्षित होने वाले विद्वान् पुरुष (एतानि) इन (वाम्) तुम दोनों के (वर्धनानि) शक्तियों और बलों को बढ़ाने वाले (ब्रह्म) वेदोपदेश, ऐश्वर्य (स्तोमं) स्तुति वचन और उपदेश (अक्रन्) करें (तानि) उनको हे (नरा) नायक, नायिके ! तुम दोनों (जुजुषाणा) प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (उप यातम्) परस्पर समीप रहकर आगे बढ़ो। हम लोग (सुवीराः) उत्तम वीरों और वीर्यवान् पुत्र सन्तानादि युक्त होकर (बृहत्) बहुत उत्तम ज्ञान विज्ञान का (वदेम) उपदेश, कथोपकथन और तुम्हारे गुण वर्णन करें। इति पञ्चमो वर्गः॥

[४०]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—६ सोमापूषणावदितिश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ षड्डृचं सूक्तम् ॥

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्॥१

भा०—(सोमापूषणौ) सोम अर्थात् उत्पादक पिता और 'पूषा' पोषक माता, नर मादा, दोनों (रयीणां) नाना प्रकार के पशु सम्पदाओं

के और नाना ऐश्वर्यों के भी (जनना) उत्पन्न करने वाले होते हैं। और वे दोनों ही (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी एवं कामनाशील पुरुष और (पृथिव्याः) पृथिवी के समान विस्तृत घर का आश्रय और उसके समान बीज को धारण कर उत्पन्न करने वाली कन्या वा मातृ शक्ति के भी (जनना) उत्पन्न करने वाले होते हैं। वे दोनों ही सूर्य और पृथिवी के समान (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) उत्पन्न होने वाले जीवों एवं चराचर संसार के भी (गोपौ) रक्षा करने वाले, (जातौ) हो जाते हैं। उन दोनों को ही (देवाः) विद्वान् लोग (अमृतस्य) कभी नाश न होने वाले (अमृतस्य) सन्तान रूप 'अमृत' का (नाभिम्) केन्द्र या उत्पत्ति स्थान (अकृण्वन्) बनावें, मानें और जानें। प्रजातिरमृतम्। शत० ॥

सोमः—(१) स्वा वै म एषा इति तस्मात् सोमो नाम। शत० ३।९।४।२२॥ वह पुत्रोत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक प्रजा मेरी ही है। ऐसा कहने वाला पुरुष, प्रजापति, राजा सोम है।

(२) सोमः राज्यम् आदत्त ११।४।३।३॥ राजा वै सोमः॥ शत० ११।४।३।३॥ सोमो राजा राजपतिः॥१४।१।३।१२॥ स यदाह सम्राड् इति सोमं वा एतदाह। गो० पू० ५।१३॥ क्षत्रं सोमः॥ ऐ० २।३८॥ प्राणः सोमः श० ७।३।१।२॥ रेतः सोमः कौ० १३।७॥ सोमो रेतोऽदधात्॥ तै० १।६।२॥ सोमो वै ब्राह्मणः। ता० २३।२६।५॥

पूषा—इयं वै पूषा। इयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च। शत०। ४।४।२।२५॥ इयं वै पृथिवी पूषा। शत० २।५।४।७॥ प्रजननं वै पूषा श० ५।२।५।८॥ पशवः पूषा ऐ० २।२४॥ पूषा भागदुघः २।३।१।४।३॥

सोम राजा है, वीर्य है, वीर्यवान् पुरुष है। ब्राह्मण है। इसी प्रकार पूषा पृथिवी है, माता है। पशु-सम्पदा हैं और राष्ट्र में करसंग्रही अधिकारी भी पूषा है। देह में—प्राण और अपान सोम पूषा हैं। शरीर के

धातु पृथ्वी में सुवर्णादि के समान रयि हैं। शुक्र बीज और डिम्ब दिव् और पृथिवी हैं। उत्पन्न-गर्भ भुवन है। कामनाशील स्त्री पुरुष या उत्पादक तत्व 'देव' हैं।

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु २

भा०—(इमौ) ये दोनों स्त्री पुरुष (देवौ) एक दूसरे की कामना करते हुए, एक दूसरे के गुणों को प्रकाशित करने वाले (जायमानौ) सन्तति रूप से उत्पन्न होकर रहें तो सभी विद्वान् जन उनको भी (जुषन्त) प्रेम करते हैं। (इमौ) वे दोनों (अजुष्टा) न सेवन करने योग्य, अप्रीतिजनक (तमांसि) अन्धकारों अर्थात् शोक दुःखजनक कारणों और बुरे, काले कर्मों को (गूहताम्) विनाश करें। (आभ्याम्) इन दोनों (सोमपूषभ्याम्) सोम और पूषा, उत्पादक और पोषक पतिपत्नी रूप गृहस्थों के साथ मिलकर, इनके द्वारा ही (इन्द्रः) अज्ञान विपत्तिमय अन्धकार का नाश करने वाला विद्वान् पुरुष आचार्य और ऐश्वर्यवान् राजा (आमासु) गृह बनाने वाली, अपरिपक्व उमर वाली नवयुवति (उस्त्रियासु) भूमि-स्वरूप कन्याओं में (पक्वम्) परिपक्व वीर्य को (जनत्) उत्पन्न होने की व्यवस्था करे। बालविवाहों को सर्वथा रोक दे। (२) इसी प्रकार उत्तम आचार्य गृहस्थों से मिलकर उनकी अपक्व बुद्धियों में अपना परिपक्व ज्ञान दे। जैसे सूर्य पृथिवी दोनों से मिलकर 'इन्द्र' वायु या विद्युत् अपक्व भूमियों या खेतियों में पकाने योग्य अन्न को बड़ा करने और बीज फल ले आने वाला जल बरसा देता है। उसी प्रकार निर्बल प्रजाओं में सोम, सेनापति या अध्यक्ष और पूषा, भागदुध् संग्रहाधिकारी दोनों से मिलकर पक्व अन्न की व्यवस्था करे। (३) प्राण अपान द्वारा 'इन्द्र' आत्मा (आमासु) गृह रूप देहों में पक्व अन्न को खाकर बल उत्पन्न करता है।

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम्॥३॥

भा०—(सोमा पूषणा) सूर्य और पृथिवी दोनों (रजसः) लोकों, जनों के (विमानं) विशेष रूप से उत्पन्न करने वाले (सप्तचक्रं) सात ऋतु रूप चक्रों से युक्त (अविश्वमिन्वम्) विश्व अर्थात् जीवों के नाश न करने वाले (विषू-वृतं) सर्वत्र वर्त्तनेवाले या विशेष रूप से विविध सुखों का उत्पन्न करने वाला होकर पुनः वर्त्तने या लोटकर आने वाले (रथम्) रमण करने योग्य या वेगवान् रथ के समान संवत्सर को (जिन्वथः) चलाते हैं जिस प्रकार किसी रथ में सात चक्र हों और पांच रश्मि अर्थात् पाँच अश्वों या वेगवान् यन्त्र को चलाने की रासें या पट्टे हों, अच्छी प्रकार बनाया गया हो, वह (मनसा) ज्ञान और बुद्धिपूर्वक चलाया जाता हो उसको बलवान् दो पुरुष या, अग्नि और वायु, गैस दोनों तत्व चला रहे हों उसी प्रकार इस संवत्सर को वर्षण करने वाले सूर्य और पृथिवी दोनों (मनसा = नमसा युज्यमानं) अन्न द्वारा युक्त होने वाले (पञ्च रश्मिम्) पांचों ऋतु में दो या पांच प्रकार की ऋतूत्पादक सूर्य किरणों से युक्त संवत्सर को चलाते हैं। उसी प्रकार (सोमापूषणा) पुरुष और स्त्री दोनों (रजसः) वीर्य और रज दोनों के आश्रय पर (विमानं) विशेष रूप से बनने वाले (सप्त-चक्रम्) सात धातुओं के चक्र अर्थात् उत्पन्न होने और बदलते रहने की क्रिया से युक्त (अविश्वमिन्वम्) विश्व अर्थात् जीवगण जिसको नाश नहीं करते या जीव से जिसको पृथक् न रखा जा सके ऐसे (विषूवृतं) समस्त योनियों और लोकों में विद्यमान या विचित्र, अद्भुत रूप से और विविध रूपों के सुखों को देने वाले या विविध रूपों से सुखपूर्वक वर्त्तने, या चेष्टा करने वाले (मनसा युज्यमानम्) मन के द्वारा अश्व से रथ के समान जुड़ने या संचालित होने वाले (पञ्च-रश्मिम्) प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान

इन पांच प्रकार की रासों या प्रवर्त्तक शक्तियों से युक्त, या नाक, कान, त्वचा, आंख, और रसना इन पांच ज्ञानेन्द्रियों रूप ज्ञानप्रकाशक किरणों से युक्त (तं रथम्) इस, रमण करने योग्य देह को आत्मा और बुद्धि या प्राण और अपान के समान (जिन्वथः) पुष्ट करो ।

दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

भा०—(अन्यः) उन पूर्व कहे सोम और पूषा नर मादा वा पुरुष और स्त्री दोनों में से एक (दिवि) ज्ञान, ऐषणा, कामना, और लोक व्यवहार में, आकाश में सूर्य के समान (उच्चा) एक दूसरे की अपेक्षा ऊंचा (सदनं) स्थान (चक्रे) करता है और (अन्यः) दूसरा भागी, स्त्री (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी में अग्नि के समान या (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में विद्युत् के समान (सदनं चक्रे) अपनी स्थिति करे । वह गृहस्थ का सर्वाश्रय होने, पृथिवी के समान और पालक पोषक होने से अन्तरिक्ष गत वायु के समान रहे । वह पतिके अन्तःकरण में निवास करने से भी 'अन्तरिक्ष' में रहती है । (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पुरुवारं) वरने या स्वीकार करने योग्य बहुत से धनादि से युक्त (पुरुक्षुं) बहुतों से प्रशंसित, बहुत प्रकार के अन्नादि से पूर्ण (रायस्पोषं) ऐश्वर्य की पुष्टि या वृद्धि करने वाले (नाभिम्) मुख्य केन्द्र गृह को (अस्मे वि स्यताम्) हमारे उपकार के लिये बांधें । (२) देह में एक प्राण मूर्धा में रहता है दूसरा अपान पृथिवी वा मूल भाग नितम्ब या नाभि से नीचे रहता है तीसरा 'अन्तरिक्ष' अर्थात् देह के बीच के खोखले भाग में समान रूप से रहता है । वे दोनों इन्द्रियों की रक्षा करने वाले उत्तम अन्नपाचक, तेज, कान्ति के पोषक नाभि भाग को बांधते हैं । उसको दृढ़ करें ।

विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑ना ज॒जान॒ विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति ।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ॥५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों में से (अन्यः) एक पृथिवी भी सब पदार्थों को उत्पन्न करने से 'सोम' है वह (विश्वानि भुवना) सब प्रकार के भूतों और प्राणियों को (जजान) उत्पन्न करती और (अन्यः) दूसरा (विश्वम्) सबको (अभिचक्षाणः) प्रकाश द्वारा देखता और दिखाता हुआ (एति) प्राप्त होता है उसी प्रकार (अन्यः) पुरुष और स्त्री दोनों में से उत्पादक माता होने से वह भी 'सोम' है वह (विश्वानि भुवनानि) समस्त सन्तानों को उत्पन्न करे और (अन्यः) दूसरा पुरुष (विश्वम्) सब गृहस्थ के कार्य को (अभिचक्षाणः) देखता, उस पर निगरानी रखता हुआ (एति) आवे। ऐसे दोनों (सोमा पूषणा) सोम और पूषा, उत्पादक और पोषक माता पिता (मे धियं) मेरे मुझ पुरुष या राजा के धारण करने योग्य कर्मों की (अवतम्) रक्षा करें। हे (सोमापूषणा) स्त्री पुरुषो ! (युवाभ्यां) तुम दोनों के द्वारा हम लोग (विश्वाः) सब (पृतनाः) मनुष्यों को (जयेम) विजय करें, सबसे ऊंचे होकर रहें। (२) अपान सब रसों को उत्पन्न करता प्राण ज्ञानेन्द्रियों से देखता और वाणी से बोलता है। मेरे देह के कर्म या व्यापार को दोनों चलाते, सब देहों पर उन दोनों के बल से हम ऊंचे रहते हैं। (३) इसी प्रकार पिता पैदा करता, आचार्य उपदेश करता है कि वे दोनों मुझ राष्ट्र के धारण और ज्ञान बल की रक्षा करें। उनके द्वारा हम सब पर विजयी हों।

धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु विश्व॒मि॒न्वो र॒यिं सोमो॑ रयि॒पति॑र्दधातु ।
अव॑तु दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—(पूषा) पोषण कर्त्ता पुरुष (विश्वमिन्वः) सब प्रकार की बाधाओं और बाधक शत्रुओं को नाश करने वाला होकर (धियं) गृहस्थ

के धारण पोषण कर्त्तव्य को (जिन्वतु) पालन करे, बढ़ावे। (सोमः) उत्पादक माता (रयि-पतिः) ऐश्वर्य का पालक होकर (रयिं) ऐश्वर्य को (दधातु) धारण करे। (देवी) कामना करने हारी, उत्तम गुणों से युक्त स्त्री (अदितिः) माता होकर पुत्रों का (अवतु) पालन करे और वह (अनर्वा) विरोधी जन से रहित हो। इसी प्रकार (अदितिः) पिता भी (अनर्वा) सबसे उत्तम अश्व के समान गृहस्थ रथ का मुख्य सञ्चालक होकर (अदितिः) अखण्ड शासन और बल से युक्त या गृहस्थ सुखों का भोक्ता होकर (अवतु) पालन करे। हम (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर (विदथे) ज्ञानसम्पादन में और युद्धों और यज्ञों में (बृहद् वदेम) बड़े ज्ञान और वेदादि का उपदेश करें। (२) अपान धारण शक्ति बढ़ाता है सोम प्राण और वीर्य 'रयि' इस जड़ देह का पालक होकर धारण करता है। 'अदिति' अखण्ड नित्य चेतना शक्ति तेजोमयी होने से 'देवी' है वह (अनर्वा) निर्बाध, सर्वोपरि स्वतन्त्र होकर सबको पालती है। हम उसी की खूब चर्चा करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[४१]

गृत्समद ऋषिः ॥ १, २ वायुः। ३ इन्द्रवायू। ४—६ मित्रावरुणौ। ७—९ आश्विनौ। १०—१२ इन्द्रः। १३—१५ विश्वेदेवाः। १६—१८ सरस्वती। १९—२० द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, ११, १३, १५, १९, २०, २१ गायत्री। २, ५, ९, १२, १४ निचृत् गायत्री। ७ त्रिपादगायत्री। ८ विराड् गायत्री। १६ अनुष्टुप्। १७ उष्णिक्। १८ बृहती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलशालिन्! (ये) जो (ते)

तेरे (सहस्रिणः) सहस्रों सैनिकों तथा सहस्रों ऐश्वर्यों के स्वामी (रथासः) रथारोही, महारथ पुरुष हैं तू (तेभिः) उन्हों सहित (नियुत्वान्) खूब युद्ध करने वाले सैनिकों या रथों में नियुक्त अश्वों का स्वामी होकर (सोमपीतये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (आगहि) आ, प्राप्त हो।

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम योद्धाओं से युक्त सेनापते ! वा उत्तम यम नियमों से युक्त उनके पालन करने वाले जितेन्द्रिय ! (वायो) बलवान् और ज्ञान वान् पुरुष ! आप (आगहि) आओ। (अयं) यह मैं (शुक्रः) शीघ्र कार्य करने में कुशल सैनिक और शुद्धचित्त और तेजस्वी शिष्य होकर (ते गृहम्) तेरे द्वार (अयामि) प्राप्त होता हूं। और आप भी (सुन्वतः) ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजन तथा स्नान करने वाले स्नातक के (गृहम्) गृह को (गन्तासि) प्राप्त हों। समावर्त्तन काल में स्नातक गुरु को गृह पर बुलाकर आचार्य की पूजा, आदर सत्कार करता है।

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रवायू) इन्द्र, मेघ, और वायु दोनों जिस प्रकार (नियुत्-वतः) लक्षों किरणों से युक्त (गवाशिरः) किरणों के आश्रय रूप (शुक्रस्य) तेजस्वी सूर्य को प्राप्त होकर (गवाशिरः शुक्रस्य पिबतः) भूमि पर आश्रित जल का पान करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवन् और हे बलवन् ! सूर्य और वायु या मेघ और वायु के समान दानशील और बलवान् पुरुषो ! अथवा इन्द्र मेघ या सूर्य के समान सेचक और वायु के समान गर्भधारक गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (नियुत्वतः) नियम-व्यवस्था वाले या प्रबन्धक और (गवाशिरः) गो अर्थात्

वाणी के प्रधान आश्रय विद्वान् या आज्ञापक (शुक्रस्य) तेजस्वी पुरुष के समीप (आयातं) आओ और हे (नरा) नायक नेता पुरुषो ! आप (गवाशिरः) पृथ्वी पर स्थित या गौओं से प्राप्त होने वाले (शुक्रस्य) शुद्ध, अन्न जल और तेज देनेवाले बलवर्धक दुग्ध आदि और ओषधिरसों का (पिवतम्) पान करो। (२) अथवा—हे ज्ञान और वस्त्र के इच्छुक शिष्यो ! (गवाशिरः) इन्द्रियगणों में व्यापक शुक्र वीर्य का नियमकर्त्ता गुरु के अधीन (पिबतं) पालन करो।

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र के समान स्नेही, प्रजा को मरण से बचाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! और वरुण, वरण करने योग्य श्रेष्ठ और वरने वाले एवं रात्रि के समान शान्ति और आश्रय सुख देने वाले स्त्रीजन ! आप दोनों (ऋतावृधा) सत्य को बढ़ाने, सत्य से बढ़ने वाले और ऋत अर्थात् जल और धन की वृद्धि करने वाले सूर्य वायु और न्यायाधीश और राजा के समान होवो। (सुतः सोमः) वायु, सूर्य से उत्पन्न जिस प्रकार जल या ओषधिगण हो, राष्ट्र में उत्पन्न जिस प्रकार (सुतः सोमः) अभिषिक्त आज्ञापक या उत्पन्न ऐश्वर्य हो उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों का भी (अयं) यह (सुतः) उत्पन्न (सोमः) सौम्य पुत्र हो। उसी प्रकार (सुतः सोमः) स्नान किया, स्नातक शिष्य ज्ञानवान् हो। और आप दोनों (मम इत्) मेरा (हवम्) ग्रहण करने योग्य वचन (श्रुतम्) श्रवण करें।

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते ५।७

भा०—हे (राजाना) प्रजाओं के रंजन करने वाले, गुणों से शोभा पाने वाले उत्तम राजा रानी, राजा सचिव, गुरु शिष्यो ! एवं स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अनभिद्रुहा) परस्पर द्रोह न करते हुए

(उत्तमे) उत्तम (ध्रुवे) स्थायी (सहस्र-स्थूणे) सहस्रों अनेक एवं बलवान् स्तम्भों वाले (सदसि) घर, सभा-भवन आश्रय स्थान में, (आसाते) विराजो, रहो, आश्रय लो। अध्यात्म में—सर्वोत्तम सर्व प्रबल स्तम्भ से युक्त 'सदस्' परमेश्वर है। उसमें आत्मा और मन आश्रय लें। इति सप्तमो वर्गः ॥

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती।
सचेते अनवह्वरं ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सम्राजा) सूर्य चन्द्र या सूर्य और विद्युत् अग्नि के समान तेज से चमकने वाले, (घृतासुती) जल का आसेचन करते (आदित्या) अदिति अर्थात् पृथिवी का उपकार करते, और (दानुनः पती) दान, जल वर्षण के पालक हैं। वे दोनों सरल भाव से परस्पर मिलकर रहते हैं उसी प्रकार (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष भी (सम्राजा) सूर्य चन्द्र या सूर्य विद्युत् के समान तेजस्वी एवं सम्राट्, चक्रवर्ती राजा के समान सबके शास्ता हों। (घृतासुती) घृतयुक्त अन्न का सेवन करें, 'घृत' अर्थात् क्षरणशील शुक्र की 'आसुति' अर्थात् उत्तम प्रसव या प्रजा उत्पन्न करने वाले हों। (आदित्या) अदिति अर्थात् पुत्र के लिये हितकारी एवं एक दूसरे को स्वीकार करनेवाले (दानुनः पती) दान करने योग्य धनैश्वर्य के पालक, पति-पत्नी, होकर (अनवह्वरम्) कुटिलता या चोरी, लुका छिपी के भावों से रहित होकर, परस्पर किसी प्रकार छल कपट न रखते हुए (सचेते) संगत होवें।

गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (अश्विना) व्यापन गुण से युक्त अग्नि और वायु दोनों (नासत्यौ) कभी असत्य नहीं, अपने २ गुणों से सदा सत्य प्रत्यक्ष परिणाम प्रकट करते हैं वे दोनों (रुद्रा) शब्द करने वाले,

होकर (नृपाय्यं वर्तिः) मनुष्यों और प्राणों के पालन करने योग्य मार्ग पर गमन करते हैं। उसी प्रकार हे (अश्विना) एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले (नासत्यौ) कभी असत्याचरण न करने वाले, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने और मर्यादाओं को पालने वाले, उत्तम वचन बोलने वाले होकर (गोमत्) बहुतसी गौवों, किरणों, भूमियों और उत्तम इन्द्रियों से युक्त (अश्वावत्) अश्वों से युक्त (नृपाय्यं) मनुष्यों के मान्य, और उनके पालन करने योग्य (वर्तिः) मार्ग पर (यातम्) जाओ।

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः॥८॥

भा०—हे (वृषण्वसू) धनैश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, वर्षणशील उदार पुरुषों को बसाने वाले, बलवान् पुरुषों के बीच में स्वयं रहने वाले, आप दोनों ! (वर्त्तिः यातम्) ऐसे मार्ग पर चलें (यत्) जिसको (न परः) न दूर रहने वाला और (न अन्तरः) न बीच में रहने वाला मध्यस्थ (दुःशंसः) दुष्कीर्त्तियुक्त बदनाम (रिपुः मर्त्यः) शत्रु मनुष्य ही (आ-धर्षत्) आक्रमण कर सके। अथवा—(यत्) जिन तुम दोनों को दूर और समीप का भी पुरुष न दबा सके वैसे आप दोनों होकर रहो। अथवा—(यत्) जिस धन को दूर का और समीप का भी न छीन सके वह हमें (वोढम्) प्राप्त कराओ। क्रियापद पूर्व या पर मन्त्र से लेने या स्वतन्त्र अध्याहार करने से तीन अर्थ होते हैं।

ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्।
धिष्ण्या वरिवोविदम्॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) व्यापक गुणों वालो ! या अश्वादि के आरोही पुरुषों के स्वामियो ! उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (धिष्ण्या) बुद्धिमानो ! उत्तम आसनों के योग्य ! एवं उत्तम स्तुति के योग्य स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (वरिवोविदम्) उत्तम सेना और धन को प्राप्त कराने वाले

(पिशङ्ग-संदृशम्) सुवर्ण के समान दिखलाई देने वाले, (रयिम्) ऐश्वर्य को (नः आ वोढम्) हमें प्राप्त कराओ। (२) इसी प्रकार वायु अग्नि आदि तत्व भी उत्तम सुन्दर धनादि प्राप्त कराने वाले (रयिं) वेग युक्त रथ को (वोढम्) वहन करें।

इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग म॒हद्भ॒यम॒भी षदप॑ चुच्यवत्।
स हि स्थि॒रो विच॑र्षणिः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता वीर पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वमार्गप्रकाशक होकर (महत्) बड़े भारी (सत्) विद्यमान (भयम्) भय को (अभि) मुकाबला करके उसको (अपचुच्यपत्) दूर कर देता है। (हि) क्योंकि (सः) वह ही (स्थिरः) स्थिर, अन्त तक ठहरने में समर्थ, और (विचर्षणिः) विविध उपायों को देखने और दिखाने वाला, और (विचर्षणिः) विविध प्रजाओं का स्वामी है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्र॑श्च मृ॒ळया॑ति नो॒ न नः॑ प॒श्चाद॒घं न॑शत्।
भ॒द्रं भ॑वाति नः पु॒रः ॥ ११ ॥

भा०—(च) और जब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर राजा, अपना आत्मा और प्रभु परमेश्वर (नः) हमें (मृडयाति) सुखी करता है तब (नः) हमें (पश्चात्) पीछे से और (पुरः) आगे से भी (अघं न नशत्) पाप नहीं लगता, पापाचरण हम तक नहीं पहुंचता, नहीं सताता और साथ ही (नः पुरः पश्चात्) हमारे आगे पीछे सर्वत्र (भद्रं भवति) सुख कल्याण होता है।

इन्द्र॒ आशा॑भ्य॒स्परि॒ सर्वा॑भ्यो॒ अभ॑यं करत्।
जेता॒ शत्रू॒न्विच॑र्षणिः ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, (विचर्षणिः) सब का द्रष्टा परमेश्वर और विविध विद्वान् मनुष्यों का स्वामी, राजा, ही (शत्रून्) सब नाशकारी भीतरी और बाहरी शत्रुओं को जीतने हारा है। वही (सर्वा-

भ्यः आशाभ्यः परि) समस्त दिशाओं से (अभयं) अभय (करत्) करे। वह सब भयों को दूर करे।

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले पूज्य पुरुषो ! आप लोग (आ गत) आइये। (इदम् बर्हिः) यह उत्तम आसन है इस पर (आ नि सीदत) आकर विराजिये। हे अध्यक्ष पुरुषो ! यह (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजाजनों का राष्ट्र है इस पर अध्यक्ष रूप से रहें (मे) मेरे (इमं हवम्) इस उत्तम वचन, को (शृणुत) श्रवण करें। अध्यक्ष जन प्रजा के आह्वान, पुकार और निवेदन का श्रवण करें।

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः।
एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (अयं) यह (तीव्रः) तीव्र, अतिवेग से उत्पन्न होने वाला, (मत्सरः) हर्ष को उत्पन्न करने वाला आनन्द (मधुमान्) ज्ञान विज्ञान युक्त, या अन्न जलादि से युक्त (शुन-होत्रेषु) विज्ञान और सुखों के देने वाले विज्ञान वृद्ध और धनसम्पन्न पुरुषों के बीच में हैं। (एतं) इस (काम्यं) कामना योग्य, उत्तम रस को (पिबत) पान करो, प्राप्त करो, भोगो।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुद्-गणाः) विद्वान् मनुष्यो ! हे वीर बलवान् पुरुष गण ! आप लोग (इन्द्र-ज्येष्ठाः) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को अपने में सर्व श्रेष्ठ बनाकर धारण करने वाले, (देवासः) दानशील और (पूष-रातयः) स्वयं पुष्ट या सम्पन्न होने पर दान देने वाले, या पूषा

पोषक राजा पिता आचार्य आदि को अन्न, कर आदि देने वाले, या 'पूषन्' भूमि के अनुसार दान देने भूमि से द्रव्य प्राप्त करने वाले होवो। आप (मे) मेरे (हवम्) वचन का (श्रुत) श्रवण करो। इति नवमो वर्गः॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥

भा०—हे (अम्ब) अध्यापन करने, शिक्षा देने वाली आचार्याणि और हे मातः ! हे (अम्बितमे) अध्यापन करने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! सबसे अधिक पूजा योग्य ! (नदीतमे) उपदेश करने वालों में सबसे अधिक पूज्य ! हे (देवितमे) विद्यादि दान करने वाली स्त्रियों में सर्व श्रेष्ठ ! हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली ! हम (अप्रशस्ताः इव) उत्तम ज्ञानोपदेश, और प्रवचन से रहित अकुशल, मूर्ख, बालक के समान (स्मसि) हैं। (नः) हमें (प्रशस्तिं) उत्तम ज्ञानोपदेश (कृधि) कर। (२) परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ ज्ञानप्रद, सर्वैश्वर्यसम्पन्न, मातृतुल्य है। वह हम बालक समान अज्ञानियों को ज्ञानवान्, उत्तम बनावे।

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली विदुषि ! स्त्रि ! (त्वे देव्याम्) तुझ विदुषी ज्ञान और सुखदात्री के आश्रय पर ही हमारे (विश्वा-आयूंषि) समस्त आयु और जीवन सुख (श्रिता) आश्रित हैं। तू (शुन-होत्रेषु) सुख और ज्ञान देने वाले वृद्ध, ज्ञानी पुरुषों के बीच में (मत्स्व) आनन्दित हो और (नः) हमारी (प्रजां) उत्तम सन्तान को (दिदिड्ढि) उपदेश करे। (२) गृहस्थपक्ष में पति के सब आयु, जीवन, सुख (देव्यां) कमनीय, प्रेममयी स्त्री पर आश्रित हैं वह (शुन-होत्रेषु) सुख प्रद पदार्थों पर सुखी रहे, उत्तम सन्तान प्रदान करे।

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम विज्ञानयुक्त विदुषि ! स्त्रि ! हे (वाजिनीवति) ऐश्वर्य और अन्न, ज्ञान और बल युक्त ! हे (ऋतावरि) सत्याचरण, उत्तम ज्ञान, धनैश्वर्य अन्नादि को स्वीकार करने वाली ! तू (इमानि) ये (ब्रह्म) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य (जुषस्व) प्राप्त कर, सेवन कर। (या) जिन (प्रिया) प्रिय, तृप्ति कर (मन्म) मनन करने योग्य, मन के प्रिय पदार्थों को (गृत्समदाः) विद्वान् होकर आनन्द प्रसन्न रहने वाले विद्वान् जन (देवेषु) विद्वानों में (जुह्वति) प्रदान करते और स्वयं लेते हैं ।

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

भा०—हे सूर्य और भूमि के समान प्रकाशक, सेचक और उत्पादक (युवाम्) आप दोनों (यज्ञस्य) यज्ञ, परस्पर सत्संग, दान, उपासना आदि उत्तम कर्म और गृहस्थादि यज्ञ के कार्य के लिये (प्र इताम्) आगे बढ़ो। (युवाम् इत्) आप दोनों को ही हम इस निमित्त (आ वृणीमहे) अच्छी प्रकार वरण करते हैं। और इसी कार्य के लिये (अग्निं) अग्रणी नायक और (हव्य-वाहनम् आवृणीमहे) ग्राह्य ज्ञान, और उत्तम अन्न आदि पदार्थ को धारण करने वाले विद्वान् पुरुष को हम वरण किया करते हैं।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य के समान दोनों ही तेजस्वी, एक दूसरे की कामना करने वाले, और पृथिवी के समान विशाल और सर्वाश्रय होकर (दिवि-स्पृशम्) उत्तम ज्ञान और शुभ कामना में एक दूसरे का स्पर्श या प्राप्ति या दान प्रतिदान कराने वाले (इमं) इस (सिध-

म्) नाना सुखों के साधक (यज्ञं) उत्तम गृहस्थ, सत्संग, उपासना आदि उत्तम कर्म को (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (यच्छताम्) स्थापित करो ।

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥ १० ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों के (उपस्थम्) समीप ही आपकी उपस्थिति या गृह में (अद्रुहाः) परस्पर द्रोह न करने वाले (यज्ञियाः) यज्ञ, परस्पर सत्संग में विराजने वाले वा 'यज्ञ' सर्वोपास्य प्रभु परमेश्वर के उपासक वा 'यज्ञ' विद्यादि दान करने में कुशल पुरुष (इह) सब स्थान में (सोम-पीतये) ओषधि अन्न और ऐश्वर्य के पान या उपभोग करने के लिये (आ सीदन्तु) आदर पूर्वक विराजें । इति दशमो वर्गः ॥

[४२]

गृत्समद ऋषिः ॥ कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, २, ३ त्रिष्टुप् ॥
तृचं सूक्तम् ॥

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् । सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् १

भा०—हे (शकुने) शक्तिशालिन् ! विद्या प्रदान करने में समर्थ वा पक्षी के समान निःसंशय होकर दूर २ तक भ्रमण करनेहारे ! विद्वन् ! या पक्षी के समान आकाशवत् सर्वोपरि मार्ग से जाने में समर्थ ! हे शान्तिदायक! अपने और दूसरों को ऊपर उठाने में, उपदेश करने और शत्रु का नाश करने में समर्थ ! (अरिता इव नावम्) अरित्र अर्थात् चप्पू जिस प्रकार नाव को आगे बढ़ाते हैं अथवा (अरित्ता इव नावम्) 'अरिता' गति देनेवाला कैवट जिस प्रकार नाव को चलाता है, उसी प्रकार आप भी (कनिक्रदत्) उपदेश करते हुए, या आज्ञा प्रदान करते हुए

(प्र-ब्रुवाणः) अधीन शिष्यों के प्रति विद्या का प्रवचन या अध्यापन करते हुए (जनुषम्) शिष्य को विद्या में उत्पन्न या निष्णात करने वाली, उसको विद्या-सम्बन्ध से नया जन्म देनेवाली या ज्ञान उत्पन्न करने वाली (वाचम्) वाणी का (इयर्त्ति) प्रदान करें। और आप (सुमंगलः च) शुभ मंगलजनक, कल्याणकारी, उत्तम उपदेश देने वाले, पाप के नाशक, मुख आदि अंग के समान प्रिय (भवासि) होवो। (काचित्) कोई भी किसी प्रकार का भी (अभिभाः) तिरस्कार (विश्व्या) सर्व सामान्य से आने वाला (त्वा माविदत्) तुझे प्राप्त न हो। (२) परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—परमेश्वर ही हमारी अर्थज्ञापक वाणी को प्रकट करता है, एवं वेद का उपदेश करता है, वह शक्तिमान् शान्तिदायक होने से शकुन है। पापनाशक कल्याणजनक होने से सुमंगल है। कोई भी 'अभिभा' तिरस्कार या ज्योतिः अग्नि आदि उस तक नहीं पहुंचते। वह सबसे परे और ऊंचा है। आत्मा (जनुषं कनिक्रदत्) जन्म को लेता है। वाणी बोलता है, अंग देह के समान या उससे युक्त होने से 'सुमङ्गल' है। कोई बाहरी ज्योति या नाशकारी शक्ति या आवरण उस तक नहीं पहुंचता।

'शकुनिः'—शक्नोत्युन्नेतुमात्मानम्, शक्नोति नदितुम् इति वा, शक्नोति तकितुम् इति वा, सर्वतः शंकरोस्त्विति वा, शक्नोते र्वा।

'मङ्गलः'—मंगलं गिरतेः, गृणात्यर्थे, गिरत्यर्थान् इति वा, मङ्गल मङ्गवत्। मज्जयति पापमिति नैरुक्ताः। मां गच्छत्विति वा।

मा त्वा॑ श्ये॒न उद्व॑धी॒न्मा सु॑प॒र्णो मा त्वा॑ विद॒दिषु॑मान्वी॒रो अस्ता॑।
पित्र्या॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ कनि॑क्रदत्सुम॒ङ्गलो॑ भद्रवा॒दी व॑दे॒ह ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन्! प्रजाओं को शान्तिदायक पुरुष! (श्येनः) बाज़ और (सुपर्णः) गरुड़ जिस प्रकार निर्बल पक्षियों को मार डालता है उस प्रकार (श्येनः) बाज़ के समान आक्रमण करने वाला वेगवान्

अश्वारोही शत्रु (त्वा) तुझ को (मा उद् बधीत्) तुझसे प्रबल होकर न मारे। (सुपर्णः) उत्तम पालनकर्त्ता, वेग से जाने वाला उत्तम रथी, महारथी भी (त्वा मा उद् वधीत्) तुझे तुझसे उच्च शक्तिमान् होकर न मार सके। (इषुमान् अस्ता) धनुष बाण वाला शिकारी बाण फेंककर जिस प्रकार पक्षी का घात करने के लिये उसे खोजता और मारकर पकड़ लेता है उसी प्रकार (इषुमान्) वाणादि शस्त्रों से सुसज्जित (अस्ता) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और शस्त्रों को फेंकने में कुशल शत्रु (त्वा मा विदत्) तुझे न पकड़ सके। तू (पित्र्याम् प्रदिशम् अनु) बाप दादों से चली आई, सनातन, या प्रजा पालन करने वाले मां बाप के योग्य उत्तम दिशा का अनुसरण करता हुआ, (कनिक्रदत्) उत्तम आज्ञा और उपदेश करता हुआ, (सुमङ्गलः) उत्तम कल्याणजनक और (भद्रवादी) सेवन करने योग्य, सुखप्रद वचन कहता हुआ (इह) इस लोक में (वद) उत्तम वचन कह। (२) परमेश्वर को (श्येनः मा उद्वधीत्) ज्ञानवान् पुरुष अतिक्रमण नहीं करता है, उत्तम बलवान् पालक भी नहीं पहुंचता, (इषुमान्) इच्छावान् आत्मा या मन भी उसको नहीं पाता, वह पिता के योग्य मार्ग अनुसरण करके सब सुखकारी वचन उपदेश करता है।

अव॑ क्रन्द दक्षि॒ण॒तो गृ॒हाणां॑ सु॒म॒ङ्गलो॑ भद्र॒वा॒दी श॑कुन्ते।
मा न॑ः स्ते॒न ई॑शत॒ माघशं॑सो बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीरा॑ः ॥३॥११॥

भा०—हे (शकुन्ते) शक्तिशालिन्! हे ज्ञानवन्! शान्तिकर! आप (गृहाणां) घरों के बीच (दक्षिणतः) दायें ओर से हमारे बीच दायें विराजकर (अव क्रन्द) उपदेश करो। आप (सुमङ्गलः) उत्तम कल्याणकारी और (भद्रवादी) हितकारी वचन कहने वाले हो। (स्तेनः) चोर-स्वभाव का पुरुष (नः मा ईशत) हम पर शक्ति शाली न हो। (अघशंसः) पाप की बात कहने या सिखाने वाला या 'अघ' पापाचार इत्यादि से शासन करने वाला घोर, क्रूर, हत्यारा (नः मा ईशत) हम

पर शासन न करे। हम लोग (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् और पुत्रों से युक्त होकर (विदथे) संग्राम और ज्ञान यज्ञादि में (बृहत्) तुम्हारा बड़ा यश (वदेम) गान करें। पहरेदार लोग घरों के दायें से पहरा दिया करें और विद्वान् मान्य पुरुष घरों, गृहजनों के बीच दायें बैठकर उपदेश करें। पिता के समान वृद्ध जनों को दायें रखना आदर सूचक है। उनको बायें या पीठ पीछे न करना चाहिये। इत्येकादशो वर्गः॥

[४३]

गृत्समद ऋषिः॥ कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती ३ निचृज्जगती २ भुरिगतिशक्करी॥ तृचं सूक्तम्॥

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति॥१॥

भा०—(वयः शकुन्तयः) जिस प्रकार पक्षी गण (प्रदक्षिणित् ऋतुथा अभिगृणन्ति) आकाश में चक्कर लगाते हुए ऋतु ऋतु के अनुसार अपनी २ बोली बोलते हैं उसी प्रकार (शकुन्तयः) शक्ति शाली वीर पुरुष और शान्तिकारक विद्वान् जन (कारवः) शिल्पीजन और कर्मनिष्ठ ज्ञानोपदेश करने वाले उत्तम जन (प्रदक्षिणित्) दक्षिण हाथ या आदरणीय स्थान पर विराजकर (ऋतुथा) ज्ञान और पदाधिकार के अनुसार (वदन्तः) आज्ञा आदि वचन करते हुए (अभिगृणन्ति) उपदेश दिया करें। वह (सामगाः इव) सान्त्वना देने वालों या साम उपाय के वक्ता दूत और समत्व का उपदेश करने वाले और साम गायन करने वाले विद्वान् के समान (उभे वाचौ) दोनों प्रकार की, ऐहिक और पारमार्थिक, स्वपक्ष परपक्ष दोनों के अनुकूल या सन्धि और विग्रहयुक्त वाणियों के समान सुख दुःख दोनों के जनक वाणियों को विवेक पूर्वक (वदति) कहे। और (गायत्रं त्रैष्टुभं) साम गायन करने वाला पुरुष जिस प्रकार गायत्री

और त्रिष्टुभ् छन्दों से उत्पन्न साम को गान करके (अनु राजति) उत्तम शोभा पाता और श्रोताओं का मन अनुरञ्जित करता है उसी प्रकार राज दूत (गायत्रं) 'गाय-त्र' अर्थात् प्रार्थना स्तुतिकर्त्ता को त्राण करने वाले और 'त्रैस्तुभं' अर्थात् उत्साहादि त्रिविध शक्तियों से शत्रु का नाश करने वाले राष्ट्र बल को (अनु) प्राप्त करके (राजति) सूर्य के समान चमकता है। इसी प्रकार विद्वान् उपदेष्टा (गायत्रम्) उपदेष्टा ब्राह्मण वर्ग और (त्रैष्टुभं) अर्थात् क्षात्र वर्ग को (अनु) अपने वश करके (राजति) प्रकाशित हो या उनको अनुरञ्जित करे।

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥

भा०—हे (शकुने) शक्तिशालिन् ! हे शान्ति कराने हारे ! विद्वन् ! राजदूत ! (उद्गाता इव साम) उद्गाता जिस प्रकार साम का गान करता है उसी प्रकार तू (उद्गाता) उत्तम पद से आज्ञा देने वाला और प्रवक्ता भी (साम) समता को उत्पन्न करने वाले, शान्ति-कारक वचन का उपदेश कर। ब्राह्मणाच्छंसी (ब्रह्मपुत्रः इव) ब्रह्मा अर्थात् चतुर्वेद वेत्ता विद्वान् का पुत्र, शिष्य जिस प्रकार (सवनेषु) यज्ञों में ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्रों और सूक्तों का उच्चारण और प्रवचन करता है। उसी प्रकार तू भी (ब्रह्मपुत्रः) महान् राष्ट्रैश्वर्य के पुरुषों का त्राता या राष्ट्र का सच्चा पुत्र उसको दुःखों से त्राण करने वाला होकर (सवनेषु) ऐश्वर्यों के निमित्त और (सवनेषु) अभिषेक कालों में (शंससि) शासन कर, उत्तम वचन कह। (वृषा इव वाजी) वीर्यसेचन में समर्थ बल-वान् सांड या अश्व जिस प्रकार (शिशुमतीः) गौओं या घोडियों को (अपीत्य) पाकर गर्जता या हिंकार शब्द करता है और जिस प्रकार अन्नो-त्पादक वृष्टिकर्त्ता मेघ प्रजा युक्त भूमियों पर आकर गर्जता है, हे विद्वन् !

शक्तिशालिन् ! तू भी उसी प्रकार (शिशुमतीः) सन्तानों से युक्त प्रजाओं और गृहस्थ स्त्रियों को (अपीत्य) प्राप्त होकर, घरों २ में जाकर (नः) हमें (सर्वतः) सब प्रकार (भद्रम्) कल्याणकारी वचन का (आ वद) उपदेश किया कर। हे (शकुने) शक्तिशालिन् ! शान्तिकारक ! तू (नः) हमें (विश्वतः) सब प्रकार से (पुण्यम्) धर्मानुकूल पुण्य वचन (आ वद) कहा कर।

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥३।१२।४।२

भा०—हे (शकुने) शान्तिदायक ! शक्तिशालिन् ! (त्वं) तू जब भी बोलता हो तब २ (भद्रम् आ वद) दूसरों के कल्याणकारी वचन ही कहाकर। और (तूष्णीम् आसीनः) जब तू मौन बैठे तब भी (नः) हमारे लिये (सुमतिम्) शुभ मति, संकल्प (चिकिद्धि) किया कर। (कर्करिः) कद्दू का फल (उत्पतन्) जब जल में उतराने वाला अर्थात् सूख जाता है तभी वह वाद्य में लगकर सुरीला शब्द करता है उसी प्रकार तू भी (उत्-पतन्) जब उत्तम पद पर आरूढ़ हो (कर्करिः) प्रधान कार्य कर्त्ता होकर (वदसि) बोले तब भी (भद्रम् आ वद) शुभ ही वचन कह। मदमत्त या गर्वी होकर कुवाच्य मत कह। हम (सुवीराः) उत्तम वीर और बलवान् पुत्रों से युक्त होकर (विदथे) संग्राम और यज्ञ में (बृहत् वदेम) तेरे बड़े यश का वर्णन करें। इति द्वादशो वर्गः॥ इति द्वितीये मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः॥ इति गार्त्समदं द्वितीयं मण्डलम्॥ इति द्वादशो वर्गः॥

॥ इति द्वितीयं मण्डलं समाप्तम्॥

Here end the Sukhtas of

गृत्समदऋषि

अथ तृतीयं मण्डलम्

[१]

गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ९, ११, १२, १५, १७, १९, २० निचृत् त्रिष्टुप् । २, ६, ७, १३, १४ त्रिष्टुप् । १०, २१ विराट् त्रिष्टुप् । २२ ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् । ८, १६, २३ स्वराट् पङ्क्तिः । १८ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

सोम॑स्य मा त॒वसं॒ वक्ष्य॑ग्ने॒ वह्निं॑ चकर्थ वि॒दथे॑ यज॑ध्यै ।
दे॒वाँ अच्छा॑ दीद्य॑द्युञ्जे॒ अद्रिं॑ शमा॒ये अ॑ग्ने त॒न्वं॑ जुषस्व ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (सोमस्य) सोम के (तवसं) बलका (मा) मुझको (वक्षि) उपदेश कर । सोम अर्थात् वीर्य रक्षा और ब्रह्मचर्य इसी प्रकार 'सोम' ऐश्वर्य से उत्पन्न होने वाले बल से युक्त होने का मुझको उपदेश कर । और (विदथे) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले यज्ञ और संग्राम और ज्ञान के कार्य में (यजध्यै) संग रखने, वेतन और ज्ञान देने के लिये मुझे (वह्निं) कार्यभार उठाने में समर्थ और तेजस्वी (चकर्थ) बना । मैं (अच्छा) साक्षात् (दीद्यत्) तेजस्वी होकर (देवान्) देव, अर्थात् उत्तम गुणों और शक्तियों को (युञ्जे) उपयोग करूं, उनको प्राप्त करूं और मैं (तुझ अद्रिम्) मेघ के समान दुःखों सन्तापों को शान्त करने वाले, को प्राप्त होकर (शमाये) शान्ति प्राप्त करूं और हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (तन्वं) तेरे शरीर को (जुषस्व) प्रेम से रख ।

प्राञ्चं॑ य॒ज्ञं च॑कृम॒ वर्ध॑तां॒ गीः स॒मिद्भि॑र॒ग्निं नम॑सा दुवस्यन् ।
दि॒वः श॑शासुर्वि॒दथा॑ क॒वीनां॒ गृत्सा॑य चित्त॒वसे॑ गा॒तुमी॑षुः ॥२॥

भा०—हम लोग (यज्ञं) परस्पर के संग और विद्या आदि दान को (प्राञ्चं) उत्तम और उन्नति की ओर जाने वाला, उत्कृष्ट (चक्रम) बनावें । अथवा—(यज्ञं) उपासना और सत्संग करने योग्य (प्राञ्चं) उत्तम पद को प्राप्त उत्कृष्ट पुरुष को हम (नमसा चक्रम) आदर पूर्वक व्यवहार करें । जिससे (गीः) उत्तम ज्ञान की वाणी (वर्धताम्) बढ़े । (समिद्भिः अग्निम्) अग्नि को जिस प्रकार समिधाओं द्वारा और अधिक तीव्र किया जाता है उसी प्रकार (समिद्भिः) सत्संगों और उत्साहजनक वचनों से और (नमसा) नमस्कार और विनय व्यवहार से (अग्निम्) ज्ञानवान्, अग्र नेता, प्रधान पुरुष को (दुवस्यन्) सब लोग सेवा करें (दिवः) आकाश से जिस प्रकार मेघ जल प्रदान करते हैं और (दिवः) तेजस्वी सूर्य से जिस प्रकार किरणें प्रकाश देती हैं उसी प्रकर (दिवः) प्रकाशमय प्रभु या उत्कृष्ट आचार्य से शिक्षा प्राप्त (कवीनाम्) मेधावी, विद्वान् पुरुषों में से विद्वान् लोग (विदथा) नाना ज्ञानों का (शशासुः) उपदेश करें और वे ही (गृत्साय) उत्तम बुद्धिमान् (तवसे चित्) और बलवान् पुरुष को (गातुम्) ज्ञान मार्ग (ईषु) दें । (२) यज्ञ, प्रजा पालक पुरुष को आगे बढ़ावें, उसकी आज्ञा बढ़े, उसका आदर करें, विद्वानों में से ज्ञान दें, बुद्धिमान् बलवान् के हाथ (गातुम्) पृथिवी प्रदान करें ।

मयो॑ द॒धे मे॒धिरः॑ पू॒तद॑क्षो दि॒वः सु॒बन्धु॑र्ज॒नुषा॑ पृथि॒व्याः ।
अवि॑न्दन्नु दर्श॒तम॒प्स्व१॒॑न्तर्दे॒वासो॑ अ॒ग्निम॒पसि॒ स्वसॄ॑णाम् ॥३॥

भा०—(मेधिरः) उत्तम बुद्धि से युक्त, प्रज्ञावान्, (पूतदक्षः) ज्ञान और कर्म में पवित्र और उत्तम बलवान् (पुरु सुबन्धुः) सब का उत्तम बन्धु के समान प्रेमी होकर (जनुषा) अपने जन्म से (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा और (पृथिव्याः) पृथिवी के निवासी प्रजा को भी (मयः) सुख शान्ति (दधे) प्रदान करता है । (देवासः)

विद्वान् लोग (अप्सु अन्तः अग्निम्) जलों के बीच प्रकाशक अग्नि विद्युत् के समान ही (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (दर्शतम्) गुणों और तेज से दर्शनीय, एवं ज्ञान से व्यवहारों के देखने वाले पुरुष को (नु) ही (अविन्दन्) प्राप्त करें और उसी को (स्वसृणाम्) स्वयं आगे बढ़ने वाली प्रजाओं के (अपसि) काम में भी (अग्निम्) अग्रणी नायक रूप से (अविन्दन्) प्राप्त करें। (२) ज्ञानवान्, शुद्ध, बल-ज्ञानवान्, सबका उत्तम बन्धु परमेश्वर (जनुषा) जगत् को उत्पन्न कर या स्वभाव से सकका सुख देता है। विद्वान् जन उसी दर्शनीय प्रभु को प्राणों में और लोकों में भी स्वयं देह से देहान्तर में जाने वाले जीवों के बीच भी (अग्नि) तेजस्वी रूप से प्राप्त करते हैं।

अ॒व॑र्धयन्त्सु॒भगं॑ स॒प्त य॒ह्वीः श्वे॒तं ज॑ज्ञा॒नम॑रु॒षं म॑हि॒त्वा।
शिशुं॒ न जा॒तम॒भ्या॑रु॒रश्वा॑ दे॒वासो॑ अ॒ग्निं जनि॑म॒न्वपुष्यन् ॥४॥

भा०—मानों जिस प्रकार (सप्त यह्वीः) सात बड़ी पूज्य माताएं माता, माता की बहिन, बालक की बड़ी बहिन, पिता की बड़ी बहिन, भाई पिता के बड़े और छोटे भाईयों की स्त्रियें अर्थात् चाची और ताई सभी मातृतुल्य पूज्य स्त्रियें मिलकर (सुभगं श्वेतं जज्ञानं अरुषं शिशुं न अवर्धयत्) सौभाग्यशील सुन्दर गौर, उज्ज्वल उत्पन्न होते बालक को बढ़ाते हैं और जिस प्रकार (सप्त यह्वीः) सर्पणशील जलधारा चमकते अग्निरूप विद्युत् या सूर्य को महान् सामर्थ्य से बढ़ाती है उसी प्रकार (सप्त यह्वीः) बड़ी २ शक्तियां—राष्ट्र की सात प्रकृतियां, स्वामी, अमात्य, सुहृत् कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य—(सुभगं) उत्तम ऐश्वर्य शील, सुख से सेवा करने योग्य, (श्वेतम्) युद्ध में शीघ्रगामी शुद्ध वर्ण के निष्कलंक शुभकर्मा (अरुषं) रोषरहित, तेजस्वी, सूर्य के समान उज्ज्वल पुरुष को (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से (अवर्धयन्) बढ़ती हैं। (अश्वाः = अस्वाः) जिनको अपने पुत्र न हों ऐसी भगिनी जन जैसे (शि-

शुं न जातं) नवजात शिशु को लेने पुचकारने के लिये (अभि आरुः) प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार (अश्वाः) विद्याओं में व्याप्त विद्वान् जन और अश्वारोही वीर पुरुष और उनकी सेनाएं तथा (देवासः) विजयेच्छुक वीर राजपुरुष और विद्वान् पुरुष (जातम्) उस प्रसिद्ध (अग्निम्) अग्रणी नायक पुरुष को (अभि आरुः) सब ओर से प्राप्त होते हैं। और (जनिमन्) प्रादुर्भाव होने में (वपुष्यन्) जिस प्रकार धाइयां बालक का सुन्दर रूप बनाती हैं उसी प्रकार वे भी (जनिमन्) प्रादुर्भाव होते समय उसके (वपुष्यन्) तेज को बढ़ाते हैं। (२) प्रकृति का विकार करने वाली सातों महती शक्तियें या सातों छन्दोमयी वाणियां उस शुद्ध ज्ञानमय परमेश्वर की महिमा को बढ़ाती हैं। सब ज्ञानी जीव उसी की शरण में प्राप्त होते हैं, उत्पन्न होकर भी उसी को उज्ज्वल करते हैं।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥१३॥

भा०—विद्वान् और बलवान् पुरुष (शुक्रेभिः) शीघ्रता से कार्य करने में समर्थ वीर्यवान्, बलवान् (अङ्गैः) शरीर और राष्ट्र के अंगों से (रजः) ऐश्वर्य को (आततन्वान्) सब प्रकार से बढ़ाता हुआ और (कविभिः) क्रान्त-दर्शी विद्वानों से (पवित्रैः) शुद्ध आचार विचार और वाणी वाले (क्रतुं) अपनी बुद्धि और कर्म को पवित्र करता हुआ (अपां शोचिः आयुः वसानः) जलों के बीच में तेज और जीवन को धारण करने वाले विद्युत् के समान वह भी (अपां) आप्त प्रजाओं के बीच (शोचिः) तेज को (परि वसानः) वस्त्र के समान धारण करता हुआ उनके (आयुः) जीवन को और (बृहतीः) बड़ी (अनूनाः) अन्यून, अक्षय (श्रियः) सम्पदाओं को (मिमिते) उत्पन्न करता और बढ़ाता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

व्राजा॑ सी॒मन॑द॒तीरद॑ब्धा दि॒वो य॒ह्वीरव॑साना॒ अन॑ग्नाः ।
सना॒ अत्र॑ यु॒वत॑यः सयो॑नी॒रेकं॒ गर्भं॑ दधिरे स॒प्त वाणी॑: ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (अनदतीः) न गर्जने वाली (दिवः यह्वीः) अन्तरिक्ष से उत्पन्न जलधाराओं को अग्नि, विद्युत् (वव्राज) व्यापता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष और वीर पुरुष राजा भी, (सीम्) सब प्रकार से (अनदतीः = न-अदतीः) स्वयं ऐश्वर्य का न भोग करने वाली (अदब्धाः) नाश न करने योग्य, रक्षणीय (दिवः) उसकी कामना करने वाली, व्यवहारों में लग्न, (यह्वीः) उसके अपत्यों के समान, पुत्रतुल्य, (अवसानाः) उसके समीप, उसके शरण आई हुई, (अनग्नाः) उत्तम वस्त्र आभूषण और रक्षा आदि से आच्छादित प्रजाओं को (वव्राज) प्राप्त हों । और वे (सनाः) सदातन से विद्यमान (सप्त) सात = चार वर्ण और पूर्व के तीन आश्रमों से युक्त (वाणीः) उसको सेवने वाली, प्रजाएं (सयोनीः युवतयः) सुन्दर बालक को एक ही गृह में रहने वाली स्त्रियों के समान (एकं) एक ही (गर्भं) ग्रहण करने योग्य, वरणीय नायक को (दधिरे) धारण पोषण करें । (२) इसी प्रकार विद्वान् पुरुष कैसी दारा प्राप्त करें । वह (अन-दतीः) जिसके दांत छोटे, हों, बड़े २, न हों, (अदब्धाः) जो ताड़ने योग्य न हों, सुशील हों, (दिवः) पति को चाहने वाली और व्यवहारकुशल हों, (यह्वीः) गुणों में बड़ी, या उत्तम कन्या हों, (अव-सानाः) समीप सदा रहने वाली, पति-सांनिध्य को चाहने वालीं, (अ-नग्नाः) उत्तम वस्त्रों से आच्छादित, नंगी न होकर, लज्जाशील हों (स-नाः) उत्तम भोगों के देने और भोगने वाली हों । ऐसी (युवतयः) स्त्रियें ही (सप्त वाणीः) पति के समीप जाकर विषय सेवन करती हुई (सयोनीः) अंगादि में समान बलयुक्त होकर एक, उत्तम गर्भ को धारण करें ।

स्ती॒र्णा अ॑स्य सं॒हतो॑ वि॒श्वरू॑पा घृ॒तस्य॒ योनौ॑ स्र॒वथे॒ मधू॑-

नाम् । अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृतस्य योनौ) घृत अर्थात् वर्षा रूप में झरने योग्य, सेचने योग्य या जल के आश्रय भूत अन्तरिक्ष में या मेघ के निमित्त और (मधूनाम्) बहुत जलों के (स्रवणे) बहने में (अस्य) इस सूर्य और विद्युत् के ७ किरण (संहतः) संघ बनकर (विश्वरूपाः) नाना रूप वाली, (स्तीर्णाः) अति विस्तृत, और सुरक्षित, (धेनवः) गौओं के समान (पिन्वमानाः) भूमि को सेचन करते रहते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस पुरुष के (योनौ) घर पर (संहतः) संघ रूप, बहुत सी संख्या में एकत्र (स्तीर्णाः) दूर २ तक फैली, (विश्वरूपाः) नाना वर्णों वाली (पिन्वमानाः) दुग्धादि सेचन करती हुई (धेनवः) गौवें (घृतस्य) घी और (मधूनां) नाना मधुर पदार्थों के (स्रवथे) बहाने के लिये (अस्थुः) विद्यमान हों । और जिस प्रकार (दस्मस्य) दर्शनीय, सूर्य के (मातरा) उत्पादक भूमि और आकाश (मही) बड़े हैं उसी प्रकार (दस्मस्य) दर्शनीय, उत्तम गुणयुक्त प्रजाओं के दुःखनाशक पुरुष के (मातरा) माता और पिता दोनों (समीची) उत्तम, एक दूसरे के अनुरूप, और (मही) पूज्य हों ।

बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८॥

भा०—(सहसः सूनो) हे बल से उत्पन्न और बल के प्रेरक अग्नि और वायु के समान बलवन् ! जिस प्रकार अग्नि (शुक्रा रभसा) तेजस्वी और बलवान् (वपूंषि) रूपों को धारण कर चमकता है उसी प्रकार तू भी (शुक्रा) उज्ज्वल, वीर्यवान् (रभसा) दृढ़ (वपूंषि) शरीरों को (दधानः) धारण करता हुआ और (बभ्राणः) पुष्ट करता हुआ, (वि अद्यौत्) विशेष रूप से चमक, प्रकाशित हो । जिस प्रकार (यत्र

वृषा काव्येन वव्रृधे तत्र मधुनो घृतस्य धाराः (चोतन्ति) जहां बरसता हुआ बादल सर्वोपरि स्थित 'कवि' अर्थात् सूर्य के बल से वृद्धि को प्राप्त होता वहां जल की धाराएं झरती हैं उसी प्रकार (यत्र) जहां (वृषा) बल-वान् पुरुष (काव्येन) दीर्घ प्रज्ञावान् क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान और उद्योग से (वावृधे) बढ़ता है वहां (मधुनः) मधुर (घृत-स्य) तेज की (धाराः) धाराएं, अथवा मधु और घी आदि सुखकारी पुष्टिकारक पदार्थों की, समृद्धियां, या मधुर वाणियें (चोतन्ति) झरती हैं, अनायास प्राप्त होती हैं ।

पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥६॥

भा०—(पितुः चित् ऊधः जनुषा विवेद) सबके पालक सूर्य से जिस प्रकार जन्म जल लेकर धारक मेघ उत्पन्न होता है, और वही सूर्य जिस प्रकार (अस्य धाराः वि असृजत्) इसकी जल धाराओं को उत्पन्न करता है, और (धेनाः वि) नाना गर्जनाएं भी उत्पन्न करता है उसी प्रकार यह जीव भी (जनुषा) जन्म से ही (पितुः) अपने पालक माता के (ऊधः) दुग्ध से भरे स्तन को (विवेद) प्राप्त करता और जानता है वह स्वयं (अस्य धाराः वि असृजत्) इस स्तन की धाराओं को उत्पन्न करता है, (धेनाः वि) नाना चीत्कार आदि को भी उत्पन्न करता है । इसी प्रकार (शिवेभिः) कल्याणकारी (सखिभिः) सहायकों सहित (गुहा चरन्तं) गर्भ गुहा में विद्यमान, या चलते हुए उसको (दिवः यह्वीः) इच्छा, या कामना से उत्पन्न शक्तियों से कोई भी (गुहा न वभूव) गर्भाशय में उसके बराबर नहीं होता । अर्थात् गर्भाशय में बहुत से शुक्राणु होते हैं तो भी एक ही सबसे अधिक बलवान् होकर वहां स्थिति प्राप्त करता है (२) विद्वत् पक्ष में—विद्वान् शिष्य पुत्र के समान ही (पितुः) पालक आचार्य से (जनुषा) जन्म लाभ करके

(ऊधः विवेद) ज्ञानरस के धारक वेद को प्राप्त करे। (अस्य धाराः विः असृजत्) उसके उपदेश की नाना वाणियों को विविध प्रकार से अभ्यास करे। (धेनाः वि) विविध विद्याओं को ग्रहण करे (शिवेभिः सखिभिः) उत्तम मित्रों सहित (गुहा) बुद्धि मार्ग में विचरते हुए (गुहा) बुद्धि द्वारा (दिवः यह्वीभिः) विद्या की दीप्तियों को प्राप्त कर (यह्वीभिः) बड़ी शक्तियों से भी (न बभूव) कोई उसे परास्त नहीं करे। वह सब से उत्तम हो।

पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि १०।१४

भा०—(एकः) एक, अकेला ही (पितुः च) पालक पिता के भी और (जनितुः च) उत्पन्न करने वाली माता के भी (गर्भं) गोद, और पेट को (बभ्रे) धारण करता है या भरता है। वही एक (पूर्वीः) पूर्व प्राप्त, और पुष्टियों से पूर्ण (पीप्यानाः) पुष्टि करने वाली दूध की धाराओं को (अधमत्) पान करे। (सपत्नी) समान रूप से पति पत्नी, होकर रहने वाले और (सबन्धू) समान रूप से एक दूसरे को प्रेमपाश में बांधने वाले होकर (उभे) दोनों (अस्मै) इस (वृष्णे) बलवान् (शुचये) शुद्ध पवित्र सन्तान के लिये ही होते हैं। हे पुत्र ! तू भी (मनुष्ये) मननशील पुरुषों के लिये हितकारी उन दोनों को (निपाहि) निरन्तर पालन कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥

भा०—(उरौ अनिबाधे ववर्ध) जिस प्रकार बालक बाधारहित, गोद में बढ़ता है उसी प्रकार शिष्य, विद्वान् जन (अनिबाधे) बाधा या पीड़ा से रहित, व्यर्थ दण्डित या पीड़ित न करने वाले (उरौ) अति विस्तृत ज्ञानवान्, बड़े, गुरु के अधीन रहकर (ववर्ध) बढ़े, और बालक

को जिस प्रकार (पूर्वीः आपः यशसः सं वर्धयन्ति) पूर्व उत्पन्न आप्त बन्धुजन अन्न से बढ़ाती है उसी प्रकार (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों से प्राप्त एवं सुपरीक्षित (आपः) आप्त विद्याएं (अग्निं) अग्रणी, आगे बढ़ने वाले ज्ञानवान् पुरुष को (यशसः) बल, और कीर्त्ति से (सं ववर्ध हि) अवश्य बढ़ाती हैं। वह (दमूनाः) शम दम आदि से जितेन्द्रिय चित्त होकर (ऋतस्य योनौ) धन, अन्न से पूर्ण घर में बालक के समान स्वयं (ऋतस्य योनौ) सत्य ज्ञान के आश्रय परम प्रभु में (अशयत्) सोवे, विश्राम करे, उसी में रमे, और बालक जिस प्रकार (जामीनां स्वसॄणाम् अपसि) सन्तान उत्पन्न करने वाली, भगिनियों, माताओं के दूध पर पुष्ट होता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी (जामीनाम्) स्वयं अन्नादि ऐश्वर्य को भोग करने वाली (स्वसॄणाम्) स्वयं अपने २ मार्ग या व्यवसाय उद्योग में जाने वाली प्रजाओं के (अपसि) कार्य व्यवहार के आश्रय पर बढ़े।

अक्रो न ब॒भ्रिः स॑मि॒थे म॒हीनां॑ दिदृ॒क्षेयः॑ सू॒नवे॒ भाऋ॑जीकः।
उदु॒स्रिया॒ जनि॑ता॒ यो ज॒जाना॒पां गर्भो॒ नृत॑मो य॒ह्वो अ॒ग्निः॥१२॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी, विद्वान् नायक, अग्नि के समान या दीपक के समान तेजस्वी, अन्यों को मार्ग बतलाने हारा (अक्रः न) किसी से भी और किसी प्रकार भी आक्रमण न करने योग्य, अति तेजस्वी अग्नि के समान, जिस पर कोई जल जाने के भय से पैर न रख सके तो भी (बभ्रिः) समस्त प्रजा को भरण पोषण करने हारा हो। वह (महीनां) बड़ी २ सेना और पूज्य प्रजाओं के (समिथे) समूहों तथा संगति स्थानों और संग्रामों में भी (दिदृक्षेयः) दर्शन करने योग्य, (सूनवे) अपने को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले गुरु के हित के लिये, तथा अपत्य के समान प्रजाजन के लिये (भा-ऋजीकः) विद्या और दीप्ति से प्रकाशमान, ऋजु स्वभाव, हो। (यः) जो (जनिता) पिता के समान उत्पा-

दक होकर भी (उस्रियाः) किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार मेघ से जल धाराएं उत्पन्न करता है उसी प्रकार जो स्वयं तेजस्वी होकर समस्त प्रजाओं के (उत् जजान) ऊपर प्रकट हो। वह (अपां गर्भः) अन्तरिक्ष के समान प्रजाओं को अपने आश्रय धारण पोषण करने में समर्थ (नृतमः) सर्वश्रेष्ठ नायक (यह्वः) महान् हो।

अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम्।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् १३

भा०—अग्नि या विद्युत् जिस प्रकार (ओषधीनां वना) ओषधि आदि नाना तरुलता विटपादि के वनों को (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्य शोभा से युक्त कर देता है (देवासः) विद्वान् लोग (मनसा) ज्ञान के अभ्यास से ही उस (अपां गर्भं) जलों के बीच गर्भ के समान गुप्त रूप से विद्यमान, (दर्शतं) दर्शनीय, (विरूपं) विविध रूप या कान्ति से युक्त जानते हैं। उसी प्रकार जो वीर, विद्वान् पुरुष (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्य्य से युक्त (ओषधीनां वना) शत्रु को संताप देने की शक्ति को धारण करने वाले वीर पुरुषों के (वना) जत्थे के जत्थे (जजान) उत्पन्न कर देता है (देवासः) विजय के इच्छुक लोग (मनसा) अपने चित्त से उसको ही (अपां गर्भं) विद्युत् के समान (अपां गर्भं) प्राप्त प्रजाओं को वश करनेहारा (दर्शतं) दर्शनीय, (विरूपम्) विशेष तेजस्वी, रूपवान् जान कर (सं जग्मुः) संगत होते, उससे मिल जाते हैं। और उसी को (पनिष्ठं) अग्नि के समान सबसे अधिक व्यवहारोपयोगी और स्तुत्य (जातं) गुणों में प्रसिद्ध और (तवसं) बड़े बलवान् की ही (दुवस्यन्) पूजा करते हैं। (२) अथवा—(वना) वरण करने वाली नवयुवति, (सुभगा) सौभाग्यवती होकर (अपां गर्भं) जलों के बीच विद्युत् के समान, प्राणों के बीच मुख्य, (दर्शतं) दर्शनीय, (विरूपं) विशेष रूपवान् भव्य, पुत्र को (जजान) उत्पन्न करे।

(देवासः चित् मनसा सं जग्मुः) जिसको विद्वान् पुरुष चित्त से या ज्ञान से संयुक्त करें। (स्तुत्यं) व्यवहारज्ञ, बलवान् का आदर करें।

बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥ १४॥

भा०—(बृहन्तः भानवः) बड़ी दीप्तियां (शुक्रः) अति शुक्ल वर्ण (विद्युतः) विविध कान्तियां (नः) जिस प्रकार (भा ऋजीकम् अग्निं सचन्त) दीप्तियुक्त अग्नि को प्राप्त हैं उसी प्रकार (बृहन्तः) बड़े २ (भानवः) तेजस्वी, (शुक्राः) वीर्यवान् (विद्युतः) विविध विद्याओं से चमकने वाले पुरुष भी (भा ऋजीकं) नाना दीप्तियों से अतिसरल, धर्मात्मा, (अग्निं) ज्ञानवान् अग्रणीनायक एवं परमेश्वर को भी (सचन्त) प्राप्त हों, और (अमृतं दुहाना) जल भरने वाले लोग जिस प्रकार (स्वे गुहा इव अग्निं सचन्ता) अपने गुफा में अग्नि का सेवन करते हैं। उसी प्रकार (स्वे) अपने (अपारे) अपार (ऊर्वे) बड़े भारी राष्ट्र में (अमृतं दुहानाः) अन्न पूर्ण करते हुए (स्वे सदसि अन्तः) अपनी राजसभा के बीच में (वृद्धं अग्निं सचन्त) ज्ञानवृद्ध अग्रणी नायक को प्राप्त करें उसका सत्संग करें। (२) इसी प्रकार (अमृतं दुहाना) अमृत आत्मा का रस दोहन करने वाले भी (गुहा इव) गुफा में स्थित अग्नि के समान 'गुहा' अर्थात् बुद्धि में (स्वे) अपने (अपारे) अपार (ऊर्वे) महान्, समुद्र के समान गम्भीर, (सदसि अन्तः) सर्वाश्रय अन्तरात्मा में ही (वृद्धं अग्निं) उस महान् ज्ञानमय प्रभु को प्राप्त करें।

ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः १५।१५

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! मैं (यजमानः) तुझे प्राप्त होने और कर आदि देने वाला प्रजा जन (त्वा) तुझको (हविर्भिः) स्वीकार करने योग्य नाना ऐश्वर्यों सहित (ईळे) आदर

करता और मानपद प्रदान करता हूं। (निकामः) तुझे खूब चाहता हुआ, तुझ से (सुमतिम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान और (सखित्वम्) तेरी मित्रता (ईळे) चाहता हूं। (जरित्रे) स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् जन के हितार्थ (देवैः) विद्वान् पुरुषों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों द्वारा (अवः) रक्षा आदि उपाय (सं मिमीहि) अच्छी प्रकार कर। और (दस्येभिः) दमन करने योग्य (अनीकैः) सैन्यों से (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर। इति पञ्चदशो वर्गः॥

उप॒क्षे॒तार॒स्तव॑ सुप्रणी॒तेऽग्ने॒ विश्वा॑नि॒ धन्या॒ दधा॑नाः।
सु॒रेत॑सा॒ श्रव॑सा॒ तुञ्ज॑माना अ॒भि ष्या॑म पृतना॒यूँरदे॑वान् ॥१६॥

भा०—हे (सुप्रणीते) उत्तम और प्रकर्षयुक्त नीति वाले राजन्! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले विद्वन्! हम लोग (तव) तेरे अधीन वा (उप-क्षेतारः) तेरे समीप शिष्य और भृत्य रूप से रहने वाले और (विश्वानि) सब प्रकार के (धन्या) धन प्राप्त कराने वाले उत्तम साधनों को (दधानाः) धारण करते हुए (सुरेतसा) उत्तम वीर्य और (श्रवसा) अन्न ज्ञान और यश से (तुञ्जमानाः) बलवान् और दानशील होकर (अदेवान्) अविद्वान्, विद्वानों के विरोधी अदानशील पुरुषों को (अभि स्याम) नीचा दिखावें।

आ दे॒वाना॑मभवः के॒तुर॑ग्ने म॒न्द्रो विश्वा॑नि॒ काव्या॑नि वि॒द्वान्।
प्रति॒ मर्ताँ॑ अवासयो॒ दमू॑ना॒ अनु॑ दे॒वान्र॑थि॒रो या॑सि॒ साध॑न् १७

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् तू (विश्वानि) समस्त (काव्यानि) क्रान्तदर्शी विद्वानों के बनाये ग्रन्थों को (विद्वान्) जानकर (देवानां) विद्वानों के बीच में (मन्द्रः) सबको आनन्द देनेवाला और (केतुः) सबको ज्ञान देनेहारा (आ अभवः) सब प्रकार से हो। और (दमूनाः) मन आदि इन्द्रियों को दमन कर जितेन्द्रिय होकर (मर्त्तान्) साधारण प्रजाजनों को (प्रति अवासयः) बसा, और (रथिरः) महारथियों के बीच

रमण करनेवाला, महारथी होकर तू (साधन्) सबको वश करता हुआ (देवान् अनु यासि) विजयेच्छु वीरों और दानशील तेजस्वी पुरुषों का अनुसरण कर ।

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

भा०—(घृतप्रतीकः अग्निः) घी से प्रज्वलित होने वाले अग्नि या तेज से चमकने वाले सूर्य के समान (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी (राजा) राजा, प्रधान पुरुष (विश्वानि काव्यानि विद्वान्) विद्वानों के द्वारा ज्ञात सभी ज्ञानों को जानता हुआ और (विदथानि) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों को, संग्रामों और यज्ञों को (साधन्) साधता हुआ, (मर्त्यानां दुरोणे) मनुष्यों के बीच विशाल घर में (अमृतः) अमृत अर्थात् मृत्यु-धर्म से रहित, दीर्घायु होकर (नि ससाद) विराजे, और (उर्विया) पृथिवी में (वि अद्यौत्) विशेष रूप से सूर्य के समान प्रकाशित हो ।

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (शिवेभिः) मङ्गलमय (सख्येभिः) मित्रताओं, सौहार्दों सहित (आगहि) प्राप्त हो । और तू (महान्) सबसे बड़ा (महीभिः) बड़ी पूजनीय (ऊतिभिः) ज्ञान और रक्षाओं से (सरण्यन्) प्राप्त होता हुआ (अस्मे) हमें (बहुलं) बहुतसा (सन्तरुत्रं) दुःखों से भली प्रकार तारने वाला (सुवाचं) उत्तम वाणी से युक्त (भागं) सेवने योग्य (नः) हमारा (यशसं) यश, कीर्त्तिजनक (रयिम्) ऐश्वर्य (कृधि) उत्पन्न कर ।

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी नायक ! (एता) इन

(सना) सेवन करने योग्य या पुरातन और (नूतना) नवीन, या अद्भुत (जनिम) कर्मों को मैं (पूर्व्याय ते) पूर्व विद्यमान, विद्वानों के हितकारी या उनसे उत्पन्न तेरे हित के लिये मैं (प्रवोचम्) उपदेश करता हूं । (इमा) ये (महान्ति सवना) बड़े २ ऐश्वर्य सब (वृष्णे) बलवान् पुरुष के लिये (कृता) बने हैं । (जन्मन् जन्मन्) सब जनों में (जातवेदाः) धनाढ्य पुरुष ही (निहितः) उत्तम पदपर स्थिर किया जाता है । (२) अध्यात्म में—हे (अग्ने) जीव ! (ते पूर्व्याय) पूर्वकाल से आगे तुझे नित्य के ही (राता ते सनानि नूतनानि) ये तेरे सब पुराने और नये, या भोक्तव्य और अद्भुत (जनिम) जन्मों को मैं (प्रवोचम्) अच्छी प्रकार बतलाता हूं । (इमा) ये सब (महानि सवना) बड़े जन्म, या बड़े ऐश्वर्य उसी (वृष्णे) देहादि के प्रबन्धक आत्मा के भोग के लिये बने हैं । (जन्मन् जन्मन्) प्रत्येक जन्म या उत्पन्न देह में (जातवेदाः) उत्पन्न प्रज्ञावान् बुद्धि का स्वामी आत्मा (निहितः) निबद्ध होता है ।

जन्मंञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥

भा०—(जन्मन् जन्मन्) प्रत्येक जन्म में, या प्रत्येक उत्पन्न होने वाले देह में, पदार्थ में अग्नि के समान (अजस्रः) कभी नाश न होने वाला, नित्य आत्मा ही (विश्वामित्रैः) सबके स्नेही, या आत्मा के स्नेही, विद्वान् पुरुषों ने (इध्यते) प्रकाशित किया, जाना और अनुभव किया और जगाया है । (तस्य) उस (यज्ञियस्य) पूजनीय आत्मा परमात्मा के ही (सुमतौ) उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने के निमित्त (वयम्) हम सब (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) उत्तम चित्त के भाव में (अपि स्याम) रहा करें । (२) राजा, विद्वान् पक्षमें— प्रत्येक कार्य, प्रत्येक पदार्थ पर विद्वान् को अधिष्ठाता रूप से स्थापित

किया जाता है उसी की मति के अधीन रहकर हम उत्तम चित्तभाव में रहा करें।

इमं यज्ञं संहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो ररांणः।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यंजस्व ॥२२॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवान् पुरुष ! हे (सुक्रतो) उत्तम ज्ञान और कर्म वाले ! तू (नः) हमारे (इमं यज्ञं) इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र को (देवत्रा) विद्वान वीर और दानशील पुरुषों के अधीन (धेहि) कर। हे (होतः) दानशील ! तू (ररांणः) सदा आनन्द प्रसन्न रहता हुआ (नः) हमारी (बृहतीः) बड़ी २ (इषः) सेनाओं को (प्रयंसि) अच्छी प्रकार नियम में रख। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हम प्रजाओं को (महि द्रविणम्) बड़ा धन और बल (आ यजस्व) दे, प्राप्त करा। (२) हे सर्वशक्तिमन् ! प्रभो ! (यज्ञं) हमारे इस आत्मा को (देवत्रा) प्राणों के बीच सुरक्षित रख। तू हममें रमता रह। हमारी, (बृहतीः इषः यंसि) बड़ी २ कामनाएं पूर्ण कर। बड़ा भारी ऐश्वर्य, ज्ञान दे।

इळांमग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शंश्वत्तमं हवंमानाय साध।
स्यान्नंः सूनुस्तनंयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥१६

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू (इळाम्) स्तुति करने योग्य वाणी और भूमि को और (पुरुदंसं) बहुत से कर्म करने के लिये आश्रय भूत (गोः सनिम्) गवादि पशुओं को देने वाली भूमि तथा ज्ञानवाणी को देने वाली (इळाम्) वेदवाणी या स्तुति को (हवमानाय) सब पदार्थों के देने वाले के लिये (साध) सिद्ध कर, (नः सूनुः) हमारा पुत्र और (तनयः) पौत्र भी (विजावा) विविध सन्तानों और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध (स्यात्) हो। हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! (ते) तेरी (सा) वह (सुमतिः) शुभ मति और ज्ञान (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये हो। इति षोडशो वर्गः ॥

[२]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १० जगती । २, ४, ८, ६, ६, ११ विराड् जगती । ५, ७, १२, १३, १४, १५ निचृज्जगती च ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति १

भा०—(अग्नये पूतं घृतं न) अग्नि को बढ़ाने के लिये जिस प्रकार पवित्र घृत को तैयार करते हैं उसी प्रकार (ऋत-वृधे) सत्य न्यायाचरण को बढ़ाने वाले (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के बीच में सबके नायक रूप से विराजमान होने योग्य (अग्नये) अग्रणी, प्रधान पुरुष को बढ़ाने और उत्पन्न करने के लिये हम (धिषणाम्) उत्तम प्रगल्भ बुद्धि और अधिष्ठातृ रूप से भोगने योग्य पदवी को (जनामसि) उत्पन्न करें। (मनुषः) सब साधारण मनुष्य और (वाघतः) विद्वान् पुरुष (द्विता) दोनों वर्ग उस (होतारं) राष्ट्रपति पद को स्वीकार करने वाले नायक को (कुलिशः रथं न) रथको औजार के समान (सम् ऋण्वति) अच्छी प्रकार तय्यार करें।

स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥

भा०—(सः) वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष सूर्य और अग्नि के समान ही (जनुषा) अपने जन्म या प्रादुर्भाव से ही (उभे रोदसी) आकाश और भूमि के समान पालक एवं उपदेश करने वाले माता और पिता या आचार्य कुल (उभे) दोनों को (रोचयत्) प्रकाशित करे। (सः) वह (मात्रोः) माता और पिता और मान करने वाली माता और मान अर्थात् ज्ञानदाता आचार्य दोनों का ही वह (ईड्यः) स्तुति योग्य

और अभिलषित प्रेम पात्र (पुत्रः) पुत्र (अभवत्) हो। वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (हव्य-वाट्) 'हव्य' अर्थात् दान और प्रतिग्रह करने योग्य अन्न, द्रव्य, और स्त्री रत्नादि को वहन करने हारा (अ-जरः) जरारहित, युवा, हृष्टपुष्ट, (चनोहितः) अन्न से परिपुष्ट, (दू-ळभः) रोग, शत्रु आदि से न मारे जाने योग्य, अजेय, वा अग्नि के समान दूर तक चमकने वाला, प्रसिद्ध, (विभावसुः) विशेष दीप्ति को अपने में बसाने वाला, कान्तिमान् , (विशाम्) प्रजाओं के बीच (अतिथिः) विद्यादि गुणों में सबसे ऊपर रहने से अतिथि के समान पूज्य हो।

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः। रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥

भा०—(देवासः) दानशील, स्वर्गादि सुखों वा काम्य फलों के चाहने वाले लोग जिस प्रकार (दक्षस्य) बलवान् (तरुषः) सबको पार उतारने वाले परमेश्वर के (विधर्मणि) विविध धर्मों को धारण करने वाले यज्ञ या उपासना कार्य में (चित्तिभिः) नाना चयन आदि क्रियाओं से (भानुना ज्योतिषा रुरुचानं) दीप्तिमान् , कान्ति से चमकने वाले (अग्निं जनयन्त) अग्नि को उत्पन्न कर लेते हैं उसी प्रकार (क्रत्वा) क्रिया और प्रज्ञा के सामर्थ्य से (दक्षस्य) बलवान् और ज्ञानवान् (तरुषः) संकट से पार उतारने वाले, बलवान् प्रधान पद के (विधर्मणि) विशेष रूप से धारण करने वाले या विविध धर्मों से युक्त शासन कार्य में (देवासः) विद्वान् , व्यवहार कुशल पुरुष (चित्तिभिः) नाना ज्ञानोत्पादक विधियों और नाना संज्ञापक पदवियों और घोषणाओं से (अग्निं) अग्रणी, नायक, तेजस्वी पुरुष को (भानुना) दीप्ति से युक्त (ज्योतिषा) तेज से (रुरुचानं) सूर्य के समान चमकने वाले को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं। और जिस प्रकार (वाजं सनिष्यन्) युद्ध में जाने वाला योद्धा

(महाम् अत्यं) बड़े वेगवान् अश्व को तैयार करता है उसी प्रकार (वाजं सनिष्यन्) ऐश्वर्य का सेवन करने की इच्छा वाला मैं प्रजाजन भी (महाम्) बल से महान् , (अत्यं) सबको अति क्रमण करने वाले पुरुष की (उप ब्रुवे) याचना करता हूं, ऐसे पुरुष को प्राप्त करूं। (२) गृहस्थ में (वाजं सनिष्यन्) ज्ञान देने का इच्छुक विद्वान् उत्तम गुणों वाले शिष्य को प्राप्त कर प्रवचन करे।

आ मन्द्रस्यं सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम्
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा॥४॥

भा०—जिस प्रकार (वाजं सनिष्यन्तः) ऐश्वर्य का विभाग करने के इच्छुक, या उसको चाहने वाले (अग्नि) ज्ञानी पुरुष को प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार (वाजं सनिष्यन्तः) वेग को नाना यन्त्रों में निर्माण करने के इच्छुक शिल्पी विद्युत् आदि तीव्र तापों के दायक दीप्तिमान् अग्नि को सर्व श्रेष्ठ जानते हैं उसी प्रकार हम लोग भी (मन्द्रस्य) सबको आनन्द देने वाले सबको तृप्त करने वाले पुरुष के (वरेण्यं) सर्व श्रेष्ठ (अह्रयं) लज्जा न दिलाने वाले या लज्जा से रहित स्वतःप्रकाश वेद-मन्त्रों, स्तुतियों से जानने योग्य (वाजं) परम ज्ञान को (सनिष्यन्तः) स्वयं सेवन करने और अन्यों को प्रवचन द्वारा दान या प्राप्त करने की इच्छा करने वाले हम लोग सदा (भृगूणां) पाप मल आदि के भस्म करने या ज्ञानवाणियाँ को धारण करने वाले, ज्ञानी, तपस्वी पुरुषों के बीच में (रातिम्) दानशील, (उशिजं) तेजस्वी, और हृदय से शिष्य को चाहने वाले (दिव्येन शोचिषा) दिव्य कान्ति से (राजन्तं) प्रकाशमान (कविक्रतुम्) क्रान्तदर्शी प्रज्ञा से युक्त (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशक, ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को (वृणीमहे) आचार्य गुरु और उपास्य रूप से वरण करें, उसी ज्ञान की भिक्षा करें।

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ५।१७

भा०—जिस प्रकार (वृक्त-बर्हिषः) यज्ञवेदि में कुशाएं बिछाने हारे (जनाः) याज्ञिक लोग (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने के लिये (पुरः) अपने आगे, या सब कार्यों से पूर्व, (अग्निं दधिरे) अग्नि को आधान या स्थापित करते हैं। उसी प्रकार (वृक्त-बर्हिषः) विस्तृत प्रजाओं के स्वामी (यतस्रुचः) स्त्री पुरुषों, लोकों और इन्द्रियों को दमन करने वाले (जनाः) प्रजास्थ जन (सुम्नाय) सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये (वाजश्रवसम्) बल और ऐश्वर्यों को अन्न के समान भोगने वाले अथवा, युद्धों में प्रसिद्ध कीर्त्तिमान्, (सुरुचं) उत्तम दीप्ति और रुचि वाले (विश्वदेव्यम्) सब विजयेच्छुक सैनिकों के हितकारी, (रुद्रं) दुष्टों को रुलाने वाले, (यज्ञानां) दान देने और सत्संग करनेवाले लोगों के और (अपसां) कर्म करने वाले उद्यमी लोगों के (साधत् इष्टिम्) अभिलाषा को पूर्ण करने वाले (अग्निम्) अग्रणी नायक को (पुरः) सबसे पूर्व या सबके समक्ष अध्यक्ष रूप से (दधिरे) स्थापित करें। इति सप्तदशो वर्गः॥

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) नायक हे (पावकशोचे) पवित्र करने वाले अग्नि के तेज के समान तेज धारण करने वाले (होतः) सुख ऐश्वर्यादि के देने वाले ! (वृक्तबर्हिषः) पृथिवी राज्य को बढ़ाने वाले (नरः) नेताजन (यज्ञेषु) एकत्र संगत होने योग्य अवसरों, युद्धों और सभा भवनों में (दुवः इच्छमानासः) तेरी सेवा करने की इच्छा करते हुए (अप्यम्) प्राप्त करने योग्य (तव) तेरे ही (क्षयं) निवास गृह की (परि उपासते) शरण लेते हैं। तू (तेभ्यः) उनको (द्रविणं) धन, भृति आदि (धेहि) प्रदान कर।

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ७

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रोदसी आ अपृणत्) आकाश और पृथिवी सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, और इस (महत् जातं) महान् उत्पन्न हुए को (स्वः) प्रकाशस्वरूप (अपसः अधारयन्) सब कर्म या क्रिया वाले लोक और जीव धारण करते हैं (सः) वही (कविः) सर्वत्र व्याप्त होकर (अध्वराय परिणीयते) जीवन को नाश न होने देने वा यज्ञ के लिये प्राप्त किया जाता है, वह (अत्यः) रथ में लगे अश्व के समान (वाजसातये) देह में अन्न को अंग २ में विभक्त कर देने के लिये (चनोहितः) पाचन करने के लिये उपयुक्त है । उसी प्रकार (कविः) विद्वान् प्रज्ञावान् पुरुष (रोदसी) माता और पिता दोनों को (आ अपृणत्) अच्छी प्रकार पालन करे । (महत्) बड़े भारी (जातं) उत्पन्न (स्वः) सुख को (अपृणत्) पूर्ण करे । (अपसः) कर्मनिष्ठ, श्रमी, उद्योगी लोग उसको (यत्) जिस किसी प्रयोजन से भी (अधारयन्) धारण पोषण करें । (सः) वह (अध्वराय) अविनाशी, पर पीड़ारहित, पालनादि कार्य के लिये (परि नीयते) प्राप्त किया जाय, वही (वाजसातये अत्यः न) संग्राम और वेग के लिये अश्व के समान (वाजसातये) ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने और विभाग करने या दान देने के लिये ही (चनोहितः) प्रवचन कार्य में शासन और उपदेश के कार्य में नियुक्त किया जाय ।

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (हव्यदातिं) ग्रहण करने और खाने योग्य अन्नों को देने वाले (सु-अध्वरं) उत्तम पालक, और अहिंसक स्वामी को (नमस्यत) सदा आदर से नमस्कार करो । और (दम्यं) दानशील, दमन करने में योग्य, समर्थ और सब गृहों, गृह

स्थित प्रजाजनों के हितकर, (जातवेदसम्) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् की (दुवस्यत) सेवा परिचर्या करो। वह (रथीः) उत्तम महारथी, (बृहतः) बड़े भारी राष्ट्र और (ऋतस्य) कार्य व्यवहार एवं सत्य ज्ञान और न्याय का (विचर्षणिः) देखने हारा (अग्निः) स्वयं अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानी, (देवानां) सब दानशील एवं तेजस्वी पुरुषों में (पुरः हितः) सबसे आगे अध्यक्ष रूप से स्थापित करने योग्य है।

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (परिज्मनः) सर्वव्यापक (महतः) महान् (अग्नेः) अग्नि तत्व के (तिस्रः समिधः) तीन समान रूप दीप्ति युक्त ज्वालाएं हैं। वे तीनों (उशिजः) सबसे अधिक कान्तियुक्त, (अमृत्यवः) मृत्युभय से रहित, होकर (अपुनन्) सबको पवित्र करती हैं। अथवा उन तीनों को (उशिजः) कामना करने हारे (अमृत्यवः) मृत्यु भय को त्यागकर निर्भय विद्वान् (अपुनन्) प्राप्त होते और साधते हैं। अग्नि के (तासाम्) उनतीनों में से (एकाम्) एक प्रकार की दीप्ति को (मर्त्ये) मरणधर्मा जीवों में (भुजम्) अन्नादि के भोक्ता सर्वपालक जाठराग्नि और स्थूलाग्नि रूप से (अदधुः) पुष्ट करते हैं और (द्वे) शेष दोनों विद्युत् और सौर अग्नि (जामिम् लोकम्) सर्वोत्पादक लोक, अन्तरिक्ष और सूर्य में (ईयतुः) प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार (यह्वस्य) महान् शक्तिशाली (परि-ज्मनः) युद्धादि में सर्वत्र जाने वाले (अग्नेः) तेजस्वी पुरुष की (तिस्रः) तीन (समिधः) समान रूप से उत्तेजित होनेवाली शक्तियां मृत्युरहित, अविनाशी (उशिजः) तेजोयुक्त होकर (अपुनन्) राष्ट्र को दुष्टों से रहित, शुद्ध पवित्र करें, राष्ट्र का कण्टक शोधन करें। अथवा मृत्युभय से रहित, कामना वाले प्रजागण उन तीनों को प्राप्त हों। (तासाम् एकाम्) उनमें से एक को (मर्त्ये) मरणशील

प्रजाजन में (भुजम्) पालन करने वाली, राष्ट्रपालक और रक्षक रूप से (अदधुः) रखें। और (द्वे जामिम् लोकम्) दो समीप के पड़ोसी राष्ट्र को (उप ईयतुः) प्राप्त हों अर्थात् उनके मुकाबले पर हों। राजा की शक्ति के तीन भागों में से एक राष्ट्र की रक्षा करे, दो भाग उदासीन और शत्रु राष्ट्रों के मुकाबला कर सकें।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे। स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—जिस प्रकार (मानुषीः इषः) मनुष्यों की सेनाएं (तेजसे) तीक्ष्णता उत्पन्न करने या चमकाने या तेज की वृद्धि करने के लिये (स्वधितिम्) शस्त्र को (सम् अकृण्वन्) अच्छी प्रकार चमकाते या उसको अपने पर सजाते हैं उसी प्रकार (इषः मानुषीः) धनैश्वर्यादि के इच्छुक मनुष्य प्रजागण (विशां तेजसे) प्रजागणों के तेज को बढ़ाने के लिये (विशां स्वधितिं) प्रजाओं के 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को धारण और पालन करने में समर्थ, (कविं) क्रान्तदर्शी, (विश्पतिम्) समस्त प्रजाओं के पालक पुरुष को (सीम् सम् अकृण्वन्) सब प्रकार संस्कृत करें। उसे अभिषेक द्वारा सुशोभित करें। (सः) वह (उद्वतः) ऊपर के और (निवतः) नीचे के सब स्थानों, पदों को (याति) प्राप्त करे अथवा (उद्वतः) उत्तम बलशाली और (निवतः) नीचे, अधीन सामन्तों को भी प्रयाण द्वारा वश करे। (सः) वह (एषु भुवनेषु) इन सब भुवनों या प्रदेशों के बीच में (गर्भम्) भीतरी रहस्य भाग को (वेविषत्) व्यापले और उसको (दीधरत्) धारण करे। (२) मनुष्य की सब कामना उसी सबके पालक परमेश्वर को अपने चित्त में धारण करें। वह उत्तम, अधम सबमें व्यापक है वही इन सब भुवनों के बीच व्यापक सबको धारण करता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ११

भा०—(सः) वह (जठरेषु) जठरों में उत्पन्न जाठराग्नि के समान जीवनाधार और भोक्ता होकर (प्रजज्ञिवान्) प्रमुख होकर (वृषा) बलवान् (चित्रेषु) नाना प्रकार के या सञ्चित ऐश्वर्यों के आधार पर (जिन्वते) सबका पालन करे और स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हो । और (सिंहः न) सिंह के समान (नानदत्) गर्जे वह (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का अग्रणी नायक, अग्रणी पुरुष (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न विशेष (पृथुपाजाः) बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर (दाशुषे) कर-प्रदानशील प्रजा को ही (वसु) नाना धन, और राष्ट्र में बसने का अधिकार और (रत्नानि) रमणीय हीरा, मुक्ता आदि और रमण करने योग्य उत्तम भोग्य पदार्थ (वि दयमानः) विविध रूपों में देता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो ।

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥

भा०—(वैश्वानरः) सूर्य जिस प्रकार (प्रत्नथा) पूर्व के समान (दिवः पृष्ठम् आ अरुहत्) आकाश के ऊपर चढ़ जाता है (सुमन्मभिः मन्दमानः) उत्तम किरणों से सबको सुखी करता, (जन्तवे पूर्ववत् धनं जनयन्) प्राणी मात्र के लिये पुष्टि करता और (समानम् अज्मं परि-एति) समान रूप से अपना मार्ग तय कर लेता है उसी प्रकार (वैश्वानरः) सबका नेता, पुरुष (प्रत्नथा) पुरातन, सनातन से चले आये धर्मानुसार दुःखरहित (दिवः पृष्ठं) तेज के सर्वोपरि पद को (आ अरुहत्) प्राप्त करे (नाकम्) सुख और (सुमन्मभिः) अपने उत्तम विचारों और उत्तम विचारवान् पुरुषों द्वारा (मन्दमानः) प्रजा का कल्याण करता हुआ (दिवः पृष्ठं) तेज और विजय कामना के सर्वोपरि (नाकं)

सुखमय, दुःखरहित पदको (प्र अरुहत्) प्राप्त करे। और (जन्तवे) प्राणिमात्र के लिये (पूर्ववत्) पूर्व के समान या अपने से पूर्व विद्यमान पिता आचार्यादि के समान (धनं) पोषक अन्नादि ऐश्वर्य (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (जागृविः) जागरणशील, सदा सावधान होकर (समानं अज्मं) समान अर्थात् निष्पक्षपात मार्ग या मान आदर से युक्त मार्ग पर (परि एति) चले। (२) परमेश्वर सर्वोपरि तेजोमय (नाकम्) आनन्दघन होने से 'नाक' पर स्थित है। वे उत्तम ज्ञानों से सबका कल्याणकर्त्ता, कल्पकल्पान्तरों से बराबर पुष्टि देता, सदा जागृत होकर समान रूप से एकरस सर्वत्र व्याप रहा है।

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१मायं दधे मातरिश्वा दिविक्षयम्। तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे॥ १३॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतावानं) सत् कारणस्वरूप, (यज्ञियं) यज्ञ के योग्य (विप्रम्) विशेष रूप से सर्वत्र पूर्ण, (उक्थ्यम्) प्रशंसा के योग्य (दिविक्षयम्) आकाश या अन्तरिक्ष में विद्यमान, विद्युत् को (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में प्राण के समान चलने वाला वायु धारण करता है उस (चित्रयामं) अद्भुत वेग से जाने वाले, (सुदीतिम्) उत्तम दीप्ति युक्त एवं उत्तम रीति से दृढ़ पदार्थों को भी खण्डित करने में समर्थ (हरिकेशम्) पीली रश्मियों वाले, या तीव्र प्रकाशमान् किरणों से युक्त (अग्निम्) अग्निरूप विद्युत् को (नव्यसे) नये से नये (सुविताय) प्रयोगों के लिये (ईमहे) प्राप्त करते हैं। या ऐसी विद्युत् के विषय में (विप्रम् ईमहे) विद्वान् पुरुष से पूछते हैं उसी प्रकार (यम्) जिसको (मातरिश्वा) भूमि पर वेग से जाने वाला, वायु के समान बलवान् वीर पुरुष (आदधे) स्थापित करता है (तं) उस (ऋतावानं) सत्य, न्यायाचरण और वेद की व्यवस्था से युक्त, (यज्ञियं) दानशील

प्रजापति पद के योग्य, (विप्रम्) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले (दिवि क्षयम्) ज्ञान, व्यवहार, विजयकामना में या पृथिवी पर निवास करने वाले (चित्रयामं) अद्भुत मार्गों से जाने वाले, (हरिकेशम्) पीत वर्ण के बालों के समान मानो तेज को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, वा प्रजाओं के क्लेशों को दूर करने वाले, (सुदीतिम्) उत्तम दीप्ति, संहार शक्ति से युक्त (अग्निम्) अग्नि को (नव्यसे) नये २, उत्तम (सुविताय) सुखपूर्वक गमन, सन्मार्ग में प्रेरण तथा अभिषेक के लिये (ईमहे) प्रार्थना करें, वरें। (२) परमेश्वर पक्ष में—सर्वनिर्माता परमेश्वर में रमने वाला उपासक 'मातरिश्वा' है। वह जिसको हृदय में धारता है उस सत्यमय, परम पूज्य मेधावी अद्भुत, दुःखहारी स्वप्रकाशस्वरूप प्रभु की हम उपासना करें।

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत्॥१४॥

भा०—(शुचिं) स्वयं शुद्ध, तेजःस्वरूप, अन्यों को भी पवित्र करने वाले, (यामन्) जाने योग्य मार्ग में (इषिरम्) अति आवश्यक रूप से अपेक्षित, या सन्मार्ग में प्रेरणा करने हारे, दीपक के समान मार्ग दिखाने वाले, (स्वर्दृशं) सुखों को, या समस्त पदार्थों के विज्ञान को देखने वाले, (दिवः) प्रकाश का (केतुं) ज्ञान कराने वाले (रोचनस्थाम्) स्वयं प्रकाश में विद्यमान (उषर्बुधम्) प्रातः उषा काल में सूर्य और यज्ञाग्नि के समान स्वयं भोर में जागने और अन्यों को जगाने वाले, (दिवः मूर्धानम्) आकाश में मस्तकस्थ सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश के बीच भी (मूर्धानम्) सब के शिरो-देश पर स्थित, शिरोमणि, पूज्य, अग्रणी, (अप्रतिष्कुतम्) अन्य प्रतिद्वन्दी से कभी स्पर्द्धा में न पराजित होने वाले, अद्वितीय, (वाजिनम्) ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त (तम्)

उस (बृहत्) महान् पुरुष को हम लोग (नमसा) आदर सत्कार पूर्वक (ईमहे) प्राप्त हों और प्रार्थना करें ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१६

भा०—(मन्द्रं) आनन्ददायक, स्तुति योग्य, (होतारं) ज्ञान के देने वाले और आश्रय में लेने वाले, (शुचिम्) शुद्ध पवित्र स्वभाव के, (अद्वयाविनम्) दो भावों से न रहने वाले, सरलस्वभाव, (दमूनसं) जितेन्द्रिय और दानशील, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय, (विश्वचर्षणिम्) सब पदार्थों के स्वयं देखने और दिखाने वाले, (मनुर्हितम्) मनुष्यों के हितकारी (वपुषाय) रूप में भी (दर्शतम्) दर्शनीय (रथं न चित्रम्) रथ के समान अद्भुत, (सदम्) गृह के समान सबके शरण योग्य, स्थित पुरुष को (राये) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ईमहे) प्रार्थना करें । अथवा पूर्वोक्त गुणों से युक्त विद्वान् को (वपुषाय दर्शतं अग्निं ईमहे) रूपवान् पदार्थों के दिखाने वाले अग्नि के ज्ञान का प्रश्न करें । (२) परमेश्वर पक्षमें—वह अद्वितीय होने से 'अद्वयावी' है । विश्व द्रष्टा होने से 'विश्वचर्षणि' है । वह गृह के समान शरण योग्य सर्व हितकारी, रस रूप होने और रमण योग्य होने से रथ के समान चित्, रूप होने से 'चित्र' है । हम उस की प्रार्थना करें । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ४, ६, ८, ९ जगती । ७, १० विराट् जगती । ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥
एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् १

भा०—(विपः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (वैश्वानराय) सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे, नायक, (पृथुपाजसे) बड़े बल-वान्, (गातवे) विद्या का उपदेश करने वाले, आज्ञापक पुरुष के हितार्थ (धरुणेषु) धरने योग्य स्थानों, गृहों, और लोकों में (रत्ना) नाना प्रकार के रत्न और रमण करने योग्य पदार्थों को (विधन्त) तैयार करें। (अग्निः) अग्रणी ज्ञानी, विनीत पुरुष ही (अमृतः) कभी नाश को न प्राप्त होकर, दीर्घायु होकर (देवान्) विद्वानों की (दुवस्यत्) सेवा करे और (पथा) सन्मार्ग से चलता हुआ (सनता) सनातन से चले आये (धर्माणि) धर्मानुकूल कर्त्तव्यों को (न दूदुषत्) कभी दूषित न करे, उनमें दोष न आने दे।

अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः २

भा०—(रोदसी अन्तः) आकाश और भूमि के बीच (दूतः) संतापकारी, (दस्मः) अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य (ईयते) गति करता है उसी प्रकार (होता) अधिकार को देने और प्राप्त करने वाला (पुरः हितः) सबके समक्ष आदर से साक्षी रूप में स्थापित किया हुआ (मनुषः) ज्ञानवान्, मननशील पुरुष भी (निषत्तः) आसन पर बिराजकर (रोदसी अन्तः) राजवर्ग और प्रजावर्ग या वादी-प्रतिवादी या मित्रवर्ग-शत्रु वर्ग दोनों के बीच में (दूतः) दूत के समान सबका कार्य साधने हारा और दुष्टों का संतापजनक, प्रतापी और (दस्मः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारा, दर्शनीय होकर (ईयते) प्राप्त हो। और जिस प्रकार (इषितः अग्निः) प्रज्वलित अग्नि-दीपक (बृहन्तं क्षयं द्युभिः परि भूषति) बड़े भारी महल को अपने प्रकाशमान किरणों से जगमगा देता है उसी प्रकार (इषितः) प्रेरित, या प्रार्थित, (धियावसुः) बुद्धि और कर्त्तव्यों को एक मात्र अपने में धारण करने वाला, (अग्निः) अग्रणी

मुख्य पुरुष (द्युभिर्देवैः) विद्वानों द्वारा और अपने उत्तम गुणों से (बृहन्तं क्षयं) बड़े भारी निवासयोग्य सभा भवन और राष्ट्र को भी (परि भूषति) अलंकृत करता और अपने वश करता है ।

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः । अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥ ३ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष जिस प्रकार (चित्तिभिः) काष्ठ संचयादि द्वारा और नाना कर्म काण्ड द्वारा, (यज्ञानां केतुम्) यज्ञों के बतलाने वाले और (विदथस्य साधनं) यज्ञ और संग्राम को साधने वाले (अग्निं) अग्नि को (महयन्त) आदर और श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित करते हैं, (अधि अपांसि संदधुः) उसके आश्रय पर सब कार्य करते और (यजमानः सुम्नानि आचके) उसके आश्रय यज्ञशील पुरुष सब सुखों की कामना करता है उसी प्रकार (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (यज्ञानां केतुं) परस्पर के सत्संगों, मैत्रीभावों, व्यवहारों और लेने देने के कार्यों के संज्ञापक, साक्षी और (विदथस्य) यज्ञ, ऐश्वर्य लाभ और संग्राम के साधने वाले (अग्निं) ज्ञानवान् नायक राजा को (चित्तिभिः) अपने २ ज्ञानों और कर्मों के द्वारा (महयन्त) आदर पूर्वक सेवा करें उसका मान करें । (यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय रहकर (अपांसि) ज्ञान, कर्म और (गिरः) वाणियों को (सं दधुः) सभी लोग अच्छी प्रकार धारण करते हैं (तस्मिन्) उसी के आश्रय (यजमान) दान-शील और मित्रभाव से रहने वाला पुरुष भी (सुम्नानि) नाना सुखों को (आचके) चाहता है । (२) परमेश्वर सब यज्ञों और ज्ञानों का उत्पादक है उसी में सब कर्म और वाणियों को कहते उसी में उपासक की सब कामनाएं आश्रित हैं ।

पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।

आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥ ४ ॥

भा०—वह स्वामी, परमेश्वर (अग्नि) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश, (यज्ञानां पिता) सब श्रेष्ठ कर्मों, सद् व्यवहारों, सत्संगों, पूज्य पुरुषों और सब आत्माओं का पिता, पालक है। वह (असुरः) महान् शक्तिमान् संसार के समस्त भूगोलों को गति देने वाला, सब प्राणियों के प्राणों में भी रमण करने वाला, प्राणों का प्राण (विपश्चितांविमानम्) विद्वानों को विज्ञान से युक्त होने से विमान के समान संसार महासागर से पार करने वाला, वा विशेष रूप से मान्य, और (वाघतां च) विद्वान् पुरुषों का (वयुनं) ज्ञान है। वह (भूरि-वर्पसा) नाना रूपों से (रोदसी) सूर्य पृथिवी के समान चेतन और अचेतन, प्रकाशवान् अप्रकाशवान्, सत्-त्यत्, प्राण रयि आदि में (आविवेश) प्रविष्ट है, व्यापक है। वह (पुरुप्रियः) बहुतों को प्रिय लगने हारा (कविः) क्रान्तदर्शी, अन्तर्यामी (धामभिः) नाना तेजों और लोकों से जीवों को (भन्दते) कल्याण करता और सुखी बनाता है। (२) इसी प्रकार बलवान् पुरुष भी सब सत्संगों सद् व्यवहारों, मैत्री भावों का पालक, विद्वानों के मान का पात्र, ज्ञानवान् होकर प्रजा और शासकवर्ग दोनों में मध्यस्थ होकर सर्वप्रिय हो और अपने पराक्रमों से भी सबको सुखी करे।

चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम्।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतंभूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः॥५॥२०॥

भा०—(देवासः) विद्वान् पुरुष (चन्द्रम्) सबको आनन्द देने वाले, सुवर्ण के समान आल्हादजनक, (चन्द्ररथम्) सुवर्ण के बने रथ वाले, वा चन्द्र के समान रमणीय रूप या चन्द्रवत् सर्वाल्हादक एवं शान्तिकारक रथ सैन्यादि से युक्त, (हरिव्रतं) वेगवान् अश्वों और विद्वानों को वरण करने वाला, उनके पालक, (वैश्वानरम्) सब नायकों के

अग्रणी, (अप्सु-षदम्) विद्युत् के समान प्रजाओं में अध्यक्ष पद पर विराजने वाले, (स्वर्विदम्) सबको प्राप्त करने सबको सुख देने वाले, (विगाहं) युद्ध में परसैन्यों का मथन करने हारे, (भूर्णि) अति वेग-वान्, (तविषीभिः) बलवती सेनाओं से (आवृतम्) घिरे हुए (भूर्णि) सबके पालक, (सुश्रियं) उत्तम लक्ष्मी और कान्ति से युक्त पुरुष को (अग्निं) अग्रणी नायक रूप से (इह) इस राष्ट्र में (दधुः) धारण या स्थापन करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह प्रभु सर्वाल्हादक होने से 'चन्द्र' है आनन्दमय, रस रूप होने से 'चन्द्ररथ' हैं। दुःखहारी, शील वान् होने से 'हरिव्रत' है। सर्वव्यापक होने से 'विगाह' है वह बलवती समस्त शक्तियों से युक्त सर्वपालक सर्व सम्पदाओं का स्वामी है उसकोसब देव, सूर्यादि तथा विद्वान् जन अपने में धारण करते हैं। इति विंशो वर्गः॥

अ॒ग्निर्दे॒वेभि॒र्मनु॑षश्च ज॒न्तुभि॑स्तन्वा॒नो य॒ज्ञं पु॑रु॒पेश॑सं धि॒या।
र॒थीर॒न्तरी॑यते॒ साध॑दिष्टिभिर्जी॒रो दमू॑ना अभिशस्ति॒चात॑नः ६

भा०—(अग्निः) वह अग्रणी नायक पुरुष, अग्नि के समान तेजस्वी होकर (धिया) बुद्धि और कर्म के द्वारा (देवेभिः) दानशील, तेजस्वी, कामनावान् (जन्तुभिः) मनुष्यों से (मनुषः) मननशील पुरुषों के (पुरुपेशसं) नाना रूपों का (यज्ञं) परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव (तन्वानः) विस्तृत करता हुआ (रथीः) रथों का स्वामी, (साधदि-ष्टिभिः) उत्तम उपदेशों को साधने वाले पुरुषों के साथ मिलकर (जीरः) वेगवान् विजयी, (दमूनाः) और दमनशील (अभिशस्ति-चातनः) हिंसाकारी शत्रुओं का नाश करने वाला (अन्तः ईयते) राष्ट्र के भीतर प्रवेश करे। (२) परमेश्वर दिव्य ज्ञानी, दानी पुरुषों से अन्य मनुष्यों को सत्संग तथा विद्यादान आदि कराता है। सब देहों का स्वामी होने से, रमण करने से या रस रूप होने से 'रथी' है। वह इन्द्रियों, वास-नाओं और इच्छाओं को वश करने वाले साधक पुरुषों द्वारा (अन्तः

ईयते) भीतर अन्तःकरण में जाना जाता है। वह (जीरः) प्राणों को देने वाला सब को दमन करने हारा, सब हिंसाओं का नाशक, अभय है।

अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः। वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ७

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्, तेजस्वी पुरुष ! तू (सु-अपत्ये) उत्तम सन्तान के (आयुनि) प्राप्त होने पर उसमें (जरस्व) उत्तम उपदेश कर, अथवा, स्वयं पुत्रादि के दीर्घायु हो जाने पर स्वयं जरावस्था से जीर्ण हो। और (ऊर्जा) उत्तम अन्न रस से (नः) हमें (पिन्वस्व) तृप्त कर। (नः सम्-इषः) हमें सन्मार्ग में चला, अथवा हमें प्रेम से चाह। (वयांसि दिदीह) उत्तम अन्नों को और बलों को दे और स्वयं प्राप्त कर। (बृहतः च) अपने से बड़ों को (जिन्व) अन्नादि से तृप्त, प्रसन्न किया कर। हे (जागृवे) जागरणशील, सदा सावधान जितेन्द्रिय ! तू (देवानाम्) विद्वान्, गुणवान्, ज्ञानादि के दाता पुरुषों के बीचमें (उशिक्) उनको चाहने वाला, और कान्तिमान् और (विपाम्) विद्वानों के बीच (सुक्रतुः) उनके उत्तम ज्ञान और कर्म को धारण करने वाला (असि) हो। (२) वह परमेश्वर पुत्र रूप मनुष्यों को उपदेश करता, अन्न से पालता, वृष्टियें प्रदान करता, सब बलों और जन्तुओं को बढ़ाता, सबको धारण करता है, वह सब में तेजस्वी, विद्वानों में भी सर्वोत्तम, ज्ञानवान् है। सदा जागृत, प्राणरूप रहने से 'जागृवि' है।

विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम्। अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥

भा०—(नरः) श्रेष्ठ पुरुष (विश्पतिं) समस्त प्रजाओं के पालक (यह्वम्) महान्, (अतिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य, सर्वोपरि विराजमान, सर्वव्यापक, (यन्तारं) सब को नियम में रखने

वाले, (धीनाम्) उत्तम कर्मों और बुद्धियों के बीच में आत्मा के समान उनका नियन्ता और (वाघताम्) विद्वानों और (अध्वराणां) हिंसा न करने और हिंसित न होने वाले बलवान् पुरुषों के बीच में स्थित होकर उनको भी नियम में रखने वाले, (चेतनं) देह में चेतन आत्मा के समान स्वयं भी चित् स्वरूप वा अन्यों को ज्ञान देने वाले, (जातवेदसं) समस्त पदार्थों में व्यापक, सब पदार्थों के ज्ञाता, वा सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामी परमेश्वर और राजा की सभी लोग (वृधे) अपनी वृद्धि करने के लिये (जूतिभिः) उसके सेवनीय गुणों द्वारा (प्र शंसन्ति) स्तुति करते हैं।

विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ९

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान्, अग्रणी पुरुष ! (विभावा) विशेष दीप्ति से युक्त (देवः) दानशील, तेजस्वी, विजयेच्छुक, (सुरणः) उत्तम रणशाली, और (शवसा) बल से (सुमद्रथः) उत्तम शोभा-युक्त रथसैन्य का स्वामी होकर (क्षितीः) भूमियों को (परि बभूव) विजय करता है। (दमे) दमन के कार्य में (भूरिपोषिणः) बहुत से प्रजाजनों को पोषण करने वाले (तस्य) उस नायक के (व्रतानि) कर्त्तव्यों और नियमों को (वयम्) हम भी (दमे) गृह में (भूरिपोषिणः) बहुत से सन्तानों को पोषण करने वाले बहुत प्रकार के पुष्टि या समृद्धियों के स्वामी होकर (सुवृक्तिभिः) उत्तम व्यवहारों और पापादि बुरे कार्यों के त्यागों से (आ उप भूषेम) सब प्रकार से पालन करें। (२) अग्निपक्ष में—अग्नि दीप्तिमान्, सुन्दर या उत्तम आग्नेयादि अस्त्रों द्वारा रमण करने का साधन, उत्तम रथ सञ्चालन करने हारा है। हम घर में उस अग्नि के नाना कार्यों का उपभोग लें। (३) परमेश्वर तेजस्वरूप, (सुरणः) उत्तम, रमणयोग्य आनन्दमय ज्ञान और बल से अति तृप्ति कर, रस

स्वरूप, है, उस सर्वपोषक के व्रतों का हम अपने चित्तवृत्ति दमन के कार्य में नाना त्याग धर्मों से पालन करें।

वैश्वा॑नर॒ तव॒ धामा॒न्या च॑के॒ येभि॑: स्व॒र्विद॑भ॑वो विचक्षण।
जा॒त आ॒पृ॑णो॒ भुव॑नानि॒ रोद॑सी॒ अग्ने॒ ता विश्वा॑ परि॒भूर॑सि॒ त्मना॑ ॥ १० ॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त लोकों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे प्रधान नायक ! और हे परमेश्वर ! मैं (तव) तेरे उन (धामनि) धारण करने योग्य तेजों, उत्तम गुणों और चरित्रों को (आचके) जानना चाहता हूं हे (विचक्षण) विशेष रूप से सबके देखने हारे ! (येभिः) जिनसे तू (स्वर्विद्) सर्वत्र या स्वयं समस्त सुखों को प्राप्त करने और अन्यों को भी सुख प्राप्त कराने और (स्वःवित्) शत्रुओं को ताप देने और अधीनों के उपदेश और प्रकाश देने में समर्थ (अभवः) है। तू ही (जातः) सूर्य या अग्नि के समान प्रकट और प्रसिद्ध होकर (भुवना) समस्त लोकों और प्राणियों को और (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आपृणः) पालता और पूर्ण करता है। हे विद्वन् ! तू (रोदसी आपृणः) स्वपक्ष और परपक्ष, एवं शासकवर्ग और प्रजावर्ग और दोनों को पूर्ण करता है। हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (त्मना) स्वयं अपने महान् सामर्थ्य से (विश्वा ता) उन २ सब लोकों को (परिभूः असि) व्याप रहा है, सबको अपने अधीन कर रहा है।

वै॒श्वा॒न॒रस्य॑ दं॒सना॑भ्यो बृ॒हदरि॑णा॒देक॒: स्वप॒स्यया॑ क॒विः।
उ॒भा पि॒तरा॑ म॒हय॑न्नजायता॒ग्निर्द्यावा॑पृथि॒वी भूरि॑रेतसा ११।२१

भा०—(वैश्वानरस्य) सबके सञ्चालक, सर्वहितकारी, प्रधान पुरुष के (दंसनाभ्यः) दुःख नाश करने वाली क्रियाओं से (बृहत्) बड़ा भारी ऐश्वर्य (अरिणात्) प्राप्त होता है। (अग्निः द्यावापृथिवी भूरि

रेतसा) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार बड़े भारी तेजः सामर्थ्य से आकाश और भूमि को बहुत जल से पूर्ण करता है उसी प्रकार (एकः) अकेला (कविः) विद्वान् ज्ञानवान् पुरुष (स्वपस्यया) अपने शुभ कर्म करने की इच्छा और संकल्प से (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् (उभा पितरा) माता और पिता या पिता और गुरु दोनों पालकों का स्वयं भी अपने (भूरिरेतसा) बड़े बलवीर्य सम्पादन द्वारा (महयन्) मान आदर करता हुआ (अजायत) प्रकट, प्रसिद्ध होता है। (२) परमेश्वर अपनी महान् शक्तियों से (बृहत्) महान् ब्रह्माण्ड को गति देता है। वही (कविः) सबका कर्त्ता (स्वपस्या) अपनी ज्ञान और कर्म शक्ति से (एकः) एक अद्वितीय, (भूरिरेतसा) बड़े भारी उत्पादक वीर्य और बल से सब जगत् के पालक सूर्य और पृथिवी दोनों को (महयन्) महान् बनाता हुआ प्रकट होता है। इति एकविंशो वर्गः ॥

[४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ स्वराट् पङ्क्तिः । २, ३, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥

एकादशर्चं सूक्तम् ।

स॒मित्स॑मित्सु॒मना॑ बोध्य॒स्मे शु॒चाशु॑चा सु॒म॒तिं रा॑सि॒ वस्वः॑ ।
आ दे॑व दे॒वान्य॒जथा॑य वक्षि॒ सखा॒ सखी॑न्त्सु॒मना॑ यक्ष्यग्ने ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी पुरुष ! (समित्-समित् बोधि) जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक समिधा पाकर प्रज्वलित होता है उसी प्रकार तू भी (सुमनाः) शुभ चित्त और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर (समित्-समित्) प्रत्येक उत्तम तेज और ज्ञान दीप्ति से (बोधि) स्वयं ज्ञानवान् हो और हमें भी ज्ञानवान् कर। (शुचा-शुचा) प्रत्येक कान्ति और पवित्र कार्य से (अस्मे) हमें (सुमतिं)

शुभ ज्ञान और (वस्वः) नाना ऐश्वर्य (रासि) प्रदान कर । हे (देव) विद्वन् ! तू (यजथाय) सत्संग और मैत्री भाव के लिये (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (वक्षि) धारण कर । अथवा (यजथाय) ज्ञान प्रदान के लिये (देवान्) विद्या की कामना करने वाले शिष्य गण के प्रति (यजथाय) विद्या दान करने के प्रयोजन से (वक्षि) प्रवचन द्वारा विद्या का उपदेश कर । और (सखा) तू मित्र होकर (सखीन्) अपने मित्र रूप हमको (सुमनाः) उत्तम चित्त से युक्त होकर (यक्षि) प्राप्त हो और ज्ञान-ऐश्वर्य प्रदान कर ।

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥

भा०—(अहन् त्रिः) जिस प्रकार विद्वान् जन तीन सवन रूप से अग्नि में दिन में तीन वार यज्ञ करते हैं उसी प्रकार (यं) जिस को (देवासः) विद्वान् पुरुष (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अहन् त्रिः) दिन में तीनवार (आयजन्ते) सत्संग करें । वह विद्वान् अग्रणी पुरुष (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रः) मृत्यु दुःख से बचाने वाला, सबका स्नेही, (अग्निः) ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी हो । (सः) वह (तनूनपात्) प्राण के समान हमारे शरीरों को नाश न होने देने हारा वैद्य मधुर अन्नों से युक्त, मधुर सुखों से युक्त, उत्तम सफल और (घृतयोनिं) तेज और घृत के आश्रय में स्थित (विधन्तं) विविध प्रकार से किये जाने वाले या परस्पर सेवा कराने वाले, नाना कार्य करने वाले (नः) हमारे (इमं) इस (यज्ञं) शरीर और समाजरूप यज्ञ या परस्पर के सत्संग में सौहार्द भाव को (मधुमन्तं) मधुर अन्नों उत्तम सुखों और परिणामों से युक्त (कृधि) करे ।

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३॥

भा०—(विश्ववारा) कष्टों को अन्धकार के समान दूर करने और सब से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ, (दीधितिः) दीप्ति, एवं धारण पोषण करने की शक्ति, और स्तुति (इळः) अन्नों, भूमियों और शुभ इच्छाओं के (यजध्यै) दान देने और सत्संग, मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ, (होतारम्) दानशील पुरुष को (प्र जिगाति) प्राप्त होती है। और वह सर्वश्रेष्ठ दीप्ति या तेज (वृषभं) बलवान् , मेघ के समान वर्षणशील को भी (नमोभिः) नमस्कार आदि आदर योग्य वचनों से (वन्दध्यै) स्तुति करने के लिये (अच्छ) प्राप्त हो। (सः) वह (इषितः) स्वयं इच्छावान् होकर (यजीयान्) सब से बड़ा दानशील, सत्संगयोग्य एवं सुहृद् होकर (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (यक्षत्) दान करे, सत्संग दे, और मित्र भाव से मिले।

ऊ॒र्ध्वो वां॑ गा॒तुर॑ध्व॒रे अ॑कार्यू॒र्ध्वा शो॒चींषि॒ प्रस्थि॑ता॒ रजां॑सि।
दि॒वो वा॒ नाभा॒ न्य॑सादि॒ होता॑ स्तृ॒णीम॑हि दे॒वव्य॑चा॒ वि ब॒र्हिः॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! हे राजाप्रजाजनो! (वां) तुम दोनों के (अध्वरे) परस्पर हिंसा से रहित, एक दूसरे के पालन-पोषणकारी, अजेय मेल और संगति में भी (वां ऊर्ध्वः) तुम दोनों के ऊपर उच्च कोटि का (गातुः) उपदेश करने हारा, सूर्य के समान तेजस्वी, मार्गदर्शक विद्वान् (अकारि) नियत किया जावे। जिससे (ऊर्ध्वा) सबसे ऊपर के, सर्वश्रेष्ठ (शोचींषि) तेज सूर्य के प्रकाश के समान (रजांसि) सब लोकों को (प्रस्थिता) प्राप्त हों, उन तक पहुंचे। (दिवः वा नाभा) आकाश के बीच में सूर्य के समान (दिवः) समस्त कामनाओं, व्यवहार और ज्ञानादि के प्रकाश को (नाभा) केन्द्र में और (दिवः नाभा) पृथिवी के मध्यभाग में (होता) ज्ञान देने और शिष्यों को अपने अधीन लेने वाला, गुरु और राष्ट्र को वश करने वाला राजा (नि असादि) उच्चासन पर विराजे। हम लोग (देव-व्यचाः) विद्वानों का विशेष सत्कार

करने वाला (बर्हिः) उनके मान को बढ़ाने वाला आसन सूर्य के लिये अन्तरिक्ष के समान (स्तृणीमहि) बिछावें। इसी (देवव्यचाः) दानशील तेजस्वी पुरुष को विशेष प्राप्त होने वाले (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा को हम (स्तृणीमहि) पृथ्वी पर फैलावें।

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी३मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ५।२२

भा०—(मनसा) ज्ञानपूर्वक (सप्त होत्राणि) सातों प्रकार के ग्रहण करने योग्य और दान देने योग्य पदार्थों को (यज्ञ के) सप्त होत्र आदि कर्मों के समान इच्छापूर्वक (वृणानाः) स्वीकार करते हुए (ऋतेन) सत्यज्ञान, अन्न तथा ऐश्वर्य के द्वारा (विश्वं) समस्त राष्ट्र को (इन्वन्तः) व्यापते हुए (प्रति यन्) अपने विपक्ष का मुकाबला करें। (विदथेषु) यज्ञों और संग्रामों में (प्रजाताः) प्रसिद्ध, कीर्त्तिमान् (नृपेशसः) वीर पुरुषों से बने स्वरूप को धरने वाली (पूर्वीः) पूर्व से ही तैयार, सुशिक्षित, पहले ही विद्यमान सेनाएं प्राप्त कर। (इमं यज्ञं) इस परस्पर के मैत्रीभाव से व्यवस्थित राष्ट्र को (विचरन्त) प्राप्त हों, उसका उपभोग करें। राष्ट्र के 'सप्तहोत्र' सात प्रकृतियां हैं। (२) अध्यात्ममें—देहगत सात प्राण या सर्पणशील प्राण 'सप्त होत्र' हैं। उनको मानस बल से वश करते हुए सत्य के बल से 'विश्व' अर्थात् आत्मतत्व को प्राप्त होते हैं। 'नृ' अर्थात् आत्मा को रूपवान् करने वाली (पूर्वीः) पूर्व की वासनाएं ही (विदथेषु प्रजाताः) प्राप्त होने योग्य देहों में प्रकट होकर (इमं यज्ञं) इस आत्मा को (वि चरन्त) विविध भोगों में प्राप्त होती हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

आ मन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ६

भा०—जिस प्रकार (तन्वा) स्वरूप में (विरूपे) भिन्न २ प्रकार

का प्रकाश और अन्धकार से युक्त स्वरूप को धारण करने वाले (उषसा) दिन और रात्रि (स्मयेते) मानों परस्पर मुस्कुराते हैं, विकसित होते हैं उसी प्रकार (तन्वा विरूपे) शरीरों में विभिन्न २ प्रकार के रूप, रुचि और कान्ति और रचना वाले स्त्री पुरुष भी (उषसा) एक दूसरे को चाहने वाले (उत) और (उपाके) एक दूसरे के सदा समीप रहते हुए (भन्दमाने) एक दूसरे का कल्याण और सुख करते हुए (स्मयेते) मुस्कुराया करें, सदा प्रसन्न वदन होकर रहें। (यथा) जिससे (महोभिः) महान् गुणों और तेजों से युक्त (नः) हमें (मित्रः) स्नेही मित्र (वरुणः) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और (मरुत्वान् इन्द्रः) विद्वान् शिष्यों से युक्त आचार्य, प्राणों के बल से युक्त शत्रुहन्ता बलवान् और सैनिकों का स्वामी सेनापति (उत) भी (जुजोषत्) प्रेम से स्वीकार करे।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनुव्रतं व्रतपा दीध्यानाः॥ ७॥

भा०—(दैव्या) देव अर्थात् विद्वानों के हितकारी, दिव्य गुणों को धारण करने वाले, (होतारा) एक दूसरे को सुख देने वाले स्त्री पुरुष (प्रथमा) सबसे मुख्य जानकर उनदोनों को (निऋञ्जे) अच्छी प्रकार सुसज्जित, कार्य दक्ष करता है क्योंकि उनके आश्रय पर ही (सप्त) देश से देशान्तर में भ्रमण करने वाले (पृक्षासः) प्रेम-सम्पर्क के योग्य या मेघों के समान जलवत् ज्ञान रस की वर्षा करने वाले विद्वान् जन (स्वधया) अपनी ज्ञान, धारणा शक्ति या आत्मा से या अन्न से (मदन्ति) स्वयं प्रसन्न होते और औरों को तृप्त करते हैं। वे स्वयं (व्रतपाः) व्रतों नियमों का पालन करने हारे (व्रतम् अनु दीध्यानाः) सदा अपने व्रत का ही चिन्तन करते हुए अपने व्रतानुसार दीप्तियुक्त या सुशोभित होते हुए (ऋतं शंसन्तः) सत्य वेदज्ञान का उपदेश करते हुए (ते)

वे (ऋतम् इत्) सदा सत्य धर्म का पालन और सत्यस्वरूप परमेश्वर का ही (आहुः) उपदेश करते हैं।

आ भार॑ती भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः ।
सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स॑दन्तु ॥८॥

भा०—(भारतीभिः भारती सजोषाः) जिस प्रकार सर्वप्राणिसमूह के पालक-पोषक सूर्य की दीप्ति उसकी अन्य पालक पोषक ताप विद्युत् आदि शक्तियों के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर (इदं बर्हिः आः) इस अन्तरिक्ष और इस भूलोक को प्राप्त होती है उसी प्रकार (भारती) प्रजा का भरण पोषण करने वाले मुख्य पुरुष की प्रजापालक नीति, शक्ति (भारतीभिः) 'भरत' अर्थात् अन्य प्रजापोषक पुरुषों की शक्तियों या सेनाओं और सभाओं से (सजोषाः) समान प्रीति से युक्त होकर (इदं बर्हिः आसीदतु) इस लोक अर्थात् प्रजाजन पर विराजे, उत्तम पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करें। (दैवैः सजोषाः) 'देव' अर्थात् विद्वान् और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर (इळा) पृथिवी अर्थात् पृथिवी निवासिनी प्रजा इस लोक पर प्रतिष्ठा से विराजे। (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (मनुष्येभिः सजोषाः आसीदतु) मनन शील पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर विराजे। (सारस्वतेभिः सरस्वती) 'सरस्वती' वेद वाणी का अभ्यास करने वाले विद्वानों से युक्त (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत् सभा इस लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करे। अथवा (सारस्वतेभिः स्वरस्वती) सरस्वती अर्थात् स्त्री-जन, अपने विवाहित पतियों सहित प्रीति युक्त होकर प्रतिष्ठित पद पर विराजें। उस प्रकार (तिस्रः) तीनों (देवीः) देवियें ज्ञान और सुख देने वाली होकर (अर्वाक्) हमें प्राप्त होकर (इदं बर्हिः) इस लोक में (आसदन्तु) आदर पूर्वक विराजें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद के आप्री सूक्त।

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९॥

भा०—हे (देव त्वष्टः) दानशील ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! या विद्युत् जिस प्रकार (तुरीयम् पोषयित्नु रराणः) शीघ्र वेगजनक और देह में पोषक अन्नादि तेज प्रदान करता है उसी प्रकार तू भी (तुरीयम्) दुःखों, संकटों से पार उतरने वाला (पोषयित्नु) पोषण करने वाला बलवीर्य (रराणः) प्रदान करता हुआ (वि स्यस्व) बंधनों से मुक्तकर (यतः) जिससे (वीरः) वीर्यवान् , (कर्मण्यः) कर्मकुशल, शक्तिमान् (सुदक्षः) उत्तम ज्ञानवान् (युक्तग्रावा) विद्वान् उपदेष्टा को संगलाभ करने और शस्त्रास्त्र में कुशल (देवकामः) उत्तम विद्वान् ज्ञानदाता जनों की कामना करने वाला पुत्र, शिष्य और प्रजाजन (जायते) उत्पन्न हो सके। (२) राजा प्रजा को संकटों से मुक्त कराने वाले प्रजा-पोषक बल का प्रयोग करे कि प्रजाजन बलवान् , चतुर, ज्ञानी, विद्वान् उपदेष्टा से युक्त विद्वत्प्रिय हों। (३) 'त्वष्टा' आचार्य शिष्य को तारक पोषक ज्ञानदें कि वह ब्रह्मचारी, कर्मवान् , चतुर विजयी हो। (४) पिता इस लोक से तारक, पोषक वीर्य का स्त्री में दान करे कि उत्तम, शक्तिशाली ज्ञानवान् विद्वत्सभाओं में बैठने हारा पुत्र उत्पन्न हो।

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद॥१०॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य उत्तम भोग्य ऐश्वर्यों के पालन करने हारे, एवं महा वृक्ष के समान अपने सेवन करने वाले आश्रित जनों के पालक ! राजन् ! विद्वन् ! किरणों का स्वामी सूर्य जिस प्रकार (देवान् अव सृजति उप सृजति) किरणों को नीचे फैंकता, सब तक पहुंचाता है, उसी प्रकार तू भी (देवान्) देव अर्थात् विद्वान् वीर और

कामनाशील पुरुषों को (अव सृज) अपने अधीन कर उनको योग्य मार्ग पर चला। और उनको (उप सृज) अपने समीप रखकर योग्य बना ! (अग्निः हवि सूदयाति) अग्नि जिस प्रकार 'हवि' अर्थात् चरु को (देवान्) वायु आदि तत्वों तक छिन्न भिन्न करके पहुंचाता है और (शमिता) लोक में रोगनाशक होकर शान्ति उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक, विद्वान् और स्वामी पुरुष (हविः) ग्रहण करने योग्य अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को भी मेघ के समान (शमिता) शान्तिदायक होकर (सूदयाति) जलों के प्रचुर मात्रा में दे (सः इत् उ) वह ही (होता) दानशील होकर (सत्यतरः) अधिक सत्याचरणशील, ईमानदार और (सत्यतरः) सत्य के बल से स्वयं और अन्यों को तराने वाला होकर (यजाति) दान करे और अन्यों से मित्र भाव से वर्त्ते। (यथा) जिससे वह (देवानां) दिव्य पुरुषों, विद्वानों के बीच में (जन्मानि) उत्तम जन्मों को (वेद) प्राप्त करे।

आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑ । ब॒र्हिर्न॑ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥ ११ ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाशक तेजस्विन् ! (अग्निः समिधानः देवेभिः इन्द्रेण) सूर्य या अग्नि जिस प्रकार प्रदीप्त होकर प्रकाशयुक्त किरणों और वायु से प्रकट होता है उसी प्रकार तू भी (सम् इधानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, (इन्द्रेण) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र से और शत्रुनाशक वीर सेनापति से तथा (तुरेभिः देवैः) अति शीघ्रगामी विजय कामना वाले वीर पुरुषों सहित (सरथं) रथसैन्य सहित (अर्वाङ्) हमारे पास (आ याहि) प्राप्त हो। और (नः) हमारे बीच (बर्हिः) वृद्धि, प्रतिष्ठायुक्त प्रजाजन पर (आस्व) उपविष्ट हो। इसी प्रकार (सुपुत्रा) उत्तम पुत्रों की (अदितिः) पूज्य

माता के समान (सुपुत्रा) उत्तम रीति से प्रजाओं की मानव कष्टों से त्राण करने वाली (अदितिः) अखण्ड, अटूट शक्ति (नः) हमारे (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र पर (आस्ताम्) विराजे। (देवाः) दानशील और ऐश्वर्य के इच्छुक वीर और दानशील धनी और ज्ञानी पुरुष (स्वाहा) उत्तम वाणी, उत्तम दान और उत्तम स्तुति प्रार्थना से (अमृताः) दीर्घायु होकर (मादयन्ताम्) स्वयं भी तृप्त हों और हमें भी खूब तृप्त, आनन्द प्रसन्न करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ११ भुरिक् पंक्तिः। ३ पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः। ४ त्रिष्टुप्। ५, ७, १० निचृत् त्रिष्टुप्। ८, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम्।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः॥ १ ॥

भा०—(अग्निः) दीप्तिमान् सूर्य जिस प्रकार (उषसः) प्रभात बेलाओं में (प्रति अबोधि) सब सोते हुए प्राणियों को जगाता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानवान् विद्वान् (चेकितानः) स्वयं ज्ञानवान् (विप्रः) मेधावी, सर्व विद्याओं में पूर्ण, (कवीनां पदवीः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुषों के पदों, चरण चिन्हों पर चलने हारा होकर (प्रति अबोधि) सबको जगावे और स्वयं भी प्रत्येक ज्ञान का ज्ञाता हो। वह (पृथुपाजाः) विस्तृत ज्ञान और बल से युक्त होकर (देवयद्भिः) विद्वानों के प्रिय, उत्तम गुणों के इच्छुक पुरुषों द्वारा (समिद्धः) प्रदीप्त अग्नि के समान स्वयं प्रकाशित होकर (वह्निः) कार्यों के भार को वहन करने में समर्थ विद्वान् (तमसः) अन्धकार के समान अज्ञान से दूर करके ज्ञान के द्वारा मार्गों को (अप आवः) खोले।

प्रेद्धाग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतृणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य सन्दृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥२॥

भा०—(अग्निः स्तोमेभिः प्र वावृधे) जिस प्रकार भौतिक अग्नि काष्ठसमूहों से बहुत बढ़ता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (स्तोमेभिः) विद्याओं का उपदेश करने वाले वेद के सूक्तों, (गीर्भिः) उत्तम वेद वाणियों से (प्र वावृधे) खूब अच्छी प्रकार बढ़ता है । और (स्तोतृणां) उत्तम विद्याओं को उत्तम उपदेष्टाओं के बीच में भी (उक्थैः) उत्तम वचनों से (नमस्यः) आदर करने योग्य होता है । वह (ऋतस्य) सत्य ज्ञान को (संदृशः) अच्छी प्रकार दिखलाने वाली (पूर्वीः) अपने से पूर्व के विद्वानों से उपदेश की गई, विद्याओं से पूर्ण, एवं सनातन से चली आई वेद वाणियों या ज्ञान वाणियों को (चकानः) अभ्यास करना चाहता हुआ, (विरोके) विविध और विशेष रुचि के अनुसार स्वयं (दूतः) सेवा किया जाकर जिस प्रकार सूर्य (विरोके) विशेष प्रकाश से दीप्त होकर (उषसः सम् अद्यौत्) उषा कालों को चमकाता है उसी प्रकार (उषसः) कामनाशील शिष्यजनों को (सम् अद्यौत्) अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है । (२) परमेश्वर वह (अग्निः) ज्ञानमय सर्वप्रकाशक परमेश्वर वेद वाणियों, स्तुति वचनों द्वारा महान् है । वह स्तुति कर्मों के वचनों से स्तुत्य है । ज्ञानदर्शक सनातन वेद वाणियों को प्रकाशित करता हुआ वह पूज्य उपासित होकर प्रभातों को सूर्य के समान प्रकाशित करता है ।

अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३॥

भा०—(मानुषीषु विक्षु) मननशील, मनुष्यों की इन प्रजाओं में (अपां गर्भः) जलों के बीच में विद्युत् जिस प्रकार (ऋतेन साधन्) गतिशील बल से सब कार्यों को साधता हुआ, (अधायि) स्थापित किया जाता है उसी प्रकार (अपां गर्भः) कर्मों और ज्ञानों और आप्त

प्रजाओं के बीच में सुरक्षित एवं उनको अपने वश में करने में समर्थ मित्रः) प्रजाओं का सुहृत् उनको मरण से बचाने वाला (अपां गर्भः) प्राणों के बीच विद्यमान आत्मा के समान (अग्निः) तेजस्वी, अग्रणी, (अधायि) स्थापित किया जाना चाहिये । वह (ऋतेन) सत्य ज्ञान और न्याय के अनुसार (साधन्) सब कर्मों को साधता हुआ, (हर्यतः) कान्तियुक्त, सबके कामना योग्य, (यजतः) दानशील, सत्संग के योग्य और पूज्य होकर, (सानु) शैल शिखर के समान उन्नत पद और (सानु) सेवनीय ऐश्वर्य युक्त पद पर (आ अस्थात्) विराजे और वह (विप्रः) विद्वान् विशेष विद्याओं से पूर्ण, (मतीनाम्) विद्वानों और मननशील पुरुषों के बीच में वरण या स्वीकार करने योग्य (अभूत) हो । (२) अग्नि, परमेश्वर सबके भीतर प्राणों का प्राण, और (अपाम्) सूक्ष्म प्रकृति के परमाणुओं के भी भीतर व्यापक, स्नेहमय, ज्ञान से प्राप्त किया जाता है। वह सर्वपूज्य कान्तिमान् परम सेव्य पद पर विराजता और विशेष रूप से पूर्ण होकर मननशील विद्वानों से स्तुत्य है।

मि॒त्रो अ॒ग्निर्भ॑वति॒ यत्समि॑द्धो मि॒त्रो होता॒ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।
मि॒त्रो अ॑ध्व॒र्युरि॑षि॒रो दमू॑ना मि॒त्रः सिन्धू॑नामु॒त पर्व॑तानाम् ४

भा०—(यत् समिद्धः अग्निः मित्रः) जिस प्रकार खूब प्रदीप्त, प्रज्वलित और प्रकाशित, दीप्तिमान् अग्नि (मित्रः) मनुष्य के मित्र के समान सहायकारी होता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् पुरुष और अग्रणी नायक, (यत् समिद्धः) जो ज्ञानों और गुणों में अच्छी प्रकार प्रकाशित हो जाता है वह (मित्रः) स्नेही मित्र के समान सबका सुहृत् (भवति) हो । वह (मित्रः) सबका स्नेही, सबको मरने से बचाने वाला, (होता) ज्ञान और अन्न का देनेहारा, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, और कष्टों का वारण करने वाला, (जातवेदाः) सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का स्वामी (भवति) हो । वही (मित्रः) सबका स्नेही सुहृद् होकर

(अध्वर्युः) सब किसी की भी हिंसा या पीड़ा की कामना न करता हुआ, अहिंसा-व्रती (इषिरः) स्वयं दृढ़ इच्छा शक्ति से सम्पन्न, और सबको प्रेरण करने में समर्थ (दमूनाः) स्वयं मन, इन्द्रियों को जीतने में समर्थ हो। वही (सिन्धूनां) नदियों के समान वेग से जाने वाले सेनाओं, या प्रजाओं (उत) और (पर्वतानाम्) पर्वतों के समान अभेद्य, दृढ़ एवं पालन शक्तियों से युक्त बड़े २ शासक जनों का भी (मित्रः भवति) मित्र, सहायक हो जाता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—हृदय में अतिदीप्त प्रकाशवान् परमेश्वर ही परम मित्र है, वह सब कुछ देता, सर्वश्रेष्ठ, सर्वैश्वर्य का स्वामी, अहिंसक, पालक, प्रेरक, दमनकर्त्ता, प्राणों, जलों, प्रकृति के परमाणु और पर्वतों और पालक तत्वों का (मित्रः) मापक और पालक है।

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य। पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥२४॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि तत्व (वेः) गमनशील या व्यापक (रिपः) पृथिवी के (अग्रं) पूर्व, सर्वश्रेष्ठ (प्रियं) सब तर्पक अन्न आदि की (पाति) रक्षा करता है। वही (सूर्यस्य चरणं पाति) सूर्य के गमन या कार्य की रक्षा करता है। वही (सप्त-शीर्षाणम्) सात विभागों में विभक्त वायु की रक्षा करता, वह सब (देवानाम् उपमादं पाति) दिव्य पदार्थों के स्वरूप को नाश होने से बचाता है। उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष (प्रियं) अपने प्रिय मित्र पुत्र आदि को (रिपः) पाप से (पाति) बचावे। वही (वेः) जाने वाले मार्गगामी पुरुष के (अग्रं पदं पाति) आगे रखने योग्य पद या मार्ग की रक्षा करे, या (वेः अग्रं पदं पाति) ज्ञानी पुरुष के श्रेष्ठपद की रक्षा करे। वही (यह्वः) स्वयं महान् होकर (सूर्यस्य) सूर्य के (चरणं) कर्त्तव्य अर्थात् उसके समान प्रकाशक, तेजस्वी, पालक आदि

होने के उत्तम कर्त्तव्य का (पाति) पालन करे। अथवा विद्वान् पुरुष (यह्वः) अपने पुत्र या शिष्य के सूर्य-व्रत ब्रह्मचर्य का पालन करे। वह (नाभा) नाभि या केन्द्र में विराज कर (सप्त-शीर्षाणम्) शिर के समान सात मुख्य अंगों से युक्त राज्य को (पाति) पालन करे, वह (अग्निः) अग्रणी (ऋष्वः) महान् दर्शनीय, व्यापक विस्तृत सामर्थ्य वान् होकर, (देवानाम्) सब व्यवहारकुशल, विद्वानों और ऐश्वर्य के इच्छुक तथा दानशील दानी और विद्या दाताओं के (उपमादम्) हर्ष और सन्तोषकारक व्यवहार, उनके उपमा या तुल्यता देने वाले कर्त्तव्य का (पाति) रक्षा करे, स्वयं भी पाले। अध्यात्म में—आत्मा (वेः रिपः) भोक्ता पार्थिव शरीर के प्रिय श्रेष्ठ प्राप्तव्य ज्ञान की रक्षा करता, बड़े प्रेरक प्राण की रक्षा करता, वह सात शीर्षण्य प्राणों से युक्त प्राण को नाभि में रखता, और देवों अर्थात् प्राणों के हर्ष हेतु और ज्ञान चेतनाके देने वाले सामर्थ्य को रखता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान्।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—(ऋभुः) ऋत अर्थात् जल को उत्पन्न करने वाला मेघ या स्रोत, या चमकने वाला सूर्य जिस प्रकार (चारु नाम चक्रे) उत्तम, सुन्दर और (चारु) वेग से चलने वाले जल को उत्पन्न करता है और (ऋभुः) जिस प्रकार खूब दीप्तिमान् अग्नि या सूर्य (चारु नाम चक्रे) उत्तम स्वरूप दिखलाता है उसी प्रकार (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) ज्ञानों को और जानने योग्य पदार्थों को (विद्वान्) जानता हुआ (ऋभुः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित एवं महान् तेजस्वी पुरुष (चारु नाम) अपना सुन्दर नाम, कीर्ति, यश और (चारु नाम) उत्तम व्यापक शासन (चक्रे) करने में समर्थ हो। (घृतवत् चर्म ससस्य) घी जिस प्रकार सोने वाले या आराम से रहने वाले पुरुष के चर्म की रक्षा करता

है और जिस प्रकार अग्नि (ससस्य) सोते हुए (वेः) गमनशील पथिक के (पदं) स्थान की जंगली प्राणियों से रक्षा करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी, अग्रणी पुरुष (वेः) प्राप्त हुए (ससस्य) सोते हुए, असावधान प्रजाजन के (चर्म) शरीरों का, (पदं) प्राप्त करने योग्य सुख की और गृहादि स्थान की और स्वयं (वेः तत् इत् घृतवत् पदं) तेजस्वी के तेजोयुक्त उस ही परम पद या स्वरूप की (अप्रयुच्छन्) विना प्रमाद के (रक्षति) रक्षा करे ।

आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥७॥

भा०—(अग्निः घृतवन्तं योनिम्) अग्नि जिस प्रकार घृत से युक्त यज्ञस्थान में स्थित रहती है और जिस प्रकार (अग्निः) विद्युत् (पृथु प्रगाणं) बड़े शब्द करने वाले (घृतवन्तं योनिम् अस्थात्) जल से युक्त मेघरूप आश्रयस्थान या स्रवणशील जल में स्थित रहती है । और जिस प्रकार बडवानल (घृतवन्तं योनिम्) क्षरणशील, जलमय समुद्र में स्थित रहता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजस्वी ज्ञानी, अग्रणी पुरुष (घृतवन्तं) जल और घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों से युक्त (योनिम् आ अस्थात्) घर को प्राप्त कर उसमें रहे और नायक पुरुष जल सम्पदा से युक्त राष्ट्र पर शासक बनकर रहे । और स्वयं (उशानः) कामनाशील होकर (पृथु-प्रगानम्) बहुत अधिक विस्तृत उत्तम उपदेश करने वाले (उशन्तं) तेजस्वी और चाहने वाले प्रेमी विद्वान् पुरुष को शिष्य के समान प्राप्त हो । स्वयं (दीद्यानः) चमकता हुआ, (शुचिः) शुद्ध पवित्र, निश्छल आचरण से युक्त, (ऋष्वः) महान्, (पावकः) सब को पवित्र करता हुआ (पुनः पुनः) वार २ (मातरा) आकाश और भूमि को सूर्य या विद्युत् के समान माता और पिता दोनों को (नव्यसी) अति स्तुत्य (कः) बनावे । विद्वान् गुणी होकर पुत्र माता पिता को

नवीन यशस्वी रूप दे देता है। (२) पालक के पक्ष में—(अग्निः) तेजोमय वीर्य भी घृत अर्थात् वीर्य युक्त या क्षरणशील, कामना युक्त योनि, गर्भाशय में स्थित होता, वही पवित्र गर्भ को पवित्र करने हारा, उत्पन्न होकर दोनों को और अधिक नवीन या दर्शनीय माता पिता बना देता है। (३) अग्नि जीव तेजस्वरूप परम आश्रय प्रभु की कामना करता हुआ उसकी ओर प्रस्थित हो, वह स्वयं प्रकाश, पवित्र होकर वार २ जन्म लेकर नये से नये मा बाप बना लेता है।

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नाना योनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥ (निरु० परि० २)

सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे॥ ८॥

भा०—(प्रस्वः) स्वयं उत्पन्न होने वाली नदियां या वृक्ष अन्नादि उत्पन्न करने वाली (आपः इव) जल धाराएं जिस प्रकार (प्रवता घृतेन शुम्भमानाः) नीचे की ओर बहते जल से शोभा को प्राप्त होती हैं और वे (घृतेन वर्धन्ति) जल से बढ़ती हैं उसी प्रकार (प्रस्वः) उत्तम फल पुष्पादि उत्पन्न करने वाली ओषधियां भी, (प्रवता घृतेन) नीचे की ओर आते जल से (शुम्भमाना) खूब शोभा को प्राप्त होती हैं और वे (घृतेन वर्धन्ति) वे जल से ही बढ़ती भी हैं। इसके अतिरिक्त (यदि) चाहे वे ओषधियें (प्रवता घृतेन) नीचे आते जल से (वर्धन्ति) बढ़ती हैं तो भी (अग्निः) आग (सद्यः जातः) शीघ्र उत्पन्न होकर ही माताओं से धारित सद्योजात बालक के समान (ओषधीभिः) ओषधियों से ही (ववक्षे) अपने भीतर धारण भी किया

जाता है। इसी कारण वह अग्नि (पित्रोः) माता पिताओं की (उपस्थे) गोद में बालक के समान (पित्रोः उपस्थे) पालक दो अरणियों के बीच (उरुष्यत्) रक्षा भी प्राप्त करता और बढ़ता भी है। और वे ही (प्रस्वः) अग्नि को उत्पन्न करने वाली ओषधियां, काष्ठादि (प्रवता घृतेन शुम्भमाना) नीचे की तरफ पिघल कर पड़ते घीसे और अधिक चमकती हुई, बालक को झरते उतरते दूध से (प्रस्वः) माताओं के समान (वर्धन्ति) बढ़ाती हैं। इसी प्रकार वह अग्नि (पित्रोः उपस्थे अग्निः) आकाश और पृथ्वी के बीच सूर्य के समान (उरुष्यत्) स्वयं बहुत बड़ा हो जाता है। और वह अग्नि भी बढ़कर (ओषधीभिः सह ववक्षे) ओषधियों से मिलकर रोष सा करता और प्रचण्ड हो जाता है (२) इसी प्रकार नायक अग्रणी, विद्वान् पुरुष (सद्यः) सभा सदों से वरण करने योग्य या विराजने के उच्चासन के योग्य और (जातः) गुणों में प्रसिद्ध होकर (ओषधीभिः) ताप, तेज को धारण करने वाली सेनाओं से (ववक्षे) धारण किया जाता है। और वह उनके सहयोग में ही (ववक्षे) रोष युक्त होकर प्रचण्ड हो जाता और शत्रुओं पर प्रहार करता है। (यदि) क्योंकि वे ही (प्रस्वः) उसको उच्च आसन पर अभिषेक करने हारी होकर और (प्रवता) नीचे विनय से (आपः इव) जल धाराओं के समान सुशोभित होती हुई उसको (घृतेन) तेज या जलाभिषेक (वर्धन्ति) बढ़ाती और स्वयं भी बढ़ती हैं। और वह (अग्निः) अग्रणी नायक (पित्रोः) मां बाप की गोद में बालक के समान माता भूमि और पिता सैन्यबल दोनों के (उपस्थे) उपस्थिति या सन्निधि, रक्षा में (उरुष्यत्) स्वयं अपने को बढ़ावे और प्रजा की भी रक्षा करे।

उदुष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृथिव्याः अधि) पृथ्वी पर (अग्निः) अग्नि

(समिधा) काष्ठ के संग (यह्वः) बड़ा होकर (उत् अद्यौत्) खूब चमकता है उसी प्रकार (वर्ष्मन्) जल सेचनकाल अर्थात् वर्षण काल में भी (नाभौ) बीच अन्तरिक्ष में वही अग्नि विद्युत् रूप से (सम्-इधा) अति दीप्ति से या वायु के संघर्षण रूप उद्दीप्त कारण से (उत् अद्यौत्) उत्तम रीति से चमकता है । उसी प्रकार वह अग्नि सूर्य रूप में (दिवः अधि) परम आकाश के बीच में (समिधा) अच्छे तेज से (यह्वः) महान् होकर (वर्ष्मन्) वृष्टि सेचन के लिये ही (उत् अद्यौत्) उत्तम रीति से या सबसे ऊपर चमकता है । वह अग्नि (मित्रः) सबका मित्र (ईड्यः) सबको अभीष्ट, (मातरिश्वा) अपने उत्पादक कारण अरणि, काष्ठ, अन्तरिक्ष और परमाकाश में जीवित और स्थित और गति करता हुआ, (दूतः) तापवान् होकर (यजथाय) महान् यज्ञ करने के लिये (देवान्) दिव्य पांचों भूतों, तेजस्वी लोकों और प्रकाशमय किरणों को धारण करता है । या (देवान् यजथाय वक्षत्) विद्वानों को यज्ञ का उपदेश करता है । (२) नायक पक्ष में—(स्तुतः) प्रशंसित एवं सबके समक्ष प्रस्तुत किया गया (यह्वः) गुणों में महान्, (वर्ष्मन्) रूप में, (दिवः अधि) आकाश में सूर्य के समान (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के केन्द्र में स्थित होकर (उत् अद्यौत्) सबसे ऊपर चमके । वह (मित्रः) सर्वस्नेही (अग्निः) अग्रणी (मातरिश्वा) पृथ्वी माता पर रहने हारा, वायु के समान बलवान्, (दूतः) दुष्टों का सन्तापकारी होकर (देवान् यजथाय वक्षत्) विजिगीषु वीरों के संगत होने या मिलाये रखने के लिये सब पर हुकूमत करे ।

उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वो३ऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे १०

भा०—(यदि) चाहे (भृगुभ्यः परि) भूनने और जला देने वाले पदार्थों से (परि) भी अधिक (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष गत वायु (गुहा-

सन्तं) घर में रखे (हव्यवाहं) अन्नादि को लेने वाले अग्नि को (समीधे) प्रदीप्त करता है तो भी जिस प्रकार (ऋभ्वः) महान् (अग्निः) अग्नि, सूर्य, (रोचनानाम्) सब प्रकाशमान चन्द्रादि लोक पिण्डों के बीच में (उत्तमः) सबसे उत्तम (भवन्) होता हुआ (समिधा) अपने तेज से (नाकम्) पूर्ण आकाश को (उत् अस्तम्भीत्) सर्वोपरि रहकर भी थामने में समर्थ है। उसी प्रकार (यदि) चाहे (भृगुभ्यः परि) इन्द्रियों को पोषण करने वाले गौण प्राणों से भी श्रेष्ठ (मातरिश्वा) प्रमाता आत्मा के आश्रय रहकर श्वास लेने या देह को प्राणवान् करने हारा मुख्य प्राण (गुहा सन्तं) इस देह में रहने वाले या (गुहा सन्तं) बुद्धि तत्व में व्यापक (हव्यवाहं) भोग्य पदार्थों के ग्रहीता जीवात्मा को (सम्-ईधे) अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है। उसको प्रकट करता है तो भी (ऋश्वः अग्निः) महान् ज्ञानवान्, सबसे पूर्व, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (रोचनानाम्) चमकने वाले सूर्यादि वा, कामनाशील आत्माओं में सबसे (उत्तमः) उत्तम (भवन्) होता हुआ (समिधा) उत्तम तेज से (नाकम्) दुःखादि बाधा से रहित परम आनन्दमय स्वरूप को (उत् अस्तम्भत्) सर्वोपरि स्थायीरूप से बनाये रहता है।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२५॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० ३। सू० १। मन्त्र २३ ॥) इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् ६, ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥**

भा०—हे (कारवः) क्रियाशील विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार (मनना वच्यमानाः देवयन्तः देवद्रीचीं प्र नयन्ति) विचार पूर्वक कह गये शिल्पी लोग दानशील स्वामी की कामना करते हुए दानशील स्वामिजनों को अच्छी लगने वाली शिल्प क्रिया को करते हैं और वह शिल्पक्रिया (वाजिनी) वेग से युक्त, या ऐश्वर्य से युक्त, (दक्षिणा-वाट्) दक्षिणा या मजदूरी पैदा करने वाली और (प्राची) बहुत उत्तम रूप से प्रकट होकर (अग्नये घृताची) अग्नि में जुहू जैसे (अग्नये हविः भरन्ती एति) अग्रणी तेजस्वी पुरुष को अन्न, सुख आदि पदार्थ पूर्ण करती हुई प्राप्त होती है और जिस प्रकार (कारवः) यज्ञ कर्त्ता लोग (देवयन्तः) परमेश्वर की उपासना करते हुए (मनना वच्यमानाः) मन्त्र द्वारा प्रेरित होकर (देवद्रीचीं प्रनयन्ति) ईश्वरोपासना युक्त वाणी को और यज्ञ क्रिया या स्रुचा को आगे करते हैं । (दक्षिणावाट्) दक्षिण दिशा से लाई जाकर (घृताची हविर्भरन्ती) घृत से युक्त होकर ग्रहण करती हुई यज्ञ में 'जुहू' नाम स्रुक् (प्राची) पूर्व की ओर (अग्नये) अग्नि का लक्ष्य करके (एति) आगे बढ़ती है उसी प्रकार हे (कारवः) कर्मण्य क्रियाशील पुरुषो ! आप लोग भी (मनना) मनन शील पुरुष से (बच्यमानाः) उपदेश किये जाकर (देवयन्तः) उत्तम गुणों और ज्ञान दानशील विद्वानों की कामना करते हुए, उनको मन से चाहते हुए (देवद्रीचीं प्रनयत) विद्वान् दानी और ज्ञानदाता गुरुजनों की परम पूजा, सत्कार क्रिया को अच्छी प्रकार किया करो । और (अग्नये) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष के सुख के लिये (घृताची) तेज और पौष्टिक पदार्थ को प्राप्त करने वाली (दक्षिणावाट्) क्रिया शक्ति को धारण करने वाली, (वाजिनी) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त (प्राची) उत्तम गमन या आचरण वाली, उत्तम सत्कार रूप क्रिया

उत्तम पत्नी के समान (अग्नये) अग्रणी, ज्ञानवान् एवं नायक पुरुष के मान आदर के लिये (हविः भरन्ती) ग्राह्य, उपहार, अन्नादि प्राप्त कराती हुई (एति) प्राप्त हो।

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (जायमानः रोदसी अपृणात्) प्रकट होकर आकाश और पृथिवी दोनों का पूर्ण करता और पालन करता है (उत) और वह (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दिवः पृथिव्याः चित्) आकाश और पृथिवी से भी अधिक बढ़ जाता है। और (सप्त जिह्वाः वह्नयः तस्य उच्यन्ते) सात ज्वाला वाली अग्नियें भी उसी के अंश कहाती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वान् अग्रणी नायक! तू (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (रोदसी अपृणाः) बालक जिस प्रकार मां बाप की गोद भरता है उसी प्रकार (रोदसी) उत्तम उपदेश करने वाले पिता और गुरु उन दोनों को (अपृणाः) पूर्ण कर और पालन कर। इसी प्रकार हे वीर पुरुष! तू प्रसिद्ध होकर शासक वर्ग और प्रजावर्ग एवं स्व और परपक्ष दोनों को पूर्ण कर। (उत्) और हे (प्रयज्यो) सर्वोत्कृष्ट दानशील! तू (महिना) अपने महान् ज्ञान और बल के सामर्थ्य से (दिवः पृथिव्याः चित्) सूर्य और पृथिवी, ज्ञानी और अज्ञानी दोनों से (प्र रिक्थाः) बढ़जा। (सप्त-जिह्वाः) सात छन्दों वाली वाणियों के विद्वान्जन (वह्नयः) तेजस्वी, एवं कार्य भार वहन करने वाले पुरुष (ते प्र वच्यन्ताम्) तेरे ही अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें, तेरे ही शिष्य भृत्यादि कहावें। (ते वच्यन्ताम्) वा तुझे उत्तम उपदेश करें।

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥३॥

भा०—(यदि) जब (मानुषीः विशः) मननशील, मनुष्य प्रजाएं (देवयन्तीः) तेजस्वी विजयेच्छुक पुरुषों की कामना करती हुई और (प्रयस्वन्तीः) नाना प्रकार के तृप्तिकारी अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों से युक्त होकर (शुक्रम्) देह में वीर्य के समान बलकारक आशु कार्यकारी (अर्चिः) गृह में दीप्त ज्वाला के समान प्रकाशक तुझको (ईळते) चाहती हैं तो (द्यौः) ज्ञानप्रकाश से युक्त विद्वान् जन और (पृथिवी च) पृथिवी के समान आश्रय वाली सामान्य प्रजा और (यज्ञियासः) यज्ञशील, संगठन के अंग भूत, शासक लोग भी (दमाय) दुष्टों के दमन के लिये (त्वा होतारं) सबको वश करने वाले तुझको ही (नि सादयन्ते) सर्वोच्च पद पर स्थापित करते हैं ।

म॒हान्त्स॒धस्थे॑ ध्रु॒व आनिष॑त्तो॒ऽन्तर्द्यावा॑ माहि॑ने॒ हर्य॑माणः ।
आस्क्रे॑ स॒पत्नी॑ अ॒जरे॒ अमृ॑क्ते सब॒र्दुघे॑ उरुगा॒यस्य॑ धे॒नू ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (माहिने सधस्थे) बड़े भारी मध्याकाश में (द्यावा अन्तः) भूमि और आकाश के बीच (हर्यमाणः) कान्ति से अति मनोहर, उज्ज्वल (महान्) बड़ा भारी सूर्य (ध्रुवः) स्थिर होकर (आ-निषत्तः) अच्छी प्रकार विराजता है उसी प्रकार (महान्) महान् पुरुष (हर्यमाणः) कान्तिमान् तेजस्वी होकर (द्यावा अन्तः) कामनाशील, उसको, चाहने वाले उभय पक्षों के बीच (सधस्थे) एक साथ बैठने के सभाभवन में (ध्रुवः) कूटस्थ, स्थिर रहकर (आनिषत्तः) अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा पद पर विराजे । और जिस प्रकार (उरु-गायस्य) बड़े भारी व्यापनशील या वेग से बहुत तीव्र गमन वाले सूर्य की शक्ति से ये दोनों आकाश और भूमि (आस्क्रे) आक्रमणशील अर्थात् उससे सञ्चालित और (सपत्नी) समान रूप से सूर्य को अपना पालक पति मानने वाले या, समान रूप से प्रजा का वृष्टि द्वारा पालन करने वाली (अ-

जरे) अविनाशी जरा, या वृद्धावस्था से रहित (अमृक्ते) विकार उत्पन्न होने से मलिन, (सबर्दुघे) जल रस का दोहन कारने वाली, (धेनू) गौ के समान रसों का दान करके जगत् को पालती हैं, उसी प्रकार (उरु-गायस्य) विशाल शक्ति, और वाणी वाले नायक के अधीन स्त्री और पुरुष दोनों ही (आस्क्रे) आगे उन्नति की ओर बढ़ने वाले, (सपत्नी) समान भाव से एक दूसरे और पुत्रादि का पालन करने वाली, (अजरे) जरा अर्थात् वृद्धावस्था से रहित, (अमृक्ते) कामनादि से युक्त अथवा, (अमृक्ते) जिन से अधिक कोई शुद्ध न हो, अति शुद्ध खूब अलंकृत, (सबर्दुघे) समान भाव से एक दूसरे का वरण करके एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले और अङ्गाङ्गी भाव से दायें बाये होकर, एक शरीर सा बनाकर एक दूसरे के पूरक (धेनू) सन्तान को दुग्धादि पिलाने हारे हों ।

व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥२६॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! परमेश्वर ! (महतः) महान् (ते) तेरे (महानि) बड़े २ (व्रता) कर्म नियम हैं । (तव क्रत्वा) तू अपने क्रिया और ज्ञान सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (आततन्थ) विस्तृत कर रहा है । (त्वं) तू (जायमानः) प्रसिद्ध होता हुआ (दूतः) दुष्टों का संतापजनक और भक्तों से उपासित (अभवः) होता है । हे (वृषभ) बलवन् ! (त्वं) तू (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों का (नेता) नायक, अग्रणी, (अभवः) हो । (२) अध्यात्म में—(रोदसी) प्राण और अपान, (दूतः) इन्द्रियों द्वारा सेवित, (चर्षणीनां नेता) द्रष्टा इन्द्रियों का प्रवर्त्तक । गृह पक्षमें— (रोदसी) माता पिता, (दूतः) विद्वानों का परिचारक । (४) दूत पक्षमें रोदसी,—स्वपक्ष परपक्ष । इति षड्विंशो वर्गः॥

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष केश वाले दो लाल घोड़ों को रथ के धुरा में जिस प्रकार रासों से जोड़ा जाता है उसी प्रकार तू (केशिना) नाना क्लेशों के सहने वाले (घृतस्नुवा) स्नेह को बहाने वाले, परस्पर स्नेही, (रोहिता) एक दूसरे के प्रति अनुराग से रक्त, सन्तानादि से वृद्धि को प्राप्त स्त्री पुरुषों को (योग्याभिः) योग्य, उत्तम कार्य में लगाने वाली वाणियों से (ऋतस्य) सत्याचरण और ज्ञान के (धुरि) धारण करने के कार्य में (धिष्व) लगा, नियुक्त कर (अथ) और हे (देव) मार्गों का प्रकाश करने और सुखों को देने वाले ! तू (विश्वाम् देवान्) सत्फलों की कामना करने वाले सब विद्वान् पुरुषों को सत्कर्म में लगाने वाली उत्तम वाणियों से ही (वह) उनको उत्तम उद्देश्यों तक लेजा और हे (जातवेदः) प्रज्ञावान् पुरुष ! तू स्त्री पुरुषों को (स्वध्वरा कृणुहि) उत्तम रीति से परस्पर की हिंसा से रहित, सौम्य स्वभाव वाला, यज्ञशील, परस्पर सत्संग और मैत्री भाव से युक्त बना।

दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानशील विद्वन् ! हे नायक ! (दिवः रोकाः चित्) सूर्य के प्रकाशों के समान (ते रोकाः) तेरे प्रकाश, तेरी रुचियें, कामनाएं (रुचयन्त) सबको अच्छी प्रतीत हों। सूर्य जिस प्रकार (विभातीः) विशेष रूप से चमकने वाली (पूर्वीः) अपने से पूर्व प्राप्त (उषः) उषाकालों के अनन्तर (अनुभाति) स्वयं प्रकाशित होता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी (पूर्वीः) प्राचीन काल से प्राप्त, (विभातीः) विविध ज्ञानों का प्रकाश करने वाली (उषः) पापों का दाह करने वाली वेद

वाणियों को (अनु भासि) प्राप्त करके सुशोभित हो । (यत् अपः अनु- भाति) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलों को चमकाती है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी (अपः) सत्कर्म करके (अनुभासि) प्रकाशित हो । (व- नेषु उशधक्) जंगलों में जिस प्रकार अग्नि कमनीय हरे वृक्षों को भी जला देता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी (वनेषु उशधक्) सेवन करने योग्य विषयों में कामना योग्य वासना को भस्म करने हारा हो । ऐसे (होतुः) ज्ञानप्रद, उत्तम पदार्थों के स्वीकर्त्ता, त्यागी (मन्द्रस्य) स्तुत्य, सबके हर्षजनक पुरुष के (अपः) कर्म की (देवाः) विद्वान् लोग सभी (प- नयन्त) स्तुति करते हैं ।

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! विद्वन् ! (ये) जो विद्वान्, और शक्तिमान् पुरुष (उरौ) विशाल (अन्तरिक्षे) आकाश में सूर्य या वायु के समान (अन्तरिक्षे उरौ) अपने भीतर निवास करने वाले विशाल आत्मा में (मदन्ति) हर्ष को प्राप्त होते हैं और (ये) जो (दिवः वा रोचने) सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त वा उत्तम रुचि के निमित्त (देवः) सूर्य की किरणों के समान प्रकाशक उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (सन्ति) हैं। और (ये) जो (सुहवासः) उत्तम रीति से यज्ञ और संग्राम करने हारे वा सु गृहीत नाम वाले और (ऊमाः) प्रजाओं की रक्षा करने हारे (यजत्राः) संगति और मैत्री से युक्त हैं वे (रथ्यः) रथ में लगने योग्य (अश्वाः) अश्वों के समान (आयेमिरे) अपने को नियममें रखें ।

एभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! तू (एभिः) उन

उक्त वीरों के साथ (रथं) एक समान रथ वाला होकर (वा) और (नाना रथं) नाना रथों सहित (अर्वाङ्) आगे (याहि) बढ़। वे (अश्वाः) अश्वों और अश्वारोहियों के समान (विभवः) विशेष रूप से सामर्थ्यवान्, एवं किरणों के समान व्यापने वाले हों। हे नायक ! तू उन (देवान्) कामनावान्, विजयशील, तेजस्वी (पत्नीवतः) पालन करने वाली शक्ति से युक्त (त्रिंशतं त्रीन् च) ३३ प्रधान पुरुषों को (अनु स्वधम्) उनके अपने देह को धारण करने योग्य अन्न और वेतन देकर (आवह) धारण कर और (मादयस्व) उनको सन्तुष्ट कर। इन ३३ देवों के वर्णन का स्पष्टीकरण देखो। ऋ० १।१३८।११॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये १०

भा०—(यस्य) जिस महान् पुरुष के (रोदसी चित्) सूर्य और पृथिवी के समान (उर्वी) विशाल माता पिता या पिता और गुरु, उत्तम उपदेश करने वाले (यज्ञ-यज्ञं) प्रत्येक सत्संग के अवसर पर उसके (वृधे) वृद्धि के लिये (अभि गृणीतः) उपदेश करते हैं और वे दोनों (प्राची) अतिपूज्य (सुमेके) सुन्दर शुभ रूप वाले, (ऋतावरी) सत्यज्ञानों से पूर्ण (सत्ये) सत्याचरण वाले होकर (ऋतजातस्य) ज्ञान में उत्पन्न विद्वान् के समीप (अध्वरा इव) उसके अहिंसनीय दृढ़ रक्षकों के समान (तस्थतुः) रहते हैं। (सः होता) वही उत्तम ज्ञान को लेने वाला पुरुष है। (२) (सः होता) वही उत्तम वशीकर्त्ता है जिसके विशाल (रोदसी) दुष्टों शत्रुओं को रुलाने वाली, दाये बायें दो सेनाएं हों उसकी राष्ट्र वृद्धि के लिये आगे शब्द करती हों। वे (प्राची) आगे बढ़ने वाली (अध्वरा) न मारी जानी वाली, अजेय, (ऋतावरी) बलवती, (सत्ये) बलवान् पुरुषों से युक्त, शुभरूप वाली या उत्तम रूप से आयुध फेंकने वाली (तस्थतुः) खड़ी हों।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२७॥८॥२

भा०—व्याख्या देखो (३ । १ । २३) ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

❀ इति द्वितीयोष्टकः ❀

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डित-जयदेवशर्म विरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये द्वितीयोऽष्टकः समाप्तः ॥